## समर्पण

उन दौड़नेवालोंकी स्मृतिमें जो मुझे आगे बढ़नेका अवसर दे आप पीछे रह गये।

# प्राक्कथन

"मेरी जीवन-यात्रा" मैने क्यो लिखी? मै बराबर इसे महसूस करता रहा, कि ऐसे ही रास्तोंसे गुजरे हुए दूसरे मुसाफिर यदि अपनी जीवन-यात्राको लिख गए होते, तो मेरा बहुत लाभ हुआ होता—ज्ञानके ख्यालसे ही नही, समयके परिमाण-मे भी। मै मानता हूँ, कि कोई भी दो जीवन-यात्राएँ, बिलकुल एक-सी नही हो सकती, तो भी इसमे सन्देह नही कि सभी जीवनोंको उसी आन्तरिक और वाह्य विश्वकी तरगोमे तैरना पडता है।

मैंने अपनी जीवनी न लिखकर जीवन-यात्रा लिखी है, यह क्यो? पाठक इसका उत्तर पुस्तकको पढकर ही पा सकते है। अपनी लेखनी द्वारा मैंने उस जगत्की भिन्न-भिन्न गतियों और विचित्रताओंको अकित करनेकी कोशिश की है, जिसका अनुमान हमारी तीसरी पीढी बहुत मुश्किलसे करेगी। जिस तरह कि मैंने दूसरे विषयोपर लिखनेसे पहिले कलम उठानेकी कुलाको बाक़ायदा नही सीखा, उसी तरह जीवनी लिखनेकी कलासे भी मै अशिक्षित हूँ। बाकायदा शिक्षाका महत्त्व कम नही है, लेकिन मेरा दुर्भाग्य, जो मुझे उसका अवसर नही मिला।

पहिले भी मेरे कई दोस्तोने जीवनी लिखनेके लिए कहा था, लेकिन मैं समझता था, अभी इसका समय नही है। १४ मार्च १९४०को सरकारने पकडकर मुझे हजारी-बाग जेलमे नजरबन्द कर लिया। २९ महीने बाद मैं जेलसे निकलूँगा, यह जाननेके लिए मेरे पास कोई दिव्यदृष्टि तो नही थी, लेकिन इतना जरूर जानता था, कि मै कई वर्षोंके लिए इन चहारदीवारियोके भीतर आ गया हूँ। उस वक्त मेरे पास बहुत समय था। हजारीबागमे हम दो ही तीन नजरबन्द थे। पुस्तके भी हमारे पास नही थी और दिमागमे किसी दूसरी पुस्तकका लिखनेका मेरे ख्याल भी नही था। मैंने दिन काटनेके लिए सोचा, चलो पुरानी स्मृतियाँ ही अकित कर डालो। १६ अप्रैल १९४०से मैंने लिखना शुरू किया और १४ जून तक लिखता गया। इन दो महीनोमे मैने १८९३से १९३४ तककी यात्राको अपनी स्मृतिसे कागजपर उतारा। मुमकिन है, मै आगे बढते-बढ़ते १९४० तक चला आता, लेकिन १९२६से आगे बढते ही मेरी कलम रुकने लगी—जब साल-सालकी डायरी मौजूद है, तो सिर्फ स्मृतिके सहारे लिखनेको मैने ठीक नही समझा। मुमकिन है, डायरियोंके

मिलानेपर बहुत बदलना पड़ता। २३ जुलाई १९४२में जेलसे छूटकर जब मैं बाहर आया, तो कुछ दोस्तोंने जीवन-यात्राको छपवा देनेकेलिए ज़ोर दिया। लेकिन मैं समझता था, जेलमें लिखी दूसरी छै पुस्तकोंका पहिले छपना ज़्यादा ज़रूरी है। और अब "विश्वकी रूपरेखा", "मानवसमाज", "दर्शन-दिग्दर्शन", "वैज्ञानिक भौतिकवाद", "सिंह सेनापति", और "वोल्गासे गंगा", छप जानेके बाद ही "मेरी जीवन-यात्रा" पाठकोंके हाथमें जा रही है।

मैं आशा नहीं करता था, कि दूसरे भागके लिखनेकेलिए समीप-भविष्यमें अपनी क़लमको उठा सकूँगा। रूसकी तीसरी यात्राकेलिए मैं तैयार बैठा हूँ, सिर्फ़ ईरान-सरकारकी आज्ञा आनेकी देर है। लड़ाईसे पहिले ऐसी आज्ञा या "वीसा" लेना सिर्फ़ एक घंटेकी बात थी, लेकिन आज दरख़्वास्त दिये पाँचवाँ महीना बीत रहा है, पर अभी भी पता नहीं वह कब आयेगा। मैंने इस प्रतीक्षाके समयको अगला भाग लिखनेमें लगाना पसन्द किया है।

प्रयाग<br>२. ६. १९४४

**राहुल सांकृत्यायन**

## पुनश्च

रूस जानेसे पहिले ही मैंने दूसरा भाग भी समाप्त करके प्रकाशकको दे दिया है।

**राहुल सांकृत्यायन**

## विषय-सूची

## चतुर्थ खंड



## परिशिष्ट

# मेरी जीवन-यात्रा

## प्रथम खंड

## बाल्य

## १

## माता-पिता

मेरी माँ कुलवन्ती अपने माँ-बापकी एकमात्र सन्तान थी, और वह भी नानाके १०, १२ वर्षकी पल्टनकी नौकरीसे नाम कटाकर चले आनेके बादकी। ब्याह हो जानेपर भी माँ अक्सर अपने मायके पन्दहा ही रहती थी, और वही मेरा जन्म (रविवार ९ अप्रेल १८९३ ई०[1]) हुआ।

नाना रामशरण पाठक[2]के पास तीन साढे तीन एकड बलुआ खेत था, जो आठ या दस जगहोमे बिखरा हुआ था। वे दो बैलोके अतिरिक्त एक भैस जरूर रखा करते थे। नाना जब पन्दहासे भागकर हैदराबाद पल्टनमे गये थे. उस वक्त उनका काम भैसोकी चरवाही करना, दूध पीना और कसरत करना था। नानाकी सबसे पहिली मूर्ति जो मुझे याद आती है, वह उनकी ५५के करीबकी थी। उनके सभी बाल सफेद, कद लम्बा छै फीट, सीना चौडा, बाजू मोटे, नाक लम्बी और नुकीली, रग गेहुँआ था। वे काम बहुत कम किया करते थे। सबेरे घास काट लाते, चारा काट देते, और फिर किसी कुल्हाड, खलियान, या बगीचेमे अँगोछेसे घुटने और कमरको बाँधे

---

[1] वैशाख कृष्ण अष्टमी रविवार संवत् १९५० विक्रमी।

[2] नानाके बारेमें पढ़ें परिशिष्ट ४

अपने शिकार और सफ़रकी गप्पें उड़ाया करते थे। खाना-पकाने आदिके अतिरिक्त ढोरोंके सानी-पानीका काम भी नानीको ही करना पड़ता था।

नानी मझोले डीलकी साधारण स्वस्थ स्त्री थी। उनके बाल बहुतसे सफ़ेद थे, किन्तु दाँत आखिर तक नहीं टूटे। होश सँभालते ही माँको 'माँ' कहते सुन मैं भी उन्हें बराबर माँ कहता। नानीकी नानापर धाक थी, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु दोनोंमें कभी झगड़ा होते मैंने नहीं देखा। उनकी बातको नाना बहुत मानते थे, और घरके कारबार में नानीका एक छत्र राज्य था। वह गप-शपमें बहुत कम रहा करतीं। घरके छोटे-बड़े कामके सिवा, गाने-बजाने या मेला-तमाशा देखनेमें उनकी रुचि न थी। दो बजे रात ही वह जग उठतीं, और अपने दो-तीन ठेठ भजनोंको बिना सुर-तालके भक्तिभावनासे गातीं। इन भजनोंमें एक था 'गुरु मोंके दे गइलें ग्यान-गुदरिया।'[1] मैं बराबर नानीके पास सोया करता था। दूध छोड़नेके बाद हीसे माँसे मैं अलग कर लिया गया था, और वस्तुत: नानीमें मेरा जितना स्नेह था, उतना माँमें नहीं। माँके उपकारोंको, आखिर, मैंने देखा ही क्या था? तब उठते ही नानी घरके काम-काजमें जो लगतीं, तो रातके दस-ग्यारह बजे उन्हें सोनेकी फ़ुर्सत होती। गप-शप न करनेका मतलब यह नहीं था, कि नानी रूखी थीं। उनका दिल अत्यन्त कोमल था। पशु और पक्षी तक उनके वात्सल्यसे वंचित न थे। नानाको पैतृक तीन घरका आँगन मिला था, जिसे उन्होंने बढ़ाकर पौने तीन आँगनके नौ घरोंमें परिणत कर दिया था। सबसे बाहरका आँगन या 'द्वार' बहुत बड़ा था। यहाँ बीचमें नानाका लाया एक पत्थरका कोल्हू गड़ा था। उत्तर तरफ़ उनके बड़े भाईका घर था। पूर्वमें नानाके खुदवाये पक्के कुयेंके अतिरिक्त एक घर भी था। दक्षिण तरफ़के दो घरोंमेंसे एक बैठकका काम देता था, और ईंटकी दीवारोंका बना था। नानीको सगे-सम्बन्धियोंकी मेहमानदारी हीमें उत्साह न था, बल्कि अक्सर राह चलते पथिक और भिखमंगे भी उनके आतिथ्यके अधिकारी होते थे।

जीवनके आरम्भिक पाँच वर्षोंमें नानीने मेरा पोषण ही नहीं निर्माण भी किया।

पिता गोवर्द्धन पांडेको दस-बारह वर्षकी आयुमें जाकर मुझे जाननेका मौक़ा मिला। सालमें सप्ताह डेढ़ सप्ताहके लिए पन्दहामें कनैला जानेपर, मैं उन्हें दूरसे देख

---

[1] देखो परिशिष्ट ५.

भर लेता था। उनका रग काले तक पहुँच गया गहरा साँवला था, कद छः फीटसे कम नही था। शरीर दुबला-पतला किन्तु स्वस्थ। वे बहुत कम बीमार पड़ते थे। दुबला-पतला होनेका कारण भी अधिकतर खानेकी अव्यवस्था और पूजा-पाठका कडा नियम था। बिना स्नान-पूजाके वे जल तक नही पीते थे। फिर पीछे कचहरीके मुकदमोके समय तो कितनी ही बार चार-पाँच बजे शामको उन्हे नाश्ता करनेकी नौबत आती। नाक वह जरूर दबाया करते थे, किन्तु सन्ध्या उन्हे आती थी इसमे सन्देह है। सन्ध्याको हमारे गाँवोमे सस्कृतके पडितोकी चीज समझा जाता था, और हमारे पिता सस्कृतके पडित न थे। उनके पाठमे हनूमान-वाहुक और रामायण शामिल थे। नहानेके बाद बेलपत्रके साथ जल शकरकी पिंडी—कनेलामे इसकी जगह किसी पहाडी नदीसे निकाल लाये चार-छै चिकने पत्थर एक पुराने पीपलकी जडमे रखे हुए थे—पर चढाते। फिर गुड़-घी और देवदारकी लकडीकी बनी धूपकी अगियारी देकर वे अपना पाठ शुरू करते। पूजाके कडे नियमोके कारण गाँववाले उन्हे 'पुजारी' कहते थे। आगे चलकर उन्होने हजामत गगातटपर बनवानेका भी नियम कर लिया था, जिसके कारण कभी-कभी तीन-तीन चार-चार मास तक उनके बाल बढे रहते। वे बडे प्रतिभाशाली थे। उन्हे सिर्फ एक महीने किसी भूले-भटके मुशीसे क-ख सीखनेका मौका मिला था, किन्तु न जाने कैसे उन्होने रामायण ही नही, भिन्न, गुणा-भाग, सूद और पैमाइशके हिसाबको भी सीख डाला था। पक्के आस्तिक होते हुए भी 'बाबा वाक्य प्रमाण' की अवहेलना करनेमे भी वे समर्थ थे। ब्राह्मणोके नियमके विरुद्ध वे अपने हरवाहे निस्सन्तान चिनगी चमारको मरनेपर गगातीर जलानेके लिए ले गये। पुरानी प्रथाके विरुद्ध नये कुयेको बनवानेके लिए विचित्र लम्बाई-चौडाईकी ईंटे उन्होने खास तौरसे तैयार करवाई, और प्रचलित प्रथाके विरुद्ध कूयेको नीचे चौडा ऊपर सकीर्ण करते हुए बनवाया। साधु-सन्तोमे श्रद्धा रखते हुए भी गँजेडियो-भँगेड़ियोमे वे वीतश्रद्ध थे।

माँ शरीरके आकार-प्राकारमे अपने पितासे सादृश्य रखती थी। वैसाही लम्बा कद, वैसा ही हृष्ट-पुष्ट शरीर, रग गोरा, दो बारके प्रसूत ज्वरकी बीमारियो—जिनमे आखिरीके कारण ही उनकी मृत्यु हुई—को छोडकर उनका शरीर स्वस्थ रहता था। उनके स्वभावके बारेमे जानकारी प्राप्त करनेका मुझे साक्षात् अवसर नही था। अपनी माँकी तरह वह झगडे-झझटसे दूर रहती थी, यह तो इसीसे सिद्ध है, कि सारे गाँवमे सबसे अधिक रूखी और कड़े मिजाजकी सास रखनेपर भी उनके साथ झगडा होते नही देखा गया। गीत और भजन उन्हे याद थे या नही यह

तो नहीं कह सकता, किन्तु इतना अवश्य मालूम है, कि जिस साल वह गोधन और उसके बादके दिनोंमें पन्दहा रहतीं, तो गोबरकी "पिंडियाँ" हमारे ही घरमें लगती, और माँकी सखी-सहेलियाँ वहीं 'पिंडिया-अगोरने' आतीं। दीवालीके दूसरे दिन गोधन मनाया जाता। मुझे उस दिन अफ़सोस रहता;—माँके रहतेका तो स्मरण नहीं, सिर्फ़ नानीके रहनेपर हमारा घर गोधनमें शामिल नहीं होता था, जिसके कारण गोधनमें चढ़नेवाली चीनीकी कुल्हिया, और मिठाइयोंसे मैं वंचित रह जाता था। हाँ, एकाध बार माँके रहते समय 'पिंडिया-अगोरने'की मधुर स्मृति मुझे अब भी याद है। "अगोरने"वाली सभी तरुण स्त्रियाँ होतीं। उनके साथ उनके छोटे बच्चे भी रहते। कोदोका पुआल ज़मीनपर बिछा रहता, जिसपर कोई लम्बा चौड़ा बिछौना होता। सिरहाने सिंदूरसे टीकी छोटी-छोटी गोबरकी पिंडियाँ दीवार-पर चिपकी रहतीं। एक छोटासा तेलका दिया जलता। आधी-आधी रात तक माँ और उनकी सखियाँ गीत गातीं। हम लड़कोंको उनकी गीतोंसे कोई ख़ास प्रेम न था, हाँ गुड़के मीठे 'ठकुये' (मीठी पूड़ियाँ) हमें बहुत प्रिय थे, जिन्हें खाते-खाते हम सो जाते। उन गीतोंमेंसे किन्हींका आरम्भ माँकी ओरसे होता था, इसका भी मुझे पता नहीं। हाँ, सवेरे के वक़्त एक या अनेक पद्यमय कहानियों—जिन्हें पिंडिया-अगोरनेवाली स्त्रियोंको धर्मके भयसे सुनना पड़ता है—के सुनानेका काम मैंने माँको करते देखा। मेरी चचेरी मौसी जब पानी-बर्तनके कामोंमें बहुत व्यस्त रहतीं, तो वह अपनी मुंदरी रख जातीं। माँ औरोंके साथ उसे भी कहानी सुनातीं—उपस्थित सखियाँ कानसे उसे सुनतीं, और मौसीकी अनुपस्थितिमें उनकी मुँदरी सारी कहानी सुन लेती; जिसे मौसी अँगुलीमें पहन कर सुननेकी भागिनी बन जातीं। इन कहानियोंमें 'चेरिया' 'चेरिया' (क्रीतदासी) का शब्द बहुत आता था, जो बत-लाता था कि वह दासत्वप्रथाके युगकी कोई पुरानी कहानियाँ रही होंगी।

मेरे नाना-नानी दीर्घजीवी, स्वस्थ और पैतृक रोगशून्य व्यक्ति थे। मेरे पिता-माता स्वस्थ और पैतृक रोगशून्य होते भी दीर्घजीवी व्यक्ति न थे। माँकी मृत्यु २८-२९की आयुमें और पिताकी ४५-४६में हुई। मेरी दादी ('आजी') दीर्घजी-विनी रहीं, किन्तु दादा ४० सालसे पहिले मर गये। मेरे पिताका वंश कई पीढ़ियोंसे मज़बूत, लम्बे क़द्दावर जवानोंको पैदा करनेके लिए मशहूर रहा। नानाके वंशके बारेमें कोई वैसी बात तो नहीं सुनी, किन्तु जहाँ तक नाना उनके पिता और भाइयोंका सम्बन्ध है, वे भी मज़बूत और लम्बे-चौड़े लोग थे।

२

# प्रथम स्मृति

( १८९६-९७ ई० )

सबसे पुरानी स्मृति मुझे सन् ४ (१३०४ फसली या १८९७ ई०)के अकालसे पहिले ले जाती है। पन्दहामे इस अकालका क्या असर पडा, यह मुझे याद नही। कनैला (पिताके गाँव)के लोगोपर क्या-क्या बीती, इसका भी साक्षात् स्मरण तो नही है, हाँ अकालके पहिले जीता भरके टोलेमे ५०, ६० व्यक्तियोके ६, ७ घर थे। उन सजीव घरोंको मैने देखा था, उनके छोटे-छोटे लड़कोको घरके सूअरके बच्चोके पीछे दौडनेकी भी याद ताजी है। सन् ४ के भीषण अकालमे ये सभी लोग घर छोडकर आसाम और दूसरी जगहोमे भाग गये। वर्षो तक इन झोपडोकी दीवारें खडी थी। उनके नीम, महुआ और ताडके वृक्षोपर उनके जमीदारोने कब्जा कर लिया।—जीताके पुत्र टिभोलू वर्षो बाद गाँव लौट आये। टोलेके उजाड होनेके थोडे ही दिनो बाद उन्ही खडहरोके पाससे खोदकर मेरे लिए मेरे चचेरे चचा बिरजू खडिया (सडे ककडी) खोदकर लाते थे।

उसी अकाल या उसके बादके सालकी बात है, हमारे अँधेरे घरके एक कोनेमें दो-काँसेकी नई थालियाँ पड़ी थी। मैने उसे छू दिया। माँ या बुआ गुस्सा हुईं और मेरा हाथ धुलवाया। मालूम हुआ, अकालमे अपनी थालियोको किसी चमारने कुछ सेर अनाजके लिए गिरवी रखा था।

उन्ही पुरानी स्मृतियोमे है—एक दिन मै माँके साथ ननिहालसे कनैला आ रहा था। चलते वक्त आसमान ठीक था, किन्तु रास्तेमें पानी बरसने लगा। मैं किसीकी गोदमे था। मेरे हाथमे गुडमे गुँधे सत्तूकी पिंडी थी। पानीसे पिंडी भीग गई थी, किन्तु उस पिंडीको बड़े यत्नसे मैने हाथमे दबा रखा था। हमारे परिवार जैसी स्थितिकी बहुये एक या दो बार ही पालकीपर पीहर—नैहर जाती आती हैं, बादमे वह लाल चादर ओढे घूँघट किये पैदल ही आती-जाती हैं। मेरी माँ वैसी ही लाल चादर ओढ़े १० मीलका रास्ता तय कर रही थी। वर्षा शायद सारे रास्ते भर नही रही।

अकालके वक्त पन्दहा या कनैलाके लोग भूखसे कैसे मर रहे थे? पशुओका

चारे विना क्या हाल था ? सारी पृथिवी और वनस्पति कैसी झुलसी हुई थी ? इन वातोका मुझे बिल्कुल स्मरण नही, यद्यपि उस वक्त मै चार वर्षसे ऊपर हो रहा था, किन्तु अकालके बाद (१८९८ ई०)वाली बरसातका आरम्भ मुझे अच्छी तरह याद है। मै उसी समय कनैलासे पन्दहा लाया गया था। जहाँ कनैलाके बस्तीके आसपास वृक्ष-वनस्पति शून्य विस्तृत ऊसर था, वहाँ पन्दहा चारो ओर वृक्षो और बॉसकी झाडियोसे ढँका था। किन्तु उस दिन तो मालूम होता था, उस असाधारण हरियालीने अपनी छायामे अन्धकारको छिपा रखा है।

अकालका प्रभाव हमारे नाना और पिता दोनोके घरोपर नही पडा। पिताके पास दस-बारह एकड़ खेत थे, और नानासे भी उनकी अवस्था अच्छी थी। दोनो ही घरोमे आमदनीसे खर्च बढा हुआ नही था। बल्कि यदि मै गल्ती नही करता, तो इसी अकालके समय अनाजके मँहगे भावसे लाभ उठाकर पिताने पहिली पूँजी जमा की, जो वढते-बढते चार-पॉच हजार तक पहुँच गई।

# ३

## अक्षरारंभ

### (१८९८ ई०)

होश सँभालनेसे पहिले चाहे माँके साथ अक्सर कनैला रहनेका मौका मिलता रहा हो, किन्तु, वादमे तो नानाके यहाँ ही मेरा स्थायी वास रहा। ननिहालके मेरे जैसे नाती शोख हो जाते है, लेकिन मेरी शोखीकी कभी किसीको शिकायत नही हुई। पन्दहाके मै अच्छे लडकोमे समझा जाता था। नानीका स्नेह तो खैर अद्वितीय था ही, नानाका प्यार भी कम न था, किन्तु साथ ही नाना—पल्टनिहा सिपाही—कडे अनुशासनको पसन्द करते थे। सिवाय एक बार—सो भी बहुत कुछ दिखलाऊ—कभी उन्होने एक थप्पड भी मुझे नही मारा, किन्तु, नानाकी डपट मेरे लिए पचास लाठीके चोटसे कमकी न थी। नाना खेल-कूदके भी खिलाफ थे। दरख्तपर चढना उन्हीके कारण जिन्दगी भर मुझे नही आया। उनकी चलती तो मुझे तैरना भी नही आता, किन्तु ननिहालकी पोखरीमे एक वार डूबनेसे बचकर कनैलामे मैने उसे सीख लिया। नानाने अपनी जानभर मेरे लिए जिन्दगीको जेलखाना बना दिया था।

लडकपनके साथियोमे दो हीका मुझे स्मरण है, जो दोनो ही मेरे समवयस्क थे—एक नानाके छोटे भाईके लडके नरसिंह, और दूसरा गरीब सतमीका[1] लडका मद्धू। कदमे लम्बा होते भी लडकपनमे मै बहुत दुबला-पतला और अपेक्षाकृत कमजोर भी था। कमजोरीका कारण तो शायद नानाकी अत्यधिक सावधानी थी, जिसके मारे मुझे शारीरिक परिश्रमवाले किसी खेलका मौका नही मिलता था। बरसातका आदि या अन्त था, गड्ढोमे पानी भरा हुआ था। स्मरण नही कौन लडका खेलते समय मेरे धक्के या अपनी असावधानीसे एक छोटे गडहेमे गिर गया। पासके किसी आदमीने दौडकर उसे निकाला।

मै बेकसूर था, किन्तु नानाने समझा, मैने जानबूझकर शरारत की। उसी वक्त नानीसे सलाह ठहरी—बच्चेको पाठशालामे बैठा दिया जाये। पन्दहासे रानीकी-सरायका मद्रसा एक ही मील है, इसलिए नानीको दूरी की शिकायत नही हो सकती थी। अकेलेके लिए नानाने मद्धूको साथी देनेकी बात कही। दोपहरको भूख लगनेकी बात कहनेपर उन्होने अध्यापक मुशी महावीरसिंहसे (?) अपने चौकेमे खाना खिला देनेकी बात तै कर ली। उमर थोडी है, क्या पढ़ैगा—कहनेपर, नानाका जवाब था—बैठना तो सीखैगा। नानीको भी पाठशाला भेजनेकी बात माननी पडी।

शुभ मुहूर्त देखकर (शायद १८९८ ई० नवम्बरको) एक दिन रामदीन मामा[2]के साथ मुझे रानीकीसराय भेज दिया गया। नानाकी धारणा थी कि हिन्दीसे उर्दूकी कदर अधिक है। उनके एक फुफेरे भाई मुसिफ होकर जवानी हीमे मर गये थे। मेरे लिए भी नानाकी नजरमे वैसी ही कोई सरकारी नौकरी थी। उर्दू पढाकर आजमगढ़के मिशन-स्कूलमे अँग्रेजी पढ़ानेका उनका इरादा था। खैर, वह अपने इरादेमे कैसे असफल रहे, यह आगेकी बात है। जाडोके दिन थे। रानीकीसरायके मद्रसेके हातेमे—जो कि एक कच्ची चहारदीवारीसे घिरा हुआ था—गेदेके फूल खिले हुए थे। वही धूपमे टाटपर मै बैठा रहता था। मद्धू भी मेरे पास बैठा होता। नही याद, हम कैसे अपना दिन काटते थे। नानाकी बात दुरुस्त थी, मै वहाँ बैठना ही सीख रहा था।

शायद बहुत दिनो तक मै रानीकीसराय नही जा सका। बा० महावीर (या

---

[1] देखो "सतमीके बच्चे।"

[2] नानाके बड़े भाई शिवनन्दन पाठकके कनिष्ठ पुत्र। देखो परि० ४

भगवान्) सिंह अपने घरके किसी मारपीटमें शामिल हुए। उनको सजा हो गई। मद्रसा बन्द हो गया।

उसके बाद मैं कहाँ रहा, क्या करता रहा,—इसपर स्मृति प्रकाश नही डालती। हाँ, १८९९के अन्तमें फिर रानीकीसरायके मद्रसेमें दाखिल होनेसे पहिले एक बार कनैलासे बडौरा गया था। गाँवके ७, ८ लडके वहाँ पढने जाते थे, मैं शायद सबसे छोटा था। मेरी आयुसे कुछ ही बडे चचा बिरजूका मुझसे बहुत प्रेम था। बडौरामें उर्दू नही मुझे हिन्दीका क-ख शुरू कराया गया। बिरजू खडियाकी स्याही बनाकर मुझे सिखलाते। गाँवके जयकरण अहीरकी एक टूँडी गायसे गाँवके सारे बच्चे बहुत डरते थे। वह दौडकर हमला करती थी। सबेरे दिन चढे हमारा झुंड बडौरा जा रहा था। उत्तर तरफके ऊसरकी गायोमें टूँडी गाय भी है—इसे हम-मेंसे कइयोको पता न था। टूँडी दौडी, हम लोग जिधर-तिधर भाग निकले। मेरे भय और आश्चर्यका ठिकाना न था, जब कि मैने टूँडीसे चार कदमपर ही, भागनेकी जगह बिरजूको अपनी नई पीली धोतीकी लुडी लिये बैठ जाते देखा। टूँडी बिरजूकी ओर ध्यान न दे हम लोगोकी ओर लपकी, लेकिन हम लोग उसकी पहुँचसे बाहर हो चुके थे। बिरजू मुस्कुराते हुए हमसे आ मिले। पूछनेपर कहा—बैठे हुए आदमीको गाय-बैल नही मारते। प्रत्यक्षके बारेमें सन्देह की गुजायश कहाँ? तो भी इसका तजर्बा करनेके लिए मुझे तो किसी टूँडीके सामने जानेकी कभी हिम्मत न हुई।

बडौरामें शायद एकाध ही मास मैं पढ पाया। कौन अध्यापक थे, उनकी सूरत तकका मुझे स्मरण नही। इतना याद है, कि वर्ण-परिचयकी जो पुस्तक हमारे ...यथोके हाथमें थी, वह खड्गविलास-प्रेसकी छपी, खडी सरस्वतीकी तस्वीरवाली ...। बडौरा और वर्णमालाके दिनोकी सबसे तीक्ष्ण स्मृति बिरजूकी है। बिरजू ...रे पिताके चचेरे चचाके पुत्र थे—यह कहनेमें तो दूरका सम्बन्ध मालूम होगा, ...न्तु वस्तुत: यह बात न थी। मेरे पितामह जानकी पाडेके उनके तीन चचेरे भाई— ...मे बिरजूके पिता महादेव सबसे छोटे और जानकी पाडेके बहुत प्रेमपात्र थे— ...े भाईसे थे। सारा परिवार एक साथ रहता था। सम्मिलित-परिवारके दिनो हीमें मेरा और बिरजूका जन्म हुआ था। यदि पितामह जीते होते या पितामहीका स्वभाव अत्यन्त कर्कश न होता, तो अब भी हमारा परिवार साथ रहता। —परि-वारोकी अलगाविलगी अत्यन्त बचपनसे ही मुझे अप्रिय मालूम होती थी। खैर, टूँडीके सग्रामका वीर बिरजू, मेरे लिए दुद्धी (=खडिया) खोद-लाकर अक्षर सिखलानेवाला बिरजू मेरी श्रद्धा और प्रेम दोनोका भाजन था। १९०० (?)में

कनैलामे जोरका हैजा आया। मैं भी उस वक्त वही था। हमारे घर भरके स्त्री-पुरुष बीमार पडे। हमे कपूरका पानी पीनेको मिलता था। भगवतीकी मिन्नतपर मिन्नत मानी जा रही थी। मालूम नही घर भरमे कोई बीमारीसे अछूता भी रहा या नही। हमारे घरमें कोई नही मरा, किन्तु बिरजूका परिचित चेहरा उसके बाद फिर न देख पानेका मुझे बहुत अफसोस रहा।

हैजेसे उठनेके बाद पुराने चावलका भात और इम्लीकी चटनीका पथ्य मुझे बहुत मधुर मालूम होता था।

× × ×

१८९९ ई०के अन्तके जाडोमे मै फिर पन्दहामे था, और अब मद्धू नही नये सहपाठी दलसिंगारके साथ रानीकीसरायकी पाठशालामे भरती हुआ। नये अध्यापक बा० द्वारिकाप्रसादसिंह नाटे और गठीले वदनके तरुण थे। वह हमारी कापियोपर अपना हस्ताक्षर अंग्रेजीमे किया करते थे। अंग्रेजी एकाध किताब पढे हुए थे यह तो मुझे नही मालूम, किन्तु वह नार्मल पास थे। गोरखपुर—शहर—मे रहनेका उनपर काफी असर था। वह बात-चीत और पोशाकमे काफी नागरिक मालूम होते थे। उनके कपडे—कोट, कमीज और धोती हमेशा साफ उजले रहा करते थे। कसरत करते थे या नही, यह तो स्मरण नही, किन्तु शामको पाखानेके लिये लोटा लिये वह दूर तक टहलने जाते थे। उस वक्त 'छड़ी बिना विद्या नही आती' यह सर्वमान्य शिक्षा-सिद्धान्त था, किन्तु मुझे जहाँ तक स्मरण है, द्वारिकासिंह वहुत ज्यादा मारते-पीटते नही थे, तो भी हम विद्यार्थियोपर उनका काफी रोब था। पान खाते और सीटी वजाते हुए चलनेका उन्हे वडा शौक था। उन्होने किसीसे एक विलायती कुत्तीको लेकर पाला। न जाने कैसे उसकी कमर टूट गई, और महीनो हमारे अध्यापक मेहतर लगा सूअरके तेलसे उसकी मालिश कराते रहे।

उस वक्त रानीकीसराय बहुत छोटीसी बस्ती थी। अभी रेल नही पहुँची थी, और न मारवाडियो तथा दूसरे व्यापारियोकी दूकाने आ पाई थी। आजमगढसे जौनपुर और बनारसकी ओर जानेवाली पक्की सडक तथा घोडेगाडी (=सिकड़म्)पर चलनेवाली डाकके रास्तेपर होनेके कारण यह स्थान कुछ महत्त्व तो जरूर रखता था, और शायद कुछ दिन पहिले चीनीके कारखाने भी यहाँ चल रहे थे; किन्तु मेरे आरम्भिक दिनोंमे वहाँ हलवाइयोकी पाँच-सात दूकाने थी, जिनमे दोको छोडकर बाकी जगह गट्टा और गुडके लड्डुआ ही मिलते थे। पाँच-सात दूकानोमे लवग-हलदी-रंगके साथ कपडे भी विका करते थे। उस वक्त तक अभी सिलाईकी कल वहाँ नही पहुँच

पाई थी। नाना मेरा कुर्ता अपने खान्दानी दर्जी वसईके बूढे सलीमसे सिलवाया करते थे, किन्तु एक दिन देखा, मुझे वे कपडा नपवानेके लिए सरायमे ले जा रहे हैं। वहाँ एक दुवले-पतले सफेदपोश मियाँ रहते थे, जो हड्डीकी खरीदके मुशी थे। घरमे सख्त पर्दा था। दर्वाजेपर बोरियेका पल्ला लटक रहा था। गरीबीके कारण बीबी सिलाईका भी काम कर लिया करती थी। हाँ, यह सराय मेहनगरके राजाकी रानीने वनवाया था, जिसके ही कारण वस्तीका नाम रानीकीसराय पड़ा था। हमारा मद्रसा उन्ही रानीके वनवाये पोखरे रानीसागरके कोनेपर बना हुआ था। मेहनगरके राजा गौतम राजपूत पहिले हिन्दू थे, पीछे वे मुसल्मान हो गये, और उसी समय या उसके बाद वे मेहनगर छोड आजमगढमे चले आये।

सरायका बडा दर्वाजा और कितनी ही कोठरियाँ उस समय भी मौजूद थी, यद्यपि वेमरम्मतीका असर उनपर दिखलाई पड रहा था। फाटककी अगल-वगलके कोठेवाली कोठरियोमे कबूतरोने डेरा डाला था, जहाँ और लडकोके साथ मैं भी कभी-कभी कवूतर पकडने गया था। सरायमे एक पगली भटियारिन रहती थी, जो हमको देखकर बडबडाया करती। डाककी घोड़ागाड़ीके अतिरिक्त रानीकी-सरायकी सड़कपर भाडेकी ऊँटगाडियाँ भी चला करती थी। बाजारमे पुराने किस्मके कुछ इक्के भी थे।—यह सब रेल आनेसे पहिलेकी बात है।

दलसिंगार रिश्तेमे मेरे नाना लगते थे, किन्तु समवयस्कोमे सिर्फ भाईका ही रिश्ता चल सकता है। हम दोनोमे वहुत प्रेम था, शायद इसका कारण दोनोका झगडाऊ स्वभावका न होना रहा होगा। सबेरे बासी खाना खाकर घटा दिन चढनेसे पहिले ही हम मद्रसा पहुँच जाते थे। दोपहरके खानेके लिए भुना दाना या गुड़-मिला सत्तू हमारे अँगोछेमे बँधा रहता, जिसे रानीकीसरायके बन्दरोकी भारी पल्टनसे बचाना आसान काम न था, रानीसागरके भिडेपर अक्सर वे पडे रहते, और हमारा रास्ता भी उधरसे ही था। रानीसागरके एक तरफ ईटका पक्का घाट था, जो अव बहुत जगह टूट-फूट रहा था, पास हीमे महावीरजीका मन्दिर था। वन्दरोको महावीरजीकी सेना सुनते-सुनते हम समझते थे, कि इसी मन्दिरके कारण बन्दर यहाँ रहा करते है। लाल मुँहवाले वन्दर वडे शरारती होते है, खासकर लड़कोके साथ। एक दिन हम दोनो तालावके दक्खिनवाले किनारेसे जा रहे थे—शायद उत्तरवाले किनारे-पर महावीरकी सेनासे जान वचानेके लिए। किसी नटखट लडकेने भिडेके रीढ-पर—हमारी आँखोसे ओझल—बैठे वन्दरोपर ढेला चलाया। हमने उस लडकेको देखा भी नही, और वातकी वातमे दर्जनो वन्दर खाँव-खाँव करते हमारे ऊपर चढ़

दौडे। दलसिंगार किसी तरफ भागे। मैं भागता धूप लेती एक बुढियाके पीछे जा छिपा। बुढिया न होती तो बन्दरोंने मेरी गत बना दी होती।

हिन्दीवाले लडकोंको वर्णमाला धरतीपर मिट्टीमें लिखकर सीखना होता था, किन्तु हम उर्दूवाले लडकोंको शुरू हीसे सफेद पट्टीपर गेहूँ या चावलके शीरेकी स्याहीसे लिखना पडता। पहाडा सबके साथ ही जोर-जोरसे चिल्लाकर दुहराना पड़ता। दोपहरको खानेके लिए छुट्टी होती—जाडोंमें एक ही घंटेके लिए, किन्तु गर्मियोंमें वह तीन घंटे या ज्यादाकी होती, और हम खाना खाने घर चले आया करते। जाडोंमें रानीसागरके घाट या महावीरजीके मन्दिरके पास हम अपना सत्तू-भूजा खाने जाते। बन्दरोंका खतरा था, किन्तु इस वक्त हम भी एक-डेढ दर्जन लडके एक साथ रहते।

१८९९के अन्तमें मैं गया ही था, इसलिए उस साल 'जुज बे' (प्रारम्भिक श्रेणी) पास करनेकी बात ही क्या होती; हाँ, अगले साल मैं और दलसिंगार दोनों 'बे' पास हुए। उस वक्त प्राइमरी स्कूलोंकी वार्षिक परीक्षायें दिसम्बरके महीनेमें हुआ करती, और नये सन्के साथ हमें नई किताबें मिला करती।

## ४

# दो साथी

## (१९०१-२ ई०)

आयुमें दलसिंगार मुझसे जरासा बडे थे, किन्तु कदमें मैं उनसे बड़ा था। नानाके लाड-प्यार तथा खेल-कूदसे वंचित रखनेने मुझे जहाँ निर्बल बना दिया था, वहाँ दलसिंगार उस आठ-नौ वर्षकी उम्रमें भी शिरपर टोकरी ढोने तथा दूसरे छोटे-मोटे कामोंके कारण मुझसे अधिक मजबूत थे। सबेरे जो पहिले नाश्ता कर चुकता वह दूसरेके घर लिवाने पहुँचता। दलसिंगारके घर यदि मुझे जाना पडता, तो हम दोनों पाससे गुजरती निजामाबादवाली कच्ची सड़कसे आते। दलसिंगारको जब मेरे घर आना पडता, तो हम पगडंडीका सीधा रास्ता पकडते। सबेरेके वक्त तो कोई बात न थी, किन्तु शामको घर लौटते अक्सर देर हो जाती। पाठशालासे छुट्टीमें उतनी देर न होती, किन्तु रास्तेमें हम लोग गिल्ली-डंडा या दूसरे खेल खेलने लगते, जिसमें देर हो जाती। लौटते थे अक्सर हम सडकके रास्ते, क्योंकि वह दलसिंगारके

लिए सीधा था, दूसरे पगडडीवाला रास्ता जगलके भूतहे पोखरेके पाससे गुजरता था। इस निर्जन तालाबपर दिन-दोपहरको भूत नाचा करते और अकेले-दुकेले सयाने भी उधरसे गुजरनेकी हिम्मत न करते थे। सबेरेके वक्त उधर गायो और चरवाहोके रहनेके कारण हमे भी हिम्मत रहती, किन्तु शामको किस बिरतेपर उधरसे गुजरते ? जब मै नानीके साथ उधरसे जाता तो, पास पहुँचनेपर वह बडी श्रद्धा-भक्तिके साथ 'जै ठैयॉ-भुइयॉके बाबा साहेब ! जहॉ रहै बाल-गोपालको नीके वनाये राखा' कहकर प्रार्थना करती। हम भी 'बाबा साहेब'को मना लिया करते, लेकिन दिलको पूरा भरोसा न होता। वैसे सडकके रास्तेपर भी 'ठूँठे' पीपरके 'बाबा साहेब' थे, किन्तु एक तो सडक थी, दूसरे 'बाबा' अकेले थे और हम दो। हम लोगोने यह भी सोच रखा था, कि यदि 'बाबा' प्रकट हुए तो झट मामा कह बैठेंगे, फिर 'बाबा' भॉजेपर हाथ छोडनेका साहस थोडा ही करेंगे ?

सावनमे गाँवमे कई जगह वृक्षोपर झूले पडते थे, जिनपर रातको गॉवकी बहुये तथा दूसरी तरुण कन्याये झूला झूलती, कजरी गाती। हम लडकोके झूले दिन भर चलते रहते। उस वक्त मेरे साथी और साथिने सुनी-वुनी कजरीके एकाध पद गाते। 'रुन-झुन खोला हो केवडिया, हम बिदेसवॉ जइबै न'। यह पद मुझे बहुत प्रिय था, किन्तु इसके पिछले भागका ही मुझे अर्थ मालूम था।

वरसातमे कवड्डी और जाडेमे दूसरे खेल गॉवके लडके भी खेला करते, लेकिन नानाके डरके मारे मै अपना खेल पहिले ही खतम कर आता। खाते-पीते घरका लडका प्रकट करनेके लिए एक दिन नानाने मेरे हाथो-पैरोमे चॉदीके मोटे-मोटे कडे और कानोमे सोनेकी बालियॉ डलवा दी—जेवरके पीछे लडकोकी मौतकी बहुतसी कहानियॉ उन्हे भी मालूम थी, किन्तु रवाजको कौन तोडता ? एक दिन—शायद उस दिन नाना गॉवपर नही थे—हम दोनोने गॉवकी कबड्डीमे भाग लिया। सयोगसे हम दोनो दो पक्षमे बँट गये। कबड्डी पढ़ाते वक्त दलसिंगारने मुझे पकड़ना चाहा। उसी समय दलसिंगारके सामनेके एक दॉतसे मेरे हाथका कडा इतने ज़ोरसे लगा, कि दॉतका एक नोक टूटकर गिर गया। खैरियत यही हुई, कि उनका ओठ खुला रहनेसे वच गया। दलसिंगारको ज़रा भी गुस्सा नही आया। मै सहम गया। दलसिंगारका वह टूटा दॉत स्थायी चिह्नसा बन गया था।

पन्दहाकी ओरसे जानेवाले लडकोकी सख्या कुछ वढी भी, यद्यपि पन्दहा खाससे मै और दलसिंगार दो ही जाते थे। गाँवके दक्षिण तरफ पोखरियों और गडहियोका एक सघ था, जो वसई और दूसरे गॉवो तक फैला हुआ था।

पन्दहाकी चार गडहियाँ इस सघकी सदस्या थीं, जिनमे महामाईकी पोखरी गाँव-वालोके नहानेका भी काम देती थी। बसई इसी पोखरी-सघके पश्चिम तटपर बसा हुआ मुसलमानोका गाँव था। वहाँके कब्रिस्तानकी कितनी ही पक्की कब्रे, बतला रही थीं, कि किसी वक्त वहाँके सैयद-परिवारोके दिन अच्छे थे, मेरा उस समय बसईसे किसी इतिहास-गवेषकका सा सम्बन्ध न था। बसईमे सैयदोके चार और कोइरीका लडका हीरा हमारे मद्रसेके साथी थे, हीरा तो मेरे दर्जेमे पढता था, सैयद और कोइरीके अतिरिक्त बसईमे मुसलमान दर्जी, धुनिया और जुलाहोके और बहुतसे घर थे। आसपासके कई गाँवोमे बसईका ताजिया मशहूर था। ताजिया देखनेके अलावा भी हम कितनी ही बार वहाँ पहुँच जाते, बसईके पुराने खडहरोपर उगे शरीफेके फल खाते। हमारे साथी सैयद-ज़ादोमे दो मुझसे अधिक उम्रके थे, और दो बराबरके, उनमे दो अनवरहुसेनके लडके और दो चचे-भतीजे उनके पडोसीके घरके थे। इन सैयदोकी जमीन प्राय सभी बिक-बिका चुकी थी, आश्चर्य होता था, कि इतनेपर भी वे साफ कुर्ता-पाजामा पहनते कहाँसे थे ? अनवर मियाँ तो घरपर ही रहते थे, किन्तु उनके पडोसीके घरका एक आदमी सिंहापुर-पिलाङ—हाँ पिलाङ (पिनाङ) ही लोग उच्चारण करते थे—मे कोई नौकरी करता था। सैयदोके खडे घरोसे खडहरोकी सख्या अधिक थी और उनकी ईंटोकी जुडाई, दर्वाजो तथा खिड-कियोसे रहनेवालोके अच्छे दिनोका पता लगता था। दूसरी जातिके मुसलमान तो सदासे बसईके बाशिन्दे हो सकते थे, किन्तु सैयद बाहरसे आये थे, इसमे तो सन्देह ही नही—ये सैयद शिया थे। मुसलमानी जमानेमे, विशेषकर जौनपुरकी शर्की बादशा-हतके समय उनके पूर्वज बसईमे आकर बस गये हो तो कोई तअज्जुब नही। उनके घरोमे कडा पर्दा था, किन्तु हम छोटे-छोटे बच्चे बिना रोक-टोक अपने साथियोके साथ उनके घरके भीतर चले जाते थे।

मेरे नानाकी आसपासके कुछ और शिया सैयदोसे घनिष्टता थी। अनवर मियाँके बारेमे तो नही कहता किन्तु दूसरे जब हमारे घर आते तो वे अपने ही हाथसे पानी निकालकर पीते थे। हिन्दूके हाथकी—चाहे वह ब्राह्मण ही क्यो न हो—छुई कोई चीज वे खाते-पीते न थे। गाँववाले इस कट्टरताकी बडी प्रशंसा करते थे। मिर्जा सलीम वकीलके कारिन्दे एक बार मेरे लिए मखमलकी फूलदार टोपी लाये थे। बचपनका सस्कार बहुत स्थायी होता है, शायद यह उस समयके कुछ शिया व्यक्तियोका सम्पर्क ही था, जिसने मेरे दिलमे शिया-समाजके लिए एक खास स्थायी

स्नेह और सन्मानका भाव पैदा कर दिया।

× × ×

नानाके यहाँके लाड़-प्यारने खानेके बारेमे भी मेरी विशेष रुचि पैदा कर दी। दालसे मुझे नफरत थी, क्योंकि बचपन हीसे दूध-दही, खाँड़-शीरा या मछली-तरकारी से रोटी खानेका मै आदी था। शायद होश सँभालनेसे पहिले मैने अपनी इस रुचिको लोगोसे मनवा लिया था, इसलिए दाल खिलानेका कोई आग्रह न करता था। पन्दहामे धानके खेत न थे, हाँ 'साठी' धान होता था, किन्तु मुझे भातसे बहुत चिढ़ थी। मेरे जन्मसे पहिले ही नाना-नानी वैष्णव-दीक्षा, और तुलसीकी कठी ले चुके थे, साथ ही गया-ठाकुरद्वारा भी हो आये थे। अब मछली-मांससे उन्हे कोई वास्ता न था; किन्तु मेरे लिए मछली-मासका इन्तिजाम करनेमे उन्हे कोई संकोच न था। मेरा दुबला-पतला शरीर नानाको और भी इसके लिए मजबूर करता था। गाँवमे मास तो छठे-छमासे ही मिलता जब कि गाँवके कुछ शौक़ीन लोग बकरा खरीद बाँटी डालते; किन्तु मछलीका मौका अक्सर मिलता था। सिंही, गरई जैसी मछलियाँ जब जीती मिलती, तो दो-दो चार-चार सेर लेकर बैलकी सानीवाली नाँदमे पाल ली जाती। नाँदमें पानी और मिट्टीके सिवा और कोई चीज़ डालते मैने नही देखा। मैं तो समझता था, मछलियाँ मिट्टी खाती है और पानी पीती है—बस उनको और कुछ नही चाहिए। बहुत छुटपनमे कैसे बनती, यह तो मुझे याद नही, किन्तु होश सँभालनेपर मैं ही आँगन या गोसारमे मछली पकाता। नानी मसाला पीसकर दे देती, और पकानेका तरीका बतलाती। आमका मौसिम होनेपर उसे मछलीमे ज़रूर डाला जाता—आकाशके आम और पातालकी मछलीके समागमको एक पुण्यकी चीज़ समझा जाता था। जितने दिन जखीरा तैयार रहता, मै दूध-तरकारीकी बात भूल जाता। आमतौरसे सबेरे दही-रोटी, दोपहरको दूध-रोटी शामको दूध या तरकारीके साथ रोटी खानेको मिलती। दहीके साथ खाँड या चीनीसे अन्तिम बारका निकाला शीरा ('ठोपारी') ज़रूरी था। 'ठोपारी' शीरा मुझे बहुत पसन्द था। गुडको दोबारा तावपर चढानेके कारण उसमे एक प्रकारका सोधापन होता, और साथ ही नियरकर कुछ चीनीका अंश भी उसमे मौजूद रहता। नानाने किसी कारखानेवालेको सौ-दो सौ रुपये कर्जदे रखे थे, और शीरा उसीके सूदमे आया करता था।

पहिननेकी मेरी अवश्यकताये बहुत मुख्तसर थी। मामूली दो पतली धोतियाँ एक अँगोछा—जो पहिले-पहिल लाल-('किरौंजी') मिट्टीमे रँगे मिलते थे। और

दिनोमे सूती कुर्ता, किन्तु जाड़ोमे ऊनी या अध-ऊनी कपडेका वटनदार अँगरखा होता। टोपी भुला देनेमे मै वहुत उस्ताद था। कितनी ही वार तो गर्दनपर कुर्तेसे उसे टाँक दिया जाता था। नगे शिर मद्रसा जाना कायदेके खिलाफ था, नही तो टोपी गुम होनेसे जितने अधिक मै और घरवाले परेशान थे, उससे नगा शिर रहना ही पसन्द आता। एक बार नानाने किसी रेशमी कपडेकी दुपलिया टोपी मेरे लिए सिलवाई। दो-चार दिन मै उसे ठीक नही रख सका। शामको मद्रसेसे घर चलते वक्त देखा—टोपी नदारद। नाना डाँटेंगे, इस डरके मारे पन्दहा जानेका नाम कौन ले। इधर-उधर करते अँधेरा हो आया। मद्रसेके पास नानाका परिचित एक वढई था, जो वैलगाडीके पहिये और दूसरा सामान वनाकर वेचा करता था। कोई वहाना करके मैने रातको वही रहना चाहा। जाडेका दिन, और मेरे पास वदनके कपडेके सिवा कोई कपडा न था। बढई भी गरीब था। उसने एक बोरा दिया। शिर बाहर रख मै उसीमे घुसकर लेट रहा। दो घटा जाते-जाते ढूँढनेमे परेशान नाना वहाँ पहुँचे। पूछनेपर वढईने कहा—वही तो सो रहा है। बोरेमे पडे मुझे देखकर नानाका गुस्सा न जाने कहाँ रफू-चक्कर हो गया। उनके दिलकी क्या अवस्था थी, इसे तो मै नही कह सकता, किन्तु जरासा ठहरकर वडे मीठे स्वरमे उन्होने कहा—टोपी भूल गई, तो डरनेकी क्या वात, चलो, तेरी नानी तेरे खानेके इन्तिजारमे रो रही हैं।

हम घर पहुँचे, शायद उसी वक्त कुर्तेमे टोपीके टाँक देनेकी तजवीज़ पास हुई और कुछ दिन तक उसपर अमल भी किया गया।

गाँवके और लडकोकी भाँति मेरे लिए भी जूता अनावश्यक समझा जाता था। पहिले-पहिल यागेशके व्याह (१९०४ या ५) मे मेरे लिए जूता खरीदा गया था। जूता मेरे पैरके लिए वहुत छोटा था, किन्तु मोचीने लकडीके टुकडे ठोक-ठाँककर उसे वडा किया। उसके पास और कोई जूता न था, इसलिए नाना उसीको लेनेपर मजबूर थे। वारातके वीच हीमें एक जूता कही गुम हो गया या कुत्ता ले गया, और दूसरेको फेककर मुझे मुफ़्तमे कई दिनो तक कटे पैरोकी हिफाजत करनी पडी। वरसातके दिनोमे वद्धीदार खड़ाऊँ गाँवोके लिए जरूरी चीज थी। वह कीचड हीसे नही वल्कि पशुओके गोवर और पेशावसे मिश्रित सडे कीचडमे अधिक रहनेपर पैरकी अँगुलियोमे हो जानेवाले घावसे भी वचाता था।

वरसातमे भी मद्रसा तो जाना ही पडता था। किताव शायद स्कूलमे छोड आते थे, क्योकि मेरे पास कपडेका छाता कभी नही रहा। वाँसके छत्ते काफी मजवूत

ग्रौर सस्ते मिलते थे, लेकिन वहुत कम ही मै उन्हे इस्तेमाल करता था। कितनी ही वार रानीकीसरायसे भीगते ही मुझे घर ग्राना पडता, किन्तु लडकपनमे पानी-बूँदीमे भीगना कोई तकलीफकी चीज़ न थी। हाँ विजलीकी गडगडाहट ग्रौर चमकसे दिल जरूर दहल जाता था। ऐसे समय घरपर रहनेपर तो नानी 'हे भगवान्, तुम्हारी शरण' कहती, किन्तु रास्तेमे शायद मै तो सहम ही कर रह जाता। टौस नदी पन्दहासे दो मील उत्तर तरफ है, किन्तु बाढ ग्रानेपर उसका पानी गाँवके सीवाने तक चला ग्राता था। उस वक्त गाँवके नर-नारी घर-ग्राई 'गगा' समझकर नहाने जाते। मेरी धारणा थी, शायद गगाका पानी बाढमे यहाँ चला ग्राता है, मै यह सोचनेकी तकलीफ गवारा करनेको तैयार न था, कि यह पानी तो ग्रव यहाँसे नीचे जाकर गगामे मिलेगा।

× × ×

१९०१के जाडोमे मै ग्राठ वर्षका हो रहा था। मौलवी इस्माईलकी 'ग्रलिफ'मे पढाई जानेवाली किताव 'पाना-जाना-खाना'(ग्रारभ)से लेकर ग्रन्त तक मुझे याद थी। दर-ग्रसल पढाये जानेवाले विषय तो मेरे लिए तीन-चार महीनेके काम थे, वाकी तो दिन-कट्टी कराई जाती थी। कितना समयका ग्रपव्यय था, लेकिन उस वक़्त इसका ख्याल थोडे ही ग्राता था। इसे तो हम सनातन नियम समझते थे। उसी साल जाडोमे पन्दहामे पैमाइशके ग्रमीन ग्राये। हमारे ही दर्वाजेपर उन्होने डेरा डाला। मुझे कहानी सुननेका वडा शौक था। नानीकी कहानियाँ तो न जाने कवकी खतम हो चुकी थी। एक वार सुनी कहानीको दूसरी वार मै पसन्द न करता था। सतमी ग्रौर उसकी लडकी सुखियाने भी ग्रपनी कहानियोके कोशको खाली कर डाला था। जव कोई नया व्यक्ति—खासकर स्त्री—रातको हमारे घर ठहरने ग्राती, तो मुझे सवसे ज्यादा खुशी होती, मै उससे जरूर एकाध कहानी सुनता। मुश्किल यह थी, जहाँ ग्रौर लडके कहानी सुनते-सुनते सो जाते, वहाँ मेरे लिए वह नीद हराम कर देती। ग्रमीन लोगोकी—हाँ, वह एकसे ग्रधिक थे—पैमाइशसे न मुझे वास्ता था, ग्रौर न नानाकी भाँति मुझे इसकी फिक्र थी, कि पैमाइशके कागजोमे कुछ ग्रपने ग्रनुकूल वाते दर्ज करा ली जावे। नानाने ग्रपने नामके साथ मेरा नाम कागजपर लिखवा लिया था, जिसके लिए उनके पट्टीदारोने उज्र किया ग्रौर डिप्टी वन्दोवस्त—जो मेरे ही नामराशि कोई पडित केदारनाथ थे—ने मेरी पीठ ठोकते हुए नानासे कहा—नाम दर्ज कराकर क्या करोगे, खूव पढाग्रो वच्चेको। मुझे ख्याल ग्राता था, क्या मै भी डिप्टी होकर इन्हीकी तरह कुर्सीपर वैठ मुकदमेका

फैसला कर सकूँगा। हाँ, तो अमीन लोगोसे मेरा रब्त-जब्त बहुत बढ गया, क्योकि वे मुझे कहानियाँ सुनाया करते थे, जो ज्यादातर किताबोकी हुआ करती। इन्ही कहानियोमे काठके उडन्तू घोडेकी भी एक कहानी थी।

दिसम्बरमे सालाना इम्तिहान हो जानेपर एक या दो सप्ताहकी छुट्टी होती, और मै कनैला चला जाता। पन्दहामे जितना ही मै पिंजड़ेमे बन्द रहता, कनैलामे मै उतना ही आजाद। सबेरेसे पहर भर रात तक मै खेलमे मशगूल रहता, घर सिर्फ़ खानेके लिए आता, और कभी-कभी किसी 'आजी' (आर्या-पितामही)के यहाँ ही वह हो जाता। सालमे एक बार आनेके कारण अपने नजदीकके आठ घरोके लिए मै बहुत प्यारा लडका था। शायद झगडे-झटेका स्वभाव न होना भी उसमे सहायक था। यही वक्त था जब कि कनैलाके धान कटते थे—कनैलामे धान और रब्बीके खेत बराबर-बराबर थे। लम्बा-चौडा ऊसर 'हापड' (दीहाती हाकी) खेलनेका सुन्दर क्षेत्र था और अज्ञातकालसे सैकडो पीढियाँ जैसे वहाँ इन दिनो हापड़ खेलती, वैसे ही अब भी लोग खेला करते। लडके तो खेलते ही थे, किन्तु खिचडी (मकर सक्रान्ति)के आसपास तो जवान और प्रौढ भी हापड खेलते थे। मै हापड, गिल्ली-डडा सबमे शामिल रहता, किन्तु जिस वर्गके मत्थे मै पडता, उसे घाटे हीमे रहना पडता। पन्दहाका सालभरका अकुश दौड-धूपके अयोग्य किये रहता, फिर यहाँ कौन-सा पौरुष दिखलाता। बिरजू अब नही थे, किन्तु दूसरे चचा कृष्णा—जिन्हे मै 'किन्ना' कहकर पुकारता था—खेलके साथी थे। हम दोनोकी आयु बराबर थी। उनकी तीर-कमान् देख मै भी तीर-कमान बनाता, गोदके साथ काँटेको तीरपर चिपकाता, और दोनो चलते चिडियोका "शिकार" करते। किसी चिडियाका शिकार किन्नाने भी कभी किया—यह मुझे याद नही, शायद वे तीर-कमान शिकारके लिए थे भी नही; किन्तु मेरा तो एक निशाना भी कभी नही लगता था। गाँवके पोखरे या पोखरी—जिनकी सख्या काफी थी—मे हम दोनो कभी-कभी मछली मारने जाते। वहाँ भी, जहाँ किन्ना जिधर हाथ डालते उधरसे ही गरई या टेंगना, अमोय या सिही निकाल लेते, वहाँ मेरे हाथमे सिधरी (पोठिया) या झिंगा भी नही आता। हाँ, सिंही या टेंगनोसे हाथ कटानेका मौका मुझे कितनी ही बार मिला। मछली कोई मारे, किन्तु जब पत्तीकी आगमे उसे भुना जाता, तो हम दोनो मिलकर खाते।

कनैलामे मास मिलनेका अक्सर मौका मिलता। वहाँ मुसल्मान चूडीवालोके कितने ही घर थे, वे रेह, सज्जी और मसालेसे खुद चूड़ी बनाया करते थे, और अभी दीहातमे काँचकी फ़ैन्सी चूड़ियाँ न चली थी, इसलिए उनकी बहुत माँग थी।

सभी मजदूर-पेशा जातियोकी भाँति हमारे चूडीहार 'खाये-खर्चे' को ही स्वारथ समझते थे। हर महीने ही उनके यहाँ एकाध बकरा काटा जाता, और मै भी उसीमेंसे लाता। वह लोग हमारे घरसे कर्ज़ लेते थे, इसलिए भी मुझपर विशेष ख्याल रखते थे। घरमे अधिकतर भक्त लोग थे, इसलिए बाहरकी गोसारमे मुझे ही पकाना पडता।

उर्दूवालोको पट्टीपर स्याहीसे लिखना पडता, किन्तु हिन्दीवाले अपनी पट्टीको कजली पोतकर सुखाते, फिर शीशेसे रगडकर चमचम करके उसपर खडियाकी सफेद स्याहीसे लिखते। कनैलासे मै कितने ही मोटे चुल्ले या वर्तनी बनवाकर लाता, और अपने हिन्दीवाले साथियोको सौगातके तौरपर पेश करता। चूडीहार, जिनमे अधिकाश नातेमे मेरे चचा या दादा ही लगते थे (इस नातेको गाँवोमे बडी कड़ाईके साथ माना जाता था) मेरी फर्माइशको अस्वीकार नही करते थे।

किन्ना और दूसरे साथियोके साथ मै कभी-कभी कौडी खेलने भी जाता, किन्तु उसमें भी मेरे लिए सदा हार ही रहती।

कनैलाकी यह आजादी पन्दहाके जीवनके सामने मेरे लिए बहुत आकर्षक थी। मै सालभर इम्तिहानकी छुट्टियोकी बाट जोहता रहता। पन्दहामें गर्मियोमे नाना पुरानी बखरीके अँधेरे घरमें—जहाँ मक्खी और गर्मी कम थी—सो जाते, उस वक्त नानीसे कोई बहाना कर मै बाहर निकल जाता। बागमें धूप और लूकी ज़रा भी पर्वाह न करते कितने ही खिलाडी डटे होते। अधिकतर चिब्भी-डाँडी, चीका या ओल्हापातीका खेल होता। ओल्हापाती मेरे बशसे बाहरकी बात थी, क्योकि मै दरख्तपर चढना न जानता था। हाँ, चिब्भी-डाँडी या चीकामें मै शामिल हो जाता। दो-दोकी पार्टी होनेपर तो कोई बात नही, किन्तु जब पाँच-पाँच, छै-छै चिब्भियाँ पाँतीसे खडी की जाती, तो अपनी जोडी तक निशानेको परिमित रखना मेरे बशकी बात न थी, और फिर दूसरे जोडेकी चिब्भीमें लग जानेपर, सभी जीते दाव जल जाते थे। मुझे यह भी ख्याल रखना पडता था, कि नानाके उठनेसे पहिले घर पहुँच जाना है। नानाको गरम लूकी बहुत चिन्ता थी, और नानीको लूसे भी अधिक भय था, दोपहरको छोटे-बडे बवडरकी शकलमें घूमनेवाले भूतो और चुडैलोका। उनको यही सन्तोप था, कि उस वक्त बागमें और भी बहुतसे लडके खेलते रहते है।

× × ×

दर्जा १मे (१९०२ ई०) पहुँचते-पहुँचते बा० द्वारिकाप्रसादसिंह बदल गये, और उनके स्थानपर बा० पत्तरसिंह रानीकीसरायमें अध्यापक होकर आये। नये

अध्यापककी उम्र ५०के आसपास थी। उनके दो भागमे बॉटकर सँवारे हुए शिरके (पटेके) कितने ही बाल सफेद हो चुके थे, मूँछे सीधी ऊपरकी ओर सँवारी होती। उनके एक पैरमें फ़ीलपाँव था, और शायद इसीलिए धोतीका एक फाँड जहाँ पैरके पजो तक पहुँचता, वहाँ दूसरा घुटनो हीपर रुक जाता। जहाँ बाबू द्वारिकासिंहको पूजा-पाठ करते हमने नही देखा था—'राजपूत' (?) पत्र वह ज़रूर मँगाया करते थे—, वहाँ बा० पत्तरसिंह खूब पूजा करते थे। आते ही उन्होने चहारदीवारीके किनारे फाटकके पास तुलसीका चौरा बाँध दिया। गेदा, बेला और दूसरे फूलोके लगानेकी ओर भी उनका काफी ध्यान था। तुलसीचौराके पास ही चौलाई और करैलीकी क्यारियाँ बनी थी। लेकिन हमारे लिए जो खास बात जाननेकी थी, वह था उनका गुस्सा, निर्दयतापूर्वक लडकोको पीटना; और इसीलिए उनकी पूजा-पाठ हमारी नजरोमे कोई वकअत न रखती थी। मै सबसे तेज़ होनेके कारण स्कूलमे सबसे कम मार खानेकी सम्भावना रखनेवाला लडका था, किन्तु बा० पत्तरसिंहके आये दो सप्ताह भी न हुए थे, कि एक दिन तडके जब मै अपना सबक सुना रहा था, उस समय न जाने क्या गलती हुई, कि उन्होने चारपाईके नीचेसे खड़ाऊँ उठाकर मारा, वह मेरे पैरमे घुटनेसे नीचे हड्डीमे आकर लगा और खून बह निकला। जब तेज लड़केकी यह बात थी, तो मन्द और साधारण लड़कोकी बात ही क्या? लडके डरके मारे उनसे काँपते थे। हम धीरे-धीरे उनकी मुद्राओसे परिचित हो गये थे। वे अक्सर कुर्सीकी जगह चारपाईपर बैठकर पढाते थे, और पढाते-पढाते सो जाते थे। सोनेके बाद उनके पटेके ज़ुल्फ अस्तव्यस्त हो जाते, और हम जानते थे कि इसी वक़्त उनके गुस्सेका पारा सबसे ऊपर चढ़ा होता है। उसकी दवा भी हमें मालूम हो गई थी। देखते ही बिना एक दूसरेकी प्रतीक्षा किये खुद-बखुद—(क्योकि जब उनका हाथ छूटता तो वहाँ कसूर-बेकसूरका सवाल नही होता) दो लड़के दौड जाते, एक नारियलमे नया पानी बदलता और दूसरा बोरसीके अगारसे चिलम् तैयार करके लाता। बा० पत्तरसिंह मुस्कुराते हुये पटेके बालोको एक हाथसे पीछेकी ओर सँवारते दूसरे हाथमे नारियलका हुक्का थामते।

कहावते उन्हें सैकड़ो याद थी, और बिल्कुल मौकेकी। हाथसे जहाँ छडी बरसती, वहाँ उनके मुँहसे कहावतोकी झड़ लग जाती। हमारे दर्जेके एक लड़के दूधनाथराय पढने-लिखनेमे बहुत कमज़ोर थे और इसीलिए मद्रसा आनेमे उनको बहुत उज्र था। बेचारोको पिटनेकी आदत थी, और उसके लिए उनके शरीरपर काफी मांस भी था। एक दिन कई दिनकी गैरहाजिरीके बाद पकडकर मद्रसा पहुँचा

घरवाले लौट गये। दूबनायकके कानमें सोनेकी बड़ी-बड़ी नई बालियाँ पड़ी थीं। बा० पत्तरसिंह एक ओर बाँसकी हरी छड़ियोंको उनके बदनपर तोड़ते जाते थे, दूसरी ओर कहते जाते थे—'एक तो रहा बानर लोना। दूसरे पड़ा कानमें सोना।' मैं तो समझता था, अभी तुरन्त दूबनायकके लिए ही उन्होंने यह कहावत गढ़ी। उनकी कितनी ही कहावतें हँसानेवाली थीं, किन्तु मार खाते वक्त कही जानेवाली कहानियों-पर हँसनेको किसकी शामत आती? हँसने देखा नहीं कि बोल उठे—'हँसते हो, यहाँ आओ तो. . . .क्या यहाँ रंडी नाच रही है, अच्छा हँसो।' और फिर छड़ी बरसने लगती।

जब प्रसन्नचित्त होते, तो चारपाईपर लेट जाते। लड़के उनका बदन दबाते—ब्राह्मण लड़कोंसे पैर नहीं छुआया जाता था। और फिर कहानियाँ शुरू होतीं। जब वह चँदवकके पास ज़िलेके दक्षिण छोरपर किसी स्कूलमें पढ़ाते थे, तो हर रविवारको गंगास्नान करने जाते। एक दिनकी बात कह रहे थे—'स्नान करके लौट रहा था', अँधेरा हो चला था, मैं पैर बढ़ाये पक्की सड़कसे जा रहा था। नजर जो ज़रा फिरी तो देखा सड़कसे नीचे-नीचे कोई चुपचाप चल रहा है। मीलभर चला गया और अब भी वह व्यक्ति साथ ही चल रहा था। मैंने पूछा, तो जवाब मिला—'आँओ, ईंधरसें न चँलो।' नाकसे निकलती आवाज़ सुनकर मेरा तो मत्था ठनका। मैं सड़कसे नीचे क्यों उतरने लगा? जानते हो, पक्की सड़क सर्कार बहादुरकी सड़क है। सर्कारका अक़बाल है, उसपर आकर किसी भूत-प्रेतको बात करनेकी हिम्मत नहीं हो सकती। वह बराबर नीचे बुलाता रहा, किन्तु मैं सड़कके बीचमें चलता रहा। मील आध मील और पीछा करके वह यह कहता हुआ चला गया—'अँच्छा, जाँ, बँचके निँकल गँया।'"

बा० पत्तरसिंहकी बात याद कर मेरे दिलमें होता था, काश! हमारी पन्दहा-वाली सड़क कच्ची न हो पक्की होती, फिर तो 'ठूँठे पीपलके बाबा'को अँगूठा दिखलाना आसान होता।

× × ×

आषाढ़ (जून या जुलाई १९०२ ई०)का महीना था। अभी वर्षा शुरू न हुई थी। आज मदरसामें दिनभर टाटकी सफ़ाई, गोबरसे शालाकी लिपाई तथा हातेमें गेंदेकी पौदोंके रोपनेका काम हो रहा था। दलसिंगार भी काम कर रहे थे। दोपहरको दलसिंगार काम छोड़ बैठे, कह रहे थे बदनमें दर्द है। दोपहर बाद उन्हें एक-दो क़ै हुई। आज समयसे पहिले ही छुट्टी हो गई, क्योंकि पढ़ाई बन्द करके

सभी लडके सफाईमे लगाये गये थे। मैने देखा दलसिंगारकी आँखे लाल थी। उनका शरीर गरम था, कह रहे थे—बदन फट रहा है। हम दोनो घरकी ओर रवाना हुए। किसी तरह रानीसागरके भिडेको पार हुए। अब दलसिंगारको एक कदम भी चलना मुश्किल था। लाचार मैंने उन्हे अपनी पीठपर चढाया, और घोडैयाँ ले चला। मै भी शरीरसे कमजोर था, और ऊपरसे मेहनत करने और बोझ ढोनेकी आदत न थी, एक बार दस-पन्द्रह कदमसे ज्यादा चलना मेरे बसकी बात न थी। बैठ जानेपर दलसिंगार पैरदर्दसे रोते। मै पैर दबाता, और रोता। रातके डरके मारे फिर हिम्मत करके उठाता, और फिर वही पुनरावृत्ति। शाम तक न जाने कितने सौ बारकी उठक-बैठकमे हम पन्दहा पहुँचे।

सबेरे नानी कह रही थी—'हम लोग तो आग मे है ही, बच्चेको कनैला भेज देना चाहिए। हैजा जोर पकड रहा है।'

नानाने भी स्वीकृति दे दी। और आदमीके साथ मुझे कनैला भेज दिया गया।

## ५

# रानीकीसरायकी पढ़ाई (१)

कनैलाके हैजेमे हमारे घरका कोई नही मरा था, यह कह आये है। बीमारीके वक़्त शायद 'आजी'ने शतचडी (सौ बार चडी)का पाठ माना था। आजकल वही पाठ चल रहा था। पाठ बाँचनेवाले थे हमारे फूफा पडित महादेव पाडे और उनके मौसेरे भाई महावीर तिवारी। महावीर तिवारी एक-एक अक्षर टटोल-टटोलकर पढ रहे थे, किन्तु फूफा फरफर पढते जाते थे। उनके पास नसदानी रखी हुई थी, बीच-बीचमे वे नस लेते जा रहे थे। शामको नससे भरी रूमाल साफ की जाती थी। सबेरे पाठ समाप्त कर गर्म दूधमे भिगोया घरके खुशबूदार धानका चूरा नाश्तेके लिए तैयार रहता। शायद उसके बाद फिर पाठ चलता। पाठ सस्कृतमे होता,—चडीपाठका भाषामे अर्थ नही किया जाता। दोपहरको भोजन, फिर विश्राम। शामको ३-४ बजे फूफा साहेब घरमे बुलाये जाते। फर्शपर एक ओर वह बैठते, और सामने बैठती मेरी माँ, शायद चाची भी (उन्हे मै काकी कहा करता), मेरी कोई बुआ, कुटुम्बकी भी शायद दो-तीन चाची-बुआ। दामादके स्वागतमे

ऐसी गोष्ठी रचनेकी प्रथा है, इससे उसका मनोरंजन होता है। वार्तालापका विषय घरबारका हाल-चाल और कुछ हँसी-मजाक। फूफासे मै बहुत जल्द हिल-मिल गया और एकाध वार उनकी इस गोष्ठीमे मै भी शामिल हुआ। सावनका पानी बरस चुका था, और कनैलाके ताल-तलैयो, तथा डबरो (पल्वलो)मे पानी भरकर बह गया था। शामको फूफा साहेब दूर पूरब तरफ चले जाते, और वही शौच-स्नान करके लौटते।

फूफा महादेव पडितके वारेमे मैने कितनी ही बाते सुनी थी। वह बहुत भारी पडित है—इतने भारी, जितने कि आसपास दस-बीस कोसमे कोई नही। बहुत विद्या पढ जानेके कारण ही वह एक बार सालभर पागल रहे। उस वक्त तो मुझे विश्वास होता था, जैसे बहुत खानेसे भोजनका अजीर्ण होता है, उसी तरह बहुत पढ जानेसे विद्याका अजीर्ण होता है, किन्तु यह सस्कृत पढनेवालोको ही। शतचडी पाठ समाप्त होनेमे शायद एक मास लगा। उसके बाद जब फूफा अपने गाँव बछवल जाने लगे, तो मुझे भी लेते गये। शायद घरवालोसे उन्होने सस्कृत पढानेकी स्वीकृति भी लेली थी। कनैलासे बछवल ३ मीलसे अधिक दूर नही है। मै फूफाके साथ उनकी घोडीपर चढा। रास्तेमे मँगई नदीमे काफी पानी था। मुझे कन्धेपर चढाकर पार किया गया।

बछवल मै पहिले-पहिल गया था। बुआको मैने अभी तक देखा न था, वह कई वर्षोसे कनैला आई ही न थी। वहाँ चार-पाँच स्त्रियाँ थी, जिनमे दो कपडे-जेवरमे विशेषता रखती थी। मै यह तो समझ गया कि इन्ही दोनोमे एक मेरी बुआ है, किन्तु अपनी बुआको जेठानी सुन यागेशकी माँको ही मैने अपनी बुआ समझा। बछ-वलमे मेरी आयुके काफी लडके-लडकियाँ थी, जिनमे समान आयुके होनेके कारण यागेशसे ज्यादा घनिष्ठता हो गई, और पीछेके सालोमें तो मेरी अपनी बुआके लडके नही वल्कि उनके चचेरे भाई यागेश मेरे घनिष्ठ मित्र और साथी बने।

५, ७ दिनोमे मेरा और लोगोका भी कौतूहल शान्त हो गया। फूफा महादेव पडित सस्कृत व्याकरणके प्रौढ विद्वान् थे। उन्होने महाभाष्यान्त व्याकरण पढा था, और पढे ग्रथ बहुत कठस्थ थे। उनके पास काफी खेत और अन्नधन था, अतएव उनके लिए अपनी विद्याका और कोई उपयोग आवश्यक न था। वे वही अपने द्वारपर विद्यार्थियोको सस्कृत पढाया करते। ज्यादातर विद्यार्थी सारस्वत, चन्द्रिका, मुहूर्तचिन्तामणिके होते थे, किन्तु कितने ही सिद्धान्तकौमुदी भी पढते थे। फूफा जी आसपासके गाँवोसे विद्यार्थियोको 'मुठिया' अन्न मिलनेका प्रबन्ध भी करा

देते थे, किन्तु जहाँ आधी चौथाई सिद्धान्तकौमुदी समाप्त हुई, कि विद्यार्थी बनारस दौड जाते। बनारसका नजदीक रहना महादेव पडितकी पाठशालाकी उन्नतिमे भारी बाधा थी।

सप्ताह बीतते-बीतते फूफाने मुझे भी सारस्वत पढाना शुरू कर दिया "नत्वा सरस्वती देवी" और आगेका पन्ना भी मैने कठस्थ कर डाला। स्मरणशक्ति मेरी बहुत तीव्र थी, फूफा चाहते थे कि मै सस्कृत पढूँ। मै सोचता हूँ—काश! मै फूफाके यहाँ पढनेको छोड दिया जाता। सस्कृत खूब पढ़ता। ग्रथ सारे कठस्थ होते, क्योकि अभी यह धारणा मुझे नही हुई थी, कि रटना बुरी चीज़ है। तो क्या सिर्फ सस्कृत पढनेके कारण मै विचारस्वातन्त्र्यसे वचित न हो जाता? नही कह सकता। बनारस तो जाता ही, शायद वहाँ किसी चौरस्तेपर पड जाता। बछवलमे खेल-कूदकी आज़ादी थी। फूफाके घरसे पूरब एक कुआँ था, जिसका पानी दो पुर नाधनेपर भी नही कम होता था। मेरे बाल-साथी बडी-गम्भीरतापूर्वक मुझे समझाते थे—'इस कूयेका जब खाँखर काटा गया, तो इतना पानी भीतरसे चला कि खोदनेवाले आदमियोको जब तक रस्सेसे खीचकर बाहर निकाला जाय, तब तक पानी बढकर कूयेंके मुँहपर पहुँच गया।' मै साँस रोककर बोल उठा—'कूयेंके मुँह तक!' साथियोने बतलाया—'फिर पूजा की गई। सोतेके मुँहको रजाई और चक्कीके पाटसे बन्द किया गया, तब जाकर पानी रुका।' मै समझता था, यदि यह सब इन्तिज़ाम न किया गया होता, तो पानी मुँहसे निकल खेतोको डुबाता, और फिर बाढ बनकर सारे गाँवका सत्यानाश कर देता।

महीना बीतते-बीतते पन्दहाका सन्देश कनैला होकर बछवल पहुँचा—नानी-का आदमी इन्तिजार कर रहा है, पन्दहा जाना है। नये मित्रोके बिछुडनेका अफ-सोस ज़रूर हो रहा था, किन्तु पन्दहामें भी नानीकी शीतल गोद और मधुर स्नेह प्रतीक्षा कर रहा था, वहाँ भी दलसिंगार जैसा बालसघाती मौजूद था।

पन्दहा पहुँचनेपर मालूम हुआ, पिछले हैज़ेमे गाँवके दस-बारह आदमी मरे। दलसिंगार बच गये। देवी एक स्त्रीके शिरपर आकर बोली—'मै तो रास्ते-रास्ते जा रही थी, यही दोनो लडके मुझे यहाँ लाये। खैर! इन्हे छोड दूँगी, किन्तु गाँवसे बिना कुछ लिए नही जाऊँगी'। शायद उसी बीमारीमें दलसिंगारके चचाने भग-वतीके मन्दिरकी स्थापनाकी मिन्नत मानी।

दलसिंगारसे मै मिल आया। वह अभी भी कमज़ोर था। दो-चार दिनो बाद मुझे मद्रसा जाना पडा, लेकिन इस जानेमे वह उत्साह न था, क्योकि दलसिंगारकी

माँने यह कहकर उससे पढना छुडवा दिया—'मेरे दो जेठ इसी घरमेंसे एक खाटपर उठ कर गये। उनकी पढी पोथियोका ढेर अब भी उस घरमे रखा है। जाने दो बच्चा, हमारे घर पढना नही सहता, तुम जीते रहो यही बहुत है।'

दलसिंगारको जबर्दस्ती रोका गया था। मै उसकी क्या सहायता कर सकता? बीच-बीचमे हम मिल लिया करते, लेकिन अब वह साथ पढने-खेलने और चलनेका आनन्द नही था।

मद्रसेके मेरे एक सहपाठी शोभितलाल थे। और उर्दू पढनेवाला दूसरा लडका हमारे दर्जेमे न था। दलसिंगारके स्कूल छोड़नेके बाद राजदेव पाठक और गाँवके पटवारीके पुत्र बसन्तलाल कुछ समय तक स्कूलके साथी मिले, किन्तु दोनो ही पढने मे कमजोर थे, ऊपरसे बाबू पत्तरसिंहकी छडीका ख्याल आते ही सबकी रूह काँपने लगती। एक बार राजदेवने अपने साथ मुझे भी हफ्ता भर गैरहाजिर रखा। पहिले दिन खेलनेमे देर करके राजदेवने—जो आयुमे मुझसे काफी बडे थे—कहा, अब जानेसे मुशीजी मारेगे। बात ठीक थी, हम नही गये। दूसरे दिन तो अब दुहरीमार निश्चित थी। इस प्रकार हम लोग रोज घरसे रानीकीसराय पढने जाते, और शामको ठीक समयपर घर लौट आते। नाना कई दिनके बाद रिश्तेदारीसे लौट रहे थे। उन्होने सोचा, बच्चेको साथ ही लेते चले। मद्रसेमे मुशीजीसे पूछा, तो मालूम हुआ, वह तो हफ्ते भरसे आता ही नही। घर आकर नानीसे पूछा, तो जवाब मिला—वह तो रोज नियमसे पढने जाता है। नाना पता लगाने निकले; उधर साथ खेलने-वाले लडकोसे मुझे भनक मिल गई। मै नानीकी गोदमे जाकर छिप गया। नाना बाँसकी हरी पतली छडी लिये पहुँचे। उनके चिल्लाने हीसे मेरी घिग्घी बँध गई, ऊपरसे उन्होने चार-पॉच छडी दीवारपर पटकी भी। दूसरे दिन बाबू पत्तरसिंहके दर्बारमे पहुँचाया गया। नानाके लौट आनेपर उनकी पाँच-सात छडियाँ ठीक शरीर-पर बरसी।

बादमे गॉवके पटवारीके लडके बसन्तलाल शायद साथी मिले। मत्र उनका भी वही था। पहिले दिन देरकी और फिर घरसे पढनेके लिए जाकर, रानी सागरसे थोडी दूरपर एक उजडे नीलके गोदामके हौजमे हम छिपे रहते। पता लगा, मार पडी। लेकिन अब ऐसे साथियोकी सलाहसे मै चौकन्ना रहने लगा।

अकेले स्कूल जानेके दिनोकी एक घटना है। कुत्तेसे मैं बहुत डरा करता था। हमारे सडकके रास्तेपर कुछ दूर हटकर एक चमारटोली थी। वहाँ एक जबर्दस्त कुत्ता था, जिससे मै बहुत भय खाता था। और दिन तो किसी और यात्रीके साथ

निकल जाता, एक दिन सयोगसे मै अकेला एक ओरसे आया, और दूसरी ओरसे वही कुत्ता। सड़कके मुडाव और ऊखके खेतोके कारण मैंने एक दूसरेको नही देखा। मुझे देखकर कुत्ता भूँका—इसका मुझे स्मरण नही। मै तो अपनेको साक्षात् यमराजके मुँहमे समझ रहा था, इसीलिए जीपर खेलकर कुत्तेपर हमला कर बैठा। वस्तुत. हमला करनेके लिए भी मेरे पास न डडा था न ढेला। मै उसके ऊपर चढ बैठा। शायद कुत्तेका मुँह मेरे हाथमे था। खैर, एक-दो पटखनी मैंने खुद खाई और उसे भी दी। मालूम होता है, कुत्ता मुझसे भी अधिक भयभीत हो गया था, और हाथ ढीला होते ही वह निकल भागा। कुत्तेके पछाडनेका मुझे अभिमान कहाँ होता, मेरा तो कलेजा अब भी धकधक कर रहा था। खैरियत हुई, कुत्तेने कही काटा नही।

× × ×

आज तक रानीकीसरायका स्कूल लोअर-प्राइमरी चला आया था। बाबू पत्तर-सिहके समय लडके बढे, जिसका सारा श्रेय लोग उन्हीको देते थे। वस्तुत. इस समय गाँवोमे शिक्षा बढने लगी थी। रानीकीसरायमे बालगोविन्द पडित एक सज्जन रहते थे। उनका मकान ठीक सडकपर पडता था। पहिलेसे लाग-डाँट होनेके कारण, उन्होने एक अपना अलग स्कूल खोल दिया, या स्कूल खोलनेके कारण बाबू पत्तरसिहसे उनकी लाग-डॉट बढी। बालमुकुन्द पडितके स्कूलमे २५, ३० लडके पढते थे, इससे मालूम होता है, शिक्षाकी ओर बढती रुचि ही विद्यार्थियोके बढनेमे कारण हुई। हमारा स्कूल डिस्ट्रिक्ट-बोर्डका था, और सर्कारका उसपर वरदहस्त था, जब कि बालमुकुन्दका स्कूल उनके बलबूतेपर चल रहा था। बालमुकुन्द पडित कुछ अग्रेजी भी जानते थे, इसलिए भी उनको विद्यार्थी मिलनेमे सुभीता हुई। शायद वह स्कूल बा० पत्तरसिहके मृत्यु तक जारी रहा।

खैर, बा० पत्तरसिहके आनेसे एक फ़ायदा तो हुआ, कि रानीसरायका मद्रसा अपर प्राइमरी हो गया। एक दूसरे अध्यापक मुशी अब्दुल्कदीर नायब मुदर्रिस बनकर आये।

## ६

# पहिली यात्रा

पढ़नेका काम मेरे लिए बिल्कुल मुश्किल न था। वस्तुतः ४ मासकी पढाईके लिए मेरे बारह मास यो ही बर्बाद किये जा रहे थे। नानाको गप-शपकी बहुत आदत

थी, यह कह ही आया हूँ। घरमे भी रहते वक्त विशेषकर फुर्सतके वक्त—और वह उनके पास काफी था, उन्हें देखना था, सिर्फ श्रोताको क्योकि उसके बिना बात की नही जा सकती—नानाकी पुरानी आप-बीतियाँ शुरू होती। जैसे निद्रित या मुर्छित अवस्थासे बातका ताँता शुरू हो, और आदमीको मालूम न हो कि बात कब शुरू हुई, उसी तरह मेरे भी होश सँभालनेसे पहिलेसे वह कथाये होती चली आ रही थी, और कबसे मैने नानाकी कथाये सुननी शुरू की, इसका मुझे पता नही। जाडेके दिनोमे रातके वक्त खाना खा लेनेके बाद आगके सामने ही बडी रात तक कथाये होती। सोनेके समय भी उनका समय था। दोनो ही वक्त या तो नानाकी बगलमें या उनकी गोदमे, मैं बैठा रहता। कहानियोके सुननेमे जितना रस आता, उससे कम नानाकी शिकार और यात्राकी बातोमे न था। भारतके भूगोलको पढ़नेका मुझे पीछे मौका मिला, किन्तु कामठी-अकोला-बुल्डाना-औरगाबाद-बम्बई-शिमला ही नही कोचीनबन्दर और कौन-कौन पचासो नाम मै सुन चुका था, सब मुझे याद थे। वस्तुत भूगोल पढनेमें नानाकी ये ही कथाये दिलचस्पी पैदा करनेका कारण हुईं। इन कथाओमे जहाँ व्यक्तियो, भिन्न-भिन्न प्रान्तो और उनकी भाषाओका जिक्र आता, वहाँ भूमिके प्राकृतिक स्वरूपका भी जिक्र होता। बाघके शिकारमे अर्दली होकर नाना बराबर अपने कर्नेलके साथ जाते थे। कैसे जगलो और पहाडोमे बाघ रहता है? कैसे स्वच्छन्द बाघ-परिवार किलोले करता है? बाघके शिकारमे कितना तरद्दुद और जोखिम उठाना पडता है? —इन बातोके जाननेका उनकी बातोमे काफी मसाला होता था।

नानाकी पल्टन हैदराबादकी जालना छावनीमे थी। नाना कई बार अजन्ता, एलौरा, और औरगाबादकी गुफाओका दूसरे नामोसे वर्णन करते। एलौरा और अजन्ताकी गुहामूर्तियोके बारेमे उनका कहना था—रामजी वनवासको जायेंगे यह ख्याल कर विश्वकर्माने पहाड काटकर ये महल बनाये, कि इनमे देवता लोग वास करेंगे, और रामजीको वनवासमे कष्ट न होगा, किन्तु महल बनाकर जब तक विश्वकर्मा ब्रह्माको खबर देने गये, तब तक राक्षसोने आकर उन महलोमें डेरा डाल दिया। लौटकर विश्वकर्माने देखा, उन्हे बहुत क्रोध आया; और शाप दिया—जाओ तुम सब पत्थर हो जाओ। नानाकी परम्पराके अनुसार अजन्ता-एलौराकी गुहा-मूर्तियाँ वही पथराये राक्षस हैं। वे बडी गम्भीरतासे भौहोको तानकर नानीसे कहते—'जो राक्षस जहाँ जैसे रहा, वह वैसा ही वही पत्थर हो गया। शराब पीनेवालेकी बोतल वैसी ही हाथ और मुँहमें लगी रही। नाचनेवाले वैसे ही नाचते रहे। सोने-बैठने-

वाले वैसे ही सोये-बैठे रहे। आज भी देखनेसे मालूम होता है, अभी उठकर बोल देंगे।' नानी प्रोत्साहन दे कहती—"क्या जाने शाप छूट जाये, तो वे फिर ज़िन्दा हो जावे।"

पन्दहामे एक और व्यक्ति थे, जिनकी बाते सुननेमे मुझे बड़ा मजा आता था, वह थे जैसिरी (जयश्री पाठक)। थे तो वह काने, और ऐसे आदमीको ज़रासी बातमे भी काना कहकर ताना मारना लोगोको आसान मालूम होता है, किन्तु जैसिरी[1]-के बारेमें वैसा कहते मैंने किसीको नही सुना। घुटने तककी साफ धोती, देहपर या शिरमे बँधा एक वैसा ही साफ अँगोछा, पैरमे वाधा-खडाऊँ, हाथमे बाँसका छाता या डंडा लिये उनकी पतली, किन्तु स्वस्थ सबल मूर्ति अब भी मेरे सामने है। जिस समयकी बात मैं कर रहा हूँ, उस वक़्त वह ४०से ऊपरके हो चुके थे; किन्तु बचपनसे अब तक वह बराबर चरवाही करते चले आये थे, और आगे भी करते रहे। इसीलिए मैंने जब भी उनको देखा, चरवाहे लडकोकी ही मडलीमे। कहानियाँ उन्हे बहुत याद थी, और वर्षोसे जिस तरहके श्रोताओको वह सुनाई जा रही थी, उससे मँजी-तुली और मनोरजक बन गई थी। नाना तो मुझे सदर-आला या डिप्टी-कलेक्टर बनाना चाहते थे, इसलिए घास छीलने या भैस चरानेका मौका क्यो देने लगे? तो भी किसी न किसी बहाने मुझे दो-चार बार जैसिरीकी मंडलीमें शामिल होनेका मौका ज़रूर मिला। चरवाहीसे छुट्टी रहनेपर जैसिरीको कभी-कभी रामायणका अर्थ करते भी मैंने सुना था। कुल्हाडमे आग तापते हुए भी उनकी बाते मैंने सुनी थी। उस समय इस असाधारण प्रतिभाके धनी किन्तु अवसरसे वचित व्यक्तिको, एक मनोरंजक आदमीके तौरपर जानता था, किन्तु अवसर मिलनेपर वह क्या बनता, इसका ख्याल कर अफसोस तो दुनिया देख लेनेपर होने लगा।

शायद १९०२ के ही अप्रेलमे मेरा जनेऊ हुआ। आमतौरसे हमारे परिवारमे धूमधामसे जनेऊ हुआ करता था। मडप बनाया जाता, कलशा सजाया जाता, आमके नये पीढ़े और पट्टी—लिखनेकी—तैयार की जाती; पडित आते; देर तक देवताओ-की पूजा और मन्त्रोच्चारण होता; लडकेको धोती-लँगोटी पहना, कन्धेपर मृगचर्म बाँध हाथमे पलाशका दड दे "काशी पढनेके लिए भेजा जाता", हाँ, और चन्द ही मिनटो बाद उसी मडपके एक कोनेसे यह कहकर लौटा लिया जाता—चलो लौट चलो, तुम्हारा ब्याह कर देंगे।

---

[1] देखो मेरी कहानी "जैसिरी" ("सतमीके बच्चे")

मुझे बहुत असन्तोष हुआ, जब सुना कि मेरा जनेऊ गाने-बजाने, धूम-धामके साथ घरपर नही बल्कि विन्ध्याचलमे होगा। माँने या किसीने दीर्घायु होनेके ख्यालसे वैसी मिन्नत मानी थी, इसलिए दूसरा करके विन्ध्याचलकी जागता देवीके कोपका भाजन कौन बनता ? लाचार, एक दिन मेरे चचा प्रताप पांडे—वह मेरे पितासे छोटे थे—मुझे पन्दहा लिवाने आये। अप्रेलका महीना था, गर्मी थोड़ी-थोड़ी शुरू हुई थी। पहिले हम लोग कनैला गये, वहाँसे १४ मील चलकर सादात स्टेशन। कह नही सकता, उस वक्त तक रानीकीसराय रेल पहुँच गई थी। सम्भवत: रेलके लिए ज़मीन नप गई थी। मैंने रेलकी सवारी अभी तक नही की थी। सादात हम दो ही तीन बजे दिनको पहुँच गये थे, और रेल सूर्यास्तके बाद आनेवाली थी। चाचाके पास एक गठरी, कम्बल, लोटा-डोरके अतिरिक्त हाथमे सेर-डेढ़सेर गायका घी मिट्टीके बर्तनमे था। गायके घी हीमे पूड़ी पकाकर विन्ध्याचलमे ब्रह्मभोज कराना था। शामको सादातके पोखरेपर—स्टेशनके पास ही—चचाने दाल-बाटी बनाई, शायद आलूका भर्ता भी था। भोजन हुआ। गाडी आनेपर सवार हुए। भीड थी या नही इसका मुझे स्मरण नही, यह भी याद नही कि रेलके 'चलते हुए घरो'मे बैठकर मुझे क्या-क्या ख्याल आ रहा था।

रात थी जब हम अलईपुर (बनारस-शहर) स्टेशनपर उतरे। शहरमे घुसनेसे पहिले चुंगीवालेने घेरा। और भी बहुतसे दीहाती मुसाफिर थे। कुछ देर इन्तिज़ार करनेके बाद हमारी बारी आई। मोटरी खोलकर देखी गई, शायद घीपर कुछ चुगी लगी। पिताके मामा ईसरगंगीपर एक छोटेसे वैरागी महन्थ थे, वही हम लोग ठहरे।

बनारससे विन्ध्याचल तककी सभी बाते क्रमश. याद नही है। ईसरगंगी मठमे आते-जाते दोनो बार हम ठहरे थे। अब तक रानीकीसराय ही मेरे लिए शहर था। वहाँके लड़कोको एक खूँट एडी, और दूसरा फांड घुटने तक रखकर धोती, नाखूनी किनारेकी बूटेदार टोपी पहिने देख, मै उन्हे नागरिकताका चरम नमूना समझता था। हम दीहातवाले जिसे 'धरना' कहते थे, उसे रानीकीसरायके हमारे साथी 'पकडना' कहते, और इसे हम पूर्ण नागरिक भाषाकी बानगी समझते थे। फिर अब छोटे-मोटे शहरोंसे न गुजरकर सीधा बनारस जैसे महान् नगरमे पहुँच जाना—मेरे लिए बड़े कौतूहलकी बात थी। मीलों चली गई उसकी सड़के, गलियाँ और उनके किनारेके आलीशान मकान—जिनकी ऊपरी छतको देखनेमे बाबू पत्तरसिंहके कथनानुसार शिरकी पगड़ी गिर जाती थी—मेरे लिए बिल्कुल दूसरी दुनियाकी चीजें

थी। सबेरे चचा मुझे ले पचगगाघाट नहाने गये। गगा जैसी बडी नदी पहिले-पहिल देखी, और फिर उसपरके पत्थरके घाट, जिनकी सीढियाँ उतरनेमे खतम ही नही मालूम होती थी। शायद हमारे साथ मठका कोई साधु भी था, क्योकि चचा जैसे अटट दीहातीके साथ घाटियोकी छीना-झपटीका मुझे स्मरण नही है। चचाने हाथ पकडे हुए मुझसे गगामे डुबकी लगवाई। विश्वनाथ और अन्नपूर्णाका दर्शन हुआ। फिर चौकके रास्ते जब लौट रहे थे, तो वहाँ मैने किसी बिसातीकी चद्दरपर शीशा, कघी, और क्या-क्या चीजोके साथ लिथोमे छपी कुछ उर्दूकी पुस्तके देखी। शायद चचा भी वहाँसे कुछ खरीद रहे थे। मैने देखा कि उन किताबोमे कुछ किस्से और कुछ उर्दू हरफमे छपे तुलसीकृत रामायणके भिन्न-भिन्न काड थे। चचाने दो या चार पैसेमे एक-दो किताब मेरे लिए खरीद दी, लेकिन मेरी इच्छा उतनेसे पूरी होनेवाली नही थी।

दूसरे दिन सबेरे, चचा मुँह धोने या किसीसे बात करनेमे लगे थे, मै चुपकेसे निकला। मठके दर्वाजेसे बाहर वह पत्थरका शेर था, जिसके लिए पिछले सालो हिन्दू-मुसल्मानोका झगडा होने लगा था, और अब वह कठघरेके अन्दर चबूतरेपर रखा है। उस वक्त उस शरको कोई नही पूछता था, रास्तेकी बगलमे आधा धरती-मे दबा और आधा ऊपर पडा हुआ था। वहाँसे होते सडकपर आया, और फिर सीधे चौक। रास्तेमे कई जगह मुड़ना था, किन्तु मालूम होता है, वह सारे मुँड़ाव मेरे दिमागपर नक्श थे। मैने न खिलौने लिये, न मिठाई, सीधे जा बिसातीसे दो-दो पैसेमे पाँच या सात किताबे खरीदी, और फिर लौट पडा। दो तिहाई रास्ता पार करके जब मै आ रहा था, तो चचा हैरान-परेशान मिले। लोग बहुत शकित हो उठे थे। बनारस जैसे 'राँड-साँड-सीढी-सन्यासीवाले' शहरमे एक दीहाती भट-कते लड़केके लिए और दूसरी आशा ही क्या हो सकती ? मार नही पड़ी सिर्फ डाँटे ही भर गये, चचाके लिये खोये लडकेका मिल जाना ही भारी प्रसन्नताकी बात थी।

एक तरह मेरी साहसपूर्ण यात्राओका क-ख यहाँसे शुरू हुआ।

राजघाटके पुल-पारका मुझे स्मरण नही। मुगलसरायमे गाड़ी बदलनेका कुछ ख्याल जरूर है। विन्ध्याचलमे स्टेशनसे उतरकर हम अपने पडेके पास गये। वस्तीके बारेमे मुझे इतना ही याद है, कि वहाँकी कितनी ही दीवारे मिट्टीकी जगह पत्थरकी ईंटोकी थी। विन्ध्याचलकी भगवती दिनमे तीन रूप धारण करती है—सबेरे बालिका, दोपहरको तरुणी, शामको वृद्धा। मालूम नही मुझे भगवतीके

किस रूपका दर्शन मिला। मन्दिरमे उत्कीर्ण अक्षरवाले कितने ही बडे-वडे घटे टँगे थे। पासके आँगनमे वलि दिये बकरोके खूनकी पॉकसी पड़ी हुई थी।

भगवतीके नावदानमें नया जनेऊ डुबोया गया, और मेरे गलेमें डाल दिया गया। वस जनेऊकी विधि समाप्त।

लौटकर हम बनारसमें फिर इसरगगीमठमे ठहरे। मठमे एक गुफा है। लोग वतला रहे थे, यह पतालपुरी गुफा है, इस रास्ते आदमी पतालपुरी पहुँच जाता है; किन्तु आजकल सर्कारने भीतरसे रास्तेको बन्द कर दिया है, सिर्फ बाहर से दर्शन होता है। वाहरसे दर्शन मैंने भी किया। मठकी एक कोठरीमे १४-१५ वर्षकी उम्रका एक सस्कृतका विद्यार्थी रहता था। उसने वहाँकी बातोका परिचय देनेमे मेरी बडी सहायता की। मठमे तो पानीका नलका नही था, किन्तु सडकपर शेरके मुँहवाले नलकोको मैंने देखा था। मेरा साथी बतला रहा था, है तो गगाजल ही, किन्तु उसके पानीसे धर्म चला जाता है, क्योकि उसके भीतर चमड़ा लगा हुआ है। उसने 'ओले'का शर्वत पिलाया, सचमुच ही वह बहुत मीठा और ठडा मालूम हुआ। मठके हातेमें पीछेकी ओर इम्लीके वृक्षोके नीचे कुछ स्त्री-पुरुष रेशमका ताना-बाना करते थे। उन्होने कुछ टूटे धागे मुझे दिये थे, और उन रगीन चमकते धागोको मैं अपने साथ घर ले आया था। मठकी वगलमें जगेसरनाथका मन्दिर था। उनकी विशाल-पिंडीका दर्शन करते वक्त मुझे बतलाया गया, कि बाबा हर साल जौभर मोटे हो जाते है।

वनारससे हम दिनकी गाड़ीमें लौटे थे, इसलिए सारनाथ पार होते लोगोके इशारा करते वक्त मैंने भी "लोरिककी धमाक"(धमाक स्तूप)को देखा। लोरिक अहीरका नाम शायद मै सुन चुका था। लोग बतला रहे थे, लोरिक दोनो हाथोमे दो घडा भैसका दूध दुहकर एक धमाक (चौखडी)से दूसरेपर कूद जाता था।

लौटकर मैंने अपने स्कूलमें अपनेसे अगले दर्जेके लडके राजाराम—जो रानीकी-सरायके डाक-मुशीका वेटा था, और अग्रेज़ी अक्षर लिख लेता था—से पूछा, कि ईसरगगीके विद्यार्थी मित्रको मै कैसे पत्र भेज सकता हूँ। उसने बडी सजीदगीके साथ पूछा—पता वनारस छावनी है या शहर? मुझे नही याद मैंने उसका क्या जवाव दिया। उसके वताये अनुसार एक पोस्टकार्ड—जिसका दाम उस वक़्त एक पैसा था—मैंने भेजा जरूर, किन्तु उसका जवाव कभी नही आया, शायद वह पहुँचा भी नही।

## ७

# रानीकीसरायकी पढ़ाई ( २ )

१९०३ ई०मे शायद रेल रानीसराय आ गई थी। मेरे सहपाठी सेठबलके शोभितलालका बहुतसा खेत रेलमे चला गया। नीलका उजडा गोदाम, छोटी पोखरी, उसके किनारेके आमके वृक्ष और कितने ही खेत अब भी उनके पास थे। शोभितके दादा आमके दिनोमे उनकी रखवारी किया करते थे। मद्रसा छोड़नेपर वहाँ तक अक्सर मेरा और शोभितका साथ रहता। जाड़ेके दिन बडे सुहावने लगते थे। ऊख, साग, छीमी खेतोमे मौजूद थी। रानीसागरके भीटेसे लगे रेलकी सडकके पास रानीकीसरायवालोके मटरके खेत थे। फलियाँ खाने लायक हो गई थीं। दो लडकियाँ हमारी ही उमरकी खेतकी रखवाली करती थी। हम भीटेकी आडसे पहिले झाँकते, फिर गफलतमे देखकर खेतपर टूट पडते और खेतमे सर्पट भागते, छीमी तोडते कई फेरा कर डालते। लड़कियाँ हमारे पीछे-पीछे दौड़ती, और हमे न पकड़ पाती, वह बनावटी क्रोध दिखलाती। फसल कट जानेपर लडकियाँ खेतपर न आती, लेकिन द्वारसे गुज़रते वक्त वे पहचानती और खुश होती। सलाम, बन्दगी, हाथ उठाने या टोपी उठानेकी कोई प्रथा तो थी नही, देखकर मुखपर हँसीकी रेखा ला देना बस यही अभिवादन-प्रत्यभिवादन होता।

क्वार-कातिकके महीने मलेरियाके महीने थे। लडकपनमे प्रायः हर साल मुझे जूड़ी आती। क्विनैनको लोग बुरा समझते, इसलिए नानी भटवाँसकी जडको पीसकर गर्म जलके साथ देती थी। ज्वरके कारण वैसे ही मुँहका स्वाद खराब रहता, ऊपरसे अरहरके दालका 'जूस' (रस) पीनेको दिया जाता। दाल तो मुझे स्वस्थ रहते वक़्त भी विष मालूम होती, फिर बीमारीमे कैसे पसन्द आती ? मैंने भी एक तरीका निकाल लिया था। पेट दर्दका बहाना करके छटपटाने लगता, नानी घबराकर उपचार करने आती। उनसे सिर्केका लहसुन माँगता। नानी भूल जाती, कि पेटके दर्दके लिए सिर्केका लहसुन अच्छा होते भी जाडा-बुखारमें हानिकारक है। फल होता, ज्वर छूटनेके साथ तिल्लीका बढना। ज्वर छूटते ही फिर स्कूल। अब दोपहरके खानेको भुना हुआ चना या दूसरा दाना नहीं दिया जाता, बल्कि घरकी बनी पूड़ी मिलती, जो अक्सर मीठी होती थी। नानीको इतना ही मालूम था, कि घीकी पूडीमें ताकत होती है, और ताकत आनेपर तिल्ली दब जाती है। तिल्ली

पन्दहामे कम खतरनाक बीमारी न थी। सतमीका लडका सुद्धू और हमारे कुछ दिनोके स्कूलके साथी सम्पत् तिल्लीसे ही मरे थे।

नानाने मुझे अपना उत्तराधिकारी बनाकर रखा था, इसलिए उनके भतीजो विशेषकर बडे भाईके लड़कोको बुरा लगना स्वाभाविक था। कभी-कभी दोनो घरोमे कहा-सुनी भी हो जाती। मुझे ये बाते कुछ विचित्रसी मालूम होती, और दुःख इसलिए होता कि जेठे नानाके घर मेरा जाना कुछ दिनोके लिए रुक जाता। वहाँ मेरी पाँच मामियाँ थी, जिनमे सबसे छोटी--रामदीन मामाकी प्रथम स्त्री--मुझे बहुत मानती थी, और मैं अक्सर इन मामी साहिबाके दरबारमे हाजिर हुआ करता। उस वक्त मुझे यह भी मालूम नही था, कि भाँजेको मामीसे मज़ाक़ करनेका हक है। यह बात तो पीछे छोटी नानीसे मालूम हुई, जब फागुनके दिनोमे मैं उनके आगनमे सूरजबली मामाकी स्त्रीके पास चुपचाप बैठा था। छोटी नानीने कहा—'आधी मामी आधी जोय। पद लागे तो सबरो होय।'

## ८

# रानीकीसरायकी पढ़ाई (२)

१९०३ ई० मे मैं दर्जा २ पास हो गया। दर्जा ३ की नई पुस्तके पाकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई, क्योकि वे पहिलेसे सख्यामे अधिक और मोटी थी।

इसी सालकी पाठ्य पुस्तक (मौ० इस्माईलकी उर्दूकी चौथी किताब) मे मैंने नवाजिन्दा बाजिन्दाकी कहानी (खुदराईका नतीजा) पढी। उसमे बाजिन्दाके मुँहसे निकले, "सैर कर दुनियाकी गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ। जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ"—इस शेरने मेरे मन और भविष्यके जीवनपर बहुत गहरा असर डाला, यद्यपि वह लेखकके अभिप्रायके बिल्कुल विरुद्ध था।

१९०४ की जनवरीसे फिर मैं उसी तरह रानीकीसराय पढने जाता। शायद इसी साल, दो सालकी प्रतीक्षाके बाद दलसिंगारको फिर पढनेकी इजाज़त मिली। दलसिंगार अब मुझसे दो दर्जा नीचे थे, और हम टाटपर दो जगह बैठते थे। तो भी रास्तेमे आते-जाते तथा घरपर हमे अधिक साथ रहनेका मौका मिलता था, हम दोनोको इसके लिए बडी प्रसन्नता थी। किन्तु यह प्रसन्नता देर तक नही रही। कुछ ही

महीनें बाद शायद बरसातके अन्तमे दर्लासिंगार सख्त बीमार पडा। मै हर रोज देखने जाता। कौन बीमारी थी यह मुझे मालूम नही। आखिरी दिनोमें मैंने देखा, उसका मुँह बहुत सूज गया है, और आँखे सूजनमें ढँक गई है। जब दर्वाजेपर पहुँचता, तो दर्लासिंगारकी माँ मुझे दौडकर भीतर ले जाती। शायद उन्हे मालूम था कि बीमारी बहुत सख्त है। शायद उनको विश्वास था कि उनके घरमे विद्या नही 'सहती' और जो गति उनके दो पढे-लिखे देवरोकी हुई, वही दर्लासिंगारकी भी होनेवाली है। वह जानती थी, कि जब मै दर्लासिंगारके पास रहता हूँ, तो वह अपने दर्दको भूल जाता है।

दर्लासिंगार आखिर चल बसा। इसी वक्त सर्वप्रथम मुझे मृत्युके चोटका अनुभव हुआ। मै रोता नही था, बल्कि मेरे हृदयमे एक तरहकी असह्य एकान्तताका अनुभव होता था। मेरे दिमागमें मौतके बारेमे तरह-तरहके ख्याल पैदा होते थे।—मर कर दर्लासिंगार गया कहाँ? अगर कही गया है, तो क्या मै उससे मिल नही सकता?

रेल और प्लेगका चोलीदामनका सम्बन्ध है, यह धारणा गाँवके लोगोमे आम पाई जाती थी, और उसीकी पुष्टि हुई, जब कि १९०४ के अक्तूबर-नवम्बरमे रानीकी-सरायमे चूहे गिरने लगे। चूहोको फूँक देना, घरको छोड देना—आदि-आदि बातोकी हिदायत सरकारकी ओरसे छपकर पुलिन्देके पुलिन्दे हमारे स्कूलमे बाँट देनेके लिए आते थे। बा० पत्तर्रासिंहने स्कूलको हटाकर दो मील उत्तर रेलकी सडकपरके गाँव मैनीमे ले जाना तै किया। इतने लडकोके बैठने लायक वहाँ मकान कहाँसे मिले। जाड़ोका दिन था, पढाई खुले आसमानके नीचे होती थी। उसी समय रमजान पड़ा, और हमारे नायब-मुर्दारिस मुशी अब्दुल्कदीर सूर्यास्तके समय दातुवन करते देखे जाते। पन्दहामे भी प्लेग आ गया था, इसलिए मुझे मैनी हीमे रहना पडता। यही पहिले-पहिल अपने हाथसे खाना बनाने और दाल खानेकी नौबत आई। मेरी दाल कभी भी गलती न थी, लेकिन न जाने वह क्यो बहुत मीठी मालूम होती थी।

व्याहमे जेठे भाईकी जरूरत होती है, क्योकि व्याहकी विधिमे ज्येष्ठ द्वारा दुलहिनके गलेमे एक लाल-सूत (ताग-पाट) डालना आवश्यक है। यागेश कुछ महीने मुझसे छोटे थे, इसलिए उनके व्याहमे यह रसम मुझे अदा करनी थी। बारात देखी तो मैंने जरूर थी, किन्तु बराती बनकर जानेका यह मेरे लिए पहला अवसर था। जिस समय मै मैनीमे पढ रहा था, उसी वक्त वछवलमे यागेशकी 'तिलक' चढी। ससुरालवाले वैभव दिखलानेके लिए अपने साथ दो हाथी लाये। अब इसका जवाव

देना बारात ले जानेवालोके लिए जरूरी हो गया। महादेव पंडितने अपने भतीजेकी बारातमे जितने हाथी हो सके उतने ले आनेके लिए अपने सम्बन्धियोके पास सन्देश भेजा। कनैलासे जब सन्देश पन्दहा पहुँचा, तो नानाने दो हाथी ठीक किये। मेरी परीक्षा समाप्त होचुकी थी, उन्हीके साथ मै पहिले कनैला, फिर जखनियाँके पास बारातके गाँव पडरी गया। २१, २२ हाथी जमा हुए थे। बारात बड़े धूमकी रही। लडकीवालोने भी खूब हौसला दिखलाया, और बारातियोंको खाने-पीनेकी शिकायत नही हुई। मेरे लिए हाथियोका जमावड़ा, दर्जनो घोडोकी घुडदौड़, धूम-धामसे द्वारपूजा, दो रात नाच-गाना देखने-सुननेका मजा रहा। हाँ, जिन्दगीमे पहिले-पहिल इसी वक्त मुझे जूता पहिननेको मिला था। ठोक-पीटकर उसे अपनेसे ड्योढे पैरके लिए बनाया गया था, और उसने दस ही मिनट चलनेपर आधे दर्जन जगहोमे काट खाया। बारातमे नगे पैर घूमना इज्जतके खिलाफ था, इसलिए काटनेमे जो और भी कसर बाकी थी वह भी पूरी हो गई। यह सब हो जानेके बाद तीसरे दिन जब बारात विदा होनेवाली थी, तो एक जूता ही गायब। यागेशके चचेरे भाई और मेरी बुआके बडे लडके रामेश बारातमे सहबाला (शाहबाला) बनकर गये थे। रडीके नाच-गाने और खासकर 'मिलन' के दिनकी उसकी बीभत्स गालियोंको तो मैने भी सुना था, किन्तु रामेश उनमे एकाध-कड़ीको कंठस्थ कर चुके थे, और बड़ी तत्परतासे घरकी स्त्रियोके सामने उन्हे रागसे अलाप रहे थे। मै तो शरमके मारे गड़ा जाता था।

बारातसे लौटकर आनेपर मालूम हुआ, बा० पत्तरसिहका प्लेगमे देहान्त हो गया। शायद नायब-मुदर्रिस भी बदल गये थे, अब हमारे स्कूलमे दो नये जवान अध्यापक आये थे, बडे अध्यापक बा० लालबहादुरसिह नगरा (बलिया)के रहने-वाले थे, और उनकी बलियावाली 'रउआँ'वाली बोली हमे दूसरे द्वीपकी भाषा मालूम होती थी। बा० पत्तरसिह जितने ही क्रोधी थे, बा० लालबहादुरसिह उतने ही शीतल थे, उनके मुँहपर सदा हँसी बनी रहती थी। हमे अफसोस यही था, कि वे स्थायी अध्यापक होकर नही आये है, क्योकि वे नार्मल पास नही है। दूसरे अध्या-पकका नाम याद नही वह करहाके रहनेवाले योगी (मुसल्मान) थे, उनका ननिहाल निजामाबादके पास पडता था, और पन्दहाके रास्तेमे पड़नेसे वे अक्सर नानाके घर आते रहते थे। वह भी मार-पीट बहुत कम करते थे। यह कहनेकी अवश्यकता नही कि लडके इस युगल जोडीको सदा बने रहनेकी प्रार्थना किया करते थे।

१९०४ की गर्मी चल रही थी। स्कूलकी छुट्टी हुई, प्लेग अब भी चल रहा था।

मुझे फिर कनैला जाना पडा, शायद एकाध मासके लिए। उस वक्त बछवलकी बुआ भी कनैला आई थी, और रामेश तथा मै धरवारा—तीन मीलसे अधिक दूर—रोज पढने जाया करते थे। यह सिलसिला ज्यादा दिन नही चला। मुझे फिर पन्दहा लौट जाना पड़ा। लेकिन वहाँ एक और मुसीबत पडी। मेरा ब्याह करनेके लिए नानाके ससुरालके एक सज्जन एक बार आ चुके थे। नाना या नानीकी शायद उन्हे अर्धस्वीकृति भी मिल चुकी थी, तभी तो हिम्मत करके अचानक—कमसे कम मेरे लिए तो अवश्य—वे तिलक चढानेके लिए आ पहुँचे। नाना शायद स्वय असहमत थे, अथवा पिताजीकी असहमतिका उन्हे डर था, उन्होने चुपकेसे मुझे कनैला भेज दिया। तिलक चढानेवाले दूसरे दिन वहाँ जा धमके, और बहसाबहसीके बाद कई घटा रात चढे तिलक चढी। उसी गर्मीमे एक छोटीसी बारात गई, और ब्याह भी हो गया। उस वक्त ग्यारह वर्षकी अवस्थामे मेरे लिए यह तमाशा था। जब मै सारे जीवनपर विचारता हूँ, तो मालूम होता है, समाजके प्रति विद्रोहका प्रथम अकुर पैदा करनेमे इसने ही पहिला काम किया। १९०८ ई० मे जब मै १५ सालका था, तभीसे मै उसे शकाकी नजरसे देखने लगा था, १९०९ ई० के बाद से तो मै गृह-त्यागका बाकायदा अभ्यास करने लगा, जिसमे भी इस "तमाशे"का थोडा-बहुत हाथ जरूर था। १९१०-११ ई०से निश्चित तौरसे मै इसे अपना ब्याह नही कहता था।—ग्यारह वर्षकी अबोध-अवस्थामे मेरी जिन्दगीको बेचनेका घरवालोका अधिकार नही, यह उत्तर उस वक्त भी मै अपने उन बुजुर्गोको दिया करता, जो कि ब्याहके प्रति अपना कर्त्तव्य मुझे समझाते। मेरा उस वक्तका ज्ञान बहुत परिमित था, तो भी मै इसे घर और समाजवालोका अन्याय समझता था, और उसे बर्दाश्त करनेके लिए तैयार न था। १९०९ के बाद घर शायद ही कभी जाता था, १९१३ के बाद को तो वह भी खतमसा हो गया, और १९१७ की प्रतिज्ञाके बाद तो आजमगढ जिलेकी भूमिपर पैर तक नही रखा (१९४३ से पहिले)। किसी बाकायदा तिलाकसे मेरा यह तिलाक—जो वस्तुत अस्वीकृत अबोधविवाहके लिए जरूरी भी न था—कही बढकर था; और मैने उसी रूपमें लिया था, इसलिए मै समझता हूँ, उक्त घटना—ब्याह—के लिए समाजकी जगह मुझे जिम्मेवार ठहराना गलत होगा। मैने उसे कभी न ब्याह समझा, न उसकी जिम्मेवारी अपने ऊपर मानी।

जून-जुलाई तक रानीकीसरायके मद्रसेकी पढाई अस्थिर-सी ही रही, क्योकि प्रधानाध्यापक लालबहादुरसिंह अस्थायी थे, और उन्हे शायद छुट्टी भी जाना पड़ा। बरसातके शुरूमे नये प्रधानाध्यापक मुशी जगन्नाथराम आये। ये रानीकीसरायके

ही रहनेवाले थे। यद्यपि पहिले, पट्टावाले बालो, ऊपरकी ओर सँवारी मूँछोके साथ धोतीका ऐक फन्दा अँगूठे तक पहुँचते देख हमे बा० पत्तरसिह याद आने लगे, किन्तु पीछे वे बहुत मुलायम स्वभावके निकले।

रानीकीसरायके मद्रसेका आसपासके इलाकेमे खास स्थान था, खासकर रेलके टेशन हो जानेपर तो स्थानका महत्त्व और बढ गया। ऊँचागाँव, आँवकके लोअर-प्राइमरी मद्रसे इसके हल्केमे थे, और वहाँके मुदर्रिस अपने यहाँकी रिपोर्टोको रानीकी-सरायके प्रधानाध्यापकके द्वारा ऊपर भेजते थे। उस वक्तका तो याद नही है, किन्तु बा० द्वारिकासिहके समय आँवक्के इम्दादी मद्रसेके अध्यापक एक काफी उम्रके मौलवी थे। बगलेके पर जैसा सफेद और हाथीके पैर समाने लायक उनका पायजामा, उसी तरहका साफ अचकन, बूटेदार सफेद दुपलिया लखनऊकी टोपी, दिल्लीवाला नोक-दार लाल जूता, यह सब खर्चीली चीजे तो थी ही, साथ ही छोरपर तीन बलखाये तीन-चौथाई सन जैसे बालोंका सँवारा पट्टा और आँखोमे पतला सुरमा हम गँवार लडकोके दिलमे भी कुतूहल पैदा किये बिना नही रहता था। आँवकमे कातिक शुक्ल षष्ठी (?) को मेला लगता था, शायद सूर्यका। एक बडे तालमे लोग स्नान करते थे। मन्दिर और पूजाका मुझे याद नही, शायद मन्दिर नही था। गाँवमे कितने ही मुसल्मान सम्भ्रान्त परिवार थे, जिनमेंसे एकके घर उक्त मौलवी साहब रहते और लडकोको पढाते थे।

अपरप्राइमरी खुल जानेपर आसपासके कई स्कूलोके लडके रानीकीसराय पहुँचने लगे थे। दर्जा चारमे लडकोकी सख्या तेरह-चौदह थी जिसमे उर्दूका विद्यार्थी अकेला मै ही था। शोभित शायद पिछड गये थे। सभी दर्जोमे उर्दू पढनेवालोकी सख्या बहुत कम ही होती थी। मुझे बाबू द्वारिकासिह हो या पत्तरसिह, लाल-बहादुर या जगन्नाथ सबके पास हिन्दीवाले लडकोके साथ पाठ पढते वक्त बैठा रहना पडता और उनके पाठको सुननेका मौका मिलता था। लिखनेका तो अवसर नही मिलता था लेकिन सुनते-सुनते हिन्दीकी पुस्तकोको भी मै वैसेही समझ लेता जैसे अपनी उर्दूकी, बल्कि हिन्दीकी पुस्तकोको और अच्छी तरह समझता था क्योकि हमारे साथी प्राय. सभी अधिक हिन्दी-पठित और उर्दूसे अल्प-परिचित थे।

सालाना इम्तिहान होता तो रानीकीसरायसे उत्तर कुछ दूरपर पक्की सड़कके पूर्वके बागमे स्कूलके डिप्टी-इन्स्पेक्टरका शामियाना पड़ता। कभी-कभी कोई असिस्टेंट-इन्स्पेक्टर भी पहुँच जाते, नही तो डिप्टी-इन्स्पेक्टर ही इम्तिहान लेते। आसपासके कई स्कूलोके दूसरे और चौथे दर्जेके विद्यार्थी परीक्षा देने आते। कपडे

तो उनके ऐच्छिक होते, किन्तु कश्तीनुमा टोपीका खास रग होता, और उसमे लड़के-का नम्बर उर्दू या हिन्दी अकोमे सफेद पन्नीसे काटकर चिपकाया रहता। जिस साल मैंने चौथे दर्जे (अपरप्राइमरी)का इम्तिहान दिया, उस साल शामियाना नही पड़ा था। शायद रेलके सुभीतेने यह परिवर्तन उपस्थित किया हो। जिलेके डिप्टी इन्स्पेक्टर और दो-तीन सब-इन्स्पेक्टर पहिले ही दिन शामको पहुँच गये थे। असि-स्टेट इन्स्पेक्टर बा० व्रजवासीलाल आनेवाले थे। दस बजेकी गाड़ी चली गई, तो डिप्टी लोगोने समझा अब वह नही आवेगे, और उन्होने हम लोगोका इम्तिहान लेना शुरू कर दिया। दो फेल बाकी सभी लडके पास हुए, और ज्यादा लडके तो 'कतई' (पूर्ण) पास।

व्रजवासीलाल, वस्तुत, गाडीमे सो गये थे। दो स्टेशन आगे जानेपर उनकी नीद खुली तो उतर पडे, और दूसरी गाड़ीसे ३ बजेके आसपास हमारे स्कूलमे पहुँचे। व्रजवासीलाल अपनी कड़ाईके लिए काफ़ी बदनाम थे, लेकिन किसीको यह आशा न थी, कि वह दुबारा परीक्षा लेनेका आग्रह करेगे। आते ही उन्होने पहिलेके परीक्षाफलको रद्द कर दिया और फिरसे परीक्षा लेना शुरू किया। परिणाम बिल्कुल उल्टा निकला। सारे दर्जेमे सिर्फ दो लडके पास हुए—मै और गिरिधारी-लाल, जिसमे गिरिधारीलाल भी शर्तिया या रियायती पास हुए थे। लडकोमे कुहराम मच गया इसके कहनेकी अवश्यकता नही। हिन्दी-शिक्षावली (चौथा भाग) शायद उस समय हमारे दर्जेकी पाठ्य पुस्तक थी। व्रजवासीलालके प्रश्न शब्दोके रटे हुए अर्थके बारेमें उतने न होते थे, जितने कि विद्यार्थीकी चतुराई देखनेके लिए। जिन प्रश्नोके उत्तर देनेमे मेरे दर्जेके लडके चुप रह रहे थे, उनका उत्तर देनेको मै व्याकुल हो रहा था, यद्यपि मै हिन्दीका विद्यार्थी न था। इसमे शक नही यदि मुझे हिन्दीमे भी परीक्षा देनेका मौका मिलता, तो मै उसमे भी कतई पास हुआ होता।

खैर, परीक्षा समाप्त हुई। मै अच्छे नम्बरोसे पास हो गया, इसे सुनकर नाना-नानीको बहुत प्रसन्नता हुई। महावीरजीको अगले मगल सवासेर लड्डू चढाया गया, वही महावीरजी जो रानीसागरके उत्तरी घाट पर रहते थे, और जहाँपर दूर-दूरके साधु-सन्तो और मृदगमे रेलकी आवाज निकालनेवाले उस्ताद मदनमोहनके दर्शनोका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

सारे जिलाके अपरप्राइमरी पास लडकोकी छात्रवृत्तिकी प्रतियोगिताकी अभी एक और परीक्षा मुझे देनी थी, इसलिए इम्तिहानकी छुट्टियोमे कनैला जानेका अव-सर न था। माँ छै-सात महीनेसे बीमार थी। पहिले मेरे सबसे छोटे भाई श्रीनाथके

जन्मके समय प्रसूतज्वर हुआ, और वही आगे वढते-बढ़ते पाडुरोगमे परिणत हो गया। वीमारीमे एक वार मैं जरूर देखने गया था, किन्तु तब अवस्था उतनी अव्तर नही हुई थी। मेरे पिताका स्वभाव था—जब जिसकी अवश्यकता पडी, तब उसी ज्ञानकी प्राप्तिमे जुट पड़े—, अब वह रसराजमहोदधिपर पिले हुए थे, और शायद उन्होने माँको अपनी वनाई एकाध दवा खिलाई हो, तो भी तअज्जुव नही।

जनवरी (१९०६)का महीना था। प्लेगके कारण अबकी बार स्कूल रायपुर गया हुआ था, और मैं वहाँसे पढकर घर लौट रहा था। कुल्हाडवाले घरसे हमारे घरका द्वार छिपा हुआ था, लेकिन कूयेपर मैंने माँकी सखी दिलासीको पानी भरते देखा। मुझे देखते ही वह घडेको मनपर रखकर ज़रासा ठमक गई, और फिर आँखोसे झरझर आँसू बहाते अपनेपर कावू न रखते बोल उठी—'अब बच्चेको बहिनीका मुँह देखनेको नही मिलेगा'!!

एक ही दिन पहिले खास सन्देशा आया था, और नाना जल्दी-जल्दी कनैला गये थे। दिलासीके शब्दोसे मुझे मालूम हो गया, कि माँका देहान्त हो चुका। दिलासी अहिरिन मेरे माँकी सखी थी। बचपनमे लड़कियाँ मिठाई या दूसरी चीज़—एक दूसरेके दाँतकी कटी हुई—को खाकर सखी बनती हैं। एक सखी दूसरी सखी-का नाम नही ले सकती। वे आपसमे झगडा नही कर सकती। व्याहके बाद तो अपनी-अपनी ससुराल चली जाती है, इसलिए यह सखित्व अचल स्थायी वन जाता है, क्योकि उनमे पारस्परिक वैमनस्यकी गुंजाइश नही रह जाती। दिलासी मेरी माँकी वैसी ही सखी थी। उसका व्याह हुआ था, किन्तु मैं उसे हमेशा अपने भाइयोके घरमे ही देखता था। शायद पति-पत्नीमे झगड़ा रहता हो। दिलासी मुझको लडकेकी तरह मानती थी। वह गरीब थी, इसलिए उसका प्रेम उसके भावोंसे ही प्रकट हो सकता था। दिलासीने, मैं शायद घवरा जाऊँ—इसी डरसे अपने ऊपर पूरा नियत्रणकर अपना वह उद्गार प्रकट किया था।

घरमे जानेपर देखा नानी विह्वल हो रो रही है। नाना अलग आँसू वहा रहे है। मेरे कलेजेमे भी ठडी हवाके झोके धक्का देते थे, चित्तमे एक अजीव तरहका अवसाद मालूम होता था, तो भी न मैं चिल्ला रहा था, न आँखोमे आँसूका नाम था। मैं एक घोर चिन्तामे पड गया था। रह-रहकर माँका चेहरा मेरे मानसनेत्रोके सन्मुख आता। मर जानेकी वातसे चित्त विकल होने लगता, फिर ख्याल आता, नही माँसे भेट ज़रूर होगी, शायद वह फिर जी जावेगी—मुर्दे जी जाते भी सुने गये है, शायद वह यमराजके यहाँसे लौट आवे, मरे हुए आदमी चितापर जी जाते देखे गये है।

लेकिन यदि कही माँको जला दिया गया हो—नानाने कहा था, कि उसे गगाजी जलानेको ले गये—, तो फिर ? तो भी मै निराश नही होता था, मुझे विश्वास ही नही पडता था, कि माँ फिर नही आवेगी। ग्यारह वर्षकी अवस्थामें भी लडके विस्तृत ज्ञान रखनेवाले देखे जाते है, लेकिन मेरी परिस्थिति उन लड़कोकी-सी नही थी। मै एक गाँवमे पैदा हुआ था; और ऐसे नानाके घरमे, जिन्होने अँगूठा लगानेके डरसे सिर्फ अपना हस्ताक्षर भर करना सीखा था। मुझसे अधिक पढ़ा न नानाके गाँवमे कोई था और न कनैलामे। बहुश्रुत, बहुवित्, बहुदर्शी पुरुषोका दर्शन और सग भी मुझे अप्राप्य था। धार्मिक कथाओके सुननेका भी अवसर नही मिलता था। इस प्रकार मेरे आँसू न 'ब्रह्मज्ञान'के कारण रुके हुए थे, और न किसी और तत्त्व-साक्षात्के कारण। मेरी सान्त्वना और धैर्यका कारण एक भोलेभाले ग्रामीण लडकेका सीधा-सादा विश्वास था। श्राद्धके वक्त कनैला जानेपर यद्यपि माँके लौटनेका विश्वास कम हो गया था, तो भी कातरता नही आने पाई थी। शायद, इसमे बँटा हुआ स्नेह भी कारण हो सकता है। आखिर, सालमे साढ़े ग्यारह महीनेके लिए तो नानी मेरी माँ थी—और मै उन्हे माँके ही नामसे पुकारता भी था।

## ९

# एक क़दम आगे

रानीकीसरायकी पढाई समाप्त हो गई। पन्दहासे नजदीक ३-४ मीलपर निजामाबादका मिडल स्कूल पडता था, नानाने मुझे वही भेजनेका निश्चय किया। यद्यपि मार्च(?)के महीनेमे अभी छात्रवृत्ति-प्रतियोगिताकी परीक्षामे शामिल होना था, किन्तु फर्वरी (१९०६)मे ही नाना निजामाबादमे पहुँचा आये। उस वक़्त वहाँ भी प्लेग था, और स्कूल टौस नदीके उसपार एक नीलके गोदाममे चला गया था। यद्यपि उस वक्त तक, नीलकी खेती बन्द हो जानेके कारण आम तौरसे पुराने नील-कारखाने गिर-पड गये थे, किन्तु इस कारखानेके सभी मकान अभी साबित थे। मकानोके भीतर नीलकी बटियोके रखने या सुखानेके लिए तहपर तह जमाये बासके चाचरोके तख्ते भी मौजूद थे। इन्ही चाचरो पर रातको हम लोग सोते थे।

अभी तक अपने दर्जेमे मै उर्दूके अकेले-दुकेले लड़कोंमे था, किन्तु यहाँ हिन्दीवालोंका वहुमत होते भी उर्दूवाले भी काफ़ी संख्यामे थे। यहॉका वायुमंडल गॉवसे अलगसा मालूम होता था। मेरे दर्जेमे जनकसिंह, द्वारिकाप्रसाद और दो-तीन और निज़ामाबाद क़सबेके रहनेवाले लड़के थे; सभी उर्दू पढते थे, इसलिए हम सबका उठना-बैठना एक साथ होता था। क़स्वाती लड़के अपनी नागरिकताके घमंडमें, हम सबको दीहाती कहकर चिढ़ाते थे, और हमलोग भी उन्हे कोई न कोई पदवी दिये विना नही रहते थे। यह क़स्वाती और दीहाती संस्कृतिका झगडा वहुत दिन तक नही चलता था। कुछही महीनोंमे अधिकांश दीहाती लड़के भी क़स्वाती संस्कृति-मे दीक्षित हो जाते थे। हॉ, हमारे निजामाबादके गौड़-कायस्थ 'आइन'-'गइन'-वाली जो अवधी बोलते थे, उसे हम नही सीख पाते थे।

अभी वाकायदा पढ़ाई नही हो रही थी। वाहरसे आनेवाले नये लड़के भी वहुत कम आ पाये थे। मिडल-वर्नाक्युलरका इम्तिहान मार्च या अप्रेलमे होता था, इसलिए नये दर्जेकी पढ़ाई उसके वादसे ही होती थी। मेरे क़स्वाती सहपाठी भी छात्रवृत्ति-प्रतियोगिताकी तैयारी कर रहे थे, मैं भी उनके साथ शामिल हो गया। मै गणितका अच्छा विद्यार्थी था, और दूसरे विषय भी मेरे अच्छे थे। हमारे रानीकी-सरायके अध्यापकका कहना था, कि मै ज़रूर छात्रवृत्ति पाऊँगा; किन्तु जब मैंने यहाँ अपने साथियोको घडी तथा दूसरे हिसावको लगाते देखा, और पूछनेपर मालूम हुआ कि यह भी दर्जा ४ के पाठ्यमे है, तो मुझे निराशा-सी हो गई। रानीकीसरायके पाठ्यविषयमे अज्ञता या आलस्यके कारण कितनी ही वाते नही पढ़ाई गई थी। शुरू हीसे मेरे उर्दू पढानेवाले अध्यापक—द्वारिकासिंह, पत्तरसिंह, लालवहादुरसिंह या जगन्नाथराम—सभी ज़बर्दस्ती उर्दू पढ़ाते थे, और इसीलिए निज़ामावादके साथियोके मुकाबिलेमे मुझे अपनी उर्दू कमज़ोर जँचती थी। अब प्रतियोगिताके लिए समय भी कम रह गया था, इसलिए कमीके पूरा करनेकी सम्भावना नही थी, और इसी बीच रानीकीसरायके अध्यापकका सन्देशपर सन्देश आने लगा—प्रति-योगिताकी सफलताका श्रेय उन्हे मिलनेवाला था, इसलिए वह विशेष तैयारी करानेके लिए उकता रहे थे। रानीकीसराय पहुँचनेपर जब मैंने घडीके-तथा दूसरे हिसावोंको निज़ामावादमे लगाये जानेकी वात कही, तो उन्होने यह कहकर टाल दिया—वे लोग अगले सालका हिसाव लगा रहे है। आज़मगढ़से उत्तर मँडुरीमे पोखरेके पासके वड़े वगीचेमे सारे आज़मगढ ज़िलेके दर्जा ४ मे 'क़तई' पास लड़के परीक्षा देने आये। आधे हिसाव वे ही आये, जिन्हे हमारे अध्यापक दर्जा ५ का पाठ्य सम-

भते थे। परिणामके लिए कमसे कम मुझे प्रतीक्षा करनेकी अवश्यकता न थी।

मार्च या अप्रेलमे, जबसे निजामाबादमे हमारी बाकायदा पढाई शुरू हुई, तब तक प्लेग चला गया था, और स्कूल अपने मकानमे चला आया था। मिडल स्कूलका मकान भी शकल-सूरतमे रानीकीसरायके मकान ही जैसा था। वैसा ही बीचमे बडा हाल, चारो तरफ बराडा, खपडैलकी छाजनी—हाँ, जहाँ रानीकीसरायमे बराडेमे कोनोपर सिर्फ दो कोठरियाँ थी, वहाँ यहाँ चारो कोनोपर चार कोठरियाँ थी, और हाल बहुत बडा था। हालमे दक्षिण तरफ प्रधानाध्यापक मौलवी गुलाम-गौसखाँ, बीचमे द्वितीयाध्यापक पंडित सीताराम श्रोत्रिय, और उत्तरी छोरपर तृती-याध्यापक बा० जगन्नाथरायकी कुर्सियाँ, और तीन तरफ तीन बेंचोसे घिरे तीन मेजे थी—तृतीयाध्यापककी जगह पहिले एक मौलवी थे। उत्तर और दक्षिणवाले अध्यापक क्रमश. दक्षिण और उत्तर मुँह बैठते थे, और श्रोत्रियजी पूरब मुँह। अध्या-पकोकी कुर्सीके पीछे थोडासा वाये हटकर तख्ता-स्याह (ब्लेक-बोर्ड) रहा करता था। लडके पाठ लेते वक्त अध्यापकके सामने बेंचोपर बैठते थे, नही तो पूरबवाली दीवारकी जडमे उनके बैठनेके लिए जमीनपर दो फीट चौडे टाटकी पट्टी बिछी हुई थी। हालके पच्छिमवाले बराडेमे ब्राच-स्कूल था, जिसमें लोअर और अपरप्राइमरीके लड़के पढते थे। पडित गगा पाडे उसके प्रधानाध्यापक, हमारे दूरके रिश्तेमे पडते थे, इसलिए कितने ही समय तक मेरी रसोई उनके साथ बनती थी। इस बराडेके पीछे कुछ खाली जमीन थी, जिसमे हारीजेटलबार, पेरेललबार और कूदनेके लिए एक अखाडा था। बारका इस्तेमाल होना शायद ही मैंने कभी देखा था, किन्तु अखाडेमे कूदनेका कभी-कभी मुझे मौका मिला था, और लम्बी और ऊँची कुदान मैं भी काफी कूद लेता था; यद्यपि सबमे प्रथम होनेवाले हमारे सहपाठी सरयूसिह थे। अखाडा कोनेवाली कोठरीके करीब था, और उसके बाद ही हरफा-रेवडीका एक दरख्त था, जिसके छोटे-छोटे खट्टे फलोको हम बडे चावसे खाते थे। स्कूलके पूर्ववाले बराडेके बाहर एक लम्बासा पक्का प्लेटफार्म था, जो प्लेटफार्मके ख्यालसे उतना नही बना था, जितना कि चार-पाँच फुट नीचेसे जानेवाली सडकमे गिरनेवाले पानीकी धारसे स्कूलकी इमारतकी हिफाजतके ख्यालसे। शामके वक्त कभी-कभी हमारा पाठ इस प्लेटफार्मपर भी होता था।

सडककी दूसरी तरफ दो जगह बोर्डिंगकी कोठरियोकी कतारे थी, जो स्थानीय एक बडे जमीदार सर्दार नान्हकसिह(?)की सम्पत्ति थी। कोठरियोके बराडो-हीमे रसोई बनानेके चूल्हे थे।

नानाने मेरे रहनेका इन्तजाम बाजारमे एक ठाकुरवाड़ीमे किया था। ठाकुर-वाडी कस्बेके एक व्यापारी, शायद महँगी साहुकी बनवाई हुई थी। पुजारी बूढे नाटे, किन्तु काम-काजमे बडे फुर्तीले एक आचारी साधु थे, जो बात-बातमे साहुको दस मुना देना अपना कर्तव्य समझते थे। पता ही नही लगता था, कि ठाकुरवाडीके मालिक पुजारीजी हैं या साहु। यद्यपि पुजारीके कथनानुसार, ठाकुरवाडीमे क्या लगा था,—मुर्देके कब्रोकी खोद कर लाई लाखौरी ईंटे और कुछ चूना सुर्खी; किन्तु वस्तुत. वह एकदम इतनी खराब न थी। ठाकुरजी (शायद राम-लक्ष्मण-सीता)की कोठरीके तीन तरफ परिक्रमाकी गली, फिर दो कोठरियाँ, सामने सभामडप—झाड-फनूससे सुसज्जित, जिसके उत्तर-दक्खिनमे कोठेदार बारहदरियाँ, सामने छोटासा पक्का आँगन, जिसके एक कोनेमे मीठे पानीकी पक्की कुइयाँ, आँगनके उत्तर-दक्खिन दो कोठरियाँ। बाहरका दर्वाज़ा बाज़ारकी सड़कपर खुलता था।

यद्यपि मैनीमे एकाव-महीने कच्ची-पक्की रसोई मैं बना चुका था, किन्तु वह मेरे और नाना-नानीके विचारमे सन्तोषजनक न था, इसलिए, और लडकेको अनुशासनमे रखनेके ख्यालसे भी मुझे इस ठाकुरद्वारेमे रखना पसन्द किया गया। पुजारीजी पक्के आचारी थे, इसलिए रसोईके भीतर मुझे जानेकी इजाजत ही कहाँसे हो सकती थी? पानी-बासनका काम भी उनके एक शिष्य किया करते थे। पुजारी-को गुस्सा बहुत जल्द आ जाया करता था, तो भी उनका वर्ताव मेरे प्रति बहुत अच्छा था। पढाई रानीकीसरायकी तरह सारे दिनभर नही चला करती थी, वह शुरू होती थी दस बजेसे, खेल-कूद लेकर शामको स्कूलसे छुट्टी मिलती थी। स्कूल ठाकुर-द्वारेसे कुछ दूर था। पुजारी एक क्षण भी चुप-चाप बैठ नही सकते थे। स्नान, पूजा, झाड़ू-बहारू, रसोई-अमनिया, दिया-बत्ती, पोथी-पाठ—कुछ न कुछ काम उनको हर वक्त लगा रहता था। कहनेको मैं अब धर्मस्थानमे था, किन्तु मैं वैसाका वैसा ही कोरा रहा, और मुझपर भक्तिभावकी एक छीट भी पडने न पाई। पुजारीजी सिखाने-पढानेकी कभी कोशिश नही करते थे। कुछ दिनो बाद हमारे दर्जेका एक राजपूत लडका भी ठाकुरद्वारेमे रहनेके लिए आ गया, उसके बादसे तो हमारी दुनिया ही अलग हो गई।

तीन-चार मास रहते-रहते मेरा मन ठाकुरवाडीसे उदास हो गया। कारण, शायद पुजारीका चिडचिड़ा मिज़ाज था। नानाने बोर्डिंगमें रहनेकी इजाजत दे दी। उत्तरके बोर्डिंगमे दक्खिनके छोरवाली कोठरीमें हम दो या तीन लड़के रहते थे। रसोई अध्यापक गगापाडेके साथ थी। दाल, चावल, तरकारी तो मैं बना लेता था,

किन्तु रोटी पाडेजीको सेकनी पडती थी, उसे मुझपर छोडनेपर तो उन्हे शायद रोज लवणभास्करकी जरूरत पडती।

निजामाबाद पुराना कस्बा है। कहते है, औरगजेबके एक लडके आजमशाहके नामसे आजमगढ बसा, दूसरे निजामशाहके नामसे निजामाबाद। यह मै उस समयकी सुनी-सुनाई बातोको कह रहा हूँ। हो सकता है, निजामाबाद और पहिलेसे चला आया हो, और बस्ती तो मुसल्मानी समयसे पहिलेकी भी हो सकती है, वहाँके कुछ स्थानोको रजभरोके राज्यसे सम्बन्द्ध किया जाता था। किसी समय निजामाबाद की बस्ती और दूर तक फैली हुई थी, यह उसके पुराने आबादीके चिह्न बतला रहे थे, जिनमेंसे कितनेकी दीवारे अब भी खडी थी। छोटी-पतली लाखौरी ईंटोकी इमारते, मेहराब और कब्रे तो जगह-जगह खडी और गिर-पड रही थी। कितने ही तहखानो, जमीनके भीतर बने अलद्दीनके महल जैसे महलो, तालाबोकी कथाये मशहूर थी। पुजारीजीके कहनेमे कुछ सच्चाई भी थी, उनका ठाकुरद्वारा ही नही कितने ही और भी मकान निजामाबादमे इन्ही पुरानी इमारतोकी ईंटोसे बने थे।

कस्बेमे मुसल्मानोकी सख्या काफी थी। पच्छिम तरफके काजी साहेबकी जमीदारी यद्यपि बहुत कुछ बिक चुकी थी, तो भी उनकी प्रतिष्ठा बहुत थी। ये लोग शिया थे, और निजामाबादका अलम (झडा) गाडीपर रखे बडे-बडे तबलके साथ बहुत धूमधामसे निलकता था। काजी-परिवारमे कोई प्रसिद्ध व्यक्ति उस वक्त नही था। उनके महल और पक्की चहारदीवारीके भीतर लगे तरह-तरहके फलके बगीचे मेरी नजरमे उस समय दुनियाकी अदभुत मायासी जान पडते थे। काजी-परिवारकी सम्पत्ति कैसे नष्ट हुई, इसके बारेमे बहुतसे कथानक प्रसिद्ध थे। कोई कहता, उनके पाखानेकी दीवारोमे अतर पोता जाता, कोई कहता झुडकी झुड रडियाँ उनके यहाँ इन्द्रसभा रचाती थी। मेरे सामने उनके घर जौनपुरसे एक बारात आई। खूब कागजकी फुलवारी, बाजा-गाजा, गैसकी रोशनीका जलूस निकला। नामी-नामी तवायफ नाचने आई थी। शादीके बाद भी दामाद साहेब शायद एकाध महीने तक ससुरालमे रहे। काजी-परिवार बादशाही जमानेमे शहरके काजी (न्यायाधीश) रहे होगे, इसके कहनेकी अवश्यकता नही। हो सकता है, ये लोग जौनपुरकी बादशाहतके जमानेमे यहाँ आये हो, और निजामाबाद भी उसी समय उन्नतिके शिखरपर पहुँचा हो। निजामाबाद टौस नदीके किनारे होनेसे व्यापारके लिये अनुकूल स्थितिमे था। हो सकता है, पहिले यह व्यापारका भी एक अच्छा केन्द्र रहा हो। यद्यपि रेलके आनेके बाद रानीकीसरायका सितारा ओजपर था, उसकी दूकाने मेरे देखते-

देखते सख्या और धन दोनोमे बढ गई थी। नये आये मारवाडी व्यापारियोने तो कपडेकी थोकविक्रीका कारबार शुरू करके रानीकीसरायको आसपासके इलाकेके व्यापारकेन्द्र बना दिया था। निजामावाद रेलके स्टेशनो—रानीकीसराय और फरिहा—से ४, ५ मील दूर था, इसलिए वहाँ व्यापारिक उन्नतिकी बहुत सम्भावना न थी, तो भी वहाँकी पैठ वडी थी। निजामावाद अपने बेल-बूटा किये काले मिट्टीके वर्तनोके लिए जिले हीमे नही प्रान्तमे भी काफ़ी विख्यात था। निजामाबादके कुम्हारो-मे अधिकाश मेरे नानाके चचाके यजमान थे। कथा-पूजा होनेपर भोजमे मेरा बुलावा जरूर होता था, और परनानाकी साली—जिन्हे गाँवभर मौसी कहा करता था—के हाथकी वनी परवलकी तरकारी मुझे खास तौरसे पसन्द आती थी।

निजामावादके पूर्व छोरपर एक और प्रतिष्ठित मुस्लिम-परिवार रहता था। इनके पास अभी काफी ज़मीदारी थी। उनका एक गाँव रानीकीसरायसे पूरब पडता था, और घरके एक तरुणको भोटिया (नेपाली?) टाँघनपर कदम उड़ाते अक्सर मै पन्दहा और रानीकीसरायके वीच देख चुका था। उसके ही घोडेकी सवारीको देखकर, वल्कि रानीकीसरायवाले कालमे कितनी ही बार मेरी इच्छा होती—एक तेज़ घोडा रहता, और एक विलायती कुत्ता (यह भाव शायद बा० द्वारिकासिहकी कुत्तीसे मिला था), घोडेको दौडाते हुए मै चलता, और कुत्ता पीछे-पीछे भागता आता।

कस्वेके तीसरे वडे रईस सर्दार नान्हकसिह(?) थे। पुराने वादशाही जमानेमे ही निजामावादमे गौड-कायस्थ और उनके पुरोहित सनाढच ब्राह्मण वस गये थे। ये लोग जिलेकी साधारण आवादीमे द्वीपकी भाँति थे। इन परिवारोको अपनी शादी-व्याहके लिए दूर-दूर जिलोकी खाक छाननी पडती थी। इनमें यद्यपि केशधारी सिख कम थे, किन्तु थे सभी सिख। कस्वेके भीतर एक सगत (गुरुद्वारा) थी, और वाहर नदीके घाटपर भी एक मन्दिरसा था। सगतके महन्त बावा सुमेरसिंह थे। सगतमे कभी-कभी कडा-प्रसाद (हलवा) वँटता, जिसे लेनेके लिए हम स्कूलके लडके वरावर पहुँच जाया करते थे। हमारे दर्जेमे पाँच गौड लडके थे, जिनमे जनकसिह, तथा एक और वाल रखे हुए थे, और वाकी तीन बिना वालके। पहिले मै सिखोको अलग जाति समझता था, किन्तु जव मालूम हुआ कि मेरे एक केशरहित साथीका ननिहाल सर्दार नान्हकसिंहके यहाँ है, दो साथियोमे एक सिखका मामा विना केशका है; तो वडा कौतूहल हुआ। पडित अयोध्यासिह उपाध्यायका जन्मस्थान होनेके कारण निजामावाद एक साहित्यिक स्थान है, किन्तु उस वक्त मुझे इसका कोई पता

न था। मुझे इतना ही मालूम था, कि पडित अयोध्यासिह कानूनगो पहिले निजामाबादमे प्रधानाध्यापक थे, हमारे गणितके अध्यापक पडित सीतारामश्रोत्रिय उनके विद्यार्थी और सजातीय है। पडित अयोध्यासिह कवि है, उनका उपनाम "हरिऔध" है, इससे मै बिल्कुल अपरिचित था। हाँ, जब अपने एक साथीको अपने पिताकी बनाई कवित्तोको पढते देखकर मैने भी कुछ कवित्त-सवैया गढ़ डाली, तो दूसरे साथियोने बतलाया—कविता करना बडे जोखिमका काम है, छन्दमे एक मात्राके भी टूट जानेपर बडा पाप होता है। उन्होने उदाहरणके तौरपर बतलाया—पहिले पडित सीतारामजी कविता किया करते थे, किन्तु इसी गल्तीके कारण उनके लडके मर जाते थे। अब उन्होने कविता छोड दी है, तभी यह २, ३ वर्षका लडका जीवित है। खैर, कविता करनेकी मुझमे अन्त प्रेरणा तो थी नही, जो भयसे उसे छोड बैठता, वह तो देखादेखी थी, और वही खतम हो गई।

निजामाबादमे मनोरजनकी सामग्री काफी थी। शीतला और नदीपार कोई दूसरा मेला लगता था। शीतलाका मेला तो सावनमे हर सोमवारको लगा करता था, जिसमे दूर-दूरकी स्त्रियाँ शीतला देवीको 'कढाई' (पूडी-हलवा) चढाने आया करती थी। पढनेके लिए आनेसे पहिले भी मै एक बार नानीके साथ वहाँ आ चुका था। मन्दिरका स्मरण नही, एक बाग था, जिसमे कढ़ाइयाँ चढती थी। शायद लडकोके बाल काटे तथा सूअरके छौनोंकी बलि भी चढाई जाती थी। नाचनेवाले लडके रहते थे, मानता माननेवाली माँये उन्हे जमीनपर बिछे अपने आँचलके कोनेपर नचाती थी। निजामाबादमे रामलीला भी होती थी, और उसका भरतमिलाप तो हमारे बोर्डिंगके पीछेवाले ठाकुरद्वारेके हातेमे होता था। कस्बेके लाला लोग नाच-गानके भी शौकीन थे, स्वय नाचते नही, बल्कि बाहरसे आनेवाली रडियोका मुजरा अक्सर कराया करते थे। हम विद्यार्थियोके लिए इन नाचोमे जाना आसान काम न था। अगर पता लग गया, तो दूसरे दिन पडित सीतारामकी छडी बरसे बिना नही रहती। कस्बाती लडकोसे खबर भर मिल जाया करती थी, मै शायद एक-दो बार ही किसी हातेकी दीवार फाँदकर भीतर पहुँचा था, और खडी हुई भीडके पीछे छिपकर देखता रहा। रानीकीसरायमे रहते एक-दो बार डिस्ट्रिक्ट-बोर्डके ड्रिलमास्टर हमारे स्कूलमे भी आये थे, और उन्होने कुछ दड-कसरत सिखलाया था, लेकिन उनके जाते ही कहाँका दड और कहाँकी कसरत? निजामाबादमे तो वैसे किसी चलते-फिरते ड्रिलमास्टरके भी दर्शन नही हुए। जिलाभरके स्कूलोका रस्साकशी, ड्रिल, कूद और दौडका टूर्नामेट हर साल आजमगढमे हुआ करता

था। उस साल हमारे यहाँ के भी १४, १५ लडके शामिल हुए थे। इसके लिए उन्हे काले गल्ता (आधा रेशमी आधा सूती कपड़ा) के कोट बनवाने पड़े थे। दर्जी हमारे स्कूलके ही कोई भूतपूर्व विद्यार्थी थे, जो जातसे दर्जी नही बल्कि अशरफ खान्दानसे तअल्लुक रखते थे। वे बाहर घूमे हुए थे, और वही मशीन चलाने और दर्जीके कामको उन्होने सीखा था। दावा तो उनका पूरे उस्ताद होनेका था, किन्तु कोटोके सिलकर आनेपर सभी पछता रहे थे। उनके लम्बे-लम्बे अग्रेजी बाल, तडक-भडकवाली पोशाकमे छोटी एडीवाला लेडी-शू भी शामिल था, जो मेरी नजरमे, उस समय अनुचित नही था। शायद टूर्नामेंटमे हमारे स्कूलको कोई इनाम नही मिला, और मिलता क्या, सिर्फ गल्ताका कोट सिला लेनेके लिए !

आरम्भमें अपने कस्बाती लडकोके सामने मै अपनेको हकीर समझता था। उनकी सरौतेकी तरह सरासर चलती ज़बान—सो भी 'आइन रहा' 'गइन रहा' जैसी किसी विदेशी भाषामे—मेरे जैसे गँवारू लडकेपर रोब जमाये बिना कैसे बाकी रह सकती ? मै जनक, द्वारिकाप्रसाद और दूसरे भी कितने कस्बाती लडकोको बहुत तेज़ विद्यार्थी समझता था, किन्तु वह धाक ज्यादा दिन तक क़ायम न रही। तीन-चार महीना बीतते-बीतते मै सारे दर्जेमे अव्वल हो गया। गणितमे जहाँ दूसरे लड़कोकी रूह काँपती थी, वह मेरे लिए बायें हाथका खेल था। इतिहासमें सन्को छोड-कर और बातोको तो मै पाठ समाप्त होनेके साथ दुहरा दिया करता। भूगोलके अध्यापक बा० जगन्नाथराय तो कितनी ही बार पाठ सुननेका काम मेरे ऊपर छोड दिया करते। बा० जगन्नाथरायके पहिले एक कम-उमरके मौलवी कुछ दिनो तक अध्यापक रहे। सुना जाता था वे अरबी-फारसी भी जानते है, किन्तु हमे तो बहारि-स्तान और-उर्दू व्याकरण भर पढ़नेसे मतलब था। उनके चले जानेपर भाषा पढ़ाने-का काम बूढ़े मौलवी गुलामगौसखाँ करते थे।

मौ० गुलामगौस ठिगने-पतले कदके ६० वर्षके बूढे आदमी थे। उनके पट्टे और दाढीके सभी बाल सफेद थे। एक बार किसीने खबर उड़ा दी '५६ सालामे सभी अध्यापक हटाये जानेवाले है', तो कितने ही महीनो तक हर हफ्ते उनके बालोमें खिज़ाब लगता रहा। बेचारोको बीस रुपया मासिक मिलता था, और उसीके सहारे तीन लडको और घरके दूसरे व्यक्तियोका पालन-पोषण करना था। उनका मझला लड़का इब्राहीम हमारा सहपाठी था। वह और उसका छोटा भाई पिताके साथ रहते थे। बड़ा लड़का यासीन (?) मेट्रिकमें फेल होने लगा, तो मौलवी साहेबने उसे गोरखपुर ड्राफ्टमैनका काम सीखनेको भेज दिया। १५) महीना तो

उन्हे बडे लडकेको भेज देना पडता था, बाकी पॉच रुपयेमे वे कैसे अपना गुजारा करते थे, यह समझना मेरे लिए एक पहेली थी। मौलवी साहेबको गुस्सा बहुत कम आता, जब आता तो लडकोपर तडातड छडियॉ टूटती। हमारी किताबमें जहाँ-तहॉ पुराने पैगम्बरो, मूसा, दाऊद आदिका भी जिक्र आता, फिर तो मौलवी साहेब "कसस्सुले-अबिया" लेकर बैठ जाते, और पाठ पढनेका सारा समय उसीमें बीत जाता।

पडित सीताराम श्रोत्रिय बडे गुरु-गम्भीर तबियतके आदमी थे। विद्यार्थी उनका रोब सबसे ज्यादा मानते थे। गणित और हिन्दीका अध्यापन उनके हाथमें था। उर्दूके विद्यार्थी होनेसे मुझे गणितकेलिए ही उनके पास जाना पडता। गणितमे मै तेज था, इसलिए मार खानेकी नौबत नही आती थी। हॉ, एक बारकी जाडोकी बात है। इम्तिहान करीब आनेपर विद्यार्थियोसे दूनी मेहनत ली जाती थी। दिनकी पढाई तो होती ही थी, रातको खानेके बाद लालटेनके किनारे बैठकर हम पाठ याद किया करते। सबकी तरह मै भी पढने जाता, लेकिन सौ-सौ मनकी नीद मेरे पलकोपर बैठी रहती। पडितजी और तृतीय अध्यापक पासमे चारपाई बिछाकर बैठते, कि कोई सोने न पावे। जैसे ही वे लोग वहॉसे हटे, कि बन्दा वहाँसे रफूचक्कर। बोर्डिंगसे ढूँढकर पकडके आनेपर—'पानी पीने गया था'का बहाना करता था। अक्सर दोनो हथेलियोपर गाल रखकर जमीनके पास झुककर मै ऐसे पढता था, जिसमे सो रहा हूँ या पढ रहा हूँ, इसका पता न मालूम हो सके। अध्यापकोका हुक्म था, कि सोनेवाले लडकेकी नाक देखनेवाला लडका मल दे। मेरी नाक मलनेकी किसीको हिम्मत न होती थी, इसलिए नही कि मै शरीरसे बलिष्ट था, और पीछे खबर लेता, बल्कि मै दर्जेका सबसे तेज लडका था। किसी काममे व्यस्त रहनेपर पाठ सुनने और सवाल करनेका काम कितनी ही बार मुझको मिल जाता था, और इतिहास, भूगोल, दूसरी भाषा आदि विषय—, जो कि बा० जगन्नाथरायके पास थे—तो प्राय हर रोज ही मेरे हाथमे आते थे। नाक पकडनेवालेपर दनादन दो-तीन कडे-कडे सवाल कर देता। एकका न जवाब देनेपर बेचके ऊपर खडा होना, दूसरेके जवाब न देनेपर यदि बच गये, तो तीसरे तक तो जरूर अध्यापकको दृढ हो जाता कि लडका पाठ नही याद करता, और बा० जगन्नाथराय जैसे शान्त स्वभावके आदमीको भी छडी उठानी पडती। यही कारण था, जो कि सहपाठी मुझे छेडना नही चाहते थे। प० सीताराम और दूसरे अध्यापकोको मालूम हो गया था, कि मै रातको नही पढता। लेकिन करते क्या, इतिहास, भूगोल जैसी

रटनेवाली चीजे तो मुझे पढातेके साथ याद हो जाती थीं, फिर जवाब देनेमे चूक हो तब न छडी खीची जावे। एक दिन पडितजीने गणितका ऐसा प्रश्न दे दिया, जिसे दो-तीन मास पहिले पढकर हम छोडे हुए थे। आवृत्ति करते थे, किन्तु सारे कायदोकी रोज-रोज आवृत्ति थोडे ही हो सकती थी। सवालमे गलती हुई। और सब लडके तो बच गये, पडितजीने 'बडे तेजूखाँ बने हैं' कहकर मेरे ऊपर ताबड-तोबड दो-तीन छडी जमाई। पढनेकेलिए छडी खानेका शायद यही एक मौका मुझे निजामाबादमे मिला।

मौ० गुलामगौसखाँको गुस्सा कभी-कभी आता था, किन्तु वह रहता था बहुत कम देर तक। प० सीतारामका गुस्सा बहुत देर तक रहता था, और विद्यार्थियोसे खुश होकर बात करते तो उन्हे देखा ही नही जाता था। बा० जगन्नाथराय बिल्कुल साधु-पुरुष थे। वे थे भी वैष्णव। उनके गलेमे पतली तुलसीकी कठी थी। रोज स्नान-पूजा करते। साधु-सन्तोके सत्सगमे रहते। उस वक्त टौसके घाटपर छोटीसी शिवलियाके सामने एक भभूत-जटाधारी साधु आये थे। बाबू साहेब शाम-सवेरे रोज वहाँ पहुँचते, और महात्माके सत्सग और गाँजा-मडलीमे शामिल होते थे। उनको गुस्सा नहीके बराबर था। यदि कभी किसी लडकेको मारना भी पडता, तो बेमनसे और हल्के हाथो। वे बडे विचारसहिष्णु थे, जो कि खट्कर्मी भक्त लोगोमे बहुत कम पाया जाता है। रविवारको बाबू साहेब अलोना व्रत रखते थे, उस दिन वे एक बार पूरी हलवा या रोटी हलवा खाते थे। मेरा उस दिनका नियम था गोश्त पकाकर खानेका, सो भी बाबू साहेबके चौकेसे ३ हाथ दूरवाले तीसरे चौकेमे। वह कभी-कभी सहृदयताके साथ बोलते भी—'अरे केदारनाथ, रविवारको तो मास न खाया करो।' मै कहता—'क्या करूँ बाबू साहेब, दूसरे दिन मास खरीदकर लाने, मसाला पीसने और पकानेकेलिए छुट्टी कहाँ मिलती है।' बात भी कुछ सच ही थी, और वे और कुछ नही बोलते थे। और विषयोके साथ मेरी द्वितीय भाषा हिन्दी और भूगोलकी नकशाकशी भी बा० जगन्नाथरायके पास ही थे। उर्दूकी अपेक्षा मेरे हिन्दीके अक्षर—बनाकर लिखनेपर बडे सुन्दर होते थे, अतएव उसकेलिए तारीफ हो तो कोई खास बात नही थी, किन्तु नक्शा बनानेमे भी जो शाबाशी मुझे मिलती थी, उसे तो मै भी अनुचित समझता था। जल-स्थलो, प्रान्त-रियासतोपर रग-बिरगी पेसलसे खीचकर मै सिर्फ आँखमे धूल भर झोक देता था, नही तो मेरी सीमारेखाये बिल्कुल ही गलत होती थी। यह बारीकी शायद मुझको ही मालूम होती थी। वस्तुत' नानाकी कितनी ही कथाओको सुननेके बाद जब मुझे उनके बतलाये शहर

और स्थान नकशेमे मिलने लगे तो मुझे उसमें एक अजब तरहकी दिलचस्पी पैदा हो गई। नकशेमे कौन जगह कहाँ है, इसे सचमुच ही मै कभी-कभी आँख मूँदकर बतला सकता था। हो सकता है, इन्ही कारणोसे अपना खीचा नकशा मुझे सरासर दोष-पूर्ण मालूम होता था, जब कि अध्यापक और दूसरे सहपाठी उसकी तारीफ करते थे।

सालके अन्तमे जब हम पहुँच रहे थे, तो कितनी ही बार पडित सीतारामजी दर्जा ६ (यही उस वक्त मिडलका अन्तिम दर्जा था) और दर्जा ५के विद्यार्थियोको इकट्ठा गणितके सवाल दे दिया करते थे। नरसिंहराय दर्जा ६ के सबसे तेज़ लड़के थे, और पीछे मिडल परीक्षामे उन्हे सरकारी छात्रवृत्ति मिली, लेकिन एक दर्जा नीचे रहते भी मै कितनी ही बार उनके बराबर नम्बर लाता था। निजामाबादमे अब अधिक विस्तृत क्षेत्रमे (कुछ विशेष चुने हुए विद्यार्थि-मडलीमे) मेरी प्रतिभाको प्रतियोगिताका मौका मिला, और उससे ज़रूर अधिक फ़ायदा हुआ, किन्तु वह यथेष्ट न था। अखबारोको हम जानते न थे। पाठ्यपुस्तकोके अतिरिक्त यदि कभी "हातिमताई" या "आराइश-महफिल" किसीके हाथ लग गई, तो बहुत समझिये। हाँ, शिक्षाविभागकी ओरसे मनाही होनेपर भी पाठ्यपुस्तकोकी "कुजियाँ" हमारे पास ज़रूर पहुँच जाती थी।

बरसातके बाद स्कूलकी खपड़ैलको फिरसे छाने और शायद नई कड़ी बदलनेकी भी जरूरत पड़ी, इसलिए स्कूल हटाकर एक बडी हवेलीमे ले जाया गया। निजामा-बादके कायस्थ किसी वक्त बड़ी अच्छी हालतमे थे। अब बहुतोकी ज़मीदारी बिकबिका चुकी थी। हाँ, उनमेंसे कुछ साधारण क्लर्क या पटवारी जैसी नौकरियों-पर थे, पंडित अयोध्यासिंहके छोटे भाई प० गुरुसेवकसिंह उपाध्याय डिप्टी कलेक्टर थे; लेकिन पुराने पक्के मकानो और उनके भीतरके सामानसे ही मालूम हो जाता था, कि पहिलेसे अब जमाना पस्तीका है। जिस घरमे हम गये थे, वह किसी हकीम साहेबका था। आजकल वह हकीमी करते थे, और रोज़ी कमानेकेलिए नही, मुफ्त सेवाके ख्यालसे। हवेली एक विशाल इमारत थी, जिसमे कितने ही आँगन, दालान और कमरे-कोठे थे। हमारी पढाई कोठेपरके कमरोमे हुआ करती थी।

मार्च (१९०७ ई०)के आस-पास हमारी वार्षिक परीक्षा समाप्त हुई। छुट्टीमे मै ननिहाल आया। वहाँ उस वक्त प्लेग था। नानीने दूसरे ही दिन मुझे कनैलाके-लिए रवाना किया। अब मेरा भी सस्कृतिका तल कुछ ऊँचा हो चुका था। कनैला मेरेलिए निरा ऊजड़ गाँव मालूम होता था। जबसे वह गाँव बसा था, तबसे अब तक शायद मुझसे ज्यादा पढ़ा-लिखा आदमी उस गाँवमे नही पैदा हुआ। मेरे तीन

छोटे भाई श्यामलाल, रामधारी और श्रीनाथ पढ रहे थे, किन्तु अभी निचले दर्जोमे। गाँवमे दो-एक ही और आदमी थे, जिन्होने किसी मदर्सेमे शिक्षा पाई हो। इस प्रकार शिक्षितके मनोरजनका वहाँ कोई साधन न था। कनैलामे अब भी कसरत और अखाड़ेका रवाज था, यद्यपि वह अधिकतर बरसात हीमे होता था, जब कि कोई नट आकर अखाडा बाँधता, किन्तु मेरी रुचिको उधर जानेका कभी मौका ही नही मिला। आमके दिनोमे यदि पहुँच गया, तो भरोसा पाँडेसे बगीचे-ताल-पोखरा और ऊसर-के अकेले पीपरके भूतोकी कथाये सुनता। आश्विनके नवरात्रमे जो पहुँचा, तो किन्नाके बाबूके देवखुर (देवस्थान)पर भूत खेलनेवाली औरतोसे 'छोड दे' 'क्यो पकडा', 'तुम्हे क्या पूजा चाहिए' आदि पूछता, बहुत रात तर्क मनोरजन करता। और अब ये मनोरजन कुछ फीके भी पडने लगे थे।

कनैलामे एक दो दिन ठहरकर मै बछवल चला गया। बछवल मेरी आँखोको कुछ अधिक सभ्य जँचता था, और यही कारण था कि पीछे मेरे रहनेके समयमे कनैला और बछवल आधे-आधेके साझीदार थे। फूफा महादेव पडितकी विद्वत्तासे लाभ उठानेके अभिप्रायसे न मै वहाँ जाता था, और न उसके लिए अवसर ही था। मेरा अधिक समय यागेश और दूसरे समवयस्क विद्यार्थियोके साथ खेलने-कूदने, गपशपमे कटता था। इन खेल-कूदोमे तालमे चरनेवाले घोडे-घोडियोको पकडकर चढना भी था। एक दिन मै और यागेश तालसे घोडे पकडकर लाने गये। लगामकी जगह शायद रस्सी हम लोगोके पास थी। यागेश पहिले चढे, और मै अपनी घोडीपर पीछे। यागेशके घोडेको दौडते देख मेरी घोडी भी दौड पडी। रोकनेसे वहाँ रुकै कौन ? एक जगह मेडकी छलाग मारते वक्त मै नीचे आ पडा। घोडीकी एक टाप खोपडीके पीछे ज़रासा छूती चली गई। घाव सख़्त नही लगी, किन्तु ख़ून बहने लगा। दूसरे दिन जब बुआने पूछा तो कह दिया, दालानकी कडी लग गई है।

बछवलमे ही रहते पता लगा, कि नानीका प्लेगसे देहान्त हो गया। मिडलके परीक्षा-परिणामके निकल जानेपर निजामाबाद जाना पडा, लेकिन वहाँ ज्यादा दिन नही रहा। नानाकी शिकारकी कथाओ और नवाज़न्दा-बाजन्दाके सैर-सपाटोने रग लाना शुरू किया। खाने-पीनेके लिए उस समय मेरे पास आटा-चावल था, उसे बाजारमे बेच डाला। कुल मिलाकर डेढ-दो रुपये हो गये। मै सीधे फरिहा स्टेशन पहुँचा। मन और जीभपर था बाजिन्दाका सुनहला वाक्य—

"सैर कर दुनियाकी गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?
ज़िन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ ?"

फरिहा स्टेशनसे टिकट लेते वक्त बनारस ही सामने था, क्योकि उसीको मैने देखा था। टिकट ले गाड़ीपर बैठा। दिनमे ही किसी वक़्त बनारस पहुँचा। पिताके मामाका मठ तो मालूम था, किन्तु अकेला जानेपर वहाँ प्रश्नोकी झडी लग जाती, इसलिए वहाँ जाना उचित नही जँचा। सोच-समझकर उसी मठके बगलमे जगे-सरनाथके मन्दिरमे गया। वहाँ कितने ही सस्कृतके विद्यार्थी रहते थे। पूछनेपर उन्हे बतला दिया, मै भी सस्कृत पढनेके लिए आया हूँ। हमारी जातिके ब्राह्मणो—सरयू-पारियो—मे नातेदारीसे बाहर कच्ची रसोई खानेका रवाज नही, इसलिए अपने हाथसे रोटी बनाई। स्टेशनसे उतरनेसे लेकर बराबर मनमे खिचड़ीसी पक रही थी। नवाजिन्दा-बाजिन्दा दुनियाकी सैरके लिए यहाँ तक भगा ला सकते थे, लेकिन आगे-के लिए पर कटे मालूम होते थे। पासके पैसे खतम होना चाहते थे। जल्दी निर्णय करना था, नही तो लौटने भरका किराया भी समाप्त होनेवाला था। सब सोच-साचकर शाम तक मनने और आगेकी उडानको अनुचित बतलाया, और कहा बस, रानीकीसरायका टिकट कटाओ और लौट चलो।

रातकी गाडी पकडकर, और शायद मऊमे ट्रेनको बदलकर जब मै आगे चला, तो नीदने जोर पकडा, और रानीकीसराय पारकर गाडी फरिहा पहुँची तो आँख खुली। उतरे, लेकिन टिकटसे एक स्टेशन फाजिल चले आये थे। पासमे पैसा था भी नही। शायद स्टेशनमास्टरने तग नहीं किया।

रात बिताई, सबेरे पन्दहा जानेमे नानाके सवालोका डर मालूम होने लगा और मैने कनैलाका रास्ता पकडा।

## १०

# प्रथम उड़ान

पहिला प्रयास विफल रहा, उसमे मै असफल रहा; दिलने गवाही दी—तुम नवाजन्दा-बाजन्दा बनने लायक नही हो। लेकिन आगे कुछ ऐसी घटनाये घटी जिन्होने फिर मुझे साहस करनेके लिए मजबूर किया।

नानीके मरनेपर अब पन्दहामे नाना अकेले रह गये थे। आमोके पकनेका मौसिम था मईका मध्य या अन्त, जब मै अपनी बहिन रामप्यारीके साथ पन्दहा पहुँचा। हमी

दोनो बहिन-भाई खाना बनाते और घरका इन्तजाम करते, नानाके पैसा-कौडीका भी मै ही खजानची था। एक दिन मक्खनको पिघलाकर घी बनाया, पिघले हुए घीको बिल्लीके डरसे एक उल्टी नाँदके नीचे दबाना पडता था। घीको दबाते वक्त, अँधेरे घरमे मुझे मालूम नही हुआ कि मटकी कहाँ है, नाँदका किनारा मटकीके ऊपर पडा। मै तो नाँद दबाकर निश्चिन्त था, किन्तु दूसरे दिन देखा, तो सारा घी—करीब दो सेर—गिरकर जमीनमे फैला हुआ है। नाना गुस्सा होगे, इस डरने मुझपर आतक जमाया, और फिर बैलकी बिक्रीके आये बाईस रुपयोको लेकर मै रानीकीसराय स्टेशनकी ओर चल पडा। रास्तेमे शोभितका बाग पडता था। लाल-पीले आम दरख्तोपर पके हुए थे। शायद शोभित हीका आग्रह हुआ—दो-चार आमे खाकर जाओ। लग्गी ली और आम तोड-तोडकर खाने लगे। रेलका समय नजदीक जानकर मै स्टेशन गया। मुझे ख्याल था, नानाको इतनी जल्दी खबर नही मिलैगी, क्योकि मैने बहिनसे भी अपना इरादा जाहिर नही किया था। मामूली कपडे जो बदनपर थे, उन्हीके साथ निकल पडा था। स्टेशनपर पहुँच गया। ट्रेनका लाइनक्लियर हो गया था, इसी समय देखा, नानाकी विशाल मूर्ति बडी तेजीसे लपकती हुई स्टेशनकी ओर आ रही है। शायद शोभितसे उन्हे मालूम हो गया था कि मै स्टेशनकी ओर गया हूँ। मैने सीधे बाजार जानेवाली स्टेशनकी सडक पकडी, फिर पक्की सडक पकड-कर बाजार भर तो धीरे-धीरे, किन्तु उसके बाद तेज चलते-दौडते दूसरे स्टेशन आजम-गढका रास्ता लिया। स्टेशनपर मुझे न पा नानाने न जाने क्या ख्याल किया। शायद उन्होने सोचा हो, शोभितने उन्हे चकमा दे दिया। चाहे यह निर्णय न कर पाये हो कि अगले स्टेशनपर पूरबकी ओर गया या पच्छिमकी ओर। खैर, यदि उसी ट्रेनसे वे स्टेशन चले आये होते, तो मेरे पकडे जानेकी पूरी सम्भावना थी, लेकिन उन्होने वैसा किया नही।

आजमगढ स्टेशन शहरसे बहुत दूर है, और आसपासके लोग उसे आजमगढ़ न कहकर पासके गाँवके नामसे पल्हनी कहते है। रानीकीसरायसे वह चार मीलसे कम ही है—लोगोके कथनानुसार। सिग्नल गिर चुका था, जब मै रेलवे-क्रासिग-पर पहुँचा। स्टेशनपर पहुँच जानेपर जानमे जान आई। सूर्य अस्त हो चुके थे जब कि मै ट्रेनमे सवार हुआ। टिकट बनारसका लिया, क्योकि वही रास्ता जाना हुआ था। बनारसमे एकाध दिन ठहरा या आगे रवाना हुआ, इसका कोई स्मरण नही। वहाँसे मुगलसराय और फिर विन्ध्याचल जरूर गया। ये सब पहिलेके देखे स्थान थे। विन्ध्याचलमे शायद पुराने परिचित पडाके यहाँ गया था। बनारस-

मुगलसराय-विन्ध्याचल-मुगलसरायके बीच हीमे मैने सोलह-सत्रह रुपये खर्च कर डाले थे; जरूर इस आवा-जाहीमे मैने कई दिन खर्च किये होगे, क्योकि गुलबकावली (हिन्दी)की किताब, लोटा-डोरी और एक गमछा छोड मैने सारे पैसे खाने हीपर खर्च किये थे। मन जल्दी किसी निर्णयपर नही पहुँच रहा था। हिचकिचाहट जरूर थी, किन्तु घर लौटना असम्भव था, वहाँ दो सेर घी बरबाद करनेका ही कसूर न था, बल्कि बाईस रुपये लेकर रफूचक्कर होने, और उन्हे खर्च कर डालनेका भी सगीन जुर्म सरपर था। अन्तमे हार-पछताकर मनको निर्णय करना ही पडा—चलो कलकत्ता।

ट्रेन मुसाफिरोसे खचाखच भरी थी, मै किसी तरह उसमे सवार हुआ। किस तरहकी ट्रेन थी यह तो मुझे याद नही, किन्तु इतना जरूर स्मरण है, शामसे रातभर चलकर सबेरे वह हवडा पहुँची। लिलुआमे हमारे टिकट ले लिये गये थे। कलकत्तामे कहाँ जावेगे, शायद रास्तेमे यह ख्याल तग नही कर रहा था, क्योकि समझा था वह भी बनारस ही ऐसा शहर होगा। लेकिन, जब हवडाके विशाल स्टेशनपर उतरा, तो वहाँकी अपार भीडको देखकर मुझे वह एक शहर या बडा मेला जान पडने लगा। उस वक्त हवडा स्टेशनमे तीसरे दर्जेके मुसाफिर जहाँ बैठ ट्रेनका इन्तजार करते थे, वह मुसाफिरखाना दूसरी तरहका था। फर्श इतना साफ सीमेटका न था। सिग्नल जैसे अनेक जोडवाले लोहके ऊँचे खम्भोपर शायद टीनकी छत थी। उस मेलेमे मेरी अक्ल गुम हो गई। कहाँ चलना है, इसपर पहिले विचार नही किया था, यहाँ आनेपर तरह-तरहकी बोलियाँ, विचित्र वेश-भूषा दिखलाई पड रही थी। सडकपर जाकर देखे, गगाके पक्के घाट, पुलपर चलती अपार जनराशि, फिर नदीके आर-पार शहरकी अट्टालिकाये दिखलाई पडी, उन्हे देखकर मनपर एक आतक छा गया। कहाँ जावे, किसके पास जावें ? बच्चा मामा या जवाहिर मामाके पास जावेगे—यह किसीसे पूछना अपने हीको भारी हिमाकत जँचती थी। लाचार, लौटकर मुसाफिरखानेके एक खम्भेके पास सटकर बैठ गया।

शायद इस तरह चुपचाप बैठे, और अपने कियेपर पछताते मुझे एक युग बीत गये। मै अथाह समुद्रमे गोते लगा रहा था। समस्याके सुलझनेका कोई रास्ता नही दीख पडता था। शायद मै अब भी सघर्षमे डटा हुआ था, या मैदान छोडकर "कश्ती खुदा पै छोड दे लगरको तोड दे" कर रहा था। उसी समय एक गोरा पतला-सा लडका—मेरी उम्रसे कुछ ही ज्यादाका—मेरी ओर आया। उसके वदनपर धोती-कुर्तेके अतिरिक्त शिरपर शायद टोपी भी थी। वह भुक्तभोगी था, इसलिए

विना किसी हिचकिचाहटके मेरे पास चला आया। वात कैसे शुरू की इसकी कुछ याद नही। उसने ज़रूर पूछा होगा—कहाँसे आये हो ? हम मद्रसा जानेवाले लड़के कुर्तेकी आस्तीनसे सोख्तेका काम लेते थे, शायद उससे उसे अनुमान हुआ हो, कि मै स्कूलका विद्यार्थी हूँ। अथवा दीहाती चरवाहे और दीहाती विद्यार्थीमे भी अन्तर तो हुआ ही करता है। हमारी वातचीतके वाद यह पता लगा, कि हमारे सहयोगी वा० महादेवप्रसाद मेरी ही तरह हँडिया तहसीली स्कूलके छठे दर्जेके उर्दूके विद्यार्थी थे, और अवके ही साल पाँचवेंसे छठवे दर्जेमे आये थे। याद नही नवाजन्दा-वाजन्दा-की प्रेरणाकी मार उनके ऊपर भी पडी थी, उनके तुरन्त भागकर आनेका क्या कारण हुआ था, यह भी स्मरण नही। यह मालूम हुआ, कि वह मुझसे कई दिन पहिले कलकत्ता पहुँचे। मै तो दो-चार आनेमे खरीदकर एक गुलवकावलीका मालिक वना था, और हमारे महादेवप्रसाद अपना सारा बस्ता ही लेते आये थे। मेरी किंकर्तव्यविमूढताको देखकर उन्होने हिम्मत वढाते हुए कहा—मेरे ऊपर भी वैसे ही वीती थी। लेकिन अव आठ आने महीनेपर हमने वासा किराया ले रखा है। हमारी ही तरह भागकर एक और तरुण साथ ही रहते है। महादेवप्रसाद मेरे लिये घोर अन्धकारमे विजलीके चिराग वनकर मिले। नवाजन्दा-वाजन्दाकी लगाई आग वुझी नही थी, वह राखके वडे वोझसे दव गई थी। उनकी वातोको सुनकर मेरी हिम्मत फिर ताजी हो गई।

हम लोग वहाँसे उठकर हवडा पुल पार हुए। गगातटवाली सडकको पकडकर जगन्नाथघाटकी ओर मुडे—दिशा तो तवसे आज तक कलकत्तामे मुझे मालूम ही नही होती। टकसालके पास गुजरते वक्त महादेवप्रसादजीने वतलाया—यही रुपये-पैसे ढाले जाते है। इससे भी उधर मेरा चित्त इसलिए आकर्षित हुआ, कि हम लोग रोजीका कोई सिलसिला ढूँढ रहे थे, और मालूम हुआ था, कि वहाँ काम मिलने की सम्भावना है। टकसालसे आगे जोडा साखूकी किसी गलीमे पहुँचे। वहाँ आस-पास अधिकतर 'खोलावाडी' (वाँसके चँचरेकी दीवार और खपडैलकी छतके मकान) थी। कलकत्तामे आठ आने महीनेका वासा सुनकर मुझे आश्चर्य नही हुआ, क्योकि अव तक किराये-भाडेसे मुझे वास्ता ही कव पडा था ? आश्चर्य होता भी तो अव वासा देखकर उसके लिए गुजाइश नही रह जाती। वासा नही वह खुला हुआ वडासा मचान था। शाखू-खम्भे गडे थे, उनपर कडियोपर वाँसके फट्ठे विछाये हुए थे। नीचे वडी सीड थी, किन्तु नीचे हमे रहना न था, वहाँ तो वाँस और शाखूके वल्ले रखे हुए थे। ऊपर भी शायद एक ओर कुछ वाँसके फट्ठे रखे हुए थे। वाँसकी

सीढीसे ऊपर जानेका रास्ता था। सिर्फ एक या डेढ तरफ चाँचरकी दीवार थी, नही तो चारो ओरसे 'कोठा' खुला हुआ था। फर्शपर मिट्टी भी नही थी, सिर्फ़ रसोईकी जगह थोडीसी मिट्टी डाली हुई थी, जिसमें चूल्हेकी आगसे वह जल न जावे। वस्तुत: बाडीवालेको तो हमसे आठ आना भी नही लेना चाहिए था, उतनेका तो हम उसकी चीजोकी रखवाली कर दिया करते थे। वहाँ पहुँचनेपर बीस-बाईस बरसके एक साँवले-पतले-लम्बे जवान मिले। महादेवप्रसादने हमारा परिचय कराया। हम सबमे वही सबसे बुजुर्ग थे, उम्रके ख्यालसे, नही तो उनके लिए काला अक्षर भैस बराबर था। वे बस्ती ज़िलेके ब्राह्मण-पुत्र थे। घरमे बहुतसी गाय-भैसे थी। हमारे दोस्त शायद अपने भाइयोमे सबसे छोटे थे, और उनका काम चरवाही करना था। गर्मियों या जाडोमे वे अपने पशुओको लेकर नेपाल-तराईके जगलोमे चले जाते थे। वहाँके दृश्योको वह बडे उत्साहके साथ वर्णित करते थे। शेर या हाथीसे साबिका पडनेकी बात तो उन्होने नही की, किन्तु झाडियोमे उलझ जानेपर भैसोकी सीगको उन्हे 'दाव'से काट देना पडता था। उनको रह-रहकर अपनी तरुण स्त्री याद आती थी, जो दिनभरके थके-माँदे गोसारमे सोये अपने पतिदेवके पैरोमे तेलकी मालिश करती थी।

रसोई कौन बनावे—यह प्रश्न उठनेपर महादेवप्रसादजीके कायस्थ होनेसे उनकी बात ही नही उठ सकती थी। रहे बाकी दो आदमी, उसमे रसोई बनानेमे मै कच्चा भी था, साथ ही बस्तीवाले देवता किसी दूसरेके हाथका पका खाना खानेको तैयार न थे। स्कूलकी आबो-हवाने मुझमे कुछ हेरफेर ज़रूर किया था, जिससे कि मैंने आसानीसे एक अज्ञात ब्राह्मणके हाथका भोजन स्वीकार किया।

हमारे पैसे खर्च होते जा रहे थे, इसलिए सबसे ज्यादा फिक्र हमे काम ढूँढ़नेकी थी। १४, १५ वर्षके हम दोनो जैसे लड़कोको नौकरी मिलना आसान काम नही था, तो भी हमारा अधिक समय उसीकी तलाशमे बीतता था। मेरा परिचित तो कोई वहाँ मालूम नही हुआ, किन्तु महादेवप्रसाद अपने परिचितो—रेलमे पैटमैन या कुलीका काम करनेवालो—के पास ले गये। कभी हम जगन्नाथ घाटपर जा बैठते थे। उस वक्त वहाँ एक अधेड साधु आया हुआ था, जो अग्रेजी सर्कार और अग्रेजोके खिलाफ कडे-कडे शब्द निकालता रहता था। हमारे जैसे कितने निठल्ले लोग उसके गिर्द जमा होकर सुनते रहते थे। उस समय बगभगके विरुद्ध सशस्त्र आन्दोलन शुरू हो गया था, किन्तु मेरे जैसेको उस दुनियाका पता ही कहाँ था ? सुननेवालोमेसे किसी-किसीको कहते सुना—जरूर यह कोई जासूस है। हाँ, जासूस

या पागल छोड़ वह तीसरा आदमी हो भी नहीं सकता था। दिनमें एक बार हम हवड़ा स्टेशनपर ज़रूर पहुँच जाते थे, और दो-चार ही दिनके भीतर अपने जैसे किंकर्तव्यविमूढ़ दो और व्यक्तियोंको अपनी चौकड़ीमें भरती करनेमें सफल हुए, इनमें एक आराके ३० वर्षकी उम्रके थे, और दूसरे हम दोनोंके ही समवयस्क तथा थोड़ा-बहुत पढ़े हुए जौनपुर ज़िलेके एक क्षत्रियपुत्र। शायद कोई छठाँ भी आदमी रहा हो।

हमने अपना एक कम्यून् (साम्यवादी समाज) क़ायम कर लिया था। मैं, और मेराका ख्याल भूल गये थे। जिसके पास जो पैसा था, वह सार्वजनिक खर्चके लिए हाज़िर था। तै किया गया कि जिसको भी नौकरी मिले, कमाई उसके खर्चमें लाई जावेगी। सबेरे हम मूरी-भूँजापर गुज़ारा कर लेते। दिनमें एक बार शामको दिन रहते ही रोटी बनाकर खा लिया करते थे। दिनमें दो-दोकी जोड़ी बनाकर नौकरीकी तलाशमें घूमा करते। कभी खिदिरपूर डक्में जहाज़से बस्ता उठानेके कामकी तलाशमें जाते, कभी कोयला-डिपोमें कोयलाक़ुलीके कामके लिए। हमारे लिखे पढ़ेका भी वहाँ कोई उपयोग हो सकता है, इससे हम निराश थे; इसलिए जाँगरकी रोज़ीपर ही हमारी आशा थी। खैर, जहाज़-कोयला-माल-गोदामके क़ुलीका तो कोई काम मिला नहीं; और मिलनेपर क्या महादेव और मेरे ऐसे दुधमुँहे छोकरे—जिन्होंने पढ़नेके सिवा हाथसे कभी काम नहीं किया—उस कामको कर भी पाते? अधिकतर मैं और महादेव साथ रहते, हम दोनोंमें बहुत अधिक समानता थी। शायद कभी-कभी अकेले भी घूमने चला जाता। एक बार हवड़ामें बर्न कम्पनीके कारखानेमें कामका पता लगा। क़ुलियोंकी भरती ठीकेदारों द्वारा होती थी, उसने मुझे काम दे दिया। काम था मालगाड़ीके धुरेके दोनों सिरो—जहाँपर गाड़ी रखी जाती है—को तेल और लत्तेसे रगड़कर चमचम करना। वहाँ टीनकी छतके नीचे सैकड़ों लोहार-मज़दूर काम कर रहे थे। जगह-जगह नलकोंसे हवा निकल रही थी, जिनके सहारे पत्थरके कोयलेकी अँगीठियाँ जल रही थीं। हथौड़े और घनकी आवाज़से सारी टीनकी छत गूँज रही थी। मुझे याद नहीं, महादेवप्रसाद भी उस समय मेरे साथ थे या नहीं। धुरा रगड़नेमें थोड़ी ही देर बाद हाथ दुखने लगता। इधर-उधर निरीक्षकको न देखकर, कुछ सुस्ताते और फिर रगड़, जब उससे भी काम न बनता, तो पाँच-सात बार पेशाब करने चले जाते। मालूम नहीं, दो दिन काम किया या चार दिन। रहनेका इन्तज़ाम एक मिस्त्रीके साथ था। मिस्त्रीकी स्त्री मेरे खाने-पीनेकी ओर बड़ा ध्यान रखती थी, रसोई मैं खुद

बना लेता था। मेहनत कुछ भी रही हो, किन्तु उससे डरकर नही बल्कि वहाँसे जोड़ासाखूमे, साथियोसे मिलने आया इसी ख्यालसे, 'गुलबकावली' और लोटा-डोरको भी वही मिस्त्रीके यहाँ छोड आया था।

इधर आनेपर लौटना भूल गया। साथियोको छोडकर जाना पडता, शायद यह भी उसमे कारण हुआ। फिर नौकरीकी तलाशमे—और बहुत कुछ निरुद्देश्य चक्कर काटना आरम्भ हुआ। कभी चीतपुर, तो कभी धर्मतल्ला, कभी खिदिरपुर तो कभी नीमतल्ला। दिनमे दस घटेसे क्या कम घूमते रहे होगे। दीवारोपर चिपके बँगला इश्तिहारोको देखते-देखते न जाने कब बँगला वर्णमाला मुझे याद हो गई। हमारे वासेके बगलवाले घरोमे बगाली गृहस्थ रहते थे। उनके घरोकी स्त्रियाँ कभी-कभी कुछ बात भी करती थी, किन्तु मै बहुत डरता था। मैने सुन रखा था, बगालमे बडा जादू है वहाँकी औरते जादू मारकर मेढा बना लेती है। मुझको उस वक्त इन बातोपर पूरा विश्वास था, और मै मेढा बननेके लिए तैयार न था।

एक दिन मै अकेला धर्मतल्लासे कही आगे जा रहा था। एक डाकिया भी उधर ही जा रहा था। पूछा-पेख हुई। नौकरीकी तलाश कहनेपर कहा—'नौकरी-की क्या कमी है। बस्ता (बोरा) ढो सकते हो ?' 'क्यो नही, और मेरे और भी साथी है ?' 'अच्छा तो शामको मेरे वासामे कुलीबाजारमे आओ।' 'मै अपने और साथियोको लेकर आज आऊँगा। हम सब एक ही जगह काम करेगे, एक ही जगह रहेगे।' 'अच्छा' कहकर पोस्टमैन चला गया। मै लौटकर अपने वासेमे आया। वहाँ जौनपुरी साथी मौजूद थे, बाकी लोग तलाश-रोजगारमे गायब थे। शाम होनेवाली थी, और पोस्टमैनसे मिलना जरूरी था, इसलिए मै और ज्यादा इन्तजार नही कर सकता था। जौनपुरीको साथ लिये मै चल पडा। खिदिरपुर काफी दूर है। वहाँ जाकर कुलीबाजारके ढूँढनेमे भी दिक्कत नही हुई। शायद तब तक सूर्य डूब चुके थे। हम लोगोने पोस्टमैनका पता लगाना शुरू किया। मुहल्लेमे ज्यादातर देशवाली आदमी थे। वहाँ देशवाली पोस्टमैनका पता लगना मुश्किल न था, किन्तु यदि वह वहाँ हो तब न पता लगे। हम इधरसे उधर पूछ-ताँछमे लगे ही हुए थे, कि बारिश शुरू हो गई मूसलाधार। हमारे सारे कपडे भीग गये, ऊपरसे दो घडी रात बीत चुकी थी। इस समय जोडासाखू लौटकर जाना दूरकी बात थी। अन्तमे हमने आसपासके घरवालोसे रातको रहनेकी प्रार्थना की। दो-चार जगह 'अज्ञात कुलशील'को बास देना अस्वीकृत हुआ; किन्तु आखिर एक घरवालोको वर्षा, रात और हमारी उम्र देखकर दया आ ही गई। उन्होने भीतर बुला लिया। शायद वहाँ

चार-पाँच आदमी रहते थे, सभी पूरवी युक्तप्रान्तके। काम—शायद कुलीका करते रहे होंगे। पूछनेपर पहिले तो पोस्टमैनके न्योतेकी बात कही। घरद्वारके पूछनेपर जौनपुरी साथीने दोनोका घर एक गाँवमे बतला दिया। फिर तो हमें पुरोहित-यजमानका लड़का भी कहना पड़ा। भागकर आना—हमारी उम्रके लड़कोंके लिए कलकत्ता पहुँचनेका सर्वप्रसिद्ध कारण था। दूसरे दिन घरवालोने रातका उपदेश जारी रखते हुए कहा—'परदेशमें कलेश होगा, तुम्हारी उम्रके लडको-को काम नही मिल सकता, घर चले जाओ। घर चिट्ठी लिख दो, रुपया आ जायेगा न ?'

हम दोनो बोल उठे—'जरूर।'

"तो यहीं रहो। खाने-पीनेकी चिन्ता मत करो। चिट्ठी लिख दो, रुपया आ जानेपर घर चले जाना।"

शील-सकोचके मारे हम 'नहीं' करके वहाँसे चल देनेकी हिम्मत नही रखते थे, साथ ही एक बारके मुँहमे निकल आये झूठ—हम दोनो एक गाँवके है—को वापस लेनेकेलिए तैयार न थे। रहनेको रह तो गये, और जौनपुरी भाईके घर चिट्ठी भी लिखकर डाल दी गई, किन्तु मुझे बड़ा तरद्दुद मालूम होने लगा। यदि कही इन लोगोको असली बात मालूम हो गई, तो क्या कहेंगे। चिट्ठीके जवाब आनेका समय जितना ही नजदीक आता जाता था, उतना ही मै साथीसे चल देनेका आग्रह करने लगा, किन्तु वह चलनेको तैयार नही था। लाचार, एक दिन मैं यह कहकर वहाँसे अकेला चल पड़ा—'मै तो जाता हूँ, तुमको तरद्दुदमे पड़ना हो तो रहो।' उसके बाद फिर उनसे मुलाकात नही हुई, इसलिए नही कह सकता, उन्होने क्या किया।

मै लौटकर हरीसन रोडसे गुजर रहा था। उस वक्त आने-जानेकी कोई खास जल्दी थी नही। कही देखनेकी कोई चीज हुई, तो उसे ही थोडी देर ठहरकर देखने लगता था। उसी जगह साफ धोती, कोट, गोल फेल्ट टोपी लगाये हाथमे छाता लिये एक बूढे आदमी मिले। उन्होने घरबारके बारेमे पूछा, और फिर वेसरोसामानी-का पता लगनेपर कहा—चलो, मैं तुम्हे अपना घर दिखला देता हूँ, जरूरत हो तो आना, यदि मै तुम्हारे लिए कुछ कर सकता हूँ, तो करूँगा। उनकी कोठरी राजा वर्दवानके कटरेके तीसरे तल्लेपर थी। पाठकजी—विन्दाप्रसाद पाठक यही उनका नाम था—की बातपर मुझे विश्वास हो गया, और साथ ही कलकत्तामें मुझे एक अवलम्ब-सा दिखलाई पड़ा। किन्तु पहिले मुझे अपने साथियोकी खबर लेनी थी। जोड़ासाकूकी कुली खोलाबाड़ीमे किसीका पता नही था। जौनपुरी शायद कुली-

बाजारसे टले न थे। महादेवप्रसाद और दूसरे साथी रोजगारकी तलाशमे गये हुए थे। शाम तक किसीको आया न देख मै पाठकजीके घरपर गया।

तीसरे तल्लेपर सीढ़ीके पास शायद ६४ नम्बरकी उनकी कोठरी थी। कोठरी ६ हाथ लम्बी चार हाथ चौडी रही होगी। बगलमे सीढ़ीके ऊपर एक थोडासा और स्थान था, जो नीचेकी कोठरीसे दो हाथ ऊँचेपर पडता था, और उसमे कभी कोई सामान रख दिया जाता था। दर्वाजेके पास दो हाथ चौडी जमीन पानी-गिराने और जूता रखनेके लिए थी, फिर हाथभर ऊँचा बाकी कोठरीका फर्श था। कोठरीके दूसरे सिरेपर खिडकी थी, और कलकत्ताकी गर्मीमे उसकी हवा बडी शीतल और सुखद मालूम होती थी। पाठकजी रसोई मारवाडीवासेमे खाया करते, इसलिए कोठरीमे कोयले या धुआँ-धक्कडकी जरूरत न थी। उनको हुक्का पीनेकी बडी आदत थी, और उसके लिए टिकियोसे काम चल जाता था। हुक्काकी जगह मुरादाबादी कली थी। मेरा काम था, कोठरीको साफ रखना, नीचे नलकेसे पानी भर लाना—जो कि सारे दिनके लिए एक घडा काफी था, और जब पाठकजी घरपर हो तो दो-चार या दस चिलम भरकर देना। चिलमकी बात पहिले मुझे नागवार मालूम होती थी, क्योकि हमारे सरवरिया ब्राह्मणोमे इसे घोर पाप समझा जाता था। मुझे तो इसके कारण पाठकजीके ब्राह्मण होनेमे सन्देह भी होता था, किन्तु एक बार रानीकीसरायमे किसी असिस्टेंट इन्स्पेक्टर ब्राह्मणको फर्शी गुडगुडाते देखकर इस शकाका समाधान हो चुका था। धीरे-धीरे पाठकजीको मेरे कुल-शील, पढने-लिखने आदिके बारेमे और भी बाते मालूम हुई। पाठकजीका बर्ताव मेरे साथ नौकरका-सा नही लडके जैसा होने लगा। उन्होने पढनेका शौक देखकर मुझे अग्रेजी पढानी शुरू की।

पडित बिन्दाप्रसाद पाठक—डाइरेक्टरी और चिट्ठी-पत्रीमे एम्-बी-पाठक लिखे हुए थे—मुरादाबादकी मियाँसाहेबकीगलीके रहनेवाले सारस्वत ब्राह्मण थे। १९०७मे उनकी आयु ५५से ऊपर थी। हिन्दी-उर्दूके अतिरिक्त वह अग्रेजी भी जानते थे। फौजी कमसरियटमे वह कन्ट्रैक्टरका काम कर चुके थे, और इसी सिलसिलेमे वे पेशावर और आसाममे रह आये थे। पीछे कलकत्तामे उन्होने दलालीका काम शुरू किया, और कुछ वर्षों तक उनको बडी सफलता मिली। बँगला, बग्घी, नौकर-चाकर सब हो गये थे। लाखोका कारबार करते थे। किन्तु, इसी वक्त—उनके कथनानुसार नक्षत्रने पलटा खाया—उनका कारबार पट पडा। थोडे ही दिनोमे बग्घी-बँगले, नौकर-चाकर सब विलीन हो गये, और वह अकेले रह गये। आज कई

वर्षोंसे उनका नक्षत्र पल्टा खाये हुए था। पुराने कारवारके वक्तके जान-पहिचानी मारवाडी सेठ या किसी अग्रेजी कम्पनीका कोई साहेव कभी कोई हल्कासा काम दे देते थे, जिससे तीस-चालीस रुपये महीनेका हिसाब लग जाता था। उसमेसे ५ रुपया महीना वह मकानका किराया दे देते थे, वाकीमे अपना खाना-खर्चा चलाते थे। उनके एक मात्र लडके अपने शहर मुरादावादमे ही रेलवेमे क्लर्क थे। घरका खर्च किसी तरह चला लेते थे, और पिताके ऊपर घर चले आनेके लिए वहुत जोर देते थे, किन्तु पाठक-जी कहते थे—यहाँ समुद्रके किनारे पडा हूँ, न जाने किस वक्त लक्ष्मीकी लहर चली आवे; मुरादावाद जानेपर तो भविष्यसे इस्तीफा दे देना पडेगा।

वस्तीवाले ब्राह्मणके सम्पर्कमे आकर रिश्तेदारीमे ही कच्ची रसोई खानी चाहिए—इस पारिवारिक नियमको मैने तिलाजलि दी। पाठकजीका छुआ, तथा उनके गौड ब्राह्मणोंके वासेका भोजन भी थोडेसे मानसिक सकटके साथ मैने स्वीकार कर लिया, किन्तु मुझे यह सुनकर वडा धक्कासा लगा, जव कि मालूम हुआ कि महीने भरसे जिसे मै रवडी समझकर वडे चावसे खा रहा हूँ, वह दूधमे भिगोई पावरोटी है! पावरोटीको मै पूरा क्रिस्तानी खाना समझता था। पाठकजीने हवडा पुलके पास ले जाकर पावरोटीकी उन दूकानोको दिखलाया, जिनमे शखसे सफेद मोटे-मोटे जनेऊ पहिने वगाली ब्राह्मण पावरोटी वेचा करते थे। मै पहिले वगाली-को ब्राह्मण ही माननेके लिए तैयार न था। मैने समझ लिया, धरम तो चला ही गया, लेकिन सन्तोप करता था—अच्छा यहाँ कलकत्तामे घर-खान्दानका कौन है जो इसे जानता है। इसके वाद तो कितनी ही वार पाठकजीके साथ और अकेले भी मै हवडामे स्टेशनके पासकी एक सँकरी सडकपर सिक्खोकी तन्दूरी दूकानोपर चला जाता, और गर्मागर्म तन्दूरी रोटियाँ 'महाप्रसाद'के साथ छक आता। पाठकजीके साथ एक वार एक साहेवके वँगलेपर जाना पडा, वेहराने लेमनेडकी दो वोतले लाकर सामने रक्खी, तो मैने उससे इन्कार नही किया। वगाली हिन्दू भोजना-लयोमे तो अक्सर जाकर खाना खा आता था। किसी मुसल्मान क्रिस्तान होटलमे खाना खाने तो नही गया, लेकिन पाठकजीने उसके लिए भी मुझे तैयार कर दिया था, न खाना सयोगकी वात थी।

पाठकजी दिनमे दोपहरको थोडा समय छोडकर वाहर ही घूमते रहते थे, उधर अग्रेजी पढनेकी मेरी रुचि कुछ वढ चली थी, इसलिए एक दिन वह मुझे ले जाकर विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयमे दाखिल करा आये। फर्स्ट वुक पढनेको मिली। मेरे दर्जेमे अधिकतर मारवाडी लडके थे, एक सहपाठीको सरवरिया

ब्राह्मण कहते सुनकर मुझे यह पता लगा, कि सरवरिया मारवाडमे भी होते है। हमारे अध्यापक बलिया जिलाके रहनेवाले एक दुबले-पतले सज्जन थे।

धीरे-धीरे कलकत्ताकी नवीनता जाती रही। राजाचौकके नीचेकी दूकानोकी मसाला, हल्दी, प्याजकी गन्धकी विचित्रता भी लुप्त हो गई। दोतल्लेके बगाली-वासेकी 'झी' (नौकरानी) चिरदृष्ट होनेसे मेरी ओर जब लौग बिंधा हरे पानका बीडा, अपनी बडी-बडी आँखोमे हँसी भरकर बढ़ाती, तो जादूके डरसे मै उसे अब छोड न देता। घरसे चिट्ठी-पत्री भी होने लगी। नानाका बार-बार लौट आनेका तकाज़ा था। इस तरह मेरा मन घर आनेके लिए उतावला हो पडा। नानाने चिट्ठी लिखी, रुपया भेज दिया। पाठकजी ले जाकर एक दिन हवडापर गाडीमे चढा आये।

# ११

# अन्यमनस्कता

रानीकीसरायमे रातको उतरा था, इसलिए रातको स्टेशन हीपर रह गया। सबेरे रानीकीसरायके कुछ सहपाठियोसे भेट की। मेरी नजरमे वे बिल्कुल भिन्न-से मालूम होते थे। एक दिन पहिले-पहिल जब मै पन्दहासे वहाँ पढने गया था, तो वहाँके लडकोकी थोडीसी विभिन्नता उनकी नागरिकताकी परिचायक मालूम होती थी; और आज चार महीने बाद कलकत्तेसे लौटनेपर वे मुझे नितान्त असस्कृत अनागरिक मालूम होते थे। मै अब सफेद धोती, सफेद कुर्ता, फेल्ट टोपी और बूट जूता पहिने हुए था। धूपसे बचने तथा साबुन-तेलसे नहा-धोकर साफ-सुथरा रहनेका मेरे रग और चेहरेपर भी जरूर असर हुआ होगा। तो भी मै अपने कुछ पुराने साथियोसे मिलकर बडा प्रसन्न हुआ। मद्रसा देखने गया नही, किन्तु रानीसागरपर महावीरजीवाली कुटियाकी अब उतनी रौनक न थी। रेलके आनेसे पहिले वहाँ वही छोटासा मन्दिर और बगलमे एक घर था। वही अब भी वहाँ थे, किन्तु बीचमे वह कुटिया बहुत गुल्जार हो गई थी। बराबर पाँच-सात साधु रहा करते थे। बाज़ार-वाले रसद-पानी देनेमे बडी तत्परता दिखलाते थे। वह तत्परता तो शायद अब भी कम न थी, लेकिन मालूम होता है यह परिवर्तन किसी योग्य साधुके न रह जानेके कारण हुआ। वहाँ अब एक अनपढ लँगडा साधु रह गया था। वन्दरोकी भरमार अब भी वैसी ही थी।

नानाके सामने जानेमे अब सकोच न था, क्योकि बीचके चार महीनो और उनके भीतर हुई घटनाओने उनके दिलसे दो सेर घी गिराने और २२ रुपयेपर हाथ फेरने-वाली वातको भुलवा दिया—इसका मुझे पूरा विश्वास था। नाना मुझको देखकर वडे प्रसन्न हुए। मुझे पढानेकी उनकी वहुत चाह थी, किन्तु अब मेरी इच्छाके विरुद्ध ज़ोर देना नही चाहते थे। यद्यपि मै सितम्बरके महीनेमे लौटा था, तो भी यदि तुरन्त पढनेमे लग जाता तो मिडलकी अगली परीक्षामे वैठ सकता था, यदि उपस्थिति-का ख्याल न किया जाता, किन्तु, न नानाने कहा और न मैने ही पढनेका नाम लिया। मेरा समय अधिकतर पन्दहामे वीतता, कनैला और बछवल भी एकाध वार हो आया था। इसी समय उमरपुरके परमहसके दर्शनका मौका मिला। दिसम्बर या जन-वरी (१९०८ ई०)मे एक वार निजामाबाद गया। उस वक्त मेरे साथी परीक्षाकी तैयारी कर रहे थे। मेरे कलेजेमे टीससी लगी, किन्तु अब क्या किया जा सकता था?

नानाने सर्वेमे गाँवके सर्कारी कागजमे अपने नामके साथ मेरा नाम दर्ज करा दिया था, जिसपर उज्र् हुआ था, और वन्दोबस्तके डिप्टीने समझाकर हटवा दिया, यह मै पहिले लिख चुका हूँ। नानीने अपने अन्त समयमे वहुत जोर दिया, कि नातियो-के नाम लिखा-पढी हो जानी चाहिए, जिन्दगीका क्या ठिकाना है। उनके जीतेजी हम चारो भाइयोके नाम नानाने अपनी सारी स्थावर सम्पत्ति हिब्वा लिख दी। ऐसा करके उन्होने अपने भतीजो, विशेषकर वडे भाईके लडकोको युद्धका अल्टीमेटम् दे दिया। इस वक्त अभी काना-फूँसी ही हो रही थी, खुला संघर्ष नही हो रहा था, तो भी भविष्य सकटापन्न दीख पडता था। वैसे नानाके छोटे भाईके दो लडको—सूरजवली और नरसिंहका भी नानाकी सम्पत्तिपर उतना ही दावा था, जितना बड़े भाईके लडकोका, तो भी वे अपनेको जन-धनमें निर्वल समझते थे, इसीलिए उनसे खटपट नही थी। नरसिंह मामा तो मेरे समवयस्क थे, और अब मृत छोटी नानीके सकेतके अनुसार उनकी भावज तथा अपनी मामीके साथ हँसी-मज़ाक मेरे मनो-रंजनका एक खास साधन बन गया था।

× × ×

धीरे-धीरे जाड़ा बीत गया। गर्मीके महीने और उनके साथ आमोकी फसल खतम हो गई। वेकार रहते मन उकताने लगा, तब जाकर मैने फिर पढ़ाई शुरू करना तै किया। निज़ामाबादमें नाम लिखानेके बाद देखा, मेरे पुराने साथी अधिकाश पास होकर चले गये है। नये साथियोमे अधिकाश बाहरके स्कूलोसे आनेवाले अपरि-

चित चेहरे थे, कुछ अबके सालके फेल तथा स्थानीय स्कूलके चौथे दर्जेके पास लड़के परिचित भी थे। अध्यापकोमे परिवर्तन नही हुआ था। मेरे हृदयमे एक प्रकारकी उदासी बनी रहती थी। मै अपने एक सालके खोये जानेको जिस रूपमे देखता था, मुझे मालूम होता है, जैसे दौडमे मेरी घोर पराजय हुई। दर्जेमे जाते ही पुराने परिचित लडकोने मेरी योग्यताको काफी बढा-चढाकर कह दिया था, किन्तु उसको पूरा दिखानेमे मुझे कुछ देर लगानी पडी। यही नही कि पिछले सवा वर्षके पुस्तक-त्यागसे मै बहुतसी बाते भूल गया था, बल्कि अबके सालकी कई पाठ्य-पुस्तके बदल गई थी। बहारिस्तानकी जगह एक दूसरी ही किताब आई थी। उकलैदिस (रेखा-गणित)की जगह ज्यामेट्री आई थी। इतिहासमे भी शायद कुछ परिवर्तन हुआ था। और इन पुस्तकोके कितने पाठ हो चुके थे, जब मै फिरसे दाखिल हुआ। रात-को न पढनेकी 'कसम' अबके भी मेरी जारी रही, तो भी दो-तीन महीनेके बाद फिर मै दर्जे और स्कूलका सबसे तेज लडका हो गया।

इधर दो-तीन बरसोसे मै मलेरियासे बचा हुआ था। एक दिन पुराने पुजारीके यहाँ गया तो उन्होने बतासा डाला हुआ तर्बूजा खानेको दिया। बोर्डिगमे उसी दिन राब (पतले गुड)मे डालकर मक्काका लावा खाया। खानेमे दोनो ही अच्छे लगे थे, किन्तु शामको कै हुई, उसके बाद जडैयाके साथ ज्वर। मालूम हुआ ज्वर या कम-ज़ोरी अभी कुछ दिन रहेगी, इसलिए मै पन्दहामे बिना ठहरे कनैला चला आया। मुझे यह सुनकर बडा अफसोस हुआ कि मेरी बहिन मर गई। मरनेके बाद जो रज हुआ, उससे मालूम हुआ, कि मै उसे कितना प्यार करता था। माँकी मृत्यु नानीकी उपस्थितिके कारण सह्य हुई थी, और नानीके वृद्धापनने उनकी मृत्युको अवश्यभा-विनी कहकर सह्य बना दिया होगा, लेकिन बहिनके बारेमे वैसे कोई कारण न थे, इसलिए उसकी मृत्युको मैने ज्यादा अनुभव किया। उसका चेहरा-मुहरा माँसे कुछ मिलता था, हाँ उसके बाल काले नही कुछ भूरेसे थे। वह किसीसे झगडा करना नही जानती थी, और सकोचशीला थी। एक बार नानीके मरनेके बाद हम दोनो पन्दहामे थे। किसी बातमे मैने उसे डाँट दिया—आखिर बडा भाई ही क्या जो छोटेपर कुछ हुकूमत न जताये। रामप्यारी चुपके उठी और कनैला चली गई। मुझे उसका बडा अफसोस हुआ, और नाना तो पता लगाने १० मील दौडे-दौडे कनैला गये। आजी बतला रही थी—कोई बड़ी बीमारी नही थी। जरा-जरा जडैया आ रही थी, वह भी छूटती-सी मालूम होती थी। मुझसे कहा, 'बडकी मैया! जरा दालानसे बाहर जाती हूँ'। लौटकर तुरन्त ही आई। पुआलके बिछौनेपर बैठनेके साथ ही

गिर पडी। मै दौडी, देखा दो-तीन हिचकी आई, जरासा खून मिला कफ गिरा, और उसका वदन ठडा हो गया है।

रामप्यारीको मरे अभी हफ्ता नही बीता था। आमतौरसे अविवाहित छोटे वच्चेका श्राद्ध नही होता, किन्तु पिताजी इसे माननेवाले न थे। वह अपनी रामप्यारीके प्रति प्रेम और श्रद्धाको किसी रूपमे दिखलाना चाहते थे।

दो-तीन सप्ताहमे अच्छा होकर मै फिर निजामाबाद चला आया। उस साल वर्षाके शुरू होते हीसे नाना और उनके भतीजोमे हिव्वाके लिए झगडा हो रहा था। उन्होने एक मुकदमा दीवानीमे दायर किया था। लेकिन उन्हे वकीलोने वतला दिया था, कि कानून नातीके हकको मानता है। वे यह भी नही सावित कर सकते थे; कि नाना और उनका सम्मिलित परिवार है, क्योकि इसके खिलाफ़ छोटे नानाका नानाके नाम लिखा बैनामा मौजूद था। दीवानीमें पक्ष कमजोर देखकर उन्होने फौजदारी शुरू किया। जवर्दस्ती खेत काट लिया। नाना अकेले और बूढे थे, वेचारे कहाँ तक जोर लगाते। पिताजीको भी उनकी मददमे आना पडा, जिससे उनके घरका काम हर्ज होने लगा। मै इन खवरोको सुनता था, किन्तु अन्यमनस्कसा रहता था।

परीक्षाके तीन-चार मास रह जानेपर सारे जिलेके तहसीली स्कूल अपने यहाँके छठे दर्जे (मिडलके अन्तिम दर्जे)के विद्यार्थियोका मासिक सम्मिलित इम्तहान लेते थे। आजमगढके किसी प्रेसमे छपकर हर विषयके प्रश्नपत्र हमारे पास आते थे। इस परीक्षासे यह भी पता लगता था, कि कौन स्कूल और उसका कौन विद्यार्थी कितना तेज है? सारे जिलेके विद्यार्थियोमे मेरा और मकवूल(?)का मुकाबिला रहा करता था, और सो भी जवान(भाषा)को लेकर, क्योकि जहाँ उर्दूकी नीव मेरी शुरूसे नही वन पाई थी, वहाँ मकवूलको उसकी योग्यता वढानेके अच्छे साधन प्राप्त थे। तो भी अधिक वार मै ही प्रथम रहता रहा। मकवूलका मकान तो नही मालूम, किन्तु वह आजमगढके तहसीली (मिडल) स्कूलमे पढता था।

जनवरी (१९०९ ई०) तक ही शायद हर तरहसे तग आकर पिताजीको मेरे चचेरे मामा लोगोसे सुलह करनी पडी थी। उन्होने देख लिया कि ५ कोस दूर दूसरे गाँवमे जाकर वह लाठी तो लाठी कानूनकी लडाई भी ठीक़से नही कर सकते। उन्होने यह भी देखा कि हजार-डेढ हजारकी जायदादके लिए पाँच-छै सौ रुपये अभी उनके खर्च हो गये है। मामा लोगोने भी ऊँच-नीच सोचा और अन्तमे मेरे फूफा पच वनाये गये। उन्होने फैसला दिया कि जायदादके लिए मामा लोग भाजोको

ग्यारह सौ (?) रुपये दे। नानाकी भावनाका ख्याल करके उन्हे अपने साथ पत्थरके कोल्हूको भी कनैला ले जानेका अधिकार दिया गया। भतीजोमे बच्चा पाठक और जवाहर तो बराबर कलकत्ता ही अपनी नौकरीपर रहते थे। रामदीहलकी भाइयोसे पटती कम थी, सीताराम सबसे बडे भाई मुँहजोर बहुत थे, किन्तु असली दिमाग था सबसे छोटे रामदीन मामाका। झगडेमे रामदीन मामाका ही सबसे बडा हाथ था, किन्तु उनके प्रति मेरा भाव सदा सन्मान और प्रेमका था। उसका कारण भी था। उन्होने रानीकीसराय ले जाकर मेरा अक्षरारम्भ कराया था। वह लोअर-प्राइमरी पास कर कुछ महीने निजामाबाद दर्जा ३मे पढने गये थे—उस वक्त रानी-कीसरायमे अपरप्राइमरीके दर्जे नही थे, लेकिन उन्होने कहीसे उर्दू सीख ली थी। किताब आदिकी सहायतासे वह रोमनमे भी लिख लेते थे—और रोमन लिखना उस वक्त मेरे जैसोकी नजरमे अंग्रेजी-साहित्यमे पारगति प्राप्त करना था। दूसरे-तीसरे दर्जेमे पढते वक्त जब मै घर लौटता, रामदीन मामा घसीट उर्दू लिखकर मेरे पढनेकी परीक्षा करते, और मेरे पढ लेनेपर शाबाशी देते हुए नानासे कहते—चाचा! अब केदारनाथके पढनेमे कोई हर्ज नही है। यह सुनकर मुझे बडी खुशी होती। सच पूछो तो रामदीन मामा बचपनके मेरे प्रथम आदर्श थे, और शायद उसीलिए बीचके कडवाहटके जमानेमे भी मेरे भाव ज्योके त्यो रहे। यह भी हो सकता है, कि पन्दहाकी जायदादके प्रति मेरा कोई आकर्षण नही था।

शायद जनवरीका ही महीना था, जब कि मै पन्दहामे किसी छुट्टीमे आया था। दोनो घरोमे सुलह हो गई थी। नानासे उनके भतीजो, और खासकर भतीज-बहुओ-का आग्रह था, कि वह वही रहे। रामदीन मामाकी स्त्री (पहिली नही, जो मेरे बाल्य-स्नेह और श्रद्धाकी आराध्य देवी थी)से नाना भी बहुत खुश थे, किन्तु उनको डर था, कि किसी दिन कोई ताना न मार दे—जमीन बेच-खोचकर तो नातियोको दे दिया, अब यहाँ पडे है टुकड़ा तोडनेके लिए। नाना कनैला जानेके लिए तैयार बैठे थे, लेकिन अभी गये नही थे। एक तरह नानाका घर उनके भतीजोके सुपुर्द हो गया था, और नाना उन्हीके घर खाना खाते थे। अबकी मै भी वही ठहरा। ऊखका मौसिम था, यद्यपि पत्थरके कोल्हूकी जगह लोहेके कोल्हूका प्रचार हो जानेसे ऊखके शर्बतमे न वह मिठास थी, और न वह सामूहिक कार्य करनेका दिलबहलाव। हाँ, इस समय मुझे एक काम करना पडा, जो मेरी स्मृतिको उस दिनकी ओर ले गया, जब कि राम-दीन मामाने ले जाकर रानीकीसरायमे मेरा अक्षरारम्भ करवाया था। बडे नानाने अपने पौत्र, रामदीन मामाके पुत्र दीपचन्दको मुझे ही ले जाकर अक्षरारम्भ करवा

आनेका आदेश दिया, और मुझे इस आदेशको पालन करनेमे बडी खुशी हुई। मालूम होता था, मै उसके द्वारा एक बडे ऋणसे उऋण हो रहा हूँ।

लडकपनसे ही सम्मिलित बडा परिवार मुझे बहुत प्रिय लगता था। जब मै अभी सात ही आठ सालका था, तभी मझगाँवाँके एक राजपूत परिवारके रामफल, बाँके आदि ५, ६ लडके रानीकीसराय पढने आते थे। मझगाँवाँ पन्दहासे भी मील-डेढ मील और आगे है, इसलिए उन्हे रोज छै मील आना-जाना पडता था। मुझे देखकर रश्क आता था, जब कि वे पाँचो-छओ लडके एक अँगोछेसे भूँजा या सना हुआ सतू खाते थे। मझगाँवाँमे मै सिर्फ एक बार गया था, और उनके घरको शायद नज-दीकसे देखनेका मौका नही मिला। तो भी मुझे यह सुनकर बडी खुशी होती थी, कि उनके घरमे चालीस-पचास व्यक्ति है, मनभर चावल एक दिनमे खर्च हो जाता है। वह परिवार मुझे आदर्शसा मालूम होता था। मेरे सामने उस परिवारमें अलगा-बिलगी नही हुई थी। इसी तरहका एक राजपूत-परिवार कनैलाके पासके एक गाँव. . .में था। कनैलामे हमारे यहाँ यजमानी नही होती थी, और यजमानके नाते था इन्हीका एक परिवार। मै बहुत छोटा था, जब कि उस परिवारके अन्तिम प्रधानका देहान्त हुआ था, और बाकी बचे लोगोमें सबके विश्वासका पात्र कोई व्यक्ति न रह गया। मेरे चचेरे आजा (दादा) महादेव पाँडे—जिनको मेरे आजा जानकी पाडे बहुत मानते थे—बडे भाईके मरनेके बाद मुखिया होकर सारे परिवारको इकट्ठा रखकर चलानेमे समर्थ तो नही हुए—और शायद इसका बहुत कुछ दोष मेरी आजी-की नीमसी कडवी जबान और क्षुद्रहृदयता थी, किन्तु वे गाँवके प्रधान और आसपासके इलाकेके भी एक माननीय पच माने जाते थे। उक्त राजपूत परिवारके लोग उस वक्त परिवारके बँटवारेके लिए दौड-धूप कर रहे थे। महादेव बाबा उन्हे बहुत समझा रहे थे इकट्ठा रहनेके लिए, लेकिन वे उसमे सफल न रहे। मै समझता हूँ, सम्मिलित परिवारकी मौखिक बर्कतोको यदि सुननेका मुझे कभी मौका मिला होगा, तो इसी समय। सम्मिलित और बडा परिवार, मालूम होता है, मुझे स्वभावत प्रिय था, यह मै आज साम्यवादी मनोभावके कारण नही कह रहा हूँ। दाल मुझे बहुत नापसन्द थी, चावलको भी मै खा नही सकता था; किन्तु, मुझे तअज्जुब होता था, कि कनैलाके बिरादरीके भोजोमें मटरकी भी दाल मुझे इतनी स्वादिष्ट क्यो मालूम होती है ? साठीका बिल्कुल मोटा-झोटा भात बार-बार मै माँगकर क्यो खाता जा रहा हूँ ? हो सकता है सम्मिलित बडे परिवार और सम्मिलित बड़े भोज मुझे इसेलिए ज्यादा आकर्षित मालूम होते हो, कि मेरे नानाके घरमें दो बूढे व्यक्ति और

मै अकेला लडका था, उसपरसे खेल-कूदमे भी मुझपर कडे निर्बन्ध थे, और इसीलिए एक ही परिवारमे बहुतसे बच्चोको देखनेके लिए मै तरसा करता था।

कुछ भी हो, नानाके यहाँके झगडेकी शान्तिसे मुझे बडी प्रसन्नता हुई। बरसोसे मुझे देखते ही रामदीन मामाके घरकी कितनी ही त्योरियाँ जो चढ जाया करती थी, अब उनमे एक तरहका स्नेह दिखलाई पडता था। कह नही सकता, उस बार रामदीन मामासे मुलाकात हो पाई। वे पढाई छोडनेके बाद कुछ समय तक घरपर रहे, फिर पोस्टमैन हो गये, रहते जिले हीमे थे, किन्तु घरसे दूर। पहिले जब मै रानीकीसरायमे पढा करता, तो अतवारकी छुट्टियोमे उनसे भेट हुआ करती, किन्तु निजामाबाद चले जानेके बाद उसका बहुत कम मौका मिलता था।

× × ×

निजामाबादकी पढाईके दिन समाप्तिपर पहुँच रहे थे। नौ महीने पहले सहपाठियोमे जो अधिकाश अपरिचित चेहरे देखे थे, अब वे सुपरिचित हो गये थे। आज (२१-४-४०) ३१ वर्ष बाद, सो भी २३ सालसे जब कि जिले तकको देखनेका मौका मिला, यदि सभी नाम याद नही पड रहे हो, तो स्मृतिको बहुत दोष नही दिया जा सकता। उनमेंसे बहुतसे चेहरे अब भी स्मृति पटपर साफ दिखलाई पड़ते है, यद्यपि वे ३१ वर्षके पहिलेके उनके लडकपनके चेहरे है, और उनके बलपर आज अपने उन सहपाठियोंको पहचानना मेरे लिए सम्भव नही होगा। नई गाँवको बहुत बचपनसे ही पन्दहासे कनैला आते-जाते मै रास्तेसे कुछ हटकर देखा करता था। वहाँके तीन लडके मेरे साथ पढ़ते थे। तीनो चचेरे भाई किन्तु एक परिवारके थे। पतले-दुवले तो सभी थे, किन्तु बडे श्यामनारायण पाडे सबसे ज्यादा दुवले थे, शायद इस अन्दाजमे उनकी लम्बाई भी कारण रही हो। वह और सबसे छोटे भाई पढनेमे अच्छे थे, मझले पढ़नेमे कमजोर; किन्तु वे अक्सर हमारे रविवारके 'व्रत' (मासभोजन)मे शामिल हो जाया करते थे। मुझे याद नही, कभी इन तीनो भाइयोसे मुझसे अनबन हुई हो, किन्तु बाकी दो भाई ताना दे देते थे—केदारनाथ तो हमारे भाईको फोड़ लेते है। मेहनगरके दो चचा-भतीजे महाब्राह्मण लडके पढ़ते थे, उनमे भतीजा मेरी उम्रका था, दर्जेमें मेरे बाद तेज़ीमें उसीका नम्बर था। उसका स्वास्थ्य भी अच्छा था, कद और आयुमे मेरे बराबर होनेपर भी वह बहुत मज़बूत था। मिडल पास करनेके बाद एक बार बनारसमे उनसे भेट हुई थी, वह वहाँ कोतवालीमे कान्स्टेबल थे।

सारे जिलेके मिडलके लड़कोका इम्तिहान आज़मगढ़के मिशन-स्कूलमें हुआ करता था। यह वही मिशन स्कूल था, जिसके बारेमें रानीकेसरायके आरम्भिक

दिनोमे नाना कहा करते थे—उर्दू पढ जावे, फिर तो जहाँ मैंने एक वार पादरी साहेव (मिशन स्कूलके हेड मास्टर)को फौजी सलाम दिया, कि उसे भरती करवा-कर छोड़ूँगा। उनके फुफेरे भाई इसी स्कूलमें पढे थे, जो कि पीछे सवजज वनकर जवानी हीमे मरे थे। स्कूलके पास ही एक घर किरायेपर-लिया गया था, जिसमें हम निज़ामावादी परीक्षार्थी ठहरे हुए थे। याद नही हम लोगोके साथ कौन अध्यापक गया था। दस वजे परीक्षागालामे हम पहुँचते थे। सारे युक्त-प्रान्तके लिए एक ही तरहके प्रश्नपत्र छपकर आते थे। हम उर्दूवालोके पर्चे नस्तालीकमे नही वल्कि काँटेवाले टाइपमें छपे होते थे। देखनेमे तो खैर वे भद्दे होते ही है, साथ ही उनके पढ़नेमें विद्यार्थियोको दिक्कत भी होती है। हम लोगोकी प्राय सारी ही पुस्तके नस्तालीकमे छपी थी, इसलिए हमारे वास्ते और भी दिक्कत थी। और मुझे तो इन कँटीले टाइपोका गुन और भी नही भूल सकता, क्योकि मेरे जीवन-प्रवाहको एक दूसरी धारामे वहानेमे उनका भी खास हाथ था। मेरे फेल होनेकी तो कोई सम्भावना थी नहीं, हाँ, सवा साल पढाई छोडकर पहिलेके पढेको भुलवा देने तथा पाठच-पुस्तकोके परिवर्तनके वाद भी लोगोकी राय थी, कि मुझे सर्कारी छात्रवृत्ति मिलेगी। लेकिन जव इन कटीले टाइपोमे छपे अनुवादके पर्चेमें 'इलाहावाद' या 'अल्लाह अल्लाह'मेंसे एककी जगह दूसरा पढकर मैंने सारे अनुवाद हीको उल्टा कर डाला, तो मुझे तो पूरा सन्देह हो गया।

परीक्षा देकर मै कनैला चला आया। अवकी एकसे अधिक वार उमरपुरके परमहंस वावाकी कुटीपर गया। परमहस वावाके वारेमे चारो ओर ख्याति थी, कि वे १२०-वर्षके है। आसपासके कितने ही वूढे आदमी गगा-तुलसी उठानेके लिए तैयार थे, कि पिछले पचास सालोसे वे उन्हें उसी सूरतमें देख रहे है। परमहस वावा अपने जन्मस्थान पोखरा (नेपाल)से काशी विद्या पढने आये थे। वही वैराग्य हुआ, और सन्यासी हो गये। वनारसमे जव रेल आई, तो वे राजघाटकी एक गुफामे योगाभ्यास करते थे। किसी अपने भक्तसे उन्होने रेलसे दूर ले चलनेके लिए कहा, जिसपर वह उन्हें कटहनसे दक्खिनके अपने गाँवमें ले आया। एकाध जगह कुटी वदलनेके वाद आसपासके गाँवोसे मील-मील पौन-पौन मील दूर मँगई नदीके दाहिने तटको अपने लिए पसन्द किया। जल्दी ही वहाँ उनके लिए कुटी वन गई। एक दो कोठरी और वरांडेवाली खपड़ैलसे छाई मूलकुटी थी। इसके चारो ओर खपड़ैलसे छाई कच्ची चहारदीवारी। इस चहारदीवारीके वाहर एक और वडा हाता—मिट्टीके ऊँचे 'खाँवे' (परिखा)से घिरा था, जिसके भीतर दो पोखरियाँ,

एक झोपडी और वहुतसी खाली जगह थी। उत्तरवाली पोखरीमे पक्की सीढियाँ थी; और इसमे परमहस वावाको छोड़कर कोई दूसरा, नहाने-धोनेकी तो वात ही क्या आचमन भी नही कर सकता था। पूरववाली पोखरी सार्वजनिक सम्पत्ति थी। भीतरी चहारदीवारीके दर्वाजेके वाहर पूरवमुँहकी एक फूसकी झोपड़ी थी, जिसमे सह्य भक्त लोग वैठा करते थे। हाँ, सह्य भक्त इसलिए कहता हूँ, कि परमहंस वावा भक्तोको भी असह्य समझते थे। कुटीके वाहरी हातेके भीतर घुसनेपर भी कितनोपर मार पड़ती थी। चरवाहे डरके मारे अपने पशुओको दूर रखते थे। यह डर मारका उतना नही था, जितना परमहस वावाके सिद्धवलका। आसपासके साधारण लोग ही नही, फूफा महादेव पांडे जैसे सस्कृतके धुरन्धर पडित और कितने ही अग्रेजी पढ़े-लिखे अफसर तक उन्हे अगाध पडित, जीवन्मुक्त योगी और सिद्ध मानते थे। लोग जव दु:ख-सुखमे उनसे वरदान माँगने जाते, और उनके इन्कार करने तथा चले जानेके लिए कहनेपर भी नही हटते थे, तो कभी-कभी वह डडा भी चला पडते थे, किन्तु जिसपर डडा पड़ता था, वह समझता था, हमारा मनोरथ सुफल हो गया।

परमहस वावामे दिखलावा नही था। वह एकान्तप्रिय थे, और अपनी भीतरी चहारदीवारीसे वाहर शायद ही कभी निकलते थे। भीतरी चहारदीवारीके भीतर इम्लीके कितने ही दरख्त तैयार हो गये थे, जिनपर चिड़ियोने कब्जा जमा लिया था। शायद यह उन्हे नापसन्द न था, क्योकि कभी-कभी चिडियोको चहचहाते देख, वह भी उसी तरह नकल करके कहते थे—'चूँ चूँ करता है।' एक वार हजारों चिड़ियोने अपना शहर वसाकर वाकायदा वहस-मुवाहसा शुरू कर दिया। परमहंस वावाने इम्लीकी सारी डालियोको कटवा दिया, और चिड़ियोंको डडा-कूडा लेकर भागनेके लिए मजवूर किया।

परमहस वावाकी सेवामे दो व्यक्ति वहुत तत्पर थे, एक हरिकरणदास—हाँ यह सन्यासीका नाम नही है। हरिकरणसिह पासके गाँवके एक जवान राजपूत थे। परमहस वावाकी सेवाके लिए उन्होने पहिले तो घरका कारवार छोड़ वही—किन्तु कुटियासे दूर हटकर, परमहस वावा अनन्य सेवकको भी पास रहने नही देते थे—रहने लगे। वावा तो किसीको चेला वनाते न थे, इसलिए हरिकरणसिहने स्वय गेरुआ रंग लिया, चुटिया-जनेऊ तोड़ फेंके, और हरिकरणदास वनकर कुटियासे तीन-चार सौ गज दूर दक्षिण तरफ एक खपडैलकी कुटियामे रहा करते थे। परमहसजीके भोजन तथा भीतरी कुटियाकी सफ़ाई आदिका भार उनके ऊपर था। उनके अतिरिक्त वालदत्तसिह एक दूसरे भक्त थे। इन्होने वूढ़ी माँ, स्त्री तथा घरवार छोड वैराग्य

और सन्त-सेवाके लिए परमहंस बाबाकी कुटियापर धुनी रमाई थी। बालदत्तसिंहने कपड़ा नहीं रँगा था। घरमें रहते वक्त भी वह धार्मिक प्रवृत्तिके आदमी थे, और मेरे पितासे उनकी बहुत पटती थी—दोनोमें पुरोहित-यजमानका भी नाता था। परमहंस बाबा पहिले ब्राह्मण-क्षत्रियके घरके बने भोजनको खा लिया करते थे, एक बार किसी स्वच्छन्दवृत्ति स्त्रीने परमहंसजीको खिलाकर पड़ोसियोंको ताना मारा—'तू क्या कहेगी, मेरे हाथकी रसोई तो परमहंस बाबाने स्वीकार की।' इसीके बाद किसीके घरकी रसोई खाना उन्होंने छोड़ दिया। यह मेरे स्थानपर आनेसे बहुत पहिलेकी बात है। मामूली फल-फूल छोड़कर, बाक़ी भोजन वह सिर्फ एक व्यक्ति-का स्वीकार किये हुए थे। खजुरीके एक राजपूत ज़मींदारको इसका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी ओरसे एक दूध देनेवाली भैंस बराबर आया करती थी। बालदत्त भैंसकी सेवा द्वारा परमहंसजीकी सेवा करते थे। गोभी-आलूकी गाढ़ी तरकारी, रोटीसे नहीं खाली खानेके लिए, और दूधमें भिगोया धानका चूरा परमहंस बाबाका प्रधान भोजन था। ऊखका रस भी उन्हें पसन्द था, इसके लिए लकड़ीके बेलनका कोल्हू बाहरी हातेकी मँड़ैयाके सामने गड़ा हुआ था।

मेरे पिता धार्मिक आदमी थे, किन्तु अन्ध श्रद्धा उनमें बहुत कम थी। सिमवाके पौहारी बाबाकी कनैला और आसपासके गाँवोंमें बड़ी पूजा होती थी; किन्तु पिताजी साधारण शिष्टाचार भरका उनसे सम्बन्ध रखते थे। इसी तरह आज़मगढ़के पासके एक कबीरपंथी साधु भी दो-तीन अनुयायियोंके साथ हरसाल गाँवमें अनाज जमा करने आते थे। गाँवके बीचमें एक पुराना पीपलका वृक्ष था, जिसे गाँवकी स्थापनाके समय ही रोपा गया बतलाया जाता था। गाँवके पासका पोखरा भी तभी खोदा गया था, किन्तु पानी नहीं निकल रहा था। कहते हैं उसी समय गोविन्दसाहेब एक सिद्ध फ़क़ीर कनैला पहुँचे। उन्हींके वरदानसे पोखरेमें पानी निकल आया, और उन्होंने अपने हाथसे यह पीपल लगाया था। इस पीपलको भी 'गोविन्द साहेब' कहा जाता था। उस विशाल वृक्षकी घनी छाया गर्मियोंमें बहुत शीतल मालूम होती थी, गाँव भरके कितने ही आदमी उसके नीचे या पासके सुखदेव पांडेके बैठकमें बैठे रहते थे। रामायण और फाग-मंडलीके जुटनेका यही स्थान था। कबीरपंथी महात्मा भी आकर यहीं ठहरते थे। परमहंस बाबाकी बात दूसरी थी। दूसरे सन्त-महात्माओंसे गाँवके लोग तभी खुश रहते थे, जब वे प्रसाद बाँटनेमें उदार देखे जाते। पौहारी बाबा तिन्नीके चावलके भातमें घी-साग-तरकारी आदि मिलाकर चूँचूँका मुरब्बा बाँटते थे, कबीरपंथी महात्मा नारियल-गिरीके टुकड़े।

पिताका अनुराग इन महात्माओमे न था, किन्तु परमहसजीके वे बडे भक्त थे। बाल-दत्त और पिताजीके कारण मै भी वहाँ आने-जाने लगा। शायद हरिकरणदाससे एकाध बार बात करनेका भी मौका लगा था, और मुझे साधु-जीवनकी ओर हल्कासा आकर्षण भी हुआ, किन्तु भविष्यके गर्भमे जो था, उसका अभी कोई आभास न दिखलाई पडता था।

परीक्षा देकर आनेके बाद दो सप्ताहसे ज्यादा घरपर नही रह सका। तबियत लग नही रही थी।

# १२

# दूसरी उड़ान

'सैर कर दुनियाँकी गाफिल'का मत्र चैन नही लेने दे रहा था। पहिली उडानके लिए घीका गिरना और नानाकी डाँटका डर भी कारण था, किन्तु अबकी बारके लिए उसकी अवश्यकता न थी। रास्तेके लिए पैसेकी ज़रूरत होती है, यह तो मै शैशवसे जानता था, जब कि सुना था कि नाना अपने पिताके रखे सौ रुपयोको लेकर सुदूर दक्षिण-हैदराबादकी ओर चपित हुए थे। मुझे अबकी बार एक या दो रुपये तथा रुपयोकी मालावाला जेवर हाथ लगा। मालाको तो प्रश्नोत्तरके डरसे मै नही बेच सका, और आठ महीने बाद उसे वैसा ही लौटा लाया, लेकिन रुपयोने कलकत्ता पहुँचनेमे मदद दी। रेलका टिकट शायद मुगलसराय ही तक खरीदा जा सका, बाकी सफर टिकटके बिना ही तै हुआ। शायद रास्तेमे कोई टिकट-चेकर नही मिला। लिलुआमे कैसे जान बची, इसका भी स्मरण नही। दो साल पहिलेके कलकत्ता आने और अबके आनेमे बहुत अन्तर था। अब मै वह पुराना सीधा-सादा चौदह वर्षका गँवार लडका न था, जिसकी अकल हवडाके मुसाफिरखाने हीको देखकर खब्त हो जाती। मुझे पुरानी यात्राके तजर्बेके अतिरिक्त यह भी मालूम था, कि मेरे मेहरबान पाठकजी कलकत्तामे मौजूद है।

पाठकजी अब भी अपनी उसी कोठरीमे रहते थे। अभी भी उनके लिए लक्ष्मीकी लहरका कही पता न था। हाँ, अपना खर्च किसी न किसी तरह चल जाता था। आजमगढमे अभी कैरियाँ देखकर आया था, किन्तु यहाँ कलकत्तामे पके आम बिक रहे थे। उस वक्त पाठकजी ग्रेट ईस्टर्न होटलको चटनी-मुरब्बेके लिए आम देनेका

ठीका लिये हुए थे। मुझे आतेके साथ ही काम मिल गया। बाजारमे आमोंको गिनवाने तथा होटलमें उन्हे सँभलवानेमे मै भी उनकी सहायता करता था। आमोंका काम खतम हो जानेपर हवड़ामे रेलवेका कोई उच्च कर्मचारी पेंशन लेकर विलायत जा रहा था। पाठकजीने उसकी कोठीकी चीजे नीलाम ली थी। पाठकजीके पास, वस्तुत., उनके खरीदनेके लिए भी रुपया कहाँ था, रुपया किसी मारवाड़ी सेठका था, नफ़ेमे कमीशन पाठकजीको भी कुछ मिलनेवाला था। कोठीसे सामान लानेमे मुझे भी सहायता करनी पड़ी। उसी वक़्त मुझे मालूम हुआ, अंग्रेजोंकी तरह रहनमे कितने सामानकी अवश्यकता होती। दर्जनों तो छुरियाँ थीं। काँटे, छोटे-बड़े-चम्मच, प्याले, चायदानियों, प्लेटों, तश्तरियो और खाना परोसन तथा खानेके न जाने कितने वर्तन थे। सूती-ऊनी कपड़ोंके बीसियों सूट थे। कुर्सी-मेज आदिके साथ एक मलाईका वर्फ जमानेकी मशीन भी थी। सामान लदवाकर लाया गया। कुछ चीजे तो थोक ही बेच दी गई, किन्तु कपड़ोमे से कितनोको पाठकजीने मेरे वास्ते फेरीके लिए छोड़ रखा। चन्द दिनो मैंने उन कपड़ोंकी फेरी भी की। कालेज स्क्वायरके जैसे लोहेके कठघरोंपर उन कोटो, कमीजों और पतलूनोको टाग देता था, और फिर गाहकोके आनेकी बाट जोहता था। गाहक मेरे पास शायद ही कभी आये। मै समझता था, विक्रीमे भी हाथ-हाथकी बात होती है, किन्नाको मछली और आम मारनेमे अधिक सफलता प्राप्त करते देख ऐसा ही मैं समझा करता था। मुझे उस वक़्त ख्याल नही आता था, कि जिन लोगोके सामने मैं इन सूटों—अधिकाश जीनके—को फैलाये हुए हूँ, उनमेंसे एक भी तो, इनाम देनेपर भी उन्हे पहिनकर बाज़ारमे चार कदम चलनेके लिए तैयार नही हो सकता। हार मानकर फेरीका काम बन्द करना पड़ा।

मारवाडी सेठोंके कामके लिए पाठकजीको साहेब लोगोके पास अक्सर आना-जाना पड़ता था। हवडा स्टेशनके मालगोदामके सुप्रेंटेंडेंट या असिस्टेंट सुप्रेंटेंडेंटसे उनका परिचय था। वह एंग्लो-इंडियन था। पाठकजीके कहनेपर उसने मार्को-मैनका काम मुझे दे दिया। मुझे अभी काम सीखनेको मिला था, और मुफ़्त भी वहाँ कितने ही बगाली तरुण काम करते या करनेके लिए लालायित थे। उम्मीदवारोंको भी रोज कुछ न कुछ आमदनी हो जाती थी, और नौकरी मिल जानेपर तो वह खासी आमदनीकी नौकरी समझी जाती थी। काम था बिल्टी देखकर सफेद या काली स्याहीसे मालपर भजने और पानेवाले स्टेशनोंके सकेताक्षर तथा बिल्टीके नम्बरको अग्रेज़ीमे लिख देना। इसके लिए बहुत ज्यादा अग्रेज़ी जाननेकी

जरूरत न थी। माल बहुत पडा रहता था, जब तक मार्का न पड जावे तब तक माल रवाना नही हो सकता था, इसीलिए हर-एक माल भेजनवाला मार्का बाबूकी भेंट-पूजाके लिए तैयार रहता था। मुझे छोड सभी मार्काबाबू बगाली थ। वह पुराने और उम्रमे मुझसे बहुत बड़े थे। पैसा मिलनेवाला मार्का कभी मेरे पास नही आया। मुझे उस आमदनीकी उतनी चिन्ता भी न थी, क्योकि भोजनके लिए मै निश्चिन्त था। पाँच-सात दिन बाद मालूम हुआ, मेरे नजदीकी चचा जयमगल भी उसी गोदाममे कुलीका काम करते है। वह कभी-कभी चीनीका शर्बत पिलाते थे। जब लाखो मन चीनीको वहाँसे गुजरना था, तो शर्बतका कौन दुख? एकाध फटे बोरे निकल आनेसे लखपती व्यापारियोका दीवाला थोडे ही निकलनेवाला था।

दो-तीन सप्ताह बीतते-बीतते मेरा मन वहाँसे ऊब गया। काम मै अच्छी तरह करने लगा था; किन्तु वहाँ दिलबहलावके लिए कोई साथी न था। दूसरे बाबुओसे भाषा-भेदके कारण भी शायद घनिष्टता न पैदा हो सकती थी, लेकिन उससे भी अधिक कारण था उनका मेरे रहनेको भीतर ही भीतर नही पसन्द करना। साहेब-की ओरसे भेजे जानेके कारण वह मेरा कुछ कर नही सकते थे, किन्तु उनके अलग-थलगपनने खुद मेरे ऊपर असर डालना शुरू किया। यदि जीविका और रुपये कमाने-की फिक्र होती, तो उस एकान्तताको सह्य भी कर लेता, और कुछ महीने रहनेके बाद शायद कुछ दोस्त भी बन जाते, इस प्रकार हवड़ा मालगोदामकी मार्कामैनी अचल हो जाती, लेकिन क्या करूँ स्वभावसे मजबूर था। काम छोडकर मै चला आया, उसके बाद भी साहेबने पाठकजीसे मुझे भेजनेके लिए कहा, किन्तु मै नही गया।

पाठकजी मुरादाबादके रहनेवाले थे, यह कह चुका हूँ। उनकी और उनके शहरके कुछ दूसरे साथियोकी बोली सुनकर मुझे पता लगा, कि किताबोसे पढ़ी और माँके दूधके साथ बोली जानेवाली हिन्दीमे कितना अन्तर है। कह नही सकता, पहिलेके चार और अबकीके आठ मासके सहवासमे मै भी पाठकजीकी-सी हिन्दी (या उर्दू कहिये) बोलने लगा था, किन्तु दोनोके उच्चारण और मुहावरेकी बारीकियोको तो जरूर समझता था। पाठकजीके हाथमे था ही क्या, किन्तु पैसा होनेपर वह बहुत उदार हो जाते थे, साथियोकी मदद करनेमे। मै तो उनका पोष्यपुत्रसा हो ही गया था, उनके शहरके एक व्यक्ति—जिनका नाम तो कुछ दूसरा था, किन्तु एक आँखके धनी होनेके कारण सब लोग उन्हे 'नवाब', 'नवाब' कहा करते थे—को कितनी ही बार वह सहारा देते थे। 'नवाब' साहेब दस-बारह वर्षसे कलकत्तामे रहते थे। कचालू फर्स्ट क्लासका बनाते थे। सवा रुपयेकी घुइयाँ, आलू, केला, अमरूद, नीबू,

मसाला आदि चीज़ें लगती थी। सबेरेसे दोपहर तक चीजोको तैयार करनेमे लगता था। बारह बजे बाद नवाब साहेब अपना खोचा लेकर निकल जाते तो शाम तक तीन-साढे तीन रुपये तो धरे हुए थे। डेढ-दो रुपये रोज कमा लेना 'नवाब'के लिए बायें हाथका खेल था, लेकिन नवाब पूरे नवाब-मिज़ाज थे। रुपये हाथमें आते ही उन्हे काटने लगते थे। सट्टेके पीछे वे मरते थे। अफीम, चाँदी ही नही पानीका भी जुआ कलकत्तामे होता था। तुलापट्टीमे किसी मारवाडी सेठके छतका पनाला बह निकलता, और पानीके खेलामें पैसा लगानेवालोके पौ बारह हो जाते। रुपया पास हो और नवाब सट्टेके बाडेमे न जावे, यह असम्भव बात थी। और फिर सट्टा करते उनको इसका भी ध्यान नही रहता था, कि खोचेके लिए माल खरीदनेभर का पैसा तो बचा रखे। दस-पाँच दिन खोचा लगाते, कुछ पैसे जमा होते, फिर मूलसहित सट्टेबाज़ीमे हार आते। दो दिन चार-दिन भूखे पडे है, मारे-मारे फिर रहे है, किसी साथीने सवा रुपयेका इन्तिज़ाम कर दिया, और फिर खोचा उन्होने उठाया। दो-तीन हफ्ते बाद फिर वही रफ्तार-बेढगी। पाठकजी नवाबकी बराबर फिक्र रखा करते थे। पैसा देकर मदद करनेसे स्थायी फायदा न होते देख, एकाध बार तो वह नवाबको अपने यहाँ लिवा लाये। नवाब कोयलेके चूल्हेपर ऊपरवाली आले-जैसी कोठरियामे कचालूका सामान तैयार करते। ज़ीरा, धनिया और क्या-क्या मसाले भूनते और पीसते, जिनकी सुगन्ध बडी सोधी लगती। मुफ्तका और सो भी मात्रासे अधिक खानेको मिल जानेके कारण मुझे उस कचालूका वह मजा न आता था, जो कि पैसा गिन-गिनकर दोना-दोना लेकर खानेवालोको। नवाबके एक और दोस्त थे, शायद मथुरिया चौबे। मछुआ बाजारमें उनकी मिठाईकी दूकान थी। मिठाई अच्छी बनाते थे, लेकिन जब सट्टेकी सनक चढती, तो जोड-जाडकर सारी पूँजी तक स्वाहा कर आते। खैरियत यही थी, कि उन्होने एक रखेलिन रखी थी, और वह किसी तरह दूकानको बिल्कुल उजड जानेसे बचा लेती थी।

नवाबके दोस्तोमे मुरादाबादका ही एक ब्राह्मण नौजवान था। दोनो साथ ही कलकत्ता पहुँचे थे। वह देखने-बोलनेमे बगाली मालूम होता था। बगालका किसी भी जिलेका कोई मेला उससे छूटता नही था। कोई भी छोटी-मोटी चीज़ बेचकर उसीके सहारे वह अपना राह-खर्च निकाल लेता था। और वह चीज़ भी बाज वक्त उसका अपना आविष्कार होती। उस समय वह चार-चार पैसोमे मोहिनी हार बेच रहा था। ताँबेका चमकता पतला तार बाजारसे लेकर चर्खेके तकुयेपर लपेट-कर बाहरको खिसकाता जाता, फिर अपेक्षित लम्बाईका हो जानेपर तोडकर तागा

पिरो बाँध देता, बस यही मोहिनी हार था। कुछ देरके लिए, और पसीना न लगे तो जाडोमे पाँच-सात दिनके लिए उसका रग, सचमुच, गिन्नीके सोने जैसा होता। उसके बनानेमे धेलेसे भी कम खर्च आता, फिर चार पैसे मे बेचनेमे उसको नफा ही था। वह जब घूमकर आता, तो पाठकजीके यहाँ जरूर आता, और उस वक्त अपनी ताजी यात्राओका विवरण सुनाता।

मार्कामैनी छोडनेके बाद दो-तीन सप्ताहसे ज्यादा मै बेकार नही रहा। इसके बाद बनारसके सुँघनी साहुकी कलकत्तावाली दूकानमे नौकरी मिल गई। 'प्रसाद' जीका खान्दान अपनी मशहूर बनारसी सुँघनीके लिए कितने ही सालोसे 'सुँघनी साहु'-के नामसे मशहूर है। उन्हीके चचा गिरिजाशकर साहुने अपनी एक शाखा तुलापट्टी-मे चीतपुर रोडके नुक्कडके पास खोली थी, दूकानका नाम उनके दो लडकोके नामपर भोलानाथ-अमरनाथ था। जिस वक्त मै नौकर रखा गया, उस वक्त मालिकोमेसे कोई वहाँ नही था। मुझे काम मिला था, चिट्ठी-पत्री लिखना, तथा हफ्तावार जमाखर्चको उतारकर बनारस भेजना। बही-खाता लिखनेवाले एक अधेड मुशीजी थे। दूकानपर एक रुपयेसे अस्सी रुपये सेरकी जहाँ सुँघनी बिकती थी, वहाँ कई तरहका जर्दा, किमाम और सुर्ती-गोलियाँ भी थी। इनके अलावा खमीरेकी खुशबू-दार तम्बाकू वहाँकी खास चीज थी। दूकानमे बेचनेके लिए तीन या चार और नौकर रहते थे। हिन्दी-उर्दू चिट्ठियोके अलावा पाठकजीने एक अग्रेजी चिट्ठीका मजमून लिख दिया था, जिसे यत्रवत् कापी करके मै रोज २५, ३०की तादादमे पुरानी डाइरेक्टरीसे पता देखकर भारतके भिन्न-भिन्न राजा-रईसोके पास भेजा करता था। उस वक्त मेरा ध्यान तो जाता ही क्या, दूसरोका भी ख्याल इधर नही गया, कि किसी नौसिखियासे चिट्ठी लिखवानेकी जगह पत्र ज्यादा प्रतिष्ठित और आकर्षक होता, यदि उसे अच्छे लेटर-पेपरपर छपवाकर भेजा जाता। तो भी सभी तीर खाली नही जाते थे। कुछ आर्डर आही जाते थे। कही-कही शिकायत आती थी, कि सुरती गोली और काला जर्दा पहिले कुछ दिनो तक खानेमे अच्छा रहता है, फिर स्वाद फीका पड़ जाता है। हम लोग जानते थे, कि जब तक अतरकी तरावट रहेगी, तब तक स्वाद बना रहेगा। पीछे हम मोटे काँचकी शीशियोमे ठडी जगह रखनेकी हिदायतके साथ भेजा करते थे।

कुछ ही दिनो बाद बूढे साहु गिरिजाशकरजी भी आ गये। उनका रग गेहुआँ, कद ठिगना और कुछ मोटा था। उमर ५५के आसपास होगी। उनके लिलारमे आँवलेके बराबरकी मसविर्द (मासवृद्धि) थी, जिसपर किसी चिकित्सक गुनीके

परामर्शानुसार वह टिन्चर लगाया करते थे। घुटने तककी धोती, सिरपर सफेद दुपलिया टोपी, बदनपर सफेद चादरके अतिरिक्त एक लाल चारखानेकी अँगोछी भी कन्धेसे लटका करती थी। दोपहरके बाद साहुजी दूकानपर आते, सन्ध्या होते ही टहलने निकलते, और उस वक्त अक्सर मै साथ रहता। टहलनेकी जगह भी उनकी बहुत सीमित थी। बहुत दूर गये तो बडे डाकखाने तक। उनको दमेका रोग था। मुझे किसी तरह मालूम हो गया था, कि दमेका एक सिगरेट होता है। मैंने साहुजीको परामर्श दिया, और बी० के० पालके यहाँसे एक डिब्बा खरिदवा भी दिया। पीतेके साथ उससे आराम होता था। साहुजीकी दृष्टिमे मै बडा होशियार और स्वामिभक्त नौकर जँचने लगा। टहलनेके बाद अक्सर वे अपने एक सम्बन्धी—जिनकी अफीम चौरस्तेपर हलवाईकी दूकान थी—के घर चले जाया करते थे। वही शौच होते, कुछ बैठक और मुगदर भाँजते, फिर दूकानपर आते। फिर दूकानके बगलके चबूतरेपर आसन लगाकर बैठ जाते, और बाजारसे खरीदकर उनके लिए भोजन आता। शामके भोजनपर बीस-चौबीस गडे लगते—उसमे रबडी, दूध, मिठाइयाँ, पूडी और फल शामिल होते थे। हाँ, एक बात भूल गया, गिरिजाशकर साहुकेलिए अठन्नी भर अफीम हर शाम जरूरी थी।

नित्य नियमसे छुटकारा ले रातको नौ या दस बजे जब वह अपने वासस्थानपर जाते, तो मै उनके साथ रहता। वासस्थान पर चीतपुर रोडसें बहुत आगे जाकर छोटी-बडी सडकोसे होकर जाना पडता था। दूकान और वासा दोनो मकान किरायेके थे, किन्तु साहुने सारे मकानको मालिक-मकानसे किराये पर ले लिया था, और अपनी तरफसे किरायेपर लगा रखा था; इस तरह किरायेका बोझ उनके ऊपर बहुत हल्का पडता था। उनके किरायेदारोमे एक रडी भी थी, जो दूकानके कोठेपर रहा करती थी।

चीतपुर रोडका वह हिस्सा, जो हमारे सामने गुजरता था, रडियोके कोठोसे भरा था। अपने गुडोके लिये भी यह मुहल्ला बहुत मशहूर था। एक बार अधेरा होते ही गुडोके दो दलोमे मार हो गई। मारके वक्त पुलीसके सिपाहीका पता नही था। छूरे और लाठियाँ चल रही थी। हम लोग अपनी दूकानसे देख रहे थे। मरा तो कोई नही, हाँ, घायल कई हुए। लडाई समाप्त होनेके बाद एक गुडा हमारे साथियोमेसे एक—जो उसीके हमजिन्स मालूम होते थे—से कह रहा था, 'गुरु, क्या कहते हो, आदमी हो तब न लडे। सालेने न जाने कहाँसे देव मँगाये थे।' दोनो तड़ोमे एकका सर्दार मुसल्मान था, और दूसरेका एक अहीर। था मुसल्मान सर्दार—लेकिन उसके दलमे हिन्दू भी शामिल थे, उसने कई बार अहीरके दलको पीट

भगाया था, इसीलिए अबकी बार उसने मिर्जापुर-अकोलीके लडाके बुला मँगवाये थे।

एक दिन टहलते वक्त साहुकी नजर माजूनकी बर्फियोपर पडी। उन्होने खरीदकर खुद खाया, और एक टुकडा मुझे भी दिया। मुझे वह कलाकन्दकी खुशबूदार बर्फी बहुत मीठी लगी, और जरासे टुकडेपर कनायत करनेके लिए मन तैयार नही हुआ। साहु जब थोडी दूरपर किसी परिचितसे बात कर रहे थे, मैंने जा एक या दो पूरी बर्फी खरीदकर खा ली। भाँगका नशा जोर करने लगा। खैर किसी तरह मैंने साहुजीको उनके वासेपर पहुँचाया। लौटते वक्त मेरा तालू सूखा जा रहा था। उसी वक्त कोई कुल्फीका बर्फ बेचनेवाला आ गया। मैंने एक कुल्फी खाई, दो खाई, लेकिन तालूका सूखना अब भी बन्द न हुआ। आखिर उसकी हँडियामे जितनी कुल्फियाँ थी, उनको खाकर मै अपने वासस्थानकी ओर चला।

इसके बाद मुझे एक बारकी जरासी क्षीण स्मृति है, कुछ आदमी मुझे उठाकर सीढीके रास्ते उतार रहे है। एकाध युगके बाद मालूम हुआ, मै किसी स्वप्न-जगत्मे आ गया हूँ। कोई अच्छा साफ हवादार कमरा है, जिसमे छतसे लटकते सुन्दर बिजली के लेम्प जल रहे है। छतसे लटकते अनेक पखे मद्धिम चालसे चल रहे है। दर्वाजेमे शीशे जडे है, दीवारे कपूर जैसी सफेद है। मुझसे दूर कमरेके बीचमे किन्तु एक सिरेके पास एक मेज है, जिसके पास दो-तीन कुर्सियाँ है, उनमेसे एकपर एक स्वर्णकेशी महाश्वेता अप्सरा शिरमे सफेदसी कोई रूमाल या क्या लपेटे चुपचाप बैठी है। मुझे वह स्वप्न अच्छा लगा, लेकिन ठोसपनका भाव होते ही जिज्ञासाये तरगित होने लगी। उसके बाद फिर मानो स्वप्न गम्भीर निद्रामे परिणत हो गया।

दूसरे दिन वह चीजे स्वप्नकी नही ठोस जगत्की दिखलाई पडी और मुझे मालूम हुआ, कि मै मेडिकल कॉलेज अस्पतालमे हूँ। मेरी पंक्ति और सामनेकी पक्तिमे कई और चारपाइयाँ है, जिनमे मरीज लेटे है। कुछ दिन चढे मेरी चारपाई के गिर्द कनात घेरी गई। एक एग्लो-इडियन नर्सने अस्फज और साबुनसे शरीरके कुछ भागको धोया, पौडर लगाया। मेरी आँख खुली और मुझे होशमे देखकर वह मुस्कराकर बोली—'बाबू, अच्छा हो जावेगा।'

शामको पाठकजीके आनेपर मालूम हुआ, मै उस रात घरपर पहुँचते-पहुँचते बेसुध हो गया, और उसके बाद दस्तपर दस्त होने लगे। सबेरे बेहोशीकी हालतमे ही मेडिकल कालेज अस्पतालमे पहुँचाया गया। मुझे याद नही, कितने दिन बाद मुझे होश आया। मेरे बचनेकी आशा लोग छोड चुके थे। कुछ देर बाद साहु गिरिजा-

शंकर भी आये। उसके बादसे पाठकजी तो रोज़, और साहुजी हर दूसरे-तीसरे दिन देखने आते थे।

नर्सें वहाँ सभी एंग्लो-इडियन थीं। बेहोशीमे जो दवा-दारू पीते रहे वह तो था ही, अब होश-चेतमे भी वह दूध, और पीछे दूध और पावरोटी खिलाने लगीं। पाठकजीने रास्ता पहिले दिखला दिया था, इसलिए वहाँ उज्रका कोई सवाल ही नहीं था। नर्सोंमे एकसे मुझसे धीरे-धीरे अधिक घनिष्टता हो गई थी; जिससे अस्पताल छोड़ते वक्त जरासा अफसोस भी मालूम हुआ।

मेरी बग़लमें एक चीनी बीमार था। उसको तश्तरीमें छुरी-काँटेसे अग्रेज़ी खाने खाते देख मेरी भी जीभ लुटपुटाने लगी, लेकिन डाक्टरने अभी भारी खाना मना कर दिया था। खाने लायक होनेपर छुरी-काँटा ख्यालसे उतर गया, और उसकी जगह अस्पतालके ब्राह्मण रसोइया मछरी भात दे जाया करते। दो हफ़्ता या अधिक अस्पतालमे रहनेके बाद मैं वहाँसे चला आया।

शरीरमें जरा बल आनेपर घर याद आने लगा, और अक्तूबर या नवम्बरके महीनेमें कनैला चला आया। चले आनेके लिए सुँघनीसाहुकी कई चिट्ठियाँ आईं, लेकिन अब तो मैं दूसरे रास्तेपर लुढक रहा था।

# द्वितीय खंड

## तारुण्य

## १

## वैराग्यका भूत

कनैला पहुँचनेपर नाना भी यही मिले। वह पन्दहासे पत्थरका कोल्हू लेकर चले आये थे। उन्हें मेरी बहुत चिन्ता थी। किन्तु वह कहा करते थे—"छ महीने-का कुत्ता बारह बरसका पुत्ता। हुआ सो हुआ गया सो गया।" और मै तो सत्रहवे बरसमे था। मुझे यह देखकर अफ़सोस होता था, कि नानाको कनैलाका रहना उतना अनुकूल नही मालूम होता। खाने-पीनेमे उनकी वह स्वच्छन्दता नही रही, साथ ही वह अनुभव करते थे कि उन्हे लड़कीकी ससुरालमें जिन्दगीका अन्तिम भाग बिताना पड रहा है,—जिसके ग्रामकी सीमामे धर्मभीरु पिता पानी तक नही पीता।

कलकत्ताके लिए रवाना होनेसे पहिले परमहसजीके दर्शनोने मनमे कुछ भाव पैदा किये थे, जो अब तक सुप्त थे, लेकिन अब वे जागृत होने लगे। मै फिर परमहस बाबाकी कुटीपर जाने लगा। वह तो मुझे क्या किसीको उपदेश दिया नही करते थे, महादेव पडित जैसे विद्वान् भी जाते तो शायद उपनिषद्का कोई वाक्य उनके मुँहसे निकल आया तो निकल आया, नही तो जो ही बात जबानपर आई बच्चोकी तरह दुहराते गये। हाँ हरिकरणदासने ज्ञान फूँकना शुरू किया। वह सस्कृत नही जानते थे, हिन्दी भी तेरह-बाईस ही, किन्तु बराबर लगे रहनेसे विचारसागर, विचारचन्द्रोदय, अष्टावक्रगीता-हिन्दीटीका जैसे ग्रथोको पढ़ते और बहुत कुछ समझ लेते थे। मै भी उनके पास बैठकर उन ग्रथोको पढता, और उनसे वार्तालाप करता। धीरे-धीरे मेरी "आँखोका पट्टर" खुलने लगा, "एकश्लोकेन वक्ष्यामि, यदुक्त ग्रन्थकोटिभि'।

ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर ।" मुझे कण्ठस्थ हो गया। उसी वक्तके याद हुए श्लोकोमे है—

"तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा ।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद् वेदान्तकेसरी ॥"

वेदान्तकी हिन्दी पुस्तके समाप्त हो गई। हरिकरण बाबाने बतलाया, कि और ग्रंथोंके पढनेके लिए तुम्हे सस्कृत पढना चाहिए; उनका यह विचार मेरे मनमे घर कर गया। मैने घरवालोके सामने अपना विचार प्रकट किया। पिता और नाना अब भी अग्रेजी पढानेके पक्षमे थे, अभी भी मेरे सम्बन्धकी पुरानी वासना उनकी छूटी न थी। दूसरे इधर कुछ महीनोके मेरे चाल-व्यवहारने उन्हे और शकित कर दिया था। मैने सन्ध्या सीख ली थी, दिनमे तीन बार नहाकर सन्ध्या करता। कुशकी आसनी बराबर साथ रहती। सिर्फ एक वक्त और सो भी अपने हाथसे बनाकर भोजन करता। धार्मिक पुस्तकोके पढने या परमहस बाबाके दर्शन तथा हरिकरण बाबाके सत्सगमे समय बिताता। हँसी-मजाककी तो बात क्या किसीसे बात-चीत करना भी मुझे पसन्द न था। इन बातोको देखकर घरके लोग बडे चिन्तातुर थे, सस्कृत पढनेका मतलब वे समझते थे, वैराग्यके बिरवेमे पानी सीचना। बछवल बीच-बीचमे मै जाया करता था, वहां यागेश और पुराने मित्र तथा कालिकादास एक साधु, मेरे विचारोसे कुछ सहानुभूति दिखलाते थे। मैने फूफा-जीसे सस्कृत पढनेका आग्रह किया, किन्तु उन्हे घरवालोका मनोभाव मालूम था, वह आनाकानी करने लगे। पीछे बहुत पीछे पडनेपर उन्होने कहा—सस्कृत पढनेको मै तो हानिकारक नही समझता, किन्तु तुम्हारे घरके लोग नही चाहते, अच्छा हो, तुम बनारसमे पढो, मै अमुक दिन वहाँ जा रहा हूँ, साथ लिवाते चलूँगा, और अपने एक सहपाठी पडितको सपुर्द कर आऊँगा। मुझे उनकी राय बहुत पसन्द आई।

निश्चित दिनसे एक दिन पहिले मै बछवल पहुँच गया। लेकिन, दूसरे दिन प्रस्थानवेलासे पहिले ही मैने चचा साहेब (प्रताप पाडे)को वहाँ पहुँचा देखा। उन्होने फूफाजीको पिताजी, नानाजीकी राय तथा मेरे उग्र वैराग्यकी बात बतलाकर कहा कि उसे बनारस न ले जावे, बल्कि समझावे कि आजमगढमे नाम लिखाकर अग्रेजी पढे। फूफाजी उनकी बातसे सहमत हुए, और मेरे दिलको बड़ा धक्का लगा, जब कि उन्होने अपना निर्णय सुनाया।

मेरी वृत्तियाँ इस वक्त अन्तर्मुखीन थी। वेदान्त और धर्मसम्बन्धी पुस्तकोका स्वाध्याय तथा सत्सग बस यही काम था। खानेके समय—जो कि दिनमे सिर्फ

एक बारका था—को छोड बाकी वक्त परमहंस बाबाकी कुटीपर ही गुजरता था। पुस्तकोका बडा अकाल था। मेरे घरमे पहिले तो पढने-लिखनेका रवाज न था, पिताजीकी जमा की हुई विनयपत्रिका और रामायण थे, जिनसे, वेदान्ती होनेके कारण मेरा उतना अनुराग न था। एक दिन घरके भीतर घूमते एक पुरानी पिटारीमे कुछ पुरानी पुस्तके मिली। मालूम हुआ वह हमारे पिताके फूफाकी पुस्तके है। किन्तु उनमे ज्यादातर फलितज्योतिषकी छोटी-मोटी पुस्तके, दुर्गासप्तशती तथा एकाध स्तोत्र पाठ थे। उनमेसे दाल्भ्य-स्तोत्रका बहुत दिनो तक मै पाठ करता रहा। चाणक्यनीति और भर्तृहरि वैराग्यशतक कुछ दिनके लिए हाथ लगे थे, मैंने श्लोकोको एक कापीपर लिख डाला, और भाषाटीकाके सहारे कितनोके अर्थोको भी समझ डाला।

हरिकरण बाबा दो ही तीन साल पहिले बदरीनाथ हो आये थे। वैराग्य और अरण्यवासकी बात रोज चलती ही थी। एक दिन उन्होने अपनी बदरीनाथयात्राका वर्णन किया। ऊँचे-ऊँचे पहाड, हरे-हरे देवदार, सफेद-सफेद बर्फ, ठडे पानीके चश्मे तो आकर्षक मालूम हुए ही, क्योकि वे मेरी पर्यटनकी सतत-उपस्थित लालसा-को जगाते थे; किन्तु, सबसे अधिक खिंचाव जिस बातने किया, वह थी एक बाल-रूपी योगीकी, जिनके दर्शन हरिकरण बाबाको देवप्रयागके आगेके पहाडोमे किसी निर्जन स्थानपर पहाडसे उतरकर आते वक्त हुए थे। वह बतला रहे थे—महापुरुष-का शान्त स्वरूप, दिव्य ललाट, छोटी-छोटी पिगल जटाये थी। जान पडता था कोई दूसरे ध्रुव है। उनके पास एक कमडलू, एक मृगचर्म और एक लँगोटीके सिवा और कुछ न था। वह जरा देरके लिए बैठ गये। उनके मुँहसे वेदान्तवाक्य फूलकी तरह झडते थे। उनके कमडलूमे मुठिया तालेकी तरहकी एक गोल चीज थी, उन्होने किनारेपर जरा हाथ लगाया, कि डेढ हाथ लम्बी चमकती तलवार लपलपाने लगी। तलवारका हमारे वैराग्य और वेदान्तप्रसगसे कोई खास सम्बन्ध न था, किन्तु उस वक्त मुझे वह बात अप्रासगिक नही मालूम हुई।

होलीमे मै मुहर्रमी सूरत ही लिये फिरा। चैतका महीना (१९१० ई०) आ गया। सर्दी खतम हुई। थोडेसे कपडेमे भी अब गुजारा हो सकता था। हाल हीमे सुनी बदरीनाथकी यात्रा और हरिकरण बाबाके 'तपस्वी ध्रुव'की कथाने मुझे रास्ता दिखला दिया था। मै सोच रहा था, अग्रेजी—म्लेच्छ भाषा मुझे पढनी नही है, सस्कृत पढने केलिए बछवल और बनारसका रास्ता बद है, फिर कहाँ जाया जाय। आखिर एक दिन मैने हरिकरण बाबासे उत्तराखडकी ओर जानेका अपना

इरादा प्रकट किया, उन्होने उसका समर्थन किया, कालिकादासकी भी वही राय हुई। यागेशको मेरे वैराग्य और वेदान्तसे कोई वास्ता नहीं था, उनका मुझसे प्रेम था, और देशाटन उनके लिए भी थोडी-बहुत आकर्षक चीज़ थी।

उसी वैराग्यकी आँधीके जमानेमे एक दिन मेरे उस्ताद मौलवी गुलामग़ौसखाँ अपने घर मेहनगरसे कनैला आये। अब वह बुढ़ापेके कारण नौकरीसे अलग हो गये थे। घरवालोकी शिकायतोको सुनकर उन्होने मुझे अपने कर्त्तव्यपर सर्मन देना शुरू किया। शिष्टाचारके नाते ही मै उसे बर्दाश्त कर सका, नही तो वैराग्य और वेदान्त-का पारा जितना चढ़ा हुआ था, उसमे उनकी सारी बातें मुझे हेच और असह्य मालूम होती थी। मौलवी साहेब मेरे मिडल पासके सर्टीफिकेटको लेकर देने आये थे, जिसमे दो एक रुपयोके मिलनेकी आशा थी, और वह उन्हे मिले भी।

इधर महीने भरसे बीच-बीचमे मै दो एक दिनके लिए परमहस बाबाकी कुटिया—अर्थात् हरिकरण बाबाकी कुटिया—, या बछवलमें रह भी जाता था, जिससे लोग घरसे एकाध दिनकी अनुपस्थितिमे घबराते नही थे। कनैलामे पहिलेपहिल अबकी साल प्लेग आया था। गॉव भरके लोग झोपड़ियोमे निकले हुए थे और मौतकी शकासे भयभीत थे, किन्तु मुझे उसका हर्ष-विस्मय न था। रोज़की तरह एक दिन फिर मै दक्षिणकी तरफ परमहस बाबाकी कुटीकी ओर चला। बदनपर एक धोती, एक कोट और गमछा बगलमे अपने हाथकी बुनी कुशकी आसनी थी। घरवालोने समझा कोई खास बात नही है। उसी शामको मै बछवल चला गया। बछवलमे फूफाके घर नही, बल्कि कुटीपर कालिकादासके पास। वही रातको यागेश आ गये। फूफाजीके विद्यार्थी अक्सर कुटीपर आया करते थे, मालूम नहीं कैसे मैने उनकी नजर पड़नेसे अपनेको बचाया। मैने दोनो जनोसे अपना संकल्प प्रकट किया। दोनोने प्रोत्साहन दिया। पहिली दो उड़ानोंमे पास रुपयेके थे, उनके बिना मै अपनेको पगु समझता था, किन्तु अबके वैराग्यका सबल साथमे था। हर वक्त यह श्लोकाश जिह्वापर था—'का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते।" पानीके लिए मेरे पास कोई बर्तन नही था, कालिकादासने अपना नया सुन्दर लौकी-का छोटासा कमडलू दे दिया। सवेरे अँधेरा रहते ही जब मै चलने लगा, तो सिर्फ आधपाव गुडकी डली भर साथ ले जानेको मै तैयार हुआ। साथमे सबल लेकर चलना, मुझे अपने वैराग्यके साथ परिहास करनासा मालूम होता था।

मैने पैदल ही अयोध्या होते हरद्वार जानेका इरादा किया था, मेरा इरादा तुरन्त साधु बननेका न था, और न तुरन्त योगमे लग जाना ही चाहता था। मैने तै किया

था, पहिले सस्कृत और वेदान्तके ग्रथोको खूब पढूँगा, उसके बाद सन्यासी हो जाऊँगा। ६, १० बज रहे थे, जब मै सिधारीका पुल (टौसपर, आजमगढके पास) पारकर रहा था। देखा, पुलके नीचे नदीके किनारे बैठे मेरे भितिहरावाले नाना (प्रताप चचाके ससुर) दातुवन कर रहे है। मैने खुदाका हजार शुक्र किया, जो वह पुल या सडकपर नही मिले, नही तो 'कहाँ'का जवाब देना मेरे लिए आसान न था। और वह जा रहे थे कनैलाको ही। वह बहुत बूढे थे, पुलपर जाते देखकर मुझे पहिचान नही सकते थे। आजमगढ शहरसे मै सीधे गुजर गया। चैत्र शुक्ला अष्टमी थी, गर्मी काफी थी, इसलिए सडकपर किसी बाग या कूयेपर थोडी देरके लिए विश्राम मैने जरूर किया। आधपाव गुड खाकर, सो भी चौबीस घटेके निराहारके बाद, पैदल मजिल तै करना, फिर भूख क्यो न लगे ? सडकके किनारेवाले दरख्तोपर पकी गूलरे थी, उनसे दोपहरके भोजनका काम चल गया।

घटा भर दिन रह गया था, जब मै मँदुरीके पोखरेपर पहुँचा। यह वही पोखरा था, जहाँ चार साल पहिले मै छात्रवृत्तिकी प्रतियोगिताका इम्तिहान देने आया था। उस वक्त यहाँ डिप्टी लोगोके तम्बुओ, विद्यार्थियो, अध्यापको और अभिभावकोकी भीडके कारण मेला लगा हुआ था, आज वहाँ सिर्फ वही विशाल पक्का पोखरा, और घना बाग था। घने बागके अँधेरेमे पहुँचनेपर मेरे मनमे कुछ चचलता, कुछ टीससी उठने लगी। मै पोखरेपर थोडी देरके लिए बैठ गया। दिनभरकी भूख और गूलरके फीके फल याद आने लगे। सिरपर आ पहुँची रात और अपरिचित स्थानका चित्र नजरोके सामने खिचने लगा। मनने धमकाना शुरू किया—बेपैसे-कौडी, बेगाने देशमे इस तरह पैदल घूमना हँसी-ठट्ठेकी बात नही है। वैराग्यने कुछ कहना चाहा, किन्तु उसे यह कहकर दबा दिया—'फिर, क्यो नही हवा-पानी पीकर रहे, क्यो गूलरोपर ढेले फेके ?' मनने ठडे दिलसे समझाया—'भितिहरा यही कही पास हीमें है, चले चलो, अब भी कुछ बिगडा नही है।' वैराग्यकी तरफसे—'भितिहरा कभी नही गये'—उज्र पेश करनेपर, यह कहकर चुप कर दिया गया—'सगे चचाकी ससुराल है। नाना नही है, किन्तु मामा तो परिचित है ही।'

दिनभरकी आपबीतीका काफी असर पड चुका था, इसलिए भितिहरा जानेवाली सलाह मुझे माननी पडी। भितिहरा वहाँसे मील-डेढ मील रहा होगा। रब्बीकी फसल कट गई थी, जगह-जगह खलियानोमे लोग थे, उनसे पूछते मामाके घर पहुँचनेमे दिक्कत नही हुई। मामाके गाँवके पहिले एक छोटासा पोखरा मिला, वहाँ पहुँचनेपर मेरा ध्यान अपने कमडलूकी ओर गया। कमडलूके साथ मामाके

यहाँ जाना—बैठे-बिठलाये आफत मोल लेनी थी। अभी भी वैराग्यको अन्तिम उत्तर नही दिया गया था, मँदुरीके पोखरेका निर्णय अस्थायी था। अन्तिम निर्णयको रामनवमीके दिन और भितिहराके वासपर छोड़ा गया था। मैंने पासके पोखरेमे कमंडलूको इस ख्यालसे डाल दिया, कि जरूरत पडनेपर उसे फिर ले सकूँगा।

मामाने मेरे आनेपर बडी प्रसन्नता प्रकट की। थोड़ी ही देरमे घरसा हो गया। घरमे मामी और मामा दो व्यक्ति थे, नाना कनैला गये थे। कहाँ और कैसेका सवाल नही हो सकता था, क्योकि मामाके यहाँ आना भी तो एक जरूरी कर्त्तव्य था। दूसरे दिन रामनवमी थी। साधारण हिन्दू गृहस्थके यहाँ भी उस दिन पूड़ी, हलवा बनता है। स्वयपाकी और दूसरे खट्रागको छोडकर मैंने मामीके हाथके भोजनको स्वीकार किया।

भोजन और विश्रामने वैराग्यको फिर शक्ति प्रदान कर दी, और रातको ही मैंने निश्चय कर लिया—'यात्रा जारी रखनी होगी।' दूसरे दिन गप-शपके साथ मामासे पटसन माँगकर सीखनेके बहाने मैंने रस्सी बटनी शुरू की, क्योकि रास्तेमे कमडलूके साथ रस्सीकी भी जरूरत पड़ती। मामा मेरे ऊट-पटाग बटनेको देखकर हँसते, और खुद बँट देनेका प्रस्ताव करते थे, किन्तु मै सीखनेके बहाने उसे टाल देता। शामको मैंने कह दिया था, कि कल मै घर लौटना चाहता हूँ।

मेरा सत्रहवाँ वर्ष पूरा हो रहा था, और मै अब बच्चा न था, तो भी सबेरे चलते वक्त मामाने एक आदमी साथ कर दिया। उन्हे मेरी गतिविधिपर कुछ सन्देह हो गया था। पाथेयके लिए गुड़मिश्रित सत्तू और भूँजा था। मामा पहुँचानेके लिए आये, बहुत आग्रह करके मैंने गाँवके बाहरसे ही उन्हे लौटा दिया। अब मुझे साथवाले आदमीसे पिंड छुडाना था। १७, १८ मील दूर बेगारमे कनैला जाना उसके लिए भी कोई शौककी चीज़ न थी, जब मैंने उसके सामने लौट जानेका प्रस्ताव किया, तो वह तुरन्त मान गया। मैंने खुशीमे पाथेयमेंसे थोड़ासा सत्तू रखकर बाकी उसीको दे दिया। पोखरेमे जाकर देखा, तो वहाँ कमडलू कही तैरता नही दिखलाई पड़ा। चारों तरफ़ घूमकर एक-एक कोनेको छान डाला, किन्तु वहाँ कमडलू हो तब न दिखाई दे। मैंने सोचा था, कमंडलू साधुओंकी चीज है, इसे चोर-चहरी कोई भी नही पूछता; लेकिन मुझे लडकोंका ख्याल नही आया, जिनके लिए लौकाका कमंडलू फुटबाल या निशानेका काम दे सकता है। मै पछताने लगा—क्यों नही कीचड़मे दबा दिया। अब दिनभरकी मेहनतसे बटी रस्सी भी बेकार थी, किन्तु रस्सीको मैंने फेका नही।

मै फिर पच्छिमकी ओर मुड़ा, और फिर आज़मगढ़से अयोध्या (फैज़ाबाद)

वाली पक्की सडकपर आ गया। दोपहरको स्नान और सन्ध्याकी जरूरत पडी। सडकके किनारे एक स्कूल दिखलाई पड़ा। मास्टरसे लोटा-डोर लेकर स्नान किया। एक धोतीमे नहाते नही बनता था, इसलिए उसे फाडकर दो लुगियाँ बना ली। सत्तू खाकर फिर चला। अब तो अयोध्यामे रामनवमी करनेकी आशा न थी, इसलिए वडी मजिल मारनेकी चालसे नही चल रहा था। दोपहरकी गर्मीमे सुस्ताता और सहयात्रीके अभावमे अपने ही मनसे बात-चीत करता चलता रहा।

सूर्यास्तको आते देख रातको ठहरनेका इन्तिजाम करना जरूरी था, और उससे भी जरूरी था लोटा-डोर माँगकर स्नान-सन्ध्या करना। सडकके पास एक छोटासा गाँव था, एकाध ही घरके बाद एक कुआँ था, जहाँपर कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही थी। उनके घाँघरे और ओढनीको देखकर मुझे मालूम हो गया, कि मै अब फैजाबाद जिलेमे हूँ। पासके घरसे लोटा-घडा मिलनेमे दिक्कत नही हुई। स्नानके बाद कुशासनीपर बैठ मै सन्ध्या करने लगा, कुछ कठस्थ स्तोत्रोका पाठ भी हुआ। फिर कूयेसे जरासा हटकर आसनी बिछा निश्चिन्त बैठ गया। धीरे-धीरे पश्चिमके सूर्यकी लाली अँधेरेकी कालिमामे परिणत होने लगी। पानी भरनेवाली स्त्रियोमेसे कुछ मुझे गौरसे देख रही थी। मेरी आयु, मेरी शकल-सूरत, मेरी पूजा-प्रार्थना सभी अपनी ओर ध्यान आकर्षित करनेकी चीजे थी। दो स्त्रियोने आकर घर-द्वार कहाँ जा रहे हो पूछा, फिर कहा—भोजन नही बनाओगे ? मैने तै किया था,—जिसे नही बताना चाहता वैसी बातको न बताऊँगा, किन्तु जो बात कहूँगा सच्ची-सच्ची कहूँगा। जब उन्होने देखा कि मेरे पास न खानेका सामान है और न बर्तन-ईंधन। तीन-चार औरते अपने घरसे आटा-दाल-नमक, कडा-हँडिया ले आई। कडाका 'अहरा' बनाना मै जानता नही था, इसलिए एक स्त्रीने उसे बना दिया। आग सुलगनेपर मैने चावल-आटा-नमक इकट्ठा ही हँडियामे डाल दिया। उन्हे आश्चर्य हुआ। मैने-यह कहकर समाधान कर दिया, कि आखिर पेटमे जाकर तो सब एक हो ही जावेगे। अधिक आया हुआ सामान डलियोमे पडा था। उन्होने उसे बाँध लेनेके लिए कहा। मैने कहा—"मै सामान बाँधता नही।"

"कल काम आवेगा।"

"आज क्या यहाँ मै बाँधकर लाया था।"

जहाँ तक मुझे याद है, स्त्रियोके अतिरिक्त किसी पुरुषसे वहाँ मेरी वात-चीत नही हुई। मालूम होता है "किसी माँ-वापके कोमल तरुण लडके"को देखकर स्त्रियोके चित्तमे करुणा उमड आई थी।

दूसरे दिन भिनसारे ही सडकसे यात्रियोके चलनेकी आवाज़ आने लगी। लोग अयोध्यासे रामनवमीका मेला करके लौट रहे थे। रातकी 'विश्वम्भरकी कृपा' देख वैराग्यके गल्लेने और ज़ोर पकडा। मालूम होता था, पहिला किला फतेह कर लिया। मालूम नही उसके बाद कितने दिनोमे अयोध्या पहुँचा। कैसे खाता-पीता रहा इसका भी स्मरण जाता रहा। एक दिन दोपहरको एक गाँवमें गया। वहाँ कूयेंपर दो आदमी ढेकली चला रहे थे। स्नान-सन्ध्याके बाद उन्होने सत्तू और नमक लाकर सामने रखा। माँगना मुझे आता न था, न सीखनेकी हिम्मत रखता था।

दर्शननगरके पहिलेके बडे तालावपर मुझे कोई साधु मिला, वह भी अयोध्या जा रहा था। उसीके साथ मै भी रातको बाबा रामप्रसादकी छावनीमे ठहरा।

दूसरे दिन सरयूका स्नान और अयोध्या देखना था। वेदान्ती होनेके कारण देवताओकी भक्ति मेरे लिए उतनी आकर्षक न थी। सबेरे स्नान करके जब मै सरयूकिनारे घूम रहा था, तो एक चलते-पुर्जे साधुने मेरे पास आकर बात करनी शुरू की। फिर चेला होनेका परामर्श दिया। मैने कहा—मै पहिले संस्कृत और वेदान्त पढ़ना चाहता हूँ, पढ लेनेके बाद साधु बननेके बारेमे निश्चय करूँगा। साधु खुद संस्कृत पढा-लिखा न था, इसलिए मुझपर कोई प्रभाव न डाल सका। अयोध्या-को मै घरसे बहुत दूर नही समझता था, इसीलिए काशीकी तरह यहाँके रहनेको भी अपने लिए खतरनाक समझता था।

अयोध्यामे किन-किन जगहोका दर्शन किया, इसका मुझे स्मरण नही। एक रात गोडा ज़िलेके आये यात्रियोके साथ जन्मस्थानके पासके किसी मठमे ठहरा था। उन यात्रियोमे एक-दो देहाती साधु और कुछ गृहस्थ थे। दूसरे दिन जब वे घरको लौटते वक्त फैजाबादकी ओर चले, तो मै भी चल पडा। फैज़ाबादमें किसी सेठकी सदावर्त लगी थी, उस मडलीके साथ मै भी वहाँ इन्तजार करता रहा, और सदा-वर्त लेनेपर एक बूढे साधुने मेरा भी भोजन बना दिया। मुझे सबसे ज्यादा तरद्दुद था एक जलपात्रका। बूढे साधुने कहा, हमारी कुटियापर बहुतसे कमडलू है, यदि वहाँ चलो तो तुम्हे हम एक नही दो कमडलू दे देगे। कमडलूसे निश्चिन्त होनेका मतलब था, बार-बार लोगोसे लोटा-डोर माँगते रहनेसे मुक्त होना। मैने बूढे साधु-की बात मान ली और उनकी कुटियापर जानेके लिए राजी हो गया।

हमे नावपर सरयू पार करना पडा। पार होते-होते धूप बहुत तेज़ हो गई, और दोपहरको नगे पैर जलते बालूपर चलना बडी तकलीफकी बात थी। सरयूपार

नज़दीक कोई गाँव नही था। दियारेमे जहाँ-तहाँ झाऊके दरख्त थे, और कही-कही गाय-भैंसे चर रही थी। एक बजेके करीब जब एक अहीरकी झोपडीमे हमारा काफिला ठहरा, तो मुझे बडा सन्तोष हुआ। अहीर बूढे बाबाका 'सेवक' था। बैठतेके साथ ही गाढा मट्ठा आया, 'नेकी और पूछ-पूछ'—मैने पेट भरकर पिया। बूढे बाबा वैष्णव साधु और ब्राह्मण दोनो थे, और वह दूसरेके हाथकी बनाई रसोई नही खाते थे। 'पक्के' साधुओकी भाषामे तो उन्हे साधु भी नही कहा जा सकता था, क्योकि वह अपने ही गाँव तथा अपने ही घरमे रहते थे। उनकी स्त्री-बच्चे सब मर गये थे, सिर्फ एक विधवा बहू थी। शायद विधवा बहूकी रक्षाके लिए ही वे घर छोडना नही चाहते थे।

रसोई बनी, भोजन हुआ, कुछ विश्राम किया गया, और उसके बाद हम फिर रवाना हुए। आगेकी यात्रा बहुत आरामसे होती रही। हर तीन-चार मीलपर, बूढे बाबाके परिचित साधुओकी कुटियाँ थी, हमारी ३, ४ आदमियोकी जमात वहाँ पहुँचती। दडवत्-प्रणाम होता। बूढे बाबा जौ या गेहूँकी रोटी घीसे बघारी अर-हरकी दाल, आलूकी तरकारी और आमकी चटनी बनाते, भोजन बडा स्वादिष्ट मालूम होता। मै क्या करता रहता यह स्मरण नही। अपनी पुस्तको और विचार-मालाओके अतिरिक्त साधुओसे बातचीत भी करता रहता था, जरूर। इधरके गाँवोकी दीवारे, टट्टी और छते फूँसकी होती थी। कारण पूछनेपर स्थानीय साधुने बतलाया—बरसातके दिनोमे यहाँ बाढ आ जाती है, सरयूका पानी पाँच-पाँच, दस-दस मील तक फैल जाता है, मिट्टीकी दीवारे तो उसमे गल जाये। बाढके वक्त रहनेकी बात पूछनेपर उन्होने बतलाया—"दरख्तोपर मँचान बाँध कर।"

"और खाना ?"

"सत्तू, वहाँ आग कहाँ जलाई जा सकती है ?"

"और पाखाना ?"

"पानी हीमे, आपद् धर्म ठहरा।"

यह भी पता लगा, कि बाढ सारी बरसात भर नही रहती, दस-पाँच दिनमे चली जाती है। बाढके तजर्बेके लिए मेरा मन भी ललचाया, लेकिन मै तो दूसरी ही मुहिमपर निकला था।

बूढे बाबाके गाँवसे पहिले पासका गाँव (शूकरक्षेत्र) मिला। वराह भगवान्के मन्दिरमे ही डेरा पडा। बाराहमन्दिरकी बहुत धुँधलीसी स्मृति है। मन्दिरके सामने शायद चहारदीवारीसे घिरा हाता था। वाराहक्षेत्रसे आगे जानेपर सरयू नदी—

घाघरा नही—को हमने पैदल ही पार किया। धोती भीग गई थी। बूढे बाबा-का गाँव कैसा था, उनका मकान कैसा था, उनकी बहू कैसी थी—इन बातोका कोई प्रतिबिम्ब स्मृति-पटपर अकित नही मिलता। दूसरे ही दिन या एक-दो दिन बाद मै जब चलने लगा, तो बूढे बाबाने लौकाका एक गोलमटोल कमडलू दिया। मुझे सूरतसे क्या मतलब, कामके लिए वह काफी अच्छा था। रास्तेके लिए सयुक्त-प्रान्तकी मुख्य-मुख्य सडकोका मुझे स्मरण था। मै वहाँसे बहरामघाट रेलवे-पुल पार हुआ। मालूम नही कौन कब, किन्तु शायद जगजीवन साहेबका कोटवा और लोधेश्वर तो ज़रूर ही मेरे रास्तेपर पड़े। नित नये गाँव, नित नये-नये मेजबानोके चेहरे सामने आते थे। माँगना न जानता था, और न उसकी जरूरत थी। कोई न कोई गृहस्थ खानेके लिए जरूर पूछता, और 'विश्वम्भरकी कृपा' समझकर मै दाताके उपकारके-लिए उतना कृतज्ञ होनेकी जरूरत नही समझता था। कुछ दिनो बाद दोपहरको सडकके किनारेके कच्चे आमोपर रह जाता था, कमडलू पास होनेके कारण स्नानके-लिए अब मै गाँवका मुहताज न था। हाँ, रातको जरूर किसी साधुकी कुटिया या गृहस्थके द्वारपर पहुँचता।

मै मुरादाबाद तक पैदल ही गया। जिसमे बीस-पचीस दिन लगे थे, किन्तु रास्ते-की घटनाये इतनी साधारण थी, कि उनमेसे बहुत कम याद है। बिसवॉ मेरे रास्ते-पर पड़ा था, और शायद वहॉ एक बडे महन्तके मठमे ठहरा था। महमूदाबाद शाम-को पहुँचा था, और वहाँ एक उदासी साधुके स्थानमे रातभरके लिए ठहरा। मिस-रिखके पोखरे पर बाटी लगी थी। पोखरेमे पानी बहुत कम था, उसके एक कोनेमे एक कुआँ दिखलाई पडता था। नीमसारके कुडके बारेमे कहा जाता था, कि उसके पानीका थाह नही, वह पाताललोक तक चला गया है। उसकी एक ओरसे थोडा-थोडा पानी बह रहा था। हरदोईमे कचहरीके पास विलायती दरख्तोपर लाल फूल खिले हुए थे। शाहजहाँपुरसे कुछ मील पहिले बनारस जिलेके एक तीर्थाटक ब्राह्मण मिले। साथ-साथ कुछ मील चलनेपर सलाह हुई, साथ ही चलनेकी। वह भी हरिद्वार और बदरीनाथ जा रहे थे। मुरादाबाद तक हम दोनों साथ रहे। ब्राह्मणके साथ छूत-छातका ख्याल मेरा बिल्कुल नही था, ब्राह्मण देवता रसोई बनाते थे, खाने-पीनेकी चीज मॉग-जाँच भी लाया करते थे। बरेलीमे बादशाह एडवर्डके मरनेके कारण उस दिन बाजार बन्द थे। रामपुरमे पाठकजीके साले रहते थे, जिन्हे कलकत्तामे मैने देखा था। उनसे मिलने गया। मुझे वैराग्यसे डिगानेके लिए उन्होने कोशिश की, किन्तु अब मै उस अवस्थासे बहुत

आगे पहुँच चुका था। उन्हीसे मालूम हुआ, कि पाठकजी कलकत्ता छोडकर घर चले आये है, और अब मुरादाबाद हीमे रहते है।

मुरादाबादमे हम सीधे मियाँसाहेबकी गलीमे गये। पाठकजीको मुझे देखकर बडी प्रसन्नता हुई, किन्तु मेरे बाने और साथके तिलकधारीको देखकर उन्हे बेचैनी हुई। रात बीतनेपर सबेरे देखा तो बनारसी दोस्त गायब है। ढूँढनेमे इधर-उधर परेशान देखकर पाठकजीके लडकेने मुस्कुराते हुए कहा—हमने उसे रवाना कर दिया। पहिले आनाकानी करते थे, किन्तु जैसे ही कहा—'दूसरेके लडकेको भगाये लिये जा रहे हो, जा रहे है पुलीसको रपट करने,' बस इतने हीमे बच्चाका होश ठीक हो गया। आप यहाँ रहिये, और हम लोगोको भी ज्ञान-वैराग्य सिखलाइये। खैर, मुझे अभी जल्दी भागनेकी नही पडी हुई थी। पाठकजीका परिवार सभ्य नागरिक परिवार था, और पाठकजीके आग्रहको मै जल्दी ठुकरा नही सकता था। नगरके एक धनी सेठ थे। पाठकजी उनके दर्बारमे आया-जाया करते थे। दो भाइयोमे बडे भाईको भी ज्ञान-वैराग्यकी बीमारी लगी हुई थी। मुझसे मिलकर उन्होने वहुत प्रसन्नता प्रकट की, और अपने ही यहाँ रहनेके लिए कहा। मुरादाबादके दस-पन्द्रह दिन अधिकतर उनके ही यहाँ बीते। विरक्त सेठने कई दरियाई नारियल जमा कर रखे थे। कह रहे थे—'देखिये, दस नारियल है, मै सोच रहा हूँ, दस सन्यासी हो जाये तब हम साथ निकले। दो तो हो ही गये, आठ और आ जावेगे।' गर्मी खूब पड रही थी, लेकिन सेठ (साहु)जीके बैठकेमे खसकी टट्टियाँ लगी थी। मेरे खाने-पीने, रहने-सहनेका अच्छासे-अच्छा इन्तिजाम था, और सेठजी समझते रहे होगे, कि अब यह जानेवाला नही, बस सिर्फ आठ और मूर्तियाँ चाहिएँ।

सेठजीके छोटे भाई और खासकर उनकी माँ बडे बेटेके रवैयेसे पहिले हीसे वहुत परेशान थी, मुझे डटकर सत्सग करते देखकर उनका भय और बढ गया। मै अब उकताने लगा था। सेठजीकी दसवाली स्कीम मुझे फीकी लगने लगी, और ज्ञान-वेदान्तमें तो वे मेरे पासगके बराबर भी न थे। मुझे बडी प्रसन्नता हुई, जब एक दिन सेठजीकी माँ और छोटे भाईने बडी मिन्नत करते प्रस्ताव किया—'आप यहाँसे हरद्वार चले जाये। वहाँ जानेकेलिए रहनेके लिए जो कुछ जरूरत हो, हम उसका इन्तिजाम कर देगे।' मैने देखा उनके द्वारा मै सेठजी और पाठकजी दोनोसे बचकर निकल सकता हूँ, जिसकी इधर कुछ दिनोसे मुझे बडी फिक्र थी। मैने कहा, एक लुटिया (कमडलू अब सडने लगा था)-और हरद्वार तकका टिकट मुझे चाहिए, और कुछ नही।

२

# हिमालय (१)

हरिद्वार स्टेशनपर उतरते वक्त मेरे पास दो-चार आने पैसेसे अधिक नही रहे होंगे, किन्तु अब मेरे लिए पैसे-कौड़ीके बिना अजनबी जगहमे जाना चिन्ताकी चीज़ नहीं थी। गंगामे स्नान करने गया। उस गर्मीमें दिल कहता था, पानीमे बैठे, किन्तु पानीमें घुसनेपर वह सर्दीके मारे काटे खाता था। हरिकी पैडीके पास कहीं कुछ पेट-पूजा की, और फिर चला किसी पंडितकी खोजमे। आख़िर हरिद्वार आनेका मेरा मतलब सिर्फ़ तीर्थ और तपस्या करना नहीं था, मै वहाँ आया था संस्कृत पढ़नेके-लिए। एकाध जगह लोगोंसे पढने और पंडितके बारेमें पूछा। लेकिन जब घर बनारसके पास बतलाया, तो उन्होंने कहा—यह चले है यहाँ हरिद्वारमे संस्कृत पढ़ने। सारी दुनिया जाती है बनारस संस्कृत पढने, और इनकी उल्टी बार। पासके दूसरे आदमीने कहा—"अरे भाई, यह पढ़नेवाले देवता नही है, आये है छत्रोंके टुकडे तोड़ने। एक आदमीने विष्णुतीर्थ(?)पर विष्णुदत्त(?) पडितका नाम बतलाया। तलाश करते वहाँ पहुँचा। आवाज लगाई। कोठेपरसे एक अधेड आदमी बोल उठा—"कौन, किसको चाहते हो?"

"मैं पडित विष्णुदत्तसे मिलना चाहता हूँ।"

"ऊपर चले आओ, मेरा ही नाम विष्णुदत्त है।"

पंडितजी बहुत अच्छी तरह मिले। मेरी और उनकी उम्रके बीच जितना शिष्टाचार दिखलाना चाहिए, उससे अधिक शिष्टाचार दिखलाया। पढनेकी बात कहनेपर कहा—कोई पर्वा नहीं हम पढायेंगे। तुम दूरके विद्यार्थी हो, खानेके लिए चिन्ता मत करना हमारे चौकेमे खाना।

इतनी सफलतापर मेरे आनन्दकी सीमा न थी।

दो-तीन घंटे बाद पडितजीने क़लम, दवात और कापीके साथ एक मोटीसी पुस्तक मेरे सामने ला रखी। बोले—"इस पुस्तककी खेमराज श्रीकृष्णदासके प्रेससे माँगपर माँग आ रही है, इसे तुम रोज़ नकल किया करो।"

मुझे और हर्ष हुआ, समझा—मुफ्तकी नहीं कमाकर रोटी खाना सबसे अच्छा है। एक दिन, दो दिन तो मैं संकोचमे पड़ा रहा; समझता था, पंडितजी खुद पढनेके-लिए कहेंगे। जब उधरसे कोई बात ही चलती न देखी, तो मैंने पढ़नेके बारेमे कहा।

हाँ, बहुत अच्छा' कहकर दो दिन और टाला। उधर दिनमें आठ घटा बराबर क़लमघिसाई करनी पड़ रही थी। फिर कहनेपर बड़े मीठे स्वरसे कहा—'जल्दी क्या पड़ी है, किताबको जल्दी भेजना है, इसे लिखकर खतम कर डालो, फिर पढाई शुरू करना; तब तक मेरी पुस्तकोमेंसे जो रुचे, पढते रहो।'

पडितजीकी पुस्तकोमे मेरे कामकी कोई पुस्तक न थी। छुट्टी मिलनेपर दो-एक घटे बाहर घूमने जाता। कोशिश यह भी करता था, कि कही दूसरी जगह पढने-का सिलसिला लगे तो वहाँ चला जाऊँ। एकाध स्थानका पता भी लगा, तो बना-रसकी ओरसे आना मेरे आवारापनका सबसे बडा प्रमाण था, और कोई मुझे विद्यार्थीके तौरपर स्वीकार करनेको तैयार न था। पहिले ही साधु बन जानेके मै बिल्कुल खिलाफ था, इसलिए मठोमे न मै गया, न किसी साधुकी मेरी ओर नजर गई। अखबारसे मै कोरा था। निजामाबादके अन्तिम वर्षमे "सरस्वती"के एकाध अक देखे थे, पढे थे—इसमें सन्देह है।

सात-आठ दिन रहनेके बाद पडितजीका रहस्य खुलने लगा। उनको सस्कृतसे कोई वास्ता न था। 'व्रतार्क' (यही उस पुस्तकका नाम था)को छपवाकर प्रेस-वालोसे कुछ रुपया और साथ ही तीर्थपर आये भक्तोपर अपनी विद्वत्ताकी धाक जमाना उनका काम था। रसोइया रो रहा था—छै महीने हो गये, एक पैसा तनख्वाह नही दी। खाना खिलानेकी यह हालत थी, कि उनकी आठ-नौ वर्षकी लडकी ही छोटी होनेसे पेटभर खानेको पाती हो तो हो। लडकीके सिवा पडितजीके घरमे और कोई न था। शामके वक्त छतपर बैठकर खाने और रातको वही सोनेमें मुझे और नफरत आती थी, जब देखता था कि उसी छतपर कुछ दूर हटकर महीनोका पाखाना सूख रहा है।

अपनी सफलतापर फूला न समाता हरिद्वार पहुँचनेके दूसरे ही दिन मैंने यागेशको 'गद्यकाव्य'में एक पोस्टकार्ड लिखा था। उस आनन्दातिरेकमे पत्रमें कवित्व आ जावे तो कोई आश्चर्य नही। पत्र सीधे यागेशको लिखा था या कालिकादासके पतेसे, यह याद नही। कोई दूसरा पत्रको न पढ ले, इसके लिए सारे पत्रको लिखकर, फिर उसे इतिसे अथकी ओर करके उलट दिया था। मुझे जहाँ तक ख्याल है, मैंने चलते वक्त यागेशको बतलाया नही था, कि मै इस तरहका साकेतिक पत्र लिखूँगा। वाक्योको उलटकर कहनेकी दीहाती स्कूलोमे चाल थी, शायद इसीसे यागेशको पत्रके पढ़नेमें दिक़्क़त न हुई। पत्रमे मैने अपने यात्रानन्दका आकर्षक वर्णन करते हुए, उन्हें भी उसमें सहभागी बननेके लिए निमन्त्रण दिया था।

मेरा पत्र यागेशके पास आया है, यह रहस्य धीरे-धीरे खुल गया। यागेशके हाथसे उनके चचा महादेव पंडित पत्र लेनेमें सफल हुए। पहिले तो उसका कोई अर्थ नहीं मालूम हुआ, किन्तु पीछे उन्होंने भी संकेत ढूँढ़ निकाला। अब यागेशके ऊपर निगरानी रख दी गई। यागेश मेरे पत्रको पाकर चलनेका बहुत कुछ निश्चय कर चुके थे, और जब निगरानी देखी, तो उनका इरादा और पक्का हो गया। वह निकल भागनेकी फ़िक्रमें पड़े।

पंडितजीने अपनी रोटियोंके लिए लिखानेका काम लेकर यदि किसीके पास मेरे पढ़नेका प्रबन्ध भी कर दिया होता, तो भी मैं उनके पास बना रहता, किन्तु जिस स्थितिमें बेवकूफ़ बनाकर वह रखना चाहते थे, वह मुझे सह्य नहीं थी। उस वक़्त बदरीनाथके यात्री आने लगे थे। हरिद्वारमें पढ़ाईसे निराश हो जानेपर मैंने सोचा, पढ़ाईके लिए फिर बनारस ही लौटना होगा, लेकिन अब जब यहाँ आ गया तो बदरीनाथ भी हो आना चाहिए।

एक दिन सवेरे मैंने पंडितजीसे रुख़सत ली। भीमगोड़ा होते हृषिकेश पहुँचा। अयोध्यासे मुरादाबादके सफ़रमें सदावर्तों और धर्मशालाओंसे मैं परिचित हो गया था। भीख माँगना तो मुझे अपने बसकी बात नहीं मालूम होती थी, किन्तु सदावर्तमें भीख माँगनेकी ज़रूरत नहीं, वहाँ तो नियमित अन्न या पैसा पाना हर भिखमगा अपना अधिकार समझता है। रास्तेमें मालवाके एक साधु मिल गये। यात्रामें एकसे दो अच्छे होते हैं, यह बनारसी तीर्थाटकके साथ रहकर मैंने अनुभव कर लिया था। दोनों बात करते चले, और हृषिकेशमें जाकर कालीकमलीवालेकी धर्मशालामें ठहरे। पहिलेके कालीकमलीवाले बाबाके "पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश"को मैं पढ़ चुका था, किन्तु मुझे यह नहीं मालूम था कि कालीकम्लीवालेकी इतनी धर्मशालायें और इतने सदावर्त उत्तराखंडमें फैले हुए हैं।

मेरे साथी मालवी बाबा देखनेमें पतले-दुबले तथा पचाससे ऊपरके थे, किन्तु चलने—काम करनेमें मुझसे ज्यादा मज़बूत थे। दो-तीन उतराई-चढ़ाईमें जहाँ मैं टें बोल जाता, वहाँ वह हाथमें लाठी, पीठपर बिस्तरा, बग़लमें झोली लिये धीरे-धीरे चलते ही जाते। दिनकी मंज़िल पूरी करके जब हम किसी धर्मशाला या चट्टी-पर पहुँचते, तो मैं तो लेट जाता, और ज़रा भी हिलने-डोलनेकी इच्छा नहीं रहती, किन्तु वह लकड़ी जमा करते, आग सुलगाने, खाना बनानेमें लग जाते। थोड़ी देर सुस्तानेके बाद लज्जित होकर मैं उठ खड़ा होता और उनके काममें सहायता देने लगता। हमने हृषिकेशमें ही कालीकमलीवालेके छत्रसे अगले छत्रकी दो चिट्ठियाँ

ले ली थी—जिसमे एक आदमी दो बार सदावर्त न ले ले, इसके लिए कालीकमलीवालेने एक चट्टी या धर्मशाला पीछेसे छपी चिट्ठी ले जानेका तरीका निकाला था, चिट्ठीको देते ही उसमे छपी सदावर्तकी चीजे मिल जाती थी। सदावर्तकी जगह हर रोज नही मिलती थी, ऐसी स्थितिमे हमे तीर्थयात्री दाताओपर भरोसा करना पडता था, और उनकी काफी सख्या हमारे साथ-साथ चल रही थी। माँगने-जाँचनेका काम मुझसे होता भी नही, और उसके लिए मालवी बाबा जैसे एक्सपर्ट वहाँ मौजूद थे।

देवप्रयाग पहुँचते-पहुँचते मेरे भी पैर और फेफडे कुछ मजबूत होने लगे। देवप्रयागमे अलकनन्दा उस पार हम एक या दो दिन ठहरे। भागीरथीकी धारपर पारवाले गाँवोमे जानेके लिए रस्सीका झूला बना हुआ था, एक बार मै उसपरसे जाकर आर-पार हो आया और यह उस वक्तके लिए साधारण बहादुरीकी बात नही थी।

देवप्रयागमे सलाह हुई सीधे केदार-बदरी होकर चला जाना क्या, आये है तो जमनोत्री, गगोत्री भी होते चले। प्रस्ताव मालवी बाबाकी तरफसे हुआ, और मैने एवमस्तु कहा। देवप्रयाग छोडनेके बाद पहिली चढाई जब शुरू हुई, और उठते-बैठते घटो चढ़े चले जानेपर भी चढाईका अन्त नही दिखलाई पडा, तो अपने निर्णय पर मुझे बहुत पश्चात्ताप होने लगा। लेकिन "अब पछताये होत का।" यह बात १६१० की है, उस समय देवप्रयागसे टेहरीका रास्ता, पगडडीका था।

चढाई इतनी कडवी मालूम हुई, किन्तु उसके खतम होनेके बाद फिर इन्द्रियाँ शान्त हो गई। अब कुछ आदत पडती जा रही थी, इसलिए चलनेके बाद चौबीस घटा दर्द बनी रहनेवाली बात न थी। ऊपर डाँडेपर ठडी हवा, और पके करौदे, तथा तूत जैसे सुनहले फल—जिसके पौधे कँटीले थे—खानेमे मजा आने लगा। वहाँकी प्रकृतिका सौन्दर्य पीछेकी चकाचौधके कारण भूल गया, किन्तु इतना याद है, वहाँ जगली अनार थे, जो खानेमे अधिक खट्टे थे। कितनी ही दूर जानेपर उतराईमे वर्षा शुरू हो गई। हम लोग, एक पनचक्कीघरमे चले गये। वहाँ वर्षासे वचनेके लिए घर तथा खाना बनानेके लिए पासमे पानी भी मौजूद था। ईधनकी कमी न थी। अपने राम तो आज खाकर हँडिया ही फोड देते, किन्तु मालवी बाबाको देशाटन करते युग बीत गये थे। वह तीनो धाम हो आये थे, और उनमेसे एक या दो को तो एकसे अधिक बार। वह अच्छी तरह समझते थे, मौकापर गाँठका बँधा गुड जितना काम देता है, उतना वेदान्त-वैराग्य नही। एक शाम, दो शामके लिए आटा-आलू-मिर्च-मसाला उनकी झोलीमे बराबर रहता था। आस-पास मील आध-मील—सो भी पहाड़ी चढाई-उतराईके साथ—कोई वस्ती न थी, तो भी हम

निश्चिन्त थे। मालवी बाबाने अपना छोटा तवा, थाली-बटली निकाली। पानी लाने, बर्तन मलनेमें अब मैं भी सहायता करता था। रोटी उतनी अच्छी तरह तो नही सेंक सकता था, किन्तु दाल-तर्कारी बनानेमें कोई त्रुटि नही होती थी। मालवी बाबा किस जातके है, इसे न मैंने कभी पूछा, न पूछनेकी ज़रूरत समझी। यद्यपि वेदान्तके 'खानेके दाँत और दिखानेके और'के अनुसार व्यवहारावस्थामें हजारो पाखंडोका पालन करना अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए आवश्यक समझा जाता है, किन्तु वेदान्तसे पहिले कलकत्ताके पाठकजीका मन्त्र भी तो मुझे लग चुका था।

कितने दिन बाद टेहरी पहुँचे। वह कैसी बस्ती है, यह मुझे याद नही। राजकीय धर्मशालामें हम लोग ठहरे थे। मालवी बाबा कहने लगे—तीरथका फल पूरा नहीं मिलता, जब तक कि वहाँके राजाका दर्शन भी न कर लिया जावे। 'तीरथके फल'को मैं बिल्कुल तुच्छ समझता था, यह तो नही कह सकता; किन्तु उसमें देशाटन-की वासना बहुत ज्यादा मात्रामें थी, इसमें तो सन्देह नही; और उस दृष्टिसे राजाका दर्शन एक आवश्यक चीज़ थी। हम लोग बस्तीसे बाहर किसी बाग़के पास खड़े हुए। हमारी तरहके कुछ और तीरथप्रवासी लोग वहाँ खडे थे। राजा साहेब सामनेके पहाड़पर अपने ग्रीष्मावाससे आये, उनकी बग्गी हमसे चार कदमपर खड़ी हुई। हम सबोने राज-दर्शन पाया। राजाकी क्या उम्र थी, कैसा चेहरा-मुहरा था, यह मुझे बिल्कुल याद नही। हाँ, लौटते वक्त साथी लोग बातचीत कर रहे थे, कि महाराजा-का शादी-सम्बन्ध नेपाल राजवंशके साथ है।

टेहरीसे धरासूकी यात्रामें कोई स्मरणीय घटना नही घटी। दोपहरसे पहिले किसी-न-किसी गाँवमें हमें मट्ठा मिल जाया करता। कुछ सदावर्त, और कुछ माँग-जाँचकर हमारे दोनो शामके भोजनका काम चल जाता। अब सर्दी भी पड़ रही थी, और आगेकी सर्दीमें मेरे पास कोई कम्बल जरूर रहा होगा, किन्तु मुझे जहाँ तक याद है, नीचेसे कम्बल मैं साथ नहीं लाया था; कम्बल मिला होगा तो हृषिकेश या टेहरीमें ही। धरासू पहुँचते-पहुँचते मालूम होने लगा, कि अब मालवी बाबाके साथ और अधिक रहनेमें कड़वाहटके साथ अलग होना पडेगा। धरासूसे यमुनाके तट तक पहुँचनेका दृश्य कैसा था, यह तो नहीं कह सकता, लेकिन यमुनाके किनारे पहुँचनेपर मालूम होता था, नाटकका एक नया पटोद्घाट हो गया। उपत्यका अधिक चौड़ी थी। यमुनाका नीला जल दूर तक फैला हुआ अनवरत कल-कल करता चल रहा था। आपादमस्तक हरियालीसे लदे विशाल पर्वत अपनी छायासे उपत्यकाको ढँके हुये थे, जिससे प्रकृति बड़ी स्निग्ध मालूम होती थी, यद्यपि अभी कुछ दिन

था। इधर विशेष कर धरासूसे इस तरफ जमनोत्रीके यात्री बहुत कम होते थे, और रास्तेकी मरम्मत और चट्टियो (पडावकी दूकानो)का अभाव था, इसीलिए हम लोगोने जगलात मुहकमेके कुलियोके डेरेके पास यही ठहरना पसन्द किया।

हमारे डेरा डाल देनेके थोडी देर बाद एक और भी मूर्ति हमारी बगलमे आकर रुकी, जिसकी शकल-सूरत और बातचीतने बहुत जल्द ही मेरे ध्यानको अपनी ओर आर्कषित किया। उसका रग गोरा, चेहरेपर कम मास, नाक नुकीली, आँखे चमकीली, मुँहपर घनी काली मझोले परिमाणकी दाढी, शिरपर काले केशोका छोटासा जूट था। उसके पास बहुत कम सामान था—एक पशमीनेकी नारगी रगकी अलफी (लम्बा कुर्ता), एक कम्बल, छोटीसी झोली, पीतलका कमडलू (डोल जैसा), एक गमछा, दो लँगोटीके सिवा एक लम्बा "रोज"का लाल डडा भर उसके पास था। उसके आनेके साथ ही एक बडे-बडे बालोवाला मटमैला सफेद कुत्ता इधर-उधर सूँघकर मालिकसे पाँच कदम दूर जाकर बैठ गया।

ब्रह्मचारी—उस व्यक्तिका नाम याद नही रहा—की जबान और रोम-रोम चुप रहना जानते ही न थे। उसने आते ही प्रश्नोकी झडी लगा दी—"कहाँसे आये महात्मा?" "कैसा रास्ता है?" "हाँ, आप मालवा उज्जैनके रहनेवाले है, मै उज्जैनके चढाव-पर गया हूँ।" "और आप—आप तो बहुत अल्पवयस्क मालूम होते है, यह आपके पढनेका समय है?" "अच्छा, आपका जन्मस्थान बनारसके पास है? बनारस मै दो बार गया हूँ। मणिकर्णिका-स्नान और विश्वनाथके दर्शन किये है। काशी विश्वनाथकी नगरीका क्या कहना है? हिमालयके बाद यदि कोई स्थान मुझे प्रिय लगता है, तो काशीपुरी ही, लेकिन वर्षोसे हिमालयमे घूमते रहनेके कारण वहाँकी गर्मी बर्दाश्त नही होती, मैने पिछली बार कुछ महीने रहना चाहा, किन्तु फागुनके बाद रहना नामुमकिन हो गया।"

वह बडे आत्मविश्वासके साथ, शुद्ध सस्कृत हिन्दीमे अप्रयास धाराप्रवाह बोलते जा रहे थे। उनका जन्मस्थान बरैली-मुरादाबादकी तरफका मालूम होता था। उनकी भाषामे कितने ही उर्दूके शब्द भी आते थे, जिनका उच्चारण बहुत शुद्ध था। 'आपका आना किधरसे हो रहा है'—पूछने पर बोले—

"मै हरिद्वारकी ओरसे नही आ रहा हूँ। यहाँसे पच्छिम रामपुर-कुल्लू-चबा-जम्मू-कश्मीर मेरी विचरणभूमि है। जाड़ोमे कुल्लूमे रहा। मणिकर्ण नाम सुना है? नही सुना होगा। बहुत कम लोगोको पता है। बडा जागता तीर्थ है। जमनोत्रीमें तो एक गर्म कुड देखोगे, वहाँ अनेक। यहाँ तो पानीमे रोटी आलू डालनेपर पकते है, वहाँ

पानीपर वर्तन रखकर पका लो। पार्वतीजीके कानकी मणि गिर गई, इसीलिए स्थानका नाम मणिकर्ण पड़ा।... हाँ, ठीक मणिकर्णिका नाम भी काशीमे पार्वतीजीकी मणि खो जानके कारण ही पडा, किन्तु यहाँ उवलते हुए पानीके चश्मे वतलाते है, कि त्रिशूलीके त्रिशूलने मणिको खोज निकालनेमें कितना प्रयत्न किया।. ..नही बूढ़े बावा, कहनेकी वात है—'जो जाय कुल्लू, हो जाय उल्लू।' कुल्लू-चम्बामें सुन्दरता बहुत है इसमे शक नही। ...मैंने कातिक मेला रामपुरमें किया था। एकसे एक कम्बल आते है, लेकिन भारी होते है। राजाने वहुत कहा—'ब्रह्मचारीजी! जाडोके लिए कुछ कपडे ले ले।' जानते है, वोझ लादे-लादे फिरना मुझे सवसे ज्यादा तकलीफदेह मालूम होता है। बीहडसे बीहड़ पहाड़ोंको मैं कुछ नही समझता। धरासूसे इधरका रास्ता मैंने नही देखा, तव भी वहाँ कुछ तो राजकी ओरसे रास्तेकी मरम्मतपर खरच करना पड़ता होगा। मैंने तो ऐसे रास्ते पार किये है, जहाँ रास्तेके चिह्न वनानेका काम आदमियोके पैरोने किया है। नदियोंको आरपार वाँधे एकहरे रस्सेके सहारे पार करना होता है।. . हाँ, यह कम्वल और पट्टूकी अल्फी रामपुरके राजाकी दी हुई है। दोनो हल्के है, किन्तु खूब गर्म है। पट्टू—यह पशमीनेका पट्टू है। वर्फीली जगहकी वकरियोके वालोके भीतर पशम उगती है। .हाँ, वहुत कोमल है। असली पशमीनेकी परख है,—मलमल जैसे पतले पशमीनेको चार परत करके जमे घीपर रख दिया, और आध घंटेमें वह पिघल गया।.. .हाँ, रामपुरका राजा तो वड़ा है, इधर पहाड़मे चार-चार गाँवके राजा है।. पहाडी लोग वडे सच्चे होते है, अव तो देशी लोगोके संसर्गसे वे भी कुछ चालाक होते जाते हैं, नही, तो झूठ-चोरीका तो ये नाम भी न जानते थे। साधु-सन्तोमें वड़ी श्रद्धा रखते है। हाँ, बूढे वावा, वदरी-केदारकी सडकोपर चट्टियोमे दूकान करनेवाले कहाँ तक अपनी श्रद्धा कायम रखेंगे, वहाँ तो रोज़ सैकड़ो साधु-सन्त आते-जाते रहते है।. . हाँ, यह झोली—इसमे यह देखो एक गाँजेकी चिलम, साफी, दियासलाई और कुछ गाँजा-तम्वाकू है। .. एक कमडलू काफी है प्यास लगी पानी, गाँव रहा तो छाछ या दूध माँग लिया। ..रोटी बनानेकी जरूरत क्या? भोजनके समय चार घरोमें घूम गये, चार रोटी मिल गई खा लिया।....यह कुत्ता रामपुर रियासतसे मेरे साथ आ रहा है। बड़ा ईमानदार है। रोटी वनाकर नहाने-धोने, कुल्ला-गलाली करने चले जाइये, यह बैठा रोटीकी रखवाली करता रहेगा। मजाल है कोई कुत्ता पास फटक जाये।... हाँ, वड़ा तगड़ा है। रोटी सामने रख दीजिये, कनखियो ताकता रहेगा, लेकिन जव तक मुँहसे

'खाओ' न कहे, तब तक भूखा भले ही मर जाये, रोटीमे मुँह न लगायेगा। यह कुत्ता साथीका काम देता आ रहा है।...."

ब्रह्मचारीकी बाते मै बड़े चावसे सुन रहा था। मन कह रहा था—यह है आदमी बाजदा-टाइपका। काश! मुझे भी इसी तरह उड़ते-फिरते रहने के लिए पर मिलता। शाम होनेसे पहिले वह थोडी देरके लिए टहलने निकल गये, और देखा ठीकेदारका मुशी 'जी महाराज', कहता पीछे-पीछे आ रहा है। ब्रह्मचारीने उससे कहा—'देखो, यह दो सन्त सूखी रोटी बना रहे है। इनके लिए पावभर घी और कुछ तरकारी-सरकारी तो भिजवाओ। अच्छा लो, पहिले एक चिलम गाँजा तैयार करो। 'दम लगे, बला भगे।'

चिलम तैयार हुई। तम्बाकूके धूयेंसे पीली पड़ गई भिगोई साफी (रूमाल)को पीतल जड़ी काठकी लम्बी चिलममे लपेटते हुए ब्रह्मचारीने दूर तककी वनस्थलीको गुंजाते हुए कहा—"लेना हो शंकर।....आ जा कैलाशके राजा।" और फिर दम खीचते हुए मालवी बाबाकी ओर मुँह कर कहा—"आ जाओ बूढे बाबा, दम लगा जाओ। रोटी बनती रहैगी, रात तो अपनी है।"

दम लगाकर मुशीजी हमारे लिए घी-तरकारी दे गये। ब्रह्मचारीजीका न्योता ठीकेदारके यहाँ था, वह एक-दो चिलम और फूँककर वहाँ चले गये और काफ़ी रात गये लौटकर आये। कह रहे थे—"सुल्फा (चरस) और बालूचर (गाँजा) यहाँ पहाडमें कहाँ? यहाँ तो जगलकी भाँग और जंगलका गाँजा। भगके रसको मल-मलकर हाथमे लपेट लेनेपर उससे सुल्फेका काम लिया जा सकता है। बहुत रात गये तक वार्तालाप जारी रहा, ज्यादा बात ब्रह्मचारी ही करते थे। मालवी बाबा तो शायद ही कभी बोलते थे, मै भी ज्यादातर 'हाँ' 'हाँ' और कभी-कभी जिज्ञासाके दो-एक शब्द बोल देता था।

सबेरे हम तीनोने रास्ता पकडा। रास्ता यमुनाके बाये तटसे ऊपरकी ओर जा रहा था। दोपहरको एक पनचक्कीके पास रसोईका तारघाट लगा रहे थे, तब ब्रह्मचारीको मालूम हुआ, कि कुत्ता गायब है। वह उसकी तलाशमे तीन-चार-मील पीछे देखने गये, लेकिन नही मिला। वह आज गर्मीसे परेशान मालूम हो रहा था। जहाँ पानी दिखलाई पड़ता, वही वह अपने शरीरको भिगोने जाता। ब्रह्म-चारी कह रहे थे, जिस गाँवसे कुत्ता उनके साथ चला था, वह और ज्यादा ठडा था। कुत्तेको अपना गाँव याद आया और वह उधरको लौट गया। यही निष्कर्ष हम लोगोने भी निकाला।

हम जितना ही आगे बढ़ते गये, पर्वतकी हरियाली और पानीके झरने भी बढ़ते गये। जमनोत्रीके पडोके गाँवमें हम लोग शामको पहुँचे। वहाँ चमड़ेकी रस्सियोसे मढ़े बाजे एक चिकनी समतल जगहमे रखे थे। लोगोने बतलाया, आज स्त्री-पुरुषोका नाच होगा। मुझे यह कुछ अजीबसा मालूम हुआ, क्योंकि मेरी समझमे आया पडे लोग सपरिवार नाचेगे। गृहस्थ स्त्री-पुरुषोके सम्मिलित नाचको हमारे गाँवो और शहरोमे नीची निगाहसे देखा जाता था। मुझे याद है, जब मै नौ-दस वर्षका था, उस वक़्त मेरे समवयस्क तथा रिश्तेमे भाई जगमोहनका ब्याह हो रहा था। जगमोहन—प्रसिद्ध बहादुर चोर घुरबिन अहीर—का पोता था, पीछे वह गाँवका सबसे बलवान् पुरुष, तथा बिरहा गानेमे कई गाँवमे अद्वितीय जवान हुआ। बारात जानेसे दो-तीन दिन पहिले ही शादीमे स्त्रियोके पूजा-कुलाचार शुरू होते है। सारे दिन और रातमे भी बहुत देर तक नगारा बजता रहता है। अहीर बडी खुशदिल जाति है। गाय-भैस पालना, खेती करना—और खूब तन-मन लगाकर—उसके बाद मनोरजनका सामान भी होना चाहिए। वह मनोरजन था—बिरहा, लोरिकीका गाना, तथा गाहेबगाहे नाचना। नाचमे तरुण स्त्रियाँ भी उस वक़्त शामिल होती थी। जगमोहनकी माँ किसी कामसे बाहर आई। गाँवके किसी देवरने ताना मारा, जिसको वह बहादुर अहीरिन कैसे सह सकती थी। वह ललकारकर मैदानमे उतरी और तब तक नाचती रही, जब तक कि सामनेका मर्द थककर भग नही गया। मुझे याद था, उस दिनका वह नाच और साथ ही वह प्रसन्नता भी जो उसे देखकर हुई थी। आज यद्यपि कनैलासे चला हुआ शुष्क वैराग्य हिमालयकी भूमिमे कुछ सरस हो चला था, तो भी पडे स्त्री-पुरुषोके नाचकी बात न जाने कैसी जान पड़ी।

दूसरे दिन चलकर यमुनाके किनारे वहाँ पहुँचे, जहाँ दो चट्टानोके ऊपर लकडीके ठट्ठरका पुल बना हुआ था। वहाँ चट्टानपर कुछ लाल खून लगा हुआ था। जिज्ञासाका समाधान हुआ—कोई गिर गया, उसका सर फट गया। मुझे सन्तोष नही हुआ, क्योकि यह कोई उतनी कठिन जगह नही थी, आगे जरूर कितनी ही जगह कुछ कठिन रास्ते आये। वृक्षोके तनो और शाखाओसे हरे कपासके बड़े-बड़े फाहेसे लटक रहे थे—बर्फ़ पड़नेवाली जगहके वृक्षोका यह चिह्न है। लेकिन ये वृक्ष उतने सुन्दर नही जँचे जितने कि देवदार। हम लोगोने भगवानको बहुत धन्यवाद दिया, जब कि बिना पानी-बूँदीके हम जमनोत्री पहुँच गये। आखिरके दो मील तो तै करनेमे सचमुच पानी बरसनेपर बहुत मुश्किल हो जाते।

जमनोत्री ऊँचे पहाड़ोसे घिरी एक छोटीसी जगह मालूम हुई, जो एक तरफ़से

खुली हुई थी, और पानी उधरसे ही बह रहा था। थोड़ी दूरपर सैकडो फीट ऊँचे बर्फसे सद्योजात दो धारायें गिर रही थी, जो चन्द ही कदमोपर मिलकर एक हो जाती थी। बायें वाली धाराके बाये थोडी ही दूरपर तथा पहाडकी जडमे, पत्थरोमे, हाथ-डेढ़ हाथ लम्बा, उतना ही चौडा, और हाथभरसे कुछ अधिक गहरा एक कुड था। पानी उसके मुँह तक भरा न था। यही जमनोत्रीका तप्तकुड था। कुडके किनारेसे सूत जैसी एक धार पिचकारीकी तरह छूट रही थी। इस गरम पानीमे ही खाना पका-कर खाना तीर्थयात्री लोग धर्म समझते थे। हमने भी अँगोछेमे आलू बाँधकर कुडमे डाल दिया, छोटी-छोटी रोटियाँ बनाकर कडाहीके घीमे पूडियोकी तरह उस पानीमे डालते जाते थे। पकी रोटीकी पहिचान थी, उसका ऊपर उतरा आना। कुड तथा बर्फीली धारके कुछ पानीको ले जाकर एक कुडमे मिलाया गया था, यही यात्री स्नान करते थे। वहाँकी सर्दीमे घटो उसीके भीतर पडे रहनेका मन करता था। जम-नोत्रीमे यमुनाजीका मन्दिर कैसा था, यह तो याद नही, किन्तु वहाँ एक या दो दूकाने थी, जिनमे खानेकी चीजे मिल जाती थी।

जमनोत्रीसे मालवी बाबा और मेरा साथ छूट गया। ब्रह्मचारीकी निर्द्वन्द्वता, उसकी दुरूह स्थानोमें हुई यात्राओ, और भाषणकी विचित्रता, तथा अधिक सस्कृत व्यवहार मुझे अपनी ओर-आकृष्ट करनेमे ज्यादा सफल हुए। जमनोत्रीसे चलते वक्त हमारे साथ एक तीसरा व्यक्ति बहराइच जिलेके एक अधेड मुराव (कोइरी) भगत थे। चलनेमे अब मै वही आदमी न था, जो कि हृषिकेशसे सर लटकाये मुर्दोकी तरह जबर्दस्ती रस्सी बाँधकर खीचा जाता-सा ऊपरकी ओर घसीटा जा रहा था। मेरे भी पैर अब फुर्तीमे ब्रह्मचारीके पैरोका मुकाबिला करनेको तैयार थे। पाँच-चार मील चलते-चलते हम लोग आजके चले सभी यात्रियोको छोडकर आगे बढ गये।

हिमालयकी इस यात्राका वर्णन मानस-पटलपर अकित सिर्फ उन प्रतिबिम्बोके सहारे कर रहा हूँ, जो आजसे तीस वर्ष पहिले पड़े थे। उसके बाद फिर इस रास्ते जाना नही पडा, जिसमे कि धूमिल पडते उन प्रतिबिम्बोके रगको चटक करनेका मौका मिलता। मैंने उस वक्त कोई नोट भी नही किया था, और न आज (२३-४-४०)-जेलमे लिखते वक्त मेरे पास कोई नकशा या पथप्रदर्शिका किताब है, जिससे मै रास्ते और दूरीके बारेमे कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। स्मृति प्रमाण नही है, यह भारतके एक सर्वोच्च नैयायिकका कथन है, अत. पुराण बाल्यस्मृतिके सहारे लिखा गया यह मेरा वर्णन कितनी ही जगह वस्तुस्थितिसे विपरीत हो सकता है।

खैर, मालूम नही कितने मील चलनेके बाद, हम तीनो एक जगह ठहरे। भोजन

बनानेका काम मेरे ऊपर था। मुराव भगत पानी ला देते, आटा गूँथ देते। ब्रह्मचारी तर्कारी बनानेमें सहायता करते, जंगलसे न जाने कौन साग वह ला देते। पानीके किनारे एक बालिश्तसे कम ही आँकुर जैसा एक डंडी-पत्तेका पीलापन लिये हरा साग खानेमें बहुत अच्छा लगता था। उस दिन शामको ही पता लग गया था, कि कुछ मीलपर गंगोत्रीके दो रास्ते फूटनेवाले हैं, एक तो पुराने रास्तेसे धरासू होकर गंगाके किनारे-किनारे उत्तरकाशी और फिर गंगोत्रीको, दूसरा यहींसे उत्तरकाशीको जायेगा। नये रास्तेसे दो या तीन दिनकी बचत थी, लेकिन उसका लोभ न मुझे था, और न ब्रह्मचारी हीको। हम लोग "बरस दिनके रास्तेसे छै महीनेके रास्ते"को ज्यादा पसन्द करते थे, क्योंकि पता लगा यह रास्ता ज्यादा सुनसान, ज्यादा अल्प-प्रचलित और-ज्यादा खतरनाक है। मुराव भगतसे पूछनेपर उन्होंने भी छोटे रास्तेसे चलना पसन्द किया।

पहिले रास्तेको छोडकर हम बायेंको मुडे। ७ बजेके पहिले आखिरी गाँव खतम हो गया। मालूम हुआ अब इसके बाद दूसरा गाँव १८ या २० मीलपर आवेगा। पहिलेके दिन होते, तो दिल काँप जाता। रास्तेमें ज्यादा चढाई-उतराई नहीं थी, किन्तु आदमियोंके पैरोंसे बने रास्ते—जिनपरसे कि हम चल रहे थे—को छोड़कर दूसरा मानवचिह्न कहीं नहीं दिखलाई पड़ता था। विशालकाय वृक्ष उनके नीचे उगी रंग-बिरंगी बूटियाँ जिनकी मादक गन्ध लेकर हवा चारों ओर बिखेर रही थी। बिल्कुल साँपके फन जैसे एक पौधेको दिखलाकर जब ब्रह्मचारीने कहा, कि इसकी जडमें साँप रहता है, तो मुझे बिल्कुल विश्वास हो गया। वहाँ किसी वेदान्ती-को रज्जुमें सर्पके भ्रमकी ज़रूरत न थी, वह बूटी तो सोलहो आने फन जैसी मालूम होती थी। कुछ मील चले जानेपर एक जगह धूनी सुलग रही थी। लकडीका बडा कुन्दा अब भी जल रहा था। हमने खाना बनानेके लिए अभी बहुत सवेरा समझा। ब्रह्मचारीने झोली खोली, चिलम तैयार हुई। जनशून्य काननको 'बम्-शंकर'से प्रतिध्वनित करते हुए दम खींची, एक बालिश्त तो नहीं, किन्तु चार अंगुल ऊँची लपट चिलमसे ऊपर निकली; "लो हो भगत!" कहते हुए साथीको दिया। दो बार चिलम परिवर्तनके बाद चिलमको ज़मीनपर आहिस्तेसे पटका, गिट्टकको फिर उठाकर उसके भीतर रख उन्होंने साफीमें लपेट, झोलीमें रखा और हम फिर रवाना हुए। ग्यारह बजेके क़रीब बडे वृक्षोंवाला जंगल खतम हो गया। अब लुकाट या गुलायचीके पत्तों जैसे पत्तेवाले केवड़ेकी भाँतिके छोटे-छोटे और उसी तरह नीचे टेढ़े-मेढे हो गये दरख्त मिलने लगे। ब्रह्मचारीने कहा, अब हम असली बर्फकी जगह आ गये। आस-

मानमे जब-तब बादल दिखलाई पड जाते थे, किन्तु उनकी हमे उतनी पर्वा न थी। हम लोग सूखी लकडीकी तलाशमे थे, वह मिल न रही थी, और उधर भूख तेज होती जाती थी। एक बजे तक जब वही टेढा-मेढा पतला वृक्ष मिलता गया, तो लाचार हमने कुछ सूखीसी दीख पडती लकडियोको इकट्ठा किया। सूखी पत्ती थी नही, जिससे कि दियासलाई बालकर आग सुलगाते। मुराव भगतके पास बिछानेकी चट्टी थी। एक बालिश्त काटकर सुलगाया। चट्टी तो सुलग गई, किन्तु लकडी बिल्कुल वहरी थी, कुछ नही सुन रही थी। जब हमारी एक डिबिया दियासलाई और मुराव भगतकी सारी चट्टी खतम हो गई, फिर भी आग न जली, तो हार मानकर उस प्रयत्नको छोडना पडा। उस वक्त मालवी भगत मुझे याद आये। वह होते तो उनकी झोलीमे कोई खानेकी चीज जरूर निकल आती। आटा, आलू कुछ घी भी हमारे पास था, किन्तु उनके लिए आगकी जरूरत थी। उस वक्त मुराव भगतने कहा—मेरी झोलीमे गुडमिला पावभर सत्तू है, और तो रास्तेमे खर्च हो गया, बस इतना ही बाकी है। हमारे जानमे जान आई। मुराव भगतको शाबाशी दी। सत्तूको लेकर ठीक तीन हिस्से किये गये। ब्रह्मचारीने लुटियामे घोलनेसे मुझे मना कर दिया। कहा—'मै कमडलूमे सत्तू घोलकर पी लेता हूँ, फिर इसी कमडलू भर पानीमे सत्तू घोलकर पियो। पेट जितना ही भरा रहेगा, उतना ही पैर आगे पडेगा। सत्तू क्या, मालूम होता था जैसे देवताओने अछूता अमृत अभी-अभी स्वर्गसे भेजा है।

दो घटा और चलनेके बाद एक सूनी मड़ैया पहाडकी रीढ़पर दिखलाई पडी। अगली रात जहाँ हम ठहरे, वहाँ पहिलेसे पहुँचे साधुने कहा—"मै रातको उसी मड़ैया-मे ठहर गया था। कभी-कभी उसमे गोरखिये रहते है, लेकिन उस शामको कोई नही था। शामको जब मैने रीढकी दूसरी ओर पचास कदम नीचे देखा कुछ भालू और उनके बच्चे किसी चीजकी जड खोदकर खा रहे है, तो मेरी साँस उल्टी टँग गई। मै चुपचाप आकर झोपड़ीके एक कोनेमे पड रहा। रातको नीद कहाँ आवेगी, मालूम होता था, भालू अब आते है, और फिर मै यहाँका यही।"

खैर, यदि हमको उस झोपड़ीमे रात बितानी पडती, तो हमे उतना डर न होता, हम अकेले नही तीन थे, जिसमे मुराव भगतके पास डडेमे खन्ती, ब्रह्मचारीके पास नोकदार लोहा मढा लम्बा डडा था, मै निहत्था जरूर था, और इस कथाके बाद मै भी बराबर एक डडा साथ रखने लगा। उतराई शुरू हुई—पहिलेका अधिक रास्ता पहाडकी रीढपर था, समतल भूमिपर मालूम होता था, फिर आदमियो और पैरोसे

कटे तथा पानीके बहावसे गहरे हो गये रास्ते अधिक मिलने लगे। भूखका ज़ोर तेज़ीपर था, वह सत्तू तो लाल तवेपरकी दो बूँदे थी, तो भी अब रास्तेसे नजदीक गाँव होनेकी सम्भावना थी, इसलिए मन सन्तोष करनेके लिए तैयार था। चार-साढ़े चार बजेके करीब हम गाँवमें पहुँच गये।

धर्मशाला तो नही थी, किसी गृहस्थका सूना घर रहा होगा, जिसमें हम लोग ठहरे। हमारी अँतड़ियाँ ऐंठ रही थी, पैरोकी ओरसे कोई शिकायत न थी। ब्रह्मचारी एक मिनटके लिए भी बिना रुके—'तुम लोग आराम करो, मै तुरन्त आता हूँ" कहकर चले गये। मुश्किलसे पन्द्रह-बीस मिनट गुज़रे होगे कि एक सेर भुना हुआ गर्मागर्म गेहूँ और आधपाव गुडकी डली लिये ब्रह्मचारी हाज़िर हुए।

"खाओ ! खूब खाओ ! रोटीकी फिक्र मत करो, अभी दिन बहुत है। मैंने तो चाहा कुछ मट्ठा भी मिल जावे, तो अच्छा, किन्तु शाम—मट्ठेका समय नही। . . .मै सीधा गाँवके प्रधानके घर गया। सयोगसे वह नेपाली निकल आया।. . . नेपालका बाशिन्दा है, अब शादी करके यही रह गया है। मैंने कहा—प्रधान, तीन-तीन सन्त आज सारे दिन भूखे चले आ रहे है। जो कुछ तैयार हो, पहले तो वह दो। सत्तूके लिए गेहूँ भुने जा रहे थे, उसने यह लाकर रखा। गुड पहाडमे मोतीके भाव बिकता है। उसके घर बस इतना ही था।. . .अभी खा लो। मुझे बात करनेकी फुर्सत कहाँ थी। तुम्हारी अँतडियाँ क्या कह रही थीं, यह मुझे मालूम था। अब जाऊँगा। आज शामको खीर-परावठे खानेकी तबियत करती है। दूध क्यो नही मिलेगा।"

शामको सचमुच चार सेर दूध लिवाये ब्रह्मचारी पहुँचे। प्रधान भी आया था, उसकी शकल-सूरत याद नही पडती। चीनी नही थी, गुड हम सफाचट कर चुके थे, किन्तु चीनी बिना भी वह गाढी निर्जल खीर जिसमें दूधसे चौथाई भी चावल नही पडा था, बहुत मीठी लगती थी।

दूसरे दिन घटा बीतते-बीतते धरासूवाली सडकपर पहुँच गये। उसी दिन हम उत्तरकाशी पहुँच गये। बादल और हवाके कारण काफी सर्दी लग रही थी, किन्तु धर्मशालेमे गुड और चायकी सदावर्तने उसके भगानेमे बडी सहायता की। उत्तर-काशी गगाके किनारे एक खुली भूमिमे बसी मालूम पडी। शिवमन्दिर काफी बड़ा और सफ़ेद था, पासमे धर्मशाला या घर भी अच्छा खासा था। सदावर्त तो जरूर ही होगी। कहाँ ठहरे, कितने दिन ठहरे, बाजार और बस्ती कितनी बड़ी थी, यह स्मरणके बाहरकी बात है।

वहाँसे गगोत्री कितने दिनमे पहुँचे, यह याद नही आता। इतना मालूम हुआ कि हमारा रास्ता गगा—जिसकी उपत्यका देवदारोके शुरू होने तक बहुत चौडी हो गई थी—के दाहिनेसे था। इधरके गाँवो मे अखरोटके बडे-बडे दरख्त थे, जिनमे हरे-हरे फल लगे थे, और मै समझता था, कि जब इनका रग पीला पड जावेगा, तो लडके आमकी तरह लेकर चूसते होगे। देवदारोके आनेसे पहिले ही एक सडकके किनारे कुछ गदहे चर रहे थे, जो मामूलसे कुछ ज्यादा बडे थे। थोडी ही दूरपर रास्तेसे जरासा हटकर एक छोटासा तम्बू खडा था। ब्रह्मचारी हमे भी साथ लिवाये वहाँ गये। 'लामा' 'लामा' कह तम्बूवालेसे बात करने लगे। मालूम हुआ वह तिब्बतका नही नेपालका बाशिन्दा है, व्यापारके लिए आया हुआ है। ब्रह्मचारीने जब महाराना जगबहादुरका नाम लिया, तो हँसीसे मुखकी रेखाको कान तक बढाते, आँखोंको गालोके भीतर अन्तर्धान करते 'लामा'ने एक हाथको मुट्ठी बाँधकर ऊपर खीचते हुए जगबहादुरके असिबलका नाट्य किया। उसका शरीर छै फीटसे कम न रहा होगा, और उसीके अनुसार उसके शरीरकी चौडाई भी थी। मुझे तो वह बचपन की कहानियोंमे सुना दानव मालूम होता था। उस वक्त मेरी धारणा हो गई थी, कि तिब्बतके सबसे छोटे आदमी ऐसे होते है। ब्रह्मचारीने चलते वक्त लामासे 'चोरा' और जिम्बूकी बूटियाँ माँगी, जिनमे पहिली सूखी पतली जडसी मालूम होती थी, और दूसरी किसी चीजका हरा पत्ता था। उसी शाम आलूकी तरकारी, घीमे उसी बूटीमेसे एकका छोंक देकर बनाई गई। लालमिर्च, नमक और घीके अतिरिक्त उसमे दूसरा कोई मसाला नही पडा था, किन्तु स्वादके बारेमे क्या कहना, उस वक्त कहना तो गुनाह होता, किन्तु मालूम होता था रामदीन मामाने डाकखानेके अपने अफसरकी दावतके लिए बकरीके पट्ठेका मसालेदार मास तैयार किया है।

शामके वक्त हम देवदारोकी छायामे पहुँचे। सामनेके अस्ताचलकी आडमे सूर्यके चले जानेसे, अन्धकार नही बढ रहा था, बल्कि मालूम होता था, सूरजके डरसे देवदारोकी घनी हरी छायाके नीचे छिपा अन्धकार सूर्यके बलको कमजोर देखकर धावा बोल रहा है। देवदारका विशाल वृक्ष, शिवालेके शिखर जैसा उसका नुकीला शिखर, सहस्रो भुजाओकी तरह समकोणमे फैली उसकी शाखाये, हरी फुलकारीकी पतली रेखाओ जैसी उसकी लम्बी-लम्बी पत्तियाँ और उसपरसे देवदारु जैसा आकर्षक नाम—देवदारुके सौन्दर्यने उस दिन अपनेलिए 'वृक्षश्रीका मापदड' होनेका जो निर्णय स्वीकार कराया, उसे तीस साल बाद भी फिरसे विचार करनेकी मुझे जरूरत नही पडी। उस दिन उसके नीचेसे भीनी-भीनी निकलती खुशबूका जो आघ्राण

मैंने किया था, वह देवदारसे सैकडो मील दूर रहते आज भी मुझे ताजा मालूम होती है।

आज जहाँ ठहरे थे, उसके आसपास जगलातके ठीकेदारके आदमी देवदारके स्लीपर चीर रहे थे।

दूसरे दिन हम अधिकतर देवदारकी छायामे चलते गये। किसी नदीको आर-पार होना पडा याद नही। हाँ, एक जगह ऊपरके जानेवाले रास्तेको छोड दाहिनी ओर नीचेसे उतरने लगे, उस समय सुना कि ऊपरका रास्ता एक भयानक पुलपरसे गुजरता है, इसीलिए हम नीचेके रास्तेसे चल रहे है। कितनी ही दूर उतरनेके बाद काठका एक पुल आया, और उससे हम भोट गगाको पार कर गये। अब फिर चढ़ाई शुरू हुई, और काफी दूर तक, किन्तु अब हम अभ्यस्तसे हो गये थे। आगे कही चौकीदारका घर मिला, जिसने हमे खबरदार किया, कि आग जहाँ-तहाँ न जलावे, जगलमे आग लग जानेका डर है।

गगोत्रीमे हम जिस घरमे ठहरे, उसमे सिर्फ साधु ही साधु थे, जिनकी सख्या आठ-नौसे ज्यादा नही रही होगी। बीचमे बडे-बडे लक्कडोकी धुनी जल रही थी, और उसके किनारे अपने-अपने आसनोपर सन्त लोग बैठे हुए थे, उनमे कुछ शिरमे लम्बी पिंगल जटा, देहमे अखड भभूत और माला-लँगोटीके सिवा नगे-मादरजाद थे, किसीके गर्दन तक पहुँचे भूरे बाल तथा कानमे स्फटिककी मुद्रा, किसीकी लाल लँगोटी और गर्दनमे काली ऊनकी माला, किसीका सर घुटा और बदन मे लम्बी अलफी। वेश-भूषामे भेद रहते भी एक बात सबमे साधारण थी, वह थी गाँजेकी साफी, और लम्बी चिलम। गाँजेकी एक चिलम हाथसे हाथमे बदली जाती थी, ,, उधर दूसरी चिलम तैयार हो रही थी। मालूम नही वहाँ गाँजा महँगा मिलता था या सस्ता, अथवा नेपालकी शिवरात्रिकी भाँति सदावर्तमे मिलता था। चाहे कुछ भी हो, झोलीसे गाँजा निकालकर देनेमे हर सन्त होड़ लगाये हुए था। गगोत्री एक तीर्थमार्गका अन्तिम छोर था, इसलिए हर एक धर्मेच्छुक गृहस्थ वहाँ साधुओको कुछ भोजन और दानदक्षिणा दिये बिना नही रहता था। मै नही समझता, दो या तीन जितने दिन हम वहाँ रहे, हमे कभी रसोई बनानी पडी थी। रोज किसी न किसी माई-दाताकी ओरसे पूडी-हल्वा, पूआ, मिठाई बनके चली आती थी।

अब इधर मै सन्तोंको बहुत नजदीकसे देख रहा था, और उनकी धुँआधार चिलमों-मे अभी मै शामिल न हुआ था, उन्हे ब्रह्म-वेदान्तकी चर्चामे लीन भी मै नही देखता था, तो भी मुझे उनसे घृणा और उदासीनता नही हुई। यह बात नही कि वेदान्त

और वैराग्यको मै भूल गया था। जान पडता है, उनका बेफिक्रीका स्वच्छन्द जीवन, उनकी एक तलपर आपसमे मिल बैठनेकी भेदभावशून्य चाल, उनकी खाने-खर्चनेमे उदारता, उनकी मार्गके कष्टोको आवाहन करनेकी बेकरारी और उनकी कलसे बेफिक्री इतनी ठोस चीजे थी, जिनके कारण तस्वीरके दूसरे रुखपर मेरा ध्यान ही नही जाता था। छीलनेपर मैं अन्दरसे क्या कहूँ, यह तो मुझे पता न था।

गगोत्रीसे गगनाणी तक हमे फिर लौटकर आना पडा। अबकी बार लकडीके बिना कटघरेवाले पतले पुलसे हम गगापारके गर्मकुडमे नहा भी आये। मालूम नही उसी पुलसे या उससे नीचे किसी और पुलसे पार होकर हमने केदारनाथका रास्ता पकड़ा। महीना शायद आषाढका होगा, नदीके ऊपरके खेत कट चुके थे। खेतोंमे गेहूँके लम्बे डठल खडे देखकर मुझे माजरा समझमे नही आया, पीछे मालूम हुआ, यहाँ बाले ही काटी जाती है—वर्षाका डर होनेसे बाले तो घरमे भी छिपाई जा सकती है। बूढेकेदारनाथकेलिए हमे बराबर ऊपरसे ऊपर चलते रहना पडा।

बूढाकेदार बहुत बडी बस्ती न थी, हाँ, उसके पास खेत बहुत थे। मन्दिरका स्मरण नही, यह याद है कि ब्रह्मचारीके लेक्चरोसे प्रभावित हो एक दिन रातको रोटीके वक्त मै मधूकरी माँगने गया था। एक या दो द्वारोपर गया, और हर घरसे छोटी-बडी एक-एक रोटी मिली, इसी वक्त कुत्ते भूँकते हुए टूट पडे, वहीसे मै उल्टा लौट पडा; और उसके बाद फिर कभी मधूकरी माँगनेका नाम नही लिया।

बूढाकेदारके आगे मेरी तबियत कुछ अस्वस्थ हो गई। ज्वर आने लगा। एक या दो दिन आगे जानेपर मै ब्रह्मचारीके साथ पैर मिलाकर चलनेमे असमर्थ था। ब्रह्मचारीको मैने अपनी अवस्था बतलाई थी, किन्तु उनको उसका ख्याल न हुआ। एक दिन मै ४, ५ मील जाते-जाते आगे चलनेमे असमर्थ हो गया। पासमे एक ब्राह्मण-का घर था। नीचे गाय-बैलके बाँधनेका स्थान, और ऊपर आदमियोके रहनेकी साफ-सुथरी कोठरियाँ। घरके चारों ओर निकला बराडा था। घरमे कोई नौजवान लडका था, मेरी अवस्था देखकर उसने घरमे बुलाया। मुश्किलसे मै सीढीके ऊपर चढ पाया। वही बराडेमे कम्बल बिछाकर पड रहा। थकावट दूर होनेपर कुछ चित्त स्वस्थ मालूम होने लगा। वही घरमे मैने तुलसीकृत रामायण देखी।—रामा-यणकी चौपाइयाँ यहाँ भी पढी जाती है। दो घटेके विश्रामके बाद ब्रह्मचारीके आगे बढनेकी चिन्ता बढने लगी। मैने हिम्मत करके चलना ही पसन्द किया। मुश्किलसे मील भर जा सका हूँगा, कि पैरोंने फिर आगे बढनेसे जवाब दे दिया। चढाईका रास्ता होनेके कारण शरीरको ऊपर ढकेलना बडा कष्ट-साध्य मालूम हो रहा

था। आगे गाँव दूर होनेके कारण रास्तेसे थोड़ा नीचे गाँवकी एक सूनी चौपालमें कम्बल डालकर पड़ रहा। थोडी देरमे प्यास बढी तो सामान वही छोड वहाँसे कुछ दूर चश्मेपर पानी पीने गया। इसी बीच ब्रह्मचारी आये। उन्होंने मेरे आनेका भी इन्तिजार नही किया, पूछ-ताछकी तो बात ही क्या, अपना कम्बल—जिसे मै ही ढो रहा था—लेकर चले गये। मुझे इस व्यवहारसे अफ़सोस तो हुआ, लेकिन करता क्या? ब्रह्मचारीसे उसके बाद फिर मुलाकात नही हुई। मै अब उतनी तेजी चालसे चल भी नही सकता था।

दूसरे दिन रास्तेमें कोटाके तीन-चार गृहस्थ मिले। उनकी बड़ी तथा एक तरफ तिर्छी बँधी छीटकी पगडी, एडी तक पहुँचती दोकच्छी धोती और कानोंमें मोतीकी बालियाँ अब भी याद है। मडलीके मुखियाकी बगलमे कानवासकी एक छोटीसी मशक लटक रही थी। उन्होने अपने साथ भोजन बनाते-खाते चलनेकेलिए कहा। धर्मशाला-सदावर्तसे दूरके उस पथपर भिक्षा-भीरु व्यक्तिको इससे बढिया क्या बात हो सकती थी। हमारा एक पडाव गोरखियोंके झोपडोंमें पहाडकी रीढपर पडा। मैंने रसोई बनाई—नमक डाले आटेकी रोटी और उड़दकी दाल। बात छिड गई थी जगलके बघेरोंकी। हमारे चारों ओर जगल था, उसमें रीछ और बघेरे रहते थे। गोरखिया (चरवाहा) कह रहा था—बघेरेका बाप कोकी (जगली कुत्ता) है। वे पचास-पचीसका गिरोह बाँधकर चलते है, और एक साथ हमला कर देते है। बघेरा भी उनसे नही बच सकता, गाय-भैसकी तो बात ही क्या?

तिरयुगीनारायणसे पहिले वृक्ष-रहित किन्तु घाससे ढँके पहाडोपर पैरके अँगूठे जितनी मोटी काली-काली जोके दीख पडी। जोकसे मै नही डरता, कितने लोग तो नन्ही-नन्ही जोकोंसे भय खाते है, उनका तो दम ही इन डबल जोकोंको देखकर निकल जावे।

तिरयुगीनारायण केदारनाथके रास्तेसे थोडा ऊपर हटकर है, किन्तु हर एक यात्रीकेलिए वहाँ जाना आवश्यक है, इस प्रकार वह प्रधान रास्तेपर है। यहाँ काली कमलीवालेकी सदावर्त थी, किन्तु कोटेवाले सेठके साथ रहनेके कारण इस वक्त मुझे सदावर्तकी जरूरत नही थी।

तिरयुगीनारायणसे उतराई उतरकर फिर केदारनाथकी प्रधान सडकपर आये। नदी पार करते वक्त झूलेका पुल टूटा मिला। बगलमे अस्थायी रस्सीका झूला बँधा था। यात्री लोग सुनी-सुनाई बात कह रहे थे कि एक बार ही बहुतसे आदमी चढ़ गये, इसलिए लोहेके तारवाला झूला टूट गया, कितने ही आदमियोकी तो लाश

तक नही मिली। उस रात हम गौरीकुडमे ठहरे। वहाँके पीले गन्धकी ठडे चश्मे, तथा साँवले गर्म पानीके चश्मेमे लोग स्नान कर रहे थे। एक अच्छी धर्मशाला पासमे थी, जिसमे कोई नेपाली रानी ठहरी हुई थी। लोग भिक्षा माँगने जा रहे थे। भिखमगोका क्या एकको जहाँ कुछ मिला कि दूसरे पचीस चल पडे, आखिर दाताकी श्रद्धा और थैलीका भी कोई परिमाण होता है। देखा-देखीमे मै भी किस्मत-आजमाईमे शामिल हो गया। 'रानीजी कुछ मिल जावे'—सकोच और शर्मसे भरी आवाजमे कितनी ही बार कहा होगा। यह भी स्मरण नही कि रानीजीकी ओरसे क्या क्या दिलवाया गया था। जीवनमे दीनताके साथ भिक्षा माँगनेका यही मेरा आदिम और अन्तिम प्रयास रहा।

गौरीकुडसे चढाई चढते हुए लामबगड पहुँचे। यहाँसे केदारनाथ पाँच-छै(?) मील है। केदारनाथकी सर्दीको इतना बढा-चढाकर लौटे यात्री सुनाते थे, कि नये जानेवाले घबरा जाते थे। अधिकाश यात्री दोपहरको भी लामबगड पहुँचनेपर वहाँसे आगे नही जाते। डडा-कुडा वही रखकर साधारण कपडेके साथ केदारनाथजीके दर्शन करके शाम तक लामबगड लौट आनेको हर एक यात्री पसन्द करता था। मेरे पास उतना सामान भी न था, जिसमेसे कुछ छोड जाता, और दूसरे मै यमुनोत्रीकी मार खाये हुए था, जिसका रास्ता और भी बीहड समझा जाता है।

लामबगडसे रास्ता नदी (मन्दाकिनी)की दाहिनी ओरसे चढाई ही चढाईका था, किन्तु चढाई उतनी कडी न थी। कुछ आगे जानेपर उपत्यका भी और चौडी हो गई। बर्फ पिघल चुकी थी, वर्षाके शुरू हो जानेसे पहाडोमे चारो ओर हरियाली ही हरियाली दिखलाई पडती थी। लामबगडसे कितना आगे तक वृक्ष मिले, नही कह सकता, किन्तु, अन्तमे वृक्षहीन घाससे ढँकी भूमि थी। चढाई सीधी न होनेपर भी साँस बहुत फूल रही थी, लोग कह रहे थे, यह विषैली जडी-बूटियोका प्रभाव है। मेरे भूगोल पाठने इसको प्रदेशके उन्नताशसे जोडा या नही इसका पता नही। केदारनाथ बस्तीके पास पहुँचनेपर पुलसे हमे मन्दाकिनीके बाई ओर आना पडा।

सयोगसे हमारे कोटेवाले सेठ किसी पडाके मकानमे न ठहर, कालीकमलीवालेकी धर्मशालामे ठहरे। बस्तीके दूसरे मकानोसे वह अधिक साफ और आरामदेह थी। दोमहला मकान था, और शायद टीन या स्लेटसे छाया हुआ। सीढीसे उतरनेपर दाहिना भाग—जो बायेसे कम था—ऊपर-नीचे दोनो धर्मशालाके कर्मचारियोके लिए सुरक्षित था, और बायाँ यात्रियोकेलिए। शायद हम लोग बायेवाले निचले भागकी किसी कोठरीमे ठहरे। अब हम प्रधान यात्रापथपर चले आये थे, जहाँ

धर्मशालायें और सदावर्त सुलभ थे। मैं रसोई बनाते हुये सेठोंकी मंशासे चलना पसन्द न करता था। मुझे साधुओंकी मस्तानी यात्रा ज़्यादा पसन्द थी; इसलिए यहाँसे रसोईदारीके कामको छोड़ना तै किया। उसी दिन रातको ऊपर बरांडेमें रामायणकी कथा हो रही थी। शायद उसे पहिले दो-तीन साधुओंने शुरू की। गाना नहीं अर्थ-सहित चौपाईका थोड़ा स्वरसे पाठ। पाठ शायद कोई दूसरा करता था, अर्थ मैं कर रहा था। उत्तरकांडका ज्ञानदीपक प्रकरण था। थोड़ी देर बाद कुछ और महात्मा शामिल हो गये, जिनमें सदावर्तके अध्यक्ष उदासीन बाबा धर्मदास भी थे। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद अर्थ करनेका काम उन्होंने अपने हाथमें ले लिया। अर्थ करते वक़्त वह बीच-बीचमें उपनिषद्की श्रुतियाँ बोलने लगे। उन्होंने आत्माके स्वरूपको जब 'अणुवो रणियान महितो महियान' श्रुतिवाक्यसे प्रतिपादन करना शुरू किया, तो मेरे ऊपर उनकी विद्वत्ताकी जो धाक पड़ी, उसे वर्णन नहीं कर सकता। मुझे क्या मालूम था, कि वह इतना अशुद्ध उच्चारण कर रहे हैं, और जिन श्रुतियोंको वह मौक़े-बेमौक़े फर-फर दुहरा रहे हैं, वही उनकी विना अर्थ समझे तोतेकी तरह रट रक्खी ज़िन्दगी भरकी पूँजी हैं।

कथा समाप्त होनेपर महात्मा धर्मदासने मुझसे कुछ प्रश्न किये। साधु बननेके बारेमें पूछनेपर मैंने कहा—"साधु तो मुझे ज़रूर बनना है, किन्तु पहिले संस्कृत और वेदान्तग्रंथोंको पढ़ लेनेके बाद।" उन्होंने कहा—"तो फिर हृषिकेश या हरिद्वारमें तुम रह क्यों नहीं गये?" "पढ़नेका सिलसिला कोई लगता दीख न पड़ा"—उत्तर देनेपर, बोले—"दो-चार दिन रहकर तलाश करनेपर लग जाना मुश्किल न था। अच्छा, तो तुम दो-चार दिन यहाँ मेरे पास रहो, कल जानेका इरादा छोड़ दो; फिर हम इसके बारेमें बातचीत करेंगे।" मेरे पासका कम्बल केदारनाथकी सर्दीके लिए काफ़ी न था, इसलिए उन्होंने एक मोटी लोई दी। रातको मैं अपने साथियोंके यहाँ सो गया।

दूसरे दिन हमारे सेठ तो चले गये, और मैं ऊपर धर्मदासजीके बैठनेके स्थानमें गया। एक बरांडा था, जिसके पीछे दो कोठरियाँ थीं, जिनमेंसे एकमें सदावर्तमें दिया जानेवाला सामान—सारे सामानकेलिए नीचे गोदाम था—रहता; दूसरी कोठरीमें यात्रियोंके रात भरकेलिए उधार दिये जानेवाले लोई-कम्बलोंके अतिरिक्त धर्मदासजीका बिस्तरा था। दिनमें वह अधिकतर बाहर बरांडेमें अपनी कोठरीके सामने मोटे गद्देवाले आसनपर मोटी पट्टीके कोट-पाजामा तथा कनटोपको ओढ़े-पहिने लोईसे शरीरको ढाँके पड़े रहते। ज़रा भी हवा होनेपर सामनेके जँगलेको बन्द कर देते,

जिससे वहाँ अँधेरा छा जाता। सामने अँगीठीमे निर्धूम कोयलेकी आग भी पडी रहती। धर्मदासजी गाँजा-तम्बाकू नही पीते थे। गुड-घी-आटा-चावल-दालके साथ चाय भी यद्यपि सदावर्तमे बाँटी जाती थी, किन्तु वे चायके भी ज्यादा आदी न थे, हाँ कभी-कभी एकाध गिलास पीते जरूर थे। सीढीके पासवाले बराडेके बाकी आधे भागमे सदावर्तमे दी जानेवाली चीजोको रखे बाँटनेवाले नौकर बैठते थे—जिनमे एकका नाम था नत्थूराम और दूसरेका याद नही।

## ३

# हिमालय ( २ )

अगले दो-तीन दिनके वार्तालापमे तै हुआ, कि मुझे पढनेके लिए फिर बनारस नही लौटना चाहिए। घरका खतरा मेरे दिलमे बना ही हुआ था। धर्मदासजीने कहा—"यात्राका समय सितम्बर-अक्तूबर तक समाप्त हो जावेगा, फिर मै हृषिकेश चलूँगा। उसी वक्त तुम भी चलना। बल्कि तुम्हारा बदरीनाथ दर्शन बाकी रहता है, वहाँ होते आ जाना। हृषिकेशमे मै तुम्हारे सस्कृत पढनेका प्रबन्ध कर दूँगा। फिर पढकर तुम्हारी इच्छा हो तो साधु बन जाना।"

मुझे और क्या चाहिए था ?

केदारनाथकी सर्दी सचमुच सख्त थी, गगोत्री और यमुनोत्री उसके मुकाबिलेमे कुछ न थे। पहिले दिन तो बर्फसे तुरन्त पिघलकर आये मन्दाकिनीके जलमे मै भी नहा आया था, दूसरे दिन नहानेकेलिए जाते देख धर्मदासजीने आदमी साथ कर दिया, जो मुझे पूरब ओरकी पहाडीकी जडमे अवस्थित स्वच्छ स्फटिक जैसे पानीके चश्मे पर ले गया। वहाँपर भी मै एक ही दो दिन नहाने गया, पीछे देखा बाबा धर्मदास और उनके दोनों कर्मचारी सबेरे गर्म पानीसे हाथ-मुँह धोकर मत्र स्नान कर लेते है। उन्होने मुझसे कहा भी—'यहाँकी सर्दी साधारण नही है। एक-दो दिनकी बात हो तो कोई पर्वा नही, ज्यादा ठडे जलमे नहानेपर बीमार हो जानेका डर रहता है।' उनके ब्राह्मण कर्मचारीने अपने अध्यक्षकी बातका समर्थन करते हुए कहा—"नीचे देशमे गगाजलसे जितनी पापशुद्धि नही होती, उतनी यहाँ कैलाशखडकी हवाके शरीरमे लगनेसे हो जाती है।"

'बिल्लीके भाग्यसे छींका टूट गया'—तीन-चार दिनके हिमजलमें शरीर भिगोनेसे कैसा कष्ट हो रहा था, यह मैं ही जानता था। उसके बाद मैंने भी सहवासियोंका अनुकरण शुरू कर दिया। बाबाने मेरे लिए भी सफ़ेद पट्टीका एक मोटा कोट, ऊनी पायजामा, गर्म कनटोप दे दिया। चलने-फिरनेके लिए गर्म मोजा और लाल लोधियानवी जूता भी मिला।

बाबा धर्मदास पंजाबी थे, लेकिन भारतके बहुत भागोंमें घूमे हुए थे। आयु उनकी ५४, ५५की रही होगी। बोलने-चालनेमें वे बहुत चतुर थे। उस दिन कथा बाँचनेमें चाहे श्रुतियोंके उच्चारण करते वक़्त भले ही सरस्वती उनकी जिह्वापर बैठ गई हों, किन्तु बादमें वह पंडिताई नहीं दिखलाना चाहते थे। साफ़ स्वीकार करते थे, कि मैंने संस्कृत नहीं पढ़ी है। विचारसागर, रामायण, योगवाशिष्ट जैसे कुछ भाषाके ग्रंथ भर पढ़े हैं। इस साफ़गोईका मुझपर बहुत असर पड़ा।

हरिद्वारके बादसे, या शायद पहिले हीसे मेरी त्रिकाल सन्ध्या मद्धिम पड़ी थी। यह क्यों?—यात्राकर्षणने वैराग्यपर अपना असर डाला होगा, या साधुओंकी रहन-सहनसे अतिवादिता ढीली पड़ी थी, अथवा लगातार चलते रहनेसे फ़ुर्सत कम मिलती थी। केदारनाथमें अब कुछ महीनोंके लिए स्थिर रहना था, इसलिए यहाँ फिर जीवन-चर्यामें कुछ परिवर्तन करना था। रामायण, विचारसागर, गुरुमुखी पंचीग्रंथीके सिवाय बाबाके पास एक भाषाटीका शिवपुराण था। गुरुमुखी एक नई लिपि थी, किन्तु दो-तीन दिनमें ही पंचग्रंथीके "१ ओम् सतिगुरुप्रसाद... "को मैं पढ़ने लगा। विचारसागर और रामायण कई बारके पढ़े हुए थे, इसलिए उनपर ज़्यादा समय नहीं दे सकता था; हाँ, दोपहरके खानेके बाद दो-तीन घंटा शिवपुराणका पाठ चलता था। संस्कृतके श्लोक पढ़ जाता, फिर उसकी हिन्दी-टीकाको। यत्र तत्र ही संस्कृत-का कोई शब्द समझमें आता था, किन्तु हिन्दी भाषान्तरसे काम चल जाता था। कथाके वक़्त बाबाजीके अतिरिक्त दो-एक ग्रामवासी पंडा और कर्मचारियोंमेंसे भी कोई रहता था। ख़ैर, वहाँ कथा सुनानेसे मुझे विशेष प्रयोजन नहीं था, मैं कथाका रसास्वादन ले रहा था। अनजाने बेलके वृक्षसे गिराये पत्तोंके विस्मृत अलक्षित शिवलिंगपर पड़ जानेसे घोर पापीको शंकरके दूत स्वर्ग ले जानेके लिए आये—इस कथाने मेरे दिलमें शंकरके प्रति श्रद्धातिरेक पैदा किया हो, सो बात नहीं थी। मुझे तो उसके पढ़नेमें उसी तरहकी दिलचस्पी पैदा हो रही थी, जैसी "हातिमताई" और "आराइशे-महफ़िल"को कई वर्ष पहिले बछवलमें पढ़ते वक़्त।

पुस्तकपाठ और बाबासे यात्रा तथा वेदान्तपर बातें सुननेके अतिरिक्त मेरा काम

था, आसपासके पहाडोपर घूमने जाना। सारी निचली उपत्यका और पूरबवाली दूर तक चली गई अधित्यकामे हरी घास तथा रग-बिरगे फूलोसे लदी जडी-बूटियोका कालीन बिछा हुआ था। अक्सर नाथूरामके साथ मै घूमने जाता था। उपरली अधित्यकापर, कितनीही बार नीचेकी ओर वहाँ तक गया, जहाँ छोटे-छोटे वृक्ष शुरू हो जाते है। ऊपरकी ओर सत्पथ शुरू होनेवाले चट्टानोसे बहुत आगे तक कई बार गया। पहिली बार हम दोनो उधर जा रहे थे, तो भेडोके झुडसे एक अधेड आदमीने आवाज दी। नाथूराम गये। लौटकर बोले—"इधरसे आगे जाना मना है। पाण्डव लोग इसी रास्ते हिमालय गलने गये थे। कितने लोग इधरसे जाया करते थे—रास्तेमे गल गये, तो मरनेके बाद, नही तो सशरीर ही स्वर्ग पहुँच जाते। .. हाँ, स्वर्ग इधर ही है। प्रधान पूछ रहा था, आप सत्पथ तो नही जाना चाहते। सर्कारकी ओरसे मनाही है।"

'सत्पथ'का शौकीन तो मै नही था। 'स्वर्ग इधर ही है'के खिलाफ मेरे भूगोल-ज्ञानने कितना विद्रोह किया था, यह मुझे याद नही। हमने एक बडी चट्टानपर त्रिशूल तथा दूसरे चिह्न बने देखे। नाथूराम कह रहे थे, कि पुराने सत्पथ-यात्री यह अपना चिह्न छोड गये है। लौटते वक्त हम सुन्दर-सुन्दर फूलों और पत्तियोका गुच्छा बनाकर लाते थे।

पहिले रोज, और पीछे सोमवारके सोमवार मै केदारनाथके दर्शनको जाता था। मन्दिर पत्थरका तथा अबतकके हिमालयमे दिखाई पडे मन्दिरोंसे बडा था। कलश और शिखरकी धातु याद नही, किन्तु मन्दिर शिखरवाला था। शायद मन्दिरके बाहर सभा-मडप न था। भीतर लिंगके स्थानपर अनगढ पत्थरका महिषपृष्ठाकार लिंग था। कथामे सुना भी था, कि शकरजीको भैसाका रूप धरके इसी उपत्यकामे चरनेकी बात सुन पाडव पकडने आये। भीम दोनो पहाडोंपर पैर रखकर खडे हो गये, जिसमे कि पैरोके नीचेसे जो भैसा न जावे, उसे शकरजी समझकर पकड लिया जावे। शकर सचमुच ही हिचकिचा रहे थे। पाडव लपके पकडनेको, किन्तु उसी जगह शकर अन्तर्धान होने लगे, पीठ भर धरतीमे डूबनेको रही, वही यह केदारनाथ महादेव है, जो द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमे एक है। शकरका चढ़ा प्रसाद—शिव-नैर्माल्य—खाना वर्जित है, यह मै लड़कपनसे सुनता आया था; किन्तु यहाँ अक्सर शिवजीके प्रसादको रावल (केदारनाथके दाक्षिणी प्रधान-पुजारी)के यहाँसे आते देख मैने बावासे पूछा, तो उन्होने कहा—ज्योतिर्लिंग और नर्मदेश्वर (नर्मदा नदीसे निकले)के प्रसादके ग्रहण करनेमे कोई हर्ज नही है। मन्दिरके रावलजीकी

भाँति कालीकमलीवाले बाबाकी सदावर्तके अध्यक्ष बाबा धर्मदास भी केदारनाथके प्रमुख व्यक्तियोमे थे। रावल भी अक्सर उनके यहाँ आया करते थे। सावनके महीनेमे केदारनाथकी पूजा खास तौरसे की जाती थी। उस वक्त एक तरहका कमल ("हिमकमल") बहुत चढाया जाता। हमारे बाबा भी आदमी भेजकर हर सोमवारको टोकरे भर कमल मँगवाते, और बड़ी भक्तिभावसे चढाते थे। "परसे तुहिन तामरस जैसे"—यह चौपाई मुझे याद थी, और यहाँ हिमालयमे कमल होनेपर मुझे बडी आपत्ति थी, किन्तु लोग उसे कमल ही कहने का आग्रह करते थे, और बतलाते थे, कि बर्फके गल जानेपर पच्छिमवाले पहाडके पीछे एक विशाल झीलमे वह पैदा होते है। पच्छिमवाली झीलको देखने तो मै नही जा सका, किन्तु उत्तर तरफ एक दिन नाथूरामके साथ बहुत दूर तक गया था। वहाँ, हवाके पतली होनेके कारण साँस लेनेमे तकलीफ होती थी। हम उस बर्फको भी पार कर गये, जिसके नीचेसे मन्दाकिनीकी धार आ रही थी। आगे एक ईषद्-हरित साफ पानीकी छोटीसी झील मिली। मै थक गया था, इसलिए एक चट्टानके ऊपर लेट गया, और नीद भी आ गई; किन्तु नाथूराम आगे घूमने गये। उनके लौट आनेपर हम लोग साथ ही बस्तीमें लौटे।

केदारनाथमे जानवरोमे गाय-बैलके अतिरिक्त टट्टू और कुत्ते भी काफी थे, टट्टू सामान लानेके लिए थे। डडी, झप्पान या खटोलेपर तो किसी-किसीको चढ़े मैने जरूर देखा था, किन्तु घोडेपर चढे किसी यात्रीको देखा हो इसका ख्याल नही आता। कुत्तोकी गर्दनोमें चार-छै अगुल चौडे लोहे या पीतलके पट्टे थे। लोग बतला रहे थे, इसके रहनेसे कुत्ता बघेरेके काबूमे नही आता।

केदारनाथमे रहते मुझे दो या तीन हफ्ते हो गये थे, इसी समय मैने अँधेरी जगहमे अपने आसनपर बैठे देखा, एक साधूके साथ एक लडका—हाँ, दूसरा नही मेरा बालसाथी यागेश—सदावर्त लेने आया। उसके पास दोसे अधिक पुर्जियाँ थी। सदावर्त देनेवाला कर्मचारी बिना आदमी देखे, सदावर्तका सामान देनेके लिए तैयार नही हुआ। साधुने यागेशको साथियोके पास उन्हे लिवा लानेकेलिए भेजा। यागेशके सीढीसे उतर जानेके बाद मै भी चुपकेसे उतरकर पीछे हो लिया। यागेशके पास एक धोती, एक सूती कुर्ता या कोट था, सिर और पैर नगे थे, और मै शिरसे पैर तक गर्म कपडोसे लदा था। दो-तीन सप्ताहके निश्चिन्त रहने तथा खाने-पीनेके आरामके साथ शरीरमे वैसे ही नया खून आ गया था, ऊपरसे सम्भ्रान्त पोशाक और लोधियानवी लालजूती और भी बतलाती थी, कि कोई अमीरका लडका है। यागेश जब अपने साथियोके रहनेकी जगहपर पहुँच गये, तब मैने कहा—'यागेश!'

यागेशने पीछे मुडकर मुझे देखा। दोनों तरफके आनन्दका ठिकाना न रहा। हममेसे किसीकी आँखोमे आनन्दाश्रु आये—नही कह सकता। और बात करने को तो अब सारा समय अपना था, इसलिए उस प्रसगको बिना छेडे मैंने उन्हे साथ चलनेके लिए कहा। यागेशने सदावर्तसे लाये सन्देशको अपने साथियोसे कहा या नही, किन्तु जब उन्होने उनसे कहा—'मेरे भाई मिल गये, इन्हीकी खोजमे मैं घरसे निकला था, वह बाहर खडे हैं।' मुखिया साधुने झाँककर मुझे देखा, तो घबडाये हुए जाकर यागेशके गलेसे कठी उतारने लगा, उतारनेमे देर देखकर उसे तोड लिया। जिक्र करनेपर यागेशसे जब मैंने कारण पूछा, तो बतलाया—वह घबरा गया, कि कही इनका भाई ज़बर्दस्ती चेला बनानेकी बात पुलीससे कहकर फँसा न दे। हम लोग उसके भोले-पनपर हँसते धर्मशालाकी ओर चले। मैंने कर्मचारीको कह दिया—'हाँ, इन्हे पुर्जीके मुताबिक सदावर्त दे दो, मेरा यह भाई इन्हीके साथ आया है।' मै भी तो उनका उपाध्यक्षसा था, फिर वह मेरी बात क्यों न मानते।

कुछ खिलाने-पिलानेके बाद यागेशने सारा किस्सा सुनाया। कैसे मेरी उल्टी चिट्ठीको उन्होने पढा, और कैसे अचानक आकर फूफा साहेबने वह चिट्ठी उनसे छीन ली। कैसे बेसरोसामानीकी हालतमे वह आँख बचाकर घरसे निकले, कैसे कही थोडी दूर रेलपर और कही थोडी दूर पैदल चलते हरिद्वार पहुँचे। कैसे विष्णुदत्त पडित(?)ने मेरे बदरीनाथसे लौटकर वही आनेकी बात कह उन्हे भी रखना चाहा, और मेरी तरह वह भी पडितजीकी बनावटी बातोसे असन्तुष्ट हो चलनेपर मजबूर हुए। रास्तेमे उन्हे गाजीपुर जिलेकी यह गृहस्थ-साधु-मडली मिल गई, और उसके साथ वह यहाँ तक पहुँचे। मै ही समझता था, यागेशको कितना कष्ट हुआ होगा, खासकर मेरे जैसा उनके पास वेदान्त और वैराग्यका बल न था, वह मेरे प्रेम और कुछ देशाटनके लोभसे खिचकर ही इतने कष्टको सहनेकेलिए तैयार हुए थे। मैंने भी अपना यात्राविवरण कह सुनाया। बाबा धर्मदाससे मैंने सारी कथा कही। उन्होने कहा—'अच्छा है, दोनों भाई चलो हृषिकेश, वही सस्कृत पढना, और साधु बन जाना।' साधु बननेके बारेमे मै तो कुछ 'ननु' 'न च' भी करता था, किन्तु यागेश अपनेको एकदम तैयार जाहिर करते थे। हाँ, वह मेरे सामने जरूर कहते थे—'माँ याद आती है, भैया! चलो घर चले चले।' किन्तु, मुझपर तो दूसरी ही सनक सवार थी। मै कोमल किन्तु स्थिर शब्दोमे यागेशको उस बातसे रोकता था।

केदारनाथमे भुना चना रुपयेका दो सेर, अर्थात् करीब-करीब घीके बराबर बिकता था। इससे भी ज्यादा आश्चर्यकी बात मुझे यह मालूम हुई, कि आटा और

पूडी दोनो एक भाव—शायद छै आने सेर—विकते थे। कारण पूछनेपर वतलाया गया—सभी हलवाई चढा-ऊपरी कर रहे है, और इसमे घाटा भी नही है, क्योंकि पूडी आटेसे ड्योढी हो जाती है, और उसी वृद्धिमें घीका दाम तथा थोडा नफा भी निकल आता हैं। पूड़ी खाकर पेटकी खरावीको मैंने देख लिया था। केदारनाथमे पहाडी लोग भी उससे डरते थे। सवेरेके वक्त हम हलवा वनाते थे, घी-गुड-आटेकी वहाँ कमी न थी। हलवा वनानेकी कला मुझे वावा धर्मदासने वताई थी। यागेशके आ-जानेपर तो हम दोनो वना लिया करते थे। वाकी वक्तका खाना दोनो कर्मचारियोमेंसे कोई वनाता था। दोपहरको क्या खाते थे, यह तो याद नही, किन्तु रातको खाना खाने हम नीचे जाते थे। केदारनाथमे अरहर या उड़दकी दाल नहीं मिलती थी, न भात ही सीझता था; हमारी दाल मसूरकी होती। तरकारीके लिए आलूकी फसल तैयार होनेमे देर थी, उसकी जगह प्याज़की तरकारी वनती थी। कभी-कभी जंगलका कोई साग भी वन जाता। रोटीमे घी चुपडकर खानेसे डरते थे, उसकी जगह आटा गूँधते वक्त कुछ घी मिला दिया जाता। दालको घीसे छौंकनेमे कोई आपत्ति न थी। सामग्रीके परिमित होनेपर भी भोजन सुस्वादु होता था।

यागेशके आनेके वाद हम एक मास या अधिक केदारनाथमे रहे। दिनचर्यामे शायद कोई परिवर्तन नही हुआ। जाडोमें वदरीनाथ केदारनाथकी सारी वस्ती उजडकर नीचे चली आती है, यात्रियोका आना रुक जाता है, वहाँकी भूमि सारे मन्दिर-मकान वर्फसे ढँक जाते हैं, और जानकारोके कहे अनुसार—छै महीनेका भोग-आरती देवता लोग किया करते है, पडा लोग उसके लिए सामान मन्दिरमे वन्द कर जाते हैं; पट खुलनेपर देखा जाता है, सारी सामग्री खतम हो गई है, मन्दिरसे धूपकी ताज़ी सुगन्ध आ रही है। अव पट वन्द होनेमे तीन-चार सप्ताह वाकी थे—इतना ही समय जिसमे कि इधर हम वदरीनाथ होकर ऋषिकेश लौटते, और उधर वावा धर्मदास भी सदावर्त-धर्मशाला वन्दकर वहाँ पहुँचते।

पूर्व-निश्चयके अनुसार एक दिन पहिनने-ओढनेके कपडे तथा रास्तेके खर्चके लिए पैसे देकर वावाने हमें वदरीनाथकी ओर रवाना किया। चलते वक्त मुझे ज़रा भी विश्वास न था, कि वावा धर्मदाससे यह आखिरी मुलाकात है। पिछले डेढ-दो महीने मुझे वहुत कम ही चलना-फिरना पडा था, किन्तु रास्ता अभी वहुत दूर तक नीचेकी ओरका था। गुप्तकाशीके पास तक हम श्रीनगर-केदारनाथके रास्तेसे आये। गुप्तकाशीके छोटे गाँव तथा साधारण मन्दिरको देखकर तो मुझे काशी नामके साथ परिहाससा मालूम हुआ। उतराई उतर, नदी पार हो आगे वढे। ऊखीमठको

देखकर, पहिलेके पढे हुए सुखसागरके बाणासुर और उषाकी कथा याद आ गई। वहाँसे और आगेके एक पडावकी अब भी स्मृति है, वहाँ भैसो-गायोका गोष्ठ था। मच्छर बहुत लगते थे, और बनारसकी ओर 'ही' कहकर जैसे भैसको पुकारते है, वहाँ उसकी जगह 'डी' या कोई दूसरा शब्द इस्तेमाल करते थे। तुगनाथ जानेकी लालसा तो थी, लेकिन जब उसके लिए दुरूह पर्वतपथसे आधे आसमानपर चढनेकी बात सुनी, तो वह ढीली हो गई। चमोलीके पास गगाका लोहेका झूला उसी साल टूट गया था और लोग बगलमे बने रस्सेके झूलेसे पार हो रहे थे। लोहेके झूलेके बारेमे तो उतना नही किन्तु इस विशाल रस्सीके झूले को देखकर मै पहाडियोकी चतुराईको बहुत सराहता था।

यहाँसे आगे हम हरिद्वारसे सीधे बदरीनाथ जानेवाले रास्तेपर थे। यहाँ सडक काफी चौडी थी। बरसातसे कही-कहीके पुल टूट गये थे, किन्तु मालूम होता था, सरकारकी ओरसे सडककी मरम्मतपर काफी ध्यान दिया जाता है। चट्टियाँ और गाँव भी ज्यादा थे। कही-कही पके आडू खानेको मिले। थके-माँदे जिस किसी चट्टीपर पहुँचते, तो यागेश झट कह उठते—'भैया! खिचडी बना न ले।' मेरे वदनमे आग लग जाती। बालपनके शत्रुभोजनोमे खिचडीका स्थान अभी ज्योका त्यो था, यद्यपि बछवलमे मै खिचडी खा लेता था, क्योकि वहाँ बघारे हुए सिर्के और आमकी फारीके साथ उसे हमजोलियोके साथ बैठकर खाना होता था। मै यागेशको डाँट देता, यद्यपि मेरी समझमे पीछे आता था, कि यागेश मुझे चिढ़ानेकेलिए वैसा नही कहते है। खिचडी बननेमे कम मेहनत और जल्दी होती है, इसी ख्यालसे उनका वह प्रस्ताव होता—साथ ही खिचडी उन्हे रुचती भी थी, इसमे सन्देह नही। मालूम नही, बदरीनाथके रास्तेमे ऊपर जाते वक्त कभी हमारी तबियत खराब हुई थी। जोशीमठ (ज्योतिर्मठ)की कोई खास बात याद नही है, उसका यह महत्त्व भी दिलपर अकित न था, कि वह वेदान्तके आचार्य शकराचार्यके चार प्रधान मठोमेसे एक यही है।

जोशीमठसे आगे उतराई उतरकर कोई नदी पार करनी पडी, फिर अलकनन्दाके किनारे ही किनारे बदरीनाथ तक गये। बदरीनाथसे कुछ मील पहिले ही पर्वत वृक्षोसे शून्य हो गये थे, आगे हरी घास थी। पहाडोकी दूरकी चोटियोपर वर्फ दिखलाई पडती थी, नही तो और कही उसका नाम न था।

वदरीनाथकी कालीकमलीवाली धर्मशाला केदारनाथकी अपेक्षा वडी थी। वहाँके अध्यक्ष एक गरीबदासी साधु थे। उनका महतो जैसा लम्बा कद, गोरा रग, मोटा बदन था। सिर-दाढी मुडी तथा शरीरपर गेरुआ कपडा था। उमर ३५-४०

सालकी होगी। धर्मदासजीसे यह ज्यादा पढ़े-लिखे थे, किन्तु उसे विशेष जाननेका मुझे मौका नही मिला। केदारनाथसे हम उनके लिए चिट्ठी लाये थे, और उन्होंने ठहरने और भोजन आदिका ठीक प्रबन्ध कर दिया। लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ, कि हम ऋषिकेश लौटकर बाबा धर्मदासके साथ रहनेवाले है, तो उन्हें यह बात पसन्द न आई। उन्होने हमे मना करना शुरू किया—"पढ़नेवाले नौजवानोंको साधुओंके फेरमें नही पड़ना चाहिए। बाबा धर्मदास खुद पढ़े-लिखे नही हैं, वह विद्याकी क्या क़द्र करेगे। चेला बना लेंगे और कहेगे 'मूँड दिया माँग खाओ'।" उनका उपदेश चलता ही रहा, उसमें कितना अंश हमारे प्रति सद्भावनासे प्रेरित था, और कितना ईर्ष्यासे यह मै नही कह सकता। मै बराबर उनकी सम्मतिको अपने भीतर जानेसे रोकता था, किन्तु यागेश तो मानों उससे भी पहिलेसे इस बातकेलिए तैयार बैठे थे। उन्होंने भी ज़ोर देना शुरू किया—"नही, भैया! चलो बनारस ही, साधुओंका ठिकाना नही। असहमत होनेपर न जाने क्या कर बैठे। ऋषिकेश हमने देखा नही है क्या? वहाँ कहाँ पंडित है?"

बदरीनाथकी बस्ती बडी थी। मकान सख्यामे अधिक तथा अच्छी तरहके बने थे। छतोंपर खपड़ैलकी जगह लकडीके पटरे थे, जिनके नीचे भोजपत्रकी छाल बिछी थी। तप्तकुडके होनेसे यहाँ नहानेकी बड़ी मौज थी। बदरीनाथके मन्दिर और मूर्त्तिका मुझे कोई स्मरण नही। वहाँ दाढ़ी-मूँछ रहित लाल मुँहवाले कितने ही मज़दूर और उनकी स्त्रियाँ दीख पड़ी। लोग उन्हे मारछा कह रहे थे। गंगोत्रीके पास मिले लामासे उनकी सूरत कुछ मिलती थी, यद्यपि वे उतने कद्दावर न थे; तो भी उस वक़्त इन नरनारियोको देखकर मुझे कोई खास जिज्ञासा नही पैदा हुई। सुना, इनकी बस्तियाँ और ऊपर तक है। कुछ मीलपर वसुधारा तीर्थ था। एक बार जानेकी इच्छा हुई, किन्तु न जाने क्यो नही जा सके। बदरीनाथमे बस्तीसे बाहर ज़्यादा नही घूमे-फिरे। धर्मशालाके रसोईघरमे एक बड़ा तवा था, जिसपर एक साथ दस-बारह फुलके डाले जा सकते थे। ऐसे तवेके देखनेका यह पहिला अवसर था, इसलिए कुछ कौतूहल हुआ। यहाँ शीरा-पूड़ीकी जगह शीरा-रोटीका भोज होता था, मालूम होता है यहाँवाले भी पूडीसे वैसे ही डरते थे, जैसे केदारनाथवाले। बदरीनाथमें तीन-चार दिनसे अधिक हम नही ठहरे। अध्यक्ष महाशयके उपदेशोंके कारण मेरा मन वहाँ नही लगता था।

केदारनाथ छोड़ते वक़्त तक तै नही हो पाया था, कि हमे बाबा धर्मदासके पास नहीं रहना है। यह बात पहिले तै हुई होती, तो उनसे हम कहकर आये होते, किन्तु

अब तो उनसे मुलाकात ऋषिकेश हीमे हो सकती थी। यागेश मुझे वहाँ तक जाने देनेके लिए तैयार न थे। उन्हे डर था, और इसमे सच्चाई भी थी, कि एक बार ऋषिकेश पहुँच जानेपर मैं वहाँसे न हटूँगा—बनारस जानेसे मैं ज्यादा शकित था। यद्यपि हमे उस वक्त मालूम न था, और बदरीनाथवाले महात्मा साफ़ इन्कारी थे, तो भी ऋषिकेशके साधुओमे सस्कृतज्ञ कुछ अवश्य थे। बदरीनाथमे ही ऋषिकेश न जानेकी बात न तै हो पाई, किन्तु उसके अन्तिम निर्णयकेलिए अभी काफ़ी समय था। ऋषिकेश और रामनगरका रास्ता अभी कई दिनो तक सम्मिलित था।

चमोलीके पास तक हम अपने गये रास्तेसे लौटे। अलकनन्दाके रस्सीवाले पुलपर चलते वक्त कुछ रोमाच होता था, खासकर नीचे धारकी ओर नजर करनेपर; किन्तु वह रोमाच उतना भय-सचार करनेवाला न था, जितना कि गगोत्रीसे लौटते वक़्त भैरवघाटीमे भोटगगाके ऊपरके पुलसे सैकडो फीट नीचे सफ़ेद पतली धार तथा हिलते हुए लोहेके पुलको देखकर होता था। शायद जब नन्दप्रयागसे हरिद्वारवाला रास्ताछूटा, तब तक मैं भी बनारस लौटनेकेलिए तैयार हो चुका था। हम जितना ही नीचे उतरते जाते थे, उतनी ही गर्मी बढती जाती थी, और पहाडोपर गाँव भी अधिक दिखलाई पडते थे। चलनेकी गति हमारी तेज होती गई और अन्तिम दिन—जिस दिन कि रामनगर पहुँचे—हम एक दिनमे चालीस मील चले।

## ४

# काशीको

रामनगरमे, अब हम मैदानमे थे। बरसात अभी-अभी समाप्त हुई थी, किन्तु धरतीपर अब भी उसका असर बाकी था। पहाडसे उतर आनेपर भी अभी हम तराईमें थे; यहाँ चरागाहके सुभीतेके कारण गाये ज्यादा पाली जाती थी। हम सडक पकडे पैदल ही काशीपुरकी तरफ चले। ठडी जगहसे आनेके कारण धूप बहुत सख्त मालूम होती, और प्यासके मारे तो मुँह हर वक्त सूखा रहता। गाँवसे दूर किसी समृद्ध आदमीने मुसाफिरोकेलिए एक धर्मशाला बनवा रखी थी। उसके हातेमे अमरूद पके हुए थे। दूसरे भोजनके स्थानपर वह अधपके अमरूद हमे अच्छे लगते थे। धर्मशालामे ठहरे यात्रियोको मट्ठा पीते देखकर उनके बतलाये अनुसार हम

भी मट्ठा लेने गये, गृहस्थके घर वह घडेका घडा तैयार था। गाये ज्यादा थी, मट्ठा घरभरके पीनेसे खतम होनेवाला थोडे ही था।

रास्तेमे ठहरते या कैसे एक दिन शामको हम काशीपुर पहुँचे। उसी दिन भादोकी कन्हैयाजीवाली अष्टमी थी। एक भगत वडी श्रद्धा दिखलाते हुए अपने घर ले गये। भूख तो लगी थी, किन्तु आधीरातको कृष्णजन्म हो जानेपर पेट भर प्रसाद मिलेहीगा, इस आशापर हम बैठे रहे। भगतजीके यहाँ काफी रोशनी बल रही थी। एक तरुण साधु पिटारीमे कई साँप लिये हुए आया, उसने उनमेंसे किसीको शिरपर, किसीको गलेमें, किसीको हाथमें लपेटकर शकर बनके दिखलाया। मनोरजन होते-हवाते आधीरात बीत गई, कन्हैयाजीका जन्म भी हो गया, किन्तु वहाँ एक चम्मच चरणामृत और चुटकी भर पँजीरीके सिवा और कुछ न था। भूखके मारे नीद नही आई। सवेरे बासी सूखी रोटियाँ सो भी आधपेट मिली। कही उसी तरहके 'श्रद्धालु भगत' दूसरे न आ मिलें, इसलिए हमने जितना जल्दी हो सका कस्बेसे बाहर हो ठाकुरद्वारका रास्ता लिया। हम दोनोके अतिरिक्त शायद कोई तीसरा भी सहयात्री था। किसी कूएँपर जजीर या रस्सीके साथ बँधी हुई डोलको देखकर मुझे यह प्रथा बडी अच्छी मालूम हुई, यद्यपि वह स्वयप्याव मुसल्मानो हीके लिए था।

ठाकुरद्वारमे कुछ बडे धनी वैश्य परिवार रहते है। उनके बडे-बडे पक्के घरोको सिर्फ बाहरसे देखते हम लोग सीधे मन्दिरमे गये। वहाँ ही आगन्तुकोके उतरनेका इन्तिजाम था। रातको तो मै सो गया, लेकिन यारोग जगे थे, और एक नौजवान साधुके नाचने-गानेकी बडी तारीफ कर रहे थे, शायद ठाकुरद्वारमे जन्माष्टमी आज थी—सभी पर्व हिन्दुओंके दो दिन पडा भी तो करते है?

ठाकुरद्वारसे हम मुरादाबाद आये और शायद पैदल ही। वहाँ रामगगाके किनारे एक वैरागी साधुके मठमे ठहरे। पाठकजीसे भेट हुई। मैने वतलाया कि किस तरह हरिद्वारमे हताश होकर हम बनारस लौटे जा रहे है, साथ ही बाबा धर्मदासका भी जिक्र आया। पाठकजीने बातो-बात यह जिक्र दसकमडलू जमा करके साथ चलनेवाले नों दूसरे साथियोके इन्तिजारमे वैराग्य सेवन करनेवाले साहुजीसे कह दिया। उनके भाई और माँके षड्यन्त्रमे पडकर विना सूचनाके मेरा भाग जाना उनको बुरा लगा था, अब उन्होने समझा, बाबा धर्मदासको विना कहे चला आना मेरा अक्षन्तव्य अपराध था। मेरी अनुपस्थितिमे उन्होने मठके बूढे महन्तसे आकर कहा, कि इन दोनो लडकोको अपने मठमे न रहने दे। खैर! हम लोग वहाँ बसनेके

लिए नही गये थे, इसलिए हम हर वक्त चलनेको तैयार थे। महन्त कह रहे थे—शहरके वडे आदमी है, उन्हे नाराज करना अच्छा नही है।

फिर वही सीधी सडक पकडी, जिससे ४ महीने पहिले मै गुजरा था। नही मालूम होता था, सिर्फ चार महीने तबसे गुजरे है, आखिर घटनाये कालकी माप है, और उनकी सख्या बहुत अधिक जरूर थी। रामपुरमे गोर्खा पल्टनमे ठहरे। सिपाहियोने खाने-पीनेका इन्तिजाम किया। बरेलीमे स्टेशनके पासकी पक्की धर्मशालामे ठहरे। उसी धर्मशालाके एक भागमे रेलवेके दारोगा (सब-इन्स्पेक्टर)का परिवार रहता था। दारोगा साहेबके भाई वहाँ बराबर रहते थे। पासमे आसन गिरानेसे परिचय ज्यादा बढा। वह उन्नाव जिलेके पुरवा तहसील और शायद पुरवा कस्बेके ही रहनेवाले राजपूत थे। उनके घरके लोग पल्टनमे भी नौकर थे। खुद हमारे दोस्त भी काली तथा फाडकर दोनो तरफ सँवारी अपनी दाढी और खडी मूँछोमे पलटनिहा सिपाही ही जैसे मालूम होते थे। याद नही, हम लोगोका भोजन धर्मशाला-की ओरसे आता था, या दारोगाजीके यहाँसे।

दो-एक दिन बाद वहाँ एक नेपाली साधुओका काफिला आया। वे लोग हिंगलाज-की भवानी (कराचीसे आगे बलूचिस्तानके रेगिस्तानमे)का दर्शन करके लौटे थे। काफिलेका प्रधान पुरुष स्वामी पूर्णानन्दसे हिंगलाजकी भवानीके तेज और उससे भी अधिक ऊँटके ऊपर पथचिह्न-शून्य मरुभूमिपर अटकलसे पथप्रदर्शकके इशारेपर दिनो चलते जानेका वर्णन सुनकर एक बार जीभमे पानी भर आया। काफिलेके मुख्य-सर्दार स्वामी पूर्णानन्द नही उनकी 'गुरुभाई' एक पचास वर्षकी अवधूतानी थी। स्वामी पूर्णानन्द मुँह और शिरपर केश नही रखते थे, लेकिन अवधूतानीकी जटाये छै-छै फीटकी थी। उनके गलेमे बडे-बडे रुद्राक्ष और हिंगलाजके पतले-पतले सफेद पत्थरो या सीपोकी कई मालाये थी। शरीरपर उनके भी पूर्णानन्दकी तरहकी स्वच्छ गेरुआकी ब्रह्मगाँती थी। पूर्णानन्द नेपालकी बहुतसी बाते सुनाते थे, राज-नीतिक नही, प्राकृतिक और धार्मिक। नेपाल देखनेकी सूक्ष्म लालसा उसी वक्त मेरे मनमे प्रविष्ट कर गई, जिसे पूर्ण होनेकेलिए तेरह बरसोका इन्तिजार करना पडा। मै बनारसकी ओर ही जा रहा था, इसलिए उनसे भी पता पूछा। उन्होने अपना स्थान मणिकर्णिका पर 'दत्तात्रेयकी पादुका' बतलाया।

जिस धर्मशालामे हम ठहरे थे, उसकी बगलमे एक और धर्मशाला किसी पेंशनर ज़िलाजज (नाम शायद शिवनाथ)की बनवाई हुई थी। उसमे एक विद्वान् सन्यासीकी खबर सुनकर मै एक दिन उनका दर्शन करने गया। वह गेरुआ कपडा पहने एक

आसनपर बगलमे डडा लिये बैठे थे। बीच-बीचमे वह अपने डडेको धरतीमे पटकते थे। लोग बतला रहे थे—चित्तको एकाग्र करते है, जब चित्त इधर-उधर जाने लगता है, तो डडा पटकते है। वह शायद बातचीत नही करते थे, या मुझसे उन्होने बात नही की। उनके पास कुछ छपी पुस्तिकाये रखी थी, जिनमे उठाकर एक उन्होने मुझे दे दी। वह बहुत सरल सस्कृतमे थी, जिसे मै भी समझ लेता था। उसमे अहिंसाका माहात्म्य दर्शाया गया था। साधु नाम खुन्नीलाल शास्त्री मुझे उस वक्त अर्थहीनसा मालूम हुआ, किन्तु पीछे मालूम हुआ कि हिन्दी भाषाभाषी प्रान्तोमे बौद्धधाराको पुन प्रवाहित करनेवालोमे उनका खास स्थान था।

मै रोज़ वहाँसे चलनेको कहता, किन्तु दारोगाजीके भाईका आग्रह देखकर रुकना पडता। उनके आग्रहको यागेशका समर्थन प्राप्त हो जाता, इसलिए पलडा उधर भारी रहता। इसी तरह करते एक सप्ताहसे अधिक हो गया। आखिर एक दिन मैने उनकी एक न मानी, यागेशको भी डॉट दिया, और हम रेलसे पीली-भीतकेलिए रवाना हुए। उस वक्त तक मुझे मालूम नही था, कि यागेशसे मिलकर वहॉ एक षड्यन्त्र रचा जा रहा है। पहिले कह चुका हूँ, कि यागेशपर वैराग्यका भूत सवार न था, वह इस कष्टमय यात्रामे मेरे स्नेह तथा कुछ देशाटनके लोभसे शामिल हुए थे। इतने दिनो घरसे बाहर रहते उनको अपने घरका और खासकर माँका मोह लगने लगा था। उन्होने चुपकेसे हमारी सारी बाते दारोगाजीके भाईको बतला दी थी। उन्होने, शायद पुलीसकी मार्फत, बछवल सूचना दे दी थी। वह बछवलसे किसीके तुरन्त आ पहुँचनेके इन्तिजारमे हमे रोके हुए थे। इस यात्रामें तीन ऐसे अनचाहे प्रयत्न मुझे लौटा लानेकेलिए हुए। पहिले, भितिहरा होकर जाने-की खबर सुनकर पिताजी अयोध्या पहुँचे, और उनको एक मौनीने यह कह ठगकर अपना गृहस्थ शिष्य बना लिया—'हाँ, आपका लडका यहाँ आया था। मुझसे गुरुमन्त्र लिया। बदरीनारायण गया है, वह जरूर लौटकर आयेगा।' हरिद्वारसे आई मेरी चिट्ठीको देखकर फूफाजीकी सम्मतिसे नाना चल पडे, वह भी बदरीनाथ होकर लौट आये और मेरा पता न पा सके। अब यह तीसरा बार था। वस्तुतः यदि मै एक दिन और रह गया होता, तो यागेशके पिता श्री सहदेव पाडेने बरैली हीमे हमे पकड लिया होता। पीलीभीतमे भी जिस मठमे हम कुछ घटोकेलिए ठहरे थे वहाँभी हमारे हटनेके एकाध ही घटे बाद वह पहुँचे थे, और अन्तमें उन्हे भी खाली हाथ बछवल लौट जाना पडा।

पीलीभीतमे जब हम शहरसे गुजर रहे थे, तो एक भद्र पुरुषने बुलाया। बदरी-

नारायणसे लौटे आ रहे है--सुनकर पूडी-मिठाई मँगवाकर भोजन करवाया। हम लोगोने शहरके बाहर एक मठमे कुछ देर जाकर विश्राम किया। अधिक समय उसी देखे हुए रास्तेमे गुजारनेकी अपेक्षा जल्दीसे जल्दी बनारस पहुँच पढाई शुरू करनेकी मुझे चिन्ता लगी हुई थी। किन्तु प्रश्न था, रेलके किरायेका। मालूम हुआ राजा ललिताप्रसाद यहाँके एक बहुत धनी पुरुष है। दिमागमे न जाने कहाँसे बात समाई कि राजा साहेबकी प्रशसामे एक कविता पेश करूँ, शायद भाग्य खुल जाये। मनमानी तुकबन्दी जोडी, फिर एक साफ कागजपर लिखा, और राजा साहेबके दर्बारमे हाजिर हुए। क्या कहकर 'कविराज'ने डेवढीदारोको अपने 'पधारने'की सूचना दी थी, यह याद नही। किसी दर्बारमे जानेकी उन्हे जरूरत नही पडी। शायद लिखित कविताको भीतर भेज देना पडा था, या राजा साहेबने बाहर निकलकर उसे ले लिया था। उम्मीद करके चले थे, बनारसकेलिए दो रेलके टिकटोकी, लेकिन 'कविराज'को वहाँ धेली मिली। लौटते वक्त हमे फिर वही बूढे सज्जन दिखलाई पडे। पूछनेपर हमने कहा--हम बनारस जाना चाहते है, यदि आप वहाँ तकका टिकट दिलवा दे, तो अच्छा। उस वक्त तो उन्होने इन्कार किया, किन्तु जब हम स्टेशनपर गोलागोकर्णनाथकी गाडीका इन्तिजार कर रहे थे तो, उनका आदमी आया। 'कहाँ जाओगे' पूछनेपर हमने बतलाया--जाना तो चाहते थे अयोध्या तक, किन्तु टिकटका पैसा नही है, इसलिए गोलागोकर्णनाथ जा रहे है। शायद गोलागोकर्णनाथका टिकट भी हम कटा चुके थे। उसने टिकट बदलवाकर फैजाबाद तकके दो टिकट हमारे लिए खरीद दिये।

फैजाबादसे अयोध्या जा हमने शायद एक ही दिनमे दर्शन-पर्शन खतम कर आगेका रास्ता नापा। रास्तेमे पैकोलीके पौहारीजीके मठमे भडारा था। हमे भी एक-एक अँगोछा दो या तीन बडे-बडे लड्डू बाँधकर मिला। अब हमारा रुख था बनारसकी ओर, जौनपुरके रास्ते पैदल।

अब भी हम लोगोंमे लडकपन था। एक दिन हम रास्तेसे जा रहे थे, तो एक आदमी भी कुछ मीलोसे उसी रास्ते चला आ रहा था। उसके शरीरमे एक-दो घाव थे, जो अभी हालके मालूम होते थे। हमने उससे कहा--क्यो किसीको मारकर भागे जा रहे हो क्या ? उसने ज़वाब नही दिया। दूसरी या तीसरी बार दुहरानेपर वह हमे मारने दौडा। अब परिस्थितिकी गम्भीरता मालूम हुई, और बोलते तो वह मारे बिना नही छोडता। वस्तुत वह मारपीट करके ही भागा था, शायद पुलीसके डरसे।

खेतासरायके पहिले एक बाग़से हम लोग गुज़र रहे थे, उस समय कुछ औरतें आपसमें कह रही थीं—'है ! वहाँ पुलपर एक चाईं लेटा पड़ा है।' आगे और क्या कहा, यह तो मुझे स्मरण नहीं रहा, किन्तु चाईंका नाम सुनते एक पुरानी बात याद आई और मन कुछ शंकित हो उठा। रानीकीसरायमें मैं जब पढ़ा करता था, तो प्रयाग माघ-स्नानकेलिए पैदल जानेवाले हज़ारों यात्री—स्त्री और पुरुष दोनों—उसी सड़कसे गुज़रते थे। पुरुषोंके पीठपर और स्त्रियोंके शिरपर आटा-सत्तूकी गठरी होती, हाथमें लोटा-डोरी, कन्धेपर कम्बल या पिछौरी। पैरोंमें जूते बहुत कमके होते। इन्हीं प्रयाग-यात्रियोंके एक गिरोहमें पन्दहाके भी कुछ व्यक्ति जा रहे थे, जिनमेंसे एकने यह कथा कही। वह बात भी जौनपुर ज़िलेके ही किसी स्थानकी थी। रातको सैकड़ों यात्रियोका एक गिरोह किसी बागमें ठहरा हुआ था। इतनी बड़ी संख्यामें होनेसे मारकर उनकी चीज़ तो छीनी नही जा सकती, और रेलसे पैसा बचानेके ख्यालसे पैदल चलनेवालोंके पास सम्पत् ही क्या रहेगी ? लेकिन साधारण ग़रीब चोरकेलिए उनके सत्तू-आटेकी गठरी, और कपडे भी बहुत है। एक चाईं दरख्तपर शायद शाम हीसे चढ़कर बैठा था, या मौका देखकर चढ़ गया। रातको जब सब सो गये, तो उसने गठरीको फाँसकर ऊपर उठा लेनेकेलिए कई मुँहका लोहेका काँटा रस्सी-के सहारे नीचे गिराया। सयोगसे काँटेका एक छोर किसी गठरीमें न फँसकर एक बूढ़े आदमीकी कमरमें लिपटी धोतीमें पडा। गठरी जानकर चाईंने काँटेको ऊपर उठाया। धरती छोड देनेपर बुड्ढेकी नीद खुली। एक-दो और हाथ उठनेपर उसने ज़ोरसे आवाज़ देकर साथियोंसे कहा—'भाइयो ! बहिनो ! कहा-सुना माफ़ करना। प्रयागराजका फल यही मिल रहा है। भगवान् डोरी लगा लिये हैं और इसी देहसे उठाये लिये जा रहे हैं।' चाईंको अपनी ग़लती मालूम हुई, वह रस्सी छोड़कर उतर भागा। बूढ़ेका शिर फूटा, कमर टूटी, और उसे फिर संसारमें लौटआना पड़ा। चाईं मेरे लिए एक अत्यल्प परिचित शब्द था, और उसके कानमें पड़नेपर यह कथा याद आनेसे हँसी छूट रही थी। डर तो था नही क्योंकि अभी दिन था, बस्तीसे हम दूर न थे। वहाँ पुलपर सचमुच किसी आदमीको लेटे देखा।

जौनपुर ज़िला पार होकर हम बनारस ज़िलेमें प्रविष्ट हुए थे, पिंडराके आसपास कोई जगह थी। यागेश बग़लके गाँवसे मक्काका दाना भुनाकर ले आये। गुड़के साथ हम दोनोंने खाया। खाते वक्त मुझे याद नहीं रहा, कि निज़ामाबादमें गुड़लावा खानेपर मुझे मलेरियाने पकड़ा था, और तबसे उसकी तरफ़ नज़र करते ही फिर देहमें गर्मी और हृदयमें कपकपी होने लगती है। खानेके बाद कै हुई कि नहीं, किन्तु

थोडी दूर जानेके बाद मुझे जडैयाने आ घेरा। कपडा ओढकर वही सडककी बगलमे पडा रहा। जडैयाके कम होनेपर बुखार बढा, किन्तु हम हिम्मत करके थोडी दूरपर बाई ओर एक कुम्हारके घरमे चले गये। रात भर वही पडे रहे। बनारससे पहिले ही, शायद, यागेशको भी जडैया आने लगी, लेकिन, सबेरेके वक्त, उसके आनेसे पहिले हम कुछ चल लिया करते थे। याद नही कितने दिनोमे बनारस पहुँचे।

बनारस पहुँचनेपर सबसे पहिले एडवर्ड अस्पतालमे हम मलेरियाकी दवा लेने गये। शीशीमे कुइनैन और क्या-क्या मिलाकर एक जहरसे भी कडवी दवा मिली, जिसमेसे कुछ हमने वही पी लिया। उस जूडीसे परास्त अवस्थामे गगा-स्नान क्या किया होगा। हाँ, जैसे-कैसे हम अस्सीके तुलसीघाटपर पहुँचे। किसीसे पाठशाला और पढ़नेके बारेमे पूछ रहे थे, कि एक पतले नाटेसे अधेड व्यक्ति—जिनके मुँहपर चेचकका दाग, शिरमे त्रिपुड़ विभूति, कानोमे पतले और गलेमे बडे-बडे रुद्राक्षोकी माला पडी थी—हाथमे छोटेसे ताँबेके घडेमे गगाजल लटकाये नीचेसे वहाँ आ पहुँचे। उन्होने भी 'कहाँ' और 'कैसे' पूछा। पढनेकी बात सुनकर बोले—आओ हमारे साथ। बनारसको उससे पहिले मैने नाममात्र देख पाया था, और उसके इस हिस्सेमे तो आया भी नही था। जिन गलियो और सडकोसे घूमता उस दिन मै मोतीरामके वगीचेमे पहुँचा, उनसे होकर तुलसीघाटपर स्नान करने तथा तैरने जाना पिछले दो वर्षोमे रोजका कामसा हो गया, किन्तु उस आद्यपरिचयके दिन उनका जैसा अजीबसा रूप देखा था, वह पीछे लुप्त हो गया।

मोतीरामका बाग दुर्गाकुडसे जानेवाली उसी छोटी सडकपर है, जिसपर भास्करानन्दकी समाधि और कुरुक्षेत्रका पत्थरके घाटवाला तालाब—जो सदा ही जलशून्य रहा करता है, सिवाय सूर्यग्रहणके, जब कि काशीमे ही कुरुक्षेत्रका पुण्य लूटनेकेलिए पानीका कोई प्रबन्ध कर लिया जाता है। मोतीरामका बाग कुरुक्षेत्रके तालाबसे सटे ही पूरब तरफ, तथा उक्त सडकसे थोडा उत्तर हटकर है। बागके चारो तरफ लाखौरी पतली ईटोकी चहारदीवारी थी, तीन छोटे-छोटे दर्वाजे थे, जिनमे पूरबका दर्वाजा हमारे आजके मेहरबान—चक्रपाणि ब्रह्मचारी—के दखलमे था, और उसे वन्दकर उन्होने उसे एक कोठरीके रूपमे परिणत कर दिया था। बाग जैसा छोटासा था, वैसे ही उसके घर भी छोटे-छोटे थे। मालूम होता था, ये किसी वामन-द्वीपके आदमियोके रहनेकेलिए बनाये गये है। खैर, बगीचे और उसके निवासियोका वर्णन फिर किसी दूसरे समयकेलिए। चक्रपाणि ब्रह्मचारी हमे अपने स्थानपर ले गये। उस घरमे उनकी दो कोठरियाँ, पूरब ओरका बराडा—जो उन कोठरियोके

लिए हॉलसा था और कोठरियोंके बीचका रास्ता, जिसके पूरवी छोरपर बागका मूल पूर्वद्वार था—यह सभी एक ही पक्की छतके नीचे थे। चक्रपाणि ब्रह्मचारी निराकार उपासी परमहंस नहीं थे वह साकार-साधक थे। उनके पास एक गाय सदा रहती थी, और उस वक्त एक अच्छी जातिकी सर्वकृष्णा गौ उनकी सेवाकी अधिकारिणी थी। गायको पानीसे बचानेकेलिए घर चाहिए, खिलानेके लिए भूसा और उसके रखनेका स्थान चाहिए—गोशालाका स्थान तो ब्रह्मचारीजीने मूल कुटीसे दक्खिन टिन गिराकर बना लिया था, और भुसागारका काम उनका पीछेवाला 'हॉल' देता था। कुटीकी पच्छिमी दीवार तथा कोठरियोंके सामने एक और टिनका ओसारा पड़ा था, जिसमें ब्रह्मचारी और उनके सहवासी विद्यार्थियोंके चूल्हे थे।

उनके साथ दो-चार दिन रहनेके बाद हमें मालूम हुआ, कि चक्रपाणिजीको अपने आसपास विद्यार्थियोंको रखनेका एक व्यसनसा है। वह धनी नहीं थे, हाँ, अपने खर्चेकेलिए उनको कोई कष्ट नहीं था, शहरमें उनके कई दायक थे। उस परिमित आमदनीमें भी यथाशक्ति वह विद्यार्थियोंकी सहायता करते थे। उनको यह भी लोभ नहीं था, कि विद्यार्थी उनकी गायकी सानी-पानी कर देंगे, उनके काममें सहायता कर देंगे। ज्यादासे ज्यादा यही स्वार्थ उनका कहा जा सकता था, कि लोग जानें कि ब्रह्मचारी चक्रपाणिके साथ पाँच विद्यार्थी रहते हैं। चक्रपाणि ब्रह्मचारीका जन्म कुरुक्षेत्रके पास किसी गाँवमें गौड़ ब्राह्मणकुलमें हुआ था। देशके नदियों और तालोंका पानी जैसा सिमिट-सिमिटकर समुद्रमें पहुँचता है, वैसे ही भारतके दूर और नजदीकके सभी प्रान्तोंके कोने-कोनेके गाँवोंसे ब्राह्मणोंके विद्याकाम लड़के बनारस पहुँचते हैं। यही काफी कारण था, बालक चक्रपाणिके भी बनारस पहुँचनेका। बनारसमें वह पढ़नेकेलिए आये थे, किन्तु बुद्धि उनकी तेज न थी, इसलिए उसमें वह अधिक प्रगति नहीं कर सके। व्याकरणमें लघुकौमुदीके कुछ पन्ने ही वह पढ़ पाये थे; हाँ, रुद्री, तथा शुक्ल यजुर्वेद-संहिताके कितने ही अध्याय उन्होंने स्वरसहित किसी वैदिकसे पढ़े थे। वैदिकोंकी यज्ञयागकी पुरानी प्रणाली, तथा शंकरकी सगुण पूजा-उपासनामें उनकी बड़ी श्रद्धा थी। शंकराचार्यको भी वह शिवावतार तथा वेदोद्धारकके तौर पूजते थे, न कि वेदान्तके संस्थापकके तौरपर। वेदान्तपर उन्हें मैंने कभी बात करते नहीं पाया किन्तु दण्डी स्वामियों तथा हमारे बागकी महान् विभूति ब्रह्मचारी संगनीरामको वह बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखते थे।

उनके समयका बहुत भाग कृष्णाकी सेवामें अर्पित होता था। सहवासी विद्यार्थियोंके कहनेके अनुसार कृष्णा राज्य भोग रही है, और चक्रपाणि ब्रह्मचारीसे पूर्व-

जन्मका ऋण उतरवा रही है। घास-भुस-कराईके अतिरिक्त रोज दो-तीन सेर अन्न उसे मिल जाता था। उसके बोतलसे चमकते सारे शरीरमे कही हड्डी दिखलाई नही पडती थी, रोये मालूम होते थे, भैरवजीके रेशमी काले गडोके बिना गुँथे छोर है। सबेरे उठते ही कृष्णाकी सानी-पानी तथा दूध दूहनेका काम खतमकर ब्रह्मचारी गगाजी (तुलसीघाट) स्नान करने चले जाते थे। वहाँसे लौटनेपर आसनपर बैठ, आँखोमे चश्मा लगा (उस वक्त उनकी आयु ४५से ऊपर थी) कुछ पाठ और पूजा करते—शायद नर्मदेश्वरकी दो-एक गोलियाँ उनकी पूजामे थी। फिर फूलझारी लिये उत्तरकी तरफके शिवालयमे शिवजीको फूल-बेलपत्र चढाते (बागमे बेलके काफी वृक्ष थे), और अन्तमे गोस्तोत्रके सस्वर पाठपूर्वक कृष्णाके शिरमे चन्दनकी टीका शिरपर फूल रखे जाते, फिर ब्रह्मचारीजी उसके अगले खुरपर शिर रखकर प्रणाम करते। नर्मदेश्वरकी आरती उतारते वक्त कृष्णाकी भी आरती उतारना आवश्यक था। कृष्णाकी इतनी सेवा, और इतनी भक्ति करते भी कभी खाने-पीने, खासकर दूध देनेमे हाथ-पैर चलानेपर ब्रह्मचारीको गुस्सा भी चढ आता था, और फिर वह, एक-दो डडे जड देनेसे भी बाज नही आते थे। मै ख्याल करता था—देवता भी यदि चौबीस घटा उनके साथ बस जाये, तो उनको भी इसी तरहके बर्तावका सामना करना पडेगा।

मोतीरामके बागमे आते ही हमारी जडैया न जाने कहाँ चली गई। चक्रपाणि ब्रह्मचारीका आतिथ्य पाँच-सात दिनसे ज्यादा हमने स्वीकार न किया होगा, कि पिताजीके घरसे आ जानेके कारण या यागेशकी प्रेरणासे हम स्वय घर चले गये, यह निश्चय करके कि लौटकर यही पढने आना होगा। लेकिन इस निश्चयमे यागेश माथ नही थे, क्योकि उन्हे वैराग्य और पढना दोनोका रोग न था। घरवालोको अब अपनी गलती मालूम हो गई थी, इसलिए हमारे सस्कृत पढनेमे बाधा डालना नही चाहते थे। बनारस पढनेसे ३ मीलपर बछवल पढना और सुरक्षित है, यह सोच उन्होने बछवल जाकर पढनेका परामर्श ही नही दिया, बल्कि चचा साहेब तीन-चार महीनेके खानेको आटा-दाल लिवाये मुझे एक दिन वहाँ पहुँचा भी आये। फूफा साहेबने जब आटा-दालकी बात सुनी, तो चचाको बहुत फटकारा—"यहाँ हमारे पास खानेकेलिए अन्न है, एक लडकेके और बढ जानेसे वह घटेगा नही।"

अक्तूबर (१९१० ई०)मे एक दिन शुभ मुहूर्तमे मिश्री-मेवाकी भेटके साथ-साथ सरस्वतीकी पूजा करके फूफाजीसे मैने लघुकौमुदी शुरू की। उस वक्त यह स्मरण आनेपर बडा अफसोस आता था, कि आठ वर्ष पहिले (१९०२ जुलाई) मैने यही सारस्वत शुरू किया था, काश वही क्रम जारी रहता तो आज मै कहाँ होता?

स्मरणशक्तिने अब भी मुझे जवाब नही दिया था, लेकिन मेहनत करनेसे जी चुरानेकी आदत भी उसके साथ थी। १६०२ ई० मे किसीने नही कहा था, कि याद करना दुर्गुण है, लेकिन बीचके वर्षोमे कितने ही प्रामाणिक मुखोमे 'रट्टूपीर'की निन्दा सुनी थी। उसका असर पडे बिना नही रह सकता, विशेषकर जब कि वह मेहनतसे बचनेका एक सम्मानपूर्ण रास्ता निकाल देता था। दूसरे लडके चिल्ला चिल्लाकर पचासो बार रटते हुए अपने पाठको याद करते थे, मै मनमें कुछ देर आवृत्ति करके उसे याद कर लेता था। इसमें समय कम लगता था, किन्तु मुझे सन्देह रहता था, कि चिल्लाकर रटनेसे स्मृति ज्यादा ठोस रहती है। लघुकौमुदीके साथ मैंने हितोपदेश भी शुरू कर दिया था।

बछवलमें रहते बाल्यकालके बछवलकी कुछ मधुर स्मृतियाँ याद आती थी। पहिली बार मै आया था बरसातमे मक्काकी फसलके समय। हम कई छोटे-छोटे बहिन-भाई मचानपर जाते, चिडियोसे मक्काके खेतकी रखवाली करने। शायद लडकियाँ ज्यादा थी, या उनका प्रभाव ज्यादा था। वह गाना शुरू करती 'सबके सिपहियनके लालि-लालि अँखिया, हमारि काहे कुचुरी ए दीदी बहिनी ?" (सबके सिपाहियो-पतियोकी लाल-लाल आँखें है, किन्तु हमारे (की) क्यो छोटी बदसूरतसी ?), मै और यागेश भी उसे दुहराते। हमे क्या मालूम था, कि यह लडकियो-स्त्रियोका गाना है, लडको-पुरुषोको उसे नही गाना चाहिए। बछवलसे लौटकर कनैला जाने-पर एक दिन अकेले मचानपर बैठे मैने तान लेना शुरू किया, और उसे विद्या बाबाने सुनकर मजाक करना शुरू किया—'कौन लडकी गीत गा रही है', तब मुझे अपनी गल्ती मालूम हुई। फिर एक बार गर्मीके दिनोमे—जिस साल (१६०७ ई०) नानी मरी थी—आया था, उस वक्त फूफाके पास आजसे ज्यादा विद्यार्थी थे। राम-स्वरूप एक हृष्ट-पुष्ट गोरा तरुण विद्यार्थी था, वह 'चन्द्रिका' पढता था। दोपहरके वक्त गरुड़पुराणकी साँची पन्नेवाली पोथीको सामने रख व्यासकी तरह पलथी मार वह मधुर स्वरसे आधे गीतके रागमे उसका पाठ करता, साथ ही अर्थ करता जाता, वह कितना अच्छा लगता! रामस्वरूप अब मर चुका था, इसलिए और अफसोस होता था। पहिलेके बहुतसे विद्यार्थी बछवल छोडकर या तो घर बैठ गये थे, या बनारस पढने चले गये थे। अतीतकी निशानी राजाराम अब भी वहाँ मौजूद थे, यह एक सन्तोषकी बात थी। पहिली बार जब मै आया था, तो फूफा और उनके छोटे भाई (यागेशके पिता सहदेव पाडे) एक साथ रहते थे, किन्तु अब दोनो अलग-अलग हो गये थे। आम तौरसे यह अलगाविलगी कडवाहट पैदा हो जानेके बाद

होती है, वही बात इन दोनो घरोमे भी थी, किन्तु, मेरा दोनों घरोसे एकसा स्नेह-सम्बन्ध था। एक घरमे मेरी अपनी बुआ बरता थी, जो मुझपर बडा स्नेह रखती थी—जिनके परिमार्जित तथा सस्कृत वार्तालाप, व्यवहारको मै अपने अभिमानकी बात समझता था, दूसरे घरमे यागेश जैसा मेरा अनन्य बालमित्र। दोनो घरोमे आपसका चाहे कैसा ही सम्बन्ध हो, किन्तु मैने उनमे कभी भेद नही किया। यागेशके प्रेमके कारण उनकी माँ भी मुझे वैसा ही मानती थी। उनके बारेमे मालूम हुआ, जब यागेश मेरे साथ मारे-मारे फिर रहे थे, तो उस वक्त उनके घर हर भिखमगेको दूनी-तिगुनी भीख मिला करती थी, इसलिए कि उनकी माँको उसी तरह किसीके द्वारपर जाते अपने ज्येष्ठ पुत्रकी सूरत दिखलाई देने लगती थी।

बछवलमे मैने दो-ढाई महीने निश्चिन्त पढने पाया होगा, कि फिर दिमागमे खुराफात शुरू हुई। प्रयागमे बडे धूमधामसे प्रदर्शनी हो रही थी। गवर्नमेंट उसपर खूब पैसे खर्च कर रही थी। सलाह हुई प्रदर्शनी देखी जाये। पैसेकी कमी?—पैदल?—शालिग्रामको भूनकर खजानेवालेकेलिए बैगन भुननेमे हिचकिचाहट? यागेश, मै, फूफाके एक विद्यार्थी विश्वनाथ और शायद चौथा भी कोई। सलाह हुई—सब कनैलासे अमुक दिन सबेरे परमहस बाबाकी कुटीपर आओ। यागेश वही मिले। फिर साथ खड्गपुरमे विश्वनाथको लिवाते पैदल ही चल पडे। योजनामे कोई बाधा नही हुई। कुहरा पड रहा था, जब कि कुछ देरकी प्रतीक्षाके बाद यागेश परमहस बाबाकी कुटीपर मिले। विश्वनाथ घरके खाते-पीते आदमी थे, किन्तु सिर्फ यजमानीके भरोसे, उनके घर खेतीका काम नही होता था, इसलिए वह शरीरसे बहुत कमजोर थे, यद्यपि आयुमे हम दोनोसे बडे। भाला होते हुए हम औढियार, फिर रेलकी सडक पकडे सारनाथ पहुँचे। अब तक सारनाथकी धमाखको दूरसे ही देख 'लोरिक कुदान' मुँहसे निकालकर हम सन्तोष कर चुके थे। अबकी हम धमाख देखने गये। उस वक्त पीला कपडा पहिने कुछ बर्मी भिक्षु भक्तिभावसे प्रणाम कर रहे थे। उनमेसे एक वृद्धने हमारी ओर देख हाथसे आँखोकी ओर इशारा करके कहा—'चक्खु', 'चक्खु', मै भला क्या अर्थ समझता। हाँ, उस बार यह मालूम हुआ, कि 'धमाख' 'लोरिक-कुदान' ही नही है, वल्कि दूरदेशके लोगोका तीर्थस्थान भी है। अभी सारनाथका जादूघर नही बना था, खुदाईमे निकली मूर्तियाँ जैनमन्दिरके पीछेवाले चारदीवारीके घिरावेमे रखी हुई थी। वहाँ एक काले रगके आदमी थे, पूछनेपर उन्होने अपनेको सिंहाली बतलाया। उन्होने बुद्धकी मूर्तियोंको दिखलाया। एक ठोस मन्दिर-प्रतीकके चारो ओर नगी मूर्तियोके बारेमे पूछनेपर उन्होने हँसकर कहा—

जैनमूर्ति है। पुरातत्वकी वस्तुओं और मूर्तिकलासे यह पहिला साक्षात्कार था। मैंने समझा, सिंहलके सभी लोग उन्हींकी तरह हिन्दी जानते होंगे। शायद वह कलकत्तामें रहते थे।

बनारसमें बिना ठहरे ही हम गंगापार चले गये, रामगढके रास्ते या राजघाटके, सो याद नहीं। चुनारमें हम सूर्यास्तके बाद पहुँचे, इसलिए किलेके भीतर भर्तृहरिकी समाधिके दर्शनकी बड़ी उत्सुकता रखते भी वैसा नहीं कर सके। जाना था प्रयाग, किन्तु हम चुनार-मिर्ज़ापुर-विन्ध्याचलका चक्कर क्यों काट रहे थे? —मटरगस्ती और क्या? हम प्रयाग पहुँचे। प्रदर्शनी देखी। कुश्ती और हवाई जहाज़पर चढ़ाकर घुमाना—ये दो आकर्षक चीज़ें थीं, किन्तु उनकेलिए हमारे पास पैसे न थे। प्रयागसे हम लोग अलग-अलग हो गये, या साथ लौटे, यह याद नहीं। यह भी नहीं कह सकता, कि बछवलकी पढ़ाई समाप्त कर मैंने किस वक्त प्रस्थान किया।

मार्च (१९११ ई०)में मैं निश्चित रूपसे बनारसमें था। उसी वक्त एक और दीर्घ-यात्राका प्रयत्न किया गया। पन्दहामें किसीसे सुन रखा था, कि वह पैदल ही वहाँसे कलकत्ता गया था। मुझे भी उसके तजर्बेसे फायदा उठानेका ख्याल आया। अस्सीपर जगन्नाथमन्दिरमें पंडित मुखराम पांडे—फूफाजीके पुराने विद्यार्थी—रहते थे, मैं उन्हींके पास पढ़ने जाया करता था, वैसे रहता था चक्रपाणि ब्रह्मचारीके ही पास। जगन्नाथजीके पुजारी मुखराम पंडितके जन्मस्थान बीरपुर और कनैलाके बीचके एक गाँवके रहनेवाले थे। उनके भाई दशरथ लघुकौमुदीके विद्यार्थी तथा मेरे समवयस्क थे। हम दोनोंकी सलाह हुई—अबके पैदल कलकत्ता देखना चाहिए। एक दिन हम दोनों ग़ायब हो गये। राजघाट-मुगलसराय होते पुरानी बादशाही (शेरशाहवाली) सड़क पकडे चले। चँदौलीमें शाम हो गई। हम लोग कहाँ ठहरे यह याद नहीं। दिनमें पासके खेतोंके मटर-चनेकी फलियोंसे काम चल गया। कर्मनाशाकी धारको हमने बड़े आश्चर्यसे देखा, क्योंकि सोलह आना नहीं तो दस-बारह आना हमें ज़रूर विश्वास था, उसके पानीके छूनेसे कर्म (पुण्य)के नाश हो जानेका। दुर्गावतीमें हम सवेरे दस बजे पहुँचे थे, दशरथ मुझसे कुछ पीछे आये। भूख-प्यास तो जो थी सो थी ही, हम लोगोंके पैरोंके तलवे कट गये (हम नंगे पैर थे) और दशरथका पैर फूल गया था। बड़े दीन-वदनसे दशरथने कहा—अब लौट चलना चाहिए। हम लौटकर फिर बनारस पहुँच गये।

# ५

# बनारसमें पढ़ाई (१)

मोतीरामका बाग प्राचीन नही तो मध्यकालीन मुनि-आश्रमसा था। इस आश्रम-की कुटियाँ बागको चारो ओरसे घेरनेवाली चहारदीवारीसे सटकर बनी थी, और एकको छोड सभी आकार-प्रकारमे घरोदे जैसी थी। ब्रह्मचारीके उत्तर चार ही पाँच हाथके फासिलेपर एक दडी स्वामीकी कुटी थी, जिनके भतीजे बनमाली मेरे समवयस्क दोस्तोमे थे। उनसे और उत्तर ब्रह्मचारी जगन्नाथ पजाबी थे, जिन्हे जिन्दगी भर हिन्दी बोलने न आई और बराबर मतलबको मतबल और चाकूको काचू कहते रहे। उन्हे भी गाय पालनेका शौक था, किन्तु चक्रपाणि ब्रह्मचारी—जिनसे उनकी कभी-कभी कहा-सुनी हो जाती थी—का कहना था, कि वह सब मेरी ईर्ष्यासे करते है। जगन्नाथ ब्रह्मचारी क्रोधमे दूर्वासाके द्वितीय अवतार थे। उनके आगेसे चहारदीवारी पच्छिम ओर मुडती थी, और आधी दूरसे आगे जाकर पक्का कुँआ और शिवालय मिलता था। इसीके पास सहारनपुरके रहनेवाले एक महात्मा रहते थे, बुढापेने उनकी कमरको टेढी कर दिया था, और वह अनन्त काशीवासकी प्रतीक्षामे थे। उनकी कुटियासे पश्चिम चहारदीवारीके साथ खाली जमीनमे जानेकी जरूरत नही, वहाँसे दक्खिन घूमनेपर हम बगीचेके केन्द्रमे पहुँचते थे, जहाँ बडे-बडे वृक्षोकी छायामे ऊँचे पक्के चबूतरेपर टीनकी छत थी। गर्मियोमे वहाँ बैठनेमे बडा आनन्द आता था। वहाँसे पश्चिम चन्द ही कदमपर उत्तरमुँहकी एक छोटी कुटिया थी, जिसमें एक अत्यन्त वृद्ध सन्यासी रहते थे, जिनके सौ वर्षसे अधिकके होनेमे मुझे कभी सन्देह नही हुआ। अक्सर कई-कई दिन तक उनको पाखाना नही होता था, और उसकेलिए पिचकारी लगानेकी जरूरत पडती। वह चल फिर नही सकते थे। सभी इन्द्रियोने—मनके साथ—जवाब दे दिया था। इस कुटीसे थोडा ही आगे पच्छिमके घरोकी पाँती शुरू होती थी, और यह थी छत्रोंकी पाँती। पहिला छत्र था गाजीपुरके किसी मारवाडी सेठका। उसमे कुछ भोजन भी वितरण होता था, किन्तु उससे ज्यादा इसका नाम अपने अपक्व अन्नके वितरणके कारण था। बनारसके आसपास बहुत दूरतक सरयूपारी ब्राह्मण ही रहते है, इसलिए वहाँके पडितो और विद्यार्थियोमे उनकी सख्याका अधिक होना स्वाभाविक है। कनौजियोकी तरह सरयूपारी भी 'आठ कनौजिया नौ चूल्हा'के माननेवाले है।

बनारसमे पक्व अन्न देनेवालोंकी अपेक्षा अपक्व (सूखा) अन्न देनेवाले छत्रोकी संख्या कम है, इसलिए भी इस छत्रका महत्त्व ज्यादा था। किन्तु इससे भी बढकर इसकी ख्याति बनारसमे अपने दानपात्र विद्यार्थियोकी योग्यताके कारण थी। वहाँ परीक्षाके बाद चुनकर विद्यार्थी स्वीकार किये जाते थे। उन्हे महीनेके खर्चकेलिए गेहूँ, दाल, तथा नमक, दियासलाई, ईंधन आदिका दाम दिया जाता था। इस छत्रके बाद पटियालाके एक ब्राह्मण रविदत्त पडितका छत्र था। इनके पिता अच्छे पडित थे, पजाबमे उनके गृहस्थ शिष्योंकी काफी सख्या थी, और उन्हीकी सहायतासे यह रोटी-छत्र चलता था, जिसमे उस तरफके कुछ विद्यार्थी भोजन करते थे। उसके दक्खिन दक्खिनवाले दर्वाजेके पास सन्यासी-ब्रह्मचारियोका एक रोटी-छत्र था, जिसमे एक-दो विद्यार्थी भी रहते थे। चहारदीवारीके साथ पूर्वमुख घूमनेपर कुछ कदमोपर ऊँची कुर्सीपर एक अच्छी ऊँची पक्की बारादरी थी, जिसके दोनो सिरोपर दो हवादार कोठरियाँ, तथा सामने काफी चौडा पक्का चबूतरा था। आरम्भमे बागके साथ ही यह इमारत बनी थी, शायद कूएँके पासवाला शिवालय भी उसी वक्तका हो, किन्तु बाकी कुटियाँ तो जरूर पीछे की थी। बागमे कुछ बेल-आमके बडे दरख्तोके अतिरिक्त कागजी नीबूके दरख्त ही ज्यादा थे, और सालमे उनसे कुछ आमदनी हो जाती थी।

हॉ, तो जिस बारादरीके पास जाकर हम रुक गये, उसका उस समयकी काशीमे बडा महत्त्व था। उसीमे ब्रह्मचारी भगनीराम रहते थे। पतला गोरा शरीर, छोटी चुटिया, केश-श्मश्रू श्वेत, कमरसे घुटने तक एक गेरुआ अँगोछेका आवरण, शायद देहमे एक श्वेत जनेऊ—यही थी भगनीराम ब्रह्मचारीकी मूर्ति। इस वेषमे जो कुछ दिखावा हो, बस इतना ही उनमे दिखावा था, नही तो उनमे कृत्रिमता छू नही गई थी। न उन्हे धर्मोपदेशका मर्ज, न योग-ध्यान चर्चाका व्यसन, न वेदान्त-उपनिषद्-की सनक, न पूजा-पाठकी आसक्ति थी। या तो वह उसी चौतरेपर टहला करते, या कोठरीमे बैठे पुस्तक देखते। आम दर्शकोकी भीड़ वहाँ नही लगती थी, किन्तु कभी-कभी कोई-कोई गम्भीर जिज्ञासु वहाँ पहुँच जाते। प्रणाम करनेपर, स्वाभाविक हासकी रेखा मुखपर लाकर वह 'नारायण' कह दिया करते। बहुत ही कम बोलते, किन्तु मौनी नही थे। लोग उन्हे बहुत कम दिक करते। उनके आसपास कोई साधक या परिचारक नही रहते। उनको बवासीरका रोग था। जौकी रोटी, मूँगकी दाल खाते थे, जिसे रोज एक पजाबिन बुढिया बनाकर पहुँचा जाती। आषाढ-पूर्णिमा (गुरुपूर्णिमा)के दिन उनके यहाँ ज्यादा भीड रहती। जिनकी पूजाकेलिए उस दिन खुद शिष्योकी भीड रहा करती, वैसे दिग्गज शिवकुमार शास्त्री जैसे पडित भी उस दिन

फल-फूल-लिये वहाँ मगनीराम ब्रह्मचारीकी पूजा तथा परिक्रमा करते आपको मिलते, यदि आप उस समय वहाँ रहते तो। मगनीराम ब्रह्मचारीके प्रति श्रद्धा जिन व्यक्तियोके हृदयमे थी, वह साधारण राह चलते आदमी नही थे। भास्करानन्द और तैलग स्वामीके पीछे मरनेवाले वहाँ नही पहुँच पाते थे। वह निराकांक्ष थे, प्रदर्शन-शून्य थे। मगनीराम ब्रह्मचारी विद्वान् थे, वेदान्त और उपनिषद्के खास तौरसे; किन्तु उनकी विद्या 'विवादाय' क्या होती, उसकी ख्याति तो हृदयसे हृदय तक ही पहुँचकर रह जाती थी। उनके विद्याध्ययनके बारेमे कहा जाता था, कि सूखी पत्तियोंकी क्षणिक प्राप्त रोशनीके सहारे उन्होने पाठ याद किये थे। मै बराबर ही उधरसे गुजरता था, और नजर पडनेपर प्रणाम करता, उत्तरमे 'नारायण' सुननेको मिलता। पढने-वाले विद्यार्थियोंमे मेरी भी ख्याति थी, इसलिए मुझसे तो नही, किन्तु चक्रपाणि ब्रह्मचारीसे मेरे बारेमे वह कभी-कभी पूछ लिया करते थे।

मगनीराम ब्रह्मचारीकी कुटियाके आगे फिर कोने ही पर पूरबवाली चहार-दीवारीके साथ एक कुटिया थी।

यह था मोतीरामका बाग, जो किसी पजाबी ब्राह्मण मोतीरामकी सम्पत्ति थी, किन्तु उस वक्त किसी दूसरेके हाथमे चला गया था।

मोतीरामके बगीचेके आश्रमवासियोका जिक्र मै कर चुका। इनके अतिरिक्त वहाँ कुछ विद्यार्थी भी रहते थे, जिनको दो वर्ष बाद भी पाया जाना मुश्किल था। हमारे गिरोहमे अर्थात् चक्रपाणि ब्रह्मचारीके साथ रहनेवालोमे सीतापुर जिले (?) के वशीधर थे। बहुत सीधे और हँसमुख, यदि ओठोको सी भी दिया जाता, तो हँसी फाड़कर निकल आती। कोई समय था, जब व्याकरण आरम्भ करते वक्त विद्यार्थी सारस्वतसे शुरू करता, पूर्वार्ध समाप्त हो जानेपर सिद्धान्तचद्रिकासे कुछ गम्भीर कदम आगेको बढ़ाता। लेकिन इस प्रक्रियामे दोष यह था, कि विद्यार्थीको तीन तरहके सूत्रोंको कठस्थ करना पडता, जो कि 'रटन्त विद्या घोषन्त पानी' के जमानेमें निर्दोष भले ही रहा हो, लेकिन अब जब कि 'रटन्त'मे यावच्छक्य मितव्यता दिखलाने हीमे बहादुरी समझी जाती थी, प्रादेशिक व्याकरणोकी जगह सर्वत्र-प्रचलित पाणिनीय व्याकरण परीक्षा और व्यवहार दोनोकी दृष्टिसे अधिक उपयोगी था। ऐसे समय सारस्वत-चन्द्रिकाके रास्ते कौन जाना चाहेगा? वशीधर चन्द्रिका समाप्त कर रहे थे। खाने-पीनेका काम तो छत्र-वत्रसे चल जाता था, किन्तु ऊपरसे भी कुछ पैसोकी जरूरत होती, जिसकेलिए अबके उन्होने भागवतपुराणकी पोथी खरीदी थी—बाहर

जायँगे, कही कभी कथा लग गई, तो बीस-पचीस नकद तो मिल ही जावेंगे, इसी भावनासे प्रेरित होकर।

कुछ समय बाद उनके मातुलपुत्र अर्जुन भी आ गये। लम्बा-धडगा शरीर, उम्र तेईस-चौबीस, अक्षरसे भेट नही। लोग कह रहे थे 'बूढा तोता क्या रामराम कहेगा', किन्तु चक्रपाणि ब्रह्मचारीने रख लिया। बेचारेकी स्मरणशक्ति भी बहुत क्षीण थी, इसलिए बहुत प्रगति नही कर सके। एक दिन हँसीमे हम दोनो एक दूसरेके हाथ पकड रहे थे, उसी वक्त मेरा दाहिना पैर कुछ बेकाबू पड गया, अपने और अर्जुनके बलको लिये मैं उसीपर गिर पडा। कुछ आवाज हुई, और घुटनेसे पैर 'टूट गया'। ब्रह्मचारीको रामनगरका एक मल्लाह मालूम था, जो हड्डी बैठानेमे काफी ख्याति रखता था, चक्रपाणि खास तौरसे गुणग्राही थे। नावपर मुझे वहाँ ले जाया गया। सयोगसे वह घाटपर ही मिला। हाथसे पकड उसने झटका दिया, 'तड'से आवाज हुई। कहा—जाओ ठीक हो गया। और सचमुच ही ठीक हो गया, यद्यपि ब्रह्मचारी और दूसरोके अनुसार मैं वहाँसे अपने पैरो 'दौडा' क्या चल-कर भी नही आ सका। उस खेलकी निशानी अब भी मेरे दाहिने पैरके घुटनेमें एक चलती-फिरती कौडी है, जो कभी बैठते वक्त सिमटनेवाले चमडेके बीचमे आ जाने पर तकलीफ देती है।

वनमाली मेरे पहुँचनेसे पहिलेसे वहाँ रहते थे, और मेरे चले आनेके बाद भी कुछ महीनो तक रहे। वह भी लघुकौमुदी पढते थे, किन्तु उसे हम दोनो एक गुरुके यहाँ नही पढते थे। हाँ, वेदका स्वर अध्ययन हमने साथ ही एक गुजराती वैदिक ब्रह्मचारीसे आरम्भ किया था, जो कि अस्सी नालेके पार एक बगियामे शीतलदासके अखाडेके उसपार रहते थे। एक समय हाथ उठा-उठाकर एक स्वरसे "हरिहि ओ-ो-ो-म्-मा। गणा-ा-ना-ा त्वा-ा" पढनेमें कम मनोरजन नही होता था, यद्यपि उस समय—हम यजुर्वेदकी पवित्र ऋचाओका पाठ कर रहे थे, इससे ज्यादा ज्ञान नही रखते थे।

व्याकरण पढने मैं पडित मुखराम पाडेके पास जाता था, जो पहिले जगन्नाथ-मन्दिर और पीछे 'पुष्कर'के किनारे छोटे गूदर (मठ)के छतकी कोनेवाली अकेली कोठरीमे रहते थे। पडित मुखरामजी फूफा साहेबके योग्य विद्यार्थियोंमे थे, और उनके सम्बन्धके कारण वह मुझे साधारण विद्यार्थीसे अधिक मानते थे। यद्यपि सरयूपारी ब्राह्मणोमे दूसरे ब्राह्मणका भी छूआ खाना जाति-नियमके विरुद्ध समझा जाता है, लेकिन मैं उन नियमोकी पहिले हीसे अवहेलना कर चुका था, अब फर्क इतना ही

था, कि उन्हे खुल्लमखुल्ला तिरस्कृत कर रहा था। पढनेमे कितना जोर लगा रहा हूँ, यह तो मै ही जानता था, किन्तु दूसरे सभी लोग मुझे अच्छा विद्यार्थी समझते थे—हितोपदेश आदिके अर्थ लगानेमे मै भी अपने समकक्ष विद्यार्थियोसे अपनेको आगे पाता था जरूर। खैर, इस सार्वजनिक राय का चक्रपाणि ब्रह्मचारीपर बहुत अच्छा असर हुआ था, और वह मेरी शारीरिक आवश्यकताओपर बहुत ध्यान रखते थे। रसोई मेरी उन्हीके साथ बनती थी। उनकी कृष्णाका दूध वैसे भी गाढा होता था, ऊपरसे औटाये दूधमे आधा छटॉक घी डालना वह न भूलते थे। मुझे वैसा दूध बिलकुल पसन्द न था, किन्तु करता क्या स्नेहका बलात्कार सहना पडता। मोतीरामके बगीचेके निवासियोको महीनेमे दस दिन तो कमसे कम निमन्त्रणमे जाना ही पडता था, और मेरा तो आधा-आधा था, मै वेदपाठी जो था, पक्तिमे परोसते वक्त वेदपाठका ब्राह्मणोमे बडा महत्त्व समझा जाता था। निमन्त्रणका मतलब साधारण दाल-रोटीका भोजन नही पक्वान्न—पूरी, खीर, हलवा यह तो मामूली भोजमे होता, नही तो पूआ, लड्डू, जलेबी आदि कई तरहकी मिठाइयॉ, दही, रायता और क्या-क्या तरकारियॉ, और कितनी ही जगह तो दूधको भी केसरसे पीला रगकर दिया जाता था। कितनी ही बार भोज हमारे बगीचे हीमे होता था। यदि कभी सम्मिलित निमन्त्रणमे जाना हो, तो पडित रविदत्तका भाजा उस दिन ठढाईके साथ पिसी भाँग जबर्दस्ती पिला जाता, जिसका मतलब था, उस दिन शाम और रात की पढाई भी खतम। इसमे शक नही, मोतीराम-बगीचेके विद्यार्थियो—जिनकी सख्या एक दर्जनसे ज्यादा न थी—को जितना खाने-रहनेका सुभीता था, उसके अनुसार पढाईमे वह तत्परता नही दिखलाते थे।

गर्मीके महीनोमे आम तौरसे बिहार-युक्तप्रान्तके विद्यार्थी अपने घर चले जाते और फिर आषाढ-पूर्णिमाके आसपास लौटकर आते। बनारसकी गर्मीसे गॉवकी गर्मी कुछ कम भी रहती है, दूसरे गर्मीके मारे पढाई अच्छी नही होती, और परीक्षा दिये हुए विद्यार्थियोंकी पढाई परीक्षाफलकी प्रतीक्षामे रुकी रहती थी। पडित मुखरामजी भी घर चले गये थे, किन्तु मै तो बनारसमे सिर्फ विद्या पढनेकेलिए नही रहता था, बल्कि उसमे गृहसे विरक्तिका भी अश काम कर रहा था। मोतीरामके बागके तीन-चार मासके वास, तथा यजुर्वेद और शिवभक्तोके ससर्गमे आकर मेरे दिलमे एक और खब्त सवार हुआ, वह था वैष्णव-मतविरोधी शिवभक्ति। ३२ मणियोका बडा रुद्राक्षका कठा गलेमे रहता, और शिरका भस्म त्रिपुड रातको ही सो जानेपर मिटता। रुद्राष्टाध्यायीके बहुतसे अध्याय तथा महिम्नस्तोत्र पारायण करते ही

करते याद हो गये थे। हर सोमवारको नियमसे विश्वनाथका दर्शन करने जाता। गर्मियोमे चक्रपाणि ब्रह्मचारी नियमसे मगलकी शामको दुर्गाजीके सामनेके कूयेपर पानी पिलाने जाते, लेकिन न जाने नजदीक होनेसे या क्यो, वहाँ मै बहुत कम दर्शन करने गया। बनारसमें वैष्णव (रामानुजीय, निम्बार्कीय, आदि) शायद ही कभी दिखलाई पडते है, किन्तु पिताजीके गलेमे ठगकर अयोध्याके वैरागीके हाथकी बँधी कठीको देखकर मुझे कुछ गुस्सासा आ गया था, नही तो कारण नही मालूम होता, क्यो वैष्णवोके खिलाफ पुरानी गाली-गलोजकी पुस्तकोंको खोजता फिरा—'चक्राकित मतनिरूपण' तथा दो-एक और इस तरहके खडन-मडनके ग्रथोंको मैने बडे प्रयत्नसे खोज निकाला था। मेरे बार-बारके कहनेसे पिताजीको अपनी कठीतोडकर फेकनी पड़ी।

सब मिलाकर देखनेसे मै अपने समयका उपयोग कर लेता था, यद्यपि उससे सन्तुष्ट नही था। गर्मी थी, बनारसकी। दोपहर तो किसी तरह काट लेता, शामको चार बजते ही गगाकिनारे दौडता। और फिर दो घटा गगामे तैरना और खेलना। कभी तैरकर उस पार नही गया, किन्तु वह किसी साथीके अभावके कारण, नही तो अस्सीपर आधी धारसे आगे तो रोज ही मै पहुँच जाता था।

गर्मियोमे रघुवश, बाल्मीकीय रामायण तथा दूसरे सरल काव्यग्रथ बहुत मन लगाकर पढे, इसका परिणाम यह हुआ कि सस्कृत भाषा का पढना अब मुझे अँधेरी कोठरीमे टटोलनासा नही था। एक दिन कूयेपरवाले बाबाने सत्यनारायणकी कथा मुझसे करवाई—इस कथाका वहाँके समाजमे उतना मान न था—मै साथ-साथ अर्थ कहता गया, लोगोने बडी तारीफ की। साथी विद्यार्थी मडलीको तारीफ करना ही था, क्योकि खेलका खेल और मुफ्तका प्रसाद।

आषाढ आ जानेपर फिर विद्यार्थी लोग जुटने लगे। मुखराम पडित भी आ गये। उनकी राय हुई, कलकत्ताकी व्याकरण प्रथमा परीक्षा दे देनेकी, मैंने भी स्वीकार किया। उनको अन्नवृत्ति मोतीराम-बगीचेके उसी प्रसिद्ध अन्नछत्रसे मिलती थी। छत्रके निरीक्षक एक दिन नये छात्रोकी भरतीके लिए आये थे। बहुतसे छात्र उम्मीदवार थे, मै भी गया, अक्षर देखा, कुछ प्रश्न पूछे, इसके बाद मेरा नाम वृत्ति पानेवालोमे दर्ज कर लिया गया। चक्रपाणि ब्रह्मचारी और निमन्त्रणोकी कृपासे मुझे उसकी उतनी ज़रूरत भी न थी, किन्तु घर आई लक्ष्मीको कौन लौटावे ?

बनारसमे रहते वक्त मैने बरैलीमे मिले स्वामी पूर्णानन्दको भी ढूँढ निकाला। दत्तात्रेय-पादुकाका मिलना मुश्किल न था, किन्तु पूर्णानन्दजी उस वक्त वहाँ न थे। उनके

गुरुको देखा। बड़ी-बडी जटाये, नगे मादरजाद धुनीके पास बैठे गाँजे-सुल्फेकी चिलम-पर चिलम उड़ाये जा रहे थे। उनके चारों ओर 'जीमहाराजियो'की पलटन बैठी हुई थी। एक दिन कह रहे थे—"आज गया था विश्वनाथका दर्शन करने। पडेने कहा—बाबा कुछ चढाते नही। इन्द्रियमेंसे निकालकर एक चवन्नी गिरा दी। पडा लालपीली आँखे करने लगा। मैंने कहा—'अबे आँखके अन्धे, यही है विश्वनाथ'। दूसरे पडेने उसे डाँटा—"चीन्हते नही किस महापुरुषसे बात करते हो ?"

मडली बोल उठी—"दयालू ! सबको आँख थोडेही मिलती है....।"

वर्षा शुरू होनेसे पूर्व ही स्वामी पूर्णानन्दजी आ गये। उनके गुरुके प्रति तो मेरी श्रद्धा नही जगी थी, किन्तु कुछ नेपालके जन्म होने तथा कुछ उनकी शान्त प्रकृतिके कारण पूर्णानन्दजीसे मुझसे ज्यादा रब्त-जब्त रहा, उसमे सहायक हो गया था मेरा मन्त्र-तन्त्रकी ओर नया उत्पन्न हुआ आकर्षण। मुझे लोगोंने बतलाया था, कि नेपालकी तरफ अच्छे-अच्छे मन्त्रवेत्ता रहते हैं। मै पूर्णानन्दजीके पास उसी मन्त्र-तन्त्रकी खोजमे बार-बार जाता। वह भी धीरे-धीरे मेरी श्रद्धाको उस ओर अधिक बढाते ही जाते थे। 'जिन खोजाँ तिन पाइयाँ'के अनुसार क्रमश लिखित, मुद्रित तन्त्रो और पटलोकी काफी सख्या मुझे मिली। खैर, और जो हुआ सो तो कहने ही जा रहा हूँ, इन तन्त्रोमे मनके एकान्त-रत होनेसे सस्कृत भाषाका ज्ञान स्वय बढता जा रहा था—यह तो नकद लाभ था। एक पुस्तकसे रसायन—ताँबेका सोना बनाना—की अच्छी विधि देखकर मैंने उसका प्रयोग करना चाहा। हडताल, सोना-मक्खी और क्या-क्या चीजे बगाली टोलाकी किसी दूकानसे खरीदी। बनारससे बछवलको अधिक एकान्त और अनुकूल समझा—और वहाँ मेरे अनुमोदक, समर्थक यागेश भी थे, जो हर बातमे 'हाँ, भैया ठीक तो है' कहनेकेलिए तैयार थे। मन-सवा-मन कडेमे रसायनको फूँका गया, लेकिन ताँबेका सोना कहाँ बननेवाला था। लेकिन 'एक तावकी कसर'परे श्रद्धा टूट थोडे ही सकती थी।

बनारस लौटनेपर फिर पढाईके साथ-साथ वह खब्त जारी रहा। स्वामी पूर्णानन्दने 'अनगरग' नामक एक गोर्खा (नेपाली) भाषाकी हस्तलिखित पुस्तक दी, थी तो कामशास्त्रकी पुस्तक (लोदी शासनकालमे सस्कृत भाषामे लिखे ग्रथका अनु-वाद) किन्तु उसमे जडी-बूटियाँ भी कितनी ही दी हुई थी। मैंने उतारते वक्त गोर्खाभाषामे न लिख, हिन्दीमे लिख डाला, यह मेरा अनुवादका पहिला प्रयत्न था। उस पुस्तकमे उल्लिखित सुगन्धित तेलको मैंने तिलके तेलमे अपेक्षित सामग्री डाल बोतलमे बन्दकर धूपमे कई दिनो तक रखकर बनाया, मगर कुछ भी सफलता न हुई,

यह तो नही कह सकता, किन्तु, इतना जरूर था, कि उससे अधिक अच्छा तैल आधे ही दाममे बाजारसे मिल सकता था।

मन्त्र-तन्त्रके फिराकमे है, यही नही वल्कि खुद उसके विशेषज्ञ है, इस तरहकी मेरी ख्याति धीरे-धीरे हमारी परिमित विद्यार्थी-मडलीमे बढी। एक बडे ज्योतिषीके यहाँ उनका स्वदेशी विद्यार्थी रहता था, उसको मेरी मन्त्रशक्तिको अनुभव करनेका अवसर मिला। बेचारेने दक्षिणाके एक-एक दो-दो पैसे जमा करके भागवतकी पोथी खरीदी थी। अभी दो-तीन दिन भी चौकसे लाये नही हुए थे, कि किसीने उसे झटक लिया। वहुत चिन्तातुर मेरे पास आकर गिड़गिड़ाने लगा। मैंने वडी गम्भीर मुख-मुद्राके साथ कहा—'घबरानेकी क्या वात है। पुस्तक हज्म हो जायेगी, यह हो नही सकता। आप जाइए लोलार्क कुडपरकी देवीके चबूतरेकी एक ईंट उलट दीजिए, और इस मन्त्रका सवालाख जप कीजिए। लेकिन पहिले पास-पडोसके रहनेवालोको जतला दीजिए, कि आप भयकर पुरश्चरण करने जा रहे है। देवीकी ईटको उलटना और इस अमोघ मन्त्रका जाप ठट्ठा नही है। यदि नौसिखिये चोरको अकल होगी तो सँभल जायेगा। हॉ, आप अपनी कोठरीमें ताला विना लगाये, कभी-कभी बाहर-भीतर चले जाइयेगा।'

विद्यार्थीने मेरे कहे अनुसार किया। शामको बडे प्रसन्न वदन दौड़ा हुआ मेरे पास आया, और टोकरेके टोकरे धन्यवाद देने लगा—"आपकी कृपासे, वस आपकी कृपासे, नही तो पुस्तक मिलनेवाली न थी? मै कोठरीमे विना ताला लगाये वाहर गया था, शामको लौटकर देखा पुस्तक किवाड़के भीतर रखी पडी है। मै जाप भी शुरू नही कर पाया था। ईंट उलटनेने ही गजब ढा दिया। अब नाम लेनेसे क्या मतलव? जिसने पुस्तक हज्म करनी चाही थी, उसका भी पता लग गया। बच्चूको दो ही दस्त तो आये, और फिर मेरी पोथीको कौन घरमे रखता। मै आपका सदा कृतज्ञ रहूँगा। मन्त्रवल इसे कहते है!..."

उक्त विद्यार्थीका पढने-लिखनेसे वहुत कम ही सरोकार रहता था। छत्रों और निमन्त्रणोसे भोजन करना, और फिर इधर-उधर मुसाहिबी करना तथा गप्पे मारना। ऐसे आदमी द्वारा मेरा नाम दूर तक—उच्च-मध्यम हल्केमे नही निम्नमे ही सही—फैलनेकी सम्भावना थी, जिससे मै सवसे डरता था। मैने उसे वहुत समझाया और कुछ धमकाया भी, तव वह अपनी जवानपर कुछ सयम कर सका। एक दिन वह वड़ी नम्रतासे मुझसे कह रहा था—"मै आपके मन्त्रकी वात किसीसे नही कहता।....हमारे ज्योतिषीजी—जानते ही है, वह मेरे ऊपर कितनी कृपा रखते है।

....उनकी बहिन बेचारी निस्सन्तान है। बहुतसे अनुष्ठान हुए, दवा-दारू भी की गई, किन्तु उनका वन्ध्यात्व गया नही। पति-पत्नी सिर्फ दो व्यक्ति है। उनकी बडी लालसा है, कि आप कुछ उनकेलिए अनुष्ठान बतलावे।"

"तो आपने उनके पास तक बात पहुँचा ही दी ?"

"आप नाराज मत हो, मैने अपने ओठोको सी दिया है; किसीसे जिक्र तक नही करता, किन्तु ज्योतिषीजीके परिवारका और मेरा सम्बन्ध आप जानते है। और फिर आपके समझानेसे पहिले जो बात मुँहसे निकल चुकी थी, उसे कैसे वापस करता ?"

मेरे दोस्तका तकाजा बढता ही गया—वह आपसे खुद बात करना चाहती है, अनुष्ठानमे जो खर्च लगे, उसे देनेकेलिए तैयार है। मैने तन्त्रकी पुस्तकोमे वन्ध्याके पुत्रयोगके कितने ही प्रयोग देखे थे, किन्तु मै यह व्यवसाय नही करना चाहता था। सकोच तो उस वक्त हजार गुना ज्यादा था, यद्यपि मन्त्र-तन्त्रका प्रयोग कहाँ तक खीचकर ले जा सकता है, इसका भी मुझे पता न था। एक दिन विद्यार्थीने रोनी-सूरत बनाकर कहना शुरू किया—"उस घरमे मेरा विश्वास चला जानेको है। आप एक बार चलकर, चाहे असाध्य ही क्यो न कह आये, किन्तु चले जरूर। नही तो मुझे झूठा बनाया जा रहा है। .. "

पोथीमे वन्ध्योपचार पढ़ लेनेसे समस्याका सामुख्य थोडे ही किया जा सकता है। मै गया। उमरने चाहे जो भी खिलाफ फैसला दिया हो, किन्तु मैने अपनेको नौसिखिया साबित नही किया। मैने इतना ही कहा,—'उपचार मैने पढे है, किन्तु किसी गुरुकी देख-रेखमे मैने उनका प्रयोग नही किया है, और मन्त्र-विद्यामे बिना गुरुके निरीक्षणमे कुछ करना खतरनाक है।'

मेरी साफगोईका स्त्रीपर अच्छा असर पड़ा, मेरी जान भी बच गई।

स्वामी पूर्णानन्दके पास जब-तब जाना मेरा अब भी हो रहा था। मन्त्र-तन्त्रके ग्रन्थोके पढनेसे उनकी 'गुरुभाई' अवधूतानीपर मुझे सिद्धायोगिनीका सन्देह हो रहा था, किन्तु अवधूतानी कुछ ही दिन रहकर नेपाल चली गई थी। यजुर्वेद पढते देख, स्वामी पूर्णानन्दने मुझे नेपाली कागजपर लिखी एक अपूर्ण यजुर्वेदसहिता प्रदान की, जिसे कुछ वर्षो पीछे मै न सुरक्षित समझ लालचन्द पुस्तकालय (डी० ए० वी० कालेज, लाहौर)को भेंट कर दिया। मन्त्र-तन्त्रपर श्रम और श्रद्धा पराकाष्ठाको पहुँच रही थी, कोई विशाल प्रयोग करना अब मेरे लिए अनिवार्य हो गया था। मैने पूर्णानन्दजीसे—यह कह दूँ, पूर्णानन्दजीने कभी मुझसे गुरुवत् मनवानेकी आशा न रखी,

और न मैंने वैसा किया—किसी मन्त्र या देवताकी सिद्धिकेलिए प्रयोग बतलानेका आग्रह शुरू किया। क्वारका नवरात्र जितना ही नज़दीक आता गया, उतना ही मेरा आग्रह बढ़ता गया, और उन्हे मेरी प्रार्थना मजूर करनी पड़ी।

नवरात्रमे पडित मुखरामजी घर जानेवाले थे, इसलिए मन्त्रसिद्धिकेलिए सबसे उपयुक्त स्थान उनकी कोठरी थी। छोटे गूदरमे वही एक कोठेपरकी कोठरी थी, और थी एक कोने (पूर्व-उत्तर)मे। मन्दिर, रसोईघर तथा साधुओके रहनेके स्थान पच्छिम तरफमे थे, जो वहाँसे काफ़ी दूर पड़ते थे। हमारी कोठरीके नीचे रहनेवाले विद्यार्थी भी घर चले गये थे। थी वहाँ वह दुहरी कमरवाली दुबली पतली अस्सी बरसकी बुढिया, जिसे चिढ़ानेमे विद्यार्थियोको बहुत मज़ा आता था, और वह भी आपेसे बिना बाहर हुये चुन-चुनकर गालियाँ सुनाती—"गुलामका बेटा, . . . ." बुढिया माई अच्छी बात भी लडकोके मुँहसे सुननेको तैयार न होती, सिवाय उस समयके जब कि नारियलपर चिलम रखकर धूमपान सेवन करती। तीसो बरस हो गये थे बुढियाको इसी मठमे रहते। बूढे महन्त वशीदासने उसे तरुणी विधवाके तौर पर मुजफ्फरपुर ज़िलेसे लाकर आश्रय दिया था। वशीदास अभी भी जीवित थे, किन्तु बुढापेके कारण अब वह आँख-कानके साथ मठकी अध्यक्षताको भी खो चुके थे। बुढिया उन्हे भी पचास गालियाँ देती, किन्तु वहाँ सुननेवाला कौन था। खाना-पानी देनेमे अब भी वह वशीदासकी सहायता करती।

हमारी मन्त्र-साधनावाली कोठरीके ठीक नीचे ही बुढ़िया रहती थी, किन्तु उससे बाधाका डर न था। स्वामी पूर्णानन्दके अतिरिक्त चक्रपाणि ब्रह्मचारी ही दूसरे व्यक्ति थे, जो मेरी मन्त्रसिद्धिकी बात जानते थे। उनके ज़िम्मे एक बार सिर्फ़ रातको कृष्णाका आधसेर गर्म दूध ला देना था, जिसे वह सेर भरसे जलाकर छटाँक घीके योगके साथ लाते थे।

पडित मुखरामजीकी पुस्तके यत्नसे एक तरफ रख दी गई, उनकी संख्या ज्यादा नही थी। और सामान नीचे कोठरीमे रख आये। उस स्वच्छ कोठरीमे सिर्फ़ मेरा आसन था। बीचमे, पक्के फ़र्शपर ज़मीनसे उभड़ा गंगाकी चिकनी मिट्टीसे मैंने सुन्दर षट्कोण बनाया, जिसके केन्द्रमे 'ओं' और छओं कोनोपर 'श्री ह्री क्ली फट् स्वा हा' मिट्टीके उभडे हुए सुन्दर अक्षरोमे रचकर लिखा। सबेरेके वक़्त अँधेरा रहते ही मैं गगा-स्नान कर आता, और बगलकी फुलवाड़ीसे थोड़ा फूल लेकर धूपदीपके साथ 'चक्र'की पूजा करता, और फिर पूर्णानन्दके बतलाये 'श्री ह्री क्ली' मन्त्रका रुद्राक्ष-मालापर जप करने लगता। उन्होने बतलाया था, कि पूरे नियमके साथ ६ लाख

जप करनेपर दुर्गा सिंहवाहिनीका साक्षात् दर्शन होगा, वह 'वरब्रूहि' कहेगी, फिर धन, बल, बुद्धि, विद्या जो माँगना हो माँग लेना। मैंने पहिले अल्पश्रम साध्य यक्षिणी या किसी दूसरे छोटे-मोटे देवता—हनूमान आदि—की सिद्धि करनी चाही थी, किन्तु पूर्णानन्दकी राय हुई—कुछ श्रम भले ही अधिक करना पडे, किन्तु आद्याशक्तिकी सिद्धि अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारो फलोंकी साधक होगी।

दिनभर पच्छिम, दक्खिनके दोनो दर्वाजे बन्द रहते और मै अपने जपमे तन्मय रहता। शायद वृद्ध विद्यार्थी पडित रामकुमारदास पूजाके बारेमे जानते हो, किन्तु उन्होंने कभी बातचीत करनी नही चाही। रातके कुछ घटे सोनेके सिवाय बाकी समय जप और पूजामे बीतता। शामके वक्त ब्रह्मचारी दूध देने आते, उनके सिवाय किसी आदमीका दर्शन नही, बात तो उनसे भी एक या दो शब्द तक परिमित थी। पाँच-छै दिन तक तो कोई बात ही नही, सातवाँ दिन भी बीता, सिंहवाहिनीके वाहनकी घटीका भी कही पता न था। रातको छतपर नजर गडाये जब लेटता, तो लोहेकी कडियोपर पडी पत्थरकी पटियोके खुरदरापनके कारण उठ आई रेखाये, टिमटिमाते घीके चिराग़की रोशनीमे कुछ ज्यादा स्पष्ट होने लगती। जहाँ-तहाँ उनमे कुछ चेहरोका आकार निकलता दिखलाई पडता, किन्तु रेखाओका ख्याल आते ही वे चेहरे विलीन हो जाते। आठवाँ अहोरात्र भी बीत गया, इस दिनके सूर्यास्तसे दिल धडकने लगा। आज पूजाकेलिए विशेष सामग्री जमा की गई थी, जिसमे और चीजोके अतिरिक्त कितने ही धतूरके पक्के फल भी थे। मैंने भक्तिभावसे गद्गद् हो स्तुति-पुरस्सर जगदम्बाकी पूजा की। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' को बडे भावावेशके साथ कई बार दुहराया। जपके शेष भागको भी समाप्त किया। चित्त भगवतीके गुणोके चिन्तन, कान उनकी नूपुरध्वनिके श्रवण, और नेत्र दिशाओको जब-तब निहारनेमे लग्न थे। धीरे-धीरे दिन बीत चला। शाम हुई। अँधेरा होते ब्रह्मचारी दूध दे गये, मै उनसे एक शब्द भी नही बोला। उनके चले जानेके बाद मेरे मनमे प्रतिक्रिया शुरू हुई। मैंने सारी विधियोका पूर्णरूपेण पालन किया। किसी सामग्रीमे कमी नही रही। मन्त्रका उच्चारण बिल्कुल शुद्ध-शुद्ध किया। मन्त्रका प्रभाव तो अमोघ है, फिर क्या कारण है, जो जगदम्बाने दर्शन नही दिया ? बहुत 'सोचने-विचारने'के बाद मै इसी निर्णयपर पहुँचा, कि इस असफलतामे मेरा अभागा जीवन ही कारण है और तै किया कि इस जीवनके रखनेसे लाभ नही ? उसी वक्त मैंने दो चिट्ठियाँ लिखी। एकमे लिखा कि मेरी लाशको मणिकर्णिकापर फूँक दिया जावे, दूसरेमे पिताजीको अभागे पुत्रकेलिए शोक न करनेकी प्रार्थना की

गई थी। दोनों चिट्ठियोको शायद धोतीके खूँटसे या जनेऊमे बाँधा था। मैंने पूजामे चढाये धतूरके फलोमेसे दोके सारे बीजोको मिश्रीके साथ कूटा, और इस अर्ध-अवलेहको पानीके सहारे निगल गया। इसके बाद बिछोनेको कोठरीसे बाहर पच्छिमकी छतपर बिछाकर पड रहा।

उसके बादकी अवस्थाके बारेमे सहवासी कह रहे थे—उनमेसे एक, शायद प० रामकुमारदास, ऊपर पेशाब करने आये, तो उन्होंने मुझे छतपर लोटते देखा। दूसरोकी सहायतासे वे मुझे नीचे ले गये। मै कुछ समय तक बोलता-चालता न था, पीछे विक्षिप्तसी बाते कर रहा था। मुझे याद है, धतूरेके खानेके बाद कै आई थी, और पेटके भीतरका बहुतसा अश निकल गया था। दूसरी बात ख्याल पडती है—खूब दिन निकल आया था; मुझे कई आदमी जोरसे पकडकर रक्खे हुए थे, मै उनसे आदमीके तौरपर पेश आनेकेलिए बिनती कर रहा था।

उसी दिन अचानक यागेश आ गये। उस अवस्थामे भी यागेशको देखकर मै ठडी बाते करने लगा। मैंने कहा, मुझे तालाबपर ले चलो, मै खूब मुँह तथा शिर धोना चाहता हूँ। यागेश मुझे पक्की सीढ़ियोसे उतारते पुष्करपर ले गये। मैं उसमे कूद पडा। देखनेवाले घबराये, यागेश वैसे ही कपडा पहने कूद पडे, और उन्होंने जाकर मुझे पकडा। मै वस्तुत गर्मीसे व्याकुल था, इसीलिए कूदा था। बाहर निकाला गया।

दूसरे दिन शाम तक मै होशमे आ गया या तीसरे दिन, इसका मुझे कुछ पता नही। वहाँसे मुझे मोतीरामके बगीचेमे लाया गया। अब मै बहुत कुछ प्रकृतिस्थ था। कुछ उकताया हुआसा था, किन्तु अकलकी बाते करता था। साथियोको कहा—मैंने बहुत सारा धतूरा खा डाला है। पेटमे ज्वाला फूँके हुए है। जले तम्बाकू कोयला पीसकर पिलाओ, जिसमे पेट साफ हो जावे। शायद लोगोने दिया भी, किन्तु पेटमे अब तक कोई चीज रक्खी हुई थोडे ही थी। इस सारी हालतमे न कोई डाक्टर बुलाया गया न वैद्य, भूतप्रेत झाडनेवाला आया हो तो उसकी खबर नही।

रातको बागके बीचवाले चबूतरेसे चाँदनी रातमे नीबुओकी ओर देखता। उसकी डालियाँ धीरे-धीरे बढने लगती, और अन्तमे हथियारबन्द हजार पैदल तथा घुडसवार पल्टनोकी पक्तिमे परिणत हो जाती। वह मार्च करते मेरी तरफ आती, जब पाँच-सात कदम रह जाता और मै हटनेके तरद्दुदमे पड जाता, तो वह फिर पीछे हटकर छोटी-छोटी पत्तियाँ बन जाती।

इस प्रकार प्राणोकी बाजी लगाकर मैंने मन्त्र-साधना की।

## ६

# बनारसमें पढ़ाई ( २ )

और तरहसे अच्छा हो जानेपर भी पुस्तकोके अक्षर मुझे पुती हुई हल्की स्याही जैसे मालूम होते थे। यागेशके साथ मैं घर चला गया। हफ्तो बाद भी आँखोकी रोशनीकी वही हालत रही। इसी बीच कलकत्ताका परीक्षा-पत्र भरनेका समय भी बीत गया। अक्षर जब फिर पढने लगा, तो मै फिर बनारस (अक्तूबरमे) चला आया।

अब मुझमे कुछ परिवर्तन था। यह तो नही कह सकता, कि मन्त्र-तन्त्र, देवी-देवतापर मेरा विश्वास उठ गया। उसकी सम्भावना कहाँ थी, जब कि मेरे आसपासके विद्वान्-मूर्ख सब उस विश्वासको बढानेमे सहायक थे। हाँ, अब फिर वैसे तजर्बोकेलिए मै तैयार न था। धार्मिक वायुमडलमे उडनेके साथ ठोस पृथिवीपर भी पैर रखना चाहिए, इधर भी मेरा ख्याल गया। साधुओ और त्यागियोके समाजमे भी अग्रेजी जाननेवालेकी कदर होते देख, मैने तै किया, कुछ समय उसकेलिए देनेको। आनन्द-बागमे एक तरुण ब्रह्मचारी रहते थे, जिनके बारेमे हमारे चक्रपाणि ब्रह्मचारीका कहना था, वह सब पास कर गये है, 'विलायत तक की विद्या'। मै एक दिन गया, तो देखा भास्करानन्दकी समाधिसे पूरबवाले मकानमे सीढ़ियोके सिरेपर लिखा था, 'कृपया आनेका कष्ट न उठाइए।' मै वहीसे लौट आया। लेकिन ब्रह्मचारी चक्रपाणि किसी तरह उनके पास पहुँच गये। इतना ही नही उन्होने उनसे वादा ले लिया, कि वे मुझे अग्रेजी पढायेगे। अपनी जगह बुलाकर पढानेकी जगह उन्होने शामको टहलनेकेलिए निकलनेपर मेरे वासस्थान—उस वक्त मै स्वामी अनन्ताश्रमके लिमडी-छत्रमे रहता था—मे आकर पढाना स्वीकार किया। मै कई महीने उनसे पढता रहा, जिसमे छठी क्लास तक पढे जानेवाले सभी रीडर समाप्त कर डाले।

तन्त्र-मन्त्र और पूजा-पाठके अभावमे समयकी भी काफी बचत थी। उस समयको सस्कृत और अग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दी पुस्तको और समाचार-पत्रोके पढनेमे भी लगाना शुरू किया। अखबारोका शौक 'विदेशयात्रा'वाले मुकदमेसे बनारसमे फैली सन्सनीके कारण हुआ था। बाबू श्रीप्रकाश विलायतसे लौटकर आये थे, उनकी अग्रवाल-बिरादरीने उनको जातिच्युत किया था, इसलिए जातिके पचोपर मानहानिका मुकदमा दायर हुआ था। पंचोकी तरफसे प० शिवकुमार शास्त्री जैसे

धुरधर पडित समुद्रयात्राके विरुद्ध साक्षी पेश किये जाते थे। मुकदमेकी कार्रवाई अखबारोंमे छपती थी। कचौडीगलीमे अन्नपूर्णाकी ओरवाले छोरके पास एक अख-बारके पन्ने टँगे रहते थे, जिसे मेरे जैसे बिना पैसा-कौडीके अखबार पढनेके शौकीन पढ़ा करते थे। बढते-बढते यह शौक चौक जाते वक्त कारमाइकल लाइब्रेरी तथा रीवाकोठीके एक तरुण विद्यार्थी तक ले जाने लगा। दुर्गाकुडपर भी पुस्तको और हिन्दी अखबारोका अड्डा निकल आया। वहाँ ही पहिले-पहिल "सरस्वती"का परायण मैंने शुरू किया था। उस वक्त खन्नाके अमेरिका-भ्रमणपर लेख निकल रहे थे। स्वामी सत्यदेव परिब्राजकके एक-दो व्याख्यान (गिने-चुने तरुणोके सामने गोदौलियाके पास एक कोठरेपर, अपने निवासस्थानपर दिये गये) भी सुननेको मिले।

इसी समय फुसलाकर टापूमे भेज देनेवाले अरकाटियोसे सावधान रहने तथा टापूके कष्टके सम्बन्धमे छपे उनके हैंडबिल पढनेको मिले। इस सम्बन्धके, मालूम होता है, कई लेख पढनेको मिले, तभी तो मै किसी अरकाटीसे भिडन्त करनेकेलिए डोलता-फिरता था। एक दिन मै दशाश्वमेधसे सिकरौड़ जानेवाली सडकपर कही जा रहा था। एक आदमीने आकर मुझसे पूछा—"नौकरी करना चाहते हो ?"

"क्या नौकरी ?"

शायद मेरे शिरपर चन्दन था, अथवा विद्यार्थीके वेषसे वह समझ गया, कि मै ब्राह्मण हूँ। बोला—"बाबूकी रसोई बनानी है ?"

"कितना रुपया मासिक मिलेगा ?" मैंने मनोरजनकेलिए, किन्तु संजीदगीके साथ पूछा।

"बीस रुपया महीना, किन्तु बनारससे बाहर कुछ दूर जाना पड़ेगा।"

अब मुझे निश्चय होगया, कि वह अरकाटी है। मैंने और इत्मीनानसे कहा—"भाई, तुम्हारी बडी नेकी मानूँगा, नौकरीकी तो तलाशमे मैं पाँच दिनसे मारा-मारा फिर रहा हूँ।"

फिर वह नौकरी, और उसके आराम तथा कमाईके सम्बन्धमे बाते करते इंग्लिशिया लाईनमें मुझे वहाँ ले गया, जहाँ मेहतरोके झोपड़ोके सामने आज जौहरीका बँगला है। उस वक्त ईंटोकी चहारदीवारीसे घिरा एक बाग था, जिसके दक्खिनमे पक्की सडककी ओर कुछ पक्के साधारणसे घर थे। भीतर जानेपर मैंने देखा, वहाँ दर्जनो दीहाती बैठे हुए है, जिनमे एक मेरी उमरका लडका भी था। मैंने उससे पूछा—'कहाँ घर है ?' जवाब मिला—'आजमगढ़ ज़िलामें देवकली।' देवकली ! मेरे

गाँवसे बहुत नज़दीक है। फिर पूछा—'यहाँ कैसे बैठे हो ?' 'नौकरीकेलिए। बाबू अच्छी नौकरी दिलवा रहे हैं।'

मैं नौसिखिया था, अपनेको रोक न सका, और उत्तेजित हो मैंने लड़केसे कहना शुरू किया—

"बाबू अच्छी नौकरी दिलवा रहे हैं ! वह तुम्हें दस रुपयेपर बेच रहे हैं, बेच। हाँ, मिरिच, डमरा टापू समुन्दर पार भिजवा रहे हैं, जहाँ न धरम . . . ।"

मेरा स्वर कुछ ऊँचा था, साथ ही लड़का भयभीत होकर जिस तरह मेरे पास आकर मेरी बातें सुनने लगा, और आसपासके दो-एक और आदमी आने लगे, उसे देख मेरे अरकाटीका ध्यान मेरी ओर हुआ; और मेरे मुँहसे निकलती बातोंको सुनते ही आगबगूला हो मेरी ओर लपका। मैं चार छलाँगमें बागके बाहर हो गया। सौभाग्यसे दर्वाजा उस वक्त खुला था। उसने ताबडतोड़ कई ढेले चलाये, किन्तु मैं बेतहाशा भागता वहाँसे बँच निकला। अरकाटी, अधिकतर शहरके गुडोमेंसे होते थे, इसलिए मारपीट करना उनके बाये हाथका खेल था। यदि मै पकडा गया होता, तो खूब मरम्मत हुई होती।

खतरेके क्षेत्रसे बाहर आ जानेपर मुझे अब फिक्र पडी, कैसे उस लडकेका उद्धार किया जावे। उस वक्त राजनीतिकी हवा तक भी मुझसे छू नही गई थी। मै अरकाटियोके धोखे और टापूमें होते अत्याचारोको पढकर समझ रहा था, अरकाटीसे उस लडकेके बचानेका मतलब है, कसाईको एक गायसे बचा लेना। मैंने सोचा सेन्ट्रल हिन्दू कालेजमें आजमगढ़ ज़िलेके रामजीलाल (बछवल) तथा दूधनाथ पाडे पढते हैं; यदि उनसे कहूँ, तो शायद अब भी लडकेको बचाया जा सके। ये तथा दूसरे नौजवानो और शायद आराके देवेन्द्रकुमार जैन (जो कालेजके होस्टलमे रहते थे)के पास भी मैं पहुँचा। अपने आवेगका कुछ अश उनके भीतर भी प्रविष्ट करानेमें मैं सफल हुआ, और मुझे तथा शायद रामजीलालको बगीचेकी ओर भेज उनमेंसे कुछ एनी-बेसेंटसे मदद लेनेकेलिए बहुत आशाके साथ गये। हम तीनों फिर उसी बगियाके पास वाली सड़कपर आये। हममेसे एक सूचना देने तथा दूसरे साथियोको लाने लौट गया और दो आदमी—मैं और शायद रामजीलाल—पहरा देनेकेलिए रह गये; जिसमें कि लडकेको दूसरी जगह भगाया न जा सके। हम लोग बड़ी सड़कपर टहलते थे। शाम होने लगी, तो दो-तीन अरकाटियोने छतपरसे ईंटे चलानी शुरू की। अब और अधिक वहाँ रहना बेसूद था, क्योंकि हिन्दूकालेजसे भी कोई खोज-खबर लेने नही आया। जब हम वर्तमान भारतमाताभवन—जो उस वक़्त अस्तित्वमें नही आया

था—के आगेवाले घर, जो वहुत दिनों तक काशीविद्यापीठके विद्यालय-विभागका छात्रावास रहा, और उस वक़्त वहाँ कितने ही कालेजके विद्यार्थी रहते थे—के सामनेसे गुज़रे, तो हमारे साथीका ख़्याल हुआ, यहाँसे कुछ विद्यार्थियोंको लेकर हाकीकी कुबड़ीके वलपर मारकर लड़केको छीन लावें, किन्तु उस वक़्तका भारत आजका भारत नहीं था। कालेज जानेपर पता लगा—बेसेंट साहिबाने मदद देनेकी जगह शान्त रहनेका एक संक्षिप्त सर्मन झाड़कर अपना कर्तव्य पालन कर लिया।

मेरे सार्वजनिक कार्यका आरंभ पहिलेपहिल इस वक़्त (नवंबर १९११ ई०) हुआ, यद्यपि उस वक्त उसके पीछे ज्ञान और निरन्तर कार्यशीलताका अभाव था।

दिसम्बरमें बादशाह जार्जकी दिल्लीमें राजगद्दी हुई। बनारसमें भी उस दिन बड़ी तैयारी थी। क्वीन्स कालेजके सामनेसे पल्टन और रामनगर राज्य—जो अभी तक ज़मींदारी थी—के मशक बाजा बजानेवाले सिपाहियोंका जलूस बहुत सजधजके चल रहा था। राजा मुंशी माधवलालकी कोठी खूब सजाई गई थी। शहरमें और जगह भी तैयारी थी। अस्सी मुहल्लेमें उतनी चहल-पहल न थी, इसका कारण शहरसे अलग-थलग रहना भी हो सकता है। वस्तुतः हिन्दूविश्वविद्यालयके बननेके पहिले अस्सी शहरका बाहरी छोर मालूम होता था। हम लोगोंकेलिए यह जलूस और बाजा-गाजा एक बड़ा तमाशा था। उस समय अंग्रेज़ोंके प्रति राजनीतिक वैमनस्यका कोई भाव उस समाजमें नहीं देखा जाता था, जिसमें कि मैं घूमता था। हाँ, अंग्रेज़ विधर्मी, म्लेच्छ हैं, इस भावसे कोई मुक्त नहीं था।

१९१२का नया वर्ष शुरू आया, उसके साथ-साथ मेरे ज्ञान और दृष्टिका विकास भी होता जा रहा था। लघुकौमुदीके बाद मैंने सिद्धान्तकौमुदी शुरू की थी। कई सरल नाटक और काव्य—कुछ किसीके साथ और कुछ खुद समाप्त किये थे। अंग्रेज़ी ब्रह्मचारी पढ़ा रहे थे, और हिन्दीका अपने हीसे स्वाध्याय चल रहा था। इस समयके मेरे पढ़ानेवालोंमें पंडित मुखराम पांडेके अतिरिक्त पंडित शिवमंगल दूबे, पंडित चानन-राम, एक काव्यतीर्थ वैरागी (जो अस्सीपर पंडित अनन्तरामके मकानके पीछे रहते थे), गुजराती ब्रह्मचारी तथा एक-दो और सज्जन थे। मित्रोंमें थे, वनमाली के अतिरिक्त रीवाँकोठीमें रहनेवाले पुरोहितपुत्र गिरिशंकरजी(?)और छोटे-गूदर-वाली सड़कपर रहनेवाले कविजीके ज्येष्ठ पुत्र(?) जो अच्छे विद्वान् होकर जवानी हीमें मर गये। पंडित शिवमंगलजी नगवामें पढ़ते थे, और खुद स्याद्वादविद्यालयमें पढ़ाने जाते थे। एक दिन मैं भी उनके साथ स्याद्वाद विद्यालय गया। पंडितजी पढ़ा रहे थे, मैं टहलता हुआ आँगनमें, और फिर पट खुला देख मन्दिरमें गया। पुजारी

दौडा हुआ आया—'आपको मन्दिरमे नही आना चाहिए, यह जैनमन्दिर है ?'

"क्यो ?"

"जैनमूर्त्तिके दर्शन करनेसे पाप लगता है।"

"तो तुम पूजा क्यो करते हो ?"

"हम तो पेटकेलिए. .।"

यह भी मेरेलिए एक नया अनुभव था। इस अनुभवके वाद सुना—"नवेदद् यावनी भाषा न गच्छेद् जैनमन्दिरम्।"

गर्मियोमे अबके भी मै बनारससे बाहर नही गया। उसी वक्त अस्सीपर एक और नई मूर्त्ति पधारी, जिसने पक्की बावडीके दक्खिनवाले घरमे डेरा डाला। सारी विद्यार्थिमडलीमे—और पडित-मडलीमे भी समझिए—तहलका मच गया, बड़ा अगाध पडित, भारी कवि, सूक्ष्मतार्किक, महान् नास्तिक रामावतार शर्मा आया है। वह वेदको नही मानता, वह भगवान्को नही मानता, वह पुण्यपापको नहीं मानता। सैकडो दूसरे व्यक्तियोकी भाँति भी मुझे वह अजूबासा आदमी सुन पडा। पहिली बार मुझे उनके दर्शन हुए, जगन्नाथ-मन्दिरके बाहरवाले फाटकके सामने किन्तु सडकके दूसरे किनारेपर। एक धोती पहिने हुए थे, एक धोती और शायद अँगोछा भी हाथमे था। एक कन्धेपर दो-तीन वर्षकी एक लड़की बैठी थी, जिसे सँभालनेके-लिए दूसरा हाथ उठा हुआ था। पाँच-सात आदमी—जिनमे तरुण विद्यार्थी ही अधिक थे—घेरे हुए थे। व्याकरण या न्यायपर शास्त्रार्थ नही हो रहा था, वल्कि बात हो रही थी किसी पौराणिक गप या ऋषिके असम्भव चमत्कारपर। पंडितजी स्नानकेलिए गगाके रास्तेमे थे। एक दिन मै उनके बैठकेमे पहुँचा—बैठका भी दो दर्वाजोकी एक सामान्य कोठरी थी, और वह फर्श ही पर बैठे हुए थे। वहाँ, हमारे वह काव्य-तीर्थ वैरागी तरुण भी थे। पडित रामावतारजीका दर्बार सबकेलिए उन्मुक्त था इसलिए हम लोग निस्सकोच पहुँच जाते थे। शायद फेरीवालेसे कुछ कल्मी आम खरीदकर अभी-अभी वह घरमे भेज रहे थे—हाँ, सुना कि पडितजीकी दो स्त्रियाँ है। वैरागी तरुणसे मजाक करते हुए कह रहे थे—"भाई! सात-सात दिनके उपवासके वाद भी हमे तो इन्द्रियोपर सयम रखना मुश्किल मालूम होता है, और तुम लोगोका आजन्म ब्रह्मचर्य! असम्भव।"

आगे स्वामी मुद्गरानन्दकी वात शुरू हो गई। वह छीक देते थे, तो दनादन हाथी निकल आते थे। पुराणकी गप्पोका मजाक करते हुए शर्माजी इन कथाओको कहते थे। उनकी बातोको तीन-चार वारसे अधिक सुननेका मुझे मौका नहीं मिला,

और उनका मुझपर सिवाय क्षणिक मनोरंजनके कोई स्थायी प्रभाव हुआ, यह मुझे ख्याल नही। शायद मैं अभी उसकेलिए आरम्भिक तैयारीसे वंचित था, अथवा उनकी बातें मुझे विशृंखलित तौरसे जबतब थोडी देरकेलिए सुननेको मिली।

मई या जून पहुँचते-पहुँचते मेरा भी स्कूलमें नाम लिखाना तै हो गया। मेरे रीवाँ-वाले साथी हाल हीमें खुले दयानन्द-स्कूलकी नवी क्लासमे नाम लिखा चुके थे, मुझे भी उनकी सम्मति हुई, उसी स्कूलमें प्रविष्ट होनेकी। सस्कृत पढनेकेलिए तो फीसकी जरूरत नही थी, वहाँ तो बल्कि छात्रवृत्ति भी मिल जाया करती थी, किन्तु यहाँ प्रश्न आया फीसका, किताबोंके दामका। मैं घरके भरोसे नाम लिखाने नही जा रहा था, और न कोई दूसरी आमदनीका स्थायी रास्ता था। किसीने कहा, स्कूलके मैनेजर पंडित केशवदेव शास्त्रीके नाम कोई सिफारिशी चिट्ठी ले जाओ, तो शायद फीस माफ हो जावे। यह भी पता लगा, कि स्याद्वादविद्यालयके मैनेजर नन्दकिशोरजी पंडित केशवदेवके दोस्त है। नन्दकिशोरजीसे मेरी भी जबतबकी देखा-देखी थी, उन्होने चिट्ठी लिखकर दे दी। पडित केशवदेव शास्त्रीने आधी फ़ीस माफ करनेके-लिए हेडमास्टरको लिखा। इस प्रकार दयानन्दस्कूलमें परीक्षा लेकर सातवे दर्जेमे मेरा नाम लिखा गया। उस वक्त स्कूल किरायेके मकानमें गोदौलिया गिरिजासे सिकरौड जानेवाली सड़कपर थोडा गलीमें था। पंडित केलकरजी उस वक्त हेडमास्टर थे, और अभी वह हिन्दूकालेजमे एम० ए०में पढ रहे थे। मेरे अध्यापकोंमे एक बगाली थे, जिन्हे दाढ़ीकी समानतासे हम 'किंग जार्ज' कहा करते थे, और एक सीधे-साधे बूढे पडितजी संस्कृतके अध्यापक थे। दर्जेमें कुल छै या सात लडके थे, जिनमे एक चन्द्रावतीके पासके राजपूत उम्रमें हम सबसे बडे थे। सस्कृतमे कुछ पूछना ही नही था, मैं कालेजकी पढाईके बराबर पढ चुका था। गणितमें बीजगणित नई चीज थी, किन्तु उसमें भी मेरा लोहा सहपाठी तुरन्त मान गये। अग्रेजी—खासकर उसका व्याकरण मेरा कमजोर था, और एक दिन परीक्षा लेनेके बाद मास्टरने इसकेलिए बहुत ताकीद भी की। हमारे दर्जेमें एक मोटासा बगाली लडका था, जिसकी तबि-यत पढ़नेमें बिल्कुल नही लगती थी, और वह बराबर गप्पोमें लगा रहता—'कलकत्ता गया, तो मुगलसरायमे किल्नरके यहाँ यह खाना खाया, वह बोतल उडाई।' एक और साँवले मुशीजी थे, जिनके सुन्दर अक्षरोको देखकर मुझे रश्क आता था। धर्मशिक्षाका घंटा मुकर्रर था, और वह रोज नियमित रूपसे हुआ करती थी, लेकिन शायद ही एकाध दिन भूल-भटककर मैं उधर गया हूँगा। मुझे उनकी बाते बच्चोकी बकवाससी मालूम होती थी।

पहिले गिरिजाशकरके साथ मै नित अस्सीसे वहाँ पढने जाता, फिर दूर समझकर ख्याल हुआ कही नजदीक ही रहनेका। इधर यागेश एकाध बार प्रयागसे आये, तो उन्होने भी तै किया, आकर पढनेका। गोदौलिया गिरिजासे थोडा पूरब, गलीमे एक सन्यासीका मठ था। सन्यासी बाबा, कनैलासे दो मील पूरबवाले गाँव दौलताबादके ब्राह्मणोके गुरु थे। उनसे कहनेपर बडी खुशीसे उन्होने हमारेलिए एक अच्छी कोठरी रहनेको दे दी, जिसमे एक आलमारी भी थी। हमने अपनी पुस्तके, कपडे-लत्ते खूब सजाकर रक्खे। यागेशको वेस्ट-एड-वाच—शायद बहुत भारी मालूम हो रही थी—इसलिए वह भी उसीमे रखी गई। खानेकेलिए एकाध महीनेका पैसा तो हम लोगोके पास जरूर रहा होगा, तब तो हम वहाँ नये घरमे बसने जा रहे थे। एक ही दिन उस घरमे रहने पाये, दूसरे दिन देखा तो घडी गायब। कौन ले गया—बिना देखे यह कहना तो मुश्किल था, किन्तु लेनेवाला घरका ही कोई आदमी रहा होगा, इसमे तो सन्देह नही। पूछ-ताछसे हाथसे निकली चीज कैसे लौट आ सकती है ? यागेश का मन फीका, मेरा भी उदास। यागेश फिर प्रयाग चले गये, मै फिर मोतीरामके बागसे स्कूलका रास्ता रोज नापने लगा।

पडित चन्द्रभूषणजी सेंट्रल हिन्दू कालेजके सस्कृत-विभाग (रणवीर पाठशाला)के प्रिंस्पल और बनारसके प्रधान वैयाकरणोमे थे। मेरे अध्यापक पडित मुखरामजी उनके विद्यार्थी थे। उस वक्त भी उनका शब्देन्दु(?) शेखरका कुछ पाठ चल रहा था। एक बार उनके साथ मै भी पडित चन्द्रभूषणजीके पास चला गया। पुराने पडितोकी सादगीका क्या कहना ? उनकेलिए विद्यार्थी उनके घरका एक व्यक्ति होता था। पडितजी चारपाईपर बैठे बात कर रहे थे। ख्याल आया—गायके सामने भुस नही है। बोल उठे—'मुखराम ! गायके सामने भुस नही मालूम होता।' 'डाल आता हूँ गुरूजी !' कहकर पडित मुखरामजी उठना चाहते थे। मै बोल उठा—'आप बैठे, मै जा रहा हूँ।' मै उठ खडा हुआ। भुसागारमे उस सूर्यास्तके समय कुछ और अँधेरा था। पडितजीने अपनी छोटी लडकीको आवाज दी—'तुषारे ! ओ तुषारे ! अरे बोलती क्यो नही ? . . . . लालटेन दिखला दे, गायको भुस डालना है।' भुस डालकर मै गया। उसके पहिले मेरे बारेमे गुरु-शिष्यमे क्या बातचीत हुई थी, सो तो मैने नही सुन पाया। अब कह रहे थे—

" . . .लडका होनहार मालूम होता है। वृत्ति कहीसे मिलती है या नही ?"

"नही, गुरुजी ! इस वक्त तो नही मिलती।"

"भला, वृत्ति विना पढने-लिखनेवाला विद्यार्थी क्या पढेगा ? . . अबके

भरतीके वक्त ले आओ। वृत्तिका प्रवन्ध करना होगा।"

इन्ही दिनो मुझे एक सिन्धी नौजवान मिला। उसके वदनपरका कपडा फट गया था। राह चलते मुझसे वातचीत हो गई। उसने वतलाया—घर छोडकर भाग आया हूँ। मैने उसे अपना कुर्ता दे दिया। मुझे वडी प्रसन्नता हुई, जव मैने दो दिन वाद देखा, उसने आठ आने किरायेपर मकान ले पकौडियोकी दूकान कर ली है, और आर्थिक तौरसे स्वतन्त्र है। वह मेरे पहिले व्यवहारका वहुत कृतज्ञ था। उसने आप बीती कहते हुए वतलाया, कि जैसे उसका पिता एक धनी सेठ है। उसने पिताके रुपयोको जवानीकी शौकोमे वर्वाद किया, और भागकर यहाँ आया है। उसका अमीरी जीवनसे पकौडी वेचने तक उतर आना जरूर मुझे साहसका काम मालूम हुआ।

छोटे गूदरमे उस वक्त कई सेवकोके साथ कहीके एक वडे महन्त ठहरे हुए थे। जहाँ कि महन्तजी ठहरे थे मेरा उधर जाना वहुत कम हुआ करता था। पडित मुख-रामजीकी कोठरी अलग-थलग थी, और मेरा मतलव उनके ही पास तक था। एक दिन रातके सात वजे पडित रामकुमारदासके शिष्य मुझे वुलाने आये—'चलिए आपको गुरुजी वुलाते है।' गया, देखा एक ठिगने, गोरे, अधेड भद्र पुरुष, सफेद विनीतवेष धारण किये, एक चौकीपर वैठे हुए है, उनके आसपास दो-चार साधु खडे या वैठे है। पडित रामकुमारजीने एक कागज़ मेरी तरफ वढ़ाते हुए कहा—'यह कागज पढ तो दीजिए।' मैने कागज़को हाथमे लेकर देखा, वह किसी अदालती फैसलेकी वाकायदा नकल थी। मेरा मन पहिले तो घवराया—'अभी तीन दिनसे मैने अग्रेजी शुरू की है, भला अदालतका फैसला मै कैसे पढ सकूँगा।' लेकिन मैने अपनी घवराहटको वाहर प्रकट होने नही दिया। कागज़को खोलते हुए कहा—'अदालती कागजके पढनेका मेरेलिए यह प्रथम अवसर है, उसकी एक खास भाषा होती है, और मैने तो अभी हालमे अग्रेज़ी शुरू की है।'

फैसलेको मैने एक वार खुद पढा। कुछ अर्थ तो समझमे आया, किन्तु वहाँ वहुतसे शब्द मेरेलिए कोई अर्थ नही रखते थे। मैने भावार्थको कुछ नमक-मिर्च लगाकर सुना दिया। महन्तजी उछल पडे—"देखा, महन्त रामकिसुनदास! तुमने, देखा पडित रामकुमारदास! तुमने, सदर-आलाने इनका फैसला लिखा है। वावू लोग अव सात जनममे भी मठका कुछ विगाड नही सकते।"

"हाँ, ठीक सरकार, आपका अकवाल है"—पास वैठी मडली वोल उठी।

मै दो-चार मिनट वहाँ वैठा रहा, इसके वाद मोतीरामके वाग चला गया।

अगले दिन पडित रामकुमारदास पडित मुखरामजीके सामने कह रहे थे—"यह छपरा जिलेके एक बहुत प्राचीन और भारी मठ परसाके महन्त है। लाखोकी सम्पत्तिके स्वामी है। एक बडा मन्दिर बनवाने जा रहे है, उसीकेलिए खुद देखकर पत्थर खरीदने आये है। केदारनाथजीने जो रात फैसला पढा, वह परसाके बाबू लोगोकी ओरसे महन्तजी के खिलाफ दायर किये हुए मुकदमेका था। महन्तजीके एक शिष्य रामउदारदास थे—जो अभी हाल हीमे मरे है। महन्तजीने अपने बाद उनको महन्ती लिख दी। बाबू लोग उन्हे नही चाहते थे। यही झगडेकी जड थी। दीवानीके अलावा फौजदारीके कई मुकदमे चल रहे थे। महन्तजीका पचास हजार रुपया उसमे खर्च हुआ है।...."

मेरा तो हर रोज पडित मुखरामजीके पास जानेका काम था, और महन्तजी कई दिनो तक वहाँ ठहरे रहे। पडित रामकुमारदासजी अकेले मिलनेपर भी जब-तब परसा-मठकी चर्चा चलाने लगे। फिर कहा, महन्तजीके योग्य और प्रिय शिष्य मर गये। उन्हीकेलिए इन्होने सारा झगडा किया था। महन्तजी बहुत अफसोसमे रहते है। मुझसे कह रहे है—'बनारसमे तुम रहते हो, मेरेलिए कोई अच्छा पढा-लिखा तरुण शिष्य नही ढूँढ देते।'

शुरू-शुरूमे जब इस तरहकी बाते हुई, तो मै अपनेको अन्य पुरुष समझता था। मै समझता था, पडित रामकुमार महन्तजीकेलिए चेला खोज देनेमे मेरी भी सहायता चाहते है। दो-तीन दिन बाद आखिर एक दिन वह खुल ही पडे—"केदारनाथजी। आपने उस दिन फैसला जो पढकर सुनाया, उसके बादसे महन्तजीको दूसरा कोई जँचता ही नही। मैने एकाध विद्यार्थियोका नाम लिया था, लेकिन वह तुम्हारे बारेमे पूछते है। तुम भी तो घरसे वास्ता नही रखते। साधु होनेकी बात भी करते रहते हो?"

यदि वैष्णवके यहाँ चेला होनेकी बात सालभर पहिले उन्होने मुझसे की होती, तो गुस्सेसे मेरा रोम-रोम जल उठता, किन्तु पिछली मन्त्रसाधनाके बादसे मै वह उग्र वैष्णवपन्थ-वैरी नही रह गया था। मैने सीधे इन्कार न करते हुए कहा—

"मै पढ रहा हूँ। आप जानते है, मैने स्कूलमे नाम लिखाया है। अग्रेजी और सस्कृत दोनोको दत्तचित्तसे पढना चाहता हूँ।"

"तो इसमे कौनसी बाधा है। वहाँ तो आपको और अनुकूलता होगी। पढानेके लिए पडित और अध्यापक रक्खे जा सकते है, यहाँ ही आकर पढ सकते है। देखते नही, इन्हीके एक शाखामठ बगौराके महन्तके शिष्य....यहाँ पढ रहे है?"

"परतन्त्रता होगी। महन्तजीके स्वभावसे परचित नही हूँ।"

"महतजी बेचारे बहुत सीधे-सादे व्यक्ति है। सबेरेसे ग्यारह बजे तक लगातार, पूजा-पाठमे रहते हैं। बारह वर्षसे ज्यादा हो गये, इन्हे अन्न छोड़े, सिर्फ फलाहार करते है। इतने बडे महत, जिसकी पन्द्रह हजार सालाना नकद तथा उसीके करीब गल्लेकी आमदनी हो, ऐसा तपस्वी जीवन व्यतीत करे! मुझे तो सिर्फ इस बातका लालच है, कि तुम्हारे ऐसा विद्याव्यसनी यदि परसाका महत हुआ, तो विद्याव्यसनियो और विद्यार्थियोकी कदर करेगा।"

"लेकिन मुझे बात कुछ जँचती नही है।"

"मै अभी फैसला करनेकेलिए नही कहता। आप इसपर विचार कीजिए। अभी महतजी पाँच-सात दिन और रहेगे। पत्थरका एक बडा मन्दिर बनवाने जा रहे हैं, दशाश्वमेधपर कई बार पत्थर देखने गये, किन्तु उनकी पसन्दके पत्थर वहाँ बहुत कम है। मै आपसे कहूँगा, परसामठ आपकेलिए सबसे अधिक अनुकूल होगा। आप तो कह चुके हैं, साधु जरूर होगे, फिर ऐसे स्थानमे क्यो न हो, जहाँके बारेमें हम कुछ दावेसे कह सकते है।"

"खैर, मै सोचकर जवाब दूँगा।"

यह प्रस्ताव तो मेरे सामने बिल्कुल नया था, किन्तु पढाईमे आनेवाली आर्थिक कठिनाइयो—विशेषकर अग्रेजी स्कूलमे नाम लिखानेके बादवाली—को हल करनेका यह भी एक रास्ता है, इसपर मैंने विचार नही किया था। अब मै पडित रामकुमारके प्रस्तावपर ज्यादा ध्यानसे विचार करने लगा। मेरेलिए दिक्कत यह थी, कि बनारसमे उस वक्त कोई ऐसा व्यक्ति नही था, जिसके सामने इस रहस्यप्रश्नको खोलकर रख सकूँ। वैरागीका चेला होना—चक्रपाणि ब्रह्मचारीको कभी पसन्द न आता। पडित सुखरामजी घर और फूफाजीके सम्बन्धके कारण भी, सुनते ही इसका विरोध ही नही करते, बल्कि हर तरहकी बाधा उपस्थित करते। यागेश उस वक्त वहाँ थे नही, होते भी तो वह वैराग्य और आश्रमपरिवर्तनमे मुझसे सहमत न थे। इस प्रश्नपर निर्णय मुझे अकेले ही सोचकर देना था।

आर्थिक कठिनाइयाँ मेरी कोई इतनी ज्यादा नही थी। घरवालोसे मदद माँगना यद्यपि मै अपने आत्मसम्मानके खिलाफ समझता था, तो भी ब्रह्मचारी चक्रपाणिकी कृपासे मै भोजन और रहनेसे निश्चिन्त था। चार-पाँच रुपये मासिककी वृत्तिके प्रबन्धकी बातें कई जगहसे चल रही थी, और उनके होनेमें बहुत देर न थी। पडित चन्द्रभूषणकी बात कह चुका हूँ। एक वृद्धा रानीके यहाँ पूजा करनेकी माँग आई—

मै कुछ वैदिक भी हो गया था। धर्माध्यक्षने पसन्द करके अन्तमे स्वीकृतिकेलिए रानी साहिबाके सामने ले जानेको कहा। पता लगा, जब तक रानी स्वय देखकर पसन्द नही कर ले, तब तक रखा नही जा सकता। रानीने देखा, एकाध बात पूछी और अपनी स्वीकृति दे दी। रानीके सम्बन्धकी बहुतसी अफवाहे, सुन चुका था, और अब वह बाते और स्पष्ट होने लगी, इसलिए मै फिर वहाँ नही गया। एकाध जगह किसी (दुर्गाजीके एक पडे)के लडकेको पढानेकी भी बात चल रही थी। इतना होते भी आर्थिक अनुकूलताका हाथ मेरे निर्णयमे नही था, यह मै नही कह सकता। मुझे याद है, उस वक्तका एक उदाहरण। अस्सीपर रहनेवाला एक साधारण विद्यार्थी कीनारामी रामगढ (?) गद्दीके महतका चेला होने जा रहा था। पहिले उसे कोई नही पूछता था, किन्तु अब वह पीताम्बरी पहिने तिवारीजीके सडकपरके कमरेमे रहा करता था। लेकिन आर्थिक सुभीतेसे भी ज्यादा जिस बातने परसाके पक्षमे मुझे निर्णय देनेपर जोर दिया, वह था घर और घरवालोकी पहुँचसे दूर, पृथिवीके दूसरे छोर—हाँ, छपरा जिला उस वक्त मेरेलिए कुछ वैसा ही अपरिचितसा था—पर चला जाना, एक नई जगह नये लोकका अनुभव प्राप्त करना। महतजीके पूजापाठने तो नही, लेकिन उनके सीधे-सादे स्वभावने भी मुझपर कुछ असर डाला, यद्यपि उस वक्त मै यह नही जानता था, कि वह सस्कृत नही जानते।

दो-चार दिन सोचने-विचारनेके बाद, अन्तमे मैने अपनी स्वीकृति दे दी। महतजी बहुत प्रसन्न हुए। पडित रामकुमारके प्रति उन्होंने बडी कृतज्ञता प्रकट की।

बनारससे चलनेमे मुझे इस बातका भी ध्यान था, कि घरवालोको, मै कहाँ गया, उसका पता न लगने पावे, सदाकेलिए नही तो कमसे कम काफी समयकेलिए; और इसकेलिए पडित मुखराम और ब्रह्मचारी चक्रपाणिसे अपने निर्णय तथा महतजीके सम्बन्धको गोप्य रखना बहुत ज़रूरी था। पडित मुखरामजी क्वारके नवरात्रमे घर जानेवाले थे, इसलिए इसी समयको प्रस्थानकेलिए मैने सबसे अधिक अनुकूल समझा।

किस दिन मै बनारससे प्रस्थान करूँगा, छपरा स्टेशनपर किस ट्रेनसे पहुँचूँगा, और स्टेशनपर आदमीके न मिलनेपर मुझे कहाँ पहुँचना चाहिए—सभी बाते महत-जीसे मिलकर तै कर ली।

## ७

# परसामें साधु

## ( १९१२-१३ ई० )

उस दिन (सितम्बर १६१२ ई०) मेरी ट्रेन छपरा (भगवान बाज़ार) स्टेशनपर शामको पहुँची थी। याद नही, महतजीका आदमी वनारससे ही साथ आया था, या यहाँ स्टेशनपर मिला। पचमन्दिरके पीछे परसामठकी छावनीमे पहुँचनेमे मुझे कोई दिक्कत नही हुई। महंतजी वहुत प्रसन्न हुए। उनके परिचारक तथा मुसाहिव वडा सन्मान दिखला रहे थे। वनारसमे एक अकिंचन विद्यार्थीकी तरह मैं नही रहता था। यद्यपि कपडे-लत्तेमे तडक-भडक नही थी, किन्तु उसको तथा मेरे चेहरेको देखनेसे आदमी समझ सकता था, कि मै काफी आरामके साथ रहनेका आदी हूँ। महन्तजीने अपने आदमियोको कह रखा था, कि मुझे किसी बातका कष्ट न होने पावे। अपने साईसके लडके रामदासको मेरेलिए खासतौरसे खवास नियत किया। छपराके उस आरम्भिक जीवनकी घटनाओमे 'खोवाकी दही'का शब्द मेरे कानोमें अजनवीसा मालूम हुआ। मै सोचने लगा—दही दूधसे बना करती है, खोवा हो जानेपर तो दूध अपनेही सूख जाता है, फिर दही कैसे वनेगी? दूसरी वात नईसी मालूम हुई, उस कुलीका नाम दहाउर, जिसने मेरा सामान स्टेशनसे परसा-छावनीमे पहुँचाया था।

छपरामे एक-दो दिनसे ज्यादा नही रहा। याद नही, मै स्टेशनसे दूर भी कही गया। शायद पचमन्दिरके वावू ठाकुरप्रसादके घर गया होऊँ, उनसे मुलाकात तो ज़रूर हुई होगी, क्योकि महन्तजीके मुकदमेमे उन्होने मुख्तारके तौरपर ही उनका काम नही किया था, वल्कि जरूरत पडनेपर धन—हॉ कर्जके तौरपर—ही नही, लाठीसे भी वावू लोगोके विरुद्ध महन्तजीकी मदद की थी। महन्तजी उनके वडे कृतज्ञ थे क्योकि वह जानते थे, कि मुख्तार ठाकुरप्रसाद जैसा सहायक नही मिला होता, तो कानून उनकी रक्षा नही कर सकता था।

हम लोग छपरासे एकमा रेलसे गये। महतजी सेकड क्लासमे थे, नही कह सकता मै किस क्लासमे गया। एकमा प्लेटफार्म, और स्टेशनसे वाहर खडे पीठपर मुर्गा बाँधे घोडोके एक्कोका झुड उस दिन कुछ विचित्रसा मालूम हुआ। महतजीके साथ

सामान काफी था, और नौकर-चाकर भी काफी। मेरे पास दो-चार किताबें, धोती-चादर, बदनपर सफेद डोरियाका कोट, और शायद शिरपर टोपी थी। क्वार समाप्त हो रहा था, या कातिकका पहिला-दूसरा दिन बीत रहा था। महन्तजीकी बग्घीपर चढ़कर जब हम परसाको जा रहे थे, तो देख रहे थे, सडकके पास हरे-हरे धानके खेत लहलहा रहे हैं। मैं बीच-बीचमें मौसिम और फसलके बारेमें एकाध बात पूछता जाता था। महंतजी भी मुझे बातमें लगाये हुए थे। सडक कच्ची थी, इसलिए घोडेको दौडनेका बहुत कम मौका मिला। धुरदह के पुलको पार करनेपर मैंने दाहिनी तरफ काफी दूर बहुत ऊँचे मकान देखे। महन्तजीने बतलाया—'वही बाबू लोगोका गढ है, वही एक चेलेको शिखडी खडाकर लड रहे थे।' मैंने कहा—मकान बहुत ऊँचे मालूम होते है। उत्तर मिला, पुराना गढ है, ज़मीन ही वहाँकी बहुत ऊँची है, इसलिए मकान बहुत ऊँचे मालूम हो रहे हैं। बहुतसे घर तो खडहर पडे है। दो ही तीन घर बाबुओंके धनी है, बाकी सब गरीब हो गये है।

और आगे चलनेपर मठके खपडैलवाले मकान, तथा दो शिखरदार मन्दिर दिखलाई पडे। महन्तजीने बतलाया—'यह पच्छिमवाली मठिया है, इससे कुछ दूरपर वह दूसरी पूरबवाली मठिया है। वहाँ गोपालजीका मन्दिर है और यहाँ रामजीका। यह छोटा मन्दिर समाधि है, पहिलेके महन्त गुरुओंकी चरणपादुकाये यहाँ रखी हैं।

बातें करते-करते, हमें मालूम भी नही हुआ, और तीन मीलका रास्ता तै कर हम मठपर पहुँच गये।

उस वक्त मठके बाहरवाले पक्के घरोका पता न था, वहाँ पच्छिम तरफ सिर्फ एक घोडसार थी। मठका सामनेका भाग पक्का था, जिसके सामने ऊँची कुर्सीपर, खपडैलका ओसारा था। ओसारेके दोनो छोरोपर दो कोठरियाँ थी, जिनमेसे पूरब-वालीमे मठके दीवान साहेब रहते थे। भीतर जानेपर मेरा सामान पक्के मकानके पूर्वी पार्श्वमें छोरपर अवस्थित कोठरीमे रखा गया। मुझे बतलाया गया, कि मृत युवक महन्त रामउदारदास इसी कोठरीमें रहा करते थे। अब रामदास मेरा वैयक्तिक ख़िदमतगार था, इसलिए नई जगह होनेपर भी मुझे किसी बातकी अडचन नही पडती थी।

सबेरेके वक्त पाख़ाना—खेतोमें—जाते वक्त रामदास लोटेमें पानी लेकर चलता था। अपनी कोठरीके पीछे, पोखरेके पक्के घाटपर हाथ-पैर धोता, दातुवन करता फिर स्नान करता। हलवाईको हुक्म हो गया था, कि मेरेलिए सवेरे ही पावभर गर्मागर्म जलेबियाँ आ जाये। बनारसमें नियमपूर्वक पान तो नही खाता था,

किन्तु शायद महन्तजी ने पान खाये मुझे देखा था इसलिए पान मँगवा रखनेकी ताकीद थी। कोठरीका फर्श पक्का था, जिसके एक तरफ चबूतरा था, जिसे मृत तरुण महन्तने अपनेलिए बनवाया था। उसी चबूतरेपर मेरा बिस्तरा लगा।

बाबू लोगोकी मुकदमेमे हार हुई थी, लेकिन अब भी झगडा बन्द नही हुआ था। अपील करनेकी मियाद अभी बाकी ही थी। पूरबवाले मठके बाहरवाले आँगनकी दालान तथा कितनी ही कोठरियाँ अब भी बाबू लोगोके पक्षके कुछ साधुओंके अधिकारमे थी। वहाँके दोनो मन्दिर—गोपालजी और रामजी—के पुजारी महन्तजीके वर्गके थे। एक दिन रामजीके मन्दिरके पुजारी—लम्बाई-चौडाईमे समभुज एक तरुण साधु—गाली देते हुए आये—'हमारे काममे वे बाधा डाल रहे है, कहते है हमारा मठ है। लोग लाठी लिये पूरबवाले मठकी ओर दौडे, किन्तु मारपीट तक नौबत नही आई।

शामको मठके पुरोहित पडित—ओझाजी और तिवारीजी—आये। तिवारीजी यहाँ पच्छिमवाले मठमे रोज़ कथा सुनाते थे, और ओझाजी गोपाल मन्दिरके सामने। ओझाजी सस्कृत अधिक पढे थे, इसलिए उनके साथ मेरा हेल-मेल जल्दी कायम हो गया। तिवारीजी बडे मधुर स्वभावके वृद्ध पुरुष थे। कथा कहते हुए वह भाषार्थ भी कहते जाते थे, किन्तु वह भाषा दुनियाके पर्देपर कही बोली जानेवाली भाषा न थी। उसमे बनारसी 'भया' भी आता था, व्रजभाषाके भी कितने ही सुबन्त-तिङन्त प्रत्यय शामिल थे, और छपराकी बोलीकी गहरी पुट तो होती ही थी। पहिले कुछ रागके साथ श्लोकको पढते, फिर अपने ढगसे अर्थ करते—"वोही समैयाको बीचमो-ों, जे बा-से, रामजीकी-ी हिछासे सुखदे-बजी-ी महाराँ-ँ-ज बो-े-लते-भ-ये। क्या कर-कर-करके, गोविन्दाय-न-मो-े-न-मः. . . ." एकादशीके दिन "एकादशी माहात्म्य"से उस दिनकी एकादशीकी कथा कही जाती।

ओझाजीकी कथा पूरबवाली मठियामे होती थी, इसलिए उसे सुननेका मुझे मौका नही था। उनकी भाषा कुछ कम अस्वाभाविक होती थी। उस दिन शामको जब दोनो पडित जमा हुए, तो महन्तजीने मेरे साधु होनेकेलिए एक अच्छी तिथि निश्चित करनेका प्रस्ताव रक्खा। कितनी ही देर तक पत्रा उलटा गया। मेरी मकरराशि (चो)से ग्रहो और नक्षत्रोके स्थानको मिलाया गया, और अन्तमें कार्तिक शुक्ला एकादशी (वैष्णवी)को सबसे महापुनीत दिन समझा गया। महन्तजीने बहुत सोच-साचकर अपने मृत उत्तराधिकारीका नाम—रामउदारदास मेरेलिए भी तजवीज किया।

एकादशीको मन्त्रदीक्षाकी सारी विधियाँ तो मुझे याद नही, हाँ, उसमे कठी और "रा रामाय नम " मन्त्र देनेके अतिरिक्त, एक और भी विधि हुई थी, जिसका पता यदि बनारसमे लगा होता, तो उतने ही मात्रसे मै परसाका नाम न लेता, लेकिन अब तो वचन देकर बहुत आगे बढ चुका था। बाबू पत्तरसिंहके मुँहकी कहावत याद आती थी—"तेरी माँने खसम किया।" "बुरा किया।" "छोड दिया।" "बहुत ही बुरा किया।" विधि थी पीतलमे बनी शखचक्रकी मुद्राको आगमे लाल करके दोनो बाहुमूलोमे दागना। रामानुजीयो (आचारियो)मे अनिवार्य होनेपर भी, बैरागियोमे यह प्रथा नही थी, किन्तु हमारे महन्तजीने दक्षिणमे अपने पर्यटनके समय आकर्षित हो इसे अपना लिया था। आचारी तो बिल्कुल हल्के तौरसे सिर्फ छुआ मात्र देते थे, जिससे बहुत हल्कासा दाग उतर आता है, किन्तु यहाँ मालूम होता था, जीवित आदमीके शरीरपर दहकती धातु नही लगाई जा रही है, बल्कि डाकखानेमे कोई नौसिखिया आहिस्ते-आहिस्ते मुहर लगा रहा है। खैर, मैने जी कडा करके आँख दूसरी ओर फेर ली थी, समझ लिया था, आखिर ये मिनट भी घटो तक नही चलते रहेगे।

अबसे मै रामउदारदास या सक्षेपमे रामउदार कहा जाने लगा।

मठमे मेरे आरामका पूरा ध्यान दिया जाता था। मै वहाँ वैरागी, तपस्वी साधु नही था, बल्कि एक सुकुमार राजकुमार था, जिसके नहलाने-धुलाने, पैर दबाने, तेल लगानेकेलिए नौकर था। कोट उतर गया था, किन्तु उसकी जगह तानजेबकी चौबन्दी बनी थी। धोती भी शान्तिपुरी पाढकी बारीक, जूता लाल दिल्लीवाल। धूपमे निकलनेपर नौकर छाता लगाये चलता था। पुराने नामराशिकी सारी दिन-चर्या, नौकरोंने मुझे भी सिखला दी। मै भी पहिले नक्कू न बननेके ख्यालसे उसे स्वीकार करता गया, पीछे वह साधारणसी बात हो गई। महन्तजीका स्नेह बढता ही गया। उन्होने अपने सम्प्रदायके बहुतसे चाल-व्यवहारोको सिखलाना शुरू किया। और सचमुच वहाँ पचासो बाते सीखनी थी। पाखानेके वक्त शिरसे हाथ लगाकर नही बैठना चाहिए। वहाँसे लौटते वक्त दाहिने हाथसे लोटा नही पकडना चाहिए। मिट्टीसे हाथ धोते वक्त पहिले बाये हाथमे पाँच बार मिट्टी लगाकर धोना चाहिए, फिर पाँच बार दाहिने हाथको और तब पाँच बार दोनों हाथोको। हाँ, पैरोको भी मिट्टी लगाकर धोना चाहिए। लोटा शुद्ध भूमिपर भी रखते वक्त, पहिले चिल्लूभर पानी गिराकर तब रखना चाहिए। छुरी नही चाकू कहना चाहिए, सागको 'चीरना' नही 'अमनिया करना' कहना चाहिए। इसी तरहकी एक दूसरी शब्दसूची बतलाई

गई, जिसमे बाबूशाही (गृहस्थ) बोली होनेके कारण कितने ही शब्द निषिद्ध हैं, और उनकी जगह साधूशाही कोशके शब्द बतलाये गये। उसी वक्त महावाक्य सुननेमें आया—'बारह बरस रहे साधूकी टोली। तब पावे एक टुटही बोली।'

महन्तजी फलाहार करते थे, यह पहिले कह आये हैं। ग्यारह बजे पूजा-पाठ समाप्त करनेके बाद थोड़ासा दूध पीते, और आध घंटा मठका कारबार देखते, फिर फलाहार बनाने जाते। अब उनका शरीर वृद्ध हो चला था, कमर भी टेढ़ी हो गई थी, इसलिए उनके कानोंने कुछ मुझे भी सहायता देनी जरूरी थी। पहिले मैंने फलाहार बनानेसे शुरू किया। अब मुझे पता लगा, फलाहारमें सिर्फ़ तपस्याका ही ख्याल काम नहीं कर रहा है, बल्कि अन्न ग्रहण करनेपर पंक्तिमे शामिल होना पड़ता, जिसमे जहर देनेका डर था। फलाहारी अवस्थामें भी महन्तजीके एक गुरुभाईने एक बार दूधमें उन्हे जहर दिया था, जिसके पीनेसे वह बाल-बाल बच गये थे। इसी ख्यालसे किसी दूसरेके हाथका फलाहार न खाकर वह उसे खुद बनाते थे। महन्तजीका फलाहार बनाना भी एक अच्छी खासी पाककला थी। उसमें, चावल, दाल, पूड़ी, पकौड़ी, हलवा, खीर, तरकारियाँ, चटनियाँ, पूड़े सभी शामिल थे, और रोज एक दर्जनके क़रीब चीजे बनती थी। चावलके स्थानका स्थान तिन्नी (नीवार) ग्रहण करती, आटेमे गेहूँका स्थान कुटू (बकह्वीट), दाल-बेसनमें अरहर-उड़द-चनेकी जगह बकला (क्लोवर) ग्रहण करता। घी और दूध सिर्फ़ गायका और मीठेकेलिए सिर्फ मिश्रीका व्यवहार होता। अभी तक पाकशास्त्र मेरेलिए सबसे दुरूह चीज थी, और मिला भी तो फलाहारपर उसके प्रयोग करनेका मौका, जिसमें कुटूके आटेका गूँधना तो एक बड़ी टेढ़ी खीर थी। लेकिन धीरे-धीरे गुरुजीने मुझे सब सिखला दिया। रसोईमे पास हो जानेपर उन्होंने अपने पाठ-पूजाकी बातें भी सिखलाई, क्योंकि उनके अस्वस्थ होनेपर वह भार मेरे ऊपर आता।

परसा मठके दो भाग थे—पूरबकी मठिया और पच्छिमकी मठिया—यह मैं पहिले कह आया हूँ। महन्तजी, मैं, तथा कितने ही साधु पच्छिमवाली मठियामें ही रहा करते थे। किसी समय पच्छिमवाले मठमे सिर्फ़ महन्त और दो-चार परिचारक तथा पुजारी ही रहते थे, बाकी सभी साधु पूरबवाली मठियामें रहते। रसोई भी वहीं बनती, और उत्तराधिकारी भी वहीं रहते। किन्तु झगड़ेके बाद रसोई भी पच्छिमवाली मठियामें चली आई, साधू भी ज्यादातर यहीं आ गये, और पूरबवाली मठिया धीरे-धीरे उजाड़ होने लगी। मेरे सामने ही उसका नौबतखाना, बाहरके आँगनके गिर्दका घेरा और पक्की दालान गिर गई, और मेरे सामने ही पच्छिमवाली

मठियाके आँगनके भीतरवाले घर कच्चेसे पक्के हो गए, और बाहर एक नया चौक कई पक्के घरोंके साथ बनकर तैयार होने लगा।

कार्तिकके आखिरी सप्ताह और अगहनके पहिले पखवारे तक सोनपुर (हरिहर क्षेत्र)का मेला लगता है। मेला शुरु होनेसे पहिले ही परसामे मैं पुरान-चिरान हो गया था। गुरुजीके साथ उनकी बग्घीमे बहरौली और एकाध दूसरे जमीदारीके गाँवोमे हो आया था। कनैला, और बछवलमे कभी-कभी घोडेपर चढा था, किन्तु वह घोडे, परसाके पाँच सौके घोडेके सामने गदहे थे। परसाका घोडा बहुत दिनोसे सिर्फ बग्घीमे चलता था, और सवारीकी चाल भूल गया था। परसा पहुँचनेके सात-आठ ही दिन बाद मैंने साईस नकछेदीसे घोडेपर चढनेकी इच्छा प्रकट की। वहाँ खरहरा करनेकी मामूली सीधी-सादी लगाम थी, लेकिन मैंने कहा—'कोई पर्वाह नही इसी लगामके साथ पीठपर गद्दी कस दो।' रिकाब भी मौजूद न थी। मै मठके दर्वाजेसे ही घोडेपर सवार हुआ, और सर्पट दौडाता हुआ एकमाके रास्तेपर बहुत दूर तक ले गया। लौटते वक्त फिर उसी चालसे चला आ रहा था, किन्तु मुख्य सडकसे मठकी तरफ मुडनेवाली सडकके मुडावको देखकर मैंने चाल धीमी करनी चाही। घोडा उस लगामको क्या समझे? मेरा कुछ ध्यान तो अपनेको बचाने और कुछ लगामके सहारे खडा करनेमे बँट गया, इसी बीचमे मठके पासके पुलकी ढालुवाँ जमीन आई, सँभलूँ ही सँभलूँ, कि मठके फाटकपर सीधा ९० डिग्रीका समकोण, इस मुडावमें अपने बोझेको ठीक न कर सका, और घोडेकी पीठसे बाई ओर गेंदेकी भाँति उछाल दिया गया। वहाँ रखी हुई लकडीसे बाल-बाल बचा। चोट नही लगी। धूल झाडकर बहादुर शहसवारकी भाँति खडा हो गया। लोग पहिले चिन्तातुर हुए, फिर मुझे खडा होकर मुस्कुराते देख तारीफ करने लगे—"ऐसे बगैर काँटेकी लगामपर इस तरहके जबर्दस्त घोडेपर सवारी करना ऐसे-वैसे आदमीका काम नही है।"

मठकी बग्घी मुझे बहुत भद्दी मालूम होती थी। थी भी वह गुरुजीकी योजनाके अनुसार मठके गाँव बहरौलीके रामजियावन मिस्त्रीके हाथ की—सोलह आना स्वदेशी—बनी हुई। गुरुजीने भीतर जगह कुशादा रखनेमे फराखदिली रखनेका आदेश दिया था, और रामजियावन मिस्त्रीने बग्घीमे घरके शीशमोकी मामूलसे सिर्फ चार-पाँच गुना अधिक लकडी लगाई। भारीपनको हटानेकेलिए, एकाध बार छीला-छीली भी की गई, किन्तु उससे कुछ हुआ-हवाया नही। मुझे वह भद्दी और चारो ओरसे बन्द, सुस्त सवारी पसन्द न थी। मै चाहता था, तेज सवारी। गुरुजीने परामर्शको स्वीकार कर मेलेसे टम्टम् खरीद लानेकेलिए मुझे ही भेज दिया।

सोनपुरके मेलेको उसके वाद, न जाने कितनी वार देखा, लेकिन वह पहिली बार-की नज़रमें कुछ दूसरा ही जँचा था। कहीं क़तारके क़तार हाथी बँधे हुए हैं, जो जव-तव चिग्घाड़ उठते हैं। कहीं घोड़ोंके अलग-अलग कितने ही वाज़ार हैं—छोटे घोड़े अलग, नेपाली टाँघन अलग, और वड़ी राशिके घोड़े अलग। कितने ही घोड़ोंके ऊपर कपड़ेका सुन्दर चँदवा टँगा हुआ है। वैलों और गायोंकी बाज़ारमें जानेपर अनन्त दूर तक मालूम होता है, उन्हींका हाट लगा है। मेलेमें सवसे अप्रिय चीज़ थी, दिनमें धूल और रातमें धुआँ। मैंने अपनी पसन्दका एक टम्टम् और घोड़ेका नया साज़ ख़रीदा, एक ही दो दिन रहकर टम्टम् लानेकेलिए आदमियोंको छोड़कर चला आया।

नई जगहकी नवीनता भी धीरे-धीरे जाने लगी। मैं अपनी पढ़ाईपर नज़र डालने लगा, तो वहाँ मेरे आसपास और दिनचर्यामें उसका कोई स्थान न था। ख़ैर, मैं "सरस्वती" और 'डॉन' (अंग्रेज़ी मासिक पत्र)का ग्राहक बन गया। इंडियन प्रेसकी छपी कुछ हिन्दीकी पुस्तकें तथा कितने ही संस्कृतके काव्य-नाटक मँगाये। इस प्रकार शून्यता कुछ कम मालूम होने लगी, साथ ही इसमें सहायक हुआ अगले दो-ढाई महीने लगातार दीहातमें घूमते रहना। गुरुजी जानकीनगर, वुचया, कल्यानपुर होते एक ओर गंडकके किनारे सलेमपुर घाट तक पहुँच गये, तो दूसरी ओर गंगा-सोन संगमपर, संठाके पास, मकर संक्रान्तिका स्नान किया। सभी जगह यात्रा उसी वग्घीसे होती रही, मेरा टम्टम् गुरुजीकेलिए कम आरामदेह था।

मठके ज़मींदारीके गाँवोंमें रियायापर ज़मींदारका रोव मेरेलिए एक नई चीज़ थी। ननिहाल और पिताके गाँवमें हम लोग खुद छोटे-मोटे ज़मींदार थे, इसलिए अपने ऊपर ज़मींदारका रोव कैसे अनुभव कर पाते? किन्तु, मैं न समझ सकता था, कैसे यहाँके ज़मींदार अपने काश्तकारोंसे आपसी झगड़ेमें जुर्माना वसूल कर सकते हैं, व्याह-शादी, आना-जाना हर वक़्त हुकूमत और वेगार ले सकते हैं। युक्त-प्रान्तमें जहाँ पटवारी सरकारी नौकर था, वहाँ यहाँ मैं उसे ज़मींदारका नौकर पाता था। पटवारीसे सारे किसान कितनी पनाह माँगते थे, इसका मुझे अनुभव था; इसलिए यहाँ पटवारीके भी ज़मींदारका नौकर होनेकी वात देखकर मैं और समझने लगा किसानोंकी दयनीय दशाको।

मठके नौकर-चाकर मेरा वहुत अदव मानते थे, सिर्फ़ इसलिए नहीं कि मैं नया "पुजारीजी" (परसाके महन्तके उत्तराधिकारियोंका यह भी एक उपनाम था। शायद पहिलेके कुछ व्यक्ति महन्त होनेसे पहिले पुजारी रह चुके थे) था, वल्कि इस-

लिए भी कि मै कागजकी 'उदिया-गुदिया' समझता था, 'पारसी' अग्रेजी सब जानता था। बूढे महन्तजीके बाद मै ही महन्त बनूँगा, इसमे किसको सन्देह था, जब कि मेरा नाम भी वही रामउदारदास पडा था, जिसके नाम महन्तजी महन्ती लिख चुके थे।

कनैला और पन्दहामे ज़मीदारी कागज़पत्रोके देखनेका मुझे कभी मौका नही मिला था, और यहाँके कागजपत्र—'तिरजी', 'सियाहा' आदि बिल्कुल दूसरी ही चीज थे। पहिले तो उधर ध्यान देने हीमे दिल उकताता था, क्योकि साथ ही मै अपनेको विद्यार्थी अवस्थामे भी तो समझता था। देखते-देखते उनका समझना भी आसान हो गया। मठके जमा-खर्चके जगलोको देखना चाहा। मालूम हुआ कि कई सालसे जमाखर्च ही तैयार नही हुआ। महन्तजीमे न उसे समझनेकी शक्ति थी न देखनेकी फुर्सत। पूछनेपर लिखने-पढनेवाले लोग बहानेबाजी करते। खैर, यह तो मुझे मालूम हो गया, कि कर्ज़ बढता जा रहा है, और महन्तजी आमदनी से ज्यादा खर्च कर रहे है। जिस सभामडपकेलिए पत्थर आने शुरू हो गये थे, वह उधारके रुपयेसे बनने जा रहा है। यद्यपि उसके खर्चका तखमीना महन्तजी चार-पाँच हजार लगा रहे थे, किन्तु मै समझ रहा था दस हज़ार, और अन्तमे तो वह पन्द्रह हजार पहुँचकर रहा। मठके भीतरी यन्त्रको बहुत दूर जाकर देखनेकी मुझे बिल्कुल इच्छा नही थी, क्योकि जैसा मै कह चुका हू, मै अपना ध्यान पढनेसे दूसरी ओर नही ले जाना चाहता था, किन्तु जो कुछ देखा, वही कम न था।

तीन महीने बीत चुके थे, अब जनवरी १९१३ ई० शुरु थी, और पढ़नेका कोई भी इन्तिज.म नही। शायद इसका असर भी जाहिर होता, किन्तु इसी समय पत्थरके भेजने तथा कारीगरोके आनेमे कुछ गडबडी हुई, जिसकेलिए महन्तजी फिर बनारस गये—महन्तजीको ठगना आसान था, और वह हमेशा ठगे जाते थे, किन्तु स्वय जाकर—सारी जमातके साथ रेल-भोजन आदिपर चौगुना खर्च करके भी—यदि काम करते थे, तो समझते थे, कि मैने बहुत से रुपये बचा लिये। उनकी अनुपस्थितिमे एक दिन पिताजी और फूफा महादेव पडित परसा आ धमके। जिस खतरेसे मै डरता था, वह खतरा मेरे सामने आ खडा हुआ। सोचने लगा, किस तरह बचा जाये। तै किया—जिस वक्त यह लोग औरोसे बात करने मे फँसे हो, उसी वक़्त भाग चलना चाहिए। दूसरे दिन सबेरे मैने नकछेदीको कहा—टम्टम् कसकर सड़कपर दूर लेकर चलो। 'जी महाराज' कहकर वह कसने लगा। मै मासूमकी तरह फूफाजीके पास बैठा कुछ सुन रहा था। रामदास या किसी दूसरेने इशारेसे बतलाया, कि टम्टम्

चला गया। मैं किसी बहाने उठा, और खिडकीके रास्ते खेतोसे होकर सडकपर पहुँचा। एक बार टमटमपर सवार हो जानेके बाद मेरे हाथमे चाबुक और घोडेकी पीठ थी, यदि वह खडा होनेका नाम लेता। एकमा, दाऊदपुर, कोपा-समहुताके पास पहुँचा। मेरा जिलेसे बाहर कही अनजान जगहमे चला जाना जरूरी था, और टमटम् वहाँ तक जा नही सकता था, इसलिए मैंने नकछेदीको कहा—'टमटम् लौटा ले जाओ, रास्तेमें कोई पूछे तो कह देना, मैं नही जानता कहाँ गये, मैं तो यहीसे उतारकर आ रहा हूँ।'

कोपा-समहुतामे ट्रेन आनेमे देर थी, इसलिए वहाँ प्रतीक्षा करनेकी जगह अगले स्टेशन—छपरा—पर पैदल चलकर पहुँच जाना अच्छा समझा। छपरासे मुजफ्फरपुर, पटना, बनारसकी तरह निकल जा सकता था, और शायद ट्रेनभी थी, किन्तु सबसे पहिले तो अवश्यकता थी, रुपयेकी, जिसके बारेमे परसामे मैंने नही सोचा था, हालाँकि उसकेलिए वहाँ सुभीता था। यहाँ छपरामें मुख्तार ठाकुरप्रसादके सिवाय मेरा कोई परिचित न था। मैंने जाकर उनसे पिता और फूफाके चले आनेकी बात कही, और कहा कि इस वक्त मेरा यहाँसे हट जाना अच्छा होगा, आप कुछ रुपये दे। रुपया कितना भयकर, कितना जहरीला नाम है, जिसके निकलनेके साथ आदमीकी बात, उसकी शान, उसकी इज्जत नगण्य हो जाती है। मुख्तार साहेबके दिलमे भी इसी तरहका कोई भाव उद्भूत हुआ, अथवा उनकी सहानुभूति पिताजीकी ओर हो गई। उन्होने नही तो नही किया, किन्तु 'थोडी देरमे कहेंगे' कहकर शब्दान्तरमे वही कहा।

मैं लौटा आ रहा था, गलीमे पिताजी मिले। मैं ग्यारह-बारह मील टम्-टम्से भी आया था, वह सारा रास्ता—परसासे छपरा—पैदल आये, कैसे वह इतनी जल्दी पहुँच गये? और छपरामे इतनी जल्दी उन्हे जगहका पता कैसे लग गया। मालूम होता है, किसीसे उन्हे ये भेद मालूम हो गये थे, ऐसा भेद बतलानेवाला महन्तजीको प्रसन्न करनेवाला नही हो सकता। पिताजी हाँफ रहे थे उनकी आँखोमे आँसू छलछला आये, कुछ जोरसे बोलना शुरू करना चाहते थे, किन्तु लोग जमा हो जायेगे, इस शर्मसे मैंने कहा—"आप हल्ला न करें, मैं सबेरे परसा चलूंगा।"

वहाँसे हम छावनीमे चले गये, जो सौ गजसे दूर नही थी।

सबेरे जब हम परसा पहुँचे, तो देखा महन्तजी भी आ पहुँचे है। मुझे यह सुनकर बहुत झुँझलाहट पैदा हुई, कि फूफाजीकी बातोमे पडकर महन्तजीने सिर्फ दस दिनके-लिए कनैला ले जानेकी इजाजत दे दी है। फूफाजीकी पडिताईका ओझाजी तथा

दूसरे लोगोपर असर हुआ। उन्होने जब कहा,—'उसकी आजी और बुआ रोते-रोते मरी जा रही है, अब तो बैरागी हो जानेके कारण वह हमारी जातिका भी नही रह गया, सिर्फ दर्शन और सान्त्वना देकर चला आये, बस हम इतना ही चाहते है।' महन्तजीने कहा—'कोई हर्ज नही।'

चलते वक्त रामदास खिदमतगार और हनुमानदास (नेत्रहीन होनेसे जिन्हे हम सूरदास कहते थे) साथी बनाकर भेजे गये। "दस दिनमे भेज देनेकी बात गलत है। वहाँ जाते ही मै नजरबन्द कर लिया जाऊँगा"—मै कितना ही कहता रहा, किन्तु महन्तजीने कहा—हम वचन दे चुके है।

## ८

# पकड़कर कनैलामें

## (१९१३ ई०)

फूफाजीको ब्रह्मपर खास विश्वास था। बछवलमे एक सम्भ्रान्त कायस्थके ऊपर उनका पाँचसौ रुपया कर्ज था दस्तावेज लिखा हुआ मौजूद था। बहानेबाजीमे उसने तमादीकी मीयाद गुजार दी, और फिर मुकदमा दायर करने पर वह खारिज हो गया। मुकदमा दायर करनेसे पहिले मूल रुपया वह शायद देना भी चाहते थे। खैर, मुकदमा हारनेके बाद फूफा साहेबको बहुत क्रोध आया। घरवाले कह रहे थे, पाँचसौ रुपयेकेलिए इतनी चिन्ता क्यो करते है, किन्तु वह कब माननेवाले थे। उन्होने बाल बढाये, पुरश्चरण शुरू किया, और जगवहादुरलालको निर्वंश करनेकेलिए उनके टोलेके कबके भूलेभटके ब्रह्मकी पिंडीपर दूधकी धार चढाकर उसे जगाना शुरू किया। इसी फिराकमे वह हरसूराम ब्रह्मकी शरण तकमे हो आये थे। किन्तु जगबहादुरलालका बाल भी बाँका नही हुआ। हरसूराम ब्रह्मके जोड-तोडके ही मैरवावाले हरिराम ब्रह्म भी थे, और मैरवा हमारे रास्तेमे पडता था, फिर फूफा साहेब वहाँ क्यो न उतरते ?

६ बजे सवेरेके करीब, हम स्टेशनपर उतरे, और मीलभर पैदल चलकर 'बाबाके धाम'पर पहुँचे। यात्री आते थे, पडे भी मौजूद थे, किन्तु पिछले २८ वर्षोमे जो श्री

वृद्धि 'बाबाके धाम'की हुई, वह उस वक्त न थी। बड़ा तालाब, और कितने ही मकान तथा दूकानें जो मन्दिरसे उत्तर आज दिखाई पड़ती हैं, वे सब पीछेकी माया हैं। हम लोग मन्दिरके सामनेवाले कूएँपर बैठे। फूफा साहेब स्नान-सन्ध्यामें लगे और फिर उन्हें हरिराम ब्रह्मका पूजन करना था। मैं इस ब्रह्म-पूजासे मुक्त था, वैष्णव होनेका एक लाभ तो मिला। पंडित बतला रहे थे—हरिरामकी गायको राजाने (जिसके ध्वस्त गढ़को थोड़ी ही दूरपर झरहीके किनारे पूरब-उत्तरके कोनेपर अब भी दिखलाते हुए) ज़बर्दस्ती ले लिया। ब्राह्मण हरिरामने बहुत विनती की, किन्तु प्रभुतामें मदान्ध राजाने एक न मानी। हरिरामने आत्महत्या कर ली। देखते-देखते राजाकी प्रभुता स्वप्नकी तरह विलीन हो गई। 'रहा न कुल कोउ रोवनहारा।' भव्य प्रासाद पस्त होकर मिट्टीमें मिल गये। मैंने कथाको ध्यानसे सुना, किन्तु अब उसमें वह प्रेरणा नहीं मिलती थी, जो दुर्गासाधनासे पहिले ऐसी चमत्कारिक कथाओंमें मिला करती थी।

भैरवासे दूसरी गाड़ी पकड़कर, भटनीमें बदलते हुए मऊ पहुँचे। मऊमें यह मेरा पहिलेपहिल आना हुआ था। वहाँ एक या दो दिन हम लोग ठहरे थे, कहाँ, सो याद नहीं। फूफा साहेब पसंद नहीं कर रहे थे, कि सूरदास और रामदास मेरे साथ जायें। सूरदाससे उन्हें ख़ास तौरसे भय था, क्योंकि वह परसा लौटनेकी ओर मेरा ध्यान दिलाते रहते। फूफाजीकी बोली-बानी देखकर सूरदास भी समझ गये, और उन्होंने एक मित्रसे मिल आनेका बहाना ढूँढ़कर छुट्टी माँगी। मैंने भी इसे पसन्द किया। मैं तो चाहता था, रामदास भी न जावे, क्योंकि बिल्कुल अकेला रहनेमें मुझे भागनेमें सुभीता होता—मैं समझ ही गया था, कि अबकी मेरे ऊपर ज़बर्दस्त देखरेख रखी जावेगी।

मालूम होता है, फूफा साहेबने पिताजीको मेरे बारेमें विशेष ध्यान देनेके बारेमें समझाया था। वह समझते थे, 'गाँवमें अच्छे खाने-पहिननेका सुभीता नहीं रहता है, इसलिए इसका मन वहाँ नहीं लगता। जो पिताजी सादी पोशाक, सादे चाल व्यवहारके ज़बर्दस्त पक्षपाती थे, उन्होंने ज़ोर देकर मेरे लिए गल्ताकी क़मीज़ और किसी वैसे ही सूती-रेशमी कपड़ेका वास्कट वहीं मऊमें सिलवाया। पानके बीड़े ही नहीं आ गये, बल्कि कनैला साथ ले चलनेकेलिए भी सौ-डेढ़ सौ अच्छे पीले पानके पत्ते, कत्था-कसैली, चूना-ज़र्दाके साथ ले लिया गया। मुझे भीतर ही भीतर हँसी आ रही थी।

कनैलामें देखकर सबसे अधिक ख़ुशी नानाजीको हुई। उनका तो लड़कपन हीसे मैं सर्वस्व था। आजी और चाची भी प्रसन्न हुईं, और मुझे भी प्रसन्नता हुई—इससे

मै इन्कार नही करता। कनैला और पन्दहाको देखकर क्यो न मुझे आनन्द होता, वहाँके एक-एक वृक्ष, एक-एक भीटे, एक-एक पोखरे-पोखरी, एक-एक खडहर तकमें मेरे बाल्यकालकी कितनी ही मधुर स्मृतियाँ निगूढ़ थी। गोविन्द साहेब-पीपल अब सूखकर खतम हो चुका था, किन्तु जब मै उधरसे गुजरता तो फागुनके दिनोके प्रहसन याद पड़ते—कैसे रातकी चाँदनीमें एक तरफ स्त्रियोकी और दूसरी तरफ पुरुषोकी जमात बैठती। कैसे बीचमे प्रतिभाशाली तरुण सद्य प्रसूत भावनाओसे प्रेरित हो, लोगोके मनोरजनके लिए तरह-तरहके अभिनय करते—जिनमे कितने ही अश्लील भी होते थे यह ठीक है, तो भी वे मनोरंजनकी काफी सामग्री रखते थे। चूड़िहार नौजवानोके उत्साहके कारण जोगीडा खूब जमता था। फजल, वलीजान, अब्दुलकी उस वक्त बडी माँग थी। फजलकी उस समय की हँसने-हँसानेवाली सूरतको जब कई वर्ष बादकी उस सूरतसे मैने मिलाया, जिसमे नगे शिर, बडी, धोती-काली लुगीकी जगह वह घुटनो तक पायजामा, कुर्ता और सिरपर टोपी रखे हुए था, तो वह मुझे बिल्कुल नही जँची। मै दलसागरपर ब्रह्म बाबाके बर्गदको अपने दर्वाजेसे देख सकता था उस वक्त कामुक सैयदसे नवोढ़ा पत्नीके सतीत्वको बचानेकेलिए ब्राह्मणदम्पतीकी आत्माहुतिसे भी बढ़कर मधुर वह स्मरण मालूम होता, जिसमे पशु-पक्षियो तकको सब काम छोड छायाका आश्रय लेनेकेलिए मजबूर करनेवाली गर्मीकी दुपहरियामे उस बर्गदके नीचे लडके अपनी गाय-भैंसोको जमा कर देते—वे स्वय वहाँ बैठकर जुगाली करने लगतीं—और फिर बर्गदकी घनी शीतल छायासे स्फूर्ति पा ओल्हापाती खेलने लगते। और कही होता तो वृक्षपर चढनेकी कलासे अपरिचित होनेके कारण मै शरीक न होता, किन्तु ब्रह्मबाबाकी धरती-छूती मोटी-मोटी सहस्र शाखाओपर चढने और कूदनेमें हाथ-पैर टूटनेका डर न था। बड़ी, लहुरिया और नाउरकी पोखरियाँ उन कहानियोको याद दिलाती थी, जिन्हे मझली बुआ या माँकी गोदमे लेटा हुआ मै बड़ी तन्मयतासे सुना करता था। सोचता था—कनैलामे भी कोई राजा था, जिसकी बड़ी, लहुरी (छोटी) दो रानियाँ थी, जिसकी चहेती एक नाइन थी, तीनोने इन तीनो पोखरियोको बनवाया था। इन्ही पोखरियोमे मै कभी किशा और बदरीके साथ मछली मारा करता। कनैलाके स्थानोको देखकर पुरानी घटनायें फिर आँखोके सामने सजीव होकर फिरने लगती, और चित्तमे "ते हि नो दिवसा गता."की टीसके साथ एक प्रकारका आनन्द भी प्रदान करती। इस तरह कनैला आना सिर्फ असन्तोष ही असन्तोष पैदा करनेका कारण नही हुआ।

पाँच-सात दिन बाद रामदासने परसा हो आनेकी इच्छा प्रकट की, मैने भी

उनके द्वारा गुरुजीके पास अपनी परिस्थितिको कहला भेजा। रामदास आठ-दस दिन बाद लौट भी आया। लेकिन यहाँ जाने देनेका कौन नाम लेता है? निराश हो रामदास जब परसा जानेकेलिए तैयार हुआ, तो घरवालोंको बहुत सन्तोष हुआ। मैंने भी इसे अच्छा ही समझा, क्योंकि अपने साथ रामदासको भी लेकर भागना ज्यादा मुश्किल था। घास चरनेकेलिए लम्बे रस्सेमें बँधे बछड़ेकी भाँति मेरे बन्धनमें भी। कनैलासे बछवल तक आने-जानेकी गुंजाइश थी। मेरे लिए विशेष खाने-पीनेकी व्यवस्था थी, किन्तु कुटुम्ब-भोजमें अवाञ्छनीय दाल-भातको अमृत बनाकर खानेवाला मन अब भी मेरे पास था, फिर छोटे भाइयों और घरके दूसरे व्यक्तियोंसे पृथक् अपनेलिए विशेष भोजन मुझे क्योंकर पसन्द आता।

रामदासके चले जानेके हफ्ते भर बाद मैंने एक बार मुक्त होनेका साहस किया। भागकर आजमगढ़ स्टेशन पहुँचा, किन्तु ट्रेन पकडनेसे पहिले ही पिताजी वहाँ मौजूद थे। सामने पड़ जानेपर भीड़ इकट्ठा कर बहस शुरू करना मुझे पसन्द न था। मैंने अपनी हार स्वीकार की, और उनके साथ कनैलाकी ओर चल पडा। रास्तेमें वह समझा रहे थे—'तुम्हें गाँवका जीवन पसन्द नहीं। वहाँ खाना अच्छा नहीं मिलता, वहाँ परिष्कृत वस्त्र दुर्लभ है। मैं तुम्हारी जिन्दगी भरके लिए घी-दूध खाने, साफ कपड़ा पहिननेका इन्तिज़ाम कर देता हूँ।' इसके बाद उन्होंने हिसाब भी लगाना शुरू किया, और बतलाया—"इतने मूलधनके सूदसे तुम्हारा काम चल सकता है। तुम कहीं मत जाओ, घरपर रहो, मैं इतना रुपया तुम्हारे नामसे जमा करनेके लिये तैयार हूँ। मुझे उनकी बातोंसे गुस्सा नहीं आता था, मुझे सिर्फ इतना ही ख्याल आता था, कि अपने भावोंको उन्हें समझाना मेरे लिए कितना मुश्किल है। ज्ञानकी भी कोई भूख है, विस्तृत जगत्के देखनेकी भी कोई भूख है, शिक्षित-संस्कृत समाजमें रहनेकी भी कोई भूख है, जो भोजनकी भूखसे हजारों गुना ज्यादा तेज, और सदा अतृप्त रहनेवाली है, इसे मैं समझानेकी कोशिश करता, किन्तु वह उसे सुननेको तब तैयार होते, जब मैं कनैलामें आँखोंके सामने रहने की उनकी शर्तको कबूल कर लेता।

कनैला और बछवलमें लोग ज्यादा सजग हो गये थे, इसलिए इस अवस्थामें कोई साहस करना फजूल था। मुक्ति प्राप्त करनेके लिए विश्वास दिलाकर उनकी उस जागरूकताको खतम करना ज़रूरी था। यागेश आधा प्रयागमें और आधा बछवलमें रहते थे। वह संस्कृत नागरिक समाजमें रहना पसन्द करते थे, किन्तु ज्ञानलिप्साकी वह प्रचंड दावानल जो मेरे अन्तरतममें जल रहा था, उसके प्रहारसे वह बहुत

कुछ सुरक्षित थे। वह अब भी मेरे "नर्मसचिव" थे, इसलिए होलीसे पहिले बछवलमे उन्हे आया देखकर मुझे बडी खुशी हुई। उसी तरह हम चारपाईपर लेटे या बैठे भूत-भविष्यकी कथाये और कल्पनाये किया करते। उसी तरह हम एक साथ कभी कुटी, कभी सकटाप्रसादके बगले और कभी हरेभरे खेतोमे चक्कर काटने चले जाते। कनैलाकी अपेक्षा बछवलमे मेरा दिन अच्छा कट जाता। फूफा साहेब नस लेते थे, उनके छोटे भाई सहदेव पाडे (यागेशके पिता) सुर्ती (खानेका तम्बाकू) और अफीम दोनोके आदी थे। अपने बडे भाईकी तरह उन्होने सस्कृत नही पढी थी, उसकी जगह उन्होने उर्दू सीखी थी। निचले ओठमे सुर्ती दबाये रामायणकी चौपाइयोको बडे रागसे और कभी-कभी वह गदगद हो पढते थे। मेरे प्रति बाहरसे यद्यपि शिष्टाचारका बर्ताव रखते, किन्तु यागेशपर मेरे असरको वह बिल्कुल पसन्द न करते थे। यागेश-की माँ अपने ज्येष्ठ पुत्रकी इच्छाके विरुद्ध जानेकी हिम्मत नही रखती थी, और उनको मालूम था, यागेश और मेरा स्नेह कितना चिरस्थायी है।

मेरी बुआ मेरे लिये अभिमानकी चीज थी, पहिले ही साक्षात्कारके समयसे मै उन्हे मितभाषिणी और गम्भीर होते हुए भी बहुत स्नेहमयी पाता था। मुझे माँकी यह बात याद थी—"उस वक्त मै पहिले पहिल ब्याहके बाद ससुराल आई थी। घरका बडा कुन्बा था। 'मेरी छोटी ननद बरता—अभी ब्याह नही हुआ था—ने दीवारकी आडसे अँगुली दिखलाकर बतलाया था, यह है काका। मैने वही एक बार आँख भरकर अपने ससुरको देखा था। थोडे समय बाद तो वह मर ही गये।" माँ और उनकी छोटी ननद कैसी रही होगी ?—तब तो ससारमे मेरा अस्तित्व भी नही हो पाया था। बुआ ब्याहके बाद जब बछवल गई, तो उन्हे पीसनेकेलिए अनाज बहुत दे दिया जाता था। कनैलामे उनका मायका बहुत धनी न होनेपर भी काफी काम करने-वाले असामियोका स्वामी था, इसलिए ज्यादा काम न करना पड़ता था, और अभी तो वह छोटी लडकी भी थी। उनकी इस तकलीफकी सूचना जब कनैला पहुँची तो जानकी पाडेने अपने भाईको कहा—'मथुरा ! ले जाओ यहाँसे कुछ पिसनहारियोको, और रामटहल तिवारी (?) फूफा (के मौसा जो उस वक्त घरके प्रबन्धक थे) के घरकेलिए छै महीनेकी कुटाई-पिसाई करवा आओ। मथुरा पाडे सचमुच ही मज-दूरिनोको लेकर गये थे। बुआ मुझसे बहुत बाते करती, और उनकी बाते साधारण ग्रामीण स्त्रियोके तलसे कुछ ऊँची हुआ करती, इसलिए उस वक़्त सस्कृतिके नये दिल्दादे मुझे वह पसन्द आया करती। एक दिन गाँवके पच्छिमकी मठिया (टोले) मे रहनेवाली एक वृद्धा स्त्री आई। कमर झुकाये डडेके सहारे चलती थी। मैने बुआसे

उनके घरके बारेमें पूछा। बोलीं—"बचवा! वह जिस वक़्त अपने घरकी बात कहती थीं, तो उनकी आँखोंसे छल-छल बहते आँसुओंको देखकर मुझे भी रुलाई आती थी। कहती थीं, 'बदमली (१८५७के ग़दर)के ज़मानेमें आसपासके गाँवोंको मारती-जलाती गोरोंकी पल्टन हमारे गाँवमें भी आई। उनका गाँव लखनऊके पास था। गोरोंने घरकी तीन तरुण बहुओंको एक्केमें बैठाकर छावनीकी ओर रवाना किया। रास्तेमें दोनों तालाब या कूयेंमें कूदकर मर गईं। मैं अपने भाग्यको कोसती हूँ, मैंने भी क्यों नहीं वैसा ही किया। मुझे जीवनका लोभ हो आया।' वैसे ही भूलती-भटकती मठियाके महन्तके पास आज़मगढ़ पहुँच गईं।

बछवलमें उसी वक़्त एक दुर्घटना घट गई थी। बुआके जेठे लड़के रमेश—उम्र में मुझसे छोटे—बड़े गरम मिज़ाजके थे। एक दिन बात-बातमें एक लड़केसे तकरार कर बैठे, और उसे उठाकर तालाबमें फेंक दिया। मामला पुलीसमें गया, और जाँचमें दारोग़ाके अतिरिक्त इन्स्पेक्टर साहेब आये। गवाही-साखीके वक्त मैं भी रहा। फूफाजीकी पंडिताईका इन्स्पेक्टरके ऊपर भी प्रभाव पड़ा, और लड़कों-का झगड़ा समझा-बुझाकर वहीं दबा दिया गया। इन्स्पेक्टर साहेबका ध्यान मेरी ओर खासतौरसे आकर्षित हुआ था। क्यों? उर्दू-संस्कृत कुछ अंग्रेज़ी जानता था, ·सकी खबर कहाँ तक उन्हें मालूम थी, यह तो नहीं कह सकता; किन्तु मैं उस वक्त ९ वर्षका लम्बा छरहरा, पतला किन्तु स्वस्थ जवान था—गाँवके देखनेवालोंके कहे नु..ार 'निखरी जवानी' थी। पतली साफ़ धोती, लाल जूता, फ़लालैनकी बग़ल-न्दीके विनीत वेषका भी प्रभाव पड़ना ज़रूरी था। पूछनेपर जब फूफाजीने अभि-ान पूर्वक कहा—"मेरे सालेके लड़के—मेरे ही लड़के हैं।' तो इन्स्पेक्टर साहेबने कहा—'ऐसा लड़का मेरा होता तो मैं उसे अंग्रेज़ी पढ़ाता।' शायद डील-डौलको देखकर उनको ख्याल हुआ, अंग्रेज़ी पढ़ाकर एक दिन मेरी तरह इन्स्पेक्टर बनना इसके लिए आसान होता। अब कनैलाका थाना जहानागंज टूटकर चिरैयाकोट हो गया था। एक दिन वहाँके दारोग़ा साहेब ऐसे ही गश्त लगाते कनैला आये। मेरे दर्वाज़ेपर थोड़ी देरकेलिए ठहरे। बनारसके रहनेवाले खत्री नौजवान थे। कालेजसे पढ़ाई छोड़कर पुलीसमें आ पड़े थे। बड़े-बड़े मन्सूबे थे, इसलिए बेचारे वर्तमान परिस्थितिसे सन्तुष्ट न थे। शायद उन्होंने मुझमें कुछ समानधर्मता देखी, इसीलिए तो पुराने स्वप्नोंको मेरे सामने रखने लगे। पुरानें आशाभंग स्वप्नोंका संकथन भी बाज़ वक़्त अच्छा मालूम होता है। मुझे ख्याल आता था, अपने शैशवका ज़माना, एक बार पिताने गाँवके दूसरे घरका कुछ खेत रोक दिया था—हक़का झगड़ा था—,

फौजदारीके मामलेमे जहानागजके दारोगाजी जाँच करने आये। गाँवके बाहर पोखरेके पास पकडीके वृक्षके नीचे चारपाईपर दारोगाजी बैठे थे। आसपास लाल पगडी बाँधे सिपाही और काला कुर्ता पहिने चौकीदार बैठे हुए थे। रात थी, लाल-टेनकी रोशनीमे—लालटेन ज़रूर दारोगाजी अपने साथ लाये होगे, क्योकि गाँवमे अभी मिट्टीका तेल और लालटेन पहुँच न पाई थी—दारोगाजी दोनो ओरके गवाहो-की गवाही लिख रहे थे। मै देख रहा था, किस तरह सारे गाँव और सात-आठ वर्षके बच्चे, मेरे ऊपर भी दारोग़ाजीका रोब छाया हुआ था। बहुत दिनो तक सिउबरती (शिवव्रता मँझली) बुआ, नानी, या दूसरेके मुँहसे कहानियाँ सुनते वक्त राजाका नाम आनेपर मुझे पकडीके नीचेके वह दारोगा साहेब तथा उनके आसपासके सिपाही-चौकीदार याद पडते थे। आज दारोगाजीको मै अपने सामने, किसी ज़बर्दस्ती छीन लिये गए आदर्शके वास्ते अफसोस करते, और अपनेको सवेदना प्रकट करते देख रहा था।

होलीके दिनमे बछवलमे रहा। यागेश प्रयाग लौटनेवाले थे, इसलिए किसी दिन उनके साथ चल देना मेरेलिए आसान था। हम लोग रातको यागेशके ननिहाल शाहपुरमे रहे। उनके मामा लक्ष्मीको बछवलकी पहिली यात्रामे देखा था, उनकी उम्र उस वक्त छोटी थी, और उनकी ज़नानी आवाज़का लोग मज़ाक उडाते थे। वह घरपर न थे। रानीकीसराय स्टेशनसे हम दोनोंका रास्ता दो तरफ होनेवाला था। यागेशकी गाडी कुछ पहिले रवाना हुई। रानीकीसरायको चार साल बाद देखनेका मौका मिला था, किन्तु गाडीकी जल्दीमे मैने उधर ध्यान नही दिया। हाँ, यागेशकी गाडीसे जानेवाले मेरे सहपाठी जहाँगीरपुरके देवकीप्रसाद मिले। हम दोनोने एक साथ निज़ामाबादसे मिडल पास किया था। वह जौनपुरमे अमीनका काम करते थे। दूसरे एक परिचित व्यक्ति पन्दहाके थे। उन्होने मुझे बिल्कुल नही पहिचाना, जिससे मालूम हुआ, कि तबसे मेरे चेहरेमे बहुत परिवर्तन हो गया है। जीवनमे बारह और चौबीस वर्षवाले चेहरेमे बहुत अन्तर होता है। मैने भी उस हालतमे परिचय देना नीतिविरुद्ध समझा।

भटनीमे आकर भेसमे परिवर्तनकी जरूरत पडी। वैरागी साधु चाहे तो सारे मुँह और शिरके बालको मुडा सकता है, या सभीको रख सकता है। मै अब तक कनैलामे गृहस्थ वेशमे था। खैर, नाईने उस कामको खुशीसे कर दिया, यद्यपि मूँछ मूँडते हुए उसे आनाकानी हुई—मूँछ हमारी तरफ वही हिन्दू मुँडा सकता है, जिसका बाप मर गया हो।—हाँ, अब मेरे चेहरेपर ज़रा-ज़रासे बाल उग रहे थे। वेस्टकोट-

को नाईको ही दे दिया—वह वाबूकी साखर्चीपर बहुत खुश था, उसको क्या मालूम था, कि वाबू वेशविरुद्ध समझकर उससे पिंड छुडा रहे हैं।

## ६

# फिर परसा

गुरुजी आशाको विल्कुल तो छोड नही वैठे थे, किन्तु उन्हे मेरे आनेमे सन्देह होने लगा था। मुझे लौटा हुआ देखकर उन्हे वड़ी खुशी हुई। पिता और फूफाजी जान गये, कि मै कहाँ गया हूँ, किन्तु अव वहाँसे लौटाकर लाना अपने वूतेसे परेकी वात समझकर वे चुप रहे। रामदास फिर मेरी खिदमतमे आ गया, और तीन महीने पहिले जैसी दिनचर्या फिर शुरू हुई।

पढनेके वारेमे कुछ कहनेपर गुरुजी साफ इन्कार नही करते थे, कभी कहते 'अच्छा' कभी कहते 'यही ओझाजीसे पढते क्यो नही?' कभी कहते 'मै बूढा हो गया हूँ खड़ा होकर चल नही सकता, न जाने किस दिन आँखे मुँद जायें, तुम मठका कारवार सँभालो।' यह वाते मुझे रुचिकर नही जँचती थी सही, किन्तु मै यह भी देख रहा था कि मठका प्रवन्ध वहुत खराव है, हिसाव-किताबका कोई ख्याल नही करता। आमदनीसे खर्च वहुत ज्यादा था। सरासर घाटेके काम वडे उत्साहके साथ 'लाभदायक उद्योग'के तौरपर किये जाते थे। परसामे मठके बहुतसे धानके खेत थे, जिनकेलिए १०, १५ रुपया एकड पर जोतनेवाले आसानीसे मिल जाते, किन्तु उनको खास 'जिरात'मे रखा गया था। मैने हिसाव करके दिखलाया, कि उन खेतोकी जुताई, रोपाई, निकाई, सिंचाई, कटाई, दँवाईपर जितना खर्च होता है, उतनी भी उनसे आमदनी नही होती, १०-१५ रुपये एकड मालगुजारीका जो नुकसान होता है, सो अलग। लेकिन गुरुजी इस वातको भी नही समझ पाते थे। कारिन्दा समझा देते—"सालमे धानकी कितनी वडी राशि खलियानमे दिखलाई पडती है, सव खरीदना पड़ेगा।" और गुरुजी भी वही दुहराते। मन्दिरके सभा-मण्डपका काम भी घटनेकी जगह वढ़ता ही जा रहा था। उस वक्त वनारसके मिस्त्री उसपर काम कर रहे थे। इन दोनो वातोको रुकवा सकना, मैने अपनी शक्तिसे वाहरकी वात

देखी, किन्तु कर्जका रास्ता रोकना तथा आमदनीके रास्ताको स्थायी करनेकेलिए कुछ करना जरूरी था।

मठका सबसे बडा गाँव बहरौली था, जिसकी सालाना आमदनी साढे पाँच हजार थी। यह गाँव मठके प्रभावशाली सस्थापक बाबा प्रसादीरामको अठारहवी सदीमे दिल्लीसे दान मिला था। गाँवके राजपूत बडे लडाकू थे, मालगुजारी कभी वसूल न होती थी, वस्तुत इसीलिए यह बूढी गायका गोदान हुआ था। परसादी बाबाके अधिकारमे आ जानेपर भी गाँवके राजपूतोके मालिकानाके हकको स्वीकार किया गया था, और सर्कारके पास जमा की जानेवाली मालगुजारीका कुछ हिस्सा "मालिकाना"के तौरपर अब भी उन्हे मिलता है। कुछको छोडकर बहरौलीके सारे खेत रब्बीके है। आजसे पचास वर्ष पहिले बहरौलीकी नीलकोठी सारे उत्तर बिहारमे प्रसिद्ध थी, उसके निलहे साहबोका आसपासके सैकडो गाँवोपर भारी रोब था। कोठीका विशाल बँगला, कितने ही फेक्टरी घर, तथा मशीने उस वक्त भी मौजूद थी। नीलका रोजगार जब जोरो पर था, तो बहरौलीके आधेसे अधिक खेतोमे नीलकी खेती हुआ करती थी। नीलकी खेतीके बन्द होनेपर कोठीका शीघ्रतामे पतन हुआ। कोठी और उसके चारो ओरकी मुकर्री जमीन किसी दूसरेने खरीद ली। मालिककी बकाश्त जमीन मालिकको लौट गई। अभी खूब खाद डालकर नीलकी खेतीमे रहनेके कारण खेत बडे उपजाऊ थे, इसलिए खेतकेलिए भूखे घनी आबादी वाली बहरौलीके किसानोने बीस-बीस, पचीस-पचीस रुपये एकडकी शरहपर खेतोका बन्दोबस्त लिया। अब उन किसानोसे वह रुपया दिया न जाता था, और हर साल बहुतसी मालगुजारी बाकी रह जाती।

उस वक्त इस बाकी पडी मालगुजारीपर मै इस दृष्टिसे नही देख रहा था, मै देख रहा था, हमारे गुमाश्ता, पटवारी मिलकर कुछ ले दे वसूल होनेवाली रकमको भी बाकी रख देते; जब कई वर्षका बकाया जमा हो जाता, तो मालिकसे कहते—'सरकार, वसूल होने लायक नही है, छोड दे।' और इस प्रकार हर साल दो-ढाई हजार रुपये छोडे जाते। यह बात मुझे, मालिकके साथ धोखा देना मालूम हुई। उधर बहरौलीके बा० राजनारायणसिह—जिन्होने अपने उद्योगसे कलकत्तामे जा एक अच्छी सम्पत्ति पैदा की थी—कुछ रुपयोके अगवढके साथ गाँवको ठीकापर लेनेकेलिए तैयार थे। मैने तै किया, गाँवको ठीका लिख देना ही अच्छा होगा। गुरुजी मेरी रायको मान गये, तो भी जिन लोगोके स्वार्थपर धक्का लगता था, वह बराबर उल्टा समझानेकी कोशिश करते रहे—'महाराजजी, ठीका दे देनेपर अपनी ही

ज़मीदारीमे आप पराये हो जायेंगे। इतना जुर्माना, फर्माइश हुकूमतकी आमदनी ठीकेदार हीको न मिलेगी. . .।' पटवारीने सालोसे कागज़ तैयार नही किया था, उसका तैयार करना भी आसान काम नही था। उसीमे महीनों लग गये, और जव ठीकेके कागज़की रजिस्ट्री हो गई, तो मुझे एक भारसा हल्का होता दिखाई पड़ा।

× × ×

रातको मन्दिरकी आरती-पूजा और भोजनसे छुट्टी हो जानेपर और शिष्योके साथ मै भी गुरुजीका चरण दावने जाता था। यह वक़्त था, जव कि गुरुजी अपनी तीर्थ-यात्राओ, अपनी सुनी हुई कथाओ और मठ तथा सम्प्रदायके मौखिक इतिहासको वतलाते थे।

परसादीरामकी गुरुपरम्परा पीछे जाती हुई शाहजहाँ—औरंगज़ेवके समकालीन सन्त धरणीदास तक पहुँचती है। वह एक अच्छे सन्त कवि हो गये है। परसादी-रामके वाद रामसेवकदासजी महन्त हुए। इन्हीके ज़मानेमे सारन ज़िला कम्पनीके अधिकारमे गया। रामसेवकदासके शिष्य रामचरणदास कुछ दिनो अंग्रेजी पल्टनमें सिपाही थे। गुरुके मरनेपर उनके पुत्र लक्ष्मीनारायण महन्तीके दावीदार थे। हथुआके वावू छत्रधारीशाही, जो पीछे अपनी सेवाओके कारण महाराज छत्रधारी-शाही (वर्तमान हथुआ राजवंशके पूर्वज) वने, उनकी पीठपर थे। हथुआ राज्यकी ओरसे झरहीके किनारे—रामनगर आदि पाँच गाँव परसा मठको मिले थे, इसलिए मठके उत्तराधिकारके प्रश्नपर मेरा भी वोलनेका अधिकार है, यह उनका कहना था। दूसरे पक्षने—जिसमे परसाके वावू लोग शामिल थे—श्री रामचरणदासको कह-सुनकर परसा ले आ, उनकी ओरसे महन्तीका दावा दायर किया। लड़ाई वहुत दिनो तक होती रही, अन्तमे रामचरणदासकी जीत हुई, और परसामठ गृहस्थके घरके रूपमे परिणत होनेसे वच गया। इसी मुक़दमेमे वहरोलीवाली वादशाही माफीकी सनद अदालतमें जमा हो गई, और दायमी वन्दोवस्तके दुवारे सर्वेमें पेश न कर सकनेके कारण वहरोलीपर सर्कारी मालगुज़ारी वँध गई, जो आसपासकी शरहसे ज्यादा थी। रामचरणदासके महन्त होनेपर वावू छत्रधारीशाहीने अपने राजकी ओरसे दिये गये पाँचो गाँवोको परसासे लौटा लिया।

सन् सत्तावनके ग़दरमे विदेशी शासकोके खिलाफ देशके विरोधको देखकर रामचरणदासके वूढे शरीरमे भी एक वार सिपाही खून जोश मारने लगा। उन्होने परसाके ठठेरोको वुलाकर तोप ढालनेकी सलाह शुरू की। गढके वावुओने वहुत हाथ-पाय जोड़कर उन्हें वैसा करनेसे रोका। वावा रामचरणदास वडे दीर्घजीवी रहे,

कहते है वह सौ वर्षसे ऊपर तक जिये, और उनके दाँत फिर से निकल आये थे। दान देनेमे भी वह बडे मशहूर थे। सामने जो कुछ आता उसे देनेमे सकोच नही करते। मठका कारबार छोटे महन्त श्री रघुवरदासने सँभाला था, उस वक्त मठके हाथीको दान हो जानेके भयसे परसा मठपर आने नही पाता था।

हमारे गुरुजीके गुरु श्री रघुवरदासजीमे कोई खास विशेषता न थी, सिवाय इसके कि वह अपने मठकी सम्पत्तिका अच्छा इन्तिजाम कर लेते थे। इन्तिजाम करनेकेलिए मठका एक और अधिकारी था जिसे 'अधिकारी जी', कहा भी जाता था। वस्तुत अग्रेजी राज्यने—हर तरहकी सम्पत्तिपर व्यक्तिका निस्सीम अधिकार—इस एक ही लाठीसे सबको हाँककर मठकी सम्पत्तिपर व्यक्तिका एकाधिकार जिस तरह कायम कर दिया वैसा पहिले था भी नही। पहिले महन्तको मनमानी करनेसे रोकनेका अधिकारीको अधिकार था, और महन्तपर दूसरे साधुओ, गृहस्थो तथा सम्प्रदायके मडलका अधिकार होता था। परसामे मेरे आनेसे पहिले ही अधिकारीका स्थान रिक्त हो गया था, और गुरुजी अपने स्वातन्त्र्यमे बाधक समझ अभी उसकी स्थापनाके बारेमे सोच भी नही रहे थे।

परसाका मठ किसी समय कइलके मठसे निकला था। उसके सस्थापक केवलरामके उत्तराधिकारी गृहस्थ हो गये, और आज उस मठमे उन्हीकी सन्तान गृहस्थ वैरागीके तौरपर रहती है। केवलरामके गुरु माझीके धरणीदास थे, यह बतला चुके है। इस प्रकार परसा मठका नम्बर माँझी और कइलके पीछे पडता है, किन्तु वैरागी जगत्मे परसा हीका नाम ज्यादा प्रसिद्ध है, उसकी वजह यही है कि परसादीरामकी शिष्यपरम्परा ज्यादा बढी, और पिछली दो शताब्दियोंमे वह युक्तप्रान्त और बिहार ही नही पजाब, महाराष्ट्र और बगाल तक फैल गई। उसकी शाखा-मठोंकी सख्या आज सैकडों है। उस वक्त गुरुजी इन मठोंके नाम तथा उसके सस्थापकोकी विशेषताये बतलाते। वह खुद भी बहुत घूमे हुये थे। साथ ही कभी-कभी उन मठोके साधु मूलस्थानको देखने परसा आया करते थे, उनसे भी बाते मालूम होती थी।

यद्यपि वह नही चाहते थे, कि मै परसासे जाऊँ, तो भी वह आपबीतीसे जानते थे, कि मै किसी वक्त चला भी जा सकता हूँ, इसलिए 'करम-धरम' (साम्प्रदायिक चाल-व्यवहार) सिखलानेमे बडी तत्परता दिखलाते थे। 'रामपटल' और 'रामपद्धति'-की छोटी-छोटी पोथियाँ मेरे हाथमे थमा दी गई थी, और रोज़ आग्रह होता था—'इसमेंसे धाम-क्षेत्र पच-सस्कार याद कर डालो। वेदान्त और भगवतीके महामन्त्रकी सिद्धिकी जिसपर मार पड चुकी हो, उसे आर्यसमाजकी छीट न पडनेपर भी, ये

पटल-पद्धतियाँ खिलवाड़सी थी, तो भी अब उन्हे देखना तो जरूरी था। इसमे शक नही कि, धर्म और वैराग्यकी खोजमे मै परसा नही आया था, मै वहाँ आया था शास्त्र और ससारके विषयमे विस्तृत ज्ञानके सुभीतेके ख्यालसे। परसामे एक दिन एक पडितसे मेरी बहस होने लगी, अद्वैत वेदान्तका पक्ष ले मै बोल रहा था। गुरुजीको वेदान्तके सूक्ष्म सिद्धान्तोसे क्या मतलब ? तो भी वह यह जानते थे, कि अद्वैत वेदान्त शकराचार्यकी चीज है, इसीलिए मुझसे कहा—यह हमारे सम्प्रदायका सिद्धान्त नही है। मुझे यह भी एक नई सी बात मालूम हुई, क्योंकि मै रामानन्दके शिष्य कबीर, तथा रामानन्दीय तुलसीदासको अद्वैत वेदान्तका प्रेमी मानता था।

'पञ्चसस्कार'की सोलहो आना जाली 'श्रुतियाँ' तो मुझे असह्यसी मालूम होती थी, क्योकि रुद्री और यजुर्वेदके बहुतसे अध्यायोको स्वर सहित पढा होनेसे मै पहचानता था, कि वेदके मन्त्रोकी भाषा कैसी होती है। किसी नये मठ या साधुके पास जानेपर, उसके असली-नकली पहचानकेलिए धाम-क्षेत्र सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाते है। गुरुजीने उसके कुछ प्रश्नोत्तर मुझे निम्न प्रकार बतलाये—

"कौन स्थान है महात्मा।"

"परसा।"

"आपके गुरु महाराजका नाम क्या है ?"

"श्री श्री श्री लक्ष्मणदासजी महाराज।"

"कौन अखाड़ा है ?"

"दिगम्बर।"

"कौन द्वारा है ?"

"सुरसुरानन्द।"

आमतौरसे यही प्रश्न काफी होते है। धामक्षेत्रमे वैष्णवोके चारो सघ-बद्ध सम्प्रदायोके अलग-अलग 'अयोध्या धर्मशाला, चित्रकूट सुखविलास' आदि सूची दी गई है। पाँच-सात बारके कहनेपर भी मुझे उन सूचियोको रटते न देख गुरुजीने चेतावनी देते हुए कहा—'यदि याद नही करे रहोगे, तो बालाजी (तिरुपती)मे पघत (पक्ति)से साधु उठा देगे।'

मैने उत्तर दिया—"पघतमें बैठनेकी नौबत आनेसे पहिले मुझे सारे धाम-क्षेत्र, पचसस्कार याद हो गये रहेंगे।"

× × ×

आजमगढ और छपराके जिलोके बीचमे सिर्फ बलिया या गोरखपुरमेंमे एक जिलेका अन्तर है। उन दोनोकी भाषा भोजपुरी है, और आजमगढके कुछ थानोमे तो उसकी उपशाखा वही मल्ली बोली जाती है, जो छपरामे। यद्यपि कनैला और पन्दहा दोनोंकी भाषा काशिका (बनारसी) उपशाखाके भीतर पडती थी, और इस प्रकार छपराकी भाषासे अन्तर था। इसी तरह कितने ही ग्रामीण आचारो और पूजा-प्रकारोमे भी अन्तर दिखलाई पडता था। जब पहिली बार बहरौलीमे मुझसे कहा गया—आज छठका पर्व (कार्तिक शुक्ला षष्ठी सूर्यपूजा) है, तो मुझे यह नही मालूम हो सका, कि आज हिन्दू-घर रातको कई घटोकेलिये स्त्रियोसे शून्य हो जायेंगे। औरतोकी बटगायनोमे भी मुझे कनैला-पन्दहासे यहाँ फर्क मालूम होता था। मेरेलिए यह भी तअज्जुबकी बात थी, कि खासतौरसे पहिलेसे इन्तिजाम न करनेपर बहरौली जैसे बडे गाँवमे भी अरवा चावल—वैष्णव साधु उसीको खा सकते थे—नही मिल सकता, घर-गाँव, हाट-बाजार सभी जगह लोग 'उसिना' चावल (उबले धानका चावल) खानेके आदी है।

मठके साधुओके साथ मेरा बर्ताव सदा सहृदयताका रहता था। ज्ञानप्राप्तिमे सहायताके सिवाय मठके अधिकारको मै और किन्ही अर्थोमे नही लेता था। यद्यपि भविष्यकी रूपरेखा मेरे सामने साकार नही थी, तो भी उस वक्त भी मुझे मालूम होता था, कि परसा मेरा 'अथ' और 'इति' नही होगा। मठमे साधुओकी सख्या १५, १६के करीब रहती थी। मै उन दिनोकी बात बडी ईर्ष्या से सुनता था, जब परसा-मठकी 'पघत'मे सौसे कम साधु नही बैठते थे। मेरे गुरुभाइयोमे श्री सीतारामदास शुरू हीसे मेरे स्नेहके भाजन रहे। एक और तरुण गुरुभाई—जो थोडीसी लघुकौमुदी भी पढे थे—से तो इतना स्नेह हो गया था, कि जब पहिली लम्बी यात्रासे लौटकर आनेके बाद मुझे मालूम हुआ कि उनका देहान्त हो गया, तो इसका मुझे बहुत दिनो तक अफसोस रहा। मेरी कोठरीके बाहर मौनीबाबाका आसन था। वह भी परसा मठके हितैषी सरल साधुओ मे से थे। वह कभी नही बोलते थे, किन्तु अँगुलियो और आँखके इशारेसे सभी बाते समझा देते थे, और स्लेट पेन्सिलकी बहुत कम जरूरत पडती थी। महन्तजीका उनपर बहुत विश्वास था। वह भी मठके कुप्रबन्धसे बहुत दुखित थे, किन्तु करते क्या ? मठके स्थायी साधुओमे सूरदास और माधवदास दो भाई थे। सूरदास—यह नेत्रहीन होनेके कारण उनका नाम पडा—समझदार थे, किन्तु उनके भाई माधव-दास आठ वर्षके बच्चेके बराबर बुद्धि रखते थे। तरुण लडके और छोटे-बडे मठ-वासियोकेलिए वह मनोरजनकी एक सामग्री थे। भात बनानेके बडे बर्तन उन्हे

मलनेकेलिए दे दिये जाने और कहा जाना—माधवदास जाओ आजसे तुम 'टोकना" (देग)के महन्त बना दिये गये। मजाक समझ जानेपर भी वह नाराज नहीं खुश होते। सुदर्शनदासकी कथा बड़ी मनोरंजक है। सोलह-सत्रह वर्षकी उम्रमें वह महन्तजीसे शिष्य होने आये थे। दालानमें सोये हुए थे। एक दूसरे साधूको बात मालूम हो गई, उसने तुलसीकी कंठी ले धीरेसे गलेमें बाँध दी, जिस वक्त वह कानमें मन्तर फूंक रहे थे, उस वक्त नींद खुली। अब क्या करते? चेला तो बन चुके थे. अन्तमें वही सम्बन्ध स्थायी बन गया। एक आधा-पागल साधु रामदास(?)हमेशा अस्तबलमें रहता। देग मलनेका काम उससे लिया जाता। नहाते उसे कभी किसीने नहीं देखा। जिस पुआल और चटाईपर सोता, उसे कभी बदलता नहीं था। एकाध बार उसके बदनसे दबकर मरे साँप बिस्तरेके नीचे पड़े मिले। इतना होनेपर भी पैसा जमा करनेमें उस्ताद था। परसासे एकमा जानेवाली सड़कपर, प्रायः आधी दूर बर्गदके नीचे एक बिना गचका कुआँ था। वह लोटा-डोर लेकर आने-जानेवालोंको पानी पिलाता। बंगालसे लौटनेवाले कितने ही मुसाफिर एकमा स्टेशनसे उतर इसी रास्ते लौटते। पानी पिलाकर बड़े मधुर स्वरमें कहता— 'भैयाजी! और सबी तो पूरी हो गई। रामजीकी दयासे कूआँ भी बँध गया, अब इसकी मनको पक्का कर देनेकी सबी और बाकी है। जो आना-दो आना, पैसा-दो पैसा बन सके, धरमके काममें मदद करें।' और उसे पैसे मिल जाते थे। लोग समझते थे इसी साधूने कुआँ बनवाया है।

साधुओंमें पढ़ने-लिखनेका अभाव था, और उसकेलिए प्रोत्साहन भी नहीं दिया जाता था। वहाँ चाहिए थे ऐसे साधु, जिनके पास कमसे कम दिमागी सम्पत्ति हो। जो बर्तन मल सकें, झाड़ू दे सकें, खाना बना सकें, हजारों छोटे-मोटे शालिग्रामोंको 'नहला' (धो)कर उनपर थोड़ा-थोड़ा चन्दन और एक-एक तुलसीका पत्ता डाल सकें, राम-लछमण-सीता, या राधा-गोपालकी मूर्त्तियोंके समय-समयपर नया कपड़ा बदल सकें, आरती दिखला सकें, तथा सबेरे झाल-ढोलक लेकर वे सुर-तालके भजन गा सकें, और रातको दूकानसे छुट्टी पाकर आये बनिया भगतोंके साथ मिलकर रामायणके संगायनके नामपर खूब गला फाड़ सकें। इससे ऊपर यदि किन्हींकी जरूरत थी, तो महन्तजीकेलिए एक 'हजूरिया' (साधु खिदमतगार), एक भंडारी (भंडारके सामानको देने-लेनेवाला)की. जिनमें कुछ साक्षरता हो तो अच्छी बात। शरीरसे कुछ काम कर देना, दोनों शाम खा लेना, और समय बचे तो कुछ गला फाड़ लेना या गप्पें उड़ाना

बस यही वहाँके साधुओंकी दिनचर्या थी—वही क्यो दूसरे वैरागी मठ भी इससे बेहतर हालतमे नही थे ।

हमारे नौकरोमें कोचवान नकछेदी थे, जिनका लडका रामदास मेरा अपना खिदमतगार था । नकछेदी बहुत सीधे-सादे बूढे आदमी थे । गुरुजीके उस वक्तके खिदमतगार ढुन्मुनके बाप और नकछेदीसे जब भेट हो जाती, तो मज़ा आ जाता । ढुन्मुनके बाप चुपकेसे बिना जताये गोली दागनेकी तरह नकछेदीके पास जाकर हाथ धरतीकी तरफ बढा बोलते—"पान (पाव) लगी, नकछेदी भाई !" "पान ल अरे यह क्या बडा भाई छोटे भाईको कही 'पान' लगता है ?"

"बडे भाई तुम ही हो न ?"

"कहनेसे हो जायेगे ?"

"तो किसीको पच बद ले ?"

"पच बदनेकी क्या ज़रूरत ? (नकछेदी राउतको पास-पडोसमे किसीकी ईमानदारीपर विश्वास नही था) वह तो दोनोका चेहरा ही देखनेसे मालूम हो जायेगा ।"

"बालकी कम-बेशी सफेदीसे उमर नही पहिचानी जाती ?"

"तो चमडेकी झुर्रियोसे ?"

"हाँ" फिर सन्देहमें पडकर "नही, सारा गाँव जानता है, कौन बडा कौन छोटा है ।"

"तो नकछेदी भाई ! और किसीको पच नही मानते, तो भौजी (भाभी)को ही पच मान लें, वह जिसको छोटा कहे वही छोटा ।"

"हूँ" हँसीको ओठोसे बाहर न जानेकेलिए पूरा प्रयत्न करते हुए "भसुर (बडे भाई)के सामने भवेह (छोटे भाईकी स्त्री) कैसे आयेगी ?"

"भावजको भवेह मत बनाओ, नकछेदी भाई !"

नकछेदी पूरी कोशिश करते, किन्तु ढुन्मुनके बापकी बहस तथा पचोका रुख उनके खिलाफ जाता ।

× × ×

मेरेलिए परसाका निवास बौद्धिक अनशन था । किस तरहके समाजमे रहना पड़ता था, इसका कुछ दिग्दर्शन ऊपर करा चुका । इसके अतिरिक्त यदि कोई थे, तो खुशामदी जीहुजूरिये । उनकी बातोको सुननेसे मालूम होता था, मठ और उसके भगवानके वे कितने अनन्य भक्त है, किन्तु मौका पाते ही उन्हे आँखमे धूल झोकते देर न लगती थी । बडा घोडा बग्गीमे चलता था, जिसकी अवश्यकता गुरुजीको

भी रहा करती थी, इसलिए चैतमे, डुमरसनके मेलेसे मैंने सवारीकेलिए एक घोडा ख़रीदना चाहा। मैंने अपने जान एक विश्वसनीय आदमीको दाम ठीक करनेमे मदद देनेकेलिए चुना। सवासौ रुपयेमे घोडा लिया गया, लेकिन पीछे मालूम हुआ, घोडा पचहत्तरसे ज्यादाका कभी नही हो सकता। वह सारा वायुमडल सड़ाँद से भरा मालूम होता था। मेरा वही समय अच्छा गुजरता, जब कि 'सरस्वती'के नये आये अकको या किसी और नई पुस्तकको पढता। उस समय हिन्दी-साहित्य आरम्भिक अवस्थामे भी था। पूजा-पाठकी तरफ मेरा मन न लगता था। सबेरे स्नान करके कोठरीमे जाता। लोग समझते 'पुजारीजी' पूजा-पाठमे लगे है, और यहाँ पुजारीजी दर्वाजा बन्द कर बिस्तरेपर खूब पैर फैला लेटे हुए है, अथवा कोई उपन्यास या "सरस्वती"का अक पढ रहे है। मन्दिरके पुजारी दूसरे ही थे, किन्तु यदि कभी मेरे मत्थे पडा, तो पाँच मन शालिग्रामोको बडे थालमे दो-दो घडे पानीसे एक-एक करके धोना मेरे बसकी बात न थी। सौभाग्यसे स्नान-शृगारके वक़्त मन्दिरके दर्वाजेसे पर्दा लटकता रहता था। उस वक्त मै एक-एकको अलग धोनेकी जगह अजलीकी अजली पानीमे डुबोकर रखता जाता। यदि कपडा मजबूत होता, और मै अपने दोनो हाथोसे सारी ढेरीको उठा सकता, तो एक ही बार डुबोके रख देता। श्रद्धाके साथ अत्याचार करनेका यही नतीजा होता है। अभी तक मै आर्यसमाजके मूर्त्तिविरोधी प्रभावमे नही आया था, तो भी मेरेलिए शालिग्रामके वह काले-काले गोल-मटोल चिकने पत्थर निरे पत्थर थे। बेगारकी तरह उनपर चन्दन और तुलसीदल भी डाल देता। जल्दी पर्दा हटा देनेपर डर था सन्देह होनेका, इसलिए भीतर ही बैठा एक शालिग्रामको दूसरेसे लडाया करता।

परसामे यदि किसी आदमीसे मिलनेमे मुझे प्रसन्नता होती, तो देवरिया (डेवढिया)के ओझाजी थे। सिद्धान्तकौमुदी (व्याकरण)के कितने ही भागको समाप्त कर चुका था, तो भी मुझे रस आता था काव्यशास्त्रके विनोदमे। कादम्बरी तो नही किन्तु दशकुमार चरितका बहुतसा अश मै पढ चुका था, नाटक तो कई, काव्यमालामे छपे भी कितने ही। एक दिन याद है, पडितराज जगन्नाथपर हम वार्तालाप कर रहे थे, और शाहजहाँके इनाम देनेकी बात कहनेपर पडितराजने कहा था—

"न याचे गजालिं न वा वाजिराजिं, न वित्तेषु चित्त मदीय कदापि
इय सुस्तनी मस्तकन्यस्तहस्ता लवगी कुरगीदृगङ्गीकरोतु ॥"

आजसे तीनसौ ही वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण महान् विद्वान्‌ने 'यवन' तरुणीसे ब्याह किया था, इसका मेरे दिलपर, सामाजिक रूढियोको लेकर, क्या प्रभाव पडा था,

उसे नही कह सकता। वस्तुत, उस समय मेरे दिलपर सबसे अधिक असर यदि किसी विचारधाराका था, तो वह वेदान्तका, और वेदान्ती व्यवहारमे सडियलसे सडियल, सरासर बेवकूफीसे भरी, नितान्त परस्पर-विरोधी बातोपर भी विश्वास करनेका विधान करते है।

## १०

# परसासे पलायन

## ( १९१३ ई० )

बहरौलीके ठीकेपर चले जानेसे प्रबन्धका कुछ काम मैने सम्पादन कर दिया था। इधर बौद्धिक अनशनमे भी सब्रका प्याला लब्रेज हो चुका था। अबके लीची-आम-कटहलके फल खूब डटकर खाये, और उनकी फसले भी समाप्तिपर पहुँच गई थी। गुरुजीसे मद्रास और बम्बई प्रान्तके तीर्थो और वहाँके वैरागी स्थानोके बारेमे भी काफी सुन चुका था। पढनेकी इच्छा तो प्रबल हो ही रही थी, साथ ही बाजन्दाने भी दिन-रात रट लगानी शुरू की—

"सैर कर दुनियाकी गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?
जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ ॥"

किसीको मनकी बात बतलाना, यहाँ भी कनैलाकी भाँति ही नीतिके विरुद्ध था, गुरुजीकी ओरसे जरूर बाधा पहुँचाई जाती। मैने मन्दिर बनानेवाले बडे मिस्त्री महावीरराम—जो बनारसके होनेसे मेरे ज्यादा विश्वास-भाजन थे—से तीन रुपये लिये, और रातको ट्रेनसे थोडा ही पहिले जा एकमा पहुँचकर गाडी पकडी (जुलाई १९१३)। दो-एक सस्कृत पुस्तके, दो धोतियाँ, दो लँगोटियाँ, गमछा और बिछौने-केलिए आलवानका एक पल्ला मात्र मेरे पास था। ज्यादा चीज ले ही कैसे सकता था ? एकमासे हाजीपुरका टिकट खरीदा।

हाजीपुरमे सबसे पहिले ज़रूरत पडी लोटेकी। लोटेके विना किसी साधुके स्थानपर जा कैसे सकता—तुरन्त कह बैठता, लोटे बिना यह साधु अपना 'करम-धरम' कैसे निबाहता है ? आठ आनेमे पीतलका बगाली लोटा लिया—पैसेको कमसे

कम खर्च करना जो था। यह पहिली बार रमते साधुके तौरपर मुझे किसी स्थानमे जाना पडा, इसलिए परीक्षामे उपस्थित होनेवाले विद्यार्थीकी तरह दिलमे धकधकी हो रही थी। 'अखाड़ा-द्वारा' तो खैर याद ही था। रातको रेलकी बत्तीके सहारे मैंने 'धामक्षेत्र' 'पचसस्कार'के भी कितने ही अंशोको रट लिया था—कही कोई पूछ न बैठे। रामचौरा मठमे गया। किन्तु वहाँ परसा स्थान भर बतलानेकी जरूरत पड़ी, बाकी मेरा भव्य वेश बतला देता था।

परसासे प्रस्थान करते वक्त यह तो निश्चय कर लिया था, कि अबके मद्रासकी ओर चलना है, किन्तु कैसे, यह तै नही पाया था। अब निश्चय किया, कि रेलके लिए पैसा भी नही है, और पैसा होनेपर भी पैदल ही चलना उत्तम। पिछली बार तो मै कनैलासे मुरादाबाद तक सर्पगतिसे मार्गकी सारी भूमिको स्पर्श करते गया था, अबके मंडूक-प्लुति (मेडक-कुदान) कर रहा था। हाजीपुरमें मै एक-दो दिन रह रेलसे बरौनी पहुँचा। शाम होनेको आई थी, मै स्टेशनसे पच्छिमवाले नजदीकके गाँवमे गया। सस्कृत भाषणके भरोसे समझ रहा था, किसी सस्कृतज्ञके यहाँ रातभरको शरण मिल ही जावेगी। किन्तु, वहाँ जिस ब्राह्मण देवतासे मुलाकात हुई, उन्हे जब मालूम हुआ कि मैं वैरागी हूँ, तो उसका मुँह बिगड़ गया। अवहेलनापूर्वक एक चौपालकी-सी जगह बतला दी। मै क्या-क्या विचारता वहाँ जाकर सो रहा।

सबेरे घाटकी गाडी पकड, गगा पार हो रेलद्वारा लखीसराय पहुँचा। पूछनेपर साधुके स्थानका पता लग गया, और सडकसे दाहिनी ओरके मुहल्लेमे उस छोटीसी ठाकुरबाडीमे पहुँचा। वहाँ सिर्फ एक मूर्त्ति साधु थे। अच्छी तरह आसन लगवाया। उनके मधुर वार्तालापसे चन्द ही मिनटोमे मालूम हुआ, कि मै किसी अपरिचित स्थानमें नही हूँ। तीन रुपये की पूँजी खतम होने जा रही थी, इसलिए यहाँसे आगे पैदल चलने की सोच रहा था। रास्तेके बारेमे जब स्थानीय महात्मासे पूछा, तो उन्होने कहा—आगे बैजनाथका जगल आयेगा; इसमे चोर-डाकू लगते है, आपके पास कुछ है या नही यह वे क्या जानेगे; पहिले विषबुझा उनका तीर आपको लग जायेगा, फिर आकर टटोलेगे। अन्तमें उनकी सलाहसे मैंने यही तै किया कि आसनसोल तकके रास्तेको रेलसे पार कर लिया जावे जिसमे जंगल भी खतम हो जावे, फिर पैदल चला जायेगा।

नदी पार क्यूलमें गाडी पकडनी थी। वहाँ पहुँचनेपर मालूम हुआ, गाडीमें कुछ देर है। एक मुसल्मान टिकट-कलेक्टरसे पूछ-ताछ करने लगा। उन्होने बडी

नम्रतासे सब वतलाया, और साथ ही मेरे बैठनेके लिए कुर्सी मँगवाकर रख दी, खाने-पीनेका आग्रह करने लगे। पहिले मुझे समझमे नही आया, क्यो वह इतना अधिक सन्मान प्रदर्शन कर रहे हैं। मेरे बदनपर शान्तिपुरी पाढकी सफेद नफीस धोती सादगीके साथ अँचलेके रूपमे बँधी थी। बदनपर दूसरा कुर्ता आदि कुछ नही था। हाथ और पैरका बहुतसा भाग खुला था। दूसरी धोतीमे पुस्तक लगोटीमे लिपटी बाँधी थी। कन्धेपर, शायद, साफ पतला गमछा था। शिर और पैर नगे थे। अच्छा खाने-पीने तथा घोडेकी सवारी करते रहनेसे शरीर मासल और दृढ मालूम होता था, ऊपरसे सुगन्धित तिलके तेलकी रोजाना मालिशने चमडेको स्निग्ध और छायावासने उसे शुभ्र बना दिया था। क्या इस आकृतिने टिकट-कलेक्टरपर प्रभाव डाला था ? कुछ जरूर, किन्तु अधिक असर मेरी भाषाका पड रहा था। शायद टिकट-कलेक्टर युक्तप्रान्तके रहनेवाले थे, मेरी उर्दू तथा उसके परिष्कृत उच्चारणसे वह ज्यादा प्रभावित हुए थे।

ट्रेन आई। बहुतसे कम्पार्टमेंट खाली थे। मै एक कम्पार्टमे, टिकट-कलेक्टरसे कृतज्ञता प्रकट करते हुए चढने जा रहा था, कि बगलके कम्पार्टमेंटमे बैठे एक सज्जन बोल उठे—'इसी कम्पार्टमेंटमे आइये महाराज !' मै उसमे चला गया। टिकट-कलेक्टरसे 'आदाब' हुआ, कुछ मिनटोमे गाडी चल पडी।

हमारे कम्पार्टमेंटके दूसरे साथीने बात शुरू की। स्थान पूछनेपर परसा बतला दिया, व्यवसाय तो साधु था ही। कहाँ जा रहे है ?—जहाँ सीग समाये, लेकिन अभी आसनसोल तक। उनके बारेमे पूछनेपर ज्ञात हुआ, वह बाढके वकील युगेश्वरी-शरण(?) कचहरीकी छुट्टियोमे पुरी, रामेश्वर और शायद द्वारिकाके भी दर्शनके लिए निकले है। प्रारम्भिक परिचयके समाप्त होनेके बाद उनका सबसे ज्यादा आग्रह था, आसन्सोलमे न उतरकर, सीधे उनके साथ चलनेका। मै पैदल चलनेका पक्षपाती था, रेलके डब्बेमे बन्द होकर एक जगहसे दूसरी जगह पहुँच जानेमे मुझे कोई मजा नही मालूम होता था। वकील साहेबके सभ्रान्त व्यवहारको देखते अन्तमे उनके आग्रहको अस्वीकार करनेमे मै समर्थ नही हुआ। तै हुआ, मेरे खाने-पीनेका प्रबन्ध वकील साहेब करेंगे, और रेलकी सवारी बिना टिकट।

आसन्सोल, आद्रा और खड्गपुरमे ट्रेन बदलनी पडी। बिना टिकट कैसे हम बचकर नई ट्रेन पकड सके, इसकी कोई बात याद नही है। शायद किसी टिकट-कलेक्टरसे सामना नही पडा, एक जगह तो पुलसे न जाकर लाईन ही पारकर हम दूसरे प्लेटफार्मपर चले गये। खुर्दासे पुरी तकका टिकट ले लिया गया था।

यहींसे किसी पडेका आदमी भी साथ हो लिया। स्टेशनसे घोड़ा-गाडीपर चढ हम पडाके घर पहुँचे। कोठेपर एक अच्छी साफ-सुथरी कोठरी हमको मिली।

सत्ताईस वर्ष पहिले उस वक्त पुरीके किस-किस हिस्सेको मैंने किस रूपमें देखा, यह तो पूरा मुझे याद नहीं। जगन्नाथके मन्दिरके ऊपरकी अश्लील मूर्त्तियाँ तो हम दोनोंको नापसन्द आई। जगन्नाथके दर्शनमें वदरीनारायणकी भाँति ही मुझे कोई विशेष प्रभावोत्पादक वात नही मालूम हुई। एक वार हम लोग समुद्रमें स्नान करने भी गये थे। दो या तीन दिन पुरीमें रहे। रोज़ एक शाम जगन्नाथका प्रसाद—'हटका'—चला आता था। चलते वक्त पडाने अपनी वही या रजिस्टर सम्मति लिखनेके लिए वकील साहेबके पास भेजी, उन्होंने अग्रेजीमें अपनी वहुत बुरी सम्मति लिख दी। न जाने क्यों, मुझे यह वात पसन्द न आई। पडे इतनी खातिर और आरामके साथ रखकर, कुछ दक्षिणाकी आशा रखते है, तो कौनसा बुरा करते है।

मैंने पुरी तक ही रेलसे चलनेकी वात स्वीकार की थी। अव मैंने यहाँसे पैदल यात्रा शुरू करनेकी वात कही। वकील साहेब वहुत प्रार्थना करने लगे, और सकोचके मारे मै फिर नही न कर सका, यद्यपि समझ रहा था, कि मै कितना पर्यटनके आनन्दसे वचित किया जा रहा हूँ।

खुर्दासे दो-चार ही स्टेशन आगे तकका मेरेलिए टिकट लिया गया था। अवके हम लोग मद्रासमेलमे वैठे थे। एक ही ट्रेनमे तीस घटेसे ज्यादा चलना पडा होगा, और एकाध वार टिकट-चेकर ज़रूर आया होगा, किन्तु याद नही कैसे पिंड छूटा। यदि ट्रेनसे उतार देता तो मुझे वडी खुशी होती। रास्तेके दृश्य विहार और युक्तप्रान्तसे विल्कुल भिन्न थे। चिल्का झीलको भूगोलमे पढ़ा था, किन्तु अव उसे प्रत्यक्ष आँखोंके सामने देख रहा था। उसकी मछुवेकी नावें और उनपरके पाल वलात् मेरे ध्यानको अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे, मै उनमें सत्यनारायणकी कथामें आये साधु वनियेके व्यापारी जहाजियोको देख रहा था। पास ही छोटे-छोटे पहाड, लाल जमीन, दूर तक फैले धानके खेत थे। स्त्री-पुरुषोंकी वेशभूषासे मालूम होता था मै किसी दूसरे द्वीपमें जा रहा हूँ, विशेषकर आन्ध्र-स्त्रियोमे किसी-किसीकी चार-चार जगह छिदी नाँक—दोनो नथुने, नासिकान्त और विभाजक दड। जितना ही आगे वढ़ता जाता लोगोका रग अधिक साँवला तथा काला और उसीके साथ काया-खर्व होती जाती थी।

मद्रास हम लोग सवेरे नौ या दस वजे पहुँचे थे। विना किसी दिक़्क़तके वकील साहेबके साथ मैं 'छत्रम्' (धर्मशाला)मे पहुँचा। छत्रम् रेलकी सडक पार करके

पडता था। अब यहाँसे दूसरी ट्रेनसे रामेश्वर जाना था, जो रातको दूसरे स्टेशनसे जाती थी। दिनमे हमने घूमकर मद्रास शहरके कुछ हिस्सोको देखा। वहाँके अधिकाश एकतल्ले मकानोको देखकर मालूम नही होता था, कि हम भारतके तीसरे बडे शहरमे घूम रहे है। स्त्रियोकी तेज रगकी चारखानेवाली साडियाँ तथा नगे शिरने मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था,—यहाँ पर्देकेलिए कितनी वेपर्वाही है। आठ-दस घटे ठहरनेको मिले थे, किन्तु उनको भी शहरको अच्छी तरह देखनेमे वकील साहेबने नही खर्च किया। मुझे अब और आगे रेलसे चलना असह्य मालूम हो रहा था, किन्तु साफ इन्कार करनेकी हिम्मत नही पडती थी। इतने दिनो तक साथ-साथ रहनेसे वैसा करनेमे बडी बेमुरव्वती मालूम होती थी।

शामको नौ या दस बजे डाक छूटनेवाली थी। सैदापटका टिकट लेकर मै भी वकील साहेबके साथ बैठा। एक कदम भी रेलसे आगे जाना नागवार गुज़र रहा था, किन्तु मानसिक परवशता—मुरव्वतके बन्धनको तोडनेकी हिम्मत नही थी। सिर्फ एक आशा थी टिकट-चेकरपर, यदि वह आ जाये, तो उतरनेका नाम लेते ही, मै इतना दूर चला जाऊँगा, कि फिर वकील साहेब नही पा सकेगे। मै धडकते दिलसे ट्रेन खुलनेकी प्रतीक्षा कर रहा था, और जब टिकट-चेकरको ट्रेनके डब्बोके बीचो-बीचसे आर-पार गये रास्तेमे आते देखा, तो चित्तमे कुछ प्रसन्नता हुई। टिकट-चेकरने मेरे टिकटको देखते ही अग्रेजीमे कहा—"उतरो, यह ट्रेन सैदापटमे नही खडी होती।" मै दर्वाजेकी तरफ बढा, वकील साहेब 'जरा रुकिये' कहकर कुछ वहस करने लगे। बहसके परिणामको सुननेकी मुझे ख्वाहिश नही थी, मै दर्वाजेसे तुरन्त प्लेटफार्मपर और फिर वकील साहेबकी नज़रसे ओझल।

मालूम हुआ, सैदापटमे खडी होनेवाली गाडी दूसरे प्लेटफार्मपर है। रातके दस या ग्यारह बज रहे थे, जब मै सैदापट स्टेशनपर उतरा। गुरुजी कहा करते थे, कि मद्रासमे यात्रियोके ठहरनेकेलिए जगह-जगह 'छत्रम्' बने है, जिनमेसे अधिकाशमे सदावर्त भी मिलती-है। रातको सदावर्तसे तो मुझे मतलब नही था, किन्तु छत्रम्की जरूरत थी, रातको रहनेकेलिए भी, और साथ ही आसपासके तीर्थोके बारेमे जानकारी प्राप्त करनेकेलिए भी। स्टेशनसे बाहर निकलते ही एक लडका मिला। मैने अग्रेज़ीमे 'छत्रम् कहाँ है' पूछा। उसने कहा—'मै उधर ही जा रहा हूँ, चले आइये।' मै अग्रेजीमे ही बातचीत करता जा रहा था। आगे किसी परिचित व्यक्तिसे उसने हिन्दुस्तानीमे बातचीत की। मेरे पूछनेपर लडकेने कहा—हम इधरके मुसलमान हिन्दुस्तानी भाषा हीमे बोलते है। उस वक्त मुझे नानाकी बात याद आई। वह कहा

करते थे—'तिलंगाना (आन्ध्र)में जब कोई भाषा समझनेवाला नहीं मिलता तो हम मुसल्मानके बारेमें पूछते थे। मुसल्मान जरूर हमारी बोली समझ लेता था।' लड़केने छत्रमके दर्वाजेपर मुझे छोड़ दिया। रातको मैं दर्वाजेके बाहर चबूतरेपर सो गया।

सवेरे छत्रममें किसीसे आगेके दर्शनीय स्थानके बारेमें नहीं मालूम हो सका। बिना किसीसे पूछे सड़क पकड़कर एक तरफ चल पड़ा। कितनी ही दूरपर सड़ककी दाहिनी तरफ एक बड़ा बँगला देखा, हातेमें कुछ दरख्त थे, फूल नहीं, और एक कोनेमें था एक पक्का कुआँ। मैं कायदे-कानूनसे परिचित न था, कि किसीके हातेमें जाना जुर्म है. विशेषकर कुयेंको तो घरके आँगनमें भी होनेपर मैं सार्वजनिक सम्पत्ति समझता था। मैंने कूयें पर जाकर इत्मीनानसे पानी भरकर दातुवनकी, स्नान किया। तब तक देखा, बँगलेके बाहरके दरख्तके नीचे तीन-चार कुर्सियाँ पड़ गई है, और उनपर एक तरुण और दो स्त्रियाँ बैठी है। स्त्रियाँ उत्तरी भारतकी तरह साड़ी पहिने हुई थीं। हातेके भीतर आते वक्त यह नहीं मालूम था, कि बँगलेमें कौन रहता है। स्नान करते ही वक्त नौकरने आकर इशारेसे मुझे मालिकके बुलावेकी खबर दी। वहाँ जानेपर तरुणने मेरे स्थान आदिके बारेमें पूछा और यह भी कि कहाँ जा रहे हैं। उसकी माँ और बहिन भी बातमें सम्मिलित हो गई। उन्होंने खाना खाकर जानेके-लिए कहा। वह वेला भी उसीकी थी। मैंने दाल, तरकारीका झगड़ा छोड़ा और रोटीको घी-मिश्रीसे खा लेनेमें जल्दी समझी। पंजाबिन स्त्रीका हाथ हो, और वह छटाँक-दो छटाँकसे कम घीकी बात चलाये! एक कटोरी घीकी भरी आई। खाना खाया। कोई लाहौरका उर्दूका अखबार था, उसे जरासा पढ़ा, और फिर चलनेकेलिए उठ खड़ा हुआ। तरुणने आज रह जानेकेलिए कहा, किन्तु आज रहने और कल रहनेके फेरमें मैं अभी-अभी छूटकर आया था। तरुणने मेरेलिए आस-पास किसी तीर्थके बारेमें नौकरोंसे पूछा और तिरुमले(?)का नाम मालूम हुआ। 'तिरुमले अंगे. (तिरुमले कहाँ) इतना मैंने तमिलमें सीख लिया, और जहाँ कोई आदमी सामनेसे आता दिखाई पड़ता उसे दुहरा देता। वह हाथसे इशारा करते हुए 'इंगे पो' (इधर जा) कह देता। शायद तिरुमले तक मुझे सड़क हीसे जाना पड़ा था, यद्यपि सड़क कच्ची, और कितने ही चौरस्तोंसे होकर जाती थी।

तिरुमलेमें मन्दिरके सामने एक कमलयुक्त सरोवर था। दक्षिणके प्रायः सभी मन्दिर इसी तरहके होते है. इसलिए यह उसकी विशेषता नहीं हो सकती थी। हाँ. उसके पास एक छोटासा पथरीला पर्वत था, जिसपर मन्दिर नहीं तो एक गोपुर (द्वारशिखर) जरूर था, जिसमें रातके वक्त एकसे अधिक लालटेनें उसके

दो-तीन तलोपर जलाई जाती थी। तिरुमले मैं शामसे बहुत पहिले पहुँच चुका था। यहाँ सस्कृतके कारण मुझे बोलने-चालनेमे कोई दिक्कत नही हुई। मन्दिरमे दर्शन किया, किसी नवपरिचित व्यक्तिने मुझे यह भी बतला दिया, कि शामको मन्दिरकी भोजनशालासे पथिकोको दध्योदन मिलता है। दध्योदन है तिलके तेलमे मेथी या किसी दूसरी चीजका तडका देकर छौका हुआ मट्ठा और भात, खानेमे खट्टा नमकीन, अच्छा लगा। पुजारीसे यह भी पता लगा, कि यहाँ 'उत्तरार्धीमठम्' भी है। उत्तरार्धी-मठम्मे शायद एक आचारी और आचारिणी मिले। यद्यपि वैरागीको वह निम्न श्रेणीका जन्तु समझते थे, तो भी वहाँ रातको ठहरनेकेलिए जगह मिल गई, और साथ ही आगेके दर्शनीय स्थानोके बारेमे बहुतसी बाते मालूम हुई। गुरुजी कहा करते थे, कि दक्खिनमे तीर्थस्थानोको 'दिव्यदेश' कहते है, उनकी सख्या सैकडो है, जहाँपर कि रामानुजाचार्य और दूसरे महात्माओका वास रहा है। इन उत्तरार्धी (उत्तर भारतीय) आचारी साधु-साधुनियोसे पता लगा, कि तमिलप्रान्तके बहुतसे दिव्यदेशोमे उत्तरार्धी साधु रहते है। उन्होने कुछके नाम भी लिखवा दिये। यह भी मालूम हुआ कि प्राय हर मन्दिरमे दो-चार नवागन्तुककेलिए "प्रसाद" बँधा हुआ है।

ये 'उत्तरार्धी' आचारी हम वैरागियोको नीची निगाहसे देखते थे, किन्तु दक्षिणी गृहस्थ-आचारियोकी दृष्टिमे उनका भी स्थान वैसा ही था, जैसा उनकी दृष्टिमे हमारा। गुस्सेमें आकर मैने उत्तरार्धियोको 'वैरागी' कहकर गाली देते भी सुना था। ये 'उत्त-रार्धी' सभी दिव्यदेशोंमे कैसे पहुँच गये और स्थानीय ब्राह्मण-पुजारियोके विद्वेषक होते भी कैसे ये अपना अड्डा जमा सके यह भी एक मनोरजक बात है। उत्तरीय भारतमे साधुओ और उनके मठको स्त्री-ससर्गसे बिल्कुल शून्य रखना आवश्यक माना जाता है, किन्तु इधर इसमे कुछ उदारता थी, इसका कारण ढूँढनेपर पता लगा—उत्तरीय भारतके विरक्त आचारियोंके भी दक्षिणी आचारी ही आदर्श और पूज्य है, और दक्षिणी आचारियोमे कोई भूला ही भटका होगा, जो गृहस्थाश्रमी न हो। इस प्रकार मठमे स्त्रीका रहना उतना निन्दनीय नही समझा जाता, खासकर जब कि स्त्रीके बारेमे कोई समीपस्थ सम्बन्ध बतलाया जा सकता हो। इन उत्तरार्धियोंमेसे अधिकाश तीर्थ करनेकेलिए पैसे-कौडी बिना छत्रमूका चावल पकाते, तथा मन्दिरका पुगल (खिचडी)। दध्योदन खाते हुए आये थे। किसी दिव्यदेशमे पहुँचकर जहाँ-तहाँसे फूल-पत्ता जमाकर "पुष्पकैकर्य" (फूलो द्वारा सेवा) करने लगे। मद्रास और आसपासके श्रद्धालु अब्राह्मण भक्तोसे उनकी कुछ जान-पहिचान बढी। उत्तर

भारतमे सारे अब्राह्मण तो शूद्र माने नही जाते—वहाँ तो ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार, कायस्थ, अगरवाल आदि पचासो जातियोको भोजन और प्रणामको छोड बिल्कुल एक समान माना जाता है, इतना ही नही कितनी ही जगह उनके हाथकी कच्ची-पक्की भी चलती है, और यहाँ मद्रासमे ब्राह्मण अपनेसे भिन्नको बहुत नीच 'शूद्र' समझते है। उत्तरार्धी ब्राह्मण आदतवश यहाँ अब्राह्मण गृहस्थोंके साथ अच्छा व्यवहार करते है, जिसका असर पडना जरूरी ठहरा। व्यापार, व्यवसाय अब्राह्मण चेट्टी और मुदालियर लोगोके हाथमे है, उत्तरार्धी अपने व्यवहार द्वारा उनका प्रिय हो जाता है, और स प्रकार पुष्पकैंकर्यके लिये दो-आना चार-आना मासिक चन्दा कई जगहोसे उसे मिलने लगता है। स्त्री और बाल-बच्चोका बोझ न होनेसे ये रुपये जमा होने लगते है, और थोडे ही दिनोमे उत्तरार्धीका अपना मकान, अपना बाग, और कभी-कभी काफ़ी जायदाद भी हो जाती है।

तिरुमलेमे मालूम हुआ, कि यहाँसे कुछ दूरपर पुन्नमलेका दिव्यदेश है। मैने रातको तमिल वाक्योको काफी सख्यामे अपने नोटबुकमे लिख लिया था। सवेरे रवाना हुआ। रास्तेमे सौभाग्यसे सस्कृतका जानकार एक तरुण कुछ दूर तक साथी बना, और फिर पूछते-पाछते पुन्नमले पहुँच गया। पुन्नमले काफी बडा बाजार है। बस्तीमे नारियल-के वृक्ष और बगीचे काफी है। यहाँ पहिले उत्तरार्धी मठमे गया। स्वामिनी एक उत्तरार्धिनी आचारिनी थी, जो बहुत दिनोसे इधर रह जानेसे तमिल खूब बोलती थी। वह इधरकी आचारी (वैष्णव अय्यगार) ब्राह्मणियोकी तरह लॉग बँधी चारखानेवाली साडी पहिने हुए थी। देखनेसे मालूम नही हो सकता था, कि वह रीवाँकी रहनेवाली है। थोडासा परिचय दे पुस्तक रख मै मन्दिरमे चला गया। यहॉका मन्दिर तिरु-मलेसे बडा था। सस्कृत जाननेवाला मन्दिरमे मिल ही जाता था। अपने असह्य जाति-अभिमानके साथ तमिल ब्राह्मणोमे यह बात तो जरूर है, कि उनमे शत-प्रति-शत पढे हुए लोग है। वह कपडा-लत्ता, घर-द्वार ज्यादा साफ रखते है, और बहुत काफ़ी सख्या सस्कृताभिज्ञोकी भी उनमे मिलती है। कह नही सकता 'पुगल' मिला या' दध्योदन, उसे खाकर मै उत्तरार्धी मठमे चला आया। उत्तरार्धी मठमे एक आचारी भी थे। पहिले मै समझता था, यही स्वामी है, पीछे यह बात गलत निकली। खैर उनसे पूछकर आगे के कई दिव्यदेशोके नाम और मार्गके बारेमे लिखा, इनमे पहिले आनेवाले थे—पच्चपेरुमाल, तिरुमिशी और तिन्नानूर; पहिले दोनोंमें उत्तरार्धी आचारी रहते है यह भी पता लगा।

पच्चपेरुमाल दूर नही था, तो भी अभी प्रतिदिन एक दिव्यदेशके दर्शनका नियम

गया। पञ्चपेरुमाल एक छोटेसे गाँवका छोटासा मन्दिर था, किन्तु वह 'छोटासा मन्दिर' राग-भोग, वस्त्र-आभूषण, वृत्ति-बन्धनमे हमारे यहाँके बडे-बडे मन्दिरोकी नाक काटनेवाला था। यहाँके उत्तरार्धी आचारी अभी कुछ ही सालोसे आये थे। उनका अपना मकान भी नही था। किसी तरह गुजारा कर लेते थे, किन्तु अबतकके देखे तीन दिव्यदेशोमे सबसे अधिक सहृदय मुझे यही मिले। रातको बडी देर तक उनके साथ दक्षिणी लोगोके आचार-व्यवहारपर बातचीत होती रही। वह भी उनके जात्यभिमानसे तग आये हुए थे। आगेके बारेमे उन्होने बतलाया कि तिरुमिशीमे आपको श्री हरिप्रपन्नाचार्य मिलेगे, वह हमारे उत्तरार्धियोमे सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति है।

## ११

# तिरुमिशीका उत्तराधिकार

## ( १९१३ ई० )

अगले दिन आठ बजे मै तिरुमिशी (या तिरुमलिशै)मे था। फूले कमलके साथ चारो ओर पक्का बँधा वडा तालाब, उसकी उत्तर और पूर्ववाले छोरसे दूर तक चली गई एकतल्ले खपडैलके, किन्तु स्वच्छ घरोकी पक्तियाँ, पच्छिम तरफ काफी खाली जगह छोडकर, मन्दिरका विशाल गोपुर (शिखरद्वार)—तरह-तरहके पशु-पक्षियो, देव-देवियोकी चूने-ईटेकी बनी मूर्त्तियोसे अलकृत, और उसकी दोनो बगलसे साँपकी तरहसे निकलकर चला गया चतुर्भुज प्राकार तथा तदन्तरालवर्ती देवालय समुदाय। प्राकारके दक्खिन-पच्छिम थोडीसी वीथी छोडकर फिर समरेखामे अवस्थित गृह-पक्तियाँ। तालाबके पूरब तरफ फूलोका बाग, सुन्दर मडप और फाटक।

तालाबमे स्नानकर पहिले मै देवदर्शनके कामसे निवृत्त होने मन्दिरमे चला गया। दर्शनके समयका भी ख्याल रखना जरूरी था। यहाँ चार या पाँच सन्निधि (देवालय) थे। तिरुमिसी आलवार (भक्तिसार स्वामी) रामानुजी वैष्णवोके बारह प्रधान आलवारो (सिद्धाचार्यो)मे है, यह मुझे उस वक्त मालूम हुआ था, जिस वक्त भारी रुद्राक्षके कठे और दूरसे चमकते भस्म-त्रिपुडको धारणकर ढूँढ-ढूँढकर मै वैष्णवोकेलिए लिखी गई गालियोको वडे शौकसे पढता था, उनमेसे किसी पुस्तिकामे

वैष्णवोको नीच-अन्त्यजोका पन्थ सावित करनेकेलिए किसी पुराने ग्रन्थका उद्धृत यह श्लोक मुझे याद था—

"विचक्षणो विश्वविमोहहेतु,
कुलोचिताचारकलानुषक्त ।
पुण्ये महीसारपुरे विधाय,
विक्रीय शूर्प विचचार योगी ॥"

वही यह महीसारपुर था, और यही भक्तिसार स्वामीका जन्म और कर्म-स्थान रहा। किसी समयके एक शूर्पकारकी जन्मभूमि होनेसे आज इसका यह सन्मान था, किन्तु आजका शूर्पकार वीथीके भीतर तक घुस नही सकता था, मन्दिरके प्राकारके भीतर जानेकी तो बात ही क्या ?

दर्शन और प्रसादग्रहणसे निवृत्त हो मै उत्तरार्धी मठमे गया, जो कि दक्षिणवाली वीथीमे प्राकारसे दूसरी तरफ था। लम्बा और कुछ मोटासा एक प्रौढ वयस्क व्यक्ति चबूतरेपर बैठा हुआ था। मैंने सस्कृतमे पूछा—उत्तरार्धी मठ यही है। सस्कृत हीमे मुझे अगले प्रश्नोका भी उत्तर मिलता गया। बहुत देर बाद जाकर मालूम हुआ, कि यही स्वामी हरिप्रपन्न है। कुछ देरके बाद जब मै चलनेकी इजाजत माँगने लगा, तो उन्होंने अकृत्रिम मधुर शब्दोमे कहा—"दोपहरका प्रसाद पाकर न जावे।" रह जानेके बाद फिर बाते शुरू हुई। मालूम हुआ उनका जन्मस्थान बलिया जिलेका है, वृन्दावनके किसी 'खटले'मे वह शिष्य हुए। वही लघुकौमुदीका बहुतसा भाग पढे, फिर दिव्य-देशोकी दर्शन-लिप्सा उन्हे यहाँ ले आई। छपरा और बलिया पास-पासके जिले है, इसलिए छपराका नाम सुनकर अधिक आत्मीयता अनुभव करना उनकेलिए स्वाभाविक था। दोपहरके बाद जब जानेकेलिए तैयार हुआ, तो कहने लगे—'महात्मा दो-चार दिन यहाँ विश्राम करो। इसे दूसरेका स्थान मत समझो। तुम्हे दिव्यदेशोके दर्शनकी लालसा है, तो मै भी उसी लालसासे खिचकर देश छोड इस मुल्कमें आ पडा हूँ। पिछले पच्चीस वर्षोके निवासमे मै सभी दिव्यदेशोमे घूम आया हूँ। मै तुम्हे वह सब बाते बतला दूँगा, जिनके जाननेसे तुम्हारी यात्रा अल्पायाससे होगी।

मुझको उनकी बाते युक्तियुक्त मालूम हुई, और मैंने अपने दड कमडलुको वही रख दिया।

हरिप्रपन्न स्वामी वृन्दावनसे खाली हाथ भागकर दक्षिणमे आये थे। यही उन्होंने पुष्पकैकर्य कर्म शुरू किया। धीरे-धीरे मद्रासके कितने ही चेट्टी गृहस्थ उनके परिचित हो गये। चार-चार आठ-आठ आने मासिक चन्देकी रकमे जमा करते अब

उनकी आमदनी पचास रुपये मासिक से ऊपर पहुँच गई थी। आज स्वामी हरिप्रपन्नके पास वीथीमे अपने दो घर थे, तालाबसे पूरबवाला बडा गुलावका बाग इन्हीका था। कितने ही एकड़ धानके खेतोके अतिरिक्त कुछ हजार रुपये सूदपर भी चल रहे थे। 'यह सब भक्तिसार स्वामीके पुष्पकैकर्यकी कृपासे' जैसा कि वह कहते थे।

मठमे हरिप्रपन्न स्वामीके दो शिष्योमे देवराज फैजाबादके रहनेवाले थे, और तीर्थयात्रा करते ऐसे ही भटकते हुये यहाँ पहुँच गये थे, दूसरे शिष्य रीवाँ-राज्यके रहनेवाले हरिनारायण थे। देवराज बहुत सीधे-सादे थे, किन्तु गुरुका स्नेह और विश्वास उन्हीपर ज्यादा था। पहिले हरिप्रपन्न स्वामीने अपनी कठिनाइयोको मेरे सामने रखकर सहानुभूति प्राप्त की। तमिल ब्राह्मणोके अभिमानका उन्हे सचमुच निशाना बनना पडा होगा। खाली हाथ आकर उन्होने यहाँ एक अच्छा धर्मस्थान तैयार कर दिया, इसमे किसको सन्देह हो सकता है। दो-चार दिन रहनेके बाद उन्होने कहा—"मैं भी पढनेके समय इसी तरह भागकर मारा-मारा फिरने लगा। पढता होता, तो एक अच्छा पडित होके रहता। तुम्हारी उम्र पढनेकी है, घूमना तो पीछे भी हो सकता है।"

बाजिन्दाकी सदा जीवित वाणीके कोलाहलमे भी कभी-कभी हरिप्रपन्न स्वामी जैसोकी इस युक्तिके तथ्यको मै स्वीकार करता था। फिर उनका प्रस्ताव हुआ—"परसा गुरुजीको लिख दे, और कुछ साल यही रहकर विद्या पढे। व्याकरणकेलिए हमारा देश जबर्दस्त है, किन्तु न्याय, वेदान्त, मीमासा और काव्यमे यहाँवालोका अच्छा प्रवेश होता है। इस घरको अपना घर समझे। किसी बातकी तकलीफ हो तो मुझसे कहे। यहाँ एक अच्छी सस्कृत पाठशाला है, यही रहकर सस्कृत क्यो न पढे ?"

मुझे हरिप्रपन्न स्वामीकी स्वार्थहीन सम्मति क्यो न पसन्द आती, आखिर सैर और विद्याव्यसनमे कौन मुझे अधिक प्रिय है, इस बातका पता तो अभी भी मुझे नही लग सका है।

तालाबके उत्तर-पूर्ववाले मकानमे उस समय सस्कृत पाठशाला थी, जिसमे दो अध्यापक थे। मैने जाकर पाठशालामे नाम लिखा लिया। भक्ति (पीछे मीमासा-शिरोमणि टी० वेंकटाचार्य), रगा और श्रीनिवास मेरे सहपाठी थे। हम लोग पाठ-शालाकी ऊपरी श्रेणीमे पढते थे। भारी अन्तर था, यहाँके विद्यार्थियो और समकालीन काशीके विद्यार्थियोमे। लेकिन इसमे दोष हमारे यहाँके विद्यार्थियोका नही है, आखिर वह जिन घरोंसे आते है, उनमे कितने सैकडे शिक्षित रहते है ? बहुतेरे विद्यार्थी तो 'रामागति' शुरू करके 'इय स्वरे' रटने लगते है, और ठीकसे वर्णमाला और हिन्दीकी

पाठशालीय पुस्तकोंसे भी परिचित नहीं होते। भक्ति और दूसरे साथी फूले हुए कमलोंसे भरे तालावके किनारे घटो वैठकर उनके सौन्दर्यको देखते रहते, असाधारण वर्षा होनेसे लवालव भरे जलाशयको देखनेकेलिए तीन-तीन मील तक जाते। क्या इस वातकी आशा हम अपने वनारसी साथियोंसे रख सकते थे? यहाँ हम लोग सिर्फ पाठ्यपुस्तकोंको ही नही रटते थे, बल्कि अपने मनसे कितने ही काव्य, नाटक, चम्पू मिलकर या अलग-अलग पढते थे। देलरामकथासार जैसे कितन ही अपरिचित काव्य-नाटकोंको मैने यहीं समाप्त किया। मालूम हुआ उपन्यास और कहानियोंकी भाँति सस्कृतके इन ग्रन्थोको भी शौकिया पढाईमे शामिल किया जा सकता है। पाठशालामे हम सिद्धान्तकौमुदी, मुक्तावली, तथा कुछ काव्य, अलकार ग्रन्थ पढते थे। मेरा मन खूब लग गया था, इसमे सन्देह नही।

हरिप्रपन्न स्वामीने अब धीरे-धीरे अपने सारे परिश्रमके व्यर्थ जाने तथा मठके चौपट हो जानेकी बात कहकर प्रेरणा करनी शुरू की—"ऐसा स्थान जहाँ पढे-लिखे, सभ्य जनोका समागम सुलभ है, एक महान् पुण्यतीर्थ होनेसे सारे वैष्णव जगत्मे जिसका सम्मान है, ऐसी जगह रहना और दक्षिणियोको भी दिखला देना कि उत्तर-भारतीय कितने विद्वान् हो सकते है, यह कैसा अच्छा होगा?"

वे वडे व्यवहारकुशल थे, उन्होने अपने अभिप्रायको एक ही दिनमे नही कह डाला। उसकेलिए पखवारेका वह इन्तिजार करते रहे। वह यह जान गये, कि वहाँके सह-पाठियो, पढाई, और समाजमे मेरा मन लग गया है। तो भी मै वरावर उज्र करता रहा—"मै एक जगह शिष्य हूं।" "ठीक, किन्तु रामानुज स्वामी तो उस सम्प्रदाय-के भी मूल है। उनके वेदान्तकी परम्पग तो बल्कि आचारी लोगोके ही पास है"—उत्तर मिला। इसी बीच वृन्दावनके महान् नैयायिक सुदर्शनाचार्य (पजाबी नही दूसर)के प्रधानशिष्य श्री भागवताचार्य श्रीरगम्से तिरुमिशी आये। शायद हरि-प्रपन्न स्वामीने खासतौरसे उन्हे बुलाया था। भागवताचार्य नव्य-न्यायके भारी विद्वान् थे, अपने अध्यापकके सबसे तीव्र विद्यार्थी थे, और उत्तर भारतमे रहते तो उनकी बडी ख्याति होती। किन्तु, उनको दमाका रोग था, जाडो, और वरसातमे भी उत्तरमे रहनेपर वरावर दौरा हो जाया करता था, इसी कष्टसे वचनेकेलिए वह तमिल प्रान्तमे चले आये थे। तमिल देशमे सर्दीका नाम नही, माघ-पूसमे भी वहाँ कपडा ओढनेकी जरूरत नही पडती। यहाँ वह दमासे वचे रहते थे। वह अधिकतर श्रीरगम्मे रहते, किन्तु बीच-वीचमे रामानुजाचार्यकी जन्मभूमि पेरेम्बुदूर (भूतपुरी), तिरुमिशी, तथा दूसरे दिव्यदेशोमे भी चले जाया करते थे। उस वक्त

उनकी आयु ५० वर्षसे ऊपरकी थी। उनका पतला-दुबला गोरा शरीर, अमासल प्रसन्नमुख, असाधारण मधुर वाणी, तथा परम सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किसीको भी अपनी ओर आकर्षित किये बिना नही रह सकता था। वह कुछ दिन यही रहनेवाले थे, और उनका आग्रह हुआ, मै सपरिष्कार न्यायके किसी ग्रन्थको शुरू करूँ। तर्क-सग्रह मै पढ़ चुका था, किन्तु उसीके प्रत्येक लक्षणका परिष्कार उन्होने मुझे पढाना शुरू किया। उनके पढानेका ढग सुन्दर था, न्याय जैसे शुष्क विषयमे भी वह दिलचस्पी ला देते थे।

श्री भागवताचार्य मेरी ओरसे बहुत प्रभावित हुए थे, कारण शायद पढनेकी लगन तथा परिष्कृत रुचि ही होगी। हरिप्रपन्न स्वामीकी बातका उन्होने भी समर्थन करना शुरू किया, और अन्तमे मुझे हरिप्रपन्न स्वामीका प्रस्ताव बलात् स्वीकार करना पडा। फिरसे वासुदेवमन्त्र दिया गया, बाहूमूलोमे तप्तमुद्रा (शख, चक्र) दी गई, हाँ उतनी गरम, और उतनी निर्दयतासे नही जितनी कि परसाके नये 'आचारी' के हाथोसे मिली थी। दीक्षाके बाद भी पक्तिमे बैठकर भोजन करनेकेलिए प्रमाण चाहिए था, कि मै ब्राह्मण हूँ। मैने प्रयाग यागेशके पास पत्र लिख दिया, और उनकी चिट्ठी चली आई। लिखित प्रमाण हरिप्रपन्न स्वामीको नही दक्षिणकी और उत्तरार्धी बिरादरीकेलिए आवश्यक था।

यहाँ मेरेलिए पूजा-पाठका विशेष झगडा न था। सबेरे शौच-दातवन खतम कर तालाबमे स्नान करता, फिर तालपत्रकी छोटीसी सुन्दर पिटारीसे सफेद सुवासित , तथा लाल रोरीसे ललाटमे तिलक करता, और बस पूजा खतम। हरिप्रपन्न मी, और पडित भागवताचार्य सस्कृतकी पाठ्यपुस्तकोके पढ़नेको भी पूजा-पाठका समझते थे। नहाते वक्त हफ्तेमे एक बार तिलके तेलकी मालिश जरूर होती। यहाँ एक छटाँक तेल सुखा देना तेल मलनेवाले (स्नापक)केलिए प्रशसाकी बात थी, और ऐसे स्नापकोकी कमी भी न थी। खैर, बदनमे तेलकी खूब मालिश करानी अच्छी ही बात थी, किन्तु जब आँखोमे भी तिलके तेलके डालनेकी बात आती तो मुझे बहुत बुरा लगता, लेकिन जब देवराज और हरिनारायण एक ओरसे कहने लगते— इससे आँख निरोग रहती है, तो मानना पडता। नहानेके वक्त इम्ली जैसे एक फल (सिकाकाई)की पानीमे पिसी लेई बदनमे मलनी पडती। इससे बदनका तेल छूट जाता, और तेल लगकर धोती मैली नही होती। यदि तेल भी लगाना है, और साथ ही कपड़ेको भी उजला रखना है, तो इससे बढकर दूसरा उपाय नही हो सकता था। हजामत बनानेमे, उत्तर भारतके वैरागीके लिए शिर-मुँहका बाल साफ करना ही

पर्याप्त था, किन्तु यहाँ सारे शरीरपर निर्लज्जतापूर्वक भी—छुरा घुमवाना पडता था। छाती-पैरके रोम्रोको भी कटवा देना—मुझे व्यर्थ श्रम-सा मालूम होता था। उस वक्त मेरे दिलमे यह ख्याल न आया था, कि यहाँके कर्मनिष्ट ब्राह्मणोकेलिए सुईका सिला कपडा वर्जित है, वह कुर्ता, कोट, मिर्जई नही पहिन सकते, इसलिए शरीरके ऊपरके बाल देखनेमे बुरे लगते है।

सब लोग, घरमें और यात्रामे भी कमलपत्रपर खाते थे। उनके सूखे गट्ठर भी बाजारोमे पत्तलकी तरह बिकते थे। खानेमे भात अनिवार्य चीज थी, और मैंने अपनेको उसके अनुकूल बना लिया था। सबेरे जलपानमे रातके बचे भातसे ताजा बना दध्योदन मिलता था, जो सचमुच ही खानेमे बडा स्वादिष्ट मालूम होता था। दोपहरको उत्तरी भारतका दाल-भात, तरकारीके साथ दक्षिणका रस या गातृमधु भी रहता था। कभी-कभी लाल मिर्चोकी शोखी बढ जाती थी, नही तो गर्मागर्म पीने या भातके साथ मिलाकर खानेमे यह अच्छा मालूम होता। इसके इम्ली, लाल-मिर्च, तिलका तैल—ये खास अंश थे। बुखार आनेपर पथके तौरपर जब हमारे एक सहवासीको रसम् दिया जाने लगा, तो मैं बहस कर बैठा—'क्यो बेचारेको मारना चाहते हो ?' मेरे उत्तर भारतीय साथियोने बतलाया—'यह उत्तम पथ्य है, यहाँकी आबोहवामे इससे नुकसान नही होता।' मै समझता था कि इससे तिल्ली बढे बिना न रहेगी। भात-दाल मिट्टीकी हँडियोमे पकता था, और जब तक कोई ग्रहण नही आता, तब तक उनके बदलनेकी जरूरत नही पडती थी। मुसल्मानी चौकेकी भाँति आचारीके चौकेको भी दक्षिणी आचारके अनुसार धोने-धानेकी जरूरत नही। वहाँ कोई खाता तो था नही, फिर सिर्फ कालिख और कचडेकी सफाई के लिए रोज-रोजके श्रममे एक-एक तोला खून सुखाना क्या बेवकूफी न थी ? रसोईके कमरेसे खानेका कमरा अलग था, और वह खूब साफ रहता था। खा लेनेके बाद पत्तल अपने ही उठा लेनी पडती, फिर थोडेसे गोबरको लेकर उसपर चिपकाकर गिरे हुए चावल उठा लिये जाते, और पानी फेर दिया जाता। भोजनमे आचारियोका नियम है—जो कि वस्तुत तमिल वैष्णव ब्राह्मणोका आचार है—भोजन कच्चा हो या पक्का, सिर्फ उसीके हाथका ही नही बल्कि उसीकी दृष्टिके सामने खाया जा सकता है, जिसका सहभोज हो सकता है। जिसका भोजन चलता है उसीका पानी भी, इस नियमके कारण बहुतसे धनी तथा उच्च-पदस्थ मद्रासी ब्राह्मणोकी स्त्रियोको भी अपने हाथ चौका-बासन, पानी भरना, रसोई बनाना पडता है।

खान-पान सम्बन्धी छूत-छातकी अति मुझे उतनी नही खटक रही थी, क्योकि

इसमें कुछ उदार होनेपर भी मेरी धारणा किसी सैद्धान्तिक विचारपर निर्भर न थी; किन्तु ब्याह-शादीकी रीतियाँ मुझे बहुत खटकती थी। भक्तिके पडोसीमें एक अच्छे सस्कृतज्ञ विद्वान् थे, उनकी गौरी कन्या—नाम कोई वल्ली पच्छिम वीथीके रहनेवाले एक स्थूलकाय श्यामल तरुणसे ब्याही थी। हमारी तरुण-मडलीको यह ब्याह अनुचित जँचता था, लेकिन मेरे आश्चर्यकी तो सीमा नही रही, जब मालूम हुआ कि उक्त तरुणकी सगी बहिन ही उसकी सगी सास भी है। मामाकी कन्यासे भाजेका ब्याह पहिले सुन रखा था, किन्तु बहिनकी कन्यासे विवाह उस समय मेरेलिए कल्पनातीत बात थी। उसके बाद कितने ही मामा और बुआके दामादोको देखकर मुझे यह सब साधारणसी बात मालूम होने लगी। नगे सिर रहना, सौभाग्यका चिह्न होनेसे वहाँ स्त्रियोके पर्देका तो सवाल ही न था, किन्तु तरुण पति पत्नियोका पिता-माताके सामने घूमने निकलना उत्तर भारतीय आँखोको विनयशून्यता मालूम होती थी—यद्यपि मैं उसका पूरी तरहसे अनुमोदन करता था। शामके वक्त तरुण पत्नी अपनी सर्पपुच्छाकार वेणीको फूलोसे सजाती, साफ—अक्सर रेशमी—भडकीले रगवाली साडीको लाँग बाँधकर पहनती, फिर सन्तान होनेपर उसका शृगार करके, पतिके साथ बाग, वीथी, तालाबके तटपर घूमने निकल जाती। हमारे उत्तर-भारतकी बूढी सासुये इसे 'निर्लज्जताकी पराकाष्टा' कहे बिना नही रहती। हाँ, एक बात मुझे जरूर खटकती थी—बुढापेमे कुछ विश्राम पानेकी जगह वहाँ सासुओको सबसे ज्यादा काम करना पडता था। दो घटा रहते ही सासु उठती, घर-आँगन-द्वार झाडती, पानीमे गोबर घोलकर अविरल धारसे सब जगह छिड़कती, फिर द्वार-पर चूनेसे सुन्दर चौक पूरती—इस चौकके देखनेसे मालूम होता था, दक्षिणी स्त्रियाँ अपनी उत्तरी बहिनोसे कला-सम्बन्धी सुरुचिमे काफी आगे बढी हुई है। सूर्य उग आते, किन्तु अभी तरुण बधूकी खुमारी ही नही टूटती। बूढी सास पानी गर्मकर तैयार करती—शायद बहू तेल-साबुनके साथ नहाना चाहे, केश धोना चाहे या कमसे कम हाथ-मुँह ही धोना चाहे। बहूके बच्चोको नहलाना-धुलाना आदि भी सासुका ही काम है। बर्तन साफ करना, खाना पकाना, खिलाना, सासुसे वचित ही बहूको करना पडता—और बस रहनेपर ऐसे घरमे बहुत कम माँ-बाप अपनी कन्याको देना चाहते। शामको रसोई बनाना, बच्चोको खिलाना-पिलाना तथा देख-भाल ही नही करना, बल्कि बहूके केशोंकी वेणी बनाना—रोज नई वेणी गूँथनेका रवाज बुरा तो नही है—, उसे फूलोसे सजाना भी सासुका ही काम है। सवेरे चार बजेसे रातके दस-बारह बजे तक सासुको साँस लेनेकी फुर्सत कहाँ ? चाहे पचास

वर्षकी हो या सत्तरकी, सासुको इसी तरह रोज-रोज, महीने-महीने, बरस-बरस मशीन-की तरह काम करते हुए एक दिन आँखोको सदाकेलिए मुँद जानेपर ही छुट्टी मिलेगी। 'वृद्धाके साथ यह व्यवहार तरुण पुत्र और बधूमे हृदयकी कमी को बतलाता है'—उत्तराधियोके इस आक्षेपका दक्षिणी उत्तर देते थे—'किन्तु हर सासुको तो पहिले बधूका जीवन बिताना पडता है, और उस वक्त इन सुभीतोको वह पहिले भोग चुकी रहती है। साथ ही नब्बे फीसदी बधुये सासकी अपरिचित नही, उसके भाई, बहिन, बेटीकी लडकियाँ होती है।'

तिरुमिशीमे मठके भीतर छोडकर बाकी वक्त मुझे सस्कृतका ही व्यवहार करना पडता था। वहाँ एक ब्राह्मण दूकानदार थे, जिनके यहाँसे तेल दियासलाई या कोई चीज लानेकेलिए जानेपर अग्रेजीका व्यवहार करना पडता। तिरुमिशीमे मै चार महीने रहा था, किन्तु पढने-लिखने जैसे मानसिक श्रमका काम भी इतने मनोनुकूल ढग, तथा स्निग्ध ससर्गके साथ चला, कि कभी मन ऊबने न पाया, और सचमुच ही 'दिवस जात नहिं लागहि बारा।' जरूरत न पडनेसे इस बार तमिल सीखनेका मुझे मौका नही मिला।

हरिप्रपन्न स्वामीके एक शिष्य देवराज तो बहुत सीधे-सादे आदमी थे। चौका-बासन, रसोई, मन्दिरके भीतरसे पानी भर लेना (घरके कूयेका पानी खारा था), और कुछ गाय-बैलोके खिलाने-पिलानेमे ताकीद—बस इतने हीमे उनका समय चला जाता था, हरिनारायणजी नाममात्र पढे, किन्तु होशियार थे, तो भी मुझसे उनको ईर्ष्या न थी, हालॉकि हरिप्रपन्नाचार्यका उत्तराधिकारी होनेसे अपने हकसे वचित हो रहे थे। शायद इसका कारण मेरी मठकी सम्पत्ति और महन्तीसे निस्पृहता थी। मेरी चिट्ठी जब परसा पहुँची, तो जवाबके साथ गुरुजीने पचीस रुपयेका मनी-आर्डर भी भेज दिया, और लिखा कि जब जरूरत हो, रुपये मँगा लेना, और दक्षिणके तीर्थोमे खूब घूमना।

मन्दिरके तीनो तरफ (पूरब तरफ तालाब और आगे बस्ती न थी)की वीथियोमे सिर्फ ब्राह्मणोके घर थे। उनकी दीवारे ईंटकी, छते खपडैलकी थी, घर भीतरसे खूब साफ थे। हर द्वारकी भीतरी देहलीमे जजीरोपर लकडीके तख्तोका एक झूला जरूर रहता, जिसपर आगन्तुक या कामसे फुर्सत पाया घरका आदमी भी बैठता था। सवेरेके वक्त हर द्वारपर भिन्न-भिन्न ढगके पुरे हुए चौक, तथा हरे गोवरसे धुली भूमिके कारण वीथी बहुत सुन्दर मालूम होती। मै वहाँके ब्राह्मणोको जब अपने यहाँके ब्राह्मणो से मिलाता, तो सोचता यह बिना हाथ-पैर हिलाये घरोमे बैठे रहते है, फिर इनका

खर्च कैसे चलता है। दरअसल, ब्राह्मणका अपने हाथसे कुदाल चलाना, खुरपा इस्तेमाल करना भी वहाँकेलिए अनहोनीसी वात थी। मुसल्मानी शासनकी स्थापनासे पहिले शायद उत्तरीय भारतमे भी ब्राह्मणोकी यही अवस्था रही हो, किन्तु वहाँ तो नये शासनने पुराने अग्रहारो, उनकी वृत्तियो और दानपत्रोको हजार शपथो, और शूकर-गर्दभ-सन्तान होनेकी चित्रित गालियोके होनेपर भी नाजायज करार दे दिया। शासनदडके सामने किसकी चलती बनती है? इसी कारण उत्तरके ब्राह्मणोने अन्तमे अपने शारीरिक परिश्रमपर निर्भर रहनेकी शिक्षा ग्रहण की। इसके विरुद्ध तमिल, केरल आदि प्रान्त सदा हिन्दू-शासनके आधीन रहे, कभी मुस्लिम-शासकोने वहाँ स्थायी विजय नही पाई, उन्होने दिल्लीके फर्मानको मान्य भी ठहराया, तब भी अपने स्थानीय राजाओको दिल्लीके सामन्त या करद राजा रखते हुए ही इस प्रकार उनके अग्रहारो और देवालयोकी बहुतसी चर-अचर सम्पत्ति उनके हाथसे जाने नही पाई। उन्होने अपनी पुरानी शास्त्रीय सस्कृत शिक्षाके क्रमको भी जारी रखा, इस प्रकार वे निरक्षर नही बनने पाये, और साधारण जनतापर उनकी विद्याका रोब बना रहा। लेकिन साथ ही इस अविच्छिन्न शास्त्रीय, धार्मिक परम्पराके कारण ही दक्षिणके ब्राह्मणोमे सबसे अधिक विचारोकी सकीर्णता तथा सामाजिक विषमता भी अक्षुण्ण बनी रही।

तिरुमिशीमे दो देवस्थान थे, वैष्णव देवस्थानके अतिरिक्त गाँवसे उत्तर एक शैव देवस्थान भी था। वैष्णव शिवकी मूर्त्तिके अचानक देख लेनेमे भी पाप समझते हैं, किन्तु एक दिन भक्तिके साथ चुपकेसे मैं उसे देखने गया। गरुडकी जगह नन्दी, विष्णुकी जगह शिव, गणेश आदिकी विशेषताके साथ बाकी वही बाते, कुछ छोटे रूपमे यहाँ भी थी। वैष्णव मन्दिरके पास काफी जायदाद थी, जिसकी ...टीका प्रमुख "धर्मकर्त्ता" एक अब्राह्मण मुदलियार था। हर महीने एक-दो ...ष दिन पडते थे, जब कि मन्दिरमे विशेष पूजा होती, या किसी विशेष देवता आचार्यकी मूर्त्ति बाजे-गाजेके जलूसके साथ निकलती—प्रधान मन्दिरमे अचल ...त्तयोंके अतिरिक्त जलूसमे जानेकेलिए एक धातुकी छोटी चल मूर्त्ति भी रहा करती है। नाना सुवर्ण-मणि-मुक्ताके आभूषणोसे सजाकर मूर्त्तिको सोनेके मुलम्मेके चमचमाते प्रभामडलयुक्त सिंहासनपर रखा जाता। चार या आठ आदमी—अब्राह्मण—सिंहासनको कन्धेपर उठाकर चलते। आगे-आगे बाजा—जिसमे दक्षिणकी प्रसिद्ध नफीरी (रोशनचौकी) भी शामिल रहती—बजता, उससे भी आगे अपने अँगोछेको धोतीके ऊपर कमरसे लपेटकर ऊर्ध्वकायको नगे रखे ब्राह्मण लोग पहिले

'द्रविडप्रबन्ध' (सन्तवाणी) पीछे वेदमन्त्र सस्वर पढते चलते। स्त्री-पुरुष सिंहासनके आगेसे सिर झुकाये नजदीक पहुँचते, सवारी जरा देरकेलिए ठहरती, पुजारी मूर्तिके सामने रखी घटीमे जटित चरण-पादुकाको विनम्र नगे शिर पर रख देता।

लेकिन तिरुमिशीके अब्राह्मण टोलेकी ओर जानेपर वह सफाई, वह सुरुचि, वह सस्कृति नही दीख पडती। वहाँ निरक्षरता और गरीबीका अखड राज्य दिखलाई पडता, कुछ खाते-पीते किसान घरोको छोडकर। हमारे ब्राह्मण साथी बहुत कम उधर जाना चाहते, और उन्हे यह सुनकर तअज्जुब होता, कि उत्तरके ब्राह्मण इन शूद्रो—वहाँ ब्राह्मणसे अन्य सभी जातियाँ शूद्र समझी जाती है—के हाथसे पानी ही नही अन्नकी मिठाई तक खा लेते है।

पहिले-पहिल जब रातको कहा गया—'चलो, गोष्ठीमे, पुगलप्रसाद ग्रहण करने,' तो गोष्ठीसे तो मैंने अन्दाज लगा लिया—कई आदमियोका एक जगह एकत्रित होना, किन्तु पुगल सुनकर मुझे ख्याल आया, कोई महार्घ पक्वान्न होगा। दो प्रधान मन्दिरोके सम्मिलित सभामडपमे—जिसमे खिडकी-झरोखा न रहनेके कारण दिनमें भी अँधेरा रहता था, रातके टिमटिमाते तेलके चिरागकी वहाँ कौन सुनता, पत्थरके फर्शपर लोग—सिर्फ ब्राह्मणही—बैठे हुए थे। मधुर स्वरमे कोई मुरली बजा रहा था। पुजारी पीतलके बर्तनोसे निकाल-निकालकर हाथमे चार-पाँच आँवलेके बराबर कोई चीज़ डालता जा रहा था। पहिले 'कुलीन' होनेसे दक्षिणी ब्राह्मणोके हाथमे प्रसाद दिया गया, फिर हम उत्तरार्धी 'नीच' ब्राह्मणोकी बारी आई। अब्राह्मण मडपके अकेले दर्वाज़ेसे बाहर आसमानके नीचे टकटकी लगाये खडे थे। मेरे हाथमे भी 'पुगल' पडा। बडे उत्साहके साथ मुँहमें डाला, देखा तो खिचडी—हाँ, वही खिचडी—जिस खिचडीके खानेकी बात कहनेपर यागेशको कितनी ही बार बात सुननी पडती थी। मैंने धीरेसे हरिनारायणाचारीकी ओर घूमकर कहा—'खिचडी! यही पुगल!!' वहाँसे लौटते वक्त हरिनारायणजीने एक घटना सुनाई—"बलिया ज़िलेके नये बने दो आचारी बाप-बेटे तीरथ करने दक्षिणापथ आये। इसी तरह गोष्ठीमें वह भी बड़े उत्साहके साथ पुगलप्रसादकेलिए बैठे। आपकी तरह हाथके पुगलको मुँहमे डाला, तो लडका चिल्ला उठा—'अरे खिचडी है, हे बाबूजी, ससुरने, पुगल कहके जाति ले ली।' "

खैर, मुझे जातिकी पर्वाह नही थी, और यागेश जैसे खिचडी-प्रेमीको तो काफी घी डालकर बनी उडद-चावलकी खिचडी बहुत अच्छी भी लगती। मीठा पुगल, और मीठा 'दोसै' (चावल-मूँगका मोटा चीला) तो मुझे भी अच्छा लगता, किन्तु

वह कभी ही कभी बँटता था। और खीरके नामसे रोआँ गिर जाता। स्वामी हरि-प्रपन्नका कहना था, पावभर दूधमे एक दक्षिणी मनभर खीर तैयार कर सकता है।

तिरुमिशीमे रहते पुन्नमले. पच्चपेरुमाल, पेम्बुदुरके उत्सवोमे मै शामिल हो आया था। जिस दिन पहिले-पहिल हरिप्रपन्न स्वामी अपनी बडी (बैलगाडी) पुन्न-मले चलनेकेलिए जुतवा रहे थे, तो मैने कहा—"रहने दीजिये, पैदल ही चले चलेगे।" 'इससे जल्दी पहुँचेगे'—सुनकर मुझे विश्वास नही हुआ। हरिणकी तरह पीछेकी ओर खिची सीगोवाले मुट्ठीभरके उनके बैलको देखकर तो और भी आशा नही हो सकती थी। लेकिन दग रह गया, जब मैने उसे साधारण एक्केके घोडेकी चालसे दौडकर चलते देखा। बडी ऊपरसे दाहिनेसे बाये मेहराबमे छाई हुई थी। शायद पहियोपर स्प्रिग नही था।

अगहनका महीना था, जब कि एक दिन हरिनारायणाचारीने ति पतीके पास तिन्नानूरके महोत्सवका जिक्र चलाया। बालाजी, तिरुपतीका नाम मै परसामे बहुत सुन चुका था, सोचा चले, उसे भी देख आवे।

## १२

# दक्षिणका तीर्थाटन

चौरस्तेपर दो रस्ते नजदीक क्या एक-दूसरेसे मिश्रित रहते है, किन्तु वही आगे चलकर सैकडो, हजारो मील दूर पड जाते है। इसी तरह आदमी चौरस्तेपर जरासा पथान्तर करनेपर आगे कहीका कही चला जाता है। तिरुमिशीसे चलते वक्त हरिप्रपन्न स्वामीने तिरुपतीके एक आचारी स्थानका पता दे दिया था, और शायद परिचयपत्र भी। रेलमे अकेले बैठनेपर मै सोचने लगा, आचारीके स्थानमे चलूँ, या तिरुपतीके वैरागी महन्तराज—कई लाखकी तहसील रखनेवाले वे वस्तुतः राजा महन्त है—के स्थानपर। वहाँकी पघत (पक्ति)मे बैठ लेना वैरागीकेलिए बडे गर्वकी चीज है। परसाके सम्बन्धको मैने दिलसे तोडा नही था, क्योकि अभी मै निश्चय नही कर सका था, कि अपना कार्यक्षेत्र उत्तरीय भारत रक्खूँ या दक्षिणीय। अन्तिम निर्णय आगेकेलिए छोड़कर मैने सोचा, तिरुपतीमे वैरागी स्थान हीमे चलना अच्छा होगा।

वेष-भूषासे मैं बहुत सम्भ्रान्त तरुण दीख पडता था, पढ़ा-लिखा भी था, इसलिए मुझे महन्तजीके झाडफन्नूससे सजाये हालकी बगलमे एक अच्छी कोठरीमे ठहराया गया। मेरे पासकी कोठरीमें छपरा जिलेके एक तरुण साधु थे, जो लघुकौमुदी पढ़ रहे थे। हालमे खुलनेवाले पूरबके कमरेमे सुरसड (मुज़फ्फरपुर) लवाहीपट्टीके परमहसके शिष्य एक पडित साधु रहते थे। इन दोनो व्यक्तियोंसे परिचय हुआ। सवेरेका जलपान तो कर लिया। दोपहरके भोजनका समय आया। पघतका घटा या नगारा बजा। औरोंके साथ मैं भी मन्दिरके सभामडपमे जाकर बैठा। थोडी देर मे एक रसोइया आया, और उसने नम्र स्वरमे कहकर मुझे ले जा आँगनमे बैठे साधुओकी पक्तिमे बैठा दिया। मैंने साधारण बुद्धिसे समझ लिया, कि दोनो जगहोमे ऊँच-नीचका कोई भेद है, और यह ख्याल आते ही लोटा लिये मैं उठकर अपनी कोठरी हीमे चला नही आया, बल्कि बाज़ारसे कुछ सेब-अगूर तथा मिठाई लाकर खानेकी तैयारी करने लगा। इसी बीच यह घटना मठके प्रमुख व्यक्तियोको मालूम हुई। आदमी दौडे-दौडे मेरे पास आये--"चलिये, आप उठ क्यो आये ?"

"आप मुझसे धाम-क्षेत्र, पचसस्कार जो भी वैरागका करम-धरम है, पूछते, न बतलाता तो जहाँ चाहते वहाँ बैठाते, किन्तु आपने एकदमसे ले जाकर मुझे कँगलोमे बैठा दिया।"

"नही, कँगलोमे नही बैठाया था। ऊपरकी पघतमे ऊपर (बालाजी) जो बैठ आता, उसे यहाँ भी बैठाया जाता है। अभी आप ऊपरसे नही हो आये है, इसी वास्ते रसोइयाने ऐसा किया।"

"तो अब तो मैं खानेकी चीज़ ले आ चुका।"

"नही, गल्ती माफ कीजिये। रसोइये अनपढ उजड्ड होते है, आप जानते ही है। चलिये आप जहाँ चाहे वहाँ बैठे।"

खैर मैंने जाकर सभामडपवाली पक्तिमे बैठकर भोजन किया।

तिरुपती अच्छा खासा शहर है। यहाँ आनेपर मालूम हुआ, यह स्थान तमिल (द्रविड) देशमे नही आन्ध्रमे है। मठ (धर्मस्थान)के बारेमे कहा जाता था, पहिले यह सारी सम्पत्ति—गाँव आदि--किसी राजाकी थी। हाथीराम बाबा कोई वैरागी उत्तर भारतसे आये, उनके सिद्धिबलसे राजा इतना प्रभावित हुआ, कि उसने अपना सर्वस्व उन्हें दे दिया। मठके गाँवोकी आमदनी बारह-तेरह लाखकी बतलाई जाती है। इसके अतिरिक्त ऊपर पहाडपर वेंक`श (बालाजी), तथा नीचेके कई मन्दिरोके चढावेकी भी बहुत भा ी आमदनी है। मन्दिरोकी आमदनीपर उस वक्त

भी महन्तका एकाधिकार नही था। पिछले कई महन्तोके जहर या गोलीके शिकार होनेकी बात मै सुन चुका था, इसलिए वर्तमान महन्त प्रयागदासका बहुत सजग रहना स्वाभाविक था। हाथीराम बाबाके समयसे ही यहाँके महन्त उत्तर भारतीय होते आ रहे है, महन्त प्रयागदासका जन्म राजपूतानेका है। महन्तोकेलिए बहुत पढने-लिखनेकी क्या जरूरत, जब वैरागियोके यहाँ कहावत मशहूर है—"पढै लिखै बब्भनका काम। भज वैरागी सीताराम।" महन्त प्रयागदासके पास एकाध ही बार मै गया, खाली स्थानपतिको अपना सम्मान प्रदर्शित करनेकेलिए, अन्यथा किसीकी मुसाहिबी करनी मेरे स्वभावसे बिल्कुल उल्टी बात थी।

यहाँ रहते हुए मैने फिर सोचा और अन्तमे इसी निर्णयपर पहुँचा, कि उत्तराखडको छोड़कर दक्षिणापथको मै अपना कार्यक्षेत्र नही बना सकता, और तब कितना ही प्रिय होनेपर भी तिरुमिशी लौटकर जाना उचित नही। मैने परसा तार दिया और तारसे ही रुपये चले आये। रुपये लेते वक्त महन्तजीका हस्ताक्षर जरूरी था, इसलिए उस वक्त दो-एक बात बोलनेकी जरूरत पडी। तिन्नानूर या चिन्नानूर तिरुपतीसे थोडी दूरपर एक गाँव है, जहाँ लक्ष्मीका एक पुराना मन्दिर है। उत्सवमे बडी भीड थी, यहाँ आन्ध्र, द्रविड स्त्री-पुरुषोंके अतिरिक्त सैकडों वैरागियो और आचारियोके रूपमे कितने ही उत्तर भारतीय भी थे।

वेकटाचलम् या बालाजीका पर्वत तिरुपतीसे आठ-दस मील दूर पहाडपर है। पहाडकी जडमे सीढियाँ बनी है, जिनमे पहिले तो दाता लोग अपना नाम खुदवाकर अमर फल पाने की कोशिश करते थे, और अब विज्ञापनबाजीके युगमे बहुतसी व्यापार कम्पनियाँ अचिर फलके लिए सीढियोंपर अपना नाम खुदवा रही है। पहाडकी पैदल चढाईमे जितना चक्करदार बिना सीढीका रास्ता अच्छा होता ह, उतना सीढियाँ नही। सीढियोपर आदमी जल्दी थक जाता है, तो भी सीढी बनानेका रवाज बहुत पुराना मालूम होता है। सीढियोको पार करनेके बाद रास्ता साधारण चढाई-उतराईका शुरू हो जाता है। रास्तेके दोनो तरफ काफी जगल है।

बालाजीकी बस्ती अधिक यात्रियो और उनकी सहायतामें व्यापृत लोगोकी है। तिरुपतीके वैरागी सस्थानका मूल मठ यही है, जो पहिलेका राजप्रासाद बतलाया जाता है। मुझे पहिले मठमे जाकर आसन लगाना था। मठके बाहरी भागमे पहाडी-की जडमे पाँतीसे बहुतसी कोठरियाँ थी, जिनमेसे एकमे दूसरे दो साधुओके साथ मुझे भी स्थान मिला। सयोगसे मेरी बगलमे एक मस्त मौला साधु मिल गये, जो कई सालोसे वही रहा करते थे। बोलने-चालने, गाने-बजाने, देश-परदेशकी बातोका

जितना उनका ज्ञान था, उसके रहते वह मठके प्रभावशाली व्यक्तियोंमें हो जाते, किन्तु उनको इससे मतलब नहीं था। बहुत दिनों तक भारतके भिन्न-भिन्न भागोंकी भी उन्होंने सैर की थी। आज यहाँ एक जगह रहनेपर वह रोज़ दो-चार कोस दूर जंगलोंमें चले जाते थे। अंचला, कमंडलुके अतिरिक्त एक खन्ती, झोलीमें गाँजेकी चिलम, साफ़ी तथा दियासलाई उनके पास होती। मौज आती तो बड़े स्वरके साथ गाते--"चार युगोंमें नाम तुम्हारा कृष्णकन्हैया तुम्हीं तो हो।" वह मुरादाबाद जैसे किसी शहरके रहनेवाले थे। भाषा उनकी स्वभावतः परिष्कृत थी। सैलानी तबियतके साथ इस विशेषताने मुझसे उनकी घनिष्टता पैदा कर दी। शामको हम दोनों दूर चले जाते। यहाँ तक चिलम-साफ़ीसे बचा आया था, किन्तु अब मैं न बच सका। दरअसल वैसा करनेमें हमारे साथका आधा मज़ा ही किरकिरा हो जाता। कभी-कभी हम लोग दो-दो, तीन-तीन घंटा रात बीतनेपर स्थानमें लौटते। लोग कहा करते थे, इन जंगलोंमें बाघ रहता है, और एकाध बार बस्तीके पासकी मठकी गौशालासे गायको पकड़ भी ले गया, तो भी चिरनिवासी साथीको जब इसकी पर्वाह नहीं थी, तो मुझे क्या होती। शामको चार बजे हम इस दैनिक सैरपर निकलते। दिनमें एक और अड्डा बन गया था। बालाजीके मन्दिरके खुलते वक़्त और जब तक खुला रहे, तब तकके लिए वहाँ वैरागीमठके एक व्यक्तिका रहना ज़रूरी था। वह व्यक्ति एक उत्तर भारतीय पचास बरसके साधु थे। गलेमें सोनेकी साँकल, कानमें साँकलदार मणिजटित कुंडल, तथा बदनपर ज़रीकी क़ीमती ख़िलअत पहिने वह द्वारकी दाहिनी तरफ़ आकर खड़े होते, जब कि दर्वाज़ा खुलता। उनका अपना स्थान और बग़ीचा था, उन्होंने उसे काफ़ी आरामदेह और सजाकर रखा था। 'कृष्णकन्हैया' बाबाके साथ मैं एक दिन वहाँ गया। हाथीराम बाबा भी राजासे चौपड़ खेलते थे, इसीलिए शायद, यहाँ भी चौपड़ खेली जाती थी। मैं भी शामिल हो गया। खेलके बाद वहीं खानेका आग्रह। इतने दिनोंसे रहते भी उन्हें भात खानेकी आदत नहीं थी। दोपहरको मुझे अक्सर वहीं खाना खाना पड़ता, और सदा पूड़ी ही बना करती। मालूम नहीं बालाजीमें दस दिन रहा या पन्द्रह दिन, उनमेंसे अधिकांश दिनों दोपहरका भोजन मेरा यहीं होता रहा।

दूसरे मठोंकी भाँति बालाजीके "अधिकारी"का भी महन्तके नीचे मठके प्रवन्धमें काफ़ी अधिकार था। अधिकारीजी ज़्यादा यहाँ ही रहा करते थे। उनके दोनों पैर बेकार थे। 'कृष्णकन्हैया' बाबाको जब कभी भी गाँजेकी कमी होती, तो वह अधिकारीजीके पास चले जाते। अधिकारीजी उनको मानते थे। अधिकारी वस्तुतः महन्त-

की अपेक्षा साधुओमे अधिक जनप्रिय थे। बालाजीके मध्यम-श्रेणीके साधु कर्म-चारियोके पास जब चालीस-पचास हजार रुपये जमा हो जाने आसान थे, तो अधि-कारीके बारेमे क्या कहना ?

बालाजीमे सबसे मनोरम प्राकृतिक दृश्यकी जगह मुझे एक हनूमानजीका स्थान मालूम हुआ। वहाँ बारहो महीने "जनु वसन्त ऋतु रह्यो लुभाई।" खूब दरख्त, चारो ओर हरियाली, पानीसे भरा जलाशय, और आसपास वनाच्छादित पहाडियाँ थीं।

बालाजीका निवास भी अच्छा रहा, और छोडते वक्त, चित्तको उदासी मालूम हुई। किन्तु आखिर हर जगह एक-एक बरस देनेके लिए हजार-हजार बरसकी उमर भी तो चाहिए। हजार बरसकी आयु होनेपर भी कौन जानता है, वह एक साल भी आदमीकी नजरमे दस-पन्द्रह दिनका नही लगने लगेगा।

बालाजीसे फिर तिरुपती और वहाँसे आगेकी यात्रा आरम्भ हुई। अब मै पहिलेकी भाँति तहीदस्त मुहताज नही था। पाँच रुपये जब हाथमे रहते तभी परसा तार देता, और तीसरे दिन पचीस रुपयो का मनीआर्डर पहुँच जाता, तो भी जो रुपयेके बल पर सैर करना चाहता है, वह सैरका मजा नही उठा सकता—आखिर मिर्चोकी कडवाहट ही स्वाद है। अबके रेनगुटासे जब हम स्वामिकार्तिककी ओर गये, तो हमारे साथ चार-पाँच और वैरागी थे। आचारियोकी हदसे ज्यादा छुआ छूत, और 'मै बडा—तू छोटा'की नीति ने भी मुझे तिरुपतीमे आचारी खटलेमे न जाने दिया। एक लोटा या कमडलु लेकर कमसे कम सामानके साथ घूमनेकी इच्छावाला आदमी भला आचारी-खटरागको कैसे माथेपर ढो सकता है ? वैरागी इस विषयमे कुछ स्वतत्रता रखते थे, यद्यपि उतनी नही जितने कि सन्यासी। हम चार-पाँच वैरागी थे, किन्तु एक-दूसरेके हाथकी रोटी खानेसे पहिले हमे अपनी जातिका प्रमाणपत्र मँगवाना जरूरी नही था। स्थान, नाम, द्वारा-अखाडाका उत्तर जहाँ ठीक आया, कि समझ गये—टकसाली साधु है, नकली नही है।

स्वामिकार्तिक मन्दिर पहाडपर रेनगुटासे कुछ दूर शायद दूसरे स्टेशनपर था। किस तरहकी मूर्त्ति, कैसा मन्दिर था यह याद नही। शायद पासके छत्रम्मे सदावर्त थी, जहाँ हमने भोजन बनाकर खाना खाया था।

चिंगलपटसे हम पक्षीतीर्थ गये। उत्तर भारतीय साधुओने दक्षिणके अधि-काश नामोको दूसरे ही नामोसे प्रसिद्ध कर दिया है, इसलिए कह नही सकते पक्षीतीर्थ का तमिल नाम क्या है ? वहाँ एक प्राकारवेष्ठित विशाल मन्दिर है, किन्तु वैरा-

गियोंका पंछीतीर्थ उसके पासवाली पहाड़ीपर है। रोज दस बजे पुजारी लोग कुछ भोजन बनाकर उस पहाड़ीके पार्श्वपर ले जाते हैं, फिर दो बड़े-बड़े पक्षी मंडराते उतर आते हैं, जिन्हें पुजारी भोजन कराते हैं। कहते हैं, यह पक्षी साधारण पक्षी न हो भगवान् विष्णुके वाहन साक्षात् गरुड़जी और उनकी धर्मपत्नी हैं। मुझे तो वह चमरगिद्ध (सफ़ेद शरीर, काली पोंछवाले छोटे गिद्ध) मालूम हुए। वहाँ कितने ही श्रद्धालु गरुड़ महाराजको साष्टांग दंडवत् करते थे। नीचेके बड़े मन्दिरके बारेमें यही याद है, कि उसकी किसी शालामें चमगादड़ियोंकी भरमार थी, और बदबूके मारे नाक फटी जाती थी।

कांचीपुर (कंजीवरम्)के शिवकांची, विष्णुकांची नगरार्द्धोंके मन्दिरोंमें भी गया, किन्तु उस वक़्तकी कोई बात याद नहीं। श्रीरंग और मदुरा होते रामेश्वरम् चला। रामेश्वरका रेलवेपुल अभी नहीं बना था। जाते वक़्त एक स्टीमरसे उस पार गया। खाक चौकमें डेरा गिरा। 'वैरागियों'के स्थान अधिकतर उन्हीं जगहोंमें हैं, जहाँ तुलसीकृत रामायण चलता है—यदि बंगालके गौडिया साधुओंको वैरागीमें न गिना जाये। गुजरातमें वैरागी स्थान बहुत हैं, और महाराष्ट्रमें भी कितने ही हैं, किन्तु उनमें रहनेवाले साधु प्रायः हिन्दी-भाषाभाषी हैं। मद्रासकी तरफ़ वैरागियोंके स्थान कम हैं, जिसके कारण उन्हें कष्ट होता है। वस्तुतः स्थान क्या हैं, घूमती-फिरती पल्टनकी स्थायी छावनियाँ हैं, जहाँ पहुँचते ही साधु घरसा अनुभव करने लगते हैं। यदि स्थानीय साधुके पास खाने-पीनेका सामान है, तो वह हाज़िर है; यदि नहीं है, तो वह एक लोटा पानी लेकर खड़ा हो सकता है, अभ्यागत उसकेलिए बुरा नहीं मानेगा। उसके पास अपना जो कुछ रहेगा उससे रसोई बनावेगा और स्थानीय साधुको भी खिलावेगा। दक्षिणमें वैरागी साधुओंके अभाव होते भी वहाँ छत्रम् और सदावर्त काफ़ी हैं, जिससे यात्रा असह्य होने नहीं पाती। रामेश्वरम्में एक या दो ही वैरागी साधुओंके छोटे-छोटे स्थान हैं,—खाक चौक और रामझरोखा। खाक चौक बस्तीमें होनेसे अधिकांश साधु यहीं जाते हैं। एक, दो दिन तक साधु-सेवा भी होती है, शायद दायक अधिकतर उत्तर-भारतीय यात्री होते हैं। रामझरोखा बस्तीसे बाहर एक जगह है। उस वक़्त एक चलते-पुर्जे साधु यहाँ रहते थे। वह दो-चार अभ्यागत साधुओंको बुला लाते, यात्रियोंसे—'हमारे स्थानमें बच्चा, इतनी मूर्त्तियाँ हैं, कुछ रागभोगका इन्तिज़ाम करो' कहकर सामान लाते। शामको साधुओंको एक-एक मुट्ठी चना देकर टरका देते। दूसरे दिन फिर रामेश्वरसे दूसरी मूर्त्तियाँ फँसा लाते।—यही उनका काम था।

रामेश्वरके मन्दिरकी विशाल शालाये, छतसे ढँकी परिक्रमाओको देखनेसे मालूम होता था, कि मन्दिरोके बनानेमे उत्तर भारत दक्षिण भारतसे कितना पिछडा हुआ है—यदि हम मुसल्मानोके शासनकालमें टूटे मन्दिरोकी गिनती न करे। रामेश्वरके प्रधान गर्भमन्दिरके सामने कोई मडप बन रहा था। भीतर शिवलिंगपर लोग जल चढ़ा रहे थे, कितने ही काशी, हरिद्वार और गगोत्रीका गगाजल ढाल रहे थे।

रामेश्वरसे कुछ साधुओंके साथ मै धनुषकोडीकेलिए निकला। स्टेशनके रास्तेमे एक दो आदमियोंके साथ एक तरुण ब्रह्मचारी दयाशकर—नाममे भूल हो सकती है (वह उनके हाथपर खुदा हुआ था)—मिले। उनके बदनपर एक लम्बी अल्फी, शिरपर एक छोटासा अँगोछा, हाथमे पीतलके कमडलुमे शख थी। मझोला कद, छरहरा बदन, गोरा रग, आयु २६, २७की होगी। शहरी हिन्दी बडी बेतकल्लुफीसे बोल रहे थे। मालूम हुआ उनका जन्मस्थान मथुरा है। वह भी धनुषकोडी जा रहे थे। हम लोग रामेश्वरके टापूके दूर तक फैले बालू, काँटेदार बबूलो और ताडोको देखते रेलसे रवाना हुए। स्टेशनसे उतरकर कुछ दूरपर ताडके पत्तोसे छाई एक वैरागी-कुटिया थी। अभी हाल हीमे बनी थी, इसलिए बडी बेसरोसामानी थी। उन्हे मीठा पानी दूरसे लाना पडता था। खैर, उस तपती भूमिमे ताड-पत्तोकी छाया मामूली चीज न थी। कुटीसे थोडी दूरपर दो दिशाओं—दक्षिण और पश्चिमको दिखलाकर बतलाया गया—यही 'रत्नाकर' और 'महोदधि'का सगम है। दोपहर और शामको भी समुद्रस्नान हुआ, और रातको वही विश्राम।

लौटते वक्त ब्रह्मचारी दयाशकरसे विशेष बात हुई। वे कुछ महीनोसे दक्षिणमे आये है। आजकल पामनमे रह रहे है। वैद्यका काम करते है, जिससे निर्द्वन्द्व विचरनेकेलिए उनको बहुत सुभीता है। उनके साथ एक कालासा आदमी था, ब्रह्मचारीका गाँजा-चिलम-दियासलाईका खजाची वही था। 'वैराग्य'मे आकर पुलीसकी नौकरी छोड उसने ब्रह्मचारीका साथ पकडा था। मै भी उर्दू बोल सकता था, मुझे भी कितने ही शेर याद थे। अन्तमे ब्रह्मचारीने मुझसे पामन चलकर कुछ दिन रहनेकेलिए कहा। ऐसे निमन्त्रण यदि हर सौ मीलपर मिला करते, तो मै दो-दो हफ्ता बितानेके लिए तैयार था।

पामन रामेश्वर-द्वीपकी अन्तिम बस्ती है। उसके बाद कुछ मीलोकी उथलीसी खाडी और फिर जम्बूद्वीप (भारत)का स्थल-भाग आ जाता है। पामनके ज्यादातर रहनेवाले मुसल्मान थे—ब्रह्मचारी भी एक मुसल्मान हीके मकानमे रहते थे। ये लोग हिन्दुस्तानी बोलते थे, इसलिए तमिलसे अनभिज्ञ ब्रह्मचारीको सुभीता था।

पर अधिकतर दूध और मांसके थे। ब्रह्मचारीके पास पैसोंकी कमी न थी। रोज दस, पन्द्रह, बीस रुपये आ जाते। पाँच-सात रुपये रोज तो उनके गाँजेमें उड़ जाते। उनके पास सिर्फ दो दवाइयाँ थीं, एक जमालगोटेका जुलाब, और दूसरी संखियाकी भस्म। सिरदर्द-पेटदर्द जैसी मामूली बीमारियोंसे लेकर कुष्ठ, पांडु, यक्ष्मा, जैसे महा-रोगोंपर भी वह अनुपान बदलकर इन्हीं दवाओंको देते थे। मुफ्त दवा शायद ही किसीको देते हों। दवा देनेसे पहिले भेंटकी शर्त तै कर लेते। दो तिहाई या कमसे कम आधी रकम पहिले ले लेते, और बाकीकेलिए कह देते—इतने दिनों बाद रोगीको रोग-मुक्तिस्नान करा देंगे, और उसी दिन बाकी रुपया दे देना होगा। कितने ही बीमारोंको उनकी दवासे बहुत चमत्कारिक लाभ हुआ था, इसलिए लोग खुशी-खुशी रुपया देकर दवा कराते थे। पानमनमें तो खैर मुसल्मान सहकर्मी मुनाफिक काम कर देते थे, किन्तु दूसरी जगह होनेपर लोग खूब मुनाफिया लिये हुए आते। ब्रह्मचारीको यह पर्वाह नहीं थी, कि मुसल्मान के साथ रहनेके लिए लोग उनकी कैसी नुक्ताचीनी करते हैं, खासकर ब्राह्मन लोग।

मुसल्मान घरमें रहते हुए भी ब्रह्मचारी भोजन खुद या किसी साधुके रहनेपर उसके हाथका बनाया खाते और यह मेरे जैसों के लिए तकलीफ़की चीज थी। दूध, घी, आटा जितना चाहो, उतना मौजूद था, बनानेवाला चाहिए था। इसलिए पाकशालासे बहुत प्रेम नहीं करते थे, यद्यपि यह नहीं कह सकते, कि उससे बिल्कुल अपरिचित थे। कितने एक बार खीर पराठे, या कोई अल्पश्रमसाध्य चीज बना लिया करते। दिन-रातका वहाँ पता थोड़ेही लगता था। सवेरे जिस वक्त नींद खुली, गाँजेकी चिलम तैयार मिली। और फिर एक चिलम बुझ रही है, दूसरी जल रही है, यही सिलसिला तब तक जारी रहता, जब तक रातको सो नहीं जाते। मैं समझता हूँ, शायद ही रातको ३ ४ घंटे भी ऐसे बीते हों, जिनमें मेरा मस्तिष्क गाँजेके नशेमें मस्त न रहा हो। ब्रह्मचारीकी चमत्कारिक दवाको देखकर मेरी भी ख्वाहिश हुई उसे सीख लेनेकी। ब्रह्मचारी चाहते भी थे सिखा देना, किन्तु कह रहे थे—जमालगोटा मारना, संखिया मारना आप किताबसे भी सीख सकते हैं, किन्तु जब तक सामने बनाकर दिखलाया न जावे, तब तक मुँहसे बतला देनेसे कोई फ़ायदा नहीं। उनका कहना ठीक था, और वस्तुतः मेरे तीन-चार सप्ताह पानमनमें रह जानेका भी प्रधान कारण यही भस्म-विधि सीखनेकी इच्छा थी। गाँजा पीने, गप करनेके अतिरिक्त वहाँ मेरे लिए दूसरा काम नहीं था, शायद उर्दूकी कोई कविता-पुस्तक ब्रह्मचारीके पास थी; उसे पढ़ लिया करता था। हमारे आवासके पास एक कोढ़ी मुसल्मान था, ब्रह्मचारी उसकी मुफ्त दवा

शुरू करनेवाले थे। उससे दो-एक कौवे बहुत हिल गये थे, वे उसके शिर और कन्धेपर बैठ जाते थे। कौओंको लड़कपन हीसे मै बहुत होशियार जाति जानता था। सुना था, मादा कौआ एक बार अपने बच्चोको सिखला रही थी—'जैसे ही कोई पत्थर उठानेके लिए झुके, उड जाना।' बच्चोने पूछा—'और माँ! यदि वह घर हीसे पत्थर लिये आवे?' माँने कहा—'तब तुम्हे सिखलानेकी जरूरत नही।' यहाँ इन कौओको कोढ़ीके शिर और कन्धेपर बैठते देखना उनकी जातिकेलिए भी चतुराई का अपवाद जान पडा।

ब्रह्मचारी सामान मँगाकर भस्म बनाना सिखलानेकी तैयारी कर रहे थे, किन्तु अब मेरी रुचि उधरसे हट गई थी। दुनियाके सभी व्यवसायोको सीखनेसे मतलब, जब मै सबको कर नही सकता? ब्रह्मचारी और मुझमे कई बातोमे समानता थी, उर्दू, शहरी भाषा और जीवनके भी हम समान भक्त थे, इसलिए उनकी इच्छा क्योकर होती, कि मै चला जाऊँ।

चलनेकेलिए हमने पामन खाडीपर नये बने पुलपर चलनेवाली पहिली ट्रेनको पसन्द किया। ब्रह्मचारीने रामनदमे भी अपने लिए एक अड्डा बना रखा था, और वह भी मेरे साथ ही आये। अड्डा क्या, बस्तीसे दूर खजूरोके काँटेदार झुर्मुटमे पन्द्रह-बीस हाथ लम्बी-चौडी एक जगह साफ की गई थी, और उसीमे तालके पत्तोकी एक झोपडी पडी थी। ब्रह्मचारी जब कभी आते तो वही ठहरते। झोपडी मदुरासे रामनद होते रामेश्वर जानेवाली सडकपर थी, इसलिए पैदल चलनेवाले साधु कभी-कभी वहाँ पहुँच भी जाते थे। वस्तुत, इसी ख्यालसे ब्रह्मचारीने उस जगहको पसन्द किया था। जब साधु आ जाते, तो उनको बहुत खुशी होती। ब्रह्मचारी उन आदमियोमे थे, जो आजकी आमदनीको कलकेलिए रख छोडनेको अपराध समझते है। साधुओको खिलाने-पिलानेका उन्हे बहुत शौक था। तीर्थ-यात्रियोमे दो श्रेणी होती है, एक नियमपूर्वक किसी सम्प्रदाय—वैरागी, उदासी, सन्यासी आदि—मे प्रविष्ट साधु, जिनको अपने सम्प्रदायका आचार-व्यवहार सीखना जरूरी होता है, और सम्प्रदायकी सार्वजनिक रायको माननेकेलिए बाध्य होना पडता है। उनको लज्जा, सकोच, आत्म-सम्मानका भी बहुत ख्याल करना पडता है, इन पावन्दियोका लाभ उनको यह है, कि सारे भारतमे जगह-जगह अवस्थित अपने सम्प्रदायके स्थानोमे दावेके साथ, और दूसरे स्थानोमे सन्मानके साथ उन्हे स्वेच्छासे रहनेका मौका मिलता है। ये स्थान विना पैसे-कौडी दिये यात्रीके लिए भोजन और निवासके होटल है—इसीसे पता लग सकता है, कि इन सस्थाओने साधुओकेलिए यात्रा कितनी सरल बना

दी है। भारतका कोई भाग नही है, जहाँ ये मठ या साम्प्रदायिक स्थान न हो। हिन्दी भाषाभाषी हिन्दू-प्रान्तोमे इनकी संख्या बहुत ज्यादा है,—पजाब, सिन्धु सीमान्तमे भी हिन्दुओकी सख्याके अनुसार काफी है। गुजरात, कठियावाड साधु-सेवाके लिए बहुत प्रसिद्ध प्रान्त समझे जाते है। आसाम, बगाल, ओड़ीसा, महाराष्ट्रमे भी सख्या काफी है। द्रविड-भाषाओके चारो प्रान्तोमे अवश्य इन मठोकी कमी है। वैसे तो ये मठ काबुल, कन्धार तक ही नही सुदूर पश्चिम कास्पियन तटके बाकूमे भी कुछ साल पहिले मौजूद थे।

रामनदमे ब्रह्मचारीसे बिदाई ली। एक बार फिर तिरुमिशी लौटनेका विचार हो सकता था, किन्तु मेरे जैसे आजाद-तबिअत मुसाफिरत-पसन्द आदमीकेलिए आचारियो-के आचार-व्यवहार भारी बन्धन थे—, यह बात अभी बालाजीसे रामेश्वरकी ताजी यात्राने भी बतला दिया था—इसलिए ैने उधर जानेका ख्याल छोड दिया। धात्रा-की तरह पढनेकी चि भी मेरे खमीरमे है, इसलिए जब तक वह उग्र रूप धारण नही करती, तबतक कुछ घूम लेना मैंने जरूरी समझा। इस प्रकार अब मेरा रुख द्वारिकाके रास्तेमे आनेवाले तीर्थों और दर्शनीय स्थानोकी ओर था।

**बंगलोर**—रास्तेमे पहिले-पहिल बगलोरमे उतरा। शहर देखकर गाड़ीसे आगे बढनेका इरादा था। बाजारमे भोजनसे निवृत्त होनेके लिए कोई स्थान ढूंढ रहा था, कि एक हलवाईकी दूकान मिली। हलवाईकी दूकान द्राविड़ प्रान्तोकेलिए नई चीज है। पानी-पूडीमे जहाँ बराबरकी छुआछूत हो, वहाँ हलवाईकी दूकान से चल सकती है ?. जाकर रुच्यनुसार पेटभर पूडी-मिठाई खाई। पैसा देनेपर हलवाईने कहा—"नही महाराज ! आपसे पैसा नही लेते। उत्तर भारतीय सन्तोकी एक बार भोजनसे सेवा कर देना हमारा नियम है।"

**विजयनगर**—बगलोरके बाद, जहाँ तक याद है, विजयनगर (हम्पी)के खंड-रोंके लिए उतरनेकी जगहपर रेलसे उतरे। स्टेशनका नाम शायद हूसपेट था। धर्मशालामे कुछ 'खडियापल्टन'वाले मिले। 'खड़ियापल्टन' यह साधुओका खास शब्द है। बहुतसे स्त्री-पुरुष किसी सम्प्रदायमे बाकायदा दीक्षा लिये बिना साधुका वेष बनाये भारतके भिन्न-भिन्न जगहोमे घूमते-फिरते है। इन्हे साम्प्रदायिक आचार-व्यवहार वेष-भूषाकी बाकायदा शिक्षा तो हुई नही रहती, इसलिए ऊपरसे साधुओको देखकर उनकी नकल करना चाहते है। नकल करनेमे भी अवान्तर भेदो—जो बहुत सूक्ष्म होते है—का ध्यान रखना जरूरी है, किन्तु ये उसमे अपनी अनभिज्ञता प्रदर्शित करते है। साधु देखते ही समझ लेते है, ये बनावटी साधु है। खडिया कन्धेपर दोनो

तरफ लटकते झोलेको कहते है, जिसे किसी सम्प्रदायके साधु इस्तेमाल नही करते, ये तीरथवासी खडिया लिये फिरते है, इसलिए इनका नाम ही "खडियापल्टन" पड गया है। साधुओमे स्त्री, स्त्री-साधुनियोके साथ, और पुरुष, पुरुष-साधुओके साथ घूमते है, खडियापल्टन इस नियमसे अपनेको मुक्त समझती है, उसमे स्त्री-पुरुष दोनो शामिल रहते है।

खडियापल्टनसे मालूम हुआ, किष्किन्धा—विजयनगरके पासकी बस्ती—यहाँसे बहुत दूर नही है, पक्की सडक गई है। शायद सवारी भी मिल रही थी, और मेरे पास पैसोकी कमी न थी, तो भी पैदल चलना ही मुझे पसन्द आया। बोझा रखनेका मै विरोधी हूँ। शरीरको हल्कासे हल्का रखना मुझे पसन्द है, और खाली हाथ चलनेमे मजा आता है। रास्ते और उसके आसपासके स्थानोके बारेमे कोई बात याद नही, सिवाय इसके कि मै कर्णाट भाषाभाषी प्रदेशमे चल रहा था। शामको ४ बजेके करीब मै एक खडहरके पास पहुँचा। एक कब्र थी, एक वृक्षके किनारे बडासा चबूतरा था, जो बहुत दिनोसे बेमरम्मत पडा था। वहाँ एक शाह साहेब (मुसलमान फकीर) बैठे थे। उन्होने हाथ उठाते हुए 'दर्शन सफा' कहा, मैने भी 'मिजाजे वफा' कह जवाब दिया। हिन्दू-मुसलमान साधुओमे पारस्परिक अभिवादनकी यह रीति है। शाह साहेबने आग्रहसे बैठाया। गाँजेकी चिलम तैयार की, दयाशकर ब्रह्मचारीके यहाँ चिलममे मुसल्मान गृहस्थ तक शामिल होते थे, तो यहाँ मुसलमान साधुके लिए क्या कहना था ? चिलम पीते हुए हम लोगोकी कितनी ही देर तक बाते होती रही। शाह साहेब उत्तर भारतके ही कहीके थे, दक्खिनके मुसलमानोके खान-पान, बोली-बानीकी उनको सख्त शिकायत थी। कह रहे थे—"इम्ली और मिर्च। तोब तोब। कम्बख्तोको खानेका भी शऊर नही।" हम लोगोके बात करते समय ही एक दूसरे साधु चले आये, उन्होने मुझे भी अपने साथ चलनेका निमन्त्रण दिया। वे तीन-चार साधु नदीके पास किसी परित्यक्त पाषाणगृहमे पाँच-सात दिनोसे ठहरे हुए थे।

सूर्यास्त हो गया था, जब हम तकियासे रवाना हुए। हमे एकाध जगह नगरके टूटे पाषाण-प्राकारको पार करके जाना पडा। मैने भारतके इतिहासको पढा तो था, किन्तु अभी ऐतिहासिक दृष्टि प्राप्त नही हुई थी, तो भी विजयनगरको ऐतिहासिक स्थान ही समझ मै देखने आया था। साधुओका निवासस्थान सचमुच ही मस्तानोका अखाडा था। गोसाई (सन्यासी), उदासी, वैरागी सभी सम्प्रदाय वहाँ मौजूद थे। मुझे छोड बाकी सभी जटाधारी भभूतिये थे। बीचमे लकडीकी धुनी जल रही थी और चारो ओर हम लोग बैठे थे। यहाँ ब्रह्मचारी दयाशकरकी तरह

अखंड चिलम-चक्र तो नहीं चल सकता था, किन्तु दो चार चिलममें कोई हर्ज नहीं था। काफी वक्त 'सुखा दंकड़' चलता रहा। बातोंकी कमी न थी, सभी पुराने घुमक्कड़ थे, और दुनिया घूमते ही जिन्दगी काटी थी। इन्हींमें ही आटेके टिक्कर लगे, मालूम नहीं तरकारी या दाल थी कि नहीं।

रातको तो मैं कुछ देख नहीं सका था, सवेरे नहानेके बाद घूम-घूमकर प्राचीन विजयनगरके खंडहरोंको देखना शुरू किया। उस वक्त पुरातत्त्वकी ओरसे उल्लेखनीय खंडहरोंपर उनके साइनबोर्ड नहीं लगे थे। हर खंडहरका परिचय साथी साधुओंने पहिलेके आये, सुनी-सुनाई परम्पराके अनुसार दिया करते—'यह सुग्रीवकी कचहरी है', 'यह बालिका राजदर्बार है', 'यह ताराका रनिवास है', 'यह अंगदकुमारका महल है'....। सभी त्रेतायुगकी चीजें, सभी बालिकी किष्किन्धापुरीकी इमारतें। और मैं जो देखना था विजयनगरके ध्वंसावशेषोंको देखने? उनके बारेमें वहाँ कोई कुछ बतलानेवाला न था। तो भी ये मन्दिर और महल विजयनगर राज्यके समर्थक हैं, इस बारेमें मुझे सन्देह नहीं था। वैष्णव-विरोधी पुस्तिकाओंको पढ़ते वक्त उनमें त्रिपुंड्र और ऊर्ध्वपुंड्र (आड़ी-खड़ी टीका)का भी झगड़ा देखा था। मैं समझता था, वैष्णवोंका ऊर्ध्वपुंड्र बहुत पीछेका है, त्रिपुंड्र ही सनातनसे चला आया है। मैंने एक तरहके ऊर्ध्वपुंड्रोंको वहाँके मन्दिरोंमें अंकित देखा। मीलों चले जानेपर भी वे ध्वंसावशेष खतम नहीं हो रहे थे, और उनके मन्दिर, सामने पाषाण-गृहोंकी पंक्तियाँ या बाजार ध्वस्त हो जानेपर काफी रूप-रेखा रखती थीं। मन्दिर तो कितने ही आसानीसे मरम्मत कराये जा सकते थे। नगरके बीचसे पहाड़ी टेकरियोंपर भी कोई न कोई मन्दिर था। इन्हीं मन्दिरोंमेंसे एक जगह दोपहरको हम पहुँचे। स्थान आचारियोंका था। आचारी—तीन लोकसे मथुरा न्यारी—के सिद्धान्तानुसार अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग ही पकाते हैं। दूसरे सम्प्रदायके स्थानमें खाना-पीना तो उनका हो नहीं सकता, इसलिए दूसरे सम्प्रदायवालोंको अपने यहाँ खिलानेकी क्या जरूरत—इस ख्यालसे वैरागी-उदासी-संन्यासी साधुओंका उनके यहाँ आतिथ्य-सत्कार भी नहीं होता, होता भी है तो बेगारकी तरह। उक्त स्थान—रामगिरि या स्फटिकशिला—के अधिकारीने और साधुओंकेलिए तो भोजन-सामग्री दे दी, और मुझे खानेकेलिए बुलाया। इस भेदका कारण क्या हो सकता था? शायद जटा-जूटके अभावके कारण ऐसा किया गया हो।

दोपहर बाद हम तुंगभद्राके तटपर गये। नदी पार होनेकेलिए बड़े कड़ाहेकी शकलकी चमड़ेकी नाव थी, जिसमें एक बार तीन-चार आदमी बैठ सकते थे।

नदीमे जहाँ-तहाँ उभडी और दबी पत्थरकी चट्टानोको देखकर चमडेके नावकी उपयोगिता मुझे मालूम हो गई। अब हम हैदराबाद रियासतके एक बडे गाँव या कस्बेमे थे। वहाँ कितनी ही दूकाने तथा पक्के घर थे। लोगोने इसका नाम किष्किन्धा (आजकलकी) बतलाया। रातको हम पम्पा-सरोवरपर ठहरे। एक छोटे तालाब--जिसे पम्पासर बतलाया जाता था--पर एक वैरागी स्थान था दस-पाँच साधु वहाँ बराबर रहा करते थे। निवासस्थान और मन्दिर भी था, शायद काफी गाये भी थी। अभ्यागत साधुओकी सेवा होती थी, इससे मालूम होता था, कर्नाटकमे उत्तरीय साधुओका कुछ चल बन जाता है।

सबेरे उठकर स्नान-'पूजा'के बाद मै आसपासकी पहाडियोपर चढता फिरा। एक पहाडीमे अजनागुहा बतलाई गई। यहाँ ही अजनाने हनूमानका प्रसव किया था। मठसे थोडी दूरपर पौडे-ऊखके खेत थे, और शायद मुझे खानेकेलिए मोलसे या बेमोलके एक-दो मिले थे।

पम्पासरसे नदी पारकर फिर एक बार हम्पी (विजयनगर)के खडहरोमे आना पडा था। खडहरोमे, याद है, कोई बीजापुरका महल या मस्जिद भी देखी थी, जो अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित अवस्थामे थी।

**बागलकोट**--हूसपेटसे फिर रेलपर रवाना हुआ। परसामे गुरुजीसे पता लगा था, कि उनका एक सादिक (करम-धरम सीखनेवाला साधक)चेला बागलकोट मे महन्त है। इधर भी बागलपुरके महन्तकी साधु-सेवाकी बडी ख्याति सुनी थी; और अब मेरा रुपया भी समाप्त हो रहा था इसलिए कही दो-चार दिन ठहरकर उसे मँगाना था। बागलकोट सीधी लाइनपर नही है, और जहाँतक याद है, गडग रास्तेमे पडा था, किन्तु मै वहाँ उतरा नही था। स्टेशनसे मठमे पहुँचनेमे दिक्कत नही हुई। बागलकोटमे काफी मारवाड़ी दूकानदार है, और हिन्दी भाषा-भाषियोके पादरी तो हम लोग थे ही।

महन्त वैष्णवदास (शायद यही उनका नाम था)को जब मालूम हुआ, कि मैं परसाके महन्तका शिष्य हूँ, तो बहुत प्रसन्न हुए। हमारे गुरुजी उनके "सादिक" गुरु ही न थे, वल्कि उन्हे महन्ती भी उन्हीकी सलाहसे मिली थी, फिर ऐसे व्यक्तिके शिष्य और उत्तराधिकारीकी क्यो न खूब खातिर करते? वैसे भी बागलकोटमे साधुओकी बड़ी खातिर होती थी, और उन्हे तीन दिन तक रहनेकी खुली इजाजत थी। अभ्यागतको कोई काम नही करना पडता था--दूसरे स्थानोमे रसोईकी सामग्रीको सुधारना, तथा कुछ छोटा-मोटा काम करना जरूरी होता था, किन्तु यहाँ तीन बजे रातको

ही महन्तजी उठ जाते। स्नान-पूजाके बाद अपने एक शिष्यके साथ अँधेरा रहते ही रसोईमें घुसते। पूड़ी-तरकारी और साथमें हलवा या पूआमेंसे कमसे कम एक बारहो मास बनता था; कच्ची रसोई खिलाना महन्तजीके शानके खिलाफ़ था। बागलकोटके मारवाड़ी गृहस्थ महन्तजीकी साधुसेवामें सहायता पहुँचानेमें होड़ लगाये रहते थे। सूर्योदय होते-होते, जब नदीमें स्नान करके पूजाकी इच्छासे मारवाड़ी महिलायें आने लगतीं तब तक रसोई तैयार हो गई रहती।

गाँजे और तम्बाकूके पीनेमें पिछले एक मास मैंने अति कर दी थी, इसलिए सन्देह होने लगा कि पेटमें धूयेंकी बहुतसी कालिख जमा हो गई होगी। यहीं अपने हाथसे सनायकी जुलाब बनाकर ली, रुपयेकेलिए परसा तार तो दूसरे दिन ही भेज दिया था।

बागलकोटके बाहर एक नदी बहती है, और शायद पथरीली। इस तरफ धोबीको कपड़ा देनेका बहुत कम रवाज है, देखता था सवेरेसे शाम तक घाटके ऊपर कपड़ोंपर डंडा धबाधब चल रहा है।

**पंढरपुर**—रुपया आ जानेपर मैं वहाँसे पंढरपुरकेलिए चल पड़ा।—नये-नये तीर्थ-स्थानोंका पता साधुओंसे लग जाया करता है। पंढरपुर तथा वहाँके विट्ठलनाथ महाराष्ट्रके माननीय तीर्थ और देवमूर्ति हैं, किन्तु उनके बारेमें मैं इतना ही जानता था, कि जब हमारे साथी साधु मैदानमें रसोई बनाते, तो कहते—भाई विठ्ठल भगवान्से होशियार रहना, अर्थात् कुत्ता कहीं रोटी न उड़ा ले जावे।

**पूना-बंबई**—पंढरपुरसे चलकर पूनामें शायद एक दिन मैं ठहरा, वहाँ क्या देखा इसका कोई ख्याल नहीं। बम्बईमें पञ्चमुखी हनूमानमें आसन पड़ा। शहर और महालक्ष्मीको देखा। किसी खास चीजने वहाँ आकर्षण नहीं पैदा किया। जानकी माईकी ख्याति सुनी—'वह बहुतसे लोगोंको जहाजसे द्वारिका भिजवा देती है। उसके बहुतसे बड़े-बड़े सेठ सेवक हैं'—आदि आदि। मुझे बम्बईसे सीधे द्वारिका जाना नहीं था, और न किरायेकेलिए मेरे पास रुपयोंकी कमी थी।

**नासिक**—द्वारिका जानेसे पहिले नासिक जाना मैंने पसन्द किया। नासिक स्टेशनसे शहर तक उस वक्त घोड़ेकी ट्राम जाती थी, या कमसे कम उसकी रेल अब तक मौजूद थी। शहरके बाद पथरीली भूमिमें अनेक धारसे बहती-उतराती गोदावरीको पार किया। परसाका एक शाखामठ कपिलधारा (नासिक जिला)में था, जिसकी शाखा नासिकमें भी है यह पता लग चुका था। पता लगानेपर वह जगह तो मिल गई, किन्तु वहाँ उस वक्त कोई आदमी मौजूद न था। नासिक भी महाराष्ट्रमें

ही है, किन्तु यहाँ वैरागी तथा दूसरे उत्तर भारतीय साधुपन्थोके काफी स्थान है, यह देख कुछ नवीनता मालूम हुई; किन्तु पीछे बम्बईमे बसनेवाले मारवाडी गृहस्थोंका ख्याल आने ही वह शका दूर हो गई। दो-तीन दिन रह पचवटी और दूसरी जगहोंमे घूमता रहा।

त्र्यम्बक—नासिकमे मालूम हुआ, गोदावरीका उद्गम स्थान त्र्यम्बक बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है। उस वक्त कोई वार्षिक मेला था, हजारो स्त्री-पुरुष सडकसे उधर ही जा रहे थे, मै भी उनके साथ हो लिया। नासिकसे त्र्यम्बक कितने मील है, सो तो नही याद; किन्तु मै दोपहरसे पहिले नही चला था। रातको रास्तेमे रहना पडा, दूसरे दिन त्र्यम्बक पहुँचा, तो वहाँ भारी भीड थी। गोदावरीके स्रोतमे स्नान, और त्र्यम्बकका दर्शन किया। ठहरा कहाँ, नही कह सकता। करताल और एकतारा ले कई मडलियाँ कुछ कीर्तनसी कर रही थी, जो कि उत्तरी भारतके मेलोसे कुछ भिन्नसी चीज थी। रातको गैसकी रोशनीमे भी यह भजन-मगायन होते रहे।

कपिलधारा—त्र्यम्बकसे मै कपिलधाराको चला। गाँवका नाम कुछ दूसरा था और वह देवलालीसे नजदीक पडता है, किन्तु मै नासिकसे फिर लौटकर बम्बईकी ओर जाना नही चाहता था। रास्ता पहाडी, और पगडडीका था, खानेकेलिए मैने पासमे कुछ पेडे बाँध लिये। पहाडमे पानी कम था, और इधर मिठाई खानेसे प्यासने भी जोर मारा। नजदीकमे किसी आदमीके न मिलनेसे एकाध बार मै रास्ता भी भूल गया, इस प्रकार मेरी दिक्कते बढ गई। दोपहरको तो प्याससे व्याकुल हो मै रास्ता-वास्ताका ख्याल छोड गाँव ढूँढने निकल पडा, और काफी दूर जाने पर कुछ झोपड़े मिले। प्यासा हूँ, कहनेपर एक लडकीने ले जाकर गाँवसे बाहर एक गडहेको दिखला दिया, जिसका पानी मटमैलासा था, और मै समझता हूँ, उसमे मवेशियोके घुसनेकी भी कोई रुकावट न थी। साधारण अवस्थामे वैसे गडहेका पानी कौन पीता, किन्तु उस वक्त जब कि तालू फटना चाहता था, उस पानीसे कौन इन्कार कर सकता था? शामको पहाड़के एक बडे गाँवमे पहुँचा। सार्वजनिक चौपालसी थी, जिसमे मैने आसन डाला। रातको एक पुलीसका सिपाही आया, उसने नाम-स्थान आदि नोट किये। ख्याल आता है, वह हैदराबाद रियासतका गाँव था, लेकिन इसकी सत्यतापर अब विश्वास नही पडता। गाँवसे बडे तडके ही मै कपिलधाराकी ओर चल पडा। ऊँचाईसे नीचाई—ढालुआ समतल जैसी—की ओर, और फिर नीचाईसे ऊँचाईकी ओर रास्ता जा रहा था। रास्तेमे कोई आदमी खेतकी रखवाली कर रहा था, जिसके पास ठहरकर मैने मटर या चनेके ताजे होले खाये। कपिलधारामे दोपहरसे पहिले

पहुँचा था। उस वक्त महन्तजी वहाँ नही थे, कोई एक अभ्यागत साधु मन्दिरका काम कर रहा था। मठमे गाये काफ़ी थी। भीतर एक झरना था, जिसका नाम कपिलधारा था। महाराष्ट्रके इस अरण्य-पर्वतमे कैसे वैरागी स्थान बनानेमे सफल हुए, या कैसे चला रहे है और इसका प्रयोजन क्या ?—यह मुझे समझमे नही आया। लेकिन जिस वक्त मेरे दिलमे वे ख्याल आ रहे थे, उस वक्त मै त्र्यम्बकसे रास्तेकी मार खाता आ रहा था। कपिलधारासे देवलाली ज्यादा नही है, इस बातका उस वक्त मेरे दिलमें ख्याल न था। कपिलधारामे उस साधारण मीठे पानीके झरनेके सिवा और कोई खास बात नही थी, किन्तु मै परसामठकी सुदूर महाराष्ट्रमे अवस्थित शाखाके तौरपर उसे देखनेकेलिए आया था, जिसमे कि परसा लौटकर मै गुरुजीको बतला सकूँ, कि मै वहाँ हो आया हूँ। जो अकेला साधु वहाँ रहता था, एक आगन्तुक साधुको देखकर उसपर भारी बोझसा पड गया। उसने पहले तो कहा—महन्तजी यहाँ नही है, वह कही गये हुए है, मै तो मन्दिर और इन गायोको देखनेपर लगाया गया हूँ। कुछ देर इधर-उधरका काम करके वह फिर आया, और बोला—मै तो भोजन कर चुका हूँ, चावल दे देता हूँ, भोजन बना ले, और मट्ठासे खा लें। मैने कहा—इस वक्त मै थका-माँदा हूँ, मट्ठा ही दे दो-एक लोटा, वही पीकर विश्राम करूँगा।

देवलाली बहुत दूर नही, यह सुनकर दोपहर बाद मै स्टेशनपर चला आया।

**ओंकारनाथ-मान्धाता**—बम्बईसे ही नासिककी ओर चलते वक्त निश्चय किया था, कि ओंकारनाथ और उज्जैनका दर्शन करते डाकोरसे द्वारिकाकी ओर जाना है। देवलालीमे मैने बुर्हानपुरका टिकट लिया, लेकिन वहाँ शहरमे ठहरा नही। बुर्हानपुरसे ओंकारनाथकेलिए कौन स्टेशनपर उतरा, नही याद; किन्तु शायद एक या दो नदी को पार करना पडा था। मान्धाताको स्टेशनसे कुछ पैदल चलकर जाना पडता है। पहाडोंके बीच नर्मदाकी गम्भीर धार है, नदीके दोनो तरफ बस्ती है, पुलके उस पारवाली बस्तीमें किसी गोडराजाका महल बतलाया जाता था। मै इसीपार नरसिहटेकरीके वैरागीके स्थानमे ठहरा। नर्मदाकी महिमा काशीमें अपने वेदाध्यापक गुजराती ब्रह्मचारीसे बहुत सुनी थी। वह नर्मदाके किनारे बहुत विचरे थे। उनकी सम्मतिमे पवित्रतामें नर्मदाका स्थान गगासे कम ऊँचा नही है। बल्कि योगियो और तपस्वियोकेलिए मुक्तिसाधनाका जो सुभीता नर्मदा प्रदान करती है वह गगा भी नही। ओंकारनाथमे मै एकसे अधिक दिन ठहरा था। शामके वक्त नदीके तटके ऊपरकी ओर दूर तक चला जाता। वहाँ खर्बूजेके खेत थे, दिसम्बर या जनवरी होनेसे वह खर्बूजोके पकनेका समय तो नही था। इस पारके किसी शिवालयमें एक

शिलालेख मैंने देखा था, किन्तु वह प्राचीन था या नवीन इस ओर उस वक्त ध्यान ही नही जा सकता था। पुलणरकी वस्तीसे भी गया था, कह नही सकता ओंकार-नाथका मन्दिर उस पार है या इस पार।

उज्जैन—मान्धातासे चलते वक्त मेरे साथ एक और तरुण नागा साधु हो लिये। मुसल्मानी कालमे, समसामयिक सभी देशोमे मठाधिकारी तथा भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय अपने स्वार्थोकी रक्षाकेलिए फौजी ढगसे अपनेको सगठित करते देखे जाते है। भारतमे भी वैसा हुआ था। उस वक्त मुस्लिम-शासन होनेसे आजके जैसे हिन्दू-मुस्लिम झगड़े तो हो नही सकते थे, उसकी जगह हिन्दुओके आपसके साम्प्रदायिक झगडे होते थे। हर वारहवे साल, और आपसमे कुछ सालका अन्तर दे हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिकके चार चढाव ('कुम्भ' मेले) हुआ करते थे, जिनमे यात्रियोकी सख्या लाखो तक पहुँचती थी। वैरागी, दशनामी (गोसाई या सन्यासी) तथा दूसरे सम्प्रदायोके हजारो साधु जमात बाँधकर आते। सख्या और प्रभावमे वैरागी और सन्यासी आगे वढे हुए थे, इसलिए चढावमे पहिले स्नान करनेकेलिए इन्हीमे आपसमे झगडे हुआ करते। कवीरका समय तो वैरागियोका आरम्भिक समय था, इसलिए सोलहवी सदीके अन्तसे पहिले वह सन्यासियोसे लोहा लेने लायक नही हो सके होगे, इसम सन्देह नही। जान पडता है, शुरू-शुरूमे झगडे १७वी सदीके साथ शुरू हुए होगे, ज्यादासे ज्यादा उनका आरम्भ हुमायूँ-शेरशाहके समय तक जा सकता है।

इन्ही चढावोके झगड़ोमे पिटकर हर दलने अपनेको मजबूत करना शुरू किया, और हर सम्प्रदायकी सशस्त्र, साधारण युद्धशिक्षाप्राप्त सेनाये वनने लगी। वैरागियोके दिगम्बर, निर्वाणी, निर्मोही आदि सात अखाडे वने, सन्यासियोके भी निरजनी आदि अखाड़े। अखाड़ोमे नाम लिखानेवाले तरुण साधु नागा कहे जाते। इन्हे वाना-वनेठी तलवार-भाला चलानेकी वाकायदा शिक्षा होती। वैरागी अखाडेमे प्रविष्ट होनेवाला लडका हुडदगा कहा जाता था, वारह वरसकी अखाडेकी सेवा करनेके वाद किसी चढावमे पच लोग उसे नागा वनाते। उस वक्त वह अपने अखाडेका ज़रदोजीके कामका झंडा—निशान (दिगम्वरका पचरग और दूसरोके भिन्न-भिन्न) रखने और उठानेका अधिकारी होता। वारह वरसका नागा हो जाने-पर वह अतीत वनता। इन अखाड़ोके पास महत्वपूर्ण स्थानोमे काफी मठ और सम्पत्ति होती, जिनका इन्तिज़ाम एक महन्तके हाथमे न होकर वहुत कुछ पचायती होता, और सचमुच सघका वल निर्णायक होता। नागा-अतीत लोग अपने

अखाडोके अतिरिक्त, जमात बनाकर एक चढावके बाद दूसरे चढावकी पैदल यात्रा करते। उनके पास ऊँट रहते। जिस मठपर भी नागा पहुँचते, उन्हे खिलाने-पिलानेके अतिरिक्त अपने भेषकी पल्टन समझकर कुछ पूजा भी देनी पडती। नागोके यहाँ अपने शिष्योसे ज्यादा सादिक शिष्योकी प्रधानता होती है। ज्ञान-वैराग्य-केलिए इनका निर्माण नही हुआ था, ये तो थे चढाव और दूसरे मौकोपर भेषके निशान को ऊँचा रखनेकेलिए। मरने-मारनेमे वे किसीसे डरते न थे।

आज अंगेजी शासनके इतने दिनों बाद इन अखाडो और नागोका वह महत्त्व नही है। पुरानी बातोंकी कुछ नकल आज भी हम 'चढावो'पर देख सकते है, और इन अखाडोके कितने ही मठ और स्थान उज्जैन, हरिद्वार आदि जगहो मे भी देख सकते है।

उज्जैनमे हम रातको उतरे थे। मेरे साथीको खारीबावली या कौन स्थान मालूम था, हम लोग बिना दिक्कतके वहाँ पहुँच गये।

उज्जैनमे तीन-चार दिन ठहरे होगे। चढावके वक्त मेला कहाँ लगता है, उस स्थानको देखा, और बहुतसे अखाडोमे भी गये। महाकालका दर्शन तो किया था, किन्तु पीछे वह विस्मृत हो गया। जाडेका दिन था, सर्दी मालूम हो रही थी, इसलिए नागाके साथ मैने भी एक गरम कोट अपनेलिए बनवाई—परसा होता तो कोटकी जगह चौबन्दी बनवानी पडती। यहाँ भी धुनीके पास ही आसन लगा था, और वह गँजेडियो-भँगेडियोके चौधुरानेमे थी। एक दिन भाँगकी गोली लेकर कुछ नशेमे हो, आँखे मूँद, आसनपर पालथी मारे मै बैठा था। भगके नशेमे आप बोलने लगे तो बहुत बोलते रहेगे चुप रहना चाहे, तो एकदम चुप ही रहेगे। मै एकदम शान्त-आसीन था। आठ-नौ बजे शामका वक्त था। कोई शहरका श्रद्धालु गृहस्थ बैठा बहुत देरसे औरोको बातचीत करते, किन्तु मुझे उस तरह शान्त देख, समझने लगा—कोई योगी ध्यानमे मग्न है। उसने पासके साधुओसे जिज्ञासा की। उन्होने जो तारीफ करनी शुरू की—'भगत! महात्मा है नही तो यह दुनिया ठहरी कैसे है? .' मेरे मनमे आता था, बोल दूँ—'क्यो झूठमूठकी हाँक रहे हो', किन्तु भगतकी श्रद्धासे खेल करना भी तो अच्छा नही।

डाकोर—उज्जैनमे डाकोरकी ओर चलते वक्त उक्त तरुण नागा फिर मेरे साथ था। रतलाम रास्तेमे पडा, किन्तु हम लोग वहाँ शहरमे नही गये। हमे जाना था डाकोर—अभिनव-द्वारिका। गुजराती लोग वैरागी साधु कम होते है, किन्तु उनके स्थान वहाँ बहुत ज्यादा है। डाकोरको तो एक तरहका वैरागी स्थानोका नगर कहना

चाहिए। हर गली-सडकपर कोई न कोई स्थान है। हम लोग खाकचौक(?)मे 'उतरे' (ठहरे)।

महीनोसे सैकडो स्थानोमे 'उतरते' बातचीत करते, अब रीति-रिवाज, तथा स्थानीय एव अभ्यागत साधुके कर्तव्य और अधिकार मुझे मालूम हो गये थे। किसी जगह जाने-आने, मिलने-जुलने, रहने-सहनेमे कोई सकोच नही था। अब दरअसल मै टकसाली साधु बन गया था। इन सभी स्थानोमे घूमते हुए मै देख रहा था, वहाँ पढने-लिखनेवालोका कितना अभाव है; उनका सास्कृतिक तल कितना नीचा है। लेकिन, इतना होते भी दुरूह रास्तो और स्वागतहीन देशोमे जानेकेलिए तैयार नौजवान भी उनमे मिलते थे, जो कि मेरेलिए कम आकर्षणकी चीज़ न थी।

बालाजीकी तरह डाकोरमे भी मुझे एक छोटेसे स्थानके महन्त दामोदरदाससे परिचय हो गया। वह साधारण वैरागियोसे कुछ अधिक सस्कृत और समझदार थे। उनके स्थानमे दो-तीन और साधु थे, महन्तजीके पास काफी समय गप करने, चौपड खेलने और बीडी-तम्बाकू पीनेकेलिए था। वह थे भी मेरी ही उम्रके, इस-लिए हम दोनोमे खूब पटरी जम गई। मै अक्सर उनके ही यहाँ रहता, चौपड खेलनेके अतिरिक्त एक गुजराती पुस्तक उनके यहाँ देखकर मै उठाकर देखने लगा, कितने ही अक्षर तो पहिले हीसे परिचित थे, दूसरे-तीसरे दिन मै उसे खूब पढने लगा, और भावार्थ समझनेमे भी कोई दिक्कत न थी। दामोदरदासजीने मुझसे बिहारके अच्छे धानोका बीज माँगा था, जिसे परसा पहुँचनेपर मैने भिजवा दिया था।

अहमदाबाद (जनवरी १९१४)—माघ उतर रहा था, जब कि मै अहमदावाद-केलिए रवाना हुआ। अहमदाबादमे जमालदर्वाजेसे बाहर थोडी ही दूरपर नरसिंह बाबाका मन्दिर साधुसेवाकेलिए मशहूर हो चुका था। मेरे साथी वहाँ ही जा रहे थे, मै भी उनके साथ वही जाकर धुनीके पास 'उतरा'। धीरे-धीरे देख रहा था, धुनी मुझे ज्यादा आकृष्ट कर रही है, किन्तु क्या गाँजा या सूखेकी चिलमकेलिए ?—नही, वल्कि गँजेडी-भँगेडी ही परले दरजेके सैलानी भी होते है; उन्हीसे ज्यादा 'देश-देशा-न्तर'की बात सुननेको मिल सकती उन्हीकी बतलाई अभिज्ञताके अनुसार मै आगेकी यात्राका प्रोग्राम बना सकता था। कश्मीर, कुल्लू, काठियावाड, छत्तीसगढ, अमर-कटक, आसामके दुर्गम तीर्थोकी बाते यही धुनीके सामने सुनी जा सकती थी। स्थानके ब्रजवासी महन्त बड़े सीधे-सादे व्यक्ति थे। एक मैलासा अँचला, नगे पैर, नगे शिर—बस यही वेष था। कामकेलिए उनको न आलस्य था, न सकोच। आँगनमें झाड-बुहारू कर डालना यह उनकेलिए मामूली बात थी। गृहस्थ उनको मानते थे,

और महीनेमे बीस दिन किसी न किसीकी ओरसे भोज होता रहता था। गुजरात बडा साधुसेवी-प्रान्तके तौरपर साधुओमे मशहूर है और उसमे भी अहमदाबाद। काली-रोटी, धवली-दाल (पूआ और खीर) को वहाँके साधारण भोजके तौरपर समझा जाता था। अहमदाबादमे मै एक मासके करीब रहा, और देख रहा था, बराबर पूडीके साथ किसी दिन हलवा, किसी दिन पूआ-खीर। कितने ही गृहस्थ स्थान.हीमे सामान भेज देते थे, और कितने खानेकेलिए अपने घर बुलाते थे। उनके घर जाते वक्त घडी-घटेके साथ साधुओका जलूस निकलता, लालसा होनेपर निशान (कीमती ध्वजायें) भी लगाकर चलते। एकाध बार साबरमतीकी दूसरी तरफ किसी गाँवमे भी हमे भोज करने जाना पडा।

स्नान आदिकेलिए हमे साबरमती जाना पडता, जो स्थानसे बहुत दूर नही थी। यहाँ भी साधारण लोग धोबीको कपडा न दे खुद साफ कर लिया करते। नदी की धारा क्षीण थी, उसमे धुले कपडेका पानी मिल जाता, तो बहुत गन्दा हो जाता था। जाडेका दिन था, और धोनेवाले जरा देरसे काम शुरू करते थे, तब तक जाडे पाले हीमे बडे तडके हम लोग जाकर स्नान कर आते थे। अभी तक साबरमतीसे गाधी जीका कोई सम्बन्ध स्थापित नही हुआ था, वह इस वक्त अफरीका हीमे थे। स्थानमे ज्यादातर अभ्यागत साधु थे, जो हफ्ता-दस दिन रहनेके बाद चल देते थे। महन्तजीके शिष्य और उत्तराधिकारी माधवदास गुजराती तरुण थे। कुछ पढे थे, किन्तु आगे बैठ गये थे। मुझसे मामूली बात-चीत थी। एकाध बार उनके साथ मै गुजराती गृहस्थ परिवारोमे गया। उनमे अधिक शिक्षा, अधिक सस्कृति थी, जैसी कि हमारे यहाँके नौकरी पेशा शिक्षित परिवारोमे देखी जाती है। बीडीका भारी प्रचार पहिले-पहिल यही मैने देखा, अभी वह बिहार और युक्तप्रान्तमे नही पहुँची थी। आगन्तुकके सामने भुना हुआ धनिया, बनी हुई कसैली तथा बीडी पेश की जाती थी। गुर्जरोको भी पचद्रविडोमे शामिल किया गया है, किन्तु यहाँ छतसे टँगा झूला भर तमिलघरो जैसा देखा। पर्दा नही था, किन्तु यहाँकी साडीसे तामिल-साडीका कोई सम्बन्ध न था। शायद मामाकी कन्यासे भाजेका ब्याह(?)यहाँ तक चले आनेके कारण यहाँके ब्राह्मणोको पचद्रविडोमे गिना गया हो। लोग यहाँके कमजोर थे—बाजरेकी रोटीका देश, फिर इतने कमजोर क्यो?—यार लोगोने बाजरेका सस्कृत वज्रान्न किया है। स्त्रियोसे पुरुष ज्यादा कमजोर, और कितनोका कहना था, वहाँकी स्त्रियाँ अबला नही प्रबला है; परन्तु शायद बनिया और क्लर्क श्रेणीको देखकर उनकी यह धारणा हुई, बाकीके स्त्री-पुरुषोमे ऐसा वैषम्य नही देखा।

अहमदाबादमे रहते मैने गुजरातीकी कुछ पोथियाँ पढी । गुरु बनानेकी जरूरत नही थी, गुजरातीका हिन्दीके साथ वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा हिन्दीके साथ भोजपुरी और मगहीका । गुजरात हिन्दीभाषा-भाषी प्रान्तोकी लपेटमे क्यो नही आ गया, यह आश्चर्यकी बात है । अहमदाबादमे इतने दिन रहनेका कारण हुआ, मेरी परसासे आनेवाले रुपयेकी प्रतीक्षा । मैने डाकोरसे तार दिया था, देर होते देख वहाँसे चला आया, और आखिर जब तक रुपया यहाँ आवे, तब तक मै प्रस्थान कर गया ।

अहमदाबादसे अब जाना था, काठियावाड और द्वारिकाकी ओर किन्तु अहमदाबादके साथियोने कहा---डाकोर जैसी होली इधर कही नही होती, इसलिए डाकोरकी होली देखकर द्वारिका जानेका निश्चय किया । जमाल दर्वाजेसे दो-एक दिनकेलिए हम लोग एक दूसरे स्थानमे, शहरकी चहारदीवारीके बाहर ही चले आये थे । यहाँ देखते थे, स्त्रियोको कपडोपर जरीका काम करते । पूछनेपर बतलाया, निशान यहाँ भी बन सकते है, किन्तु उनका कारबार करनेवाले कारीगर सूरतमे है । निशानमे जरीके सूतसे महावीरजीकी उभडी हुई मूर्ति बनाई जाती; इसमे शायद कुछ विशेष कारीगरीकी जरूरत होती ।

देश देखना हो, तो पैदल चलो---इस सिद्धान्तका मै पूरा कायल हूँ, यद्यपि हर वक्त उसका पालन करना मुझसे भी नही हो सका । अबके अहमदाबादसे नडियादके रास्ते डाकोर पैदल आना तै किया । साथी थे, बहुत दिनोसे गुजरातमे रहता एक नागा, तथा एक बस्ती जिलेके मोटे-तगडे 'रमतेराम' (पर्यटक) । गुजरातके गाँव कुछ बुदेलखडके गैरपहाडी इलाके गाँवो जैसे मालूम हुए । गाँवोमे भी जगह-जगह साधुओके स्थान थे, जिनसे नागाजी परिचित थे । हम लोग वही ठहरते । नरसिंह स्थान (अहमदाबाद)की भाँति यहाँ भी बडी-बडी गाये पाली हुई थी । शामको घीमे चुपडी बाजरेकी रोटी, खट्टे मट्ठेकी कढीके साथ मुझे जितनी स्वादिष्ट मालूम होती थी, उतनी वह काली-रोटी, धवली-दाल भी नही । यद्यपि रहनेकी हमे जरूरत नही पडी, किन्तु गाँवोमे कितनी ही जगह चौपाले भी पथिकोकेलिए बनी थी ।

नडियादमे हम एक अच्छे वैरागी-स्थानमे ठहरे । महन्त अब तो उतना नही, किन्तु पहिले कुछ नागरिक जीवन पसन्द करते थे । उनके बैठकेमे अच्छे-अच्छे कौच, गद्दीदार कुर्सियाँ, झाड-फन्नूस तथा तस्वीरे टँगी थी । नागाजीने बतलाया, यह सब महन्तजीकी प्रेयसीकी देन है, जिसे मरे कुछ दिन हो गये, और जिसके बाद महन्तके जीवनमे उदासी आ गई । गुजरातके वैरागी-मठोमे अधिकतर महन्त और स्वत्वाधिकारी युक्त-प्रान्त और बिहारके होते है । महन्तोकी अवस्था सभी जगह एकसी है,

और सभी जगह प्रेयसियाँ सुलभ है, इसलिए इसमे किसी प्रान्तके पुरुषो और किसी प्रान्तकी स्त्रियोकी कमजोरी बतलाना गलत है। हमारे दोस्त बतलाना चाहते थे, कि गुजरातमे तरुण वैरागी सन्ततिप्रवाह कायम रखनेमे बड़े सहायक है, लेकिन मैंने पूछा—जब अधिकतर इनका सम्बन्ध कुलीन विधवाओसे होता है, तो सन्ततिप्रवाह कायम रखनेका सवाल कहाँ होता है? रास्तेमे हमारी बीती यात्राओके वर्णन और नई यात्राओकी योजनाके बारेमे बात होती रही। हिमालयके देवदारुओ और हिमाच्छादित श्वेत शिखरोने मेरे हृदयको हर लिया था, इसलिए प्रकृतिके सौन्दर्य, साहसपूर्ण यात्राका जब सवाल आता, तो मै हिमालयका नाम लिया करता। द्वारिकाके तो अब पास पहुँच गये थे, और वहाँ पहुँच जाना कुछ दिनोंकी बात मालूम होती थी—यद्यपि वह फिर कभी पूरी न हुई। हम लोग आगेकी यात्रामे हिमालय और पजाबको ही शायद ले रहे थे। बस्तीवाले बाबा हममेंसे सबसे कम घूमे हुए थे।

अबकी बार डाकोरमे 'चार सम्प्रदाय'मे उतरे। वहाँके महन्त नागाजीके परिचित थे। आसन ऊपर कोठेपर था। हमारे पास ही नाहनके महन्तजीका आसन था। वह एक-दो साधुओको अपने साथ नाहन ले जाना चाहते थे। बस्तीवाले बाबा तैयार हो गये। आखिर रास्तेमे जो हिमालयकी तारीफका मै पुल बाँधता आया था। साधुओंमे महन्तजीकी शिकायत भी करनेवाले थे, क्योकि उन्होने स्त्री रख रखी थी। साथ ही साधुसेवामे वह डाकोरके किसी स्थानसे पीछे न थे, अपनी सारी सम्पत्तिको साड़ी-सिन्दूरपर खर्च नही करते थे, इसलिए तारीफ करनेवालोकी कमी न थी। भारी सम्पत्तिके स्वामी, तथा वैराग्यके आदर्शपर अल्पतम विश्वास रखनेवाले महन्तोको नागरिक जीवनके उपभोगोसे वचित रखकर, अखड ब्रह्मचर्य पालन करनेकी उनसे आशा रखना, वस्तुत उन्हे आत्मवचना एव परवचनाकेलिए उत्साहित करना था। 'चार सम्प्रदाय'के महन्तजी बहुत विनीत और मिलनसार पुरुष थे। होलीके दो-एक दिन पहिले मै डाकोर पहुँचा था, और एक-दो दिन बाद चला आया; इतने कम समयमे महन्तजीसे कितना मिलने-जुलनेका मुझे मौका मिला, यह तो मुझे याद नही, किन्तु एक वार अपने अस्तवलमे उन्होने मुझे अपनी कच्छी घोड़ी दिखलाई थी। सवारी मैंने नही की, उसकेलिए जी तो किया होगा जरूर।

डाकोरमे उसी तरहकी काली भोंडीसी रणछोड़ (मगधराज जरासन्धसे युद्धमे पराजित हो मथुरासे द्वारका भाग आनेके कारण कृष्णका यह नाम पड़ा)की मूर्ति है। कहते है, रणछोड़ने द्वारिका छोड डाकोर आनेकी इच्छा एक सीधे-सादे गृहस्थसे प्रकट की, और वह उन्हे डाकोर ले आया। डाकोरमे मै उनके दर्शनकेलिए एक-दो

बार जरूर गया होऊँगा, किन्तु देर तक प्रतीक्षा करना और कुछ भीड-भडक्कके सिवा और कोई बात याद नही। होलीका जुलूस सचमुच बडी तैयारीके साथ निकला था। वैरागी नागोंने गुजरातको आमतौरसे और डाकोरको खास तौरसे अपना अखाड़ा बना रखा है। उस दिन वह अपने गदका-फरी, लेजिम, बाना-बनेठीके हाथ दिखला रहे थे। चारों ओर अपार दर्शकोकी भीड दिखाई पड रही थी। निशान चल रहे थे—सो तो याद नही, किन्तु बाजे बज रहे थे, अबीर लगाई जा रही थी, शायद होली भी गाई जा रही थी, यद्यपि उत्तरीय भारतकी भाँति गन्दी नही; क्योकि उनके गानेवाले साधु थे; तो भी कृष्ण-राधा, गोपी-कृष्णके नामपर उसे सरस बनाया जा सकता था।

डाकोर आते ही मैंने परसा तार दिया था, और होलीके दूसरे ही दिन तारके मनीआर्डरके साथ खबर आई—जरूरी काम है तुरन्त चले आओ।

# १३

# परसा वापिस

डाकोरसे परसा बहुत दूर है और मुझे रतलाम भूपाल, बीना, कटनी, प्रयाग, काशी होते गुजरना पडा; किन्तु एक दिनकेलिए काशीको छोडकर रास्तेमे कही नही उतरा। परसा आनेपर मालूम हुआ—डोरीगजके महन्त मर गये, उनकेलिए उत्तराधिकारी चुननेका मामला पेश है। डोरीगज छपरासे कुछ मील पूर्व गगातटपर किसी वक्त एक अच्छा बाजार था, जब कि रेलके आनेसे पहिले गगा द्वारा व्यापार हुआ करता था। जहाँ लक्ष्मी निवास करना चाहती है, साधु लोग भी वहाँ अपना आवास बना लेते है—इस नियमके अनुसार परसाके किसी साधुने जाकर वहाँ अपनी छोटीसी कुटिया बाँधी, वह धीरे-धीरे बढकर एक छोटा-मोटा मठ बन गया। बाजारकी आर्थिक अवनतिका प्रभाव मठपर भी पडना जरूरी था, तो भी उसके पास कुछ खेत और महन्तजीके पास थोडेसे पैसे थे। परसाके महन्त प्रधान स्थानके स्वामी होनेके कारण महन्त बनानेका अधिकार रखते थे। डोरीगजके महन्त यकायक मरे थे, और परसाके महन्तको यह सोचनेका मौका भी नही मिल पाया था, कि वहाँ कौन महन्त बनाकर भेजा जावे। मरने या सख्त बीमार पडनेकी खबर आनेपर मठकी सम्पत्तिकी देख-

भालकेलिए किसी होशियार आदमीको भेजना ज़रूरी था—होशियार भी हो और महन्तजीका विश्वासपात्र भी, ऐसे आदमीका परसामें अभावसा था। लाचार हो उन्होंने अपने एक भतीजा-शिष्य रामलखनदासको भेज दिया। बलिया जिलेके सैथवार गाँवमें भी परसा मठका एक अच्छा शाखामठ है, वहाँके पहिले महन्त, रामलखनदासके गुरु थे। उनके मरनेपर रामलखनदासको बडी आशा थी, कि वही महन्त होंगे, किन्तु उनको महन्त बनानेसे परसाके महन्तको भेंट-पूजा कम मिलती, नया महन्त अपने पूर्वजका शिष्य होनेसे मठकी चल सम्पत्तिपर अधिकार रखता, तथा उसे भविष्यकेलिए अपने पास ही रखनेकी चाह रखता। परसा महन्तने 'मौनीजी'को सेथवारका महन्त बना दिया, रामलखनदासका नाराज होना ज़रूरी था। रामलखनदास वही साधु थे, जिन्होंने लडके सुदर्शनदासको परसामहन्तके पास शिष्य होने न देकर, सोते हीमें उसे कठी और मन्त्र दे दिया था।

डोरीगजमें जाकर रामलखनदासने सोचा कि यहाँ भी महन्तजी चाहेंगे, सारे रुपयोंको अपने पास रख लेना, और कुछ दूसरा करनेपर वह रामलखनदासको महन्त भी न बनावेंगे, इसलिए अबकी बार महन्तजीको छकानेकी उन्होंने पूरी तैयारी की थी। पहिले स्थानके गृहस्थ शिष्योंको समझा दिया, कि महन्तजी चाहेंगे डोरीगजकी मिट्टी तकको खोदकर उठा ले जाना। उनका यही रवैया हर जगह होता है। मठके 'सेवकों'ने तै किया, कि महन्तजीको वैसा नही करने देंगे। इसकी कुछ भनक महन्तजीको लग गई थी, इसलिए उन्होंने मुझे तार दिया था। मैंने सब बात सुनकर इसे अनुचित और नीतिविरुद्ध समझा कि डोरीगजकी सारी चल सम्पत्ति परसा चली आवे। आखिर वहाँ भी मन्दिर और मठ था। साथ ही रामलखनदासके वहाँकी धार्मिक जनताको महन्तजीके खिलाफ भडकानेकी भी बात मैंने सुनी। सब सोचकर मैंने गुरुजीको समझानेकी कोशिश की, लेकिन वह कब उसे पसन्द करते। उन्हें ईंट-चूने-पत्थरोंपर स्वाहा करनेकेलिए हर साल दस-पन्द्रह हजार रुपये चाहिए थे, और समझते थे डोरीगजके हजार-बारह सौ रुपये बहुत कामके साबित होंगे।

श्राद्ध या भडाराका दिन आया। एकाध दिन पहिले ही गुरुजीके साथ मैं भी डोरीगज पहुँचा। महन्तजीने जहाँ रुपये तलब किये, वहीं स्थानीय गृहस्थोंके कान खडे हो गये। रामलखनदासने मुस्कराते हुए इशारा करके कहा—'मैं कह रहा था न, महन्तजीकेलिए डोरीगजका स्थान चूल्हे-भाडमें जाये, उन्हें तो ज़रूरत है रुपयोंसे।' गृहस्थ-सेवकोंका भी आखिर मठपर कुछ अधिकार होता है, वे कई पीढ़ीसे डोरीगजके महन्तके शिष्य होते आ रहे थे, मठकी सम्पत्तिमें उनके दानका भी रुपया था, और

उनकी सन्तानका मठके साथ चिरस्थायी सम्बन्ध था, फिर वे नये महन्तको खाली हाथ काम शुरू करनेकी बातको क्यों पसन्द करने लगे ? उन्होने नरमीके साथ कह दिया, कि मठकी मरम्मत आदि कितने ही काम बाकी है, जिनकेलिए वे रुपये रखे हुए है। गुरुजी इस बातको सुनकर आग-बगूला हो गये, और लगे 'चौकी तोडने'— गुस्सा होनेपर मुँह-कान लाल-लाल करके बैठनेकी चौकीपर आसन बदलते हुए डोलना तथा जली-कटी सुनाना यह महन्तजीकी खास आदतोमे था। लेकिन वहाँ चौकी तोडनेसे क्या होनेवाला था, यदि गाँवभरके लोग एक राय थे, तो बीस कोस दूरका बडेसे बडा आदमी भी वहाँ क्या कर सकता था ? सैथवारमे रामलखनदास अनुभवी नही थे, उनको जरूरतसे ज्यादा आत्मविश्वास था, और जनताको अपनी ओर करनेकी आवश्यकताको नही समझ पाये थे, अबकी बार वे उन गलतियोको दुहराने नही जा रहे थे।

न्योता पाकर आसपासके कई स्थानोके महन्त और साधु आये हुए थे। अच्छे खासे भडारेकी तैयारी थी। रुपये देनेसे इन्कार करनेपर महन्तजी अड गये—'तो मैं रामलखनदासको महन्तीकी चादर ही नही दूँगा।' मुझे समझानेमे बहुत परिश्रम करना पडा। मैंने कहा—'आपको चादर न देनेपर भी रामलखनदास डोरीगजसे जानेवाले नही है, पिछले दस-बारह दिनोंमे आपके खिलाफ लोगोको भडकाकर उन्होने अपनी स्थिति मजबूत कर ली है। फिर नाहक बदनामी लेनेसे फायदा ? आखिर हजार-बारह सौ रुपयोसे आपका कुछ होने जानेवाला नही है।' 'चौकी तोड' उठनेके बाद उनका पारा कुछ नीचे उतरता है, यह सबको मालूम था। अन्तमे हम लोगोकी बातोका असर हुआ, उन्होने मुँह फुलाये हुए, किन्तु बाहरसे क्रोध न प्रकट करते हुए, सब काम किया। चद्दर दे रामलखनदासको महन्त बनाया, उनके वाद आये हुए दूसरे महन्तोने भी चद्दर दी। रामलखनदास सैथवारके नही तो डोरीगजके महन्त हुए।

रामनवमी परसामे हुई। परसामठकी रामनवमी, जन्माष्टमी बहुत प्रसिद्ध है। रडियोकी नही, किन्तु छोकरोकी जितनी नाच-मडलियाँ आ जावे, उनको खाना और विदाई मिलती है। जन्माष्टमीके भादोमे पडनेसे वर्षाके कारण उसमें विघ्न भी पड सकता है, किन्तु रामनवमीमे दो दिन तक शामियानेके नीचे नाच होती रहती है। जनताको तो मनोरजन चाहिए—वह चाहे धर्मके नामपर हो या दूसरे नामपर। आसपासके पचासो गाँवके लोग नाच देखनेकेलिए डटे रहते। सवेरे बैंडवाजा, और रोशनचौकी साधारण तौरसे बजती, १२ बजे दिनको रामजन्म होता, उस वक्त बाजे-की आवाजसे कानका पर्दा फटने लगता, परसादी लेनेकेलिए लोगोकी भीड लग जाती।

दोपहरको खा-पीकर निश्चिन्त हो नाच शुरू होती, और फिर चलती ही रहती। नाच-गाना देखनेका मुझे शौक़ न हो सो बात नहीं. किन्तु जिस तरहके गवैये वहाँ जमा होते थे, उनकेलिए नींद हराम करना मैं अपने लिए उचित नहीं समझता था। कभी-कभी कोई कत्थक या वास्तविक गायक पहुँच जाता—और ऐसा अवसर कम ही होता, क्योंकि गुरुजीकेलिए सब धान बाईस पसेरी थे—तो जरूर कुछ समय तक सुनता।

अबकी लौटकर परसा आनेपर एक प्रिय परिचित चेहरेको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई, वह था वनमाली ब्रह्मचारीका चेहरा। वनमाली वही जो बनारसमें मोतीरामके बागमें मेरे वेदके सहपाठी थे, मेरे अपने ज़िलेके रहनेवाले थे, मेरे मित्र थे। मालूम हुआ, मेरे बनारससे चले आनेपर उनके मनमें भी खलबली पैदा हुई, और वह भी आकर परसामें गुरुजीके शिष्य हो गये, नाम पड़ा वरदराजदास—गुरुजी दिव्यदेशोंके पर्यटनसे प्रभावित हो आचारियोंकी नकल करना चाहते थे इसीलिए उन्होंने शख चक्र देना शुरू किया था, और इसीलिए वरदराज जैसा आचारी नाम हमारे मित्रको दिया गया। वरदराजको पास पानेसे मुझे खुशी और अप्रसन्नता दोनों हुई। खुशी तो इसलिए कि अब मेरे पास एक अभिन्न हृदय मित्र आ गया था, जिसके सामने बिना कोई पर्दा रखे अपने हृदयके भावों—सन्तोषों, असन्तोषों—को रख सकता था, अप्रसन्नता इसलिए हुई, कि परसामठके समाज, उसके विद्याविमुख तथा निम्न कोटिके वातावरणसे मैं स्वयं ही असन्तुष्ट था, उसमें एक और अपने मित्रको फँस गये देखना मुझे अच्छा नहीं मालूम हुआ। तो भी स्वार्थके ख्यालसे तो खुशीकी मात्राही मुझमें ज्यादा पैदा हो सकती थी।

मेरेलिए फिर वही चर्खा। ज़मीदारीके गाँवोंको देखो, कागज-पत्र समझो मामले-मुक़दमेकेलिए कारपर्दाजोंको हिदायत करो, दिनों-दिन बढ़ते कर्जके बोझकी फिक्रमें मरो, और इन सब बातोंके साथ अकलका अपमान करनेकेलिए हर वक्त तैयार रह चाटुकारोंकी खुशामदोंको सुनो। गर्मीके दिन, किसी तरह नौ-दस बजा दिये, फिर तो गर्मीमें बाहर जाने या किसीसे मिलने-जुलनेकी बात नहीं; कोठरीमें बैठा पंखेके नीचे या बैमें कुछ किताबें पढ़ता, वरदराजसे बातें करता, या सो जाता। चार बजे उठनेपर फिर कुछ इधर-उधर मठके कामको देखता। ठंडा होनेपर चाहे घोड़ेपर चढ़कर या टमटमसे चार-छै मीलकी सैर करता। टमटमसे जानेपर एकमाकी ओर जाता। टमटम कितनी बार उल्टा होगा, गिरा भी होऊँगा, घोड़ेसे गिरनेकी तो नौबत नहीं आई, किन्तु कभी मुझे चोट-फाँट नहीं आई। एक दिन एकमासे टमटम हाँके

आ रहा था, घोडा कुछ देखकर भडका, और तुरन्त एक पहिया बीचके ऊँचे रास्तेसे डेढ हाथ नीचे जा पडा। पहिया नीचे जानेका मुझे ख्याल है किन्तु किस वक्त दिमाग-को उसकी खबर मिली, किस वक्त उसने हाथ-पैरोको फाँद जानेकी इजाजत दी, यह मुझे नही मालूम। टमटम बिल्कुल उलट गया, उसका बम् घोडेकी पीठपर चला गया, खैरियत यही हुई कि घोडा नही उलटा। घोडा सहित टमटमके उलटनेकी भी नौबते आई, किन्तु मै उसी तरह फुटवालकी तरह उछल जाता। एक बारकी घटना मुझे याद है, जिसका स्मरण आनेसे अब भी रोमाच हो जाता है। परसासे जल्दीमे किसी गाँवको जाना था। टमटम और बग्घी द्वारा जानेमे देर लगेगी, और ज्यादा दिनका काम भी न था, इसलिए साईसको पैदल भेजकर मै घोडेपर साधारण गद्दी कस, खरहरा करनेकी बिना काँटेकी लगाम लगा परसासे चल पडा। बाजारकी सडक जहाँ एकमासे आनेवाली सडकमे मिलती है, वहाँ चार-चार पाँच-पाँच वर्षके कितने ही बच्चे चौरस्तेपर खेल रहे थे। घोडा दौडाये हुए मै आ रहा था, और जब नजदीक आ गया, तो लडकोको देखा। लगाम रोकी, किन्तु वह उसकी क्यो सुने। घोडा जिस वक्त लडकोके खेलनेकी जगहपर टाप मारता गुजरा, उस वक्त मै सज्ञा-हीनसा था, मेरी आँखे बलात् मुँद गई थी। आगे रोकनेमे सफल हो घोडेको मोडा, मेरा चित्त खिल गया, जब देखा, कि सभी बच्चे भागकर सडकके दोनो किनारोपर खडे हो गये है। यूथ-प्रतिभा उनकी काम कर गई। शायद कुछ अधिक उमरके होनेपर उनमेंसे एकाध ज़रूर भौचक हो वहाँ रह जाते।

इसी साल या इससे पहिले वाले सालमे जब मै परसामे था, भारतीय पुरातत्त्व-विभागके दो फोटोग्राफर एस्० गगोली तथा पिंडीदास पुरानी वस्तुओका फोटो लेनेके लिए आकर एकमाके डाकबँगलेमे ठहरे। वह परसा भी आये। उस वक्त मै पुरातत्त्व-सम्प्रदायके नामसे भी अपरिचित था, फिर उनके कामके महत्त्वको क्या समझता ? पिंडीदासने मठमे आकर कुछ पूछ-ताँछ की, और मै ही ऐसा आदमी था, जिससे वह कुछ पूछ-ताछ सकते थे। उस वक्त मन्दिरके उस सभामडपको तोड दिया गया था—जिसमे कि कितनी ही सुन्दर नक्काशीके कामकी काठकी टोडियाँ लगी हुई थी। उन्होने बाकी खड़े मन्दिर-शिखर और समाधिके फोटो लिये, मेरा भी पहिला फोटो इसी वक्त लिया गया, पिंडीदासजीने उसकी एक कापी दी भी थी, किन्तु वह अयोध्या जाते वक़्त मनकापुरमे वरदराजसे खोई गई। उन्होने एक फोटो घोडेपर भी लिया था और पता दिया था इडियन म्युज़ियम कलकत्ताका, किन्तु मैने उसकेलिए चिट्ठी नही लिखी। दोनो सज्जनोको इधर-उधर जानेकेलिए मैने अपना टमटम दे दिया था,

न देनेपर उन्हें पुराने ढंगके एकमाके एक्कोंपर चढ़कर जाना पड़ता, जिनपर खाकर सवारी करनेपर पेट स्वतः खाली हो जाता था।

वहरोली गाँव ठीकेपर दिया जा चुका था, उसके वाद जानकीनगर (थाना बसन्तपुरके विल्कुल नज़दीक) ही मठका दूसरा बड़ा गाँव था। इसे परसाके वावुओंने 'जानकी'जीके राग-भोगकेलिए प्रदान किया था। उस समय इसका नाम वौंडैया था। पीछे क़र्ज़ या मालगुजारीमें वावू लोगोंकी ज़मींदारी नीलाम हो गई, नये ख़रीदारोंने और गाँवोंके साथ वौंडैयाको दख़ल करना चाहा, किन्तु तवतक वौंडैया जानकी नगरमें परिणत हो गई थी। खोजकर हार गये, उस नामका गाँव नहीं मिला—यही पुरानी कहावत है। जानकीनगरमें मठकी वाईस सौ रुपयेकी आमदनी थी, सरकारी मालगुज़ारी, दायमी-वन्दोवस्तके अनुसार सौ या सवासौ देना पड़ता, था, जिसे लार्ड कार्नवालिसके वक़्त मुक़र्रर किया गया था। गुरुजीके साथ मैं भी जानकीनगरमें ज़मींदारीकी देख-भाल करने गया था। विहारका ज़मींदार छोटा मोटा राजा है—कमसे कम उस वक़्त था, स्त्री-पुरुषके झगड़ेमें भी जुर्माना लेता था, मामूली मारपीटके झगड़े थाने तक जाने नहीं पाते थे, दोनों ओरसे कुछ ले-देकर ज़मींदार या उसके कारपर्दाज़ दवा देते थे। ज़मींदार न्याय करते हों, सो वात नहीं, उन्हें तो हर साल जुर्मानेमें अधिकसे अधिक रुपये मिलने चाहिए थे। मैं भी उस वक़्त ज़मींदारोंके इस अधिकारको दूसरी वहुत सामाजिक वातोंके साथ सनातन और जायज़ समझता था; यद्यपि मेरी कोशिश थी पूरी न्याय करनेकी। जानकीनगरमें किसी ज़वर्दस्त आदमीको दूसरे कमज़ोरके ऊपर अत्याचार करते मैंने पाया। गवाही-साखीसे क़सूर सावित हुआ। मैंने जुर्माना किया। ज़मींदारके कारपर्दाज गाँवके ज़वर्दस्त आदमीका ही पक्ष लेना पसन्द करते हैं, उन्होंने मुझसे जुर्माना छुड़वानेकेलिए कोशिश की। किन्तु इस वारेमें मेरे स्वभावको वह जानते थे; फिर उन्होंने गुरुजीसे सिफ़ारिश करनी शुरू की। उन्होंने जुर्माना माफ़ कर दिया। मुझे यह वहुत नागवार गुज़री। नियम और व्यवस्थाका पद-पदपर अवहेलना करना उनके स्वभावमें था—यह मैं जानता था; फिर भी मैंने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की; और नाराज़ हो वहाँसे सीधे परसा चला आया।

लीची शुरू हो गई थी, आमके आनेमें वहुत देर न थी, तो भी नहीं कह सकता मीठी-मीठी लीचियाँ मेरे मनको वहलानेमें समर्थ हुई थीं। परसाका रहना मुझे सिर्फ़ अपने समयको ववाद करना मालूम होता था,—उस समयको पढ़ने या दुनियाकी सैरमें लगा सकता था। वरदराज मठहीपर थे, और उनसे भविष्यके कार्यक्रमपर वात

होती रहती थी। यागेशके बहुतसे गुण वरदराजमे थे। दोनों नये स्थानो, नये दृश्योको देखना पसन्द करते थे, दोनो मुझसे घनिष्ठ अनुराग रखते थे, और साथ ही दोनों पढने-लिखनेको ज्यादा महत्त्व नही देते थे; इस तीसरी बातमे यदि वे मेरे सहरुचि रखनेवाले होते, तो शायद जीवनकी दौडमे बहुत दूर तक हमारा साथ रहता।

जिस वक़्त मैने कनैलासे सम्बन्ध तोडा नही था और बनारसमे पढ रहा था, उसी समय पिताजी कनैलासे पूर्व जिगरसडी गाँवकी एक जमीदारी खरीदना चाहते थे। एक वार उसके मालिक दस्तावेज लिखने भी गये थे, किन्तु किसी बातके कारण पटरी नही जमी। पीछे उन लोगोने उस जमीनको एक दूसरे आदमीको लिख दिया। पिताजीने अपनी सबसे छोटी बहिनके ससुरके नामसे—जिनके नाम कि उस जगहकी जरासी जमीन पहिले साल लिखी जा चुकी थी—हक़शफा दायर किया था; अब हकशफामे उनकी जीत हो गई। उन्हे दूसरे वैदारको रुपया लौटाना था। मीयाद नजदीक और यहाँ नकद रुपये नदारद। कर्जपर दिये हुए रुपये उस वक्त लौट न सकते थे। मेरे चचा प्रताप पाडे कुछ दस्तावेजोको लिये तत्काल कुछ रुपये कर्ज लेनेके ख्यालसे परसा आये। मै समझ सकता था, कि असाधारण घबराहटमे ही वह इधर आनेपर बाध्य हुए, किन्तु मै इस तरहके मामलेमे ऐसे भी हाथ नही डाल सकता था, और इस वक्त तो अभी-अभी झगडकर जानकीनगरसे मै चला आया था। दूसरोके साथ रूखे बर्तावके मेरे बहुत कम उदाहरण है, इस वक्त भी एक ऐसा ही उदाहरण मेरा अपने चचाके साथ हुआ, जिसकी स्मृति मुझे सदा अप्रिय मालूम होती है। मैने कह दिया—'मै कुछ नही जानता, आप महन्तजीके पास जाये।'

वर्षा शुरू हो गई थी। उस साल आमोकी फसल अच्छी आई थी, अथवा दुनियाकेलिए अच्छी फसल आवे चाहे नही, मेरे जैसी स्थितिके लोगोकेलिए आम दुर्लभ चीज नही थे। फसलके वक्त उस समयके फलोको ही अपने भोजनका प्रधान भाग बनाना मेरी आदत है, चाहे दूसरी खाद्य-वस्तुओसे वह कितने ही सस्ते क्यो न हो; हाँ, बारहों मास मिलनेवाले फलोके बारेमे मेरा यह पक्षपात नही। पके कटहलको पेट-पेटभर खाते देखकर मेरे साथी डरने लगते थे, किन्तु मैं बडे चावसे खाता था। इस वक्त आमोका खूब दौर दौरा था। सबेरे, दोपहर और शामके भोजनमे काफी परिमाणमें उनका रहना बहुत जरूरी था। गुरुजीको डर था, कि मै फिर किसी तरफ निकल जाऊँगा, इसलिए खिदमतगारके अतिरिक्त एक सिपाही और एक-दो साधु मुझपर पहरा देनेकेलिए नियुक्त किये गये थे। दरअसल रातको सोते वक्त, विना हथकडी-वेडी तथा कालकोठरीके मै एक कैदीसे वेहतर हैसियत नही रखता था। मेरा दिमाग

भागनेकी ताकमे था, अवके वरदराजभी मेरे सहयात्री वननेको तैयार थे। दोनोका साथ निकलना असम्भव मालूम हुआ, इसपर तै किया गया कि मै निकलकर १०, १२ मील दूर महाराजगजके एक मठमे ठहरूँ, वही वरदराज भी आ मिले, फिर दोनो साथ यात्रा शुरू करे।

एक दिन मुझे मौका मिल गया। पानी वरस रहा था, और रात थी। खाली देह लिये महाराजगजके उस मठमे पहुँचा। दूसरे या तीसरे दिन वरदराज भी पहुँच गये। हम दोनो साथ परसामठके एक अच्छे शाखामठ वगौरामे गये, जो कि वहाँसे तीन-चार मीलपर था। महन्तजी पहिलेसे भी परिचित थे। वड़ी आवभगत हुई। वे समझ गये हम भगकर आये है, लौटानेकी बहुत कोशिश की, किन्तु हमने कहा—वहाँ रहना वक्त वर्वाद करना है, अयोध्यामे रहेगे, तो कुछ पढेगे। महन्तजी खुद तो पढे-लिखे नही थे, लेकिन उसकी कद्र जानते थे, तभी तो अपने एक शिष्यको वनारसमे पढनेकेलिए भेज रखा था। उस वक्त वगौरामे पूडी और आम ऊपरसे दूधका भोग लगता था। परसाकी तरह वगौरामे कितने ही बडे पुराने तथा धनी जमीदार परिवार है। इस मठकी चार-पाँच हजार वार्षिक आयकी जमीदारीका अधिकाश भाग वहाँके वाबू लोगोका ही दिया हुआ था। परसामे वाबू लोगोका मठकी सरक्षताको लेकर जवर्दस्त मुकदमा हो चुका था, वगौरामे अभी नही हुआ था; किन्तु उस वक्त किसको मालूम था, कि वह गर्भमें है; और अचल 'सीता' (मन्दिरकी मूर्ति) केलिए चढाई रेशमी साडी किसी चलती-फिरती सीताके वदनपर पहुँचकर गजव ढायेगी।

दो-चार दिन वगौरा रहकर हम अयोध्याको रवाना हो गये।

## १४

# अयोध्यामें तीन मास (१९१४ जुलाई-सितम्बर)

दुरौंदासे गाडीमे चढते वक्त हम दो डब्बोमे वैठ गये थे। मैने वरदराजको कह दिया था, कि गोरखपुरसे अगले स्टेशनपर उतर पडना। शायद हम लोगोमेंसे एक विना टिकटका था, नहीं तो वरदराज वहाँका उतरना न भूलते, और न हम दोनोंको दो डब्बोमे वैठनेकी जरूरत पडती। मै जिस स्टेशनपर उतरा शायद वह डोमिनगढ

था। ढूँढा, लेकिन वहाँ वरदराजका पता नही। स्टेशनमास्टरसे परिचय हो गया। शामको उन्हीकी सहायतासे रवाना होकर मनिकापुरमे ट्रेन बदल लकडमडी पहुँचा। अयोध्या सामने दिखलाई पड रही थी। बिना पैसा-कौडी जा रहा था, किन्तु अब बिना पैसा-कौडी भी काफी दुनिया देख चुका था, इसलिए अयोध्याकी ओर पैर बढाना घरकी ओर जानासा था। बरसात होनेके कारण इस वक्त पुल नही स्टीमर चल रहा था, और शायद गोलाघाटपर लगता था। स्वर्गद्वारपर विदेहीजीके स्थानका नाम मै पहिले ही सुन चुका था, इसलिए वही जाकर उतरा। नीचे सीढीकी बाईं ओर की कोठरीमे रहनेकेलिए जगह मिली।

सावनका महीना अयोध्यामे बहुत चहल-पहलका होता था। आधी अयोध्या मन्दिरों और मठोसे भरी हुई है, इस महीनेमे हर मन्दिरमे राम-सीता झूला झूलते। झूलेको खूब फूलो, लट्टुओं और रोशनीसे सजाया जाता। हर जगह थोडा-बहुत सगीतका प्रबन्ध रहता, अधिक समृद्ध मन्दिरोंमे नाच भी होती, और किन्ही-किन्ही मन्दिरोके 'सीताराम' तो रडियोका नाच भी देखते। मुझे कुछ आश्चर्य और कुछ अभिमान हुआ, जब कि झूलेकी झाँकी निहारते वक्त घूमते समय सुना कि पासके मन्दिरमे झूलनमे छपराकी विख्यात नटी तौखी नाच रही है। तौखीका नाम याद रह गया, क्योंकि १९२२मे तिलकस्वराजफडमे उसने काफी रुपया देकर दिखलाया था, कि एक रडी भी हृदय रख सकती है। युक्तप्रान्त और बिहारके दूर-दूरके कोनोसे श्रद्धालु स्त्री-पुरुष झूलन देखते सावन बितानेकेलिए अयोध्या आते है। हम लोगोको निश्चय ही सावनका आकर्षण खीचकर नही लाया था।

दूसरे या तीसरे दिन वरदराज भी मिल गये। उन्हे अपने जन्मस्थानका एक वृद्ध साधु मिल गया था। परसामठके एक महात्मा अयोध्याकी अन्तरग धार्मिक-मडलीमे बहुत विख्यात थे, उन्हीके द्वारा हमे एक-दूसरेका पता लग पाया।

पाँच-सात दिन तो अयोध्याके भिन्न-भिन्न मठो, मन्दिरोंको देखने, रातको झूलनोत्सवोका आनन्द लेनेमे हमारे बीत गये। दर्शकोमे यही चर्चा रहती थी—'अमुक स्थानकी फूलोकी सजावट बडी सुन्दर थी', 'अमुक स्थानमे रोशनी अच्छी थी', 'अमुक स्थानमे हरी-पीली घासोको कैसा सजाया था ?' '...मन्दिरमे कत्थक नाचनेमे कमाल कर रहा था।' दर्शकोकी चलन्तू मडली आधीरात तक चलती-फिरती रहती। दूसरे मन्दिरोंमे तो ताँबे, पीतल, अष्टधातुके राम-सीता झूलेपर झूलते, किन्तु "रसिक" लोगोके यहाँ देखने-सुननेवाले, चलने-फिरनेवाले, जीते-जागते, राम-सीता-झूलनका आनन्द ले रहे थे। रामलीलाकी तरह छोटे-छोटे सुन्दर लडकोको राम-सीता बनाकर

वहाँ झूलेपर बैठाया जाता। रामजी 'द्वापर'के वेशमें पट्टा काढ़े, किरीट-मुकुट बाँधे, नाकमें मोती पहिने, धनुष-वाण लिये बैठे होते, उनके पास लहँगा-दुपट्टा ओढे शिरपर चन्द्रिका दिये जानकीजी होती। दोनोके शिरमे चन्दन-खौर घसी रहती। गोलाघाटके महात्मा श्री रामवल्लभाशरणजी अपने श्री-करकमलसे राम-जानकीको झूला झुला रहे थे, वलैया लेते उनके मुँहमे पानके बीड़े दे रहे थे। वहाँ रोशनीके मारे रातका दिन हो रहा था। फूलो और अतरकी सुगन्धसे सारी हवा लदी हुई थी। यहाँ फैजावाद तथा दूसरे नगरोके सम्भ्रान्त परिवारोंके स्त्री-पुरुष बाल-बच्चो सहित बैठे झूलेकी झाँकी तथा सगीतका आनन्द ले रहे थे। लक्ष्मण किला, हनुमतनिवास जैसे रसिक देवालयोमे सावनकेलिए खूब तैयारी थी। अपनी सूक्ष्म रुचिका इन लोगोंको अभिमान था, और वह अभिमान बहुत कुछ दुरुस्त भी था।

परसाके शिष्य एक भजनानन्दी महात्माके पास जाने-आनेका मौका न मिला होता तो मुझे सखीमतवालोके बारेमे विशेष जाननेका मौका नही मिलता। यद्यपि उस वक्त भी, और इधर तो ज्यादा मैने कहते सुना कि सखीमतवाले दाढी-मोछ मुडाकर, लम्बा केश वढाये बिल्कुल स्त्री-वेषमे रहते है, किन्तु अपने परिचित व्यक्तियोंमें मुझे ऐसे चेहरे नही देखनेमे आये। हाँ, स्त्रैण भावना उनमे ज्यादा होती है। मेरे स्थानके उक्त महात्मा भी भीतरसे सखीभाव रखते थे, ऊपरसे तो लम्बी-दाढी, मूँछ, लम्बा केश, अँचला और सिरपर एक सफेद गमछा रहता; किन्तु उनके शिष्यका इसी वेषके साथ, ललाटपर राम नामके छापके अतिरिक्त स्वर बिल्कुल स्त्रियोंका था। वोलने और चलनेमें स्त्रियोंकी हूबहू नकल करते तो मैंने भी बहुतसे सखीमतानुयायी देखे। उनका कहना है—पुरुष तो एक भगवान् ही हो सकते है, दूसरा व्यक्ति पुरुष भाव रखकर भगवान्की भक्ति नही प्राप्त कर सकता; इसीलिए भगवान्की भक्तिके-लिये सखीभावकी पूर्ण साधना बहुत आवश्यक है। हर 'सखी' (सखीमतानुयायी)का एक स्त्रीलिगी रहस्य नाम होता है—'लवगलता', 'अनगलता'। वह रामको अपना पति समझकर उनकी पूजा करती, उनको साथ लेकर कितनी ही सोती तक, और कितनोंको तो मासिक-आर्तवका भी अभिनय करते देखा जाता। रसिक या 'सखी' लोग दूसरोकी भक्तिको अनाडियोकीसी निम्नकोटिकी मानते। वह 'राम-जानकी' पूजा-अर्चामे आजकलके राजा-रानियोके उपभोगकी सारी सामग्रियाँ यथाशक्ति उपस्थित करना चाहते। 'सखी' लोग वियोग नाट्य नही, सदा मिलनके बानेको पसन्द करते। उनके कपडे भी कुछ अधिक नफ़ीस, चेहरेपर स्निग्धता (चिकनापन) ज्यादा, वाणी स्त्रैण और मधुर होती। एक दिन श्रीरामवल्लभाशरणजीसे हम

लोग बातचीत करने गये थे वेदान्तपाठशालाके बारेमे, उन्होने राजकुमार रामसम्बन्धी निजनिर्मित पहिले तो कुछ कवित्ते सुनाई, फिर जिस उद्देश्यको लेकर हम गये थे उसपर भी बातचीत की। उस वक्त उनका बारीक अँचला सूती था या रेशमी सो तो मै नही कह सकता, किन्तु चादर सफेद काशी-सिल्ककी थी। केसरिया चन्दनसे सीताराम तथा चन्द्रिका-मुद्रिका द्वारा उनका सारा ललाट दोनों आँखोके बाहरी कोनो तक अकित था। 'जिस स्वर और हाव-भावसे बोल रहे थे उसमे गम्भीरता जरूर थी, किन्तु उससे मालूम होता था, कोई दाढीवाली महिला बोल रही है।

किसी समय जानकीघाट—सखीमतका उद्गम स्थान—अपने सख्य-भाव और शिक्षा-दीक्षाकेलिए प्रसिद्ध था, फिर किलाके युगलानन्यशरणका सितारा चमका 'जो इस वक्त डूब चुका था। इस वक्त वहाँके महन्त स्त्रीनाटच नही पुरुषाभिनयको ही तर्जीह देते थे। गोलाघाटके श्रीरामवल्लभाशरणकी प्रकट तथा पडित वल्लभा-शरणकी गुप्त सख्यभावनाकी ख्याति थी, किन्तु वस्तुत सखीसमाजका केन्द्र हनुमत-निवास हो रहा था, जहाँके महन्त गोमतीदास सख्यभक्तिमे बहुत पहुँचे हुए समझे जाते थे। उनकी शक्ति प्रभावकी वृद्धिको मुबारकपुर (छपरा)के श्रीभगवान्-दास—जो गृहस्थावस्थामे परसाके पहिले वाले महन्त श्री रघुवरदासके शिष्य थे—की उनके प्रति श्रद्धाने और बढा दिया था। श्री भगवान्दासजी अपने भक्तोमे रूप-कलाजीके नामसे अधिक प्रसिद्ध है, वह पहिले स्कूलोके डिप्टी-इन्स्पेक्टर थे, पेनशन लेनेके बाद वह घरसे विरक्त हो गये, और अयोध्यामे रहने लगे। जिस वक्तकी बात मै लिख रहा हूँ, उस वक़्त वह हनुमत्-निवासमे रहा करते थे। दाढी-मूँछ मुँडाये वह पूरी तौरसे स्त्रीरूपमे रामभक्ति कर रहे थे। उनका बिहारके एक श्रेणीके शिक्षितोपर बहुत प्रभाव था, जिससे उनकेलिए तो हनुमन्-निवास काबा बन गया था।

सखीमतके सभी कर्णधारोके बारेमे तो नही कह सकता, किन्तु अधिकाश तो इस रामभक्तिकी आड़मे अपने स्थानोंको अस्वाभाविक व्यभिचारका अड्डा बनाये हुए थे। मुझे आश्चर्य होता था, गृहस्थोमे कितने ही इस रहस्यको जानते हुए भी क्यो उनकी ख्याति बढानेमे सहायक होते है।

पाँच-सात दिनमे अयोध्या काफी देख लेनेके बाद अब पढाईका सिल्सिला भी जारी करना था, उसी वक़्त पता लगा, गोलाघाटके पास 'दिव्यदेश' (मद्रासी ढगपर बने आचारी-देवालय)मे एक वेदान्त पाठशाला खुली है, जिसमे एक योग्य मद्रासी विद्वान् पढ़ाते है। मै भी जाकर वहाँ दाखिल हो गया। छात्रोकी सख्या बारह-तेरह रही होगी, जिनमे तीन-चारको छोड़ बाकी सभी वैरागी थे, और यही अच्छे विद्यार्थियोमेसे

थे। शायद वेदार्थसग्रहका पाठ चल रहा था। तिरुमिशीमे रहते मैंने 'यतीन्द्रमत-दीपिका' (रामानुजवेदान्तका प्रारम्भिक ग्रन्थ) पढ ली थी। शंकरवेदान्तका भी कुछ परिचय था, इसलिए उसके पढनेमे मेरी खूब रुचि रहती। ददुआ साहेब (अयोध्याके राजा)के महलके पीछे उन्हीके मकानमे कुछ महाराष्ट्र वैदिक रहते थे। विदेहीजीके स्थानमे रहनेवाले एक ब्राह्मण विद्यार्थीसे पता लगा, कि वहाँ एक पडित सामवेद पढ़ाते है। मैने वहाँ जाकर सामवेद भी 'पढना' शुरू किया—पढ़नेसे मतलब यहाँ सस्वर पाठसे है। गुरुजी खुद भी गर्दभ स्वरका ही अनुकरण कर सकते थे, और ईंजानिब भी ब्रह्माके पास उस वक्त पहुँचे थे, जब वह मृदु और सगीतोपयोगी स्वरोको बाँट चुके थे। खैर, साम-गानमे कैसे पाठकी विकृति गायनके ख्यालसे की जाती है, इसका कुछ परिचय मिला। अध्यापक यदि गायक भी होते, तो शायद और ज्यादा मजा रहता। वैदिक गुरु हमे बडे प्रेमसे पढाते और अयोध्याके निवासमें आखिरी महीनेको छोड बराबर उनके यहाँ मै पढने जाया करता।

वेदान्तपाठशालामे पढते ही वक्त साथियोके अनुरोधसे मै प्रमोदवनकी बडी कुटियामे आ गया। यहाँ उस वक्त सौसे अधिक साधु रहा करते, और यह अयोध्याके अच्छे साधु-सेवी स्थानोमें गिना जाता था। हमारे कई सहपाठी इसके आसपास ही रहा करते थे। यह वह जमाना था, जब कि धार्मिक जगत्में सार्वजनिक व्याख्यानोकी चहल-पहल थी, आर्यसमाजियो, सनातनियो, ईसाइयो, मुसल्मानोके परस्पर शास्त्रार्थ-मुबाहिसे हुआ करते थे। व्याख्याताओकी बडी कद्र थी। यद्यपि अयोध्याके पुरानी चालके महात्मा मजमेमे गला फाडकर हाथ-पैर डुलाते हुए इस चीत्कारको बिल्कुल धर्मबहिर्मुख नई चाल समझते थे, किन्तु नौजवान पीढीको भाषणमचकी शक्तिका जरा-जरा भान होने लगा था। अभी हालमे ही भरतपुरके अधिकारी . जी, और महन्त लक्ष्मणाचार्यका बडी जगहमे भाषण हुआ था, जिसे हम भी सुनने गये थे। इसका असर यह पडा कि हम कई साधु-विद्यार्थियोने मिलकर बडी कुटियामे एक छोटी सभाके रूपमे भाषणमच तैयार किया। उस सभाका रूहेरवाँ मै था। सप्ताहमे एक दिन हम लोग किसी विषयपर भाषण देते। यद्यपि मेरा वह पहिला ही प्रयास था, किन्तु वहाँ 'अन्धोमे काना राजा' समझा जाता था। स्वामी हसस्वरूप, पडित ज्वालाप्रसाद मिश्रके छपे हुए व्याख्यानोको हम लोग अपनी भाषण-शिक्षाका अग समझते थे। आर्यसमाजके प्रहारोसे हिन्दुओके प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय तग आये हुए थे। आर्यसमाजी मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अनेकदेवतावाद, पुराणोपरिश्रद्धा आदि सिद्धान्तोका बहुत जोरसे खडन करते थे। यह खडन अखबारो और पुस्तको

हीमे नही छपता था, खुद अयोध्यामे भी फैजाबादके महाशय केदारनाथ धूम मचाये हुए थे। जब तब उनका व्याख्यान हो जाया करता, यद्यपि मुझे उसे सुननेका कभी मौका नही मिला। आर्यसमाजी अपने इस खडनात्मक प्रवृत्तिसे अप्रिय हो गये थे, किन्तु यह अप्रियता धार्मिक व्यवसायियो ही तक परिमित थी, दूसरे हिन्दू उनके इस्लामसे 'लड'कर हिन्दूधर्मकी रक्षावाली नीतिसे प्रभावित होते जा रहे थे।

सभाका हमने क्या नाम रखा था ? याद नही। खैर, बडी कुटियामे शामको सप्ताहमे एक बार हम लोग व्याख्यान दिया करते थे। भाषण सीखनेकी लालसा तो छूतकी बीमारीकी तरह फैल ही गई थी। देखा-देखी पडित वल्लभाशरणके यहाँके विद्यार्थियोने भी अपने यहाँ सभा कायम की। मै बीच-बीचमें इचाक-मदिरमे पडित गोविन्ददासके पास आया-जाया करता था। मेरे व्याख्यानोकी ख्याति बडी कुटियासे बढकर यहाँके विद्यार्थियो तक भी, मालूम होता है, पहुँच गई थी। उन्होने मुझे व्याख्यान देनेकेलिए—नही व्याख्यान देकर सिखलानेकेलिए—बहुत आग्रह किया। मुझे आत्मविश्वास बिल्कुल नही था, सो तो नही कह सकता, किन्तु मै अपनको व्याख्याता नही समझता था। नोट लिखकर व्याख्यान देना तो मै अबतक नही जानता, फिर उन आरम्भिक खिलवाडोके बारेमे क्या कहना ? खैर, मै उनकी छोटी सभामे व्याख्यान देने गया। पडित वल्लभाशरण भी पधारे थे। न जाने किस विषयपर व्याख्यान दिया। मै क्या कह रहा हूँ, मुझे खुद इसका पता नही रहा। सामने बैठी जनता, विशेषकर पडित वल्लभाशरणजीका रोब इतना गालिब था, कि मुझे सोच-साचकर कहनेकी वहाँ फुर्सत ही नही थी। मालूम होता था, भूतावेशमे कुछ बोलता जा रहा हूँ—भूतावेश भी नही, क्योकि मेरे व्याख्यानमे शुरू हीसे स्वरोके आरोहावरोह-की ज्यादा गुजाइश नही होती। व्याख्यानकी समाप्तिपर मेरी बडी तारीफ हुई। पडितजीने विद्यार्थियोंको कहा—इस तरह व्याख्यान देना सीखो, व्याख्यानका युग है। मुझे व्याख्यानकी तारीफकी उतनी प्रसन्नता नही हुई, जितनी पत रह जानेकी।

वेदान्तपाठशालामे इधर एक नया गुल खिलने लगा। श्री बलरामाचार्य (तिरु-मिशीमे मिले पडित भागवताचार्यके यह दीक्षा-गुरु थे)के शिष्य इन्दौरके एक सेठ इस पाठशालाको खोलनेमे द्रव्यकी सहायता दे रहे थे। जिस वक्त मैं तिरुमिशीमे था, उस वक्त उक्त सेठ वहाँ आये थे, और पाठशालाके सम्बन्धमे बातचीत चल रही थी। पाठशाला खोलनेका उद्देश्य था, उत्तरी आचारियोंको रामानुजवेदान्तसे परिचय प्राप्त करनेका अवसर देना। किन्तु, यहाँ पढनेकेलिए आचारी तो मुश्किलसे दो-चार आये—क्योकि अयोध्यामे उनके स्थान ही बहुत कम है—और उधर वैरागी भर गये।

वैरागी भी रामानुजके ही विशिष्टाद्वैत वेदान्तको मानते थे, इसलिए इस विषयमें आचारियोंके प्रति विशेष श्रद्धा रखते, अपने भीतर वेदान्तके जानकारोंके अभावके कारण वे आचारियोंकी प्रधानताको भी स्वीकार करते। यदि ये खुद वेदान्त पढ जायेंगे, तो हमारी प्रधानता छिन जायेगी, आदि ख्याल थे, जिनके कारण आचारियोंने दिव्यदेशकी वेदान्तपाठशालाको अपने सम्प्रदायकेलिए घातक समझा। वह उसे बन्द करनेकी सोचने लगे। उसके अध्यापक इस मनोवृत्तिको महत्त्व नही देते थे, वह तो बल्कि समझ नही सकते थे,—विशिष्टाद्वैतके सिद्धान्तके बीजको ऐसे श्रद्धालु तरुण मस्तिष्कोमे बोनेसे सम्प्रदायको कैसे हानि होगी ? वह अपने प्रति हमारी श्रद्धा तथा पढनेमे तीव्र रुचिको भी देख रहे थे, और इस प्रकार चाहते नही थे, कि पाठशाला टूटे। किन्तु आखिर पराधीन थे, उनके पास रुपया कहाँ था, कि सेठ और श्रीवल-रामाचारीको फटकार कर लिख देते,—जाओ, तुम अपना रुपया अपने पास रखो, हम तो यहाँ इन छात्रोको पढ़ावेंगे। हम लोगोको भी इतनी जल्दीमे यह खबर लगी, कि हम दूसरा कोई प्रबन्ध नही कर सकते थे। तो भी इस खबरके लगते ही हमारे दिलोमे आग लग गई। हमने दूसरी वेदान्तपाठशाला खोलनेकेलिए एक अस्थायी समिति कायम की। पडित गोविन्ददास उसके प्रधान मत्री और मै उपमत्री बनाया गया। पडित गोविन्ददासजी कुछ सुस्त और मितभाषी थे, इसलिए, बहुत कुछ काम मेरे ऊपर था। पडित मथुरादास, तथा दूसरे कई साधुविद्यार्थी बडी तत्परतासे धनसग्रह-केलिए जुट गये। भूतपुरीवाले वेदान्ती पडितने हमारे आग्रहको स्वीकार करते हुए कहा—'इस वक़्त तो मुझे सपत्नीक घर जाना है, किन्तु वहाँसे आप लोगोकी वेदान्त-पाठशालामे पढानेकेलिए मै अवश्य आऊँगा।' उनके रवाना होनेसे पहिले ही हमने बारह-तेरह सौ सालाना चन्दाका वचन ले लिया था। इस सिल्सिलेमे मुझे अयोध्याके प्राय: सभी मठोंके महन्तोसे मिलनेका मौका मिला था। बड़ी जगह और राजगोपालके दोनो महन्त महाशयोने हमारे उत्साहको बहुत बढाया था। पडित वल्लभाशरणका सम्बन्ध रसिक-सम्प्रदायसे था, किन्तु वह भी हमारे पृष्ठपोषक थे।—दूसरे पक्के रसिक तो वेदान्त, और विशिष्टाद्वैतको फजूल पडितोकी 'दाँत कटाकट' समझते थे।

हमने वेदान्तपाठशालाकेलिए फैजाबादसे रसीद बही छपवाई, बैठनेकेलिए टाट बनवाया। छोटी कुटियाके महन्तजीने अपने फाटकपरके कोठेको वेदान्तपाठ-शालाकेलिए देना स्वीकार किया। एक दिन पडित सरयूदासजी व्याकरणोपाध्यायकी अध्यापकीमे हमने पाठशालाका उद्घाटन भी कर दिया।

जिस वक़्त हम अयोध्याके कुछ शिक्षित तरुण वैरागी आचारियोके अपमानपूर्ण

बर्तावसे आहत हो नई वेदान्तपाठशाला खोलनेका आयोजन कर रहे थे, कई जगह भाषण-सभायें चला रहे थे, उसी समय यूरोपमे महायुद्ध छिड गया था। उससे पहिले 'सरस्वती'का पाठक तो मै अक्सर रहता रहा, किन्तु नही ख्याल है, साप्ताहिक-पत्रोको भी देखता था या नही। महायुद्धने अखबारी दुनियासे मेरा परिचय कराया। कलकत्ताका 'बंगवासी' साप्ताहिकोमे बहुत जनप्रिय था, उसका एक चद्दरके बराबर, ओढने-बिछाने भरकेलिए पर्याप्त विशाल कलेवर हर सप्ताह हमारी आँखोके सामनेसे गुजरता। कहाँ है लीग, कहाँ ब्रूसेल्स—हमे तो बेल्जियम्का भी धुँधलासा ज्ञान था। अखबारोकेलिए उस वक्त नकशे आवश्यक चीज नही समझे जाते थे। खबरोसे यही मालूम होता था, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, और रूसी सेनाये बराबर जीत रही है, किन्तु अंग्रेजोके प्रति हमारी स्वाभाविक घृणा उन जीतोमे भी हमे अंग्रेजोकी हार देखनेकेलिए प्रेरित कर रहा था।

अयोध्या और फैज़ाबादके बीच, किन्तु सडकसे हटकर देवकाली नामक एक प्रसिद्ध देवी-स्थान है। अयोध्याको वैरागियोने अपने हाथमे काबू करके उसे शाक्तोंसे शून्य कर डाला है। जिन रामने, वाल्मीकिके कथनानुसार सीताहरणके शोकमे ही मास और सुराको छोडा, उन्हे उनके अयोध्याके कलियुगी भगतोंने हमेशाकेलिए मास-सुरा-विरत कर दिया! किन्तु, देवकाली ऐसा स्थान था, जहाँ अब भी दोनो नवरात्रोके समय बकरेकी बलि हुआ करती थी। न जाने कहाँसे एक आवारा तरुण ब्रह्मचारी (वैरागी या वैष्णव नही) भूलता-भटकता वहाँ पहुँच गया, और उसने आश्विनके नवरात्रमे बलि बन्द करनेकेलिए भारी बाधा पहुँचानी शुरू की। गृहस्थ—विशेषकर स्त्रियाँ—साफ देख रही थी, कि कालीमाईको पाठा चढानेकी मिन्नतसे ही उनका लडका या पति बचा है, नही तो वे कभीकी अपुत्रा या विधवा हो गई होती। वह अपनी मिन्नतके मुताबिक माईको पाठा चढानेकेलिए बेकरार थी, लेकिन यहाँ एक तरुण साधु वैसा करनेपर भीषण शाप देने तथा आत्महत्या कर लेनेकेलिए तैयार था। दोनो ओरसे धर्म-सकट था, क्या किया जावे, यह गृहस्थोको सूझ नही पड रहा था। किन्तु देवकालीके पुजारी खूब समझ रहे थे। नवरात्रके दिन बीतते जा रहे थे, और वहाँ एक भी बकरा नही आ रहा था। बलिके बकरेका मुड उनका होता था, मुडका शोर्बा (रस) कितना स्वादिष्ट होता है—इसकी स्मृति आते ही ब्रह्मचारीके ऊपर उनका खून खौलने लगता था। साथ ही बलिके साथवाली दक्षिणा-की भी उन्हे हानि उठानी पड रही थी। और यदि कालीके प्रतापको इस तरह ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे कम करने लगे, तो पडे-पुजारी कितने दिनो तक अपनी खैरियत

मनायेंगे। नवरात्रके आखिरी दिन (आश्विन शुक्ला नवमीको) वलि जरूर करनी होगी—इसका उन्होने निश्चय कर लिया था। इसकेलिए कालीमाईके दिलाये दारुण स्वप्नोकी खवरको भी उन्होने फैलाना शुरू किया था।

ब्रह्मचारी नवमीकी मुहिमसे घवरा गया। यदि उस दिन वलि चढी, तो मेरा सव किया कराया अकारथ चला जायेगा—यह सोचकर वह वडी चिन्तामे पड गया। उस वक्त उसे पता लगा, हम वैरागी तरुणोका। वह हमारे पास आया, और उसने पशु-वलि-विरोधी हमारे स्वाभाविक भावोको और उत्तेजित किया। हमने भी समझा कि हमारेलिए डूव मरनेकी वात होगी, यदि 'पचकोशी'के भीतर निरपराध वकरोकी वलि जारी रही। हमने नवमीको आनेका वचन दिया।

अयोध्यासे देवकालीकेलिए जिस वक्त, आठ वजे सवेरेके करीव, हम रवाना हो रहे थे, उस वक्त हमे यही ख्याल था, कि पडे भरमाकर कुछ गृहस्थोको वलि देनेकेलिए लायेगे, उस वक्त हमें अपने भव्य वैष्णव स्वरूप और वाणी-शक्तिका प्रयोग करना होगा। ब्रह्मचारीके कहे अनुसार इतने हीसे गृहस्थोकी वलि करनेकी हिम्मत जाती रहेगी। निमन्त्रित तरुणोमे पडित गोविन्ददास—हममें सवसे अधिक सस्कृतज्ञ, (काशीके व्याकरणाचार्यके कई खड पास)—भी थे, किन्तु लेट-लतीफ होनेसे वह अभी रास्ते हीमे थे, जव कि देवकालीकाड समाप्त हो गया। हमारे साथियोमें दो तिरहुतिया साधु वहुत मोटे-ताजे थे, एक 'लश्करी' तो विल्कुल पहलवान जैसे थे, और दूसरे 'हरिव्यासी' उनसे कुछ नरम। वडी कुटियामे रहनेवाले पचशिखी परमहस सावारण शरीरके स्वामी थे वही वात पडित मथुरादासजीकी भी थी, यदि वह इस मुहिममे सम्मिलित थे। मै उम्रमे सवसे कम २१ सालका लम्वा किन्तु पतलासा जवान था। नीचे पतली धोती साधुओके नियमानुसार लुगीकी तरह वँधी हुई थी। शायद पैरमे जूता भी था, वदनपर खूव सफेद धुला हुआ तनजेवका कुर्ता था, और गलेमे पडी थी एक रेशमी चादर। शिर नगा था। हाथमे पडित गोविन्ददासजीके यहाँसे चलते वक्त एक शीशमकी छडी उठा ली थी। देखनेमें निश्चय ही सवसे ज्यादा अमीराना ठाट मेरा मालूम देता था। सारी जमातका नेता न मै अपनेको समझता था, न समझनेकी इच्छा रखता था; तो भी वोल-चालमें सवसे ज्यादा निधड़क मै ही था, सवसे ज्यादा देश देखा हुआ भी मै ही था, और पढनेमे वेशी नही तो किसीसे कम भी न था। हम लोग कितने युगोके वाद अयोध्यासे देवकाली पहुँचे, इसका ठीक अन्दाजा नही—आगेकी घटनाओसे अवश्य मुझे वह समय युगोमे वीतता मालूम हुआ। चहारदीवारीमे एक वडा द्वार था, उसीके भीतर देवकालीका स्थान वतलाया

गया। द्वारके बाहर दस कदमपर चारो ओरसे पक्के घाटवाला एक पोखरा था। द्वारके पास बहुतसे माली स्त्री-पुरुष फूल-बतासा बेच रहे थे। हम लोगोने दर्वाजेके सामने घाटकी ऊपरी सीढियोको भाषणमच बनाया। खड़े होकर एक एक करके लोगोको समझाने लगे। कुछ तो देवीको जगत्-माता बतलाकर 'बच्चे'की बलिको निषिद्ध साबित कर रहे थे, कोई प्राणिहिंसाको पाप और नरकका रास्ता बतला रहे थे। व्याख्यान बढते हुए आखिर उस अवस्थामे भी पहुँच गया, जब कि उसने सीधा 'सराप'(शाप)का रूप धारण कर लिया—खासकर जब कि हमारे व्याख्यान देते रहनेपर भी एक बकरा तालाबके पानी तक ले जाकर धोया जाने लगा। बकरेको धोकर—शायद सिरपर—, फूल माला पहिना गुस्सेसे लाल-लाल आँखे किये एक पडा बनावटी यजमान (हमे ऐसा ही बतलाया गया, कि लोगोको बलिका जारी रहना दिखलानेकेलिए पडोने अपने पैसेसे बकरा खरीदकर अपने ही आदमी द्वारा बलि करानेका इन्तिज़ाम किया है)के हाथसे बकरेको लिवाये द्वारके भीतर घुसा। मेरे साथी अब आपेसे बाहर हो द्वारके भीतर घुसनेकेलिए आगे बढे। मैने भीतर जानेसे मना किया, किन्तु वहाँ तो अहिंसा शिरपर भूत बनकर सवार हुई थी। छओ-सातो साथियोको आगे बढते देख मै पीछे कैसे रह सकता था ? हातेके भीतर एक तरफ देवकालीका साधारणसा पक्का मदिर, उसके सामने बलि-स्थान। सामने एक ऊँची कुर्सीपर महाराजा बनारसकी ओरसे बनवाया एक मन्दिर, जिसमे शायद तत्कालीन महाराजका प्रोस्लीनपर उतरा चित्र भी था। हमारे साथियोने उसी ऊँचे चबूतरेको भाषणमचमे परिणत कर दिया, भाषण क्या था जले-कटे शापके रूपमे गालियाँ। सारा प्रयत्न व्यर्थ गया, और जब पडेने बकरेके कन्धेपर चलानेकेलिए शस्त्र उठाना चाहा, तब मैने साथियोको कहा—अब भाषण बन्द कीजिये, आँखोसे बलि देखनेमें कोई फ़ायदा नही। चले, बाहर निकल चले।

जिस वक़्त बाहर जानेकेलिए हम फाटकके पास पहुँचे, उसी वक्त पडोने हाथ चलाना शुरू किया। कई साथी पिटे। हरिव्यासी बाबाका कलवाला छत्ता छीना-झपटीमे हाथसे तो जाता ही रहा, साथ ही उससे लगकर उनके एक हाथमे खूब घाव हो गया। पहलवान जैसे लगते लश्करी बाबासे पहिले पडे भयभीतसे मालूम हुए, किन्तु जब पीठ सिकुडाये वह निकलनेकी कोशिश करने लगे, तो मोटे शरीरमे छोटी हिम्मतका ख्यालकरके उनकी मोटी पीठपर भी दो-चार हाथ पडे। एक पडेने मेरी ओर इशारा करके अपने साथीको चिल्लाकर कहा—अरे यह तो साफ बचा निकला जा रहा है। वे मुझे मारनेको लपके। वह असाधारण आवेशकी अवस्था थी. चारों

और मेरे निहत्थे—मुझे छोड किसीके पास यदि कोई चीज थी तो छत्ता था—साथी पिट रहे थे। कार्यकारणपर विचार कर पक्ष-विपक्षकी दलीलोंको देखते हुए निर्णय करनेका वहाँ अवसर कहाँ था। वहाँ जो कुछ निश्चय हो रहा था, वह हो रहा था सेकडोंमे सहज बुद्धिके द्वारा। एकतरफा पिटकर चला जाना मुझे कुछ लज्जाजनक बात मालूम हुई; अभी तक गाधीजीके निष्क्रिय प्रतिरोधकी ध्वनि कानो तक नही पहुँची थी। पडेने दौडकर मेरी रेशमी चादर पकडी, मै उसे छोड आगे बढ गया। उसने डडा चलाया, उससे बचकर मैने अपनी शीशमकी छडी चला दी। उसने उसे पकड लिया। आखिर शीशमकी छडी शौकके लिए थी, मारपीटके लिए थोडे ही थी। खीचा-खीचीमे वह बीचसे ही टूट गई, लेकिन तब तक हम फाटकसे बाहर पहुँच गये थे जहाँ लोगोकी भारी भीड़ थी, और उसके सामने पडोको साधुओपर हाथ चलानेकी हिम्मत नही हो सकती थी। मुझे अछूता निकलते देख, एक पडेने (जिसपर शायद मेरी छडी पड चुकी थी) और कुछ न पा, बगलमे बैठी मालिनकी फूलडाली रखनेका टिन उठाकर चलाया, किन्तु वह भी मुझपर न लग मेरे साथीकी पीठसे टकरा खनखनाता हुआ गिर पडा।

मन्दिरसे बाहर, दर्वाजेसे भी कुछ दूर पहुँच जानेपर पडे भी लौट गये। मैने देखा, मेरे साथी किंकर्तव्यविमूढ बन गये है। आगे क्या करना है, किसीको कुछ सूझ ही नही रहा है। मालूम हुआ, यहाँ पुलीस चौकी है। मैने बतलाया, पुलीसमे यदि हम खबर नही देते है, तो पीटनेवाले उलटा हमारे ऊपर मुकदमा भी कर देगे, और हम हैरान होते फिरेंगे। मै यह भी देख रहा था, कि यदि हर एकको अपने मनसे बयान देनेको कहा गया, तो बहुतसी परस्पर-विरोधी बाते निकल आ सकती है, साथ ही आसपास खडी भीडके बीच साथियोका अपने इज़हारके सम्बन्धमे कोई रिहर्सल हो नही सकता था। मैने साथियोसे कहा—'हम लोग चलें पुलीस-चौकीपर। मै पहिले बयान लिखाऊँगा, बस उसीके अनुसार सब लोग बोलेगे। दर्वाजेके भीतर हम काशिराजके मन्दिरमे दर्शनार्थ गये व्याख्यान देकर बलि बन्द करने नही, इस बातका खूब स्मरण रखेगे।'

पुलीस-चौकी तक पहुँचते-पहुँचते मै उनका स्वनिर्वाचित नेता बन गया। चौकीपर और बाते सच्ची ही सच्ची कही, सिर्फ मन्दिरके भीतर भाषणमच-निर्माण-को हमने देवदर्शनमे परिणत कर दिया। पडे भी वहाँ पहुँचे थे। वह हमारे उस एक झूठका प्रतिवाद करते थे, और साथ ही मारपीटसे इन्कारी थे। चौकीसे हम लोग सिपाहीके साथ फैजाबाद कोतवालीमे गये। कोतवाल साहेब मुसल्मान थे, और

शायद आजमगढ़ ज़िलेके। उन्होने हमारा इज्हार लिया। मैंने अपने पहिले इज्हार-को दुहराया, मेरे साथियोंने भी उसीका समर्थन किया। पंडोंसे पूछा जाने लगा, तो वे हमीको मारपीट करनेवाला बतलाने लगे। उस वक़्त अयोध्याका सब-इन्स्पेक्टर—एक लम्बा-चौड़ा रोबीला राजपूत—वहाँ किसी कामसे पहुँच गया था, उसने पडोको ही नही उनकी देवी तकको जदबद कहना शुरू किया—'ये पढने-लिखनेवाले पॉच-छै साधु तुम्हारे साथ लाठी चलाने गये थे? यदि ऐसी मनशा होती तो इनको लाठी चलानेवाले साधु अयोध्यामे नही मिलते? क्यो झूठ बकते हो? कोतवाल साहब इन सा. . . .पर मुकदमा दीजिये। और वह देवी भी. .क्या है, जो जगतमाता कही जानेपर अपने बच्चोको खाती है? . . ."

मेरे साथियोमेसे किसीने धीरेसे मेरे कानमे कहा—'जानते है, आर्यसमाजी है।' आर्यसमाजी, बडे हर्षसे कह रहे थे और इस वक़्त वह यह भूल गये थे, कि वह साथ ही मूर्तिपूजाकी भी अप्रत्यक्षरूपेण धज्जी उडा रहा है।

किसीको सख़्त चोट तो आई नही थी, कि पुलीस मुकदमा करती या किसीको गिरफ्तार करती। मामला चलानेकी बात चली, तो लोगोने बतलाया—फैजाबादके आर्यसमाजी वकील इसमे पूरी मदद करेंगे। मै एक और साथीके साथ बलदेव बाबू (आचार्य नरेन्द्रदेवके पिता)के पास एक-दो बार गया। उनसे मुकदमेकी सारी बात कही, वह सहायता करनेकेलिए तत्पर थे। अन्तमे मैंने देखा, कि मेरे साथी मामलेकी पैरवीसे जी चुराते है, और सारा बोझा मुझपर डालना चाहते है। उधर पडे भी सुलह करनेकेलिए पैरवी कर रहे थे। ऐसी अवस्थामे मुकदमा चलानेका ख्याल छोड देना ही मैंने वाजिब समझा। हमारी चीजे मिल गई, पडोने पश्चात्ताप किया, मामला यही ख़तम हो गया।

मैंने आर्यसमाजका नाम पहिले-पहिल १९०१ या १९०२मे रानीकीसरायमे अपने योगी मास्टरसे सुना था। इतना ही जानता था, कि वह देवी-देवताकी निन्दा करते है। बनारसमे दयानन्दस्कूल (वर्तमान डी० ए० वी० कालेज)का मै कई महीनो तक विद्यार्थी था, किन्तु वहाँ बराबर जलमे कमलकी तरह रहा, कभी उनकी बाते न सुननी चाही, न सुनी। यहाँ अयोध्यामे भाषण सीखनेके सिल्सिलेमे सनातनधर्मी व्याख्याताओ—हसस्वरूप, ज्वालाप्रसाद मिश्र आदि—के आर्यसमाजके पक्षके खडनमे ही पुस्तके पढी, और एक तरहसे उसके प्रति घृणा पैदा करनेवाली सामग्री हीसे अधिक साबिका पडा। किन्तु कभी-कभी कोई चीज़ ऐसे स्थानमे मिल जाती है, जहाँ उसकी सबसे कम सम्भावना है। दूसरोंके खडनोको पढते हुए मैंने उसमे

कई बार स्वामी दयानन्दके 'सत्यार्थप्रकाश'का नाम सुना। मै भी पहिले इसे 'मिथ्यार्थ-प्रकाश' ही कहता था। एक दिन पंडित मथुरादासके पास उसकी एक प्रति देखी। वह इसे खडनकेलिए ही पढना चाहते थे। पुस्तकका कीडा तो मै था ही, लेकर उसे पढने लगा। कौन-कौन 'समुल्लास' पढ डाले, यह याद नही। सारे ग्रथको तो हर्गिज नही पढ़ पाया था, और पढ भी रहा था बहुत कुछ खंडन हीकी दृष्टिसे, किन्तु उसकी तर्कयुक्त बाते हठधर्मीसे मुकाबिला कर रही थी। इधर देवकालीके मामलेमे अयोध्याके सब-इन्स्पेक्टर, तथा बा० बलदेवप्रसाद वकील आदि—जिन्हे आर्यसमाजी कहकर मुझे बतलाया गया था—के बर्तावोने आर्यसमाजियोके प्रति मेरा भाव बदल दिया; और इस प्रकार सत्यार्थप्रकाशके अगले हिस्सेको मै सिर्फ खडनकी दृष्टिसे पढनेवाला नही रह गया।

वरदराज मेरे साथ नही रहते थे, किन्तु हम बराबर मिलते रहते थे। परसा और वैरागी-सस्थाओसे बिलगावके बीज मेरे हृदयमे काफी बोये जा चुके थे, जिसमें आर्यसमाजके सश्लेषको छोड बाकीमे वरदराज भी मेरे सहभागी थे। मुझे अब अयोध्याके रहनेमे अरुचि मालूम होने लगी—अपने सहपाठियो और सहकारियोंकी मनोवृत्तिसे मेरी मनोवृत्तिमे अन्तर आ गया था। आर्यसमाजके अतिरिक्त अखबारो द्वारा बाह्यजगतकी हवा भी मुझे लग रही थी। मै अपने अन्तस्तलमे एक सकीर्ण गडहियासे निकलकर विशाल जलाशयमे जानेकी मूकवेदनाको अनुभव कर रहा था, यद्यपि अब भी मुझे यह नही मालूम था, कि वह जलाशय किस दिशामे है, कैसा है ?

बहुत दिनो बाद फूफा साहेबको बछवल एक पत्र लिखा, और उस पत्रमे इस मानसिक उथल-पुथलकी भी छाप जरूर रही होगी। उन्होने पिताजीको हुकुम दे दिया—जाओ, लडकेको अयोध्यासे लिवा लाओ।

१९१० ई०मे वह अयोध्यासे खाली हाथ लौटे थे, लेकिन अबकी नही।

# तृतीय खंड

## नव-प्रकाश (१९१५-२२ ई०)

### १

### 'किं करोमि क्व गच्छामि'

कातिकके प्रथम पक्षमे दीवालीके आसपास, वरदराजसे बिदाई ले मै पिताजीके साथ कनैलाकी तरफ चला। वर्षा समाप्त हो चुकी थी, रब्बी बोई जा रही थी, धान अब भी खडे थे, जब कि मै कनैला पहुँचा। शायद हम लोग आजमगढ स्टेशनपर उतरे थे। पिताजीको विश्वास हो गया था, कि अब वैराग्यका भूत मेरे शिरसे उतर गया, अब मै बिल्कुल प्रकृतिस्थ हो घरकी जिम्मेवारी लेनेकेलिए तैयार हूँ। उनको क्या मालूम था, कि यह शान्ति आगे आनेवाले भारी तूफानका पूर्वनिमित्त मात्र है। उनको शायद ठीक तौरसे मालूम नही था, कि जिस शादीको उन्होने या समाजने स्थिर मजबूत बेडी समझकर मेरे पैरोमे डाली थी, उसे कबका नही तिलाक देकर मै अपनेको मुक्त कर चुका हूँ, और उसका ख्याल आनेपर मेरा दिल एक क्षणकेलिए भी कनैलामे रहनेकेलिए तैयार नही होता।

जिस वक्त मै मद्रासके तीर्थोकी यात्रा करनेमे लगा था, उसी वक्त नानाकी मृत्यु हो गई। मरते समय उनको बराबर मेरा ख्याल बना रहा। मुझपर उनका असाधारण स्नेह था। मेरे लिए वह क्या-क्या स्वप्न देखते रहे। अपने अनजाने हाथोसे उन्होने मेरे जीवनप्रवाहके लिए एक कुल्या खोदी थी, अपने जान मेरे शानदार भविष्यके लिए, किन्तु आदमीका जीवनप्रवाह नदीकी धारासे भी अधिक दुर्दम्य है। नाना अपने स्वप्नमे सफल न हो सके। जिसे उन्होने अपना सर्वस्व दिया जिसके लिये सहोदर भाई और उसकी सन्तानसे झगडा किया, जन्मभूमिको छोडा, निन्दास्पद यामातृपुरका वास स्वीकार किया, उसके देखनेकेलिए भी बिलखते हुए उन्हें अपने जीवनका अन्त करना पडा। मेरे हृदयमे सचमुच उनकेलिए समवेदना थी, किन्तु यही

समवेदना क्या दक्षिणमे उनकी मरणासन्नावस्थाकी चिट्ठी पाकर मेरे हृदयमे होती ?

बछवलमे जानेपर कुछ विजयाभिमानके साथ फूफा साहेवने कहा—'क्व विशेष.', अर्थात् कहाँ अच्छा है वैराग्यमें या घरमे ? मैंने कोई उत्तर नही दिया, और न मैंने कोई दुर्भाव माना। मैं अब भी अपनेको पथसे दूर नही मानता था, हाँ वह पथ किसी नई दिशाका सक़ेत कर रहा था, जो मुझे स्पष्ट नही दीख रही थी। इस वार साप्ताहिक पत्रमे लड़ाईकी खवरो को पढनेकेलिए प्रति सप्ताह मुझे बछवल जाना पड़ता। यद्यपि 'वंगवासी'के महाकलेवरमें दो-तीन कालमकी जो खवरे छपती, और सभी सर्कारे अपने-अपने यहाँ जिस तरहसे खबरोंको युद्ध-सम्वन्धी प्रचारका ज़रिया वना रही थी उसमें मेरे जैसे नौसिखियेकेलिए कुछ समझना वहुत मुश्किल था; तो भी खवरोके पढ़नेके वाद छोटे फूफा (यागेशके पिता) वड़े चावसे पूछा करते—कहो, वच्चा ! लड़ाईकी क्या खबर है। वह खुद भी अखबारको पढ़ते थे। अखवारमें चाहे कुछ भी लिखा हो, किन्तु हम सवकी राय थी, जर्मनी जीत रहा है। यद्यपि हमे उसकी वास्तविकताका ज़रा भी ज्ञान न था।

जिस वक्त मै बछवल नही जाता, उस वक़्त यागेश कनैला चले आते। हम दोनोको अनिवार्य 'चडाल-दोकडी' समझ कनैला और बछवल दोनों जगह घरवाले वर्दाश्त करनेकेलिए मजबूर थे, यद्यपि दिलसे वे शकित रहते थे। अवकी वार यागेशने 'संगीत-रत्नप्रकाश'—आर्यसमाजी तुकवन्दियोके संग्रह—को कहीसे पैदा किया। खाटपर लेटे हम वडे मौजसे अपने सगीतपलायन स्वरमे उसके मूर्ति-पूजा-श्राद्ध विरोधी भजनोको गाया करते। एक दिन ऐसे ही समय घरानेके एक चचा आ गये, वह गाँवके उन व्यक्तियोमे थे, जिनका गरीवीके कारण व्याह नही हो सका, और जिनके लिए कुछ दिनोमे ही तमादी लगनेवाली थी। उन्होने कहा—'मैंने दोहरीवरहलमे आर्यसमाजियोकी सभा देखी थी। वह यहाँ नही पहुँचे तो ?'

'यहाँ क्या ज़रूरत है, काका ?'

'अरे ! विधवाविवाह चलता, कितने घरोके चिराग़ बुझनेवाले है।'

और इस वातमे वहुत कुछ सच्चाई थी। कनैलाके बीस ब्राह्मण घरोमेंसे नौकी अगली सन्ताने विल्कुल अविवाहित थी, और व्यक्तिको लिया जावे, तो दो ही तीन ऐसे घर थे, जिनको व्याहकी ओरसे निश्चिन्तता थी, वाक़ी सवके यहाँ सयाने-सयाने व्यक्ति अविवाहित पड़े थे। सवका व्याह होनेपर ढेरकी ढेर सन्तानें होंगी, इस वातपर दिमाग लगानेकी मुझे उस वक़्त ज़रूरत नही थी।

हकशफाके रुपयेका इन्तिज़ाम कहीसे करके, पिताजीने जिगरसंडीकी ज़मीदारी

अपने रिश्तेदारके नाम ले ली थी। वह स्वय वहाँकी तहसील वसूल करने जाते, और कभी-कभी मै भी गाँव देखने जाता था। एक दिन जानेपर मेरे एक परिचित राजपूत-परिवारमे ताजी मछली मारकर आई थी, उधरसे कहा गया—'पाडेजी आवे, बनावे न मछली।' (ब्राह्मण होनेसे मै राजपूतके हाथकी कच्ची रसोई नही खा सकता था, और मछली कच्ची रसोई थी, इसमे सन्देहकी गुजाइश न थी)। बचपनका प्रिय खाद्य कुछ दिनोकी सघतसे अप्रिय थोडा ही हो सकता है, मैने बनाकर खाया। तेलमे तलकर हल्दी सरसोमे बनी मछलियाँ न जाने उस समय इतनी स्वादिष्ट क्यो होती थी? जिगरसडीमे बहुत साल तक ब्रिटिश-गायना (दक्षिणी अमेरिका) मे रहकर लौटा एक आदमी था। वह वहाँ अरकाटीके बहकावेमे आकर कुली बनकर गया था। बीसो साल रहनेके बाद भी वह वहाँसे खाली हाथ लौटा था। वह एक तरहकी अग्रेजी—जिसको व्याकरणसे कोई वास्ता न था—धडल्लेके साथ बोलता था। जब उसे गायनाके आरामका ख्याल आता, तो लौटनेके लिए पछताता था।

इस बार परमहस बाबाकी कुटियापर मै गया कि नही—यह याद नही। वैराग्य और वेदान्तका जोर कम होकर उसकी गति किसी दूसरी ओर हो रही थी, जिज्ञासा और यात्रा-लिप्साका वेग पहिले ही जैसा था?

प्रयागका माघ-मेला नज़दीक आया। यागेशसे सलाह हुई, वहाँ चलनेकी। घरवालोको मेरे ऊपर अब उतना सन्देह नही था, इसलिए खास निगरानी नही थी। एक दिन बीस-बाईस रुपये मेरे हाथ लगे, और मै रानीकीसराय स्टेशनसे प्रयागके लिए रवाना हो गया।

प्रयागमे मै यागेशसे दो-चार दिन पहिले पहुँचा, पैसा था, मेलेमे ठहरनेकी जगहोकी कमी न थी। आजकलके मेलेको उस दृष्टिसे कभी देखा नही, उस वक्त तो बहुतसी जगहोंमे धार्मिक व्याख्यान होते दिखलाई पडते थे। पुराने ढगके कथावाचक व्यास लोग जहाँ शामको अपनी कथा शुरू करते थे, वहाँ नये ढगके व्याख्यान सनातन-धर्म और आर्यसमाजके शामियानोमे हो रहे थे। उसी वक़्त मैने पहिले-पहिल पडित मदनमोहन मालवीयका व्याख्यान सुना, शायद किसी धार्मिक सभाका विशेष अधिवेशन था। कमायूँके पडित दुर्गादत्त पन्त ऋषिकुलके दो ब्रह्मचारियोके साथ पहुँचे हुए थे, जिनके शिरमे रुद्राक्षकी माला बँधी हुई थी। आर्यसमाजके व्याख्यानोको मै ज्यादा सुनता रहा, और उनकी खडन-मडनकी पुस्तके भी लेकर पढता रहा। यागेशके आ जानेपर उनके ससुरालके सम्बन्धी एक पुलीसके जमादारके पास हम लोग रातको रह जाते थे।

मेरा इरादा था, खाने-पीने लायक कुछ कमाकर पढाईको जारी रखनेका। इसी ख्यालसे मैं एक दिन इडियन प्रेस गया। 'सरस्वती'का इधर कई वर्षोंसे निरन्तर पाठ कर रहा था, और दीवारके सहारे चश्माधारी गिरी मूँछवाले जिस पुरुषसे बातचीत कर रहा था, मेरी समझमे वह पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी थे, यद्यपि यह बात गलत निकली, मै पडित रामजीलाल शर्मासे बातें कर रहा था। उन्होने बड़ी नम्रतासे कहा—'यदि दो-तीन दिन पहिले आये होते, तो प्रूफ-रीडरीमे मै रख लेता, लेकिन अब, अफसोस है, कोई काम नही।' इसी वक्त, एक दिन यागेशके बहनोई व्रज-भूषण पाडे (?) के यहाँ शाहगजमे गया था, वहाँ हाईकोर्टमे काम करनेवाले लकडीकी टाँगवाले अलीगढके एक बाबूसे भेट हुई। कई आदमी बैठे हुए थे। उन्होने मेरी पढनेकी रुचि देखकर कहा—'क्यों नही आगरामे पडित भोजदत्तके विद्यालयमे चले जाते, वहाँ खाने और पढनेका प्रबन्ध है, व्याख्यान सिखाया जाता है।'

उनकी बात मेरे मनमे बैठ गई। प्रयागमे मकरसक्रान्ति तो जरूर पूरी की होगी, और शायद अमावस्या तक और रहा हूँगा। मेरे पास इतने ही पैसे रह गये, जिसमे आगरे टिकट खरीदकर आठ आने पैसे बचे, जब कि मै इलाहाबादसे आगराके लिए रवाना हुआ।

## २

# आर्य मुसाफ़िर विद्यालय आगरामें

उसदिन (जनवरी १९१५) सवेरेकी गाडीसे मै आगरेमे उतरा था। स्टेशनपर उतरते ही पडित भोजदत्तके आर्य मुसाफिर विद्यालयका पता न लग सका, उसको ढूँढ निकालनेसे पहिले मुँह-हाथ धो लेना जरूरी समझा, इसलिए सीधे यमुना किनारे पहुँचा। मुँह-हाथ धोया, शायद स्नान भी किया। किसी स्नानार्थ आये सज्जनने विद्यालयका पता नामनेर बता दिया। आठ आने पैसेमेसे कुछ तो जलपानमे खर्च हो गया, बाकीको पाकेटमे रखे पैदल ही मैं नामनेरकी ओर चला। मुहल्ले और वहाँ मुसाफिर विद्यालयके मिलनेमें देर न हुई। सटकसे थोडा हटकर एक मन्दिर था, मुसाफिर विद्यालयका मकान उसीकी आडमे पडता था। विद्यालयके लिए कोई खास तौरसे मकान ठीक नही किया गया था। एक पुराना मकान आर्यसमाजके लिए खरीदा गया था, उसीमें विद्यालयका काम होता था। दर्वाजेसे भीतर घुसते ही एक बडी दालान थी, यही

सस्कृतकी पढ़ाई होती। उत्तर तरफ कुछ कोठरियाँ थी, जिनमे विद्यार्थी रहते। कोठेपर उत्तरकी कोठरीमे अरबीकी पढाई होती, और पच्छिमकी कोठरीमे कोई विद्यार्थी रहता। आठ-दस विद्यार्थियोके रहनेके लिए कोठरियाँ काफी नही थी, इसलिए बाकी लड़के रसोईके लिए मकानमे रहते थे, और वह कई जगह बदलता रहा।

विद्यालयमे जानेपर पहिले विद्यार्थियोसे मुलाकात हुई। शायद भाई साहेब मौलवी महेशप्रसाद उस वक्त नही मिल सके। अधिकाश लडके मेरी ही उम्रके थे। उनसे नये लड़कोकी भरतीके बारेमे पूछनेपर मालूम हुआ—यद्यपि वर्ष शुरू हुये दो-तीन मास हो गये है, किन्तु जगह है, आप विद्यालयके प्रबन्धक डाक्टर लक्ष्मीदत्त (पडित भोजदत्तके ज्येष्ठ पुत्र)से मिले। दस बजेके करीब मै पडित भोजदत्तके घरमे सीढीसे चढकर उस कोठरीमे गया, जहाँ साप्ताहिक 'मुसाफिर आगरा'का दफ्तर था। छोटीसी कोठरी, जिसमे दो मेजो और चार-पाँच कुर्सियोके बाद मुश्किलसे थोडीसी जगह घरके भीतर घुसनेके लिए रह जाती। मेजोपर कलम-दवात-कागज़के अतिरिक्त बहुतसे हिन्दी-उर्दूके अखबार पडे रहते, जिनमे साप्ताहिकोकी और उर्दूवाले अखबारोकी सख्या अधिक होती।

मालूम नही डाक्टर लक्ष्मीदत्त उस वक्त मौजूद थे, या उनकी प्रतीक्षामे मुझे कुछ देर बैठना पडा। डाक्टर लक्ष्मीदत्तका चेहरा गोखलेसे ज्यादा मिलता। चश्मा लगा लेनेपर सिर्फ मराठी पगडीकी कमी रह जाती थी। वह फेल्टकी गोल टोपी लगाया करते। नवागन्तुकके साथ बात करनेमे उनकी मुखमुद्रा गम्भीर हो जाती, यद्यपि परिचितको हँसने-हँसानेमे उन्हे बहुत मजा आता। मैंने उनसे विद्यालयमे भरती कर लेनेकी दर्ख्वास्त की। उन्होने मेरी पढाईके बारेमे पूछा। उर्दू मिडल, काफी सस्कृत और जरा-ज़रा अग्रेजी भी, भर्तीके लिए काफी योग्यता थी। पढकर तुम अपना समय आर्यसमाजके प्रचारमे लगाओगे?—अवश्य, यदि आप मुझे उसके योग्य बना देगे। 'अच्छा, तो आप जाइये—आप भर्ती हो गये।'

नवागन्तुक सहपाठीको देखकर तरुण विद्यार्थियोको बहुत कौतूहल होता है। कोई आँख बचाकर हँसी भी उड़ाना चाहते है, कोई नई जगहमे दिल लगनेमे सहायता देना चाहते है। कोई चाहते है नवागन्तुकके बारेमे विशेष जानना, और कोई अपने हीको सबसे आगे दिखलाना चाहते है।

मुसाफिर विद्यालयके विद्यार्थी अब तक मिले मेरे सहपाठियोकी तरहके नही थे। इन सबके हृदयमे एक खास भाव लहरे मार रहा था। वे बडेसे बडे खतरेका

सामना करके वैदिक धर्म—जिसे वह कभी-कभी देश-स्वातन्त्र्यसे अभिन्न समझते थे—का प्रचार करना चाहते थे। दयानन्द और लेखराम—जिसकी स्मृतिमें यह विद्यालय स्थापित हुआ था—की कुर्बानियाँ, सचमुच ही, उनके हृदयोमे प्रेरणाका काम देती थी। इस तरहकी भावनासे ओतप्रोत विद्यार्थी अभी तक मुझे साथ पढनेकेलिए नही मिले थे।

उस पहिली मुलाकातमे कौनके साथ किस तरह बातचीत हुई, यह तो याद नही। ज्यादा बोलने वालोमे शायद अभिलाषचन्द्र और भगवतीप्रसाद थे। माणिकचन्द सहपाठियोमे सबसे कम उम्र होनेसे कम बोलता था। मुशी मुरारीलाल बनारस जिलेके रहनेवाले होनेसे, मेरे जन्मस्थानके सबसे नजदीकके थे, इसलिए उनकी ओर विशेष ध्यान जाना जरूरी था। दुर्गाप्रसाद और मास्टर बसडाराम थोडे ही महीनो बाद विद्यालय छोडकर चले गये, इसलिए उनके साथके वार्तालापका कोई असर बाकी नही रहा। हममे ऊपरवाली कक्षाके दो विद्यार्थी थे, जिसमें रामगोपालके साथ तो मेरी घनिष्ठता उसी दिनसे स्थापित हो गई।

मुसाफिर विद्यालयमें दो सालका कोर्स था। कमसे कम उर्दू मिडल पास लडके लिये जाते थे। उन्हे सस्कृत, अरबी भाषाओके साथ ईसाई, मुसल्मान, हिन्दुओके प्रधान-प्रधान सम्प्रदायोके दुर्बल रीति-रवाजो, सिद्धान्तो, और आर्यसमाजके मुख्य सिद्धान्तोकी शिक्षा दी जाती। रोज शामको बाकायदा बहस-मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) कराया जाता, तथा भाषण देनेकी विधि बतलाई जाती। सस्कृतकी जितनी पढाई मुसाफिर विद्यालयमे होती थी, उससे कही ज्यादा मै उसको पढ चुका था, इसलिए और साथियोसे पीछे पहुँचनेपर भी मुझे सिर्फ अरबी ही पढना था।

जनवरी तक लडाई शुरू हुए ४ महीनेसे ऊपर हो गये थे, किन्तु उस वक्त की घमासान लडाई, और आज (१९४०)की सिग्फ्रीड तथा मेगिनो दुर्गपक्तियोके भीतर छिपकर चुपचाप बैठे रहनेमे बहुत अन्तर था। पहिलेसे सर्कारकी ओरसे विशेष ध्यान न देनेके कारण, चीजोका भाव बहुत बढ गया था, और अन्नका तो अकालसा मालूम होता था। हमारे यहाँ इसका असर गेहूँके आटेमे पर्याप्त आलू डालकर रोटीकी सूरतमे प्रकट हुआ, यद्यपि जाडोके बाद फिर शुद्ध आटेकी रोटी बनने लगी।

गर्मियोके आते-आते मै भी अरबीमे अपने और साथियोके साथ था, तब तक बसन्दाराम और दुर्गाप्रसाद हमे छोडकर चले गये, अभिलाषकी स्थिति डाँवाडोल रहती। उसे अरबी धातुओ और शब्दोके रूप याद करनेकी जगह घडियोके बनाने, मशीनोके सूचीपत्रोको निहारने तथा इधरसे उधर जानेमे ज्यादा मजा आता था। अब हमारी श्रेणीमे भगवती, माणिक मुशी मुरारीलाल और मै चार ही नियमित

विद्यार्थी रह गये थे। ऊपरकी श्रेणीमे बाबूराम और रामगोपाल स्थायी थे। भाई साहेब—महेशप्रसाद—के सहपाठी पडित धर्मवीर धर्मप्रचारकेलिए बाहर जाया करते, और उनकी इस्लामपर ज़बर्दस्त नुकताचीनियोकी ख्याति सुनकर हमे बडी प्रसन्नता होती। सुखलाल हमारे विद्यालयके भजनोपदेशक थे, और उनके प्रभावशाली भजन—तथा बीच-बीचकी अवतरणिकाये—अभी परिमित क्षेत्रमे ही ख्याति पा रहे थे। संस्कृतके पडित मध्यमाकी तैयारी कर रहे थे, और रोज़ आकर संस्कृत पढा जाया करते थे। वह सनातनधर्मी थे, और समझ रहे थे, कुछ रुपयोके लालचमे हम धर्मको बेच रहे हैं। अरबी मौलवी महेशप्रसाद पढाते थे, जिन्हे हम सभी भाई साहेब कहते थे। मुसाफिर विद्यालयकी विद्यार्थिमडलीमे तथा मेरे जीवनमे उनका खास स्थान है, इसलिए उनपर खास तौरसे लिखूँगा। इनके अतिरिक्त डाक्टर लक्ष्मीदत्त और उनके छोटे भाई पडित तारादत्त वकील अपने पिता पडित भोजदत्त द्वारा स्थापित इस विद्यालयकी उन्नतिके लिए निरन्तर प्रयत्न-शील रहते थे। शामको दोनों भाई नामनेरके दोस्तो—जिनमे भोगाँवके मामा साहेब तथा सदा हँसमुख रहनेवाले पडित प्यारेलाल तिवारी जरूर रहते—के साथ टहलने निकलते, और सूर्यास्त होते-होते विद्यालयमे चले आते। विद्यालयके बड़े आँगनमे बेच और कुर्सियाँ पडी रहती। वहाँ उनकी और विद्यार्थियोकी जमात बैठ जाती, और रातको नौ-दस बज जाते किन्तु हमें मालूम न होता। हमे, कभी उसी वक्त विषय दिया जाता, और वादी प्रतिवादी बनकर शास्त्रार्थ करना पडता, तथा कभी एक-दो दिन पहिले से भी विषय दे दिया जाता। हमारे भाषणकी त्रुटियो-पर डाक्टर साहेबकी आलोचना होती, जो बडे कामकी चीज थी। भाषणमे भी शिक्षा इसी तरह विषयको पहिले, या परीक्षार्थ सद्य देकर होती थी। भाषणमे जब तक अभिलाष रहे, तब तक वह अच्छे रहे, शास्त्रार्थमे थोडे ही दिनो बाद लोग मेरा लोहा मानने लगे, इसमे संस्कृतकी मेरी अभिज्ञता विशेष कारण न थी। शास्त्रार्थ-मे मै सारी शक्तिको अपने ऊपर किये गये आक्षेपोके उत्तर देनेमे खर्च नही करता था, बल्कि काफी समय प्रतिद्वन्दीपर आक्षेपोंकी झडी लगानेमे खर्च करता था। धीरे-धीरे आक्षेपोकी संख्या बढती जाती, प्रतिद्वन्दी सबका जवाब नहीं दे पाता, मैं उत्तर न पाये आक्षेपोको दुहराता जाता, और दो-तीन बारी बीतते-बीतते प्रतिद्वन्दी अपने ऊपर किये गये आक्षेपोके उत्तर देनेमे ही उलझ जाता, उसे मेरे ऊपर आक्षेप करनेकी फुर्सत ही नही रह जाती। मेरा काम इत्मीनानसे सब तरफसे सुरक्षित हो आक्रमण करते जाना, तथा श्रोतृमडलीपर अपने शस्त्रक्षेपके कौशलकी धाक जमाना

रहता। मेरे बाकी तीन स्थायी साथियोमे मुरारीलाल व्याख्यान देनेमे अच्छे थे, भगवती व्याख्यानकी कमीको अपने तीखे आक्रमणोसे पूरा करता। माणिक बच्चा था, उसपर पढ़नेकी ओर ज्यादा ध्यान देनेका आग्रह था। ऊपरवाली श्रेणीमे रामगोपाल भाईमे वक्तृत्व-शक्ति अच्छी थी। वह बोलनेमे स्वरके उतार-चढ़ावको ठीकसे अदा कर सकते थे। लिखे और रटे उद्धरणोंको वह बडे धडल्लेसे इस्तेमाल कर सकते थे। सारे विद्यालयमे वक्तृत्वकलाकी दृष्टिसे उनका कोई सानी नही था। बाबूरामजी भी अच्छा बोल लेते थे।

भाई महेशप्रसाद इलाहाबाद जिलेमे कायस्थान कस्बेके रहनेवाले थे। मेट्रिक पास करनेके बाद सब-इन्स्पेक्टरीके लिए उम्मीदवार हुए। करीब-करीब ठीक हो गया था, और वह घोडेकी सवारी भी सीखने लगे थे, इसी समय इलाहाबादमे पढनेकी अवस्थामे मनपर पडे सस्कार उनपर असर डालने लगे। उस वक़्त इलाहाबादसे एक उग्र राष्ट्रीयतावादी पत्र 'हिन्दुस्तान' उर्दूमे निकला करता था। उसके कितने ही सम्पादक जेलमे चले गये थे, किन्तु 'हिन्दुस्तान' निर्भीकतापूर्वक ब्रिटिश शासनके अत्याचारोका—हाँ ज्यादातर अत्याचारोको ही, अपनी राष्ट्रीय कमजोरियोकी ओर उग्र राष्ट्रीयदलकी भाँति उसे ध्यान दिलानेकी जरूरत न थी—भडाफोड करता था। हिन्दुस्तान'के जेल जानेवाले सम्पादकोमे महात्मा नन्दगोपाल भी थे, जिनका भाई साहेबपर काफी असर पडा था। शायद सूफी अम्बाप्रसादको वह देख न पाये थे, किन्तु उनके साहसपूर्णकार्य—विशेषकर एंग्लो-इंडियन बन महीनो पुलीसको चकमा दे घूमते रहना—उनकी प्रशसाकी चीजे थी। बग-भगके बाद स्वतन्त्रताके लिए देशने जितनी आहुतियाँ दी थी, उनका इतिहास उन्हे जबानी याद था। पहिले-पहिल ये रोमाचक, आत्मबलिके जीते-जागते उदाहरण मुझे भाई साहेबके मुँहसे ही सुननेको मिले। भाई साहेब वक्ता न थे, उनकी कलम भी साधारणतलसे ऊँचे नही उठ पाई, किन्तु वह हमारे लिए सफल शिक्षक ही नही, बल्कि कुछ और भी थे। धीरे-धीरे किन्तु स्थिरताके साथ जारी रहते अपने सलापो—जिनमे बीच-बीचमे प्रश्नोत्तर करनेकी हमे पूर्ण स्वतन्त्रता थी—द्वारा वह हमारे हृदयोंमे एक जबर्दस्त आग जला रहे थे। यह आग कितनी राजनीतिक पराधीनताके खिलाफ़ थी, और कितनी धार्मिक, यह हमे स्पष्ट न मालूम था; क्योकि उस समय 'स्वदेश' और 'स्वधर्म'को हम अभिन्न समझते थे। 'आबिर' अकबराबादी (डाक्टर लक्ष्मीदत्त) की कविताओ, तथा सुखलाल अपने गानोंमे—

'वतनके नामपर यारो तुम्हे मरना नही आता' की जगह

'धरमके नामपर यारो तुम्हे मरना नही आता' कह देते थे।

हमारे लिए सौभाग्यकी बात थी, कि मुसाफिर विद्यालयमे हम पाठचपुस्तकोके बोझसे मरे नही जा रहे थे। सस्कृतमे जीवारामकी सस्कृत-शिक्षाकी प्रथम-द्वितीय आदि पुस्तके और शायद हितोपदेश भी था। अरबीमे 'सरफ', 'नह्व'की एक एक पुस्तक तथा कुरानशरीफ था। पढाईके बादका समय हमारा अपना था, किन्तु उसे हम बहुत उपयोगी और बहुत मनोरजक ढगसे बिताते थे। हम बाहरी पुस्तके खूब पढते, और खूब गप भी मारते थे। लेकिन यह हमारे भविष्य जीवननिर्माणके लिए बहुत उपयोगी साबित हुए। मुझे याद है वे दिन और खास करके वे राते, जब चारपाईपर लेटे या बैठे भाई साहेब शहीदोकी कथा सुनाते, 'हिन्दुस्तान'के भूखे शिक्षित सम्पादकोकी तपस्याका वर्णन करते। सादगीकी भाई साहेब साक्षात् मूर्ति थे। वह मोटे कपडे (खद्दरका अभी युग नही आया था, किन्तु हाथके बुने कपडोपर भाई साहेबका जरूर जोर था)—कुर्ता-धोती पहिनते, टोपीकी जरूरत न थी। जूता दीहाती। खानेमे सादगीके रखनेके लिए, खैर, आर्थिक अवस्था मजबूर किये हुई थी। भाई साहेबको खानेके अतिरिक्त दस या पन्द्रह रुपये मासिक मिलते थे, जिसमे कुछ मासिक दे, वह, एक मौलवी साहेबसे अरबीकी आगेकी पढाई जारी रखे हुए थे।

अयोध्यामे भाषण और अखबारका आरम्भ हुआ था। महायुद्धकी खबरोने जर्मनी, आस्ट्रिया, जापान, रूस आदिके ठोस अस्तित्वको मनवाया। और यहाँ तबकी अवस्थासे मै डिग चुका था, किन्तु अभी भी मै था पुराने जगतमे। मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति किधरको है, इसका परिचय मुझे नही था। यहाँ आगरामे भाई साहेबके सम्पर्कमे आनेपर मालूम हुआ जैसे आदमी अँधेरी कोठरीसे निकालकर सूरजकी रोशनीमे रख दिया जावे, जैसे दम घुटती काली कोठरीसे निकाल शीतल मन्द सुगन्ध-वायु-परिचालित बागमे ला रखा जाये। अब मुझे मालूम होने लगा, दुनियामे ऐसे भी काम है, जिनके लिए जीवनकी अवश्यकता है; ऐसे भी आदर्श है, जिनके लिए मृत्यु मधुरतम वस्तु है। अग्रेज किस तरह भारतका शोषण करते है, इस सम्बन्धमे उर्दू-हिन्दीमे जो भी उपलभ्य पुस्तके थी, उन्हे भी मैने ध्यानसे पढा—इन पुस्तकोमे कुछ जब्तशुदा भी थी। मुझे याद है, भाई परमानन्दके जब्तशुदा 'भारतका इतिहास'को वडे परिश्रम-के बाद जब हम हासिल कर पाये, तो कितनी खुशीके साथ उसे पढ रहे थे। अग्रेजीके ज्ञानसे एकदम कोरा तो नही था, किन्तु अभी उसकी पुस्तकोके पढनेका अभ्यास नही था।

खाना खानेके बाद दोपहरको मै रोज 'मुसाफिर'के आफिसमे चला जाता, और दो-तीन घटे रहकर अखबारोको पढता। 'मुसाफिर'के परिवर्त्तनमे कई दर्जन अखबार वहाँ आया करते। 'लीडर' शायद डाक्टर साहेब खासतौरसे मँगाया करते। मुझे उसका भावार्थ भी अच्छी तरह समझमे नही आता था, क्योंकि समाचारपत्रोंकी भाषामे भी कुछ विशेषता रहती है, तो भी आगराके एक सवा बरसके निवासमे शायद ही किसी दिन 'लीडर'पर मैने एकाध घटा न दिया हो, और आखिरमें मुझे खबरोके समझनेमे दिक्कत नही रह गई। इन अखबारोमे धार्मिक अखबारोंकी ही सख्या ज्यादा थी। 'आर्यगजट' और 'प्रकाश', 'हिन्दुस्तान' और 'देश' लाहौरके अखबारोका मै निरन्तर पाठक था। 'सुदर्शन'जीने इसी वक्त अपना पत्र निकाला था। महात्मा मुशीरामका 'सद्धर्मप्रचारक', फर्रुखाबादसे निकलनेवाला 'सत्यवादी' (?) आर्यसमाजके हिन्दी साप्ताहिक थे। इनके अतिरिक्त हमारे शहरसे निकलनेवाला तथा प्रान्तीय आर्यप्रतिनिधिसभाका मुखपत्र 'आर्यमित्र' उस वक्त सर्वानन्दके सम्पादकत्वमे निकल रहा था। हाल हीमे मैने 'मेघदूत'के पद्यबद्ध अनुवादकी एक पुस्तक देखी थी, जिसमे अनुवादकका बढी दाढी-मूँछके साथ फोटो छपा था। मै अपने साथियोके साथ एक दिन शहर (हीगकी मडी)के आर्यसमाजमे पडित आर्यमुनि या स्वामी अच्युतानन्दका व्याख्यान सुनने गया था, वहाँ दो-तीन बरसकी बच्ची लिए एक मूँछ-दाढी-सफ़ाचट सज्जन आकर बैठ गये। मेरे साथियोमेसे किसीने कानमे कहा—यही 'आर्यमित्र' सम्पादक सर्वानन्दजी है, लेकिन इनका असली नाम है पडित लक्ष्मीधर वाजपेयी। मुझे मेघदूतकी तस्वीर याद आई। मेरे एक साथीने बतलाया—मिडल तक ही पढकर इन्होने इतनी योग्यता प्राप्त कर ली है, कि ये हिन्दीके बडे-बडे लेखकोका कान काटते है। मैने सोचा—मै भी मिडल ही पास हूँ। अखबारोमे हमारी नजर तीन चीजोपर रहती—आर्यसामाजिक जगत्की क्या नई खबर है, कही शास्त्रार्थ और मुबाहिसा तो नही हो रहा, किसी बडे समाजका जलसा तो नही हुआ, और उसमे कौन-कौन प्रसिद्ध व्यक्ति आये—स्वामी सोमदेव, स्वामी मुनीश्वरानन्द, स्वामी अनुभवानन्द, स्वामी सर्वदानन्द, स्वामी सत्यानन्द, महात्मा मुशीराम, महात्मा हसराज, प्रोफेसर रामदेव, प्रोफेसर दीवानचन्द, पडित तुलसीराम, पडित रामचन्द्र देहलवी, चौधरी खूबचन्द—आदि हमारी उस दुनियाकी विख्यात मूर्तियाँ थी। फिर देखते कही किसी आर्यसमाजी व्याख्यान या मुबाहिसाको लेकर हिन्दुओ या मुसल्मानोसे सिर-फुटौवल हुई कि नही। खडन-मडनके लेख—विशेषकर इस्लामके विरुद्ध—बहुत चावसे पढे जाते, और १९१५ ई०के अन्त होनेसे पहिले ही 'मुसाफिर आगरा'ने

केदारनाथ विद्यार्थीके भी लेख छापने शुरू किये। अपने लेखको पहिले-पहिल छपा देखकर तरुण लेखकको कितनी प्रसन्नता होती है, इसे अनुभवी ही बतला सकते है। मेरा उर्दूवाला लेख पहिले छपा या हिन्दीवाला, इसे नही कह सकता; किन्तु मेरठके हिन्दी मासिक 'भास्कर'के दो अकोमे अपने छपे लेखोसे मुझे ज्यादा खुशी हुई। वही हिन्दीका मेरा प्रथम लेख है। इसमे अयोध्यामे साधु लोगोके पास गृहस्थ लोग कैसे मन्त्र लेने आते है, इसे विदेहीजीके स्थानमे देखे—दृश्यको लेकर मैने वर्णित किया था।

सस्कृतकी पढाईसे छुट्टी पानेके कारण मेरे पास कुछ और भी फाजिल समय था, जिसे मैं बाहरी पुस्तकोंके पढनेमे लगाता था। 'मुसाफिर' आफिसकी रद्दियों और कूडेमे बहुतसी समालोचनार्थ आई आर्यसमाजी पुस्तके पडी थी। मैने लगकर कूडा-कचडा साफ किया, पुस्तकोको जमा किया, और एक-एकको पढ डाला। इन पुस्तकोमे पडित आर्यमुनि, पडित राजाराम शास्त्री, पडित तुलसीरामके किये दर्शन, उपनिषद् और दूसरे सस्कृत ग्रथोके मूलसहित अनुवाद थे। मै अब इन ग्रथोमें रस लेने लायक हो गया था। उर्दूकी 'कुल्लियात-आर्यमुसाफिर' हमारे लिए बडी प्रिय चीज थी, क्योकि यह उन्ही शहीदे-धर्म पडित लेखराम आर्यमुसाफिरकी कृतियोका सग्रह था, जिनकी स्मृतिमे हमारा आर्यमुसाफिर विद्यालय स्थापित हुआ था। स्वामी दर्शनानन्द, पडित भोजदत्त, महाशय धर्मपाल (जो अब फिर मुसल्मान हो चुके थे)की उर्दू पुस्तकोको मैने बहुत शौकसे पारायण किया था। इस्लामकी समालोचनामे लिखी गई पादरियोकी भी बहुतसी पुस्तके मैने देखी। मेरे साथी सुनी सुनाई परम्पराको दुहराते हुए जब मौलवी सनाउल्ला अमृतसरी, पादरी ज्वालासिंह और स्वामी दर्शनानन्दकी शास्त्रार्थमे अप्रतिम प्रतिभाओका वर्णन करते, तो मुझे ईर्ष्या होती—क्या मै भी वैसा हो सकता हूँ। मौलवी सनाउल्लाके 'अह्ले-हदीस'का तो मै हर सप्ताह नियमसे पाठ करता था। 'पैगाम-सुलह', 'अलफजल'. 'नूर' जैसे कादियानी अखबारोसे भी मुझे नवीन इस्लामकी जानकारीका अच्छा मौका लगता था।

हम लोग वैदिकधर्म—आर्यसमाजके सिद्धान्तो—ऋषि दयानन्दके पैगामको—सारी दुनियामे पहुँचानेकेलिए मिश्नरी तैयार किये जा रहे थे। हमे उपदेशो, अखबारों और पुस्तको द्वारा बतलाया जाता था, कि दुनियाका सबसे पुराना धर्म—सारे धर्मोका आदि स्रोत—आज भी अपने सिद्धान्तोमे कितना मजबूत है। उसमे एक ईश्वर छोड़ किसी दूसरेकी पूजा नही है। बहुदेववाद वेद-विरुद्ध है, श्राद्ध ब्राह्मणपोपोके पेट पालनेकी चाल है। अवतार अजन्मा ईश्वरका नही होता। पुनर्जन्म और कर्मका सिद्धान्त हमारे धर्मको सारे धर्मोसे श्रेष्ठ सिद्ध करता है। वर्णव्यवस्था जन्मसे नहीं,

रुचिके अनुसार व्यवसाय चुननेकी स्वतन्त्रताका दूसरा नाम है। तीर्थ, मूर्ति-पूजा आदि सभी पोपलीलाये है। वात-वातमे हमारे सामने ईसाई मिशनरियोंके धर्मप्रचारके-लिए किये गये स्वार्थत्याग और साहसकी मिसाल पेश की जाती थी, और उससे भी ज्यादा, जापान-चीन-तिव्वत-मध्यएसियाके दुरूह रास्तोंसे शताब्दियों पूर्व बौद्ध-भिक्षुओंकी यात्राओंका उदाहरण पेश किया जाता था। हम अपनेको दयानन्दके भिक्षु और अपने विद्यालयको एक छोटीसी नालन्दा—यद्यपि वहुत त्रुटिपूर्ण—समझते थे।

शिक्षा सिर्फ मौखिक नही थी, उसे व्यवहारमे रूप देनेका भी हमारा प्रयत्न होता था। मुसाफिर विद्यालयके हम सभी विद्यार्थी सप्ताहके अधिकाश दिनोमे शहरमे, या सुल्तानपुरा वाजारमे सडकपर व्याख्यान देने जाते थे। यह परम्परा मेरे पहिले कायम हुई थी, पहिली वारीके विद्यार्थी थे भाई साहेव और धर्मवीर जी, रामगोपालजी दूसरी वारीमें, और अव हमारी जमातका नम्बर तीसरा था। मालूम होता है, इसे ईसाइयोसे सीखा गया था। इन व्याख्यानोके श्रोता दस-पाँच मिनटसे अधिक एक जगह न खडे रह सकनेवाले अपनी खरीद-फरोख्तकेलिए आये लोग हुआ करते थे, इसलिए हम लोगोका व्याख्यान सक्षिप्त होता था। इन व्याख्यानोके अतिरिक्त अछूतोद्धारमे हमें खासतौरसे काम करना पडता था। पडित भोजदत्तजी अखिल भारतीय शुद्धि सभाके प्रधानमन्त्री और सस्थापक थे। इसका काम तो था, मुसलमानों और ईसाइयोको वैदिक धर्मकी दावत देना, किन्तु इसमे उसे वहुत कम सफलता मिलती थी। कभी ही कोई भूला-भटका मुसलमान या ईसाई जात-पाँतकी सकीर्णतासे दवे हिन्दू समाजमें आना चाहता था। हाँ, शुद्धिशुदोकी सख्या दिखलानेके-लिए अछूतोके शुद्धिसस्कार होते थे। कुछ पढ-लिख गये, तथा वेहतर आर्थिक अवस्था-वाले अछूत परिवार जरूर चाहते थे कि समाजमे उनके लाछित अपमानित स्थानमें कुछ परिवर्तन हो। इसी इच्छासे वह अपनी 'शुद्धि' कराते थे। इसकेलिए एक दिन मुकर्रर होता। उस दिन घरके व्यक्ति, संस्कारकी गम्भीरताको सावित करनेके लिए उपवास रखते, शामको हम लोग पहुँचकर हवनकुड खोदते। चौक-वौक पूरते, संस्कारविधिमें आये मन्त्रोसे हवन करते, घरके व्यक्ति उसमे यजमानके तौरपर वैठकर अपने हाथोंसे आहुति देते। फिर उनके हाथके वने हलवे-पूडीका प्रसाद वाँटा जाता। हम पुरोहित लोग वही भोजन करते। हमारे इन शुद्ध होनेवाले भाइयोमें अधिकतर आगराके आसपासके चमार होते, जो शकल-सूरतमें पास-पडोसके दूसरे लोगोसे भिन्न नहीं मालूम होते थे।

वैष्णवधर्म—वैरागी सम्प्रदाय—से मैं उदासीन हो गया था। धर्मका आकर्षण नहीं बल्कि घूमने पढ़नेका आकर्षण, तथा घरसे मुक्तिका ख्याल मुझे वहाँ ले गया था। वहाँ मेरे विचार बध्या समान थे, किन्तु यहाँ आर्यसमाजमें अपनी बुद्धिको ज्यादा स्वच्छन्द ज्यादा अनुकूल परिस्थितियोंमें पा रहा था। जात-पाँतका खंडन आर्यसमाजी एक हद तक ही करना चाहते थे, किन्तु मैं उसको असह्य बीमारी समझता था। युक्तप्रान्तके आर्यसमाजियोंमें वर्णव्यवस्थाको लेकर उस वक्त दो दल हो गये थे, एक दल—ब्राह्मणपार्टी—वर्णव्यवस्थाको गुण-कर्म-स्वभावके अनुसार बतलाते भी स्वभावपर बहुत जोर देकर 'पनालेको वहीं' रखना चाहता था, इस दलके मुखियोंमें पंडित मुरारी-लाल (सिकन्दराबादी), पंडित तुलसीराम और ज्वालापुर महाविद्यालयका पंडित-दल शामिल था। स्वामी सर्वानन्दको पुरानी मर्यादाका अतिक्रमण कर, ब्राह्मणोंको नीचे दबाते हुए अछूतोंको आगे बढ़ाते देख, कविराज पंडित नाथूरामशंकरने 'चमरनके तारनको तारनके कारण प्रगटे सन्त सर्वदानन्द' लिख मारा था। मैं अपने छोटे दायरेमें इस विचारधाराका सख्त मुखालिफ था। मेरे सहपाठियोंमें सबसे अधिक घनिष्ट मित्र भगवतीप्रसाद कुछ दिनों तक गुरुकुल सिकंद्राबादमें रहे थे, और पंडित मुरारीलाल शर्माके विचारोंसे प्रभावित हुए थे। वे अक्सर वर्णव्यवस्थाके बारेमें मुझसे झगड़ पड़ते। मैं सारे आर्य (समाजी) मात्रकी रोटी-बेटीके पक्षमें था, और स्वामी सर्वदानन्द-की खरी-खरी बातोंको बहुत पसन्द करता था।

एकमासे एक बार गुरुजीके साथ एक दिन मैं छपरा जा रहा था। हमारी ही सेकंड क्लासके डिब्बेमें छपराके बैरिस्टर मिस्टर मुस्तफा बैठे हुए थे। बातचीतमें परिचय हुआ। मिस्टर मुस्तफाने गुरुजीसे कहा—'महन्तजी, अपने शिष्यको विलायत भेजिये।' किसलिए, सो मैंने नहीं सुना या याद नहीं। महन्तजीने हँस दिया। परसाका वैष्णव वैरागी कृस्तानोंके मुल्कमें जायेगा—इसपर वह सोच भी नहीं सकते थे। किन्तु वह बात मेरे लिए भी वैसी ही न थी। उससे भी पहिले बनारसमें जिस वक्त "सरस्वती"में मैं खन्नाकी अमेरिकायात्रा-सम्बन्धी लेखोंको पढ़ता, तो मेरा हृदय वहाँ साक्षी मात्र नहीं रहता था। सेंट्रल हिन्दू कालेजमें, शायद कुमार देवेन्द्रको स्वरके साथ गाते सुना था—'न्यूयार्कमें पहुँचकर हमको भी तार देना', तो उससे मेरे मनपर अजीबसा प्रभाव पड़ा था। और अब तो हम विदेशयात्राके ही स्वप्न देखा करते थे, मेरा स्वप्न अमेरिका युरोपका नहीं था. मैं एसियाके ही किसी भागको पसन्द करता था, पहिले अरब, मिश्र, ईरान और पीछे चीन-जापानको। किसलिए ?—वैदिक धर्मके प्रचारके लिए। किन्तु, जिस तरह धर्मवीरजी अरबमें धर्मप्रचारार्थ

जानेके लिए उतावले होकर वम्बईकी किसी मस्जिदमे कई दिन काट आये थे, मै उतनी जल्दीका पक्षपाती न था, उसके लिए मै काफ़ी तैयारीकी ज़रूरत समझता था। वैसे सभी चारो सहपाठी हमारे स्वप्नोके सहभागी थे, किन्तु रामगोपालके साथ उनपर बहस करनेमें बहुत लुत्फ आता था। मै स्वतन्त्र था, मुझे कही आने-जानेमें कोई बन्धन नही था, किन्तु रामगोपालकी उड़ानोमे बाधक थी उनकी स्त्री। मै सलाह देता— उसे पढाकर अपने पैरोपर खडा कर दो, कही अध्यापिका हो जायेगी। हमारी भविष्यकी कार्य-योजनाओमे एक मिश्नरी विद्यालय भी था, जिसमे पुराने नालन्दा और उस वक्तके मुसाफिर विद्यालयका समिश्रण होगा। वहाँ हम पढे-लिखे नौजवानोको छै-सात वर्षकी विशेष शिक्षा देंगे। जो जिन देशोमे जायेगा, वह उस देशकी भाषा, सस्कृति और धर्मके बारेमे विशेष तौरसे पढ़ेगा।

पडित भोजदत्तजी आगरामे ही थे, किन्तु, असाध्य बीमारी—शायद यक्ष्मा—से बीमार थे। उनके दर्शन बहुत कम हुआ करते थे।

मेरी बुआकी लडकीका ब्याह करना था। फूफा साहेबने पत्र लिखा—'फीरोज़ाबादके पोस्ट-मास्टर (आज़मगढ़ जिलेके रहनेवाले)के लडकेको देख आना, और ब्याहकी बात कर आना।' मै फीरोजाबाद गया, और ब्याहके ठीकठाक करनेमे मदद दी। उसी समय कनैलासे पत्र आया—शायद यागेशका, कि पिताजी अर्धविक्षिप्तसे हो गये है, शायद तुम्हारे भाग जानेके कारण; इसलिए एक बार मिल जाओ। पन्द्रह-बीस दिनकी छुट्टी लेकर मै कनैला आया। पिताजी बहुत दुबले हो गये थे, मालूम होता था बहुत दिनोकी बीमारीसे उठे है। उन्होने मुझे देखकर बडी प्रसन्नता प्रकट की। दिमागकी गर्मी शान्त करनेकेलिए कनपटीके पास फ़सदल खोलकर खून निकालनेकेलिए आदमी आया हुआ था। उन्होने कहा—"क्या करोगे फस्द खुलवाकर मै अब अच्छा हो जाऊँगा।" दीवालीके दिनमे आजमगढ आर्यसमाजमे था, और कार्तिक पूर्णिमाके दिन करहाके मेलेमे मुझे लेक्चर झाडते देख मेला देखनेकेलिए आये कनैलाके स्त्री-पुरुषोको बहुत आश्चर्य हुआ। इसी वक़्त मुहम्मदाबादमे बाबू बैजनाथप्रसाद वकीलके यहाँ ठहरा। वह अभी-अभी इलाहाबादसे वकालत पास कर आये हुए थे। उनके पास 'कर्मयोगी'की पूरी फाइल थी। राजनीति पर बात-चीत करनेके अतिरिक्त उस फ़ाइलके कितने ही भागोको मैने पढ़ा। तीन-चार सप्ताह बाद पिताजीने बडी खुशीके साथ मुझे आगरा लौट जानेकी इजाजत दी।

१९१५ ई०के जुलाई-अगस्त तक पढने-लिखने, बोलने-चालनेमे मेरी काफी प्रगति हो चुकी थी। अब मुझे आगरासे बाहर, फतेहगढ़, जसवन्तनगर, फीरोजाबाद

जैसे स्थानोमे भी व्याख्यान और सस्कार करानेके लिए भेजा जाता था। व्याख्यान देते वक्त अपरिचित अगणित चेहरोका रोब गालिब होना अब भी कम नही हुआ था, तो भी श्रोताओकी टिप्पणी या चेष्ठा अनुत्साहवर्धक न होनेसे मुझे आत्मग्लानि नही होती थी। इसी बीच शायद सितम्बर (१९१५)मे जबलपुरसे डाक्टर लक्ष्मीदत्त और पडित धर्मवीरको मुसल्मानोके साथ शास्त्रार्थ करनेका निमन्त्रण आया। मै भी शास्त्रार्थियोमे गिना जाने लगा था, और सस्कृतके प्रमाणोको जुटानेमे तो उनकी काफ़ी सहायता कर सकता था, इसलिए डाक्टर लक्ष्मीदत्तने मुझे भी चलनेकेलिए कहा। हम लोग पहिले इलाहाबाद गये। उस वक्त वहाँ युक्तप्रान्तके राजनीतिक नेताओकी एक बडी कान्फ्रेस हो रही थी। युक्तप्रान्तमे उस वक्त लेफ्टेट-गवर्नर शासन करता था, देशभक्तोकी—जिसमे पडित मोतीलाल नेहरू तेजबहादुर सप्रू, आदि सभी शामिल थे—माँग थी, गवर्नरकी। शायद अग्रेजी सर्कारने इस माँगको ठुकरा दिया था, इसीपर यह विराट् कान्फ्रेस काग्रेसकी ओरसे सारे प्रान्तभरके लोगोकी बुलाई गई थी। हम लोग आगरासे किसी सभाके प्रतिनिधि न थे। सभा-स्थल हीमे हमे एक-एक प्रतिनिधि टिकट मिल गया। कान्फ्रेस शायद म्योहालमे हुई थी। अग्रेज़ीमे धुआँधार तकरीर हुई, जिसका समझना ऐसे भी हमारे लिए मुश्किल था, ऊपरसे गर्मीका पूछो मत, बर्फ डाले पानीके गिलासोके गिलास गलेके नीचे उँडेले जाते थे, और प्यास बुझना जानती न थी।

जबलपुरमे हम लोगोको हितकारिणी हाई स्कूलके मकानमें ठहराया गया—शायद उस वक्त कोई छुट्टी थी, जिससे स्कूल बन्द था। गर्मी यहाँ भी खूब थी, किन्तु बँगलेकी छत कुछ ऊँची थी, और लेमनेड बर्फका बराबर इन्तिजाम रहता था। मुसल्मानोकी तरफसे मौलाना सनाउल्लाह शास्त्रार्थ करनेवाले थे। उनकी मददके लिए मौलाना अबूतुराब, मौलाना कासिम बनारसी तथा दूसरे सज्जन भी आये थे। आर्यसमाजकी तरफसे डाक्टर लक्ष्मीदत्त और पडित धर्मवीर बोलनेवाले थे। पडित रामचन्द्र देहलवीके कुछ व्याख्यान यहाँके टौनहालमे हुए थे, उसीपर यह शास्त्रार्थ रचा गया था। मेरे लिए यह पहिला मौका था किसी आर्यसमाजी-मुस्लिम शास्त्रार्थ देखनेका। एक ही प्लेटफार्मपर मध्यस्थ—जो शायद जबलपुरके किसी कालेजके मिशनरी प्रिंसपल थे—की दोनो तरफ दो मेज़ोपर दोनो पक्षके पडित-मौलवी पुस्तकोका ढेर लेकर बैठे हुए थे। चारों तरफ खुली जगहमे विराट् हिन्दू-मुस्लिम जनता शास्त्रार्थ सुननेके लिए बैठी थी। रातके अँधेरेके दूर करनेके लिए लालटेनोका काफी इन्तिजाम था। वक्ताओको बारी-बारीसे बोलना पडता था। समय पूरा होते ही मध्यस्थ

घटी बजा देते। शास्त्रार्थका प्रभाव सभी जनतापर एकसाँ कैसे पडता, जब कि उनकी सहानुभूतियाँ पहिले हीसे बँटी हुई थी। तो भी अपने धर्मको विज्ञानानुमोदित बनानेके लिए आर्यसमाज बहुतसे पुराने मिथ्या विश्वासोको छोडे हुए था; स्वामी दयानन्दने उन्ही सिद्धान्तोको मान्य रहने दिया था, जिन्हे वह अपने सामयिकोके, कथनानुसार विज्ञानसम्मत समझते थे। एक तरफ अपनी पुरानी खुराफातोके अधिकाशकी होली जलाकर एक आदमी आया हो, और दूसरी ओर तेरह सौ वर्षोंकी अधिकाश लचर बातोको काफिर होनेके डरसे न छोडनेके लिए मजबूर व्यक्ति हो, दोनोमे कौन अच्छी तरह लोहा ले सकेगा, यह स्पष्ट ही है।

शास्त्रार्थ शायद दो दिन हुआ था। उसी समय हम ताँगेसे भेडाघाटके मार्बल राक (सगमरमर चट्टान)को देखने गये थे। हम लोगोको निमन्त्रण देकर अपने घर खानेकेलिए ले जानेवालोमे एक बैरिस्टर कोई गुप्त साहेब थे। वह विलायतमें तरुण भारतीयोके ऊपर खुफिया पुलीसकी कितनी कडी निगाह रहती है, इसके बारेमे कह रहे थे—हम उनसे बचनेके लिए बहुधा मैदानकी घासमे बैठ जाते थे। जबलपुरमें एक दिन सस्कृतमे मुझे व्याख्यान देना था, किन्तु किसी कारणसे व्याख्यान नही हो सका। उस समयके शास्त्रार्थसे मुकाबिला करनेसे मालूम होता था, कि अबसे उस समयके लोग ज्यादा विचार-सहिष्णु थे।

युद्धकी भीषणता और भी बढ गई थी। नामनेर आगरा-छावनीके भीतर समझा जाता है। हम लोग दोपहर बाद पढनेके लिए कभी-कभी एक बागमे जाया करते थे, वहाँ देखते थे आये हुए झुडके झुड रगरूटोको। खुफिया पुलीस और भेदियोका तो चारो ओर जाल बिछा हुआ था। हमारे विद्यालयके सामनेवाले मन्दिरमे एक पगला रहता था, कितने लोग कह रहे थे—वह पागल नही भेदिया है। कुँअर सुख-लालके गानोमे कुछ राष्ट्रीयताकी गर्माहट बढ रही थी, जिसके लिए पुलीस सजग रहने लगी थी। एक बार हम लोगोके सामने प्रस्ताव आया था, मेसोपोतामियामे दुभाषिया बनकर पलटनके साथ जानेका। लेकिन न जाने क्यो बात वही तक रह गई, हममे दो-एक तो जरूर ही सैरके शौकमे जानेके लिए तैयार हो जाते। अब अभिलाष विद्यालयके विद्यार्थी नही रह गये थे, तो भी बीच-बीचमे आया करते थे, और बडी खतरनाक सूरतमें। उनको घडी, फोटो-ग्राफीके छोटे-छोटे औजारोके लिए चलनेका बडा शौक था। थोडेसे ही खर्चमे वह बडे फिटफाटसे रहा करते थे। वह हमारे विद्या-लयके परले दर्जेके चलते-पुर्जे—बुरे अर्थमे नही अच्छे अर्थोमे—तरुण थे। अपने साथियोपर पूरा विश्वास रखते और खुद भी उनके पूरे विश्वासपात्र थे। वर्गविच्छेदके

बाद जो बम्ब-सम्प्रदाय चला, वह भीषण दमनके बाद भी घटनेकी जगह बढता ही जा रहा था। दिल्लीमे वाइसराय लार्ड-हार्डिगके ऊपर बम्ब चला था उसकी गूँज अब भी हवामे थी। हम बडी गम्भीरता और सहानुभूतिके साथ दिल्ली षड्यन्त्रके मुकदमेके बारेमे पढा-सुना करते। मेरे आगरामे रहते ही वक्त अवधबिहारी, मास्टर अमीरचन्द, बालमुकुन्दको फाँसी हुई थी। उनकी फाँसी हमे अपने किसी अत्यन्त आत्मीयकी हत्यासे बढकर मालूम होती थी, साथ ही हमे उसका बहुत अभिमान भी था। पिछले सालभरके साहित्य और सत्सगने हमारे सुप्त हृदयको जागृत कर दिया था, राजनीतिके साथ धर्मकी खिचडी बनाते हुए भी देशकी आजादीके लिए हम बेकरार थे। अभिलाषने एक बार कहीसे भडकनेवाले कुछ मसाले लाकर एक कागजमे रस्सीसे बाँधकर विद्यालयके आँगनमे पटका हलकासा धमाका हुआ, शायद आँगनसे बाहर आवाज नही गई। कुछ देर तक गन्धककी गन्ध उडती रही। बतलाया—यही बम्बका मसाला है, किन्तु असली बम्ब बनानेमे और बहुतसी चीजे आवश्यक होती है। अभिलाष—साहसी और व्यवहारपटु अभिलाष—मेरी नजरोमे बहुत ऊँचा स्थान रखता था, यद्यपि उसके पढाई छोड बैठनेको मै पसन्द नही करता था। आतक-वादियोसे मेरी बडी सहानुभूति थी। उनकी देशकी आजादीके बारेमे अधीरताकी मै प्रशसा करता था, और यदि जरूरत पडती तो उनके कामके लिए मुझे प्राणोत्सर्ग करनेमे भी हिचकिचाहट न होती, लेकिन उस एक दिन दो मिनटके कागजकी पोटलीके धडाकेसे बढकर मुझे कभी आतकवादके समीप ज्यादा जानेका मौका न लगा। मै आतकवादी क्यो न बना? —इसमे शायद सयोग ही कारण हो सकता है, आसपास कोई मुझे उधर खीचनेवाला व्यक्ति नही था। अथवा मेरेमे ही दृढ जिज्ञासाकी कमी थी, और मै उनके अड्डोको ढूँढने नही निकला। शायद अभिलाषका कोई सम्वन्ध रहा हो, किन्तु उसने मुझे किसी और साथीको मिलानेकी बात नही की। भाई साहेब राजनीतिक स्वतन्त्रताका जबर्दस्त पाठ पढा रहे थे, लाल-बाल-पालके परम भक्त थे, और देशके लिए मरनेवालोकी प्रशसा करते नही थकते थे, किन्तु, वह भी किसी कर्मठ आतकवादीके सम्पर्कमे नही आये थे। तो भी, मुसाफिर विद्यालयके नगे सिर नगे पैरवाले अर्धशिक्षित हम तरुण विद्यार्थी भी पुलीसकी निगाहसे बचे न थे।

१९१५के अन्तके साथ मेरी पढाईका अन्त भी आता दीख पडा। मेरे साथियोमेसे कोई, नमाज और कोई मौलूद नागरी अक्षरोमे करके आगरेके एक प्रेसको दे रहा था। एक बार उक्त प्रेसने मुझे कुरानको हिन्दीमे कर देनेके लिए कहा। मिहनत और पारिश्रमिकसे परिचित तो था नही, मैने ढाई रुपया सिपारामे नागरी अक्षरोमे

अरबी आयतों और हिन्दीमें उनके अर्थको लिखकर देना स्वीकार कर लिया। पहिले सिपारेको दे आनेके बाद मालूम हुआ, प्रेसवाला (वाम्बे मशीन प्रेस) लूट रहा है। दूसरे सिपारेको ले जाते वक्त मैंने पारिश्रमिकको बढ़ानेके लिए कहा। कुछ तै नहीं होने पाया, और मैंने उसके बाद अनुवादके कामको छोड़ दिया। कुछ वर्षों बाद कानपुरमें किसी हटियामें अपने अनुवादित दोनों सिपारोंको बिना मेरे नामके छपकर बिकते देखा तो मैंने प्रेसवालेको चिट्ठी लिखी। वह चिकनी-चुपड़ी बातें करने लगा, और उसने कुछ रुपये भेज दिये। मैं खुद तरद्दुदमें नहीं पड़ना चाहता था, न उसे तरद्दुदमें डालना चाहता था।

आगराके उस निवासमें हमारा दिन सिर्फ रूखे आदर्शवाद हीमें नहीं कट रहा था। समवयस्क सहृदय साथियोंका साथ एक लालसाकी चीज है। मुंशी मुरारी-लालजी हममें सबसे ज्यादा गुरुगम्भीर पुरुष थे। उन्होंने स्वामी रामतीर्थकी वेदान्त-सम्बन्धी एकाध उर्दू पुस्तकें पढ़ी थीं, और प्रयागमें रहते वक्त स्वामी रामके दर्शन और सत्संगका जिन्हें मौका मिला था, ऐसे बहुतसे आदमियोंसे स्वामीरामके व्यक्तित्व-को जाननेका उन्हें मौका मिला था; इससे उनपर वेदान्त और रामतीर्थका गहरा असर था। एक समय था, जब मैं वैष्णव रहते हुए भी शंकराचार्यके वेदान्तका जबर्दस्त भक्त था, किन्तु अब मैं पक्का आर्यसमाजी था; सिर्फ ऊपर-ऊपरकी बातों हीमें नहीं दर्शनमें भी आर्यसमाजी द्वैतवादके सामने वेदान्तके अद्वैतवादको बिल्कुल कमजोर समझता था। भाई मुरारीलालको, मैं समझता था, कि वह अभी आदिम अवस्थामें है। और जब कभी मज्लिसमें कुछ सुस्ती छाई होती, तो रामतीर्थके बारेमें छेड़ देता। मुरारी भाई प्रहार हल्का रहनेपर तो समाधान करनेकी कोशिश करते, और यदि कहीं प्रहार सख्त हुआ, और मैंने कह दिया—'क्या वेदान्त और क्या ब्रह्म? जो आदमी पानीमें डूब मरनेके लिए तैयार हो जाये वह पागल ही हो सकता है।' फिर तो यह उनके दर्शनित्त बाहरकी बात हो जाती, लेकिन उसके लिए वह झगड़ते नहीं थे, उनका 'मौनं केवलमुत्तरं' होता। भाई मुरारीलालके पास एक मोटे टोरियेका अचकन था, जिसे जाड़ेमें वह कभी-कभी पहनते थे; काले रंगकी एक कश्तीनुमा टोपी भी थी। हम लोग मुसाफिर विद्यालयवाले नंगे सिर रहा करते, लेकिन मुरारी भाई जब अचकन पहनते तो टोपी भी लगा लेते। हम उनसे बहुत कहते—'भाई साहेब, सबकी तरह आपको नंगा रहना चाहिए।' बोलते—'उहुँक, इस अचकनपर तो यह टोपी लाजिमी है।' 'टोपी लाजिमी है' इसे जब हमने आवाज कसनेका जरिया बना लिया, तब अचकन ही उतर गया।

हमारे यहाँ एक बूढी मिश्रानी रोटी बनाया करती। बूढो और जवानोकी अलग अलग दुनिया होती है। हममेसे कई मनचले कभी-कभी मिश्रानीको हैरान भी कर डालते। एक दिन मिश्रानी अन्दाजा करके हम सबके खाने भरके लिए आटा लाई। हमने निश्चय किया, आज मिश्रानीको छकाना है। बस पालथी मारके खाने बैठ गये। मिश्रानी फूले हुए फुलके फेकती जाती, और हम खाते जाते। आटा खतम हो जानेपर भी हम लोग डटे हुए थे। लाचार सेरभर फिर आटा आया। आटा आनेमे देर, गूँधनेमे कुछ और देर, तब तक हमारी भूख कुछ और ताजी हो गई। उस सेरभर आटेको भी खतम किया। फिर नौकर आटा लाने गया, हमने अपनी भूख ताजा की। मिश्रानीने कहा—'खाओ, कितना खाओगे।' हमने कहा—'खिलाओ, कितना खिलाओगी।' दोनो ओरसे होड लगी थी। चौथी बार आटा मँगानेके बाद मिश्रानी निराश हो गई, और उसने हार मान ली। हम लोग उन फुलकोको खाकर उठ खडे हुए।

मुसाफिर विद्यालयके सस्थापक पडित भोजदत्त शर्मा थे। पडित लेखराम शर्माके बाद मुसल्मानोसे लोहा लेनेमे वह भारी महारथी समझे जाते थे। उनकी जबानमे जबर्दस्त ताकत थी, यद्यपि कलममे उतनी नही। पहिले कुछ दिनो तक वह आर्यप्रतिनिधि सभा पजाबके उपदेशक भी रहे। उन्होने पडित लेखरामके काम-को जारी रखनेके लिए मुसाफिरविद्यालय और 'मुसाफिर आगरा' साप्ताहिक पत्र निकाला था। विद्यालयका काम चन्देसे चलता था जिसका जमा होना उस लडाईके जमानेमे उतना आसान काम न था, खासकर जब कि पडित भोजदत्तजी रोगशय्यापर पडे थे। उनके दोनो लडके डाक्टर लक्ष्मीदत्त और पडित तारादत्त वकील विद्यालयका काम देखते थे, किन्तु उन्हे अपनी गृहस्थी भी चलानी थी, इसलिए अपने पेशेमे भी समय लगाना जरूरी था। डाक्टर लक्ष्मीदत्तकी डिस्पेन्सरी शहरमें थी। पडित तारादत्त नये वकील थे, इसलिए उनकी कश्मकश् कम न थी। आर्थिक सहायता-के लिए डाक्टर लक्ष्मीदत्तको ही ज्यादा काम करना पडता था। ये रुपये कुछ तो पडित धर्मवीर और कुवर सुखलालके जरिये आर्यसमाजके उत्सवो या सभाओसे आते, और कुछ पैसे चिट्ठी-पत्री लिखनेपर मददगार लोग भेज दिया करते। आर्यसमाज उस वक्त युक्तप्रान्तमे निम्न मध्यम श्रेणीके शिक्षित लोगो हीमें फैला हुआ था, इसलिए वह बड़ी धनराशि दानमे नही दे सकते थे। आगरामे रहते ही वक्त छुट्टियोमे पडित बलदेव चौबे (अब स्वामी सत्यानन्द सरस्वती) वृन्दावन आदि घूमते हुए वहाँ आये थे। उस वक्त वह प्रयागमे मेट्रिकके विद्यार्थी थे। साधा-

रण बातचीत हुई, एक जिलेके होनेसे आकर्षण तो जरूर कुछ बढ जाता है, किन्तु उस समय कहाँ पता था, कि हमारा यह प्रथम परिचय एक आजीवन मैत्रीका रूप धारण करेगा। हम लोग उस साल (१९१५ ई०)के दिसम्बरमे गुरुकुल वृन्दावनका वार्षिकोत्सव देखने गये थे। पीछे काग्रेसके अधिवेशन और उनके विराट् केम्पोको देखनेपर तो वह स्मृति फीकी पड गई, किन्तु उस वक्तका वह छोटासा शिक्षित सयत मेला दूसरे उजड्ड असयत धार्मिक मेलोंसे बहुत अच्छा मालूम हुआ। वहाँ हमे आर्यसमाजके चोटीके उपदेशको—प्रोफेसर रामदेव आदिके व्याख्यान सुननेका मौका मिला। बार-बार पानी या दूधकी घूँटोसे गला साफ करते, नोटबुकके पत्तोको उलटते, फेनिल मुखसे आरोहावरोह क्रमसे निकलती उनकी आवाज, और वेदकी सच्चाइयोके सामने विज्ञान और पश्चिमी जगतके सिर नवानेकी गर्जना पर जनताकी तुमुल ध्वनि—यह बाते मुझे अब भी स्मरण आती है। मुझे १९१५ ई०के गुरुकुल वृन्दावनकी इमारतोका स्मरण बहुत क्षीण है। गुरुकुलके पास ही कुछ जगलसा था। इमारते थोडी किन्तु साफ थी। पीले कपडे, मोजके साथ लकडीके चप्पलोमे वहाँके ब्रह्मचारी ऋषियुगकी याद दिलाते थे। ईर्ष्या होती थी, कि मुझे ऐसी सस्थामे पढनेका मौका क्यो नही मिला।

वृन्दावनमे हम प्रेममहाविद्यालयको भी देखने गये थे। उसके सस्थापकका नाम और वर्णन युद्धसे पहिले शायद 'सरस्वती'मे मै पढ चुका था। इधर लड़ाईके समय जिस तरह सर्वस्वत्यागपूर्वक वह इग्लैडके शत्रुओसे मिलकर भारतकी स्वतन्त्रताकी प्राप्तिका प्रयत्न कर रहे थे, इसकी भी खबरे हमे जब-तब मिलती थी। उस वक्त उनकी जायदाद हाल हीमे ज़ब्त हो चुकी थी। हम लोग सराहना करते थे, उनकी दूरदर्शिताकी—जायदादका बहुतसा भाग उन्होने प्रेममहाविद्यालयको दे दिया था। वृन्दावनके एकाध मन्दिरोमे भी गये। श्रीरगके मन्दिरको देखकर तमिलप्रान्तके वैसे हजारो मन्दिर याद आने लगे। मथुरासे हम लोग गुजरे थे ज़रूर, किन्तु वहाँ ठहरे न थे। इसी यात्रामे रेलमे साहित्याचार्य पडित ब्रह्मदत्त शास्त्रीसे भेट हुई थी, अभी वह एम्० ए० नही हुए थे, न आर्यसमाजमे आये थे। कुछ समय बाद जब पडित अखिलानन्द आर्यसमाजसे अलग हो उसे और उसके सस्थापकको गालियाँ देने तथा अपने सस्कृत काव्यपाटवके अभिमानमे आर्यसमाजियोको शास्त्रार्थके लिए चैलेंज देने लगे, उस समय उनसे मुकाबिला करनेके लिए पंडित ब्रह्मदत्त प्रकट हुए। उन्होने सस्कृत भाषाके गद्य-पद्य किसीमे अखिलानन्दको शास्त्रार्थ करनेका चैलेंज दिया।

आगरामे रहते ही वक्त कोमागातामारूके बहादुर सिक्खो और उनके नेता बाबा गुरुदत्तसिंहके ऊपर बजबज्मे हुआ गोलीकाड घटित हुआ था। कोमागातामारूके सिक्खोने साहसके साथ अग्रेजोका सामना किया था, इसे हम अपने अभिमानकी चीज समझते थे। उसके बाद एकके बाद एक पजाबमे स्वतन्त्रताके लिए किये गये प्रयासोंकी बाते, लाहौर षड्यन्त्रकी अदालती कार्रवाइयो—जिनकी कोई-कोई बाते अखबारो और दूसरे जरियोंसे मिलती रहती थी—से मालूम होती रहती थी। राष्ट्रीय स्वातन्त्र्यका जोश अपने जैसे लाखों भारतीय नौजवानोंकी भाँति मेरे हृदयमे भी भरा हुआ था। भाई परमानन्दकी जब्त 'इतिहास' पुस्तकको हम पढ चुके थे, जब कि लाहौर षड्यन्त्रकेशमे उन्हे फाँसी की सजा हुई। मेरी मानसिक अवस्था उस वक्त ऐसी थी कि यदि उनके या उनके दूसरे साथियोंको छुडानेके लिए सशस्त्र चेष्टाके लिए प्राण देनेवाले स्वेच्छासेवकोंकी जरूरत पडती, तो मै उनमे पहिले नाम लिखाता।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके लिए मुझमे इतनी बेकरारी थी, किन्तु उस वक्त राष्ट्रीयताके बारेमे मेरी क्या धारणा थी ? राष्ट्रीयता और धर्मको मै उस वक्त अलग नही समझता था। धर्मसे मेरा मतलब आर्यसमाज और स्वामी दयानन्दके मान्य वैदिक धर्मसे था। बाकी धर्मो—ईसाई, इस्लाम, यहूदी, बौद्ध ही नही हिन्दूधर्मके अनेक सम्प्रदायोंको भी मै झूठे धर्म तथा वेद और विज्ञानके प्रकाशमें शीघ्र ही लुप्त हो जानेवाले धर्म समझता था। तर्क और दलील द्वारा प्रतिद्वन्दीको अपने रास्तेपर लानेका मै पक्षपाती था। किसी तरहका बलप्रयोग मै मजहबोकी कमजोरी समझता था। इसीलिए, जब कभी मुझे किसी ईसाई या मुसल्मान धर्मप्रचारकसे मिलनेका मौका मिलता, तो मै उनसे बहुत प्रेमसे मिलता। बात करते वक्त हमेशा दिमागको ठडा रखनेका प्रयत्न करता। आगरामे भाई महेशप्रसादजीके परिचितोमे वहाँके बप्टिष्ट मिशन स्कूलके हेडमास्टर श्री सामुयेल थे। उनके पिता ब्राह्मणसे ईसाई हो गये थे। उनकी माँ अब भी शायद अपने बच्चेको शामलाल कहा करती थी। भाई साहेबके साथ कभी-कभी मै भी सामुयेल साहेबके पास जाता। उनकी बूढी माँ भाई साहेबसे जगन्नाथ-दर्शन करा लानेकी लालसा प्रकट करती। शुद्धिकी बाते उनके कानो तक भी पहुँची थी, किन्तु अपनी उस आन्तरिक इच्छामे एकलौते पुत्रकी सहानुभूति तथा बहूका विरोध देखकर वह खीझती थी। उनका ख्याल था, बहू न बाधा डालती तो हम फिर ब्राह्मण हो जाते। सामुयेल साहेब अपनी माँकी श्रद्धाका सम्मान करते, और उनसे बहुत प्रेम करते थे। उस वक्त मेरे दिमागमे यह नही समाता था, कि एक परिवारमे भी माँ-बेटे ईसाई और हिन्दू दो धर्म रख सकते है। आर्यसमाजको

मै सार्वभौम धर्म समझता था, और विश्वास रखता था कि अपनी सच्चाइयोके कारण यह भी विज्ञानकी तरह एक दिन सारे ससारके समझदार और साधारण व्यक्तियोका धर्म हो जावेगा। जात-पाँत, छूत-छातको उसमे बाधक देख, मै उनके साथ जरा भी दया दिखलानेके लिए तैयार न था। मालूम नही, उस वक्त किसी मुसलमानके साथ मुझे खानेका मौका मिला या नही, किन्तु आगरे हीमे बनारसके एक सर्वधर्म सहभोज-की बात अखबारोमे पढी। इस भोजमे पडित केशवदेव शास्त्री जैसे आर्यसमाजी नेता भी शरीक हुए थे। आर्यसमाजके कई समाचारपत्र इसके खिलाफ़ लिख रहे थे, लेकिन मै उसका बडा समर्थक था। भगवती भाई दूसरी विचारधाराके पोषक थे, और उनका कहना था, कि बिना शुद्धिके किसी गैर-आर्यके हाथका खाना अच्छा नही। मै कहता—यदि यही बात है, तो किसी हिन्दू—ब्राह्मण, क्षत्रिय—के हाथका भी तब तक खाना नही खाना चाहिए, जब तक वह शुद्ध न हो ले।

उस समय मै आर्यसमाजके गर्मदली विचारोका समर्थक था, इसके सिवाय वेदके ईश्वरीय होनेमें किसीकी आपत्तिको मै सहन करनेके लिए तैयार न था। वेदमें रेल, तार, विमानकी बाते मुझे सच्ची मालूम होती, यद्यपि अभी तक मैने उनकी पूरी छानबीन न की थी। आर्यसमाजीको अपने लिए हिन्दू कहना, मै शर्मकी बात समझता था। आर्य-धर्म हिन्दू-धर्मसे उतना ही दूर है, जितना ईसाई और इस्लाम-धर्म, यह मै बराबर कहा करता। भारतपर आर्यधर्मका विशेष अधिकार है। उसकी उन्नति और स्वतन्त्रता आर्यधर्म और एक जातीयताकी स्थापनासे ही हो सकती है, इसके साथ मै यह भी समझता था, कि आज यद्यपि सभी धर्मानुयायियोका एक हो जाना असम्भव मालूम होता है, किन्तु आर्यधर्मकी सत्यताको रोका नही जा सकता। विज्ञानके साथ कुछ झूठे विज्ञान भी ससारमे खोटे सिक्कोकी भाँति चल रहे है, ऐसे ही झूठे विज्ञानोमे डार्विनके विकासवादको भी मै समझता था। जब पडित आत्मा-राम अमृतसरीकी विकासवादके खंडनपर लिखी पुस्तक मिली, तो मुझे बड़ी खुशी हुई। ससारके बनानेके लिए एक सृष्टिकर्ता, ईश्वरकी ज़रूरत है (जन्माद्यस्य यत.। वेदान्त सू० १।१), और वह ईश्वर मनुष्य निर्माणके साथ उसे अपना ज्ञान भी ज़रूर देगा, इस प्रकार ईश्वरीय ज्ञान सृष्टिके आरम्भ हीमें हो जाता है, डार्विनके विकासवादके अनुसार मनुष्योका बन्दरोसे जगलियो तब सभ्य मनुष्यो तक मारे-मारे फिरते हुए ज्ञानका विकास करना, मेरे लिए ईश्वरकी सत्तापर भारी अघात था। इसीलिए वादविवाद होनेपर मै कहा करता, और बहुत पीछे तक—'यदि इन्कार करना है, तो ईश्वरकी सत्तासे पहिले इन्कार करो। यदि ईश्वर है, तो उसने सृष्टिके

आरम्भ हीमे सूर्यकी भाँति एक ज्ञान-सूर्य भी दिया होगा, जिसमे उसकी सन्ताने भटकने न पाये। और वह ज्ञान-सूर्य ससारका सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है।'

जाड़ोके साथ मेरी पढाई भी समाप्तिपर पहुँच रही थी। भाई रामगोपाल उपदेशक बनकर कर्नाल चले गये थे। विद्यालयके नये निकलनेवाले विद्यार्थियोमे मुझसे विद्यालयवाले ज्यादा आशा रखते थे। पढाई-लिखाई, खाने-पीनेका नि.शुल्क प्रबन्ध करके विद्यालयका अधिकार था, मुझसे कमसे कम कुछ वर्षोके लिए सेवा लेनेका। पढाईके बाद जब प्रबन्धकोकी ओरसे कहा गया, कि अब आर्यसमाज और विद्यालयके लिए कुछ काम करो, तो मेरा उत्तर था--'आर्यसमाजका काम मै करना चाहता हूँ, किन्तु आजकी टुटपुँजिया अवस्थामे मै उसे ज्यादा नही कर सकता। मुझे सफलतापूर्वक काम करनेके लिए अभी कुछ और पढ़नेकी जरूरत है।'

मेरे पत्रोने यागेशके लिए फिर छूतकी बीमारी पैदा की, और वह मेरे आगरासे प्रस्थान करनेसे पहिले ही मुसाफ़िर विद्यालयमे दाखिल हो गये थे।

## ३

# लाहौरकेलिए (१९१६ ई०)

आगरामे ही तै कर लिया था, आगे सस्कृत पढनेका, और लाहौरमे। सैरकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अपने अस्तित्वको भुलाने देना नही चाहती थी, इसलिए सीधे लाहौर जानेकी जगह कुछ घूमते-घामते जाना था। भगवती भाईसे उनके गाँव कोटाका नाम सुना था। भाषा-तत्त्वसे अभी मेरा कोई परिचय न था, तो भी मै लालायित रहता था, ऐसी जगहोको देखने तथा वहाँके लोगोसे बात करनेके लिए, जहाँकी साधारण जनता हिन्दी बोलती है। हम लोग पढकर हिन्दी बोलते थे, और उसमे वह सजीवता, वह लचक न थी, जो कि जन्मसे हिन्दी बोलनेवालोकी भाषामे होती है। मुरादाबादके सारस्वत, खत्री व्यक्तियों और परिवारोकी भाषामे मुझे खास विशेषता मालूम होती थी, लेकिन मुरादाबादकी साधारण नगर और ग्रामकी जनता हिन्दी नही बोलती, कोटा ऐसा गाँव था, जहाँके लोग वस्तुत. उस हिन्दीको बोलते थे, जिसके परिष्कृत रूपको हम किताबोमे पढते, तथा अपने व्यवहारमे लाते है। मुरादाबादके पाठकजीकी प्रारम्भिक सगतिसे मैने अपनी भाषाकी त्रुटियोको परखा था, उच्चारणमे

सेकंडके हजारवें हिस्से तथा उच्चारण स्थानके सूत भरके अन्तरसे भाषाकी स्वाभाविकता, कृत्रिमता. तथा वक्ताके वासस्थानका पता लग जाता है, यह मुझे कलकत्ताके पहिले दूसरे प्रवासो हीमे मालूम हो गया था। अपने प्रयत्नोसे भाषाके उच्चारणमे कितनी सफलता मैंने प्राप्त की यह मुझे नही मालूम—आखिर अपने चेहरेकी तरह अपने स्वरको भी कोई देख नही सकता जिस वक्त मन उच्चारणके प्रयत्नमे व्यस्त रहता है, उस वक्त श्रोतासे उसका सम्बन्ध नही रहता। दर्पणकी तरह कोई अपने उच्चारणका ठीक प्रतिविम्ब (प्रतिध्वनि) सामने रख सके, तब शायद असलियतको समझा जा सके। शब्दोके प्रयोगमे भी मै ध्यान रखता था, क्योकि भिन्न-भिन्न जगहोमे घूमनेसे मुझे मालूम था, एक जगहका कोई बहुप्रचलित शब्द भी दूसरी जगह अज्ञात हो सकता है। हमारे मुरारी भाई अक्सर ऐसी गल्तियाँ कर बैठते थे, भगवती भट इसके लिए उनपर हम्ला कर बैठता, फिर इस ग्राम्य दोषको हटानेके लिए मै संस्कृतके प्रतिशब्द ढूँढ निकालनेकी कोशिश करता। जो शब्द शुद्ध या अपभ्रंशरूपमे संस्कृतमे मौजूद हो, उसके प्रयोगपर कौन आक्षेप करनेकी हिम्मत कर सकता है ?

भाषा सुननेसे भी ज्यादा कोटा जानेकी इच्छा भगवती भाईके घरको देखने, तथा फागुनके होलोके खानेके लिए थी। खुर्जा रास्तेमें पडा था, और बुलन्दशहर भी, किन्तु दोनो जगहोमें मेरे देखनेके लिए कोई खास आकर्षण न था। दोपहरके पहिले कोटावाले स्टेशनपर उतरा। कोटा वहाँसे कुछ मीलपर था। रास्ता पगडंडीका था, और लोगोसे पूछ-पूछकर जाना था। नहरोके पानीसे सिंचे गेहूँके खेतोमें बडी-बडी बाले लगी हुई थी। चारो ओर हरियाली, और कही-कही पक गई मटरके पीले पौधोका फर्श बिछा मालूम होता था। अन्न सर्वोपरि धन है, अन्नको देखकर जितना चित्त प्रसन्न और सन्तुष्ट होता है, उतना और किसी चीजसे नही, इसका ज्ञान फागुनमें पकी तथा पकनेको तैयार फसलको देखकर ही होता है। और होला ?—क्या दुनियामे इससे मधुर कोई खाद्य हो सकता है ? मटर गेहूँ, जौ या चनेके हरे दानोसमेत ठठलोको सूखी पत्तियोसे भून डालिये, फिर मिल जाये तो एक साथ पिसे नमक और हरी मिर्चके साथ, अथवा अकेले ही गर्मगर्म हाथसे मसलकर खाना शुरू कीजिये—यह नियामत है ! बहिश्तका मन्ना और देवताओंका अमृत भी इसका मुकाबिला नही कर सकते।

रास्ता खेतोमेंसे था, शायद जहाँ चल रहा था, वहाँ मुसाफिरोने जबर्दस्ती खेतके भीतरसे रास्ता बना लिया था। एक बार बन गये रास्ते—चाहे वह किसीकी वैयक्तिक सम्पत्तिपर ही क्यो न बना हो—पर जाना हर एक पान्थके लिए विहित है।

लम्बे गेहूँके पौधोकी आड़से यकबयक एक युवती आ सामने खडी हो गई। उसने कड़खती हुई आवाजमें पूछा—

'किधे जायेगा ?'

स्त्रीकी आवाज इतनी कडी हो सकती है, इसका मुझे कभी अनुमान भी न हुआ था। मालूम होता है, शब्द नही एक साथ दस-दस लाठियाँ कानोके पर्देपर पीटी जा रही है। पहिले सोचा, शायद मै उसके खेतके भीतरसे जा रहा हूँ, इसलिए नाराज हो रही है। लेकिन इसमे मेरा क्या दोष ? रास्ता पहिलेसे बना हुआ है। रोकना था, तो काँटेसे रूँध क्यों नही दिया ? और अब फसलके कटनेके वक्त रास्ता रोकनेसे ही कौनसे नये पौधे बाले लिये फूट निकलेगे ?

'कोटा जा रहा हूँ।'—कहकर बड़ी नर्मीसे मैने उस तरुणीको उत्तर दे दिया। उसका चेहरा उसके शब्दोकी तरह कर्कश न था। अठारह वर्षकी अवस्थामें तो जानकारोके कथनानुसार 'गर्दभी ह्यप्सरायते', किन्तु वहाँ तो सौन्दर्यकी काफी मात्रा थी। लहँगा, ऊपर ओढनी, बदनमे चोली थी। ओढनी शिरपरसे होते पीठपर पडी थी—चोलीसे गोल-गोल स्तन फूट निकलना चाहते थे। उसके चेहरेपर नजर रखे, उसके वाक्य तथा स्वरकी प्रतिध्वनिको अब भी सुनते तथा विचार करते मैंने कोटेका रास्ता पूछा। उस तरुणीकी आकृति, उसके चेहरेके इगितको प्रकट करनेके लिए, बल्कि अनुभव करनेके लिए मुझे हालकी 'गाथा-सप्तशती'का ध्यान आने लगा। प्राकृत तो उतना नही जानता था, किन्तु सस्कृत-छायाके साथ मैने उसे पढा था। मुझे विश्वास था, कि वहाँ शायद इस मौकेकी कोई गाथा जरूर होगी, किन्तु इस सच्चाईको सिद्ध करनेका कभी मौका नही मिला। स्वास्थ्यपूर्ण यौवनका साकार स्वरूप वह अहीर-युवती, सालोके बीतनेपर भी अधिक आकर्षक बनती गई। यह स्थान कोटासे बहुत दूर न था।

भगवती भाई कोटामें नही थे, मालूम नही माणिक उस वक्त कहाँ थे। भगवतीके पिता भी मेरे पिताकी भाँति दो भाई थे। मेरी तरह भगवतीकी माँ भी पहिले मर चुकी थी, और मेरी तरह उनकी भी एक चाची थी, जिनका बर्ताव भतीजोके साथ अच्छा होता था। भगवती उम्रमे शायद मुझसे थोडे बडे थे—बडे न भी हो, किन्तु मै उनको बड़ा भाई बनाये हुए था, आखिर हर एक आदमी नफेका ही काम करता है, भाभी पानेमे नफ़ा है, या अनुजबधू, जिसपर भूलसे नजर पड जाना भी पाप है, और कही गल्तीसे भी बदन छू गया, तो यमराज भी अपने यहाँ शरण न देगे। भगवती भाई होते तो शायद भाभी साहिबाके दर्शन किसी तरह हो भी जाते—शायद ही

कहता हूँ; क्योंकि चौवीस वरस पहिले क्या, आज भी तरुण दम्पती बुजुर्गोंके सामने कितना स्वातन्त्र्य रखते है, यह हमें मालूम है। हाँ, भाभीके हाथकी रोटियाँ खाईं, बडी मीठी थी। एक दिन मक्केकी रोटी बनी थी, मुझे गुमान भी नही हो सकता था, कि मक्केका आटा इतना बारीक और उसकी रोटी इतनी मीठी हो सकती है। भाभीकी वे रोटियाँ अब भी याद है, किन्तु पीछे यह जानकर अफ़सोस हुआ, कि घूँघटकी ओटसे चकलेपर चलनेवाले वे हाथ अब इस दुनियामे नही रहे।

होलीके दिन थे, रातको फाग गानेकी बहार थी। आर्यसमाजकी बीमारी गाँवोंमे पहुँच रही थी, और सयम-नियमके नामपर जनताके मनोरंजनके हर तरीकेपर कुठाराघात किया जा रहा था—फाग अश्लील है, इसे नही गाना चाहिए; नाचना असभ्यो और रडियोका काम है, उसके पास तक नही फटकना चाहिए। किसी समय गाँवोकी अधिकाश जातियाँ—स्त्री-पुरुष दोनों—ऐसे मौकोंपर गाते-नाचते थे, किन्तु वे बाते अब विस्मृतिके गर्भमे विलीन होती जा रही थी। तो भी कोटासे फागुनकी यह सारी बहार लुप्त नही हुई थी, मैंने क्या देखा इसकी स्मृति नही।

कोटामे आकर होले खूब खाये। भगवती भाईके बालसघातियोके साथ खेतोंमे ही अधिक समय व्यतीत करता। मुझे नही ख्याल, कि क्या मैंने अपनी उपदेशकीका जौहर दिखलानेकी वहाँ ज़रा भी कोशिश की। होलीके एक या दो दिन बाद मैंने कोटा छोडा। पैदल सिकन्दरावाद गया, एक रात गुरुकुलमें ठहरा। शर्माजी (पडित मुरारीलाल)का शायद देहान्त हो चुका था।

सिकन्दरावादमे सीधे दिल्ली गया। किला, कुतुव तथा कुछ दूसरे दर्शनीय स्थानोको देखा, और रेलसे सीधे गुडगाँवाको रवाना हुआ। वृन्दावन गुरुकुलके वार्षिकोत्सवमे सोहनाके एक सज्जन मिले थे, उन्होने अपने यहाँके गर्म पानीके चश्मो तथा पहाडोका वर्णन किया था, बस उसीके देखनेके लिए लाहौरके रेलपथको छोडकर इधर-उधर वहक रहा था। गुडगाँवासे सोहनाको पक्की सडक गई है। सोहना पहुँचनेपर अब भी खेतोमे हरे गेहूँ खडे थे। जाडा था, गर्म चश्मेमे नहानेका मजा था। मालूम नही, वृन्दावनमे मिले सज्जनसे मुलाकात हुई या नही, किन्तु ज्यादातर ठहरा एक ब्राह्मण पहलवानके यहाँ; जिनकी एक छोटीसी दूकान थी। वह दिल्ली-षड्यन्त्र केसके अभियुक्त गणेशीलाल 'खस्ता'के मामा थे, इसलिए मुझे ज्यादा सन्निकट मालूम होते थे। उनके खानोमे गाजरका अँचार और उसका रस मुझे अब भी स्मरण आता है। सोहना अच्छा कस्वा है। इसके आसपासके इलाकेमे मेव लोग बसते है, जो प्राय सवके सव मुसलमान है। कस्वेके पासके पहाडपर वादशाही वक़्तका एक

उजाड किला है, जिसके अनगढ पत्थरोंके बुर्ज और दीवारे अब भी खडी थी। पहाड छोटे-छोटे है, और उनपर जहाँ-तहाँ बस्तियाँ है। एक दिन किसीके साथ मैं एक मेव मौलवीके यहाँ गया, आसपासमे एक अच्छे ईश्वरभक्तके तौरपर उनकी बहुत ख्याति थी। बल्कि वह उतने मौलवी न थे, जितने कि एक 'भजनानन्दी सूफी।' हिन्दू भी उनका बडा आदर करते थे, और वह हिन्दुओंके पीने-खानेके लिए अलग बर्तन रखे हुए थे। इस्लाम और कुरानको पढकर मैं अभी नया-नया पहलवान बना था, और बहसका कोई मौका निकाल लेनेकी ख्वाहिश रखता था, किन्तु उक्त वृद्ध इसके लिए तैयार न थे। उन्होंने शायद इसके लिए किसी दूसरे मौलवीका नाम बतलाया। मुझे बडे सन्मानसे बैठाया, कितनी ही देर तक बाते करते रहे। बहस करनेकी साध तो मेरी नही पूरी हुई, किन्तु मैं अपने मेजबानकी भद्रतासे बहुत प्रभावित हुआ। लौटते वक्त शामको हम एक कूएँपर पहुँचे, जिसके पास एक धर्मशाला थी। सैकडो हाथकी गहराईमे पानीको नही देखा होता, तो मुझे विश्वास न होता कि एक कूएँके बनवानेमे हजारों रुपये लग सकते है।

सोहनासे फिर मैं पैदल ही गुडगावाँको लौटा। रास्तेपर किसी शिक्षित-सज्जन-का एक अच्छा खासा बँगला या मकान था। उनसे बातचीत हो गई, उन्होने आग्रह किया खाकर जानेका। आखिर दोपहरका खाना कही खाना ही था। वही पहिले-पहिल पंजाबी खाना खाया। खीर, फुलके, कोलियो (कटोरियों)मे प्याजके साथ घीमे तुडकी तरकारियाँ (भाजियाँ), और शायद दहीकी लस्सी भी। सज्जन पंजाबी न थे। गुडगाँवा आदि अम्बाला कमिश्नरीके जिले भाषाके ख्यालसे युक्तप्रान्तके साथ संबध रखते है, किन्तु पजाबप्रान्तमे रहनेसे शिक्षितोकी वेषभूषा तथा खान-पानपर पजाबका असर पडा है।

दिल्ली होता थानेसर आया। रामगोपाल भाई यही उपप्रतिनिधि-सभाकी तरफसे आर्यसमाजका प्रचार करते थे। उनसे भेट करना, थानेसर-कुरुक्षेत्रको देखना, यहाँ आनेका खास मतलब था। कुरुक्षेत्र गुरुकुलमे भी हो आया, उस वक्त पडित विष्णुदत्त उसके मुख्याधिष्ठाता थे। यद्यपि मुसाफिर विद्यालयके कर्णधारोका कागडी गुरुकुलसे झगड़ा हो गया था, और उनकी सहानुभूति महाविद्यालय ज्वालापुरके अनु-कूल तथा गुरुकुलकागडीके विरुद्ध थी; वहाँ गुरुकुलको बुद्धू पैदा करनेकी फेक्टरी बतलाया जाता था; तो भी मेरी उसके साथ सहानुभूति थी। आखिर वेद और विज्ञानकी पूर्ण शिक्षाका कोई स्थान तो होना चाहिए ?

रामगोपाल भाईके साथ शाहाबाद भी गया। लाला रामप्रसादका व्याख्यान

आगरामें सुन चुका था। महात्मा हंसराजकी क़ुर्बानीका जिस तरह चित्रण उन्होंने अपने उस व्याख्यानमें किया था, उसका मुझपर भारी प्रभाव पड़ा था। आजकल लालाजी घरपर ही थे। रामगोपालजीके साथ मैं भी उनके पास गया, किन्तु मेरे बारेमें उन्हें एक साधारण अर्धशिक्षित तरुणके सिवाय और क्या ख्याल हुआ होगा।

शाहाबादसे रामगोपाल भाईको थानेसर लौट जाना था, और मुझे जाना था लाहौर। मेरे रुपये खतम हो चुके थे, और लाहौर तकका टिकट कटाकर दो-चार रुपये दे देना, रामगोपाल भाईके लिए खुशीकी बात थी—हम लोगोंकी घनिष्ठता साधारण मित्रों जैसी नहीं थी। थानेसर आनेमें उन्होंने मेरी सम्मति ली थी। वह नौकरी करके परिवार चलाने यहाँ नहीं आये थे, बल्कि पत्नीको कुछ पढ़ा-लिखाकर मुक्त हो वैदिक मिशनरीके गम्भीर कर्तव्यको पालन करनेकी अगली तैयारीके लिए आये थे।

आगरासे रवाना होते वक्त 'मुसाफिर'के मैनेजर कुँअर बहादुरसिंहसे मैंने लाहौरके उनके दो परिचितोंके नाम पत्र लिखवा लिये थे। कुँअर बहादुरसिंह भी सैलानी तबियतके आदमी थे। सिन्धमें कितने ही समय तक रहे, फिर 'मुसाफिर'में चले आये। पिछले ही साल सुखलालके व्याख्यानोंसे उत्तेजित हो उनके ज़िले जालौन के कोंच कस्बेमें मुसलमानोंने उनपर हमला कर दिया था, जिसमें उनको बहुत चोट आई थी। उन्होंने एक चिट्ठी 'आर्यगज़ट'के सम्पादक महाशय खुशहालचन्द 'खुर्सन्द'के लिए दी थी, और दूसरी हालमें ही बुंदेलखंडकी एक राजपूत विधवासे शादी करनेवाले एक तरुण-पंजाबीके लिए, जो किसी दफ्तरमें शार्टहैंड-राइटर और टाइपिस्ट थे। स्टेशनसे उतरकर पहिले अनारकली आर्यसमाजमें गया, शायद उसी दिन 'खुर्सन्द' साहेबसे मुलाकात हो गई, किन्तु पहिले चन्द दिनों मैं टाइपिस्ट महाशयके यहाँ मोरीदर्वाज़ेके भीतरके एक अँधेरे घरमें रहा। वहाँकी एक घटना याद है। घरकी मालकिन बुंदेलखंडी महिलाको पंजाबमें आये अभी पाँच-छै ही महीने हुए थे; किन्तु इतने हीमें, मालूम होता था, वह अपनी भाषाके कितने ही शब्दोंके प्रयोगको छोड़ चुकी थीं। उन्होंने कहा—'दो पैसेकी पकौड़ी लेते आवें, बताऊँकी।'

मैं वाक्यके अन्तिम अंशको सुननेकी प्रतीक्षा करने लगा। उन्होंने फिर कहा—

'हाँ, जाइए न, दो पैसेकी पकौड़ी लाइए दर्वाज़ेके बाहरसे, बताऊँकी।'

कहीं बेवकूफ न समझा जाने लगूँ, इसलिए मैंने और इन्तिज़ार करना पसन्द नहीं किया, और 'अच्छा' कह मैं वहाँसे चला गया। सोचा श्रीमतीकी फर्माइश पकौड़ीकी है, 'बताऊँकी' ऐसे ही दो बार मुँहसे निकल आया, वाक्य तो उतने हीसे पूरा हो

जाता है। मैंने प्याजकी पकौड़ियाँ खरीदी, और लाकर उनके सामने रखा। उन्होने आश्चर्यके साथ कहा—'यह क्या ? मैंने तो बताऊँकी पकौड़ियाँ मँगाई थी।'

'बताऊँ क्या बला है ?'

'अरे बैंगन, बैंगन।'

मनमें कहा—'देशी बुढिया मराठी बोल' इसीको कहते है। लेकिन उनकी अपेक्षा मै अपनेपर ज्यादा गुस्सा हुआ। सन्देह था, तो सकोच छोडकर पूछ क्यो नही लिया। मैंने अफसोस ज़ाहिर करते हुए कहा—

'माफ कीजिए, बताऊँका मतलब मुझे समझमे नही आया।'

'नही कोई बात नही, मुझसे ही ग़लती हुई।'

## ४

# आर्यसमाजके गढ़ लाहौरमें (१९१६)

महाशय खुशहालचन्द 'खुर्सन्द'का उस वक्तका तरुण-चेहरा मुझे याद है। वह सचमुच 'खुर्सन्द' (प्रसन्न) थे। कभी मुहर्रमी सूरत तो उनकी मैंने देखी नही। हँसीकी मृदुरेखा तो चौबीसो घटे मानो उनके ओठोपर नाचती रहती थी। 'नमस्ते जी महाराज' कहनेका उनका ढग, तथा 'खुर्सन्द तो है ?' कहकर खैरियत पूछना एक बिल्कुल खुलेदिल दोस्तकी अपनी निराली अदाका सबूत देते थे। उस वक्त 'आर्यगजट'का आफिस आर्यसमाज-मन्दिरके हालकी बाई कोठरीमे था, वहाँ 'खुर्सन्द'-जी रहते थे। मै भी जब तक वैदिक-आश्रममे भरती नही हो गया, तब तक आर्य-समाजमें ही ऊपरवाले कोठेपर रहता था। 'खुर्सन्द'जी ही लाहौरमे मेरे प्रथम परिचित व्यक्ति बने। मै बेयार-व-मददगार उस बडे शहरमें आया था। इसमे शक नही, ऐसी यात्राये मै कई सालोसे कर रहा था, इसलिए मेरे पास हिम्मत काफी थी, किन्तु, 'खुर्सन्द'जीने जिस तरह शुरू हीसे सहायता और प्रोत्साहन दिया, उससे लाहौर परदेश नही रह गया। 'पैसा अखबार'के सामनेवाली पाँतीमे एक छोटासा वैष्णव-होटल था, जिसमे वह खाने जाया करते थे। वह मुझे, जरा भी संकोचका अवसर दिये, दबोचकर वही खाना खिलाने ले गये। अपने घीके डब्बेकी चाभी दुहरी करके एक मेरे हवाले की—'हम लोग साथ न आ सकें, तो यह डब्बा है, घी निकालकर खाना

खा जाया कीजिये ।' स्मरण रखना चाहिए उस वक्तके 'बुलंन्द' आजके 'रोजाना मिलाप'के स्वामी और सम्पादक नही थे, बल्कि उन्हे प्रादेशिक-प्रतिनिधि-सभाके 'आर्यगजट'से निर्वाह मात्रके लिए कुछ रुपये मिला करते थे ।

सप्ताहके भीतर ही मै डी० ए० वी० कालेजके संस्कृत-विभागमे भरती हो गया । विशारद श्रेणीमे नाम लिखा गया । पंडित भक्तराम वेदतीर्थ, पंडित नृसिंह-देव शास्त्री हमारे अध्यापक थे । आर्यसमाज भवनमे मै ज्यादा दिनो तक नही रह सका, और थोड़ी ही देर बाद एक छात्रवृत्तिके साथ कालेजके छात्रावास 'वैदिक-आश्रम'-मे दाखिल कर लिया गया । उसके आस ही पास डी० ए० वी० कालेजके होस्टलमें रसोइयोको पढ़ानेका काम मिल गया । दोपहरको एक घंटा जाना पड़ता और दस या बारह रुपये मिल जाते, जो खानेके ऊपरके खर्चेके लिए जरूरतसे ज्यादा थे ।

आगरा छोड़ते वक्त यह नही मालूम था, कि बलदेव चौबे भी वैराग्यके फंदेमे फँस लाहौर पहुँच गये है । हाँ, किन्तु उनका वैराग्य सिर्फ़ इसी बातका था, कि आत्मिक उन्नति—तत्त्वज्ञान—के लिए संस्कृत पढ़नेकी जरूरत है, अंग्रेजी बिल्कुल बनियापनकी विद्या है । वह अनारकलीमे वंशीधरके मन्दिरमे रहते, किसी छेत्रमे खाना खाते और लघुकौमुदी पढ़ते थे । मैंने आते ही उनके निर्णयपर चोट पहुँचानी शुरू की—'संस्कृत पढ़िये, अच्छा है, किन्तु मेट्रिकमे नाम भी लिखवा लीजिये ।' नये वर्षसे वह डी० ए० वी० हाई स्कूलके दसवे दर्जेमे दाखिल हो गये । वंशीधरके मन्दिरमे बल-देवजीके साथ एक दूसरे तरुण मिस्टर कनकदंडी वेंकट सोमयाजुलू भी रहते थे, हम लोग उन्हे मिस्टर कहा करते । वे भी हमारे लाहौरके घनिष्ट मित्रोंमे थे । उन दोनों मित्रोके कारण अक्सर मै वंशीधरके मन्दिरमे जाया करता । उस वक्त मन्दिरके मालिकोने उसे बिल्कुल व्यवसायका जरिया नही बनाया था । वंशीधर महाराजा रणजीतसिंहके पुरोहित-वंशी थे । मन्दिरके साथ सड़कपर कुछ दूकाने थी, जिनका अच्छा किराया आता था । भीतरके दो-तीन कमरे कोठरियाँ और बरांडे संस्कृत पाठशाला तथा विद्यार्थियोके लिए थे । बलदेव और सोमयाजुलू एक बरांडेमे रहते, सामान रखनेके लिए शायद दीवारकी दो आलमारियाँ थीं । गर्मीके दिनोमें साफ चिकने संगमर्मरके फर्शपर बैठने-लेटनेमें अच्छा लगता था । वही हम लोगोका घंटों अपने भविष्य, देशके भविष्य और आर्यसमाजके कामपर बाते हुआ करती । इन बातोमे एक चौथे दीवाने मोहनलालजी शामिल हो जाया करते थे । इन्ही बातोंके सिलसिलेमे तै हुआ कि, बलदेवजी बहिन महादेवीको लाकर कानपुरमे किसी शिक्षण-संस्थामे दाखिल कर दे । यही पहिले-पहिल पंडित सन्तरामसे मुलाकात हुई, जिसने

आगे चिरस्थायी मित्रताका रूप धारण किया। पीछे भाई महेशप्रसादजी और रामगोपालजीके आ जानेपर तो वंशीधरका मन्दिर हम सभोका सम्मिलन-मन्दिर हो गया।

मुसाफिर विद्यालयमे प्रवेश, भाई महेशप्रसादकी सगति और महायुद्धने मिलकर मेरे सामने एक विशाल जगत् रख दिया था। आगरामे रहते ही वक्त कानपुरसे श्री गणेशशकर विद्यार्थीने 'प्रताप' निकाला था, अथवा कमसे कम मेरा उससे परिचय उसी वक्त हुआ। उसके बाद तो अक्सर मैं उसे पढा करता था। यहाँ लाहौरसे उर्दूके कई दैनिकपत्र 'देश', 'बुलेटिन', 'पैसा अखबार' आदि तथा 'ट्रिब्यून' अग्रेजी निकलते थे। मै अब अखबारोंका आदी हो गया था। अच्छी तरह न समझने पर भी 'लीडर'पर जो सालभर आगरेमे भिड़ा रहा, उसका फल अब मिलने लगा था, और अग्रेजी पत्रोंसे भी मुझे समाचारोंके जाननेका सुभीता था। अखबारोको इत्मी-नानसे पढनेके लिए प्राय रोज ही मै 'गुरुदत्तभवन' पहुँचता। हिन्दी-उर्दूकी राज-नीतिक पुस्तके शायद पढ चुका था, इसीलिए इस समय उनके पढनेमे समय नही जाता था, किन्तु साथ ही अब डी० ए० वी० कॉलेज और कॉलेज-आर्यसमाजके मनस्वी विद्वानो पंडित भगवद्दत्त और पंडित रामगोपाल शास्त्रीके सम्पर्कमे आनेका मौका मिला। खासकर, पडित भगवद्दत्तकी लगन और अन्वेषण-प्रेमने मेरे हृदयमे उसकी ओर एक प्रेरणा पैदा की, यद्यपि अन्वेषणके तरीके आदिके सम्बन्धमे उनसे सीखनेका मुझे मौका नही मिला। पंडित ऋषिराम और प्रोफेसर रामदेव एम० ए०, उस समय बी० ए०के विद्यार्थी थे, और वैदिकसाहित्य तथा आर्यसमाजके कामोंमे खास दिलचस्पी रखते थे।

आचारियोंके अति-सकीर्ण तथा वैरागियोके अपेक्षाकृत उदार तो भी सकीर्ण वायु-मंडलसे निकलकर आर्यसमाजमे आनेपर मुझे मानसिक विचार-स्वातन्त्र्यका मूल्य मालूम होने लगा। मुसाफिर विद्यालयमे 'करोडो-वर्षो'से स्थापित आचार, धर्म-सम्बन्धी परम्परापर भी हम खुली तौरसे नुकताचीनी कर सकते थे। 'यस्तर्केणा-नुसंधत्ते स धर्म वेद नेतर'के महामत्रको सुनकर मेरा रोआँ-रोआँ आर्यसमाज तथा स्वामी दयानन्दके प्रति कृतज्ञ था। अब भी सीधे वेदके पढ़ने और उसपर विचार करन-का मौका नही मिला था, तो भी जो कुछ जानता या सुन चुका था, उसपर मुझे विश्वास था—आर्यसमाजके सिद्धान्त ध्रुवसत्य है। मै निस्सन्दिग्ध रूपसे जानता था, कि मुझे अपना जीवन आर्यसमाजके प्रचारमे समर्पित करना है। एक दिन मैंने स्वामी दयानन्दके प्रति अपने उद्गारको प्रकट करते हुए कह दिया था—'मै दयानन्दके

एक-एक वाक्यको वेदवाक्य मानता हूँ।' पंडित भगवद्दत्तने सहमत होते भी कहा—'इतनी जल्दी नहीं कीजिए। पहले पढ़कर देखिए तो।'

हमारे संस्कृत-विभागके विद्यार्थियोंमे पडित ईशानन्द और पंडित तुलसीराम भी थे। तुलसीरामके अध्यवसायको मैं बहुत सराहनीय समझता था। किसी वक्त मज़दूरी करने वह पजाबसे पूर्वी अफ़्रीकाके केन्या प्रदेशमे पहुँचे थे। शायद मिस्त्रीका काम करते थे। वहीं आर्यसमाजके सम्पर्कमें आये। पढ़नेकी इच्छा बलवती हुई। काम छोडकर लाहौर पहुँचे, और नीचेसे शुरू करके आज शास्त्रि-श्रेणीके अच्छे विद्यार्थियोमे थे। ईशानन्दके पिता गुरुकुल विरालसीके प्रधान स्तम्भ थे। ईशानन्दजी पहिले वही पढे। काशीके व्याकरणाचार्यके एक खंड भी वह पास थे, और अब शास्त्री परीक्षा देनेवाले थे। मेरी अपनी विशारद श्रेणीमे रामप्रताप, देवदत्त-द्वय, यशपाल तथा पंडित भक्तरामके छोटे लडके थे। रामप्रताप पढ़नेमें भी अच्छे, तथा उन मजाकपसन्द-लड़कोमें थे, जो अपनी हँसीको ओठोकी सीवनमे छिपा सकते थे। उनके मज़ाकका निशाना करारा लगता था, किन्तु पुरदर्द चोट नही पहुँचाता था। पडित भक्तरामजी बूढे आदमी थे। आँखोसे उन्हें बहुत कम सूझता था, और पढ़नेके लिए पुस्तकको आँखके बिल्कुल पास ले जाना पड़ता था। सस्कृतके पंडित, उसपर बूढ़े, बातके फेरमे जल्दी पड जानेवाले वैसे ही होते हैं, किन्तु यहाँ जिस दिन हम लोगों-का पढनेका मन नही होता, तो रामप्रताप कोई बात चला देते, पंडितजी बहक जाते और दूसरी बातोमे लग जाते। हमारा घटा बस उसमे खतम हो जाता। कभी-कभी पडितजीको हम लोगोकी चालाकी मालूम हो जाती, फिर उनकी टिप्पणी शब्दोंमें नही बल्कि पतली छँटी मूँछोंके ऊपरी खिचाव और उससे भी ज्यादा गालोपर छलकती हँसीके रूपमें प्रकट होती थी। यशपाल उन विद्यार्थियोमे थे, जो भूल-भटककर विद्या-कुंजमें चले आते है। उनमें प्रतिभाका अभाव नही था, किन्तु उनका मन पढ़नेमें बिल्कुल नही लगता था। वह एक रँगीली तबियतके ऐसे तरुण थे, जिनकी धारणा होती है, जीवनको बस हँसी-खुशीमे बिता देना चाहिए। ऐसे आदमियोंको अपनी एक तरफा धारणापर ज़बर्दस्त थपेड़ा लगनेका डर रहता है, और उस अवस्थामें वे अपनी किश्तीका बैलंस ठीक नही कर पाते। यशपालको एक बार कोई ऐसी ठेस लगी, कि उसने अफीम खाली थी, खैर, जान बच गई। कोई अनिष्ट होनेपर हम लोगोको साधारण आघात नही लगता। यशपाल अपने सहपाठियोंमें हर-दिल-अज़ीज़ तरुण था, वह हमारे मज्लिसकी ज़ीनत था। उसके भाई श्री रामदासजी होशि-यारपुर, डी० ए० वी० हाई स्कूलके हेडमास्टर थे, और उनकी बड़ी इच्छा थी, कि

यशपाल अच्छा संस्कृत पढ़ जाये। यशपाल महीने भरके लिए मिले खर्चको हफ्तेसे ज्यादा तक चलानेको पाप समझता था।

देवदत्त दो थे—गोरे, छोटे। गोरे देवदत्त पतले छरहरे बदनके थे, उनका रंग यदि पश्चिमी युरोपियनकी तरह नही तो पूर्वी युरोपियन जैसा था। वह महात्मा हंसराजके जन्मस्थान (वेजवाड़ा)के निवासी थे। पुरानी स्मृतियोमे यह दोष है, कि पहिलेकी पडी मुहरपर नई मुहर पड जाने या फोटो फिल्मके दुहरा एक्सपोजरकी तरह उनका अंकन अस्पष्ट हो जाता है, जब उनपर कोई नया ठप्पा लगता है। देवदत्तसे कई वर्षो पीछे भी मुझे मिलनेका मौका मिला, जब कि वह शास्त्री करके बी० ए०मे पढ रहे थे, इसलिए उन आरम्भिक दिनोकी बातोकी स्मृति क्षीण हो गई। वह ऐसे तरुणोमे थे, जो किसी मज्लिसमे प्रधान पात्रोका पार्ट तो नही अदा करते, किन्तु जिनके बिना मज्लिस सफल भी नही हो सकती। छोटे देवदत्तके कानोमे सोनेका कुंडल था। हमारी श्रेणीमे वह और रामप्रताप कुंडल-धारी थे। उनका 'न ऊधोसे लेना न माधोको देना था', तो भी सहपाठियोकी मज्लिससे बहिष्कृत होने लायक नही थे। शिवलालजी भी हमारे एक सहपाठी तथा गुडगाँव (हरियाना) जिलेके रहनेवाले थे। वैसे हमारे सहपाठियोंमे मेरे सिवा और भी ठेठ गाँवके पैदायशी विद्यार्थी रहे होगे, किन्तु हम सभी शहरी हो गये थे, शिवलाल ही ऐसे व्यक्ति थे, जिसमे कच्चे नौतोड खेतोकी गन्ध आती थी। वह दालको दाळ, कालाको काळा बोला करते।

अभी संस्कृत-विभागकी पढाई डी० ए० वी० कॉलेज-हालके ऊपरी कोठेपर हुआ करती थी। हम लोग वैदिक-आश्रम जाते वक्त या तो देवसमाजकी तरफसे जाते, या सेक्रेटरियटके भीतरसे। वैदिक-आश्रमके फाटकसे कुछ कदमपर ही अनारकलीकी कब्र थी। उसके इकहरे ईंट चूनेके गुम्बदको हम रोज़ देखते थे, और शायद यह भी सुना था, कि यही अपने समयकी एक अद्वितीय सुन्दरीका बलात् जीवनसे वंचित शरीर सो रहा है; उसका क़सूर यही था, कि अकबरका युवराज सलीम अपनी आँखोंसे उसे निकाल नही सकता था। तो भी अनारकलीकी समाधिने हमारे तरुण हृदयोमे कोई आकर्षण नही पैदा किया। कारण सिर्फ रसज्ञतासे अनभिज्ञ होना ही नही हो सकता, बल्कि उस समाधिका सर्कारी दफ़्तरके एक अंगके रूपमे परिणत होना भी हो सकता है। इसी समाधिके पीछे दोपहरको सेक्रेटरियटके कितने ही छोटे-छोटे नौकर नमाज़ पढने आया करते थे।

शार्टकटसे चलनेपर हम देवसमाजके दूर तक फैले घरोसे होकर गुज़रते थे। शामके वक्त उधरसे जानेपर कितनी ही बार देवगुरु भगवान् (श्री सत्यानन्द अग्नि-

होत्री)को हम ताँगेपर टहलनेके लिए जाते देखते कभी-कभी उनके साथ उनकी पत्नी भी होती, दोनोकी उम्रोमे काफी अन्तर था। देवसमाज-सम्बन्धी दो-चार पुस्तके भी मैने पढी थी, उनके साप्ताहिक 'जीवनतत्'को कभी-कभी देखनेका भी मौका मिला था; किन्तु देवसमाज और देवगुरु मेरे लिए मुअम्मा ही बने रहे। सुनता था, देवसमाज ईश्वरको नही मानता, इल्हामको नही मानता, विज्ञानको मानता है, विकासवादको मानता है, योगको नही मानता, ध्यानको नही मानता, देवगुरुको विकासकी सर्वोच्च विभूति मानता है; आचार-सम्बन्धी भूलोके लिए अपराध स्वीकार करनेपर जोर देता है—इत्यादि। ये सब बाते मुझे परस्पर-विरोधी ही नही मालूम होती थी, बल्कि बाज़ वक्त मुझे मनुष्यकी बुद्धिपर तरस आने लगता था। मुझे वह कुछ व्यक्तियोके मौजसे जीवन-निर्वाहकी खुली दूकान मालूम होती थी।

रविवारके दिन हम लोग जलपान करके अनारकली समाज पहुँचते, और हवनमें खासतौरसे हाथ बँटाते थे। हर सप्ताह किसी न किसी प्रोफ़ेसर, पडित या प्रभावशाली वक्ताका व्याख्यान होता। महात्मा हसराजके उपदेश जोशीले न होते थे, किन्तु उनके सीधे-सादे शब्दोके पीछे पचीसो वर्षोके अद्‌भुत त्याग और तपस्याकी जीवनी थी, जिसके कारण वे सीधे हमारे अन्तस्तलमे पहुँच जाते थे। प्रोफेसर दीवानचन्द कभी-कभी पौर्वात्य पाश्चात्य दर्शनोकी तुलना करते, जिनसे हमारी जानकारी बढती। पडित राजाराम शास्त्रीके व्याख्यानोमे वेद और उपनिषद्के वाक्य बहुत होते, किन्तु उसका मेरे जैसोपर कोई असर नही होता, जिन्हे मालूम था, कि उन्होने वृद्धावस्थामे अल्पवयस्का कुमारी बालिकासे शादी की है। जात-पाँतके ख़िलाफ जो मनोभाव मुसाफिर विद्यालयमे मेरे हृदयमे पैदा हुआ, वह स्थायी हो गया था। पडित राजारामके विचार इस विषयमें बहुत पिछडे थे, यह मुझे मालूम था। पडित भक्तरामजी तो कभी-कभी चिढ जाते, जब मै जात-पाँतिका बुरी तरहसे खडन करने लगता। वे कह उठते—'कुल-कलक',—वह जानते थे मै ब्राह्मणवशका हूँ।

आरम्भिक दिनोमे जिनके उपदेशोकी मैं बहुत सराहना करता, उनमे स्वामी सत्यानन्दजी भी थे। आगरेसे एक बार वह मुसाफिर विद्यालयमे भी आये थे। लाहौर जानेपर एक दिन मै उनसे मिलने 'अमृतधारा' गया था, राय ठाकुरदत्त धवन उनके पास बैठे थे। गुरुकुलपार्टी-आर्यसमाजके दो पक्षोमे उस वक्त ज़ोरका वैमनस्य चल रहा था, जिसमे अल्पमत पक्षके नेता राय ठाकुरदत्त थे। मुझे याद है, किसी प्रकरणमे उन्होने कहा था—

'बदनाम अगर होगे तो क्या नाम न होगा।'

स्वामीजीने पढने-लिखनेके बारेमे पूछा, चलते वक्त मेरे ना करनेपर भी उन्होने कुछ रुपये देते हुए कहा—'विद्यार्थियोको जरूरत रहती है।'

लाहौरकी गर्मी आगरेसे बढ़-चढकर ही थी, किन्तु अभी तक गर्मीमे ठडे रहनेवाले मुल्कोकी हवा मुझे नही लगी थी, इसलिए वह उतनी असह्य नही मालूम होती थी। प्यास लगती थी, किन्तु बर्फ-बताशा डालकर बनी दहीकी लस्सी (ल्हस्सी) दुनियाका बेहतर पेय वहाँ मौजूद था, और उसके खरीदनेके लिए मेरे पास पैसे भी थे। गन्नेकी गडेरियाँ, नमक डाले छिले खीरे, फाल्सा और जामुन गर्मीकी सख्तीको बहुत नरम कर देते थे। कितनी ही बार हम अपनी किताबोको लेकर नहरोसे सीराब हरे-भरे बागोंमे चले जाते थे। सबेरेके वक्त कितनी ही बार बर्गदके नीचे अपने अखाड़ेमे गामाको लड़ते देखा करते थे।

पजाबके अधिकाश नर-नारियोके लम्बे-चौडे शरीरको देखकर मुझे बडी खुशी हुई। मेरे पिता और नानाके घरोमे नाटे कदके आदमियोका अस्तित्व न था, शायद इसलिए भी यह पक्षपात दिलमे पैदा हुआ हो। पुरुषोकी शिरके पट्टेदार बाल, और उसपर मेंहदी रंगी कटी-छटी दाढी नई चीज होते भी आँखोको खटकती न थी। किन्तु तरुण स्त्रियोकी अमित घिरावेवाली जर्क-बर्क सल्वार, ओढनी और शिरके पिछले भागकी नुकीली खोपको मै युक्तप्रान्तके भद्दे ओढनी-घाँघरेका विस्तार समझता था। खासकर, रस्सीकी तरह बट-बटकर बालोका गूँथना तो मै, बालिकाओके लिए सासत समझता था। दूध लेकर आनेवाले लम्बी तहमद, बडी पगडी बाँधे चौडी छातीके गूजरोसे भी बढकर मै पुरुषो हीकी तरह चौडी बाँहके कुर्तों-तहमदोंको पहिने कद्दावर गूजरिनोको देखकर प्रसन्न होता और कहा करता—ऐसे ही स्त्री-पुरुषोको हिन्दुस्तानमे बच्चे पैदा करनेका अधिकार होना चाहिए।

मईका महीना था, अभिलाष लाहौर आये। मुसाफिर-परिवारके भाइयोको एक दूसरेसे मिलनेपर असाधारण प्रसन्नताके बहुतसे कारण थे। और फिर अभिलाषके पास उड़नेके पर मुझे साफ़ दीखते थे। मै चाहता था कि वह खूब उडे, हाँ, अपनी दिशामें; मेरी उडनेकी एक खास दिशा थी, मैं नही चाहता था कि सभी उसी दिशामे उड़ें—साहसको मैं जीवनका सार समझता था। अभिलाषका कल-पुर्जोमें बहुत मन लगता था। मुझे बडी प्रसन्नता हुई, जब उसने बतलाया कि मै मोटर ड्राइवरी सीखने आया हूँ। मोटर ड्राइवरी कोई बड़ी विद्या न थी, किन्तु उसे मैं आगे बढ़नेकी सीढ़ी समझता था। उस वक्त अभी मोटरे और मोटर-ड्राइवर वैसे कम भी थे।

जूनका, शायद, अन्त आ रहा था, जब कालेज गर्मीकी लम्बी छुट्टियोंके लिए बन्द होने लगा। छुट्टियोमें लाहौरकी गर्मीमें सती होना मैंने पसन्द न किया। किसी साथीने काँगड़ा चलनेको कहा, किसीने पंजाबके किसी गाँवमें। ईशानन्दजीका प्रस्ताव हुआ बिरालसी चलनेका। मुझको उनका प्रस्ताव सबसे अच्छा जँचा, वहाँ मैं आमोंका आनन्द ले सकता और पढाईको भी जारी रख सकता था।

## ५

# रास्तेकी भूलभुलैयाँ

ईशानन्द और मैं जब सहारनपुरमें उतरे, तो वहाँ एकाध फुहारे पड चुके थे, और सहारनपुरमें पके आम आ गये थे। सहारनपुरमें एकाध दिन ठहरनेकी बात याद नहीं, यह भी याद नहीं कि बिरालसी हम किस स्टेशनसे उतरकर गये। शायद थानाभवन कस्वा हमारे रास्तेमें पडा था, पंडित भोजदत्त यहीं पैदा हुए थे। ईशानन्दजीके पिताका नाम याद नहीं। और ठाकुरोसे उनकी एक विशेषता यह थी, कि उनकी आँखें बिल्कुल मंगोलो-जैसी थी, वैसी ही जैसी कि ईशानन्दकी थी। लम्बे-चौडे कद्दावर जवान थे। वह ऊँचे तबकेके खेतिहर-जमीदार थे। काफी खेती होती थी, गायो-भैंसोका दूध इफ़ात था, बडी जातकी घोडी घरमें पोसी हुई थी, जिसके ऊपर रिसालेका नम्बर लगा हुआ था, और वह अच्छे डील-डौलके बछड़े पैदा करती थी। उनके पास एक अच्छा आमोका बाग था—शायद अनार-नास्पातीका भी—किन्तु उस वक्त मुझे आमोसे वास्ता था। आमोकी फसल तक हमारी पढाई-लिखाई ताक़पर ही रखी रही। बागमें चले जाते, पककर गिरे हुए फलोके ढेरसे चुनकर कुछ दर्जन आम पानी भरी बाल्टीमें डाल दिये जाते और मैं, ईशानन्द तथा एक-दो नये बने तरुण साथी भी चारो ओर घेरकर बैठ जाते. किसीको यह पर्वाह नहीं थी कि घरमें हाथ जलाकर रोटियाँ भी पकाई जा रही है। ठाकुर साहेब जोर देते—आम खाकर दूध जरूर पीना चाहिए, फिर एक गिलास दूध किसी तरह गलेसे नीचे उतार लेता। रोटी खाना तो सिर्फ दिखानेके लिए था। ईशानन्दके घरमें मैं उनके परिवारके एक व्यक्तिकी भाँति था। उनके ही साथ चौकेमें खाने जाता। लडकियोका पायजामा पहनना देखकर, मैंने समझा, युक्तप्रान्तके हिन्दुओंमें भी यह प्रथा सिर्फ मुसलमानों तक ही

सीमित नही है। ईशानन्दके कुटुम्बियोमे कुछ शिक्षा भी थी। ठाकुर रघुवीरसिंह (?) ग्रेजुएट थे और सर्कारी नौकरीकी तलाशमे थे। उनके छोटे भाई एफ० एस्-सी० करके लखनऊमे डाक्टरी पढ रहे थे, इस प्रकार गाँवमे रहते भी शिक्षितोकी सगतिसे वचित होनेकी सम्भावना नही थी।

बिरालसी गुरुकुल, बिरालसी गाँवसे थोडा हटकर था। स्वामी दर्शनानन्दको बिना नीवकी सस्थाये खोल डालनेका मर्ज़ था। बिरालसी सिकन्दराबाद, ज्वालापुर, चोयाभक्ताँ (रावलपिंडी)के गुरुकुलोको—'मूँड दिया माँग खाओ'के सूत्रानुसार वह खोलते गये। एक बार सस्था खुल जानेपर आसपासके लोगोको लाज-शर्म होती है—शायद इस तत्त्वको वह जानते थे; इसी ख्यालसे बिरालसीका गुरुकुल भी लष्टम्-पष्टम् चल रहा था। विद्यार्थियोकी सख्या चौदह-पद्रह थी। एक अध्यापक थे, जो भाषा टीकाके सहारे अष्टाध्यायी पढा दिया करते थे। एक रसोइया थे, जिन्हें रोज शामको फिक्र पडती, कि आज तो किसी तरह एक शाम सूखी-पाखी रोटी मिल गई, किन्तु कल क्या होगा। आमोंकी फसल खतम होने—या उनके आकर्षणके कम होने तथा पढनेपर ध्यान जानेसे मै गुरुकुलमें चला गया। गुरुकुलके सीधे-सादे मकान उतने आदमियोंके रहने लायक काफी थे। उसके पास इतने खेत थे, कि कूएँ के इन्ति-'ज़ामके साथ यदि ठीकसे खेती की जाती, तो गुरुकुलको अनाजके लिए किसीके सामने हाथ पसारना न पडता। पासमे बहुतसा गैर आबाद जगल था जिसमेसे भी कुछ गुरुकुलके लिए मिल सकता था। दो-चार गाये थी, किन्तु शायद 'दुग्धदोहा'। मैंने एक दिन गाय-बैलोके बडे झुडको जगलमे दौडते देखा, एक बार वह झुड गुरु-कुलके पास भी आया। 'जगली गाय' सुनकर मेरी जिज्ञासा और बढ़ी, इसपर बतलाया—एक-दो गाये जगलमे छूट गईं, उन्हीकी सन्तान बढकर इतनी हो गई हैं। वह बडी स्वस्थ, स्वच्छ, और दर्शनीय थी।

धार्मिक बातोमे 'विचार-स्वातन्त्र्य'के अभिमानके साथ आर्यसामाजिक सकीर्णता होते हुए भी सामाजिक सुधारोमे मेरे विचार सुधारकी सीमासे बाहर जा रहे थे। मै उन विचारोंको बडी निर्भीकतासे प्रकट करता था। धीरे-धीरे मेरे विचारोका असर अध्यापक और क्लर्क—रसोइयाँ भी थे—पर भी पडने लगा। वह भी स्वतन्त्रतापूर्वक प्रश्नोत्तर करने लगे। मै उनका आदर करता था, क्योकि तन्ख्वाहका तो सवाल ही क्या वहाँ तो पेटके लाले पडनेपर भी वह गुरुकुलमे डँटे हुए थे। वह भी मेरी बातोमे कुछ विशेषता जरूर पाते होगे, तभी तो इतने प्रभावित थे। बात करनेमे इतना जरूर मुझे ख्याल रहता कि वह दूसरेको चिढाने, नीचा दिखानेके लिए न हो।

विचार परिवर्तनके लिए होती रोज-रोजकी बैठकोका परिशेष एक दिन अन्तस्तलकी घुडीके खोलनेके रूपमे हुआ ।

पडितजीने कहा—क्या करे, समाज बहुत अक्षन्तव्य अपराधो महापापोका कारण है । एक आदमी उसकी अपारशक्तिका सामना कैसे करे ? मेरी तरुणी विधवा पुत्री है । मै अपनेमे जानता हूँ, कि उस अवस्थामे उससे ब्रह्मचर्य पालन करनेकी आशा रखना जबर्दस्त आत्मवचना है, किन्तु कुछ आर्यसामाजिक विचारोको रखते भी बिरादरी तोडनेकी मेरी हिम्मत नही, और पुत्रीका विधवा-विवाह नही कर सकता। नतीजा ?—कुछ न पूछिये, पिछले चार-पाँच वर्षोमे तीन-चार गर्भ गिराये जा चुके है । मेरी पुत्री है, कामवासना स्वाभाविक चीज है, उसके लिए उसे प्राण-दड देनेकी हिम्मत पिता होनेके कारण, हृदय रखनेके कारण मुझमे नही है । सोचता हूँ, सर्व-शक्तिमान् समाज जब मुझे ऐसा करानेके लिए मजबूर करता है, तो न्यायकर्त्ता भगवान् इस पापको भी उसीके खातेमे लिखेगा ।

रसोइया-क्लर्क ब्राह्मणने अपनी बात शुरू की—हम तीन भाई है । हम लोग जवान थे, जब कि बूढे पिता एक छोटीसी कन्यासे ब्याह करनेपर उतारू हुए । लोगोने मना किया, हमने भी मना किया, जिसका अर्थ पिताजीने हमारी मशासे बिल्कुल उल्टा लगाया । आखिर किसीकी एक भी न मानकर उन्होने उस अबोध बालिकासे ब्याह कर ही डाला । वह जवानीमे अभी अच्छी तरह पैर भी रखने न पाई थी, कि पिता परलोक सिधारे । मेरी सौतेली माँ जवानीका हिसाब काट देनेपर भी सुन्दरी है । कुछ वर्षो बाद मालूम हुआ, कि पड़ोसके आदमीसे उनकी घनिष्ठता हो गई है । यही नही डर लगने लगा, कि कही वह निकल न भागे । निकल भागनेपर समाज यह नही कहता, 'चलो सस्ते अगको काट फेका अच्छा हुआ', बल्कि वह हमारे परिवारको हमेशाकेलिए लाछित करता—'इस घरकी औरत निकल गई है ।' आपसे छिपानेकी जरूरत क्या ? अन्तमे मैने सोचा—इसकी एक ही दवा है, जिसके लिये सौतेली माँको भागकर कुलमे कलक लगाना पडेगा, उस कामनाकी पूर्ति मै ही क्यो न करूँ ! दो गर्भ गिराये जा चुके है । बतलाइए, मै क्या करूँ ?

पडितजीको तो मैने सलाह दी थी, यदि अपने जिलेमे हिम्मत नही होती, तो दूरके किसी जिलेमे लडकीका ब्याह कर आये । दूसरे सज्जनकी समस्याका क्या हल मैने पेश किया, यह मुझे याद नही ।

गुरुकुलके पास जगल था, और झूठ या साँच लोग कह रहे थे, कि इसमे कभी-कभी बघेरा आ जाता है । मुजफ्फरनगरके एक स्थानमे भेडियोके प्रकोपसे गाँव

उजड़ जानेकी बात भी बतला रहे थे। कहते थे शाम होते ही उनका झुंड गाँवमे आ जाता। घरमे बन्द हो जानेपर किवाड़के चौखटोको खोदकर वे भीतर घुस आते थे।

बरसातके महीने दिनपर दिन खतम होने लगे। अब हमे अपनी पढाईका ख्याल आने लगा। ईशानन्दजीसे सलाह हुई, कि मुजफ्फरनगर चला जावे, और वही पडित परमानन्द(?)से पढा जाये।

मुजफ्फरनगरमे हम लोग आर्यसमाज-मन्दिरमे ठहरे। वह शहरसे बाहर किसी बाग जैसे स्थानमे था। शामको पडितजीके यहाँ हम पढने जाते। आर्यसमाज-मन्दिरमे एक और तरुण प्रज्ञाचक्षु रहते थे। वह पहिले ईसाई थे, हालमे शुद्ध करके उन्हे आर्य बनाया गया था। अजमेर और कहाँ-कहाँ रह आये थे। अन्धोके लिए लिखी पुस्तके पढ लेते थे।

मुजफ्फरनगरमे रहते कोई विशेष घटना नही घटी। गड्डी (गाडी), रोट्टी (रोटी), जाग्गी (जायेगी)मे हम बिरालसीमे काफी परिचित हो गये थे, यहाँके शिक्षित लोग ऐसे उच्चारणोसे परहेज करते थे। तो भी मुझे यहाँके दीहातकी यह हिन्दी ज्यादा सजीव मालूम होती थी।

मुजफ्फरनगरमे हम लाहौर लौटनेकी सोच रहे थे। पढ़ाई कैसे होगी, दोस्तोसे कैसे मिलेगे, अगले सालके लिए विशारदपरीक्षामे बैठनेके अतिरिक्त क्या प्रोग्राम है। इसी वक्त भाई साहेबका पत्र आगरासे आया। उन्होने तुरन्त आनेको लिखा था।

मैने पुस्तक-पत्रा सँभाला, और सीधे आगराका रास्ता पकडा। शायद भाई साहेबने कामके बारेमे भी कुछ इशारा कर दिया था, यदि ऐसा था, तो मैने ईशानन्द-जीसे अपने लाहौर आनेके बारेमे सन्देह भी प्रकट कर दिया होगा।

मेरे लाहौर पहुँचनेके बाद भाई साहेब भी लाहौर पहुँच गये थे। उन्होने गवर्न-मेंट ओरियटल कालेजमे अरबीकी मौलवी-आलम श्रेणीमे नाम लिखाया था। छुट्टियोमे वह भी लाहौर छोड, आगरा नामनेरमे ठहरे थे। भाई साहेबने प्रस्ताव रखा--अब समय आ गया है कि हम वैदिक मिशनरी तैयार करनेके लिए कोई गम्भीर कदम बढाये। मुसाफिर विद्यालयसे वह काम होनेका नही। किन्तु हर एक काम रुपयेसे साध्य होता है, इसलिए चन्दा जमा करनेके लिए नही बल्कि उसकी सम्भावना-को देखनेके लिए तुम्हे युक्तप्रान्तके कुछ स्थानोमे घूमना होगा। हमारी इस योजनामे मुसाफिर विद्यालयके सचालकोके साथ कुछ असहकारकीसी गन्ध थी। विद्यालयके सचालनमे त्रुटियाँ रहते हुए भी वे लोग कितनी कठिनाईसे उसे चला रहे थे; रुपयों

और योग्य विद्यार्थियोके मिलनेमे कितनी दिक्कत थी—इसका हमे अभी खुद तो अनुभव नही था इसलिए हम उसकी कद्र नही कर सकते थे। पढ़ाईको बीचसे छोडना मुझे तो पसन्द नही हो सकता था, किन्तु भाई साहेबकी बात कैसे टाली जाती।

आगरेसे यशवन्तनगर, इटावाके आर्यसमाजोमें होते मैं कानपुर पहुँचा। वहाँसे फिर लखनऊ आर्यसमाजमे। हर जगह आर्यसमाजमे ठहरता, खास-खास आदमियोसे बातचीत करता, कही-कही व्याख्यान भी देता। बातचीतमे वैदिकधर्म-प्रचारकी आवश्यकता और उसके लिए योग्य मिश्नरी तैयार करनेकी समस्या सामने रखता। लखनऊ आर्यसमाजमे उस वक्त अजमेरके एक तरुण रामसहायजी ठहरे हुए थे। उनका गोरा, नाटा, पतला बदन भीतरकी तरफ ज्यादा घुसी आँखे और ज़रा-ज़रासी निकल रही मूछे आयुको वास्तविकतासे कम बतलाती थी। वह बडे उत्साही नवयुवक मालूम हुए। सस्कृत पढनेके लिए निकले थे, किन्तु अभी तक कोई सन्तोषजनक तरीकेसे पढानेवाला अध्यापक उन्हे नही मिला था। वहाँ किसीसे मुझे मालूम हुआ, कि यहाँ एक बौद्ध विहार है, जिसमे एक बौद्ध भिक्षु रहते है। बौद्ध भिक्षुओ जैसी धर्मप्रचारकी लगन को बहुत बार व्याख्यानोंमे मै सुन चुका था। नालन्दा जैसे धर्मप्रचारक पैदा करनेके केन्द्र होने चाहिए, इस विचारका अंकुर बड़ी मजबूतीके साथ हमारे हृदयोमे उग चुका था, इसलिए जब बौद्धभिक्षुका रहना मालूम हुआ, तो एक दिन शामको मै विहारमे पहुँचा। अँधेरा हो चुका था, बाहरी रोशनी काफ़ी नही थी या स्मृतिका ही दोष है, मदिर और उस समयके स्वामी बोधानन्दके आकार-प्राकारका कुछ ख्याल नही। उनसे मुख्य तौरपर ईश्वर, वेद आदि विषयोके अतिरिक्त बौद्ध साहित्य, त्रिपिटक आदिके बारेमे बातचीत हुई। ईश्वरका उन्होने साफ शब्दोमे निषेध नही किया। शायद वह पुरानी विचार-धारापर धीरे-धीरे प्रहार करनेके पक्षपाती थे। बौद्ध-साहित्यमे बँगलामे छपी बुद्धपुस्तकों तथा बगीय बौद्धोंकी मासिक-पत्रिका "जगज्ज्योति"का पता दिया। पाली त्रिपिटकके पतेके बारेमे अनागरिक धर्मपालसे लिखा-पढी करनेके लिए कहा। उस सक्षिप्त साक्षात्कारके वक्त यह नही पता लगता था, कि मेरे जीवनके विकासमे इस साक्षात्कार द्वारा ज्ञात बाते खास पार्ट अदा करनेवाली है।

लखनऊसे मलीहाबाद, फिर बिलग्राम, जायस और संडीला गया। संडीलामे तहसीली स्कूलके हेडमास्टरके यहां ठहरा था। शामको नदी किनारे किलेकी ऊँची जगहपर बैठे रगबिरगे बादलोमे ईश्वरीय-रचनाके चमत्कारको देखते हुए सन्ध्या करता था। सडीलासे हरदोई पहुँचा। आर्यसमाजमे २५-३० आदमियोके सामने

व्याख्यान दिया। थमरावाँके रायसाहेब केदारनाथ मुसाफिर विद्यालयके प्रधान पृष्ठपोषकोमे थे, इसलिए उनके यहाँ जाना ज़रूरी था। अभी वर्षा बिल्कुल समाप्त नही हुई थी। मै पैदल ही थमरावाँ पहुँचा। बडे आदमियोके यहाँ आने-जानेके लिए विशेष संभ्रान्त वेष-रचना, तथा सवारी आदिकी जरूरत होती है, किन्तु वह मुझे उपहासास्पदसी बात जँचती थी, इसीलिए मैंने कभी भी अमीरोको अपनी ओर खीचनेका न प्रयत्न किया और न उसमे सफलता प्राप्त की।

थमरावाँके रायसाहेब एक बडे ज़मीदार तथा पुराने रईस थे। गरीबोकी झोपड़ियोके साथ-साथ वहाँ उनके पक्के महल थे, जिनमे दर्जनो नौकर-चाकर घूमते रहते थे। उनके अस्तबलमे कई अच्छी जातिके घोडे बँधे थे। शायद हाथी और घोड़ागाड़ी भी थी।

मै जिस बे-सरोसामानीसे गया था, उससे तो कही भी टिकाये जानेपर मुझे शिकायत करनेका हक न था: किन्तु रायसाहेबमे अपनी श्रेणीके दूसरे रईसोसे कुछ विशेपता थी—विशेषता न होती तो आर्यसमाजकी ओर क्यो झुके होते। उन्होने जब सुना कि मै आगरेका 'आर्यमुसाफिर' हूँ, तो मेरे ठहरनेके लिए कोठेका वह कमरा खुलवा दिया, जिसमे किसी समय पडित अखिलानन्द शर्मा रहकर उनके ज्येष्ठ पुत्रको संस्कृत पढाया करते थे। कायस्थ रईस होकर सस्कृतकी ओर उनका ध्यान जाना बतलाता था उनकी धार्मिक अभिरुचिको। लडका अच्छा पढ गया था, किन्तु मृत्युने उसे छीनकर बापके मसूबेको पस्त कर दिया। रायसाहेवके चेहरेपर अब भी अपने ज्येष्ठ पुत्रकी मृत्युका शोकचिह्न मौजूद रहता था। मै वहाँ दो-चार दिन रहा, अपने उद्देश्यपर बातचीत की। तत्काल कुछ माँगना था नही, इसलिए मेरी जबान स्वतत्रता-पूर्वक अपना काम कर सकती थी। चन्दा माँगना हो या भीख, ऐसे समय मुझे रहीम के इस दोहेकी सत्यता साफ झलकती है—

'रहिमन वे नर मरि चुके जे कहुँ माँगन जाहि।' एक दिन रायसाहेव और मै कुर्सीपर बैठे थे, उनका छै-सात वर्षका लडका—अब यही एक मात्र लडका वच रहा था, इसलिए वहुत लाड-प्यारसे पाला जा रहा था—आया। उसके काले वार्निशवाले जूतोपर थोड़ीसी धूल लग गई थी। अभी रायसाहेवकी उधर नज़र भी न पडी थी, कि वहाँ उपस्थित एक ब्राह्मण-पुरोहितने झटसे अपनी चादरके कोनेसे जूतेको पोछना शुरू किया। रायसाहेबने खड़े होकर उनके हाथको हटा दिया, और उनके इस कामसे असन्तोष प्रकट किया। वह नही सकता, मेरी उपस्थितिसे उनको सकोच हुआ, और इसीलिए उन्होने पुरोहितजीके आचरणपर असन्तोष प्रकट किया, या वह स्वभावत:

इस बातको पसन्द नही करते थे। मेरी बातोसे उनको यह तो मालूम होनेमे दिक्कत नही हुई होगी, कि यह खुशामदकलासे बिल्कुल अनभिज्ञ व्यक्ति है। पुरोहितके इस आचरणने ब्राह्मणधर्मको मेरी नजरमे और भी नीचे गिरा दिया।

थमरावाँसे चलते वक्त रायसाहेबने सवारी देनेके लिए कहा। घोडेका जिक्र आनेपर मैने बडी प्रसन्नतापूर्वक उसे पसन्द किया, किन्तु अन्तमे बडे घोड़ोमेसे किसीको न पा जब एक टटुआनी आई, तो गाँवसे कुछ दूर तक मै उसपर चढकर आया फिर सईसको उसके साथ लौटा दिया। अच्छे घोडेपर चढ़नेके मेरे स्वाभाविक शौकको इससे धक्का लगा, लेकिन रायसाहेव क्या जानते थे, कि मै घुडसवारीका इतना शौकीन हूँ।

लौटते वक्त फिर लखनऊ आया। स्वामी बोधानन्दसे फिर भेट हुई या नही—मालूम नही। लखनऊसे रायबरेली। वहाँ आर्यसमाजके मत्री या सभापति कोई ब्राह्मण वकील थे, जिनके घर मै ठहरा। व्याख्यानके लिए खास प्रबन्धकी जरूरत नही पडी। किसी दिनके उपलक्ष्यमे कोपरेटिव बकके मकानमे हिन्दी भाषापर व्याख्यान होनेवाला था, जिसमे सनातनधर्मके एक प्रसिद्ध महोपदेशक वाणीभूषण पडित नन्दकिशोरजी बोलनेवाले थे। वही मेरा व्याख्यानभी रख दिया गया। तैयार करके व्याख्यान देनेवालेको कुछ सुभीते भी रहते है, और कुछ मुश्किले भी। रामगोपाल भाईको तैयार करके व्याख्यान देनेकी आदत थी। उनको कुछ व्याख्यान विल्कुल कठस्थ थे, जिन्हें वह बडे जोशके साथ भाषणमचपर हाथ पटकते हुए अदा करते थे। मै व्याख्यानोके लिए लिखे सकेत-नोटो तकको इस्तेमाल नही कर सकता था। सुभीता यह था, कि नयेसे नये विषयपर भी दस-बीस मिनट कुछ बोल सकता था। वाणी-भूषणजीने अपना तैयार भाषण सुनाया, जिसमे हिन्दी भाषा और साहित्यसे न सम्बन्ध रखनेवाली ही बाते अधिक थी। वह देर तक बोलते भी रहे। मै पन्द्रह-बीस मिनटसे ज्यादा नही बोला, सिर्फ हिन्दी-भाषा-साहित्यपर बोला, और ऐसी बाते जिनमे सस्कृत-शास्त्रोकी दुहाई कम और नई रोशनीकी पुट कुछ अधिक थी। शिक्षितोको मेरा भाषण ज्यादा पसन्द आया—यह मेरे मेजबान वकील साहेबकी राय थी।

रायबरेलीसे अमेठी पहुँचा। नानाके मुँहसे अमेठीके दवनसिंह नामक बलिष्ट सिपाहीकी बाते कई बार सुन चुका था, किन्तु मै वहाँ दवनसिंह या उनके परिवारकी खोज करने नही आया था। मुसाफिर विद्यालयके उद्देश्यके साथ बहुत सहानुभूति रखनेवाले अमेठीके द्वितीय राजकुमार रणवीरसिहसे मुझे मिलना था। किसी क्लर्कके यहाँ उस दिन तो ठहर गया, शामको कुमार साहेबसे उनके महलके आँगनमे बातचीत

हुई, शायद उस दिन पुरानी चालकी कविताओंका पाठ भी हो रहा था। कुमार रणवीर विद्या, व्यायाम, और उदार विचारोके प्रेमी थे। उनका शरीर स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट था, पूरे जवान हो जानेपर भी अभी उन्होने शादी न की थी। पाँच मिनटमे अपना परिचय दे देनेकी कला मै नही जानता, और वहाँ डटकर कुछ दिन मुसाहिबी करनेके लिए मै गया नही था। कुमार रणवीर अपने आसपास सदा बने रहनेवाले खुशामदियोसे चिढते थे, किन्तु उनका शिकार न होते हो, यह बात नही। वह मुझसे मेरे वेश-भूषाके अनुसार नही बल्कि एक प्रगतिशील तरुण समझकर मिले। नौकरोसे किसी अतिथिशालामे ठहरानेके लिए कहा उसके पास कुत्ता घर था—यहाँ कितने ही भिन्न-भिन्न जातिके कुत्ते चारपाइयोपर पडे रहते थे। आर्यसमाजको मैने गम्भीरतासे ग्रहण किया था, वैरागीपथकी तरह उसे 'ग्राम गच्छन् तृणान् स्पृशति'के हल्के हृदयसे नही स्वीकार किया था, इसीलिए यथाशक्ति आर्यसामाजिक विचारोके अनुसार चलनेकी कोशिश करता था। मासभक्षण और बलिदानको एक कट्टर आर्यसमाजीके तौरपर बुरा समझता था, और जब मालूम हुआ, कि देवीका बलिदान बन्द हो जानेपर भी बाघको बकरा मारकर खिलाया जाता है, तो मैने इसकी शिकायत कुमार रणवीरसे की। किन्तु मुश्किल यह थी, कि बाघ देवीकी तरह पत्थरका न था। कुमारके बडे भाई बडे सीधे-सादे ढीले-ढाले आदमी थे, सौभाग्य बँटते वक्त वह जरूर ब्रह्माके पास पहिले पहुँच गये थे, किन्तु समझ और शक्तिके वितरणके वक्त अपने तीनो भाइयोसे पिछड गये थे। कुमार रणवीरका अपने दो छोटे भाइयोपर बडा प्रभाव था। शामको वह उनके साथ घुडसवारीके लिए निकलते थे, उनके शरीरसे मध्यकालीन राजपूत-प्रभा झलकती थी।

अगली मजिल प्रतापगढ था। यहाँ एक तरुण विद्यार्थीके घर ठहरा। उनके पिता कचहरीमे कोई साधारण कर्मचारी थे। वहाँका आर्यसमाज भी अवधके अन्य आर्यसमाजोकी भाँति कमजोर था, किन्तु कुछ नौजवानोमे जोश था। उन्होने सडकके किनारे टाट बिछा दिया। शामके वक्त कुछ लोग आ गये, और मैने आर्यसमाजके किसी सिद्धान्तपर व्याख्यान दिया। रातको तरुणके घर खाना खाने गया, कायथ-भाई थे, आर्यसमाजके फेरमे पड़कर गोश्त छोड चुके थे, लेकिन वह दिलसे उतना जल्दी थोडे ही छूट सकता है। खानेमे वेसनकी कोई तर्कारी इस तरहकी वनी थी, कि उसमे बिल्कुल मासकासा स्वाद आता था। मुझे भारी भ्रम हो गया था, किन्तु आर्यसमाजी घरमे गोश्त नही बन सकता, इस ख्यालसे मैने अपने भ्रमको दबा दिया और सकोच-वश पूछा भी नही।

बनारसके लिए रवाना होते वक़्त मैंने यागेशके पास एक पत्र लिख दिया था। यागेश गर्मियोंमें पंडित भोजदत्तके साथ मसूरी या देहरादून गये थे; उनके देहान्तके बाद घर चले आये थे। उस वक़्त स्वामी वेदानन्द बनारसमें पढ़ते थे, साक्षात्कार नहीं हुआ था, किन्तु हम एक दूसरेसे परिचित थे। उनके ही यहाँ ठहरे। एक वक़्त भोजन गोपाल-मन्दिरसे मँगवा लेते—वहाँ सस्तेमें कई तरहके अच्छे भोजन मिल जाते थे। हाँ, इस बातमें पीछे आनेवाले हिन्दू-भोजनालयों तथा हिन्दू-होटलोंका गोपालमन्दिर पथ-प्रदर्शक था। श्रद्धालु भक्तजन तथा मन्दिरकी सम्पत्तिसे प्रतिदिन भोग लगनेके लिए चावल, आटा, घी, दूध, मिठाई, केसर, चन्दन हर चीज़की मात्रा वहाँ नियत है, और प्रतिदिनके भोगमें कई सौ रुपये लगते हैं। मन्दिरके हर एक कर्मचारीको वेतनके एक हिस्सेमें एक या अधिक पत्तलें भी मिलती थीं, जिसे बहुतसे छूत-छातके ख्यालसे या पैसे बनानेके ख्यालसे बेंच दिया करते। कनैलाके—रिश्तेमें मेरे दादा—रामाधीन पांडे गोपालमन्दिरमें परवाडजी थे, और बनारसमें पढ़ते वक़्त कभी-कभी उनके यहाँ मैं गया था। रामाधीनजी छूतछातके ख़्यालसे अपनी पत्तलको नहीं खाते थे इतना मुझे मालूम था, किन्तु उस वक़्त मुझे यह नहीं पता था, कि ये पत्तलें बाक़ायदा बिकती हैं।

स्वामी वेदानन्द तीर्थ बहुत बातोंमें मुझसे समानधर्मता रखते थे। उनको भी मेरी ही तरह विद्याकी उग्र प्यास थी, वह भी वेदके उच्च तत्त्वज्ञानके विश्वासी, और वहाँ तक पहुँचनेके लिए प्रयत्नशील थे, और सारा समय संस्कृतके अध्ययनमें लगा रहे थे। उच्च योग्यता और काफ़ी तैयारीके साथ देशान्तरोंमें वैदिकधर्मके प्रचारके वह भी मेरी ही तरह प्रबल पक्षपाती थे। 'ख़ूब निबहैगी जो मिल बैठेंगे दिवाने दो' वाली बात थी, इसलिए हमारे बीच चिरस्थायी मित्रता क्यों न स्थापित होती।

बनारस आर्यसमाजमें मेरा एक व्याख्यान भी हुआ। अभी मैं वहीं था कि श्यामलाल (मेरे छोटे भाई)को लिये यागेश आ धमके। श्यामलालको देखकर मैं यागेशपर कुछ नाराज़ हुआ, किन्तु उन्होंने कोई बहाना बना दिया। दोनोंने आग्रह किया, कि चन्द दिनोंके लिए कनैला ज़रूर चलें। मुझे मानना पड़ा। कनैला पहुँचनेपर कई बार प्रयत्न करके असफल होते हुए भी पिताजीने फिर नज़रबन्दीका हथियार इस्तेमाल किया। क्षणिक वैराग्य अब स्थायी आदर्शवादका रूप धारण कर रहा था, इससे वह ज़्यादा शंकित हो गये थे। मुँहपर मैं 'नहीं रहूँगा'—दो टूक कहनेकी मुझमें हिम्मत न थी, क्योंकि उसमें गाँव भरके बड़े-बूढ़े जमा हो जाते और वे मेरी बेवक़ूफ़ीका मज़ाक़ उड़ाते हुए पिताकी आज्ञा मानना आदिका उपदेश झाड़ने लगते। मैंने थोड़े

दिनोके-लिए अपने भागनेके ख्यालको छिपा लिया और तै किया कि यदि अब एक बार मुक्ति मिली तो आजमगढ़ जिलेमे आनेका नाम न लूँगा। जिगरसडीमे श्री मर्याद दूबेके नामसे जो ज़मीदारी खरीदी गई थी, उसके वसूल-तहसीलमे मैने भी हाथ बँटाना शुरू किया। सप्ताह बीतते-बीतते एक दिन मुझे अकेले जिगरसडी जानेका मौका मिला। अब कौन लौटकर कनैला जाता है। सीधे जखनिया या सादात स्टेशन जानेसे अब भी डरता था, इसलिए मै वहाँसे वीरपुरमें पडित मुखराम पाडेके यहाँ चला गया। वह व्याकरणतीर्थ, काव्यतीर्थ होकर अब घर हीपर रहते थे। बडहल बाजारमे कह सुनकर संस्कृत पाठशाला खुलवानेका इन्तिज़ाम कर रहे थे, आज पाठशालारम्भका मुहूर्त था। पाठशालारम्भमे एक क्षणके लिए पुराने गुरुका फिरसे मै विद्यार्थी बन गया। उपनिषद्की गुटका मेरे पास थी, उसीसे पाठ शुरू हुआ। मालूम नही, बडहलसे लौटकर रातको मै वीरपुरमे ठहरा, या वहाँसे सीधे दूलहपुर स्टेशन गया। खैर, कैसे ही मै फिर बनारस पहुँच गया।

बनारसमे ज्यादा रहना खतरेसे खाली नही था, पिताजी किसी वक्त वहाँ पहुँच सकते थे। स्वामी वेदानन्दजी मेरी रायसे सहमत थे। वह अभी हाल हीमे अहरौरा (मिर्जापुर)से लौटकर आये थे, वहाँके कितने ही तरुण आर्यसमाजी उन्हे आकर कुछ दिन रहनेके लिए बहुत आग्रह कर रहे थे, उन्होने मुझे वहाँ जानेके लिए कहा। रेलसे कोसो दूर विन्ध्याचलकी इस खोहमे पिताजी कहाँ आ पायेगे—इसपर हम दोनोको पूरा विश्वास था। किन्तु इस रहस्यको एक दूसरे गुजराती विद्यार्थी—जिनपर मुसाफिर विद्यालयका छात्र होनेसे हम विश्वास रख सकते थे—जानते थे। उन्होने पिताजीको यह बात बतला दी। अहरौरामे पहुँचकर निश्चिन्त हो मैने तरुणोके सामने धर्मप्रचार शुरू कर दिया था, जब कि दो-तीन दिन बाद, एक शामको देखा, पिताजी विकराल कालकी तरह मेरे सामने खडे है। खैर, उन्होने उसी वक़्त लोगोके सामने निबटना नही चाहा, शायद वे मेरे इस निर्बल स्थानको नही समझते थे। अलगमे मुझसे मिले। मैने कहा—अभी मै यहाँ एक मास रहूँगा, आप कही रहे, और अभी मुझे दिक् न करे। अपने प्रयत्नोकी असफलतापर उनका विश्वास हो चला था, तो भी स्नेह उन्हे निश्चेष्ट नही रहने देता था। उन्होने एक बार फिर हृदय खोलकर अपनी व्यथा सामने रखनेकी कोशिश की। भोजन-वस्त्रके सम्बन्धमे ग्रामीण जीवनको कुछ और सरस करनेका प्रस्ताव किया। मैने बतलाया—मेरे लिए अब सबसे ज्यादा आकर्षण ज्ञानकी ओरसे है, वह कनैला या बछवलमे नही मिल सकता। बाते थोडी ही हुई, और मुझे खुशी हुई, जब पिताजीने

एक साधुकी कुटियामे रहते दूर-दूरसे सिर्फ मेरे ऊपर निगरानी रखने तक ही अपने कामको सीमित रखा।

अहरौरामे जिनके घरमे मै रहता था वह पहरी जातिके थे, मुझे इस जातिका नाम पहिले पहिल सुननेमे आया था, और इसे मैने सस्कृतके प्रहरी शब्दसे निकला समझा। वह उत्साही आर्यसमाजी तरुण थे। किसी वक्त उनका घर बहुत समृद्ध था। विन्ध्याचलके जगलोसे जमा की गई सूखी बेरो तथा तम्बाकूको ढेकीमे कूटकर उनके यहाँ अच्छी किस्मकी तम्बाकू बनती थी, जब लाखका रोजगार बढा हुआ था, उससे भी काफी आमदनी होती, और कई हजार रुपये सूदपर चलते थे। इस प्रकार एक वक्त एक समृद्ध नागरिककी भाँति उनके घरवालोका जीवन व्यतीत होता था। अब लाखका रोजगार चौपट हो चुका था, लेन-देनका रुपया कर्ज खाने-वालोके यहाँसे आता न था, इसलिए वह भी रास्ता बन्द, बाकी बचा था सिर्फ तम्बाकू। तम्बाकूके रोजगारमे गुजाइश रहते भी वह नये व्यापारिक तरीकोसे वाकिफ न थे, और न देसावरमे तम्बाकू भेजनेके लिए सम्बन्ध स्थापित करनेकी ओर ख्याल रखते थे। कूट-काटकर पुराने ढगसे पुरानी आवश्यकताके अनुसार तम्बाकू बनाकर रखा; अहरौरामे जितना बिक गया, बस उसीपर उनके परिवारका गुजारा था। वह अपने पिताके अकेले लड़के थे। घरमे माँ और स्त्रीके अतिरिक्त दो छोटे-छोटे बच्चे थे, जिनका खर्च तम्बाकूकी उस साधारण दैनिक आयसे भी चलाया जा सकता था; किन्तु उनके पिताके वक्त हीसे कुछ सम्बन्धी परिवारोंका भी भरण-पोषण उन्हीके घरपर होता चला आता था, आज आमदनीके बडे रास्तोके बन्द हो जानेके बाद भी उस तरुणका हृदय हिम्मत नही रखता था कि अपने आश्रित सम्बन्धियोको अलग करे। जीर्ण-शीर्ण कमजोर नौका, सवारियोके बोझसे किसी नदीमे स्वय डूबना चाहती हो। कुछ सवारियोको हटा देनेसे नौका बचाई जा सकती है—यह जानते हुए भी जैसे मृदु-हृदय नौका-स्वामी नौकासे साथियोको हटानेकी अपेक्षा उनके साथ डूब जाना पसन्द करता हो--ठीक यही मनोभाव उस तरुणका था। मेरी उनके साथ बडी सहानुभूति थी, और उनकी कठिनाइयोको ख्याल करके कभी-कभी मेरा चित्त उद्विग्न हो उठता था—उन्हीके घरमे ठहरा रहनेसे ऐसे मौके बहुत मिलते थे। बकाया पडे रुपयोको वसूल करनेके लिए अदालतमे नालिश करनेकी जरूरत थी। नालिश करना, कचहरीमे मुकदमा लडना—गाधीयुगसे बहुत पहिले उस समय भी—उन्हे पसन्द न था, और पसन्द होनेपर भी इसके लिए बहुत रुपयोकी आवश्यकता होती।

शामको व्याख्यानके तौरपर ही नही कुछ क्लासके तौरपर हमारी कार्रवाई होती थी। मेरे भाषणोपर धार्मिकताके साथ-साथ राष्ट्रीयताका रग भी चढने लगा था। कई जगहकी खुफिया पुलीसने रिपोर्टें की थी, जिनकी जाँच आगरामे हुई थी, जिसे भगवती भाईको एक पुलीस अफसरने मित्रतावश बतलाया था। महीने भर तक मेरी बातोको सुनते रहनेपर भी अहरौराके तरुण यदि उकताये नही तो सामयिकता ही इसमे कारण थी।

खाना बराबर मै अपने मेजबान तरुणके यहाँ ही खाता, किन्तु एकाध बार तहसीली स्कूलके हेडमास्टर,—एक आर्यसमाजप्रेमी—किन्तु बिरादरीके डरके मारे काँपनेवाले—के यहाँ भी खाने गया। जिस कमरेमे मै रहता, वह कोठेपर सफ़ेद चूनेसे पुता हवादार कमरा था, उसमे कई तस्वीरे और शीशे टँगे थे। तरुण उपन्यासोके शौकीन थे। 'जासूस'की तो फाइलकी फाइल वहाँ मौजूद थी। यही श्री गोपालराम गहमरीकी लकाकी यात्रापर एक किताब पढी, जो मेरे लका जानेसे पहिले भूलसी गई थी। चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्तासन्तति तथा इस तरहके और भी कितने ही तत्कालीन उपन्यास वहाँ मौजूद थे। मेरे पास पढनेके लिए गम्भीर पुस्तके न थी, काफी समय और एकान्त मिला था, इसलिए उस सारी राशिका मै एक बार पारायण कर गया। हिन्दी उपन्यासोको तल्लीन हो पढनेका मेरे लिए वही आदिम और अन्तिम मौका था।

अहरौरा विन्ध्याटवीके मुँहपर है। यहाँसे एक रास्ता सर्गुजा होते दक्षिणापथको गया है। पहाड और जगल पास ही शुरू हो जाते है, जिनमे बाघ और चीते रहते है। सर्गुजा और दक्षिणी मिर्जापुरसे अब भी सौदा लादे हुए सैकडो बैल आते थे। मुझे उस वक्त परसामे सुनी शोभनायक (नयका) बजारेकी गीतिमय कहानी याद आती। ऐतिहासिक समाजका मानसचित्र तैयार करना अब कुछ-कुछ मुझे आने लगा था। इस चित्रकी तैयारीमे अहरौराके दक्खिनसे आनेवाले ये लदनीके बैल सहायक हुए। जगलोमे आबनूस और खैरके हजारो दरख्त थे। खैरकी लकडीके रससे कत्था तो तैयार किया जाता था, किन्तु आबनूसका वहाँ कोई काम न होता था। अहरौरामे लकडीके बने तथा लाहके रगसे रगे सिंदूरदान, खिलौने आदि बहुत बनते थे। यह ज्यादातर साधारण गीली लकडीको खरादकर बनते थे, और सूखनेपर फट जाते थे। मैने लकडीका एक कमडलू बनवाया था, जो महीने भरके भीतर ही पानी छानने लायक हो गया।

दो-चार बार मै पहाडोमे कुछ भीतर तक पहुँचा, एक बार महाराजा बनारसकी

शिकारगाहमे गया था। पक्की दीवारोके भीतर सुरक्षित बैठकर, खतरेकी जरा भी सम्भावनाके विना शेरके शिकारमे क्या आनन्द आता होगा—यह मुझे समझमे नही आता था। इन शिकारगाहोको देखकर मुझे जगलके गोपालोके गोष्ठ याद आते थे। एक बार हम अहरौराकी नहर जिस जलाशयको घेरकर निकाली गई है, उसे भी देखने गये थे।

धीरे-धीरे दिसम्बरका महीना बीत चला, जनवरीके साथ १९१७ सन् आनेवाला हुआ। अहरौरामें स्वामी वेदानन्दकी चिट्ठियाँ हर सप्ताह आती थी, वह सभी सस्कृतमे होती। मेरा भी उत्तर सस्कृतमं जाता। मुझे उनके सुन्दर अक्षरोंको देखकर ईर्ष्या होती। दिसम्बरके अन्तमें साधुजी (भाई महेशप्रसाद)का एक पत्र मिला, जिसमे लिखा था कि महेशपुराके एक वैश्य आर्यसमाजी धर्मप्रचारक तैयार करनेके लिए एक विद्यालय स्थापित करनेके वास्ते कुछ हजार रुपये देना चाहते है, तुम जाकर वहाँ काम शुरू करो। मै जिस विद्यालयका स्वप्न देखता था, वह महेशपुराके अल्प धनसे, और मेरे अपने अल्प ज्ञान-साधनसे स्थापित नही हो सकता था, किन्तु मै जानता था कि नई दुनियाकी ओर मेरी आँख खोलनेवाले भाई साहेब ही थे, इसलिए उनके किसी निर्णयको मै सहसा टालनेकी हिम्मत नही रखता था। मै तैयार हो गया महेशपुरा जानेके लिए।

नये दोस्तोंमे सौगात बाँटनेके लिए मैंने जगली बाँसकी दस-बारह लाठियाँ साथ ले ली थी। मैंने अपने प्रस्थानको बिल्कुल गुप्त रखा था, क्योंकि मै जानता था, कि यदि पिताजीको खबर लग गई, तो भारी विघ्न उपस्थित होगा। एक दिन मै चुपचाप एक्केपर बैठ अहरौरा-रोड स्टेशनके लिए भाग चला। स्टेशनपर पहुँचनेके बाद मालूम हुआ कि गाडीके आनेमे अभी देर है। मेरा हृदय शकासे काँपने लगा—कही तब तक पिताजी न आ पहुँचे। दिल कहता था—यदि कही एक बार मै यहाँसे निकल पाता, फिर तो किसकी मजाल थी ढूँढ़ निकालनेकी ? मै कभी यागेशको दोष देता और कभी बनारसके गुजराती विद्यार्थी मित्रको।

जिसका डर था, आखिर वही बात हुई। अभी टिकट बँटने न पाया था, कि पिताजी प्लेटफार्मपर पहुँच गये। वह हाँप रहे थे। उन्होंने ९, १० मीलकी यात्रा बिना साँस लिये दौडते या तेजीसे चलते तै की थी, नही तो इतनी जल्दी कैसे पहुँच सकते थे ? मुझे कभी गुमान भी न था, कि मेरे मेजबानकी माँ पिताजीके लिए अवैतनिक खुफियाका काम कर रही है। वह मुझे देखते ही फूट-फूटकर रोने तथा उलाहना देने लगे। प्लेटफार्मपर लोग जमा हो गये। वह चिल्ला रहे थे—क्यो मुझे मार

रहे हो ? मुझे भी अपने साथ ले चलो आदि। उनकी बातोमे पिछले सालकी अर्धविक्षिप्तताका भी हल्कासा असर था, नही तो रोने और चिल्लानेमे अपनी स्वाभाविक गम्भीरताका परित्याग कर वह उतने अधीर और कातर न बनते। मैंने एक बार हिम्मत बाँधकर कहा—आखिर, कब तक आप मुझे इस प्रकार बाँधकर रखेंगे। किन्तु वहाँ सारी जनता मेरे खिलाफ थी, उसकी चलती तो पथरावकर मेरा काम वही तमाम कर देती। सब मुझे थू-थू करने लगे। मैंने महेशपुराकी ओरकी यात्रा स्थगित की, और दो टिकट लेकर बनारसकी ओर रवाना हुआ। ट्रेनमे और उससे भी ज्यादा बनारस स्टेशनपर मैंने ठडे दिलसे उन्हे समझाना शुरू किया—मै आपके भावोको, आपकी बेकरारीको समझता हूँ; किन्तु साथ ही मेरा जीवन भी किसी भविष्यकी लालसा रखता है, जिसकी जो अस्फुट झाँकी मुझे मिल रही है, उसके कारण जबर्दस्तसे जबर्दस्त खतरे, मृत्युके साक्षात्-दर्शन तक भी अब मुझको अपने पथसे विचलित नही कर सकते। मै कनैलाके अयोग्य हूँ, मै आपके कामका नही रहा। यदि ऐसा ही करना था, तो मुझे गाय-भैसकी चरवाहीमे लगा दिये होते मेरी दुनिया कनैलाकी सीमासे परिसीमित हो जाती। अब जोर देनेका भयकर परिणाम होगा, आपको मेरे जीवनसे हाथ धोना होगा।

मैंने इन बातोको धीरे-धीरे उन्हे बोलनेका मौका देते हुए कहा। इसका उनके दिलपर असर हुआ। अन्तिम उत्तर जिस तरह उनके मुखसे यकायक निकला, उसकी मुझे आशा नही हो सकती थी। उन्होने कहा—अब मै तुम्हारे रास्तेमे बाधक नही होऊँगा, किन्तु साथ ही मै भी कनैला न जाकर यही बनारस ही मे अपने जीवनको बिता दूँगा।

अपने वचनके पूर्वार्धको उन्होने ठीकसे पालन किया। यही उनका अन्तिम दर्शन था।

मैंने प्रतिज्ञा की—अबसे पचास वर्षकी उम्र खतम होने तक फिर आज़मगढ़ जिलेकी सीमाके भीतर भी कदम न रखूँगा।

६

# मिशनरी तैयार करनेका एक प्रयास (१९१७ ई०)

बनारस-छावनी स्टेशनपर जिस वक्त टिकट लेने गया, उस वक्त छोटी लाइनके जँगलेपर टिकट लेनेवाले कुछ यात्रियोको छपराकी बोली बोलते सुना। घरका पता पूछनेपर उन्होने एकमा-मुड़ली बतलाया। मुझे परसा याद आ गया। किस तरह मै वहाँ बडे-बडे अरमानोको लेकर गया था। किस तरह परसाके निवास और उसके सम्बन्धने भारतके हर स्थानमे मेरे लिए भोजन और आवासकी निश्चिन्तता पैदा की। किस तरह सब दोषोके रहते भी महन्तजी मुझे बहुत मानते थे मुझे पाकर अपने भविष्यके लिए निश्चिन्त हो गये थे। अभी भी मेरा साथी वरदराज—जो मेरे ही लिए वहाँ जाकर साधु बना—परसाके सम्बन्धको छोड़े नही होगा। इन विचारोके आते ही थोडी देरके लिए अपने विचार सम्बन्धी जबर्दस्त परिवर्तनोको मै भूल गया, परसाकी ओरसे आती एक सुनहली रस्सी मेरे हृदयको बाँधतीसी मालूम हुई, धीरे-धीरे उसका खिचाव साफ मालूम होने लगा। पैर बी० एन्-डब्ल्यु० आर०के जँगलेकी ओर बढना चाहते थे, इसी वक्त हवाका रुख फिर बदला—महन्ती मुझसे नही हो सकेगी, जीवनकी धाराको उल्टी बहानेकी मुझमें शक्ति नही है। मै अपनी जेबमे भाई साहेबके पत्रको अनुभव करने लगा। मेरी आँखोके सामने मोटे-मोटे अक्षर नजरसे आने लगे—महेशपुरा जाकर काम सँभालना है, भगवती भाई पिछली सारी गर्मियोसे घूम-घूमकर वहाँ प्रचार कर रहे है।

मैने महेशपुरा जानेके लिए कोचका टिकट खरीदा।

कानपुर कालपी, उरई, एटाके स्टेशनो भरको ही देखते मै कोच स्टेशनपर उतरा। भाई साहेबकी चिट्ठीमे पडित कृष्ण गोपालजीका पता दिया हुआ था। कुँअर बहादुरसिहने महेशपुराके स्वामी ब्रह्मानन्दजीका पत्र-द्वारा भाई साहेबसे परिचय कराया था। एक तरफ इस तरहकी संस्थाको अस्तित्वमे लानेके लिए कुछ शिक्षित तरुण बेकरार थे, दूसरी तरफ ऐसे कामके लिए कुछ रुपये मौजूद थे, फिर दोनोका गठबन्धन हो जाना कोई मुश्किल बात नही थी। स्वामी ब्रह्मानन्दजी, और उनके पुत्र श्री पन्नालालजीने मेरे आनेकी खबर पडित कृष्णगोपालको दे रखी थी, इसलिए कोचमे ठहरनेके लिए इधर-उधर भटकनेकी जरूरत नही पडी।

कोचसे महेशपुराके पास तक कच्ची सडक गई है। मैं पैदल ही आदमीके ऊपर सामान लादे महेशपुराकी ओर चल पडा। जनवरी (१९१७ ई०)के महीनेमें ज्वार-बाजरेके फले हुए बडे-बडे पौधे खेतोमें खड़े थे। नई फसल बोई जा चुकी थी। महेशपुराके पास पहुँचनेपर हाथो कटी जमीनकी स्वाभाविक खन्दकोसे होकर उतरना चढ़ना पडा। मकानोकी खपडैल चौडी थी, उनकी दीवारे कच्ची, तथा दर्वाज़े साफ लिपे-पुते थे। स्त्रियोके पैरके चीन्हेदार कडे, मोटी मजबूत बँधी साडिया और ठोस शरीर देखकर मुझे बजरेके सस्कृत प्रतिशब्द वज्रान्नका अर्थ याद आ रहा था।

रामदीन पहाडिया (स्वामी ब्रह्मानदका गृहस्थाश्रमी नाम)के घरका पता लगाना, अपनी प्रसिद्धिके कारण शहरमे भी मुश्किल न होता, फिर यहाँ तो गाँव था। स्वामी ब्रह्मानन्दजी, उनके ज्येष्ठ पुत्र पन्नालाल, और शायद कनिष्ठ पुत्र श्यामलाल भी घर ही पर मिले। जनाना मकानसे फर्क एक साफ-सुथरी हवेली थी, जिसका अगला भाग पक्का था। दर्वाजेपर भीतरसे बन्दूकका निशाना लगानेके लिए सूराख बने हुए थे, जिन्हे मैंने रास्तेके भी कुछ घरोमे देखा था, किन्तु यह नही सुन पाया था, कि अब भी इस इलाकेमे कभी-कभी सशस्त्र डाकू आ पहुँचते हैं, और उस वक्त गृहपति पुलीसके ऊपर अपनी रक्षाका भार सौपकर चुप नही रह सकता। महेशपुरा ग्वालियर रियासतकी बिल्कुल सीमापर था, गाँवसे थोडी दूर पच्छिम जिस नदीमे हम रोज नहाने जाया करते थे, उसका एक तट ग्वालियर रियासतमे था। जहाँ एक किनारेपर बन्दूक रखनेसे सालभरकी गोलघरकी हवाखोरी मुफ्त धरी थी, वहाँ दूसरी ओर टोपीदार बन्दूक और लाठी एक श्रेणीमें समझी जाती थी। महेशपुरासे थोडी दूरपर नदी-गाँव था, जो दतिया रियासतमे था, और दक्षिणका एक गाँव था समथरकी रियासतमें।

हम लोगोके राजनीतिक भी विचार थे। देशकी स्वतन्त्रताके लिए शस्त्रका प्रयोग करने तथा उसके लिए फॉसीके तख्तेपर लटक जानेवाले वीरोके हम प्रबल प्रशसक थे, तो भी हमने किसी ऐसी मशासे महेशपुराको पसन्द नही किया था। हमने जान-बूझकर महेशपुराके एक धनिक वैश्यको स्वार्थत्यागके लिए तैयार नही किया था। श्रीरामदीन पहाडिया अपने पिताकी एकमात्र सन्तान, मामूली वही-खाता लिखना-पढ़ना जाननेवाले एक ग्रामीण महाजन थे। स्वामी दयानदके सुधारो और धर्म-प्रचारकी गूँज युक्तप्रान्त और पजाबके बहुतसे हिस्सोमे पहुँची थी। विचारोके पर बहुत तेज होते है, और किसी तरह वह महेशपुराके तरुण वैश्य रामदीनके पास भी पहुँचे। उनके पास बापका कमाया कुछ धन था। कुछ कपडेका रोजगार था,

और कुछ गिरवी रखने तथा सूदपर रुपया देनेका कारबार होता था। वे आर्यसमाज-की किताबोंको पढने लगे, उसकी ओरसे एकाध जहाँ-तहाँ निकलनेवाले अखबारोंको मँगाने लगे। आर्यसमाजमे उन्हें रोशनी दिखलाई देने लगी। मूर्तिपूजा, श्राद्ध, पुराणोंकी गप्पोंसे उनकी श्रद्धा उठ गई। किन्तु सिर्फ अभावात्मक कर्म-धर्मपर वह सन्तोष करनेवाले न थे। उन्होंने बाकायदा सन्ध्या शुरू की, हवन भी उसमे शामिल किया; फिर अपनी पत्नीको अक्षर-परिचय करा अपनी यथार्थ सहधर्मिणी बनाया। यही नही लोकाचारकी पर्वाह न कर स्त्रीको भी जनेऊ पहनवाया। इन बाह्य आचारो-को आर्यसमाज प्रधानता नही देता था, उसका जोर मानसिक आचारोंपर भी था। झूठ बोलनेसे बढकर पाप नही, सचसे बढकर धर्म नही—इसे वह बहुत पढ चुके थे। उन्होने उसकी पाबन्दीका निश्चय किया। व्यापारीके लिए यह बडी मुश्किल बात थी, किन्तु रामदीनजी अटल रहे। गाहक कपडेका दाम पूछते। जवाब मिलता—'ग्यारह पैसा गज।'

'कुछ कम कीजिये भैयाजी!'

'एक दाम।'

'अरे ऐसी क्या?'

'नही एक दाम बोलते है।'

शुरूमें कुछ कठिनाई तो हुई किन्तु पीछे लोगोने देखा, कि रामदीनकी दूकानमे चीजे कोंचकेभावसे भी सस्ती मिलती है, और मोलतोलमे ठगे जानेका डर नही। परिणाम यह हुआ, कि महेशपुराकी दूकान खूब चल निकली। सूद और व्यापार-का नफा पापकी कमाई है, यह तो रामदीनजीको मालूम नही था, इसलिए उनकी श्री-वृद्धि धर्मकी कमाईसे ही हुई कहना चाहिये।

रामदीनजीके दो लडके, तीन या चार लडकियाँ हुईं। लड़कियोकी शिक्षाके बारेमें आर्यसमाज जोर तो देता था, लेकिन महेशपुरा जैसे गाँवमे इसका इन्तिजाम करना मुश्किल था। पुत्रोकी शिक्षा—विशेषकर संस्कृत शिक्षा—की ओर उनका ध्यान गया। उन्होंने फर्रुखाबादके एक पडितको अपने यहाँ बुलाकर रखा। गाँवसे बाहर अपने बागमें आश्रम बनवा वही लडकोकी पढाई शुरू कराई। बडे लडके श्री पन्नालालकी संस्कृतमे अच्छी गति हुई, और यदि पढाई कुछ दिन और वैसे ही चलती, तो वह अपनी प्रतिभा और अध्यवसायसे अच्छे पडित होते। छोटेने पढाई पीछे शुरू की, और उसमे बडे भाई जैसी प्रतिभा भी नही थी।

लडकोकी पढाई समाप्त करा उन्हें व्याहा जा चुका था, एकको छोड़ बाकी कन्याओ-

का भी ब्याह हो गया था। घरका काम-काज लड़कोंने सँभाल लिया था, तब रामदीन पहाड़ियाको ख्याल आया,—'गृह कारज नाना जंजाला'को छोड़कर सन्यास ग्रहण किया जाये, और उन्होंने सन्यासी हो स्वामी ब्रह्मानन्द नाम धारण किया। स्वामी ब्रह्मानन्दको घरसे बाहर घूमनेका मौका नहीं मिला था। किसीके सामने उन्होंने हाथ पसारा नहीं था, इसलिए सन्यासी होनेपर भी वह भोजन-वस्त्रके लिए अपने परिवारके ही परतन्त्र रहना चाहते थे। उनकी ही प्रेरणासे लड़कोंने चार हजार रुपये विद्यालयके लिए देने स्वीकार किये थे—रुपये एक मुश्त न दे उसके सूदके तौरपर प्रति मास चालीस-पैंतालीस रुपया देना तै हुआ था।

इतने रुपयेसे विद्यालयका काम नहीं चल सकता, इसलिए महेशपुरा पहुँचने पर मेरी और स्वामी ब्रह्मानन्दजीकी सलाह हुई, कि विद्यालयके लिए एक-डेढ़ महीने घूम-कर चन्देका वचन लिया जावे। अयोध्याके तजर्बेके अनुसार मैं समझता था, काफी पैसोंका वचन मिल जाने ही पर हमें विद्यालय खोलनेका साहस करना चाहिए।

महेशपुरासे रावसाहेबके बगरा, जालौन, आदि घूमते हम पैदल ही महेशपुरा लौट आये। स्वामी ब्रह्मानन्दजी अपनी धार्मिक प्रवृत्तिके लिए काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे, जगह-जगह उनके जान-पहिचानके लोग भी थे, इसलिए चन्देका वचन हर जगह हमें आसानीसे मिलता गया। हम दिनमें तीन या चार गाँवमें जाते। विद्यालय किस तरह धर्म, विद्याप्रसार, और देशोन्नतिके लिए प्रयत्नशील होगा, इसे हम समझाते, इसके बाद चन्दा लिखवानेके लिए अपील करते। लोग नकद या अनाज-की तौलमें चन्दा लिखाते। स्वामीजी अपनी बुंदेलखंडी भाषामें बोलते, और भाषण प्रभावशाली रहता। चन्देकी सूचीपर जिस तरह गाँवके पीछे गाँव, और नामके पीछे नाम दर्ज होते जा रहे थे, उन्हें देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई—कमसे कम खाने-कपड़ेके लिए तो हम अब निश्चिन्त रहेंगे।

मेरे आनेसे पहिले भगवती भाई यहाँ पहुँचे थे, और उन्होंने जिले तथा ग्वालियर रियासतके बहुतसे गाँवोंमें घूमकर खूब प्रचार किया था। मेरी तरह वह परिवारके बोझसे मुक्त न थे, इसलिए अब वह रह नहीं सकते थे, और विद्यार्थियोंके साथ एक और अध्यापककी भी जरूरत थी। पत्रोंमें विज्ञापन देनेपर पानीपतके मुकुन्दलाल. अजमेरके रामसहाय, मथुराके यशवन्त, एक सन्यासी, तथा पुराने परिचितोंमें महादेव-प्रसादजी, यागेश, माणिक महेशपुरा पहुँच गये। गर्मियोंसे पहिले ही महेशपुरामें वैदिक-विद्यालय आरम्भ हो गया। पढ़ाई बैठकमें होती, और भोजन बनाने-खानेका इन्तिजाम था श्री पन्नालालजीकी गोशालामें। किसीको वेतन देना नहीं था, सिर्फ

आठ-दस आदमियोंके खाने-कपड़ेका इन्तिजाम करना था। फसल कटनेपर जब हमने चन्दा वसूल करना चाहा, तो पता लग गया कि सूचीपर नाम लिखनेसे चन्देकी रकमका वसूल करना कितना मुश्किल है। वचन देनेवाले लोगोमेंसे बहुत कमने चन्दे दिये, और वसूलीमे जो समय लगता था, उससे वसूल हुए चन्देकी मात्राको देखनेपर हर चन्दादाताके यहाँ जानेका ख्याल ही हमने छोड दिया। चैत-वैशाखमे महेशपुराके ही आसपास हम लोगोने कुछ घूम दिया, खानेके लिए काफी अनाज मिल गया।

यहाँ भी पढ़ाई करीब-करीब मुसाफिर विद्यालय जैसी थी। अरबी, संस्कृत मुख्य तौरसे पढ़ाई जाती थी। व्याख्यान और शास्त्रार्थ होते। तीन-चार हिन्दी-उर्दूके आर्यसमाजी पत्र आते, 'प्रताप' तो उस वक्तके राष्ट्रीय विचारवाले तरुणोके लिए अनिवार्य चीज़ थी। रामसहायजी पहिले आनेवाले विद्यार्थियोमे थे। उनको संस्कृत पढनेकी बहुत इच्छा थी, किन्तु तीन-तीन वार प्रयत्न करनेके बाद वह हताश हो चुके थे। लखनऊमे उन्होने मुझसे अपनी चिन्ता बतलाई थी, मैंने उन्हे प्रोत्साहन देते हुए कहा था, यदि कही एक जगह मुझे रहनेका मौका मिला तो सिखूंगा। रामसहायजी बच्चे नही थे। बचपनमे रमशा बादशाहके नामसे अजमेरका वह मुहल्ला काँपता था, जिसमे वह रहते थे। मुहल्लेकी सारी बालसेना रमशा बादशाह-की अवैतनिक सेवाके लिए तैयार थी। उस वक्त भी कोई अध्यापक भय दिखलाकर रमशा बादशाहको नही पढा सकता था। खैर, मैंने उन्हे स्वाभाविक ढगसे सस्कृत पढ़ाना शुरू किया। कथामे आये हुए सजीव शब्दोसे परिचय कराया। इसमे पडित सातवलेकरका 'सस्कृत स्वयशिक्षक' बडा सहायक साबित हुआ। रामसहायजीका आत्मविश्वास बढ चला, किन्तु उन्हे पूरा सन्तोष तब हुआ जब ग्वालियर ज़िलेके एक गाँवमे उन्होने पाणिनीय व्याकरण (सिद्धान्त कौमुदी) पढनेवाले एक पडितको सस्कृत बोलनेमे परास्त कर दिया।

वह महायुद्धका ज़माना था। चीज़ोका भाव बहुत चढ गया था, तो भी लोगोको विश्वास नही था, कि ब्रिटिश साम्राज्यको कोई भारी क्षति होगी या कमसे कम भारतके भाग्यमे पलटा खानेकी बातको तो कोई सोचता ही नही था। राजनीतिक चेतना शिक्षितोंमेंसे भी बहुत कममे थी। सौ वर्षसे अधिक हो गया, अग्रेज़ी शासन अपने हर एक विरोधको दबाते हुए जिस तरह दृढ होता गया, उससे स्वतन्त्रताका स्वप्न देखना लोगोके लिए असम्भव मालूम होता था। महेशपुरा रहते वक्त 'प्रताप' से राष्ट्रीय प्रगतिका कुछ-कुछ अनुभव होने लगा। रूसकी फर्वरीकी क्रान्तिकी बहुत

क्षीण खबरे भारतमे पहुँची। वस्तुत: हमे खबरे भी तो उतनी ही मिलने पाती थी, जिनके आनेकी हमारे अंग्रेज-प्रभु इजाजत देते थे। अग्रेज़ हार रहे है—हमारी यह धारणा समाचारोंके आधारपर उतनी नही थी, जितनी कि मनोकामनापर।

१९१७ ई० मे कोचके मन्नू महाराजके डाकू गिरोहका आसपासके इलाकेपर भारी आतंक था। वह कई जगह खबर देकर डाका मारने जाता था। कोई गिरोह और उसके सर्दारकी बहादुरी और गरीबपर्वरीकी तारीफ करते थे, कोई उन्हे अत्याचारी बतलाते थे। जाडोमे कितने ही दिनो तक तो महेशपुरामे बहुत आतक छा गया था, यद्यपि महेशपुरा उतना निहत्था न था। रियासतकी सरहदपर रहनेके कारण गैरकानूनी टोपीदार बन्दूकें वहाँ दर्जनों थी, किन्तु चुरा छिपाकर रखी दर्जनो बन्दूकोको जमाकर मरने-मारनेके लिए तैयार होकर आये डाकुओका मुकाविला करना आसान काम न था। खैर, महेशपुरामें डाका पडनेकी नौबत नही आई।

गाँवके एक ठाकुरके लडकेका ब्याह ग्वालियर रियासतके एक गाँवमे होनेवाला था। बारातमे ऊँट और बहलीकी सवारी थी। मै एक साँडनी (ऊँटनी)पर चढ कर गया था। बारात बागमे ठहरी थी, नाच नही था. नही तो मै न गया होता। बारातियोके पास काफी बन्दूके थी। ब्याह दिनमे हो रहा था, जो मेरे लिए नईसी बात थी। लडकीकी बात नही कह सकता, लडका ९, १० वर्षसे ज्यादाका न था, और दोपहरके वक्त, जिस वक्त कि ब्याहमन्त्र पढे जा रहे थे, नीदसे उसकी आँखे झँपी जाती थी। दोपहर बाद बारात खानेके लिए चली तो गाँवके शरारती लड़कोंने रास्तेके एक महुवेके दरख्तपर, बडे बीहड स्थानोमे मिट्टीकी कुल्हिया, लालमिर्चे और क्या-क्या चीजे टाँग रखी थी। बिना इन लक्ष्योको बेधे खाने जाना बरातियोके लिए शरमकी बात थी। लोगोने अपनी अपनी बन्दूके उठाईं, और निशान दागना शुरू किया। और सब तो गिर गये, किन्तु एक कुल्हिया दरख्तके शिखरपर ऐसी जगह टँगी हुई थी, कि किसीका निशाना ही नही लग रहा था। भोजनके लिए पगत बैठनेमे देर हो रही थी। शाम आती देख बरातियोने बेईमानीसे लक्ष्यवेध करना चाहा, और एक आदमी अपनी बन्दूककी नलीमे गोलीकी जगह रस्सी भरने लगा था। मै सब देख रहा था, मैंने कहा—ज़रासा बन्दूक मुझे तो दो। एक भरी हुई बन्दूक मेरे हाथमे थमाई गई, और लोग पडितजीकी ढिठाई देखनेको खडे हो गये। मैंने निशाना लिया, बन्दूककी कन्नी, कौयेको कुल्हियाकी सीधमे मिलाया, और घोडा दाव दिया। धडाकेकी आवाज हुई, और कुल्हिया चकनाचूर। यदि किसी राजकन्याका स्वयवर होता, तो जयमाला मेरे गलेमे पडती। खैर, लोगोकी वाह-वाहसे जयमाला

पकड़नेसे कम खुशी मुझे नहीं हुई, वहाँ यह बात संयोगसे भी हुई हो, किन्तु निशाना देना वैसे अच्छा लगता था। आसपास बन्दूकोंकी दूकान देखकर निशाना लगानेका मुझे शौक लग गया था। यदि किसी खुफिया पुलिसवालेको पता लगा होता, तो मुझे बम-पार्टीका आदमी समझता। इसी बरातकी एक और घटना है। एक साँडनीका एक छोटासा बच्चा था। कुछ बराती लड़के थे. वे उस बच्चे तथा उसकी माँ—जिसका भी कद छोटा था—की पीठपर चढ़ा करते, और वे माँ-बेटे बैठने नहीं पाते। बारातमें एक बड़ी ऊँटनी थी, जिसपर मैं चढ़कर आया था। वह बड़ी शैतान ऊँटनी थी। वह पास बँधी हुई थी, और लड़कोंकी गुस्ताखीसे मन ही मन कुढ़ रही थी। घूमते-घूमते एक बार उसने अपनी नकेल छुड़ा पाई, फिर एक शैतान लड़केके पीछे लपकी। बागके दरख्तोंमें चक्कर काटता आगे आगे वह बारह-तेरह वर्षका लड़का दौड़ रहा था, और पीछे-पीछे ऊँटनी। बराती अधिकांश खाना खाने गये थे। मेरे और दूसरे जो चन्द आदमी थे उनकी अक्ल काम नहीं करती थी। यदि दरख्त न होते तो ऊँटनीने कब न लड़के को पकड़ लिया होता, किन्तु लड़का दरख्तोंमें फुर्तीसे घूम पड़ता, ऊँटनीको वैसा करनेमें देर लगती। लड़का बदहवास था, और किसी वक्त भी गिर जानेवाला था, इसी समय हमारे पास खड़े एक लड़केने ईंटका टुकड़ा साधकर मारा। ऊँटनी रुक गई, देखा उसकी एक आँखसे खूनकी धार बह रही है।

अपनी ऊँटनीको कानी देखकर मालिक लड़केपर बहुत नाराज होने लगा। मैंने समझाया—आज यह एक आँख न जाती, तो इस लड़केका प्राण जाना निश्चित था। बेचारे शान्त हुए। ऊँटनीका क्रोध देखनेका मुझे वहाँ मौका मिला था।

महेशपुरा अच्छा खासा बड़ा गाँव है। जमींदार ठाकुर (राजपूत) लोग हैं, और मारपीट तथा राजपूती शान भी कुछ रखते हैं। उनमेंसे किसी-किसीका पन्ना-लालजीके घरसे कुछ वैमनस्य भी कभी रहता, किन्तु हम लोग सबसे अपना सम्बन्ध अच्छा रखना चाहते थे, और उसमें काफी सफलता भी मिली थी। गाँवके आसपास अब बड़े जंगल नहीं थे, किन्तु बुंदेलखंडकी और नदियोंकी भाँति महेशपुराके पासकी नदी भी बहुत नीचे बहती थी, जिससे आसपासकी कड़ी जमीन सदियोंसे कटते-कटते बड़े-बड़े कगारों और खड्डोंके रूपमें परिणत हो गई थी; जिनमें भेड़िये लकड़बग्घे रहा करते थे। मैं अक्सर शामको नदीपर शौच आदिके लिए जाता, लौटते हुए किसी मिट्टीकी पहाड़ीके शिखरपर बैठकर सन्ध्या करता, चाँदनीमें खासकर अधिक देर लगती। इस प्रकार मैं अपनी वाचनिक आस्तिकताको वास्तविक रूप देनेके प्रयत्नमें था। आर्यसमाजके धर्म-पक्षका समर्थक होनेसे अक्सर मैं जात-पाँतकी कड़ी आलो-

चना करते हुए स्वामी ब्रह्मानन्द आदिको भी लताड़ देता। वे कह देते—यदि आपको लड़की-लड़के व्याहने होते, तब न मालूम होता।

बरसातके दिनोंमे महेशपुरासे बहुत कम लोग कोच आते-जाते है। कालीमिट्टी पानी पड़ते ही जोरसे सट जानेवाली लेईकी गहरी तहके रूपमे परिणत हो जाती, और फिर उसमे जूता भी पहिनकर चलना असम्भव होता। कीचडकी मोटी तहमे लिपटे पहियोवाली गाड़ीको बैल खीच न सकते थे। साँडनी तो बरसातमे सिर्फ रेगिस्तान ही मे चल सकती है, इसलिए पन्नालालजीकी साँडनी भी बेकार थी। बरसातके चार महीनोंमे कैलियासे हमे अपनी डाक मिल जाया करती थी। कैलियाके दारोगा उस वक्त भूत-प्रेत झाड़नेमे बड़ी ख्याति प्राप्त कर रहे थे। जुमाके दिन(?) वहाँ मेलासा लगने लगा था। दारोगा साहेबको पुलीसके कामके लिए फुर्सत कहाँ थी? ऊपरवाले अफसरोको मालूम हुआ, तो उन्होंने उन्हे लाईन हाज़िर करा लिया। दारोगाजीकी दुआसे फायदा उठानेवाले स्त्री-पुरुषोको बहुत असन्तोष हुआ, किन्तु सर्कार उनकी कब सुननेवाली थी?

महेशपुरामे रहते ही वक्त अखबारोसे रूसी-क्रान्तिकी खबरोने मेरे ऊपर एक नया प्रभाव जमाना शुरू किया। इन खबरोसे मालूम होता था, कि वहाँ गरीबो—मजदूरो किसानो—की भी एक पार्टी है, जो गरीबोंके हकके लिए लड रही है, वह भोग और श्रमके समान विभाजनका प्रचार करती है। मुझे ये ख्याल अखबारोके बहुतसे अंकोंको पढ़ते हुए सिर्फ बीज रूपमे मालूम हुए। मैंने उस वक्त तक हिन्दी या उर्दूमे साम्यवादपर कोई पुस्तक पढ़ी न थी, शायद वह मौजूद भी न थी। किसी जानकारने इस बारेमे वार्तालाप भी नही किया था, तो भी भोग-श्रम-साम्यका सिद्धान्त बहुत जल्दीसे मेरे स्वभावका एक अग बन गया। मालूम होता है—कोई आदमी अनजान किसी ऐसी चीजकी खोजमे हो जिसकी आकृति और नामको भी वह भूल गया हो, और वह चीज़ एक दिन अकस्मात् उसे मिल जावे। मैंने उस बीजको अपने आप सोचकर विकसित किया। आसपासके लोगोको मैं उसके गुणोको समझाता और साथ ही आर्य-सामाजिक सिद्धान्तो तथा साम्यवादमे समन्वय करनेकी कोशिश करता।

स्वामी बोधानन्दने मुझे पाली त्रिपिटकके बारेमे अनागरिक धर्मपालका पता दिया था। उनको लिखनेपर उन्होने बर्मी, सिंहली, स्यामी अक्षरोमे छपे त्रिपिटक-ग्रंथोके प्राप्तिस्थान लिखे, जिनमेंसे सिंहल और बर्मी लिपिमे छपे कुछ पालि ग्रथ मैंने मँगा भी लिये। महाबोधि-सोसाइटीसे डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषणका अग्रेज़ी-अनुवाद-सहित नागरी अक्षरोमे छपा 'कच्चान' व्याकरण मैंने मँगाया, जिससे सिंहली, स्यामी,

बर्मी लिपियाँ सीखना आसान हो गया। वहाँ पढानेवाला तो कोई था नही, किन्तु फुर्सतके वक्त मैं स्वय कुछ पत्रोको पढता।

बरसात (१९१७)के अन्त होते-होते यह पता लग गया, कि यदि विद्यालयको चलाना है, तो उसे गाँवसे हटाकर रेलके किनारे किसी बडे स्थानपर ले जाना चाहिए। मैं अभी तक इस बातपर जोर नही देता था, क्योकि इससे पन्नालालजी आदिको कष्ट होता। लेकिन धीरे-धीरे यह बात उन्हे भी स्पष्ट होने लगी, खासकर स्वामी ब्रह्मानन्दजीको। एक बार शायद भगवतीप्रसाद या किसी औरके साथ वह काल्पी गये, वहाँसे लौटनेपर उन्होने कहा—विद्यालयके लिए उपयुक्त स्थान, बस, काल्पी ही है।

बरसातके बाद बँचे-खुँचे अनाजको हमने गदहोपर लादा, और कोचके लिए रवाना हुए। महेशपुरावालोको और हमे भी एक दूसरेसे अलग होनेका रज हुआ, किन्तु यदि वियोग न हो तो नये स्नेहसूत्र भी तो पैदा नही हो सकते।

रेलसे हम काल्पी पहुँचे। हमारे साथी पहिले ही आकर वहाँकी ठाकुरानीकी एक लम्बी-चौडी हवेली—नीचे-ऊपरके मकान तथा अलग बैठकेके साथ किराया कर लिया था। मकान काफी हवादार, पक्का, साफ-सुथरा था। हम लोग रोज सबेरे यमुनाजी स्नान करने जाते, शामको दो-ढाई मील टहलते—कभी रेलकी सडकके साथ पुल पार तक, कभी काल्पीके वीरानेकी ओर। काल्पीमे एक पुराना आर्यसमाज था, जिसका अपना मन्दिर था, और उसके कुछ उत्साही सदस्य थे। पडित शिवचरणलाल 'आर्यपुरोहित' बहुत पुराने आर्यसमाजी थे, और हम लोगोकी तरह सामाजिक सुधारमे उग्रतावादी न होते हुए भी आर्यसमाजके प्रबल पक्षपाती थे। वह सारस्वत ब्राह्मण थे, इसलिए खत्री यजमानोके बिना काल्पीमे उनका आना हो ही नही सकता था।

काल्पी आनेके पहिले महेशपुरामे जमा हुई जमाअतमेसे भगवती भाई अब घर जा रहे थे। योगेश अपने साथ मेरे सबसे छोटे भाई श्रीनाथको भी लेते आये थे। मैने सोचा था, अभी उसकी पढनेकी उम्र है, इसलिए कुछ पढ जाये तो अच्छा; किन्तु उसका मन पढाईमे लग नही रहा था, दूसरे मै विद्यालयपर उन्ही लोगोका भार देनेके लिए तैयार था, जो मिश्नरी कामके लिए तैयार होनेवाले थे; श्रीनाथकी सिर्फ इतनी ही योग्यता थी, कि वह मेरा भाई था। उसे भगवती भाईके साथ सिकन्दराबाद भेजते हुए मैने रास्तेके खर्चके लिए उसके हाथके चाँदीके कडे बेचवा दिये, जिसपर मेरे कुछ साथियोने टिप्पणी भी की—'छोटे लडकेके हाथका जेवर नही बेचवाना चाहिए था।' किन्तु मै कोई वेतन तो लेता नही था, फिर किस फडसे उसे सफर-खर्च

देता। श्रीनाथ सिकन्दराबाद भी नही ठहरा, और पढने-लिखने, खाने-पीनेका ठीक प्रबन्ध हो जानेपर भी झूठी तकलीफोको लिखकर उसने श्यामलालको बुलवाया और घर लौट गया।

काल्पीमें बाजारके दिन हम लोग धर्मप्रचार करने जाते। मुकुन्दलाल और यशवन्तके हार्मोनियमपर भजन होते, तथा हम लोगोमेसे कितनोके व्याख्यान—व्याख्यान आर्यसमाजी ढगके, जिसमे बीच-बीचमें राष्ट्रीयताकी पुट भी रहती। स्वामी ब्रह्मानन्दजी कभी बाहर घूमने जाते, नही तो वही रहते।१९१७के आखिरी महीनोमे होमरूलका आन्दोलन ज़ोर पकडने लगा था। एनी बेसट, और आरुडलकी नजरबन्दीसे सनसनी फैली हुई थी, और लोकमान्य तिलककी मुक्तिसे गर्मदली अश मुल्कमे जोर पकड रहा था। होमरूल आन्दोलनको जनतामे फैलानेके लिए पडित वेकटेशनारायण तिवारीके सम्पादकत्वमे कितनी ही छोटी-छोटी पुस्तिकाये निकली थी, जिनमे जालौन ज़िलेके एक राष्ट्रीय कर्मीका आल्हा भी था। 'भारत-भारती' पहिले हीसे हिन्दी भाषी जनतामे प्रिय हो रही थी, किन्तु अब उसने राष्ट्रीय सगीत-पुस्तकका रूप धारण कर लिया था। मेरे कोचके एक ब्राह्मण मित्रने तो अपने बच्चो तकको उसके बहुतसे अश कठस्थ करा दिये थे। 'प्रताप'को मैं उसके आरभिक समयसे ही पढने लगा था, किन्तु पहिले-पहिल काल्पीमे ही वहाँकी एक धर्मशालामे मैंने श्री गणेशशकर विद्यार्थीका व्याख्यान सुना। उनके निर्मासल मुखपर चश्मे लगी आँखे असाधारण तौरसे चमकीली मालूम होती थी।

जाडेमे कुछ समय बीतनेपर मालूम हुआ, पोखरायाँ (कानपुर-ज़िले)मे प्लेग जोर पकडे हुए है, लोग बहुत मर रहे है। आरम्भिक युगके आर्यसमाजियोमें निर्भय हो बीमारो, अनाथो, गरीबोकी सेवा करनेवाले वीरोकी कितनी ही कहानियाँ मुझे सुननेको मिली थी। पडित रलाराम बेजवाडिया—रेलवेके साधारण पैंटमेन—अपनी ऐसी ही सेवाओसे आर्यसमाजके एक श्रद्धेय पुरुष बन गये थे। अपनी सात-आठ रुपयेकी तन्ख्वाहमेंसे भी बचाकर वह कुछ पुस्तके बाँटते, कुछ दवाइयाँ ले प्लेगके दिनोंमे—और उस समय सारे उत्तरीय भारतमे प्लेगका भारी प्रकोप था—रोगियोकी सेवा करते। एक जैन-परिवारके बारेमे कहा जाता है, वह आर्यसमाजियोसे बहुत चिढता था। एक बार उसके घरके सभी लोग बीमार पड गये, कुछ मर गये, बाकीको पानी तक देनेवाला कोई न था। पडित रलाराम वहाँ पहुँचे। एक-दो दिन वे लोग पतित समझकर उनके हाथकी दवा नही पीते। घरके तरुण लडकेकी गिल्टी पक गई थी। उस वक्त डाक्टर कहाँ मिलते। पडित रलारामने चीरनेके लिए अपना

चाकू निकाला, किन्तु उसमे मोर्चा लगा था। उन्होंने गिल्टीमे मुँह लगाकर पीबको चूसकर फेंक दिया। घरवालोपर असाधारण प्रभाव पड़ा, और तबसे वह पडित रलारामको देवतासा मानने लगे। राजपूतानेके अकालमे सेवा करते, बाँटनेके लिए झोलेमे डाल चनेके बोझसे कैसे एक बार महात्मा हंसराज गिर गये थे, यह कथा भी मैंने सुनी थी। मेरे रहनेसे कुछ ही वर्ष पहिले आगरेमे प्लेगमे मरे तीन दिनके सडे मुर्देको निकालकर फूँकनेका साहसकर कैसे एक आर्यसमाजीने जान-बूझकर मृत्युको निमन्त्रण दिया था, यह मेरे लिए ताज़ी घटना थी। इस प्रकार आर्यसमाजने सिर्फ जबानी जमाखर्च ही नही प्राणोकी आहुति और पीड़ितोकी सेवा करके अपने लिए एक आकर्षक इतिहास तैयार किया था। मैं कितने दिनोसे लालसा रखता था, ऐसी सेवाके लिए।

मैं और यागेश पोखरायाँ गये। हमने अपने दोस्तोसे चन्द रुपये माँग लिये थे। पोखरायाँके डिस्पेन्सरीके डाक्टर बडे सज्जन थे। वह स्वय तो मरीजोके घर नही जा सकते थे, किन्तु उन्होने हमसे कह दिया कि जितनी दवाकी ज़रूरत हो हमसे ले जावे। दूध-साबूदानेका इन्तिज़ाम हमने अपने रुपयोसे कर लिया। बाज़ारके बहुत लोग घर छोड गये थे, और बहुतसे किस्मतपर सब कुछ छोड घरमे ही पड़े हुए थे। हम लोग एक खाली गोलेमे ठहरे। मरीज़ोका टेम्प्रेचर लेना, दवा देना, और बैठकर कुछ सेवा-सुश्रूषा करना हमारा काम था। किसी-किसीकी गम्भीर बीमारीके बारेमे डाक्टरसे भी सलाह लेते। हम लोग नगे पैर थे, प्लेगका कोई टीका-टीका नही लिया था, मौत हमारे लिए डरकी बात न थी, इसलिए हम लोग निधडक रात-दिन घूमते थे। एक दिन पता लगा, कि सरायमें एक भठिहारा बीमार पडा है। देखा, घरके कच्चे ओसारेमे नीचे धँसी खाटपर एक २४,२५ सालका साँवला नौजवान पडा है। घरमे क्या सरायमे भी कोई नही था। शायद दो दिनसे उसे पानी भी देने कोई नही आया। जब धनियोको भी उस बीमारीमे पानी देनेवाले दुर्लभ थे, तो हाथ-पैर चलाकर शामकी रोज़ी चलानेवाले भठिहारेकी कौन सुध लेता? शायद हमने अन्त तक उसे बेहोश ही देखा। हमने उसके पास रहनेकी अपनी ड्यूटी बाँध ली। रातको लालटेन लिये उसके पास पडे रहते। डाक्टर साहेबके थर्मामिटरको लालटेनके पाससे देखते हुए मैने उसे गर्म शीशेसे सटादिया, और देखा पारा थर्मा-मीटर तोडकर उड गया। डाक्टर साहेबने उसके लिए कुछ नही कहा। दो या तीन दिनकी लगातार सेवाओके बाद भी भटिहारा बचा नही। हमे इस बातका सन्तोष रहा, कि हमने हिन्दू-मुसलमानका ज़रा भी ख्याल किये बगैर उस गरीबकी सेवा की।

एक और शोचनीय मृत्यु एक खाते-पीते अच्छे घरके नौजवान लडकेकी हुई, जिसकी तरुण स्त्री हमेशाके लिए विधवा बननेको मौजद थी। जब हम उस घरमे जाते, तो घरवालोको बडी सान्त्वना होती। हम कुछ आशा और ढारस दिलाते। वह देखते थे, हम जानकी पर्वाह न कर उस आगमे रात-दिन विचर रहे है। दूध-साबूदानेके पैसोकी हमे कमी नही थी। हमारे भीतर एक तरहका अजीब उत्साह था।

लडाई और गम्भीर हो चली थी। काल्पीके मारवाड़ी सेठकी गिरनी-फेक्टरी (रुईकी गाँठ बॉधनेका कारखाना) अब भुसकी गाँठे बाँधकर लडाईके मैदानमे भेज रही थी। काल्पीके तहसीलदार साहेब आर्यसमाजसे कुछ सहानुभूति रखते थे, और हमारे साथ भी उनका सम्बन्ध अच्छा था। गिरनी फेक्टरीमे एकसे अधिक बार ब्रिटिश-विजयकामनाके लिए भगवान्से प्रार्थना की गई थी, जिसमे एकाध प्रार्थना करानेका भार मेरे ऊपर पडा। मेरी प्रार्थनामे ब्रिटिशका नाम भी नही आता, और मै सत्य और न्यायपर आरूढ शक्तियोकी विजयकी कामना करता—कुछ लोगोने इस बातको खासतौरसे मार्क किया था।

जाडेके दिनोमे कभी-कभी जिलेके भिन्न-भिन्न भागोमे मुझे व्याख्यान देनेके लिए जाना पड़ता। उरईके तरुण आर्यसमाजियोने पोखरेपरके एक शिवालयको ही आर्यसमाज और उसके पुस्तकालयके रूपमे परिणत कर दिया था। वहाँ मै अवसर व्याख्यान देने जाता। राय साहेब पडित गोपालदास आर्यसमाजके एक श्रद्धालु भक्त थे, किन्तु उनकी सर्कारपरस्तीके कारण मै उनसे नफरत करता। जालोनकी डिस्पेन्सरीके डाक्टर वहाँके आर्यसमाजके कामोमे बहुत भाग लेते, सरकारी नौकर होनेसे उनकी मजबूरीको हम जानते थे, और इसलिए उनसे हमारी पटरी अच्छी जमती। वहाँके आर्यसमाजके जल्सोमे स्थानीय पादरी जानसन (दर्यावसिह) बराबर शका-समाधान करने आते, और शका-समाधानके लिए मुझमे एक खास प्रतिभा थी, जिसका लोहा सबको मानना पडता। कई साल बाद पादरी जानसनका तबादला एकमामे हो गया। मै उनसे बडे प्रेमसे मिलता, और हमारा बर्ताव गहरे दोस्तकी तरहका होता; हालॉकि राजनीतिक क्षेत्रमे काफी ख्याति प्राप्त हो जाने तथा हिन्दूसभाके ज़ोरके जमानेमे ईसाई बनानेवाले आदमीके प्रति सहानुभूतिकी उस समय आशा नही रखी जाती थी। मिशनके पास पीछे पैसा नही रह गया, और पादरी जानसनको होमियोपैथीकी दवा करके बड़ी गरीबीसे दिन गुजारा करना पडता। उनकी उस अवस्थाको जब मै जालौनवाली पोशाकसे मुकाबिला करता, तो मुझे वहुत दु ख होता। काल्पीमे भी मेथोडिस्ट मिशनके एक पादरी रहते थे। उनसे हमारी वडी दोस्ती

हो गई थी। बहसके वक्त कडीसे कड़ी आलोचना करनेवाले हम लोगोंको जब वे अपने साथ बिना शुद्धिके बिठलाकर रोटी-दाल खिलाते देखते, तो उनको पहिले तो इसका अर्थ समझना मुश्किल था।

धौलपुरमें आर्यसमाजके मन्दिरको तोड़कर राज्यने घोडसाल बनाई थी। इसकी खबर जब बाहरके आर्यसमाजियोंको लगी, तो हल्ला मचा। सत्याग्रहकी तैयारी शुरू हुई। कितने ही आर्यसमाजी धौलपुर पहुँचे, जिनमें मैं और भाई साहेबभी थे। पीछे स्वामी श्रद्धानन्दके बीचमें पडनेसे मामला तै हो गया।

१९१७ समाप्त हो रहा था, जबकि एक दिन स्वामी ब्रह्मानन्दजीने प्रस्ताव किया, और मैंने भी हल्के दिलसे एक पोस्टकार्ड लिखकर परसा भेज दिया। तीसरे ही चौथे दिन महन्तजीका तार पहुँचा, कि सर्वेके काममें मठकी जमीदारीकी देख-भाल करनेके लिए तुम्हारी बडी जरूरत है, तुरन्त चले आओ। शायद तारकेसाथ कुछ रुपये भी थे। मैंने तो साधारण कुशल-प्रसन्न तथा वरदराजके बारेमें कुछ जाननेके लिए पत्र लिखा था, मैं इसकी आशा नहीं रखता था। स्वामीजी जोर देनेलगे—जाओ। मैंने कहा—मैं आर्यसमाजी हूँ, अब वैष्णव-मठसे मेरा सम्बन्ध क्या? वह जोर देते ही रहे, मैं हिला नहीं। इसी बीचमें महन्तजीका विस्तृत पत्र पहुँचा। इतने दिनोंमें मेरी कोई खबर न पानेसे वे कितने चिन्तित थे। वृद्धावस्थाके कारण वह कैसे कुछ दिनोंके मेहमान हैं। यदि मठकी सम्पत्तिको अब न सँभाला, तो इसका खमाग पीछे तुम्हें भी भोगना पडेगा आदि। वह पत्र उनकी असमर्थता और सहायताके लिए दयनीय पुकारसे भरा हुआ था। अबकी बार स्वामी ब्रह्मानन्दजीका जोर लगाना व्यर्थ नहीं गया। मठकी सम्पत्तिकी रक्षा तथा बूढे महन्तजीकी थोडीसी सहायता कर देनेमें क्या हर्ज है—सोचकर मैं परसा जानेके लिए तैयार हो गया।

रेलपर सवार होनेपर दिमागमें आया, कि वैरागी बानेमें चलना होगा। मनमें हिचकिचाहट होने लगी, लेकिन अब तो कदम उठ चुका था। रास्तेमें कहींसे कंठी ले गलेमें बाँधी। शिर-मुँहके बाल साफ किये और बनारस होते परसा पहुँचा। उस वक्त परसा, बहरौली, और जानकीनगरमें सर्वेका काम चल रहा था—कहीं खानापूरी हो रही थी, कहीं तस्दीक। सर्वेके अमीन अलग अपनी कमाईके लिए कागज़ पर झूठे इन्दराज कर रहे थे, और मठके दीवान-पटवारी अलग। मठके सबसे बडे गाँव बहरौलीमें बहुतसे तनाज़े पडे थे। किसान डटे हुए थे, और महन्तजी भी घबराये हुए थे। मेरे आनेपर उन्हें बडी खुशी हुई। जाडा शुरू हो रहा था। महन्तजीने फलालैनकी चौबन्दी बनानेका प्रस्ताव किया। मैंने मोटिया (खद्दर)की मिर्ज़ईके

लिए कहा। महन्तजीने कहा—ऐसा करनेसे मेरी बदनामी होगी, लोग कहेंगे कजूसीके ख्यालसे अपने पट्टशिष्यको महन्तजी मोटियाका कपडा पहनाते है। अन्तमे स्वदेशी ऊनी कपडेपर समझौता हुआ। मोटियाकी मिर्जईको भी मैने अलगसे बनवा ही लिया। शौकीनी, नौकर-चाकरोके साथ बर्ताव सबमे मेरा तरीका बदला हुआ था। जब ज़मीदारीके गाँवमे पहुँचा, और मैने कह दिया कि न एक छटाँक तर्कारी मुफ्त ली जावेगी, न चुल्लूभर दूध, तो नौकरोसे बढकर आश्चर्य और आपत्ति असामियोने की। कहने लगे—आप साधु महात्मा है। मै उत्तर देता—ठीक, किन्तु जबमै साधु महात्माके तौरपर आऊँ, तो मुझे खाने-पीनेकी चीजे मुफ्त लेनेमे उज्र न होगा। इस वक्त तो मै तुम्हारे जमीदारकी तरह आया हूँ।

सर्वेके कागज़ जब मेरे सामने आये, तो पहिले तो बिल्कुल नई चीज़ तथा झगडो और सर्वे नम्बरोकी भारी सख्या होनेसे मेरी अक्ल चकराई। लेकिन अब दूसरा चारा न था। कागज देखने लगा। मठके दीवान, और गाँवके पटवारी मुझे कागजका रास्ता बतलानेकी जगह उस जगलमे उलझा देनेके लिए ज्यादा मुस्तैद थे। पुराने सर्वेके कागज़ोसे नये कागजोंका मुकाबिला शुरू किया। झगडालू खेतोंपर पूछ-ताछ शुरू की। और फिर जब मठकी तरफसे दिये गये झूठे तनाज़ोको हटाना शुरू किया, तो मठके अम्ला-लोग महन्तजी तक दौड गये—पुजारीजी तो हज़ारोकी जायदादको पानीमे फेंक देना चाहते है। लेकिन मेरे तनाज़ोके हटानेपर असामियोकी ओरसे भी झूठे तनाज़े हटाये जाने लगे। मैने उन्हे दिखलाकर बतलाया, कि झूठे तनाजोसे हम ज्यादा लाभमे न रहेगे। महन्तजीने अम्लोको मुझसे ही आकर भुगतनेके लिए कहा। मैने दीवानकी दी हुई कितनी ही रसीदे पकडी, जो रिश्वत लेकर खेतपर असामीका कब्ज़ा साबित करनेके लिए लिखी गई थी। ऐसी एक रसीदको एक जुलाहेने डिप्टी-के सामने पेश किया। दीवानने उसे पहिलेके पटवारीके नामसे लिखी थी। मैने जाली बतलाकर रसीदको रख रखनेके लिए कहा। डिप्टी मेरे बर्तावसे समझ गये थे, कि मै सारी शक्ति लगाकर सच्चाई तक पहुँचनेकी उनसे भी ज्यादा कोशिश करता हूँ, इसलिए वह मेरी बातोका बहुत यकीन करते थे। जब रसीद रख ली गई, और जाली रसीदपर मुकदमा चल जानेका डौल मालूम होने लगा, तो बूढा असामी मेरे पास दौडा आया, और अपने जवान लडकेको लानत-मलामत करते हुए बहुत विनती करने लगा। मैने उसे छुडवा दिया। दूसरी घटना बहरौलीके पलक ओझाकी है। उन्होने सर्वेमे रुपया देकर मालिकके गैरमजरूआ जमीनकी सिसवानी (शीशमके झुर्मुट)को अपने नाम लिखवा लिया था। शीशम खुदरो दरख्त होते है, और जमीन

मालिककी थी ही, फिर वह पलक ओझाका कैसे हो सकता था। मैंने उज्र किया। डिप्टीने मेरी बातके औचित्यको देखा, किन्तु इधर कई उज्रदारियोमे मेरे पक्षमे फैसला देते-देते अब वह एकाध फैसला असामीके पक्षमे करना चाहते थे, वह उन तनाजोका ख्याल नही कर रहे थे, जिन्हे कि मैने वापस ले लिया था। खैर, उन्होने मालिककी गैरमजरूआ जमीनमे भी खुदरो दरख्तकी लकडीका आधा असामीको लिख दिया। मैंने पलक ओझाको बहुत समझानेकी कोशिश की, किन्तु वह 'घर आई लच्छिमी'को लौटानेको तैयार न हुए। मैंने उनके कागजोको फिरसे देखना शुरू किया। देखा पुरानी ही मालगुजारीपर पुराने रकबेसे आधा एकड अधिक जमीन हालके सर्वेमे उनके नाम दर्ज है। मैंने उस बढे रकबेकी ज़मीनको पुरानी जमाबन्दीसे अलग कर नई लगान बाँधनेका दावा किया। डिप्टी उसे माननेके लिए तैयार थे, क्योकि पलक ओझाके पास कागज़ न था। इस प्रकार शीशमकी लकडी उन्हें उतनी नही मिली, जितनी कि सालाना मालगुजारी उनके शिरपर बँध गई। वस्तुत आधा एकड अधिक ज़मीन मालिकने उससे बेहतर जमीन लेकर बदलेमे दिया था, किन्तु यह सब खानगी हुआ था, जिसका पलक ओझाके पास कोई सबूत न था। वहरौलीके हजार एकडसे अधिककी जमीनमे सैकडो असामियोसे वास्ता पडा, लेकिन यही सिर्फ एक मामला था, जिसमे मैंने पलक ओझाके साथ अन्याय किया, लेकिन इसके कारण खुद वही थे। यदि शीशमोपर झूठा दावा न किये होते, तो मुझे ज़िद न होती।

जिन दिनो बहरौलीमे सर्वेका काम हो रहा था, उसी वक्त जोरका इन्फ्लुयेजा भी चल रहा था। मुझे याद है, एक कोइरी भगतका। वह अनपढ मेहनती किसान था, किसीकी सगतसे राधास्वामी मतका अनुयायी बन गया था। मुझे मालूम हुआ। मै उससे राधास्वामी मतपर बाते करता। आगरा और लाहौरमे रहते मुझे उसके बारेमे जितनी जानकारी थी, उतनी कोइरी भगतको कहाँ होती? वह बडी दिलचस्पीसे मेरी बाते सुनता, और मै भी उससे राधास्वामी मतके कुछ भजन सुनता। एक शनिवारको सर्वे-कैम्पमे मैंने उसे देखा था, और सोमवारको मालूम हुआ वह तो मर गया। तेज आँधीमे जैसे आम गिरकर ज़मीनपर पट जाते है, इन्फ्लुयेजाकी बीमारीने भी उसी तरह आदमियोकी लाशोसे धरतीको पाट दिया था। कितनी ही नदियोके बारेमे, तो लोग कहते थे, कि आदमीकी लाशे इतनी अधिक थी, कि उन्हे नभचर-जलचर भी नही खा सकते, और पानीपर आदमीके बदनकी चर्बी तेलकी तरह तैरती थी।

परसामे महन्तजी जोतिसियोसे पत्रे दिखला रहे थे—'अब मेरी जिन्दगीका

कौन ठिकाना है। रामउदारके नाम लिख-पढ देना चाहिए।' मैंने महन्तजीको साफ तौरसे समझानेकी कोशिश की, कि मैं महन्त हर्गिज नही बनूँगा। मैं मठकी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए आ गया हूँ। मुझे पढना है, और देशका काम करना है। आपको महन्त बनाना है, तो वरदराजको बनावे, वह बाकी शिष्योमे सबसे काबिल भी है।

बहरौलीका काम खतम होते ही मैने जानेकी इजाजत माँगी। कलकत्ता वेद-मध्यमा परीक्षाका फार्म मैं काल्पीसे भर चुका था, यह वह जान गये थे, और मेरी पढाईमे बाधा नही डालना चाहते थे, इसलिए उन्होने रुकावट नही की। वेद-मध्यमा परीक्षा देनेके लिए मैंने काल्पीके एक विद्यार्थी हरदत्त––जो कितने ही वर्षो तक गुरुकुलकागडीमे पढते रहे थे––को उत्साहित किया था। उनके पढाते वक्त अपने लिए भी तैयारी हो ही जाती थी, इसलिए मैंने किसी दूसरे गुरुके नामसे और हरदत्तजीने मेरे नामसे जबलपुर-केन्द्रसे परीक्षाका फार्म भरा। जबलपुर रवाना होते वक्त एक दिन पहिले मीठी पावरोटी पाथेयके लिए बनाई जाने लगी। पावरोटी तो नही बन सकी, हाँ उसका मीठा परावठा बन गया। हम लोगोंने जबलपुरमे जा परीक्षा दी। दोनों ही पास हुए, मैं प्रथम श्रेणीमे और शायद हरदत्तजी भी प्रथम ही श्रेणीमे।

परसा फिर भूल गया। मैं काल्पीमे पढने-पढानेके काममे लग गया। १९१८के प्रथम पाद तक छन-छुनकर काफी खबरे रूसी मजदूर क्रान्तिकी मेरे कानों तक पहुँची थी। काल्पीमे उर्दू-हिन्दी-अग्रेजीके अखबार मिल जाया करते थे, और तीन पक्तिकी रूस-सम्बन्धी खबर भी मुझे काफी चिन्तनका मसाला दे देती। मैंने इन उडती खबरों, और जब-तब समाचारोसे सुन लिये साम्यवादके विकृत आकारको अपनी समझसे सुलझाकर एक साम्यवादी जगत्की कल्पना करने लगा। १९१८के आदिम महीनो हीमे मैंने इस विषयपर एक पुस्तक लिखनी चाही थी, और उसका खाका बना लिया था, किन्तु विद्यालय बन्द करनेके बाद वह खाका मेरी नोटबुकके साथ यागेशके पास रहा, और पीछे गुम हो गया। उस पुस्तकको एक दूसरे ढगसे सस्कृत पद्योमें १९२२मे मैंने लिखना चाहा, किन्तु वह भी कुछ सर्गो तक ही रह गई, और अन्तमे वह काम 'बाईसवी सदी'के नामसे १९२३-२४ ई०मे हजारीबाग जेलमे पूरा हुआ।

महेशपुरामे ही विद्यालयका रग होनहार जैसा नही मालूम होता था, काल्पीमे हम अच्छे दिनोंकी आशासे आये थे, किन्तु यहाँ भी अवस्था सुधरी नही। आर्थिक अवस्था दिनपर दिन गिरती गई। श्री पन्नालालका ही दान स्थायी था, बाकी दिशाओसे हमे प्रोत्साहन नही मिला। मकानमे हमने पहिले बैठकेको छोडा, पीछे कोठेके

आधे भागको भी छोड दिया। रसोइया हटाया गया, और हम लोग खुद वारी बाँध-कर रसोई वनाने लगे। खानेमे कमी होते-होते जौ-चनेकी रोटी और दाल या आलूकी तर्कारीमेसे एक वनाते, दोपहरके भोजनमेंहीसे थोडा शामके लिए रख दिया जाता। मुझे अपने लिए तो ख्याल न था, क्योकि भ्रमणमे कितनी ही वार इससे भी खराव खानेको खाता रहा; किन्तु अपने साथियो मुकन्दराम और यशवन्तको रोटीका टुकडा गिलासके पानीके सहारे गलेसे नीचे उतारते देख कभी-कभी दिलमे ठेस लगती, यद्यपि मै वरावर हर वातमे समभाग लेकर उन्हे उत्साहित करता रहता। रामसहायजी काल्पी आनेसे थोडेही समय पहिले चले गये थे, और तरुण सन्यासी स्वामी उनसे भी पहिले। यशवन्तके लिए चिट्ठीपर चिट्ठी आ रही थी और वह लौटनेके पक्के इरादेसे घर गया, किन्तु वह फिर नही लौट सका। अव वहाँ तीन ही चार मूर्तियाँ रह गई थी।

पढानेके अतिरिक्त मुझे कभी-कभी प्रचारार्थ वाहर भी (ज्यादातर जालौन जिलेके भीतर ही) जाना पडता। दाताओको प्रसन्न करनेके लिए कभी-कभी वारातोमे भी जाता। एक वारका किस्सा याद है। वारात कई मील दूर गई थी। हम लोगोको वैलगाडियोमे जाना पडा। मेरे साथ विद्यालयकी भजन-मडली भी थी। वहाँ जाने-पर मालूम हुआ, लडकीवालोने वेश्या (वेडिनी)की नाच अलगसे कर रखी है। सयमवादी हम लोगोंके लिए वहाँ रहना मुश्किल था, किन्तु चले आनेका मतलव था भजनमडलीको मिलनेवाले रुपयेकी हानि। भजनमडलीको हर महीने हमे चालीस रुपये देने पडते थे। मै नाचमे जा ही कैसे सकता था, किन्तु जहाँ ठहरा था वहाँसे भी वेश्याका गाना सुनाई पडता था। वह एक स्थानीय भजन (शायद लेद) गा रही थी, जिसका राग मुझे पसन्द आ रहा था। जन-सगीतकी ओर मेरा स्नेह वढता जा रहा था, यह शायद राजनीतिक चेतना और साम्यवादकी ओर वढती हुई रुचिके कारण हो रहा था। उसी गाँवमे आज़मगढ जिलेका एक तरुण रहा करता था। यद्यपि मै अपने ही जन्मप्रान्तमे था, किन्तु जन्म-ज़िला उससे भी नज़दीकका सम्वन्ध रखता है, इसलिए तरुणसे जव उसका गाँव मदुरीके पास सुना, तो मुझे एक अजव तरहका खिचाव मालूम हुआ। वह भी सैलानी तवियतका अल्हड जवान था। जोतिससे उसे कुछ पैसे मिल जाते थे। वढिया साफा, जोधपुरी विरजिस्, कोट, वूट, पहिनकर ठाटवाटसे रहता था, कुछ थोडा सगीतका भी शौक था, और घरमे हार-मोनियम् रखे हुए था। कमाना और उड़ाना यही उसका आदर्श-वाक्य था।

जालौन आर्यसमाजके वार्षिकोत्सवमें इन्द्रवर्मा भी शामिल हुए थे। इन्द्रवर्माका

साल ही दो सालसे मेरा परिचय हुआ था, किन्तु मै उन्हे स्वाभाविक वक्ता मानता था। विशालकायके साथ, उनकी गम्भीर गर्जना खास चीज़ थी ही, किन्तु जिस वक्त वह अपने विषयका सजीव चित्र खीचते, उस वक्त जनताको रुलाना, हँसाना उनके बाये हाथका खेल होता। अभी हालमे उन्होने महोबामे कई व्याख्यान दिये थे, जिनमे सनातनियो और ईसाइयोका कुछ खडन भी हुआ था। सनातनी शास्त्रार्थपर तुले हुए थे। नियम तै करनेके लिए लिखा-पढी हो रही थी। इन्द्र वर्मा मेरी बहस-मुबाहिसा तथा सस्कृतकी योग्यतासे वाकिफ थे, इसलिए उन्होंने आग्रह किया कि मै उनके साथ जरूर महोबा चलूँ। महोबाका ऐतिहासिक नाम कुछ आकर्षक था, और उससे भी आकर्षक था, पादरी ज्वालासिंहके साथ बहस करनेका मौका। मै भी उनके साथ महोबा गया।

सनातन धर्मी शास्त्रार्थके लिए हुज्जत कर रहे थे—'सस्कृतमे ही शास्त्रार्थ होना चाहिए।' हमने कहा—'फिर जनता क्या मल्लू बनकर बैठी रहेगी ? सस्कृत और हिन्दी दोनोंमे शास्त्रार्थ हो।' आदि आदि। ईसाइयोपर जो प्रहार हुआ था, उसका जवाब देनेके लिए उन्होंने पादरी ज्वालासिंहको बुलाया था। शामके वक्त चिराग जलनेके बाद खुली जगहमे उनका व्याख्यान हुआ। व्याख्यानके बाद प्रश्न पूछनेकी उन्होंने घोषणा की। मैंने प्रश्न पूछने शुरू किये। प्रश्न करनेके समय मुसाफिर विद्यालयमे सुने स्वामी दर्शनानन्दके प्रतिद्वन्दी पादरी ज्वालासिंहका काफी रोब मुझपर गालिब था। किन्तु वह रोब एक ही दो बारके प्रश्नोत्तरमे जाता रहा। मैंने छिद्रान्वेषणकी दृष्टिसे बाइबिलका अच्छी तरह अध्ययन किया था, उसके पुराने भागपर मेरे पास खतरनाक नोट थे। मैंने एतराज़ शुरू किये। पादरी साहेब एकका जवाब नही देने पाते, कि मै तीन नये सवाल जड देता। धीरे-धीरे जनतापर विदित होने लगा, कि पादरी जवाब नही दे पा रहे है। पादरी ज्वालासिंह अपनी मन्तिक (तर्क)के लिए ही ईसाई सम्प्रदायमे सम्मानित तथा काफी वेतन पा रहे थे। एक छोकरेको इस प्रकार प्रहारकर अपनी प्रतिष्ठाको धूल मिलाते देखना उनको सह्य नही मालूम हुआ, और सचमुच मेरे कानोको विश्वास नही हुआ, जब कि पादरी साहेब तैशमे आ अपनी सच्चाईपर ज़ोर देते हुए बोल उठे—'यदि मै गलती कर रहा हूँ, तो हुक्केका पानी पिलाकर पाँच जूता मारे।' पादरी ज्वालासिंहका जो चित्र मेरे स्मृतिपटलपर अकित था, वह अब चकनाचूर हो गया था। दूसरे दिन फिर मुबाहिसाका समय घोषित करके सभा समाप्त हुई।

सबेरे इन्द्रवर्माको मिशन अस्पतालसे दवा लेनी थी, उसी सिल्सिलेमे हम दोनो

अमेरिकन पादरीके बँगलेपर भी चले गये। पादरी ज्वालासिंह भी वहीपर ठहरे हुए थे। वह बडे प्रेमसे मिले, और मालूम नही होता था, कि रातको हम दोनो उस तरह एक दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। मैने तो खैर, अपने लिए धार्मिक वाद-विवाद तथा व्यक्तिगत सम्बन्धका एक मैयार मुकर्रर कर लिया था, किन्तु बूढे पादरी ज्वाला-सिंहके शिष्टाचारको देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। अमेरिकन पादरीकी मेम डाक्टर थी, उन्होने इन्द्रवर्माके लिए दवा लिखकर पुर्जीको कम्पौडरको देनेके लिए हमारे हाथमें दे दी। दर्वाजेसे निकलते ही इन्द्रवर्माने कौतूहलवश कहा—जरा पढिये तो। मैने खतको खोला। मेम देख रही थी, उसने डाँटकर कहा—यह चिट्ठी तुम्हारे लिए नही है। मै लज्जित हो गया, युरोपीय शिष्टाचारसे अनभिज्ञ रहते भी साधारण बुद्धिसे भी मै अपनी चेष्टाके अनौचित्यको समझता था। इन्द्रवर्माको यह बात ठीक नही जँची।—दवाके लिए लिखे गये पुर्जेमें कौनसी गोप्य बात हो सकती है? उस दिन रातको वर्षा होने लगी, इसलिए मुवाहिसाका स्थान महोबाका विशाल गिरिजाहाल रखा गया। सारा हाल लोगोसे भरा हुआ था, जिसमे काफी सख्या ईसाई महिलाओकी थी। कार्रवाई शुरू करते वक्त पादरी ज्वालासिंहने महिलाओकी ओर लक्ष्य करके कहा—'बहस-मुवाहिसेमें किसीके मुँहसे कोई अनुचित शब्दभी निकल सकता है, इसलिए, मै समझता हूँ, अच्छा हो यदि महिलायें यहाँ रहना नापसन्द करे।'

धार्मिक साम्प्रदायिकताका ही पहिले मुझे पाठ ज्यादा मिला था, किन्तु इधरके दो-तीन सालकी आदर्शवादी शिक्षाने भीतर ही भीतर अपना काफी असर डाला था। पादरी साहेबके ये वाक्य मेरे कानमें वाणकी तरह लगे, इसलिए नही कि वह झूठे थे—आर्यसमाजी उपदेशकोंमे ऐसोंकी सख्या काफी थी, जिनके लिए अश्लीलताकी मर्यादा-को अतिक्रमण करना साधारण बात थी; किन्तु मुझसे ऐसी आशा रखी जावे, यह बात असह्य थी। मैने दिमागको ठडा रखते हुए कहा—हमारे लिए यह बड़े शर्मकी बात होगी, यदि हम अपनी माँ-बहिनोके सामने भी अपनी ज़बानपर सयम नही रख सकते। मै आशा रखता हूँ, कि महिलाओंको सभासे जानेकी जरूरत नही पडेगी। तरुण प्रतिद्वन्दी दिलकी लगी कह रहा था। शास्त्रार्थ सुननेका अवसर पा महिलाये सबसे ज्यादा खुश हुईं। दो-तीन घटे हम दोनोमें बहस होती रही। यद्यपि कलकी तरहके 'हुक्केके पानी और पाँच जूते'की आज जरूरत नही पडी, तो भी मैने कलकी अपनी सफलताको आज भी कायम रखा।

दो-तीन दिन बाद सनातनियोसे भी शास्त्रार्थ हुआ। सनातनधर्मकी ओरसे शायद पडित अखिलानन्द और आर्यसमाजकी तरफसे युक्तप्रान्तीय प्रतिनिधि-सभाके

कोई उपदेशक थे। शास्त्रार्थके पत्रव्यवहारमे मेरा खास हाथ था, और शास्त्रार्थको पुस्तकाकार छपवानेका सारा सम्पादन कार्य, झाँसीमे लाला लद्धारामके घरपर रहकर मुझे ही करना पड़ा था।

काल्पीमें लौटकर फिर विद्यालयकी निर्बल तरीको खेनेकी कोशिश करने लगा। इसी समय मैंने सालभरके लिए संस्कृतमे ही बोलनेकी प्रतिज्ञाकी—बाकायदा हवनयज्ञ करनेके साथ। यदि इस प्रतिज्ञासे मतलब (३६०×२४) घंटे-निद्रा था, तो जरूर पूरी हुई, नही तो यह उन प्रतिज्ञाओंमे थी, जिन्हे आदमी तोडनेके लिए ही किया करता है।

तीन आदमियोंको लेकर विद्यालयके नामपर अपने समयको बर्बाद करना अब मुझे पसन्द न था। धीरे-धीरे भाई साहेब भी मेरी रायसे सहमत हुए। तै हुआ कि विद्यालयको स्थगित करके मैं फिर अपनी पढाई शुरू कर दूँ। स्वामी ब्रह्मानन्द और श्री पन्नालालको यह बात दु खद मालूम हुई—सचमुच ही काल्पी स्टेशनपर विदाई लेते वक्त हमारे हृदय भारी हो गये थे।

## ७

# दुहरा धर्म (१९१८-१९ ई०)

अबके साल मैंने शास्त्रि-परीक्षामे बैठनेका निश्चय किया था। कानपुरमे एक संस्कृत पाठशालामे गया, जिसमे उस वक्त पडित शशिनाथ झा पढा रहे थे, किन्तु वहाँ शास्त्रि-परीक्षाके सभी पाठ्य-ग्रथोके पढानेका प्रबन्ध नही हो सकता था; बनारसमे कनैलाके किसी आदमीसे भेट हो जानेका डर था; इस प्रकार अन्तमे मुझे अयोध्या जानेका निश्चय करना पडा। फिर आर्यसमाजके निराकारी बानेकी जगह वैरागी साकार-बाना सजाना पडा। पडित वल्लभाशरणने मेरा आना सुनकर बडी खुशीसे अपने स्थानमे जगह दी। न्याय-वात्स्यायन-भाष्य, निरुक्त, ऋग्वेद-सायण-भाष्यकी भूमिका, नैषध और सिद्धान्तकौमुदीके अतके कुछ अशोको विशेप तौरसे पढना था। नैषध पढानेके लिए पडित सूर्यनारायण शुक्ल मिल गये, उस वक्त वह व्याकरणाचार्य हो राजगोपाल पाठशालामे पढाते तथा न्यायाचार्य-परीक्षामें बैठ रहे थे। तरुण होनेपर भी उनकी प्रतिभा की अयोध्यामे ख्याति थी। वह उस समय पतले-दुबले और लम्बे मालूम होते

थे। ऋग्वेद सायणभाष्यकी भूमिका वहुत कुछ मीमासाशास्त्रसे सम्बन्ध रखती है, उसके लिए मैसूरके एक द्रविड-वेदान्ती-पंडित मिल गये, जो हमारी उसी प्राचीन वेदान्त-पाठशालामे अध्यापक होकर आये थे, जो अब वड़ी जगहके हाथमे चली गई थी। वह भी अपने विषयके अच्छे विद्वान् थे, और चावसे पढाते थे। सिद्धान्त-कौमुदीके लिए पडित सरयूदासजी मौजूद ही थे; किन्तु निरुक्त और न्यायभाष्यके लिए बडी दिक्कत पेश आई। बहुत खोज-खाज करनेपर गोलाघाटपर एक ब्रह्मचारी मिले, जो थे तो काशीके न्यायोपाध्याय (न्यायाचार्य), किन्तु नव्यन्यायके और वह भी बहुत दिनोसे पठन-पाठन छोड चुके थे। प्राचीन न्यायकी पठन-पाठन प्रणाली सदियोसे छूट चुकी है, इसलिए उस समय तो उसके पढ़ानेवाले बनारसमे भी नही मिलते थे, अयोध्या जैसी छोटी जगहकी तो बात ही क्या? ब्रह्मचारीजी उतना ही वतला सकते थे, जितना कि मै खुद भी पुस्तकके सहारे जान सकता था। ब्रह्मचारी अब गृहस्थ थे, उनके गुरु एक बहुत वृद्ध ब्रह्मचारी थे, जिनसे किसी समय स्वामी दयानन्दसे साक्षात्कार, और कुछ दिनोकी सहयात्रा भी हुई थी। उस वक्त स्वामी दयानन्द अभी उतने प्रख्यात नही हुए थे। ब्रह्मचारीजी मतभेद रखते भी स्वामी दयानन्दकी वडी प्रशसा किया करते थे। निरुक्त पढानेवाला मिलना और भी मुश्किल हुआ। बहुत पीछे—जब मै अयोध्या छोडनेवाला था, तब—ब्रह्मचारी भगवद्दासका नाम मालूम हुआ। वह वेदतीथ हो चुके थे और अब बडी जगहके महन्तके शिष्य हो इसी नामसे वहाँ रहते थे। ब्रह्मचारी भगवद्दासजीकी वह पतली-दुबली साँवली सूरत मुझे याद थी, जो १९१४मे पहिले-पहिल दिव्य-देशकी वेदान्तपाठशालामे दृष्टिगोचर हुई थी। कैसे उन्होने मँगनीकी कठी, और नौसिखिये हाथोसे सफेद रेखाओंमे एक-सौ-एक नम्बर शिरमे अकितकर दाढी नदारद मूछोके साथ वैरागी बाना वना अपनेको पंजावका एक वैरागी बतलाया था, जिसपर मेरे सहपाठियोने प्रश्नोकी बौछार शुरू कर दी, और मैं ही था, जिसने कि देश-काल आदिके नामपर व्याख्या कर उनका समर्थन करना चाहा। उस वक्त आर्यसमाजसे मेरा कोई स्पर्श भी न था, तो भी कोई वात थी, जिससे मेरी सहानुभूति उस अजनबी तरुणके प्रति हो गई थी। ब्रह्मचारी भगवद्दास अव पडित, बडे महन्तके चेले तथा आचार-व्यवहारमे निष्णात वैरागी साधु थे। मुझे उडती खबर मिल चुकी थी, कि उनके विचार भीतरसे आर्यसमाजी है, इसीलिए वडी जगहके महन्तके उत्तराधिकारी होकर भी उस बानेमे उनका रहना मुझे नापसन्द मालूम होता था। निरुक्तके पाठके लिए दो ही चार बार मैं उनके यहाँ जा सका।

अयोध्यासे किसीने परसा लिख दिया, कि मै आजकल वहाँ पडित वल्लभाशरणके स्थानमे ठहरा हूँ। फिर क्या था, महन्तजीका एक पत्र मेरे पास, दूसरा बडासा पत्र पडित वल्लभाशरणके पास पहुँचा। सर्वेका सकट था। मठकी सम्पत्तिके नाशकी दुहाई दे पडित वल्लभाशरणको मुझे समझाकर भेजनेके लिए कहा गया था। पढनेकी दिक्कते भी बेतला रही थी, कि परीक्षाकी तैयारी लाहौर हीमे ठीकसे हो सकेगी, फिर परसा जा वहाँका काम खतम कर क्यो न उधर बढा जाये—यह ख्याल करके मैने परसा जाना स्वीकार किया। लकडमडी घाटमे गाडीपर चढते वक्त देखा, पडित सरयूदासजी भी उसी ट्रेनसे चल रहे है। उनकी माताका देहान्त हो गया था, श्राद्धमें जा रहे थे। मनकापुरमे गाड़ी आनेमे देर थी, इसलिए उन्होने कुछ पद्य बना देनेके लिए कहा—मैने 'माता मानकरी गता हत-सुखा हा हन्त! वर्तामहे।' आदि कई तुकबदियाँ बनाकर दे दी। परसा पहुँचनेपर सस्कृत-भाषणकी प्रतिज्ञा छोडनी पडी।

अबकी मामला जानकीनगरका था। महन्तजीने अपने मामलेकी पैरवीके लिए गोरखपुरके एक तरुण ब्राह्मणको अमीन रखा था। उसने झूठे-सच्चे दो-तीन सौ तनाजे दे डाले थे। असामी इस अन्यायको कैसे बर्दाश्त करते? पहिले उन्होने महन्तजीके पास फर्याद की, किन्तु वहाँ कागज समझनेकी शक्ति कहाँ? चौकी तोडते, दो-चार खरी-खोटी सुना उन्हे भगा दिया गया। नतीजा यह हुआ, कि रियायाने भी जमीदारके दरख्तो, खेतो, और परती तक पर तनाजे दे दिये। मैने आकर कागज-पत्र देखा। वहरौलीके भारी जगलको जब पिछले साल सर कर चुका था, तो उसके सामने जानकीनगरका छोटासा गाँव क्या था? कागज देखकर, मैने रैयतोको बुलाकर पता लगाया, और सौमे पचहत्तर तनाजे झूठे मालूम हुए। मैने डिप्टी साहेवसे कहकर उन तनाजोको हटा लिया। उनको बल्कि तअज्जुब हुआ, कि मै क्या कर रहा हूँ। मैने बतलाया, कि मठके अम्ला लोग किसानोसे रुपया वसूल करनेके लिए ये झूठे तनाजे दे रहे है। अमीन-साहेब दौडे-दौडे परसा गये। महन्तजीने उन्हे खूब फटकारा, और वही कामसे जवाब भी दे दिया। मेरे तनाजोके उठाते ही, गाँवके सारे तनाजे उठ गये। मुझे याद नही कि वहरौलीकी भाँति यहाँ एक भी तनाजेमे कोई परेशानी हुई हो। डिप्टी साहेवके लिए मेरा वाक्य सच्चाईकी कसौटी थी।

यह वह वक्त था, जब कि चम्पारनमे गाँधीजीके कामकी चारो ओर धूम थी। जानकीनगरके किसान भी जब-तब गाडीमे शकरकन्द भर धानसे वदलनेके लिये चम्पारन जाया करते थे। उन्हे यह खबरे खूब मालूम थी। वह बतलाते थे, कि कैसे

चम्पारनमें निलहे गोरोंकी इज्जत कौडीकी तीन हो गई है? कैसे अब वहाँ बैलगाडी को बीच सड़कसे चलनेमें कोई रोक-टोक नहीं डाल सकता? कैसे हरी-बेगारी गांधी साहेबने उठा दी—तब न आजकी भाँति वह महात्मा गांधी थे, न उस समयके अर्धशिक्षितोंमें प्रसिद्ध कर्मवीर गांधी, बल्कि गांधी साहेबके ही नामसे चम्पारन और सारनके किसान उन्हें जानते थे। जानकीनगरके किसान, 'कचहरी' (जमींदारकी छावनी)में बराबर ही आते-जाते रहते। रातको तो खास तौरसे भीड़ रहती। पुजारीजीकी (मेरी) न्यायप्रियता, ईमानदारीकी धाक थी—वह दूध और तरकारी तक बिना पैसा दिये नहीं लेते; किसीसे एक पैसा भी भेंट-पूजा लेना हराम समझते हैं; मिलनसार इतने कि छोटे-छोटे बच्चोंसे बातें करते हैं; उन्होंने रैयतोंके हकमें हजारों रुपयोंके घाटेकी कुछ भी पर्वाह न कर सारे तनाजोंको उठा लिया।

रातको जानकीनगरके पँवारा गानेवाले बुलाये जाते थे। कभी 'कुँअर-विजयी' होती, कभी 'सोभनयका', कभी 'सोरठी' तो कभी 'लोरकाइन'। 'पुजारीजी'की इस ग्रामीण-रुचिका 'शिक्षितों पर तो जरूर बुरा प्रभाव पडता, किन्तु सौभाग्यसे जानकी-नगरमें एक भी शिक्षित न था। साधारण जनताको विचित्रता जरूर मालूम होती थी, किन्तु इसे वह अनुचित कहनेके लिए तैयार न थी। मैंने एकाध अच्छे गानेवालोंको गांधीजीकी जीवनी सुनाकर उसे पद्यबद्ध कर 'सोरठी'की तरह गानेकी प्रेरणा की, किन्तु उसमें मुझे सफलता नहीं हुई, शायद वह समयसाध्य बात थी, और मेरे पास उतना समय न था।

परसा-मठकी थोडीसी जमीन मुन्नीपुर गाँवमें पडती थी। किसीने उस थोड़ीसी जमीनका ख्याल नहीं किया था इसलिए पिछले सर्वे हीमें वह हथुआ-राजमें लिख दी गई थी। मठवालोंने हाकिम-हुकुम सबको मेरी बात माननेके लिए तैयार देखकर उस गडे मुर्देको भी उखाडा। मैं उस इलाकेके असिस्टेंट सेटलमेंट आफिसरके पास गया। वह मुन्सिफ थे, सर्वेका काम सीखने आये थे—नाम शायद अजनीकुमार था। मेरी हिन्दी साफ शुद्ध युक्तप्रान्तीय हिन्दी थी, बोलचालमें कहीं झिझक का नाम न था। ऊपरसे शायद गुरुकुल हरपुरजानके किसी उपदेशककी मार्फ़त उन्हें पता लग गया था, कि मेरे विचार आर्यसमाजी हैं। वह और उनके मुसल्मान पेशकार अब्दुर्रहीम दोनों आर्यसमाजके अनुरागी थे। मेरी बड़ी खातिर हुई। गड़े मुर्देके बारेमें मालूम हुआ कि यदि हथुआ-राजके अमलेको स्वीकार हो, तो पिछले सर्वेके इन्दराजको ऊपरसे हुक्म मँगाकर दुरुस्त किया जा सकता है। हथुआ-राजके अमलोंने खुशी-खुशी स्वीकार किया कि यह जमीन परसा मठकी है, और गल्तीसे राजके नाम

दर्ज हुई है। एक दिन बा० अजनीकुमारके आग्रहपर उन्हींकी अध्यक्षतामे समाज-सुधारपर मैने वही कैम्पमे व्याख्यान भी दिया।

सर्वेका काम खतम हो रहा था, लेकिन महन्तजीने अब फिर महन्तीकी लिखा-पढ़ीका सवाल उठाया। मैने फिर अपनी बात दुहराई—मै महन्ती कभी नही लूंगा; यदि वरदराजको महन्त बनावे, तो वह अपनेको उसके योग्य साबित करेगे। नौकर-चाकर घेरे रहते थे, इसलिए निकल भागनेमे फिर दिक्कते होने लगी। एक दिन सिर्फ़ एक नौकरके साथ मैं छपरा आया। किसी कामके बहाने नौकरको परसा भेजा, और उसी दिन प्रयाग और लाहौरका टिकट कटा वहाँ जा पहुँचा।

छपरा छोड़ते ही संस्कृत-भाषणकी प्रतिज्ञा फिर जारी हो गई।

डी० ए० वी० कालेजका सस्कृत-विभाग अब (१९१९के आरम्भमे) वैदिक आश्रममे चला आया था, यही पढ़ाईके भी कमरे बन गये थे। प्रधानाध्यापक अब भी पडित भक्तराम थे, किन्तु पडित नृसिहदेव ओरियटल-कालेजमे चले गये थे, और उनकी जगह युक्तप्रान्तके एक पडित थे, जो वर्णव्यवस्था तथा जातिवादपर तीखे प्रहारो-को सुनकर तिलमिला उठते थे। शास्त्री श्रेणीमे भरती होगया, और परीक्षाका फ़ार्म भी भरकर चला गया। अन्य विषय साध्य मालूम होते थे, किन्तु न्यायभाष्य और व्याकरण—कक्षामे सबसे तीव होनेपर भी—मुझे असाध्य मालूम होने लगे। न्यायभाष्य तो पढानेवाले अध्यापकके अभावमे और व्याकरण कठस्थ करनेके समय और रुचिके अभावमे। पडित नृसिहदेव शास्त्रीको दर्शन-ज्ञानका बहुत अभिमान था, किन्तु जब मैने उनसे पढनेकी इच्छा प्रकट की, तो एक-दो बार बुलाया और कुछ शुरू भी किया, किन्तु पीछे समयाभाव कहकर टाल दिया। मुझे मालूम हो गया, कि इसमे पढ़ानेकी असमर्थता ही कारण है।

मेरे विशारदवाले साथी अब शास्त्रीके साथी थे। वर्षो बाद सारी टीमको एक जगह देखकर विद्यार्थीको सन्तोष होता है, और उनमेसे यदि कुछ आगे बढ गये हो तो उससे कष्ट भी बहुत होता है। रामप्रतापकी चुटकियाँ अब भी वैसी ही सजीव थीं। देवदत्त-द्वय अब भी वैसे ही मनोरजक थे। सत्यपाल अब भी वैसा ही बेफिक्र तरुण शाहज़ादा था। कक्षासे बाहरके साथियोमे 'खुर्सन्द' जी अब भी 'आर्यगजट' की कुर्सीपर थे। भाई साहेब 'मौलवी-आलिम' होकर 'मौलवी-फाज़िल' की तैयारी कर रहे थे। भाई रामगोपाल ट्यूशन और भाई साहेबकी सहायता करते कुछ पढ रहे थे। मुंशी मुरारीलाल यही प्रतिनिधिसभाकी उपदेशकी करते थे, इसलिए समय-समयपर मिल जाया करते थे। बलदेवजी और सोम्यालू रुलीलालके मन्दिरमे अब भी

डटे हुए थे, और दोनों क्रमश एफ० ए० और बी० ए०की अन्तिम परीक्षाओंकी तैयारी कर रहे थे।

रहनेका स्थान ढूँढनेपर सत्थाँ-बाजारमे जगह मिली। कुछ तरुणोंने वहाँ एक छोटासा आर्यसमाज खोला था। सादगी रखते हुए भी कुछ कीमती स्वदेशी कपडे परसामे मेरे पास आ गये थे, जो यहाँ भी मौजूद थे। रेशमी चादरें, अधिक कीमतके पट्टूकी बगलबन्दियाँ, बेशकीमत सफेद आलवान, और रेशमी साफे बाँधना परसा हीमे किसी वक्त क्षम्य हो सकते थे, मैंने उनमेंसे कुछको बाँट दिया, कुछके पैसे कर लिये, और कुछ ऐसे ही पासमे रख रक्खे।

अखबारोंको पढना, देश-विदेशकी राजनीतिक खबरोंको गौरसे देखना, भारतमे राजनीतिक क्रान्तिकी चाह, रूसी क्रान्ति और साम्यवाद—ये मेरे प्रिय विषय थे। साम्यवादपर किसी ग्रथके पढनेका अब भी अवसर न मिला था, किन्तु उसपर काफी चिन्तन और तर्क-वितर्क किया करता था, तो भी अभी मेरा साम्यवाद आर्यसमाजके धर्मकी एक उदार व्याख्यामे सम्मिलित होने लायक था। कुछ सालो तक अच्छी तरह पढाई करके पूर्वीय देशों—चीन या जापान—मे वैदिक धर्मप्रचारके लिए जाना, बस यही धुन थी। अपने इस प्रोग्राममे जब मुझीको सन्देह नही था, तो दूसरेको सन्देह कैसे होना। नये नजर्बोंके बिनापर आदमी बदलता रहता है—इस तत्त्वपर मेरा विचार अभी नहीं गया था।

महायुद्धके आखिरी दो वर्षोंमे होम-रूलके लिए आन्दोलन शुरू हुआ था, यद्यपि अभी वह साधारण जनता तक नही पहुँचा था, तो भी वह नरमदली कांग्रेसकी तरह उच्च मध्यम श्रेणीके पठितों तक ही सीमित नही रहा। लडाईके समय लोगोको अखबारोंकी चाट लगी, अखबारोंकी सख्या बढी, साथ ही उनमे गर्मी भी आई। लोगोमे कुछ निर्भीकतासी आती दिखाई पडी। अग्रेजी सर्कारने स्वायत्त-शासनकी घोषणा की, और भारतमत्री मिस्टर माण्टेगु स्वय भारतकी राजनीतिक अवस्थाके अध्ययनके लिए आये। लडाईकी खबरोंमे मालूम होने लगा, कि ससारमे अग्रेज ही सर्वशक्तिमान् नही है, जर्मनी भी इनके मुकाबिलेकी शक्ति है, और अमेरिकाके मुँहकी तो बाट जोही जाती है।

१९१८के अन्तके साथ लडाईका भी अन्त हुआ, किन्तु लडाईने लोगोंके मनोभावमे जो परिवर्तन किये, उनका अन्त नहीं हुआ। जब तक शिरपर सकट था, अग्रेज़-शासक तरह-तरहकी चिकनी-चुपडी बातें करते थे, किन्तु लडाई समाप्त होते ही नवभारतके रुखमे उनके मनमें तरह-तरहकी शकाये उत्पन्न होने लगी। लडाईके समयके लिए तो

भारत-रक्षा कानून बनाकर उन्होने अपने विरुद्ध किसी भी हलचलको दवा देनेका बन्दो-बस्त कर लिया था, किन्तु लडाईके बाद भारतरक्षा-कानून हट जाता। उधर लडाईके दिनोंमे भी आतकवादी क्रान्तिकारियोका काम बन्द नही हुआ था, बल्कि जहाँ पहिले उसका क्षेत्र सिर्फ बगाल तक था, वहाँ अब वह युक्त-प्रान्त और पजाब तक पहुँच गया था। सर्कारने जस्टिस रोलटकी अध्यक्षतामे आतकवादके जाँचके लिए कमीटी बनाई, जिसकी रिपोर्टपर भारतकी हर स्वतत्र आवाजको दबानेके लिए, हर उग्र राजनीतिक सगठनको कुचलनेके लिए रोलट-कानून तैयार किया। जनताके प्रतिनिधियोने विरोध किया, किन्तु विजयके नशेमे उन्मत्त सर्कार उसकी क्या पर्वाह करने लगी ? कानून पास हो गया।

अपनी भीतरी-बाहरी पढाईके साथ राजनीतिक घटनाओपर मेरी खूब नजर रहती थी। जब हम लोग वशीधरके मन्दिर या लाहोरी-दर्वाजेके बगलके बागमे जमा होते तो राजनीतिक परिस्थितिपर भी घटो बाते होती।—हाँ, मेरी सस्कृत बोलनेकी प्रतिज्ञा चल रही थी। पडित भगवद्दत्तके अन्वेषण-विभागमे कभी-कभी जाता, और अन्वेषण-सम्बन्धी पत्रिकाओ और पुस्तकोसे अन्वेषकोंकी विस्तृत दुनियासे भी परिचित हो रहा था। पडित भगवद्दत्तजी सभी विज्ञानो और आविष्कारोको वेदसे निकालकर दिखलाते तो नही थे, किन्तु उन्हे स्वामी दयानन्दके इस सिद्धान्तपर सन्देह नही था; बहुतोंको वह निश्चित तौरपर वेदमे प्राप्त कर चुके थे, और बाकी भी पूरी गवेषणा करनेमे जरूर वेदोमेसे निकल आयेगे—यह उन्हे विश्वास था। लाहौरमे मुझे याद नही, पहिले किसी सभामे व्याख्यान दिया था। अबके कालेज (अग्रेजी-विभाग)की सस्कृत-परिषद्मे व्याख्यान देनेके लिए कहा गया, और मुझे उसमे कोई हिचक तो थी नही। उर्दू-लेखतो लाहौरकी पहिली ही यात्रामे 'आर्यगजट'मे ही लिखता रहता था।

बहिन महादेवीको पढनेके लिए कानपुर लानेका निश्चय मेरी सम्मतिके अनु-सार हुआ था। अब कानपुरकी उस सस्थामे जितना पढना हो सकता था, वह समाप्त हो चुका था, और बहिनजी आगे पढना चाहती थी। इसी बीच पडित सन्तरामजी आ गये। वह उस वक्त कन्या महाविद्यालय जालन्धरमे हिन्दीके अध्यापक थे। उन्होने कहा—भेज दीजिये, वहाँ कोई छात्रवृत्ति भी मिल जावेगी। वलदेवजीके बडे भाई जो पहिले सिंगापुरमे काम करते थे, लडाईमे ड्राइवर होकर मेसोपोतामिया चले गये थे, और बलदेवजीको समय-समयपर रुपया भेजते रहते थे, इसलिए उन्हे इत्मीनान था, कि जरूरत पड़नेपर वह बहिनजीकी भी मदद कर सकेगे। राम-गोपालजीने अपनी स्त्रीको शिक्षाके लिए ही हमीरपुर आर्यसमाजके प्राण पडित राम-

प्रसादके यहाँ रखा था, और उनको भी लाहौर बुलाकर आगे पढ़ानेकी हम लोगोकी सलाह थी। तै हुआ, कि परीक्षापत्र समाप्त होते हुए मै कानपुर-हमीरपुर चला जाऊँ और वहिनजी तथा भाभी (रामगोपालजीकी स्त्री) को लिवा लाऊँ।

गृह-परीक्षामे सभी विद्यार्थियोमे मै प्रथम रहा, यद्यपि व्याकरण कमजोर था, तो भी पास होनेमे कोई दिक्कत न हुई। यही आशा युनिवर्सिटीकी परीक्षासे भी हो सकती थी। जैसे-जैसे अप्रेलका महीना और परीक्षा-दिन नजदीक आता जाता था, वैसे ही वैसे देशका राजनीतिक वायुमडल भी गर्म होता जा रहा था। चम्पारन और खेडाके आन्दोलनोसे दक्षिण-अफरीकाके सत्याग्रह-विजेता कर्मवीर गाधीका यश और प्रभाव भारतमे भी बढ़ रहा था। जब तक कौंसिल-मचपर रोलट-बिलका विरोध मच-शूर नेता कर रहे थे, तब तक लोगोमे कोई खास जागृति नही आई, किन्तु जैसे ही मालूम हुआ कि गाधीजी स्वय रोलट-एक्टका विरोध सगठित करने जा रहे है, तो अवस्था वहुत शीघ्रतासे बदलने लगी। लाहौरमें कालेजके विद्यार्थी, शिक्षित मध्यमवर्ग ही नही दूकानदार तक भी इधर दिलचस्पी लेने लगे। 'पैसा-अखबार'-वाली सडकपर अनारकलीके पासके होटलमे उस वक्त मै खाना खाया करता था। उसी वक्त मैने पहिले-पहिल उस श्रेणीके होटलमे भी मालिककी ओरसे दैनिक अखवार रखनेका आयोजन देखा।—अखबारके पढनेके लालचसे कितने ही लोग उस होटलमे खाना खाना पसन्द करते।

मेरी परीक्षा ३१ मार्चको शुरू हुई और ५ अप्रेल (शनिवार)को समाप्त हुई। पर्चे उतने वुरे नही किये थे, किन्तु जब होड लगाकर परीक्षक विद्यार्थियोको फ़ेल करनेको तुले वैठे थे, तो इसका क्या जवाब। उस साल डी० ए० वी० कालेजसे शास्त्रीमे एक भी विद्यार्थी पास नही हुआ।

छै अप्रेल (१९१९ ई०)को रविवार था, इसी दिन सारे भारतमे रोलट-एक्ट विरोधी-दिवस मनानेकी गाधीजीने घोषणा की थी। उस दिनके लाहौरके नजारेके वारेमे क्या कहना है। सारी अनारकली सडक ओरसे छोर तक नगे काले शिरोसे भरी हुई थी। लोग तरह-तरहके नारे लगा रहे थे। जलूस घूमते-घामते चार बजेके वाद ब्रेडला-हॉल पहुँचा। गर्मी काफी थी। लोगोको पानी पिलानेके लिए वहुतसी सवीलें लगी हुई थी। वहाँ, हिन्दू-मुसलमानका कोई फ़र्क़ न था। एक ही गिलाससे दोनो पानी पी रहे थे। राष्ट्रीयताकी पहिली वाढने छुआछूतको वहा फेका—यद्यपि वह वहा-फेकना स्थायी नही था, तो भी उसमे कितनी ताकत है, इसका तो पता लग सकता था। ब्रेडला-हॉलके विशाल हॉलमे सारी जनता नही आ सकती थी, इसलिए

बाहर हातेमे भी चार-पाँच जगह सभाये की गई। उस वक्त अभी लौड-स्पीकरका युग आरम्भ नही हुआ था, तो भी वक्ताओने किसी तरह अपने शब्दोको जनता तक पहुँचाया ही।

छै अप्रेलके स्मरणीय दिवसकी उस स्मृतिको लिये सात अप्रेलको मै लाहौरसे रवाना हुआ। माणिकचन्द (भगवतीप्रसादके भाई) ज्वालापुर महाविद्यालयमे सस्कृत पढ रहे थे, भाई भगवती भी कोई काम लेकर हरिद्वारमे रहते थे। पहिले मैं हरिद्वार गया, फिर ज्वालापुर, और फिर गुरुकुलकागडी भी (उसके पुराने स्थानमे)। बढती हुई गर्मी, गगाका बर्फीला पानी दो ही चीजे उस समयकी याद है। हरिद्वारसे रवाना हो तिलहर-स्टेशन उतर ढकिया-वरा, अभिलाषचन्द्रके घर गया। अभिलाषचन्द्रसे मिलकर मुझे हमेशा खुशी होती, उसमे कुछ ऐसी सजीवता, ऐसी साहसिकता थी, जिसकी मै बडी कद्र करता था। अभिलाषने मोटर-ड्राइवरी पास कर ली थी। फोटोग्राफ़ी भी अच्छी तरह जानता था। उसने बैठकेमे बहुतसे देवीदेवताओकी तस्वीरे लगा रखी थी, वहाँ शराबकी बोतले और गिलास भी जमा थे। मालूम हुआ—हजरत आगे बढते-बढते खुफिया-विभागके आँखके काँटे बन गये थे, और अब अपने पतनको प्रकट करने, तथा इसके द्वारा खुफिया-विभागकी आँखोमे धूल झोकनेके लिए यह ढोग रचा गया था। लेकिन कोई भी पार्ट जब निर्लाग होता है, तभी असर पैदा करता है। यहाँ अभी भी छै गोलियोका रिवाल्वर उनके पास था, आतकवादियोसे सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तके मौजूद थी। गर्म राजनीतिक विचार रखनेपर भी मेरी इच्छा अभी आतकवादमे जानेकी न थी। शायद भीतरसे साम्यवादका असर इसका कारण हो, शायद विदेशमे धर्मप्रचारकी लालसा उसमे बाधक हो। अभिलाषने हालमे शादी की थी, और उसने बतलाया किस तरह पिस्तोलके सहारे मै स्त्रीको निष्ठुरोकी कैदसे निकाल लाया। उनकी स्त्री ज्यादा पर्दा नही करती थी, और मुझे भाभीका रिश्ता लगानेमे देर न लगी। ढकिया-चराकी जिस चीजने सबसे ज्यादा प्रभाव डाला, वह था अभिलाषकी माँका वात्सल्यपूर्ण बर्ताव। माँके स्नेहसे मै बचपन हीमे वञ्चित हो गया था, एक तरह बल्कि माँका स्नेह क्या होता है, इसे देखनेका मुझे मौका ही नही मिला। अभिलाषकी माँ हमारे आपसके स्नेहको जानती थी, इसलिए खिलाने-पिलाने, बातचीत करनेमे मुझे उनमे माँका हृदय झलकता था। थी वह गाँवकी अनपढ स्त्री, और यद्यपि अभिलाषके दादा साधारण चौकीदारसे तरक्की करके इन्स्पेक्टर-पुलीस हुए थे, तो भी पिताकी ओर नजर डालनेपर माँमे उस तरहके विनीत, गम्भीर, परिष्कृत व्यवहारकी आशा नही हो सकती थी। यागेशकी माँ

भी अपने पुत्रके सम्बन्धसे मेरे प्रति स्नेह-प्रदर्शन करती थी, किन्तु वह अधिकतर भयके कारण होता था—कही यह मेरे बेटेको दुनियाके दूसरे छोरपर न ले भागे, किन्तु यहाँ भय कारण न था, वल्कि कारण थे परिष्कृत हृदय और मस्तिष्क। बेटेकी वातोका उन्हे पता था—वह सर्कारके खिलाफ बातें करता है, वह पिस्तौल और वम्बका मसाला लिये फिरता है, वह ऐसी जमातका साथ दे रहा है, जो पकडी जानेपर यदि फाँसीसे बची, तो कालापानी हीकी सजा पायेगी, हो सकता है, एक दिन वह हमेशाके लिए घरसे गायव भी हो जावे। उनको अभिलाषके विवाहित जीवनसे वडी प्रसन्नता थी, और समझती थी कि हवाके हिलोरेमें उड़ती-फिरती सूखी पत्तीपर थोडा भार रख दिया गया है। मुझे अभिलाषका व्याह पसन्द नही आया। मै चाहता था, अभिलाष सूखी पत्तियोकी भाँति ही हलका रहे, जिसमें उसकी उडानमें कोई वाधा न हो। अभिलाषका व्याहके वादका वह मधुमास था—तरुण नागरिक सुन्दरीके समागमका मधुमास। उस समय उसे कहाँ ख्याल था, कि वह कितनी कीमतपर इन सुनहली-बेडियोको खरीद रहा है? अव कुछ समझाना बेकार था। मैंने उसके सामने प्रस्ताव रखा, कि धीरे-धीरे युक्तप्रान्तीय सर्कारकी मेकेनिकल इजीनियरिग परीक्षा पास कर लो, उसने इसे स्वीकार किया, और माँने भी समर्थन किया। आखिर, कमाईका कोई उपाय किये बिना अभिलाष और उनकी पत्नीका जीवन भी तो चल नही सकता था।

इकिया-बराह स्टेशनसे काफी दूर है, फिर एकसे अधिक नदी-नालोंको पार कर जाना पडता है, गाँवके पास भी नदी है। हम लोग ठडा होनेपर शामको नदीके किनारे दूर तक टहलने जाया करते थे। मेरा स्वप्नाना तो ओजपर था, और अभिलाष भी अभी अपनेको पहिले ही जैसा समझते थे। अव भी हमारी वाते लम्बी उड़ानके वारेमे ही हुआ करती थी। शामके वक्त लाल चकवा-चकई नदीके किनारे चर रहे थे, मैंने नाम सुना था, किन्तु उन्हें देखा न था। अभिलाषने जव इसे वतलाया, तो मैंने गम्भीर हो पूछा—'क्या सचमुच रातको यह जोडा अलग-अलग हो जाता है? एक नदीके उस पार और एक नदीके इस पार?' मालूम नही अभिलाषने इसका क्या उत्तर दिया।

दो-चार दिन वाद (१२ अप्रेलको) मै स्टेशनको लौटा। अभिलाष भी मेरे साथ तिलहर आये। कस्वेसे थोडा पहिले ही अभिलाषके एक परिचित वहलीपर जा रहे थे, उन्होने वतलाया, कि अमृतसरमे गोली चल गई। जलियाँवालाका भीषण

हत्याकाड उन शब्दोसे प्रकट नही हो रहा था, क्योंकि उन्होने खबरको ताजे अखवारमे पढा था। तो भी खवर काफी सगीन मालूम हुई।

खरवाके रावसाहेब उस समय तिलहरके डाकबँगलेमे नजरबन्द थे। अभिलाष उनसे एकाध बार मिले थे। मुझे मालूम होनेपर मै भी मुलाकात करनेका इच्छुक हो गया। हम दोनों रावसाहेबके बँगलेपर गये। अभिलाषने अपना साथी नौजवान कहकर मेरा परिचय दिया। रावसाहेबने हिम्मतकी परीक्षा करनेके लिए पूछा—"आपको कोई उज्र तो नही होगा, यदि मै पुलीसको बतलानेके लिए आपका नाम नोट कर लूँ। नजरबन्द होनेसे मेरे लिए यह पाबन्दी है।" मैने स्वाभाविक तौरसे कहा—'नही, कोई उज्र नही, आप ज़रूर नोट कर ले, केदारनाथ।' रावसाहेबकी बातोंमे अग्रेजोंके प्रति भयकर विद्वेष भरा था। उन्होने कुछ स्वरचित कवितायें सुनाई, जिनमेसे एकका एक अश अब भी याद है—"गौरागगणके रक्तसे निज पितृगण तर्पण करूँ।"

तिलहरसे कानपुर आया। अखबारोसे अमृतसर गोलीकाडकी कुछ और खबरे मालूम हुई। किन्तु, अव्वल तो 'एसोशियेटेड प्रेस' जैसी अर्धसर्कारी समाचार-एजेन्सी छोड खबर पानेका दूसरा कोई जरिया नही था; होनेपर भी सर्कारके डरसे उन्हे छापनेकी कितनोंकी हिम्मत होती। कानपुरमे छोटेलाल-गयाप्रसाद ट्रस्टके महिला-श्रममे मैं बहिन महादेवीसे मिला। तै पाया, कि हमीरपुरसे रामगोपालजीकी पत्नी जानकीदेवीको भी लाकर यहाँसे पजाब चला जावे।

१३ अप्रेलको हमीरपुर स्टेशनपर पहुँचा। हमीरपुर-रोडसे हमीरपुर काफी दूर है। शायद मै ऊँटगाडीसे गया था। शहरके पास नावोके पुलसे यमुना पार करनी पडी। उस साल फसल मारी गई थी, अकाल[1] था और लोग पशुओको दरख्तोके पत्ते खिला रहे थे। जानकीदेवी गाँवसे निकलकर पहिले-पहिल शहरमे आई थी। पतिके लिखनेपर आनेके लिए 'हुँ' तो कर दिया था, किन्तु अब मेरे पहुँचनेपर लज्जाने उनपर फिर जोर मारा। यद्यपि अपने पतिसे मेरे और उनके भ्रातृत्वको वह अच्छी तरह सुन चुकी थी, तो भी लज्जापर विजय पाना उनके लिए असम्भव मालूम हुआ, और उन्होने चलनेसे इन्कार कर दिया।

---

[1] गेहूँ रुपयेका ५ सेर और चना ६॥ सेर था।

८

# मार्शललाके दिन (अप्रेल-मई १९१९ ई०)

कानपुर लौटा। बहिनजीके चलनेका तो सब इन्तिजाम हो गया, किन्तु स्टेशनमें पूछनेपर मालूम हुआ, जलन्धरका टिकट ही नही मिल रहा है, पजाबमें मार्शल-ला जारी हो गया है। इस अनिश्चित स्थितिमे कानपुरमे रहना, खासकर मेरी जैसी तबियतके आदमीके लिए, मुश्किल था। पजाबके नर-नारियोपर—जिनमे लाहौरके मेरे कितने ही साथी भी थे—जो अत्याचार हो रहे है, उन्हे देखने और हो सके तो उसमेंसे कुछको अपने शिरपर भी लेनेके लिए मै उत्सुक हो गया। बहिनजी भी आश्रमसे विदा हो आई थी। पूछनेपर वह भी साथ ही चलना चाहती थी। पूँछ-ताँछ करनेपर मालूम हुआ पजाबमे चलनेवाली ट्रेनोके टाइमटेबुल रद्द हो चुके है, कानपुरसे गाजियाबाद तकका टिकट मिल सकता है। (१६ अप्रेलको) मैंने गाजियाबादके दो टिकट लिये। शायद ट्रेनमे ज्यादा भीड न थी।

जिस वक्त हमारी ट्रेन गाजियाबाद पहुँची, उस वक्त अभी रातका अँधेरा था। स्टेशनपर सशस्त्र पहरा था, और बालूकी बोरियोको रखकर मोर्चाबन्दी की गई थी। साहेब-साहबिन शकितमे एक जगह खडे या बैठे थे। महायुद्धके समय हमे ऐसा दृश्य देखनेमें नही आया था।

पता लगनेपर मालूम हुआ, सहारनपुरके रास्ते अम्बाला-छावनीका टिकट अब भी मिल रहा है। बिना जरा भी देरी किये (१७ अप्रेलको) फिर दो टिकट कटाये, और अम्बालाके लिए रवाना हुआ। सहारनपुरसे हमारी गाडीमे बडी भीड़ थी। हरिद्वारसे बैशाखी स्नान कर बहुतसे नरनारी लौट रहे थे।

अम्बाला-छावनीमें मालूम हुआ—आगेका टिकट बन्द है। बहिनजीको साथ लिये अम्बाला छावनीके आर्यसमाजमे पहुँचा। रहनेके लिए ठीक जगह मिल गई। दस-पन्द्रह दिन भी रहना होता, तो खाने-रहनेकी हमे कोई तकलीफ़ न होती; किन्तु इस प्रकार रास्तेमें—और फिर लाहौरके अपने साथियोसे दूर रहना मुझे असह्य मालूम होता था। लाहौरमे भी गोली चली है, इसकी भी खबर मिल चुकी थी, और पजाबमे होनेसे यहाँ अफवाहे भी बहुत ज्यादा उड रही थी। मै दिनमे कई बार स्टेशन जा जलन्धरकी ट्रेनके बारेमे पूछता रहा। (१८ अप्रेल हीको) मालूम

हुआ, कि पहिले-दूसरे दर्जेके डाकवाले टिकट जलन्धरके लिए मिल रहे है। भीडका मत पूछिये। बहिनजीको तो गठरी-मोटरी दे जनाने दूसरे दर्जेमे किसी तरह बैठा दिया, और मै अपने डब्बेमे घुसनेमे इसीलिए सफल हुआ, कि मेरे पास कोई सामान न था, मै अभी छब्बीस सालका छरहरा जवान था। अप्रेलके दोपहरकी गर्मीमे, बैठे और खडे आदमियोंसे खचाखच उस भरी गाडीमे हवाके बिना दम घुट रहा था। तो भी गाडीमे जगह मिल जानेको मै गनीमत समझ रहा था। नि शस्त्र साधारणसा आन्दोलन, जलियाँवाला-बागका रोमाचक नरसहार, मार्शल-ला, और रेलो तथा यातायातके साधनोकी यह अव्यवस्था—इन्हे देख मै युद्धके दिनोके युरोपीय जीवनका कुछ अनुभव कर रहा था। सदियोंसे चले आते देशके निर्जीव शान्त जीवनको मै बिल्कुल पसन्द नही करता था। अशान्त जीवनमे मेरा पार्ट क्या होना चाहिए, इसे मै निश्चय नही कर पाया था; तो भी मै उसे पसन्द करता था। उसीसे परिवर्तनकी आशा थी, और ऐसे जीवनके लिए कीमत चुकानेको मै तैयार था।

जलन्धर-छावनीपर उतर जानेपर मालूम हुआ, कन्या महाविद्यालय जलन्धर-शहरसे नजदीक है। खैर दूसरी ट्रेनके लिए चौबीस घटेकी प्रतीक्षा और गाडीमे घुसनेकी वह यन्त्रणा अब सोचनेकी भी बात न थी। मैने आर्यसमाज (गुरुकुल-विभाग)के लिए एक ताँगा किया, और बहिनजीको लिये चल पडा। कानपुरसे ही मै अपनी मानसिक उत्तेजनाओंमे व्यस्त था। एकाध बार जब आगेके टिकटके बारेमे मै बहिनजीसे कुछ पूछता, तो वह 'हाँ' कर देती। मैने उनके मानसिक भावोके जाननेकी कभी कोशिश न की। मार्शल-लाके दिनोमे, गोरो और सैनिकोके राज्यमे इस तरह चलना मेरे अपने लिए कोई पर्वाहकी बात न थी, किन्तु जिस तरह बहिनजीको लिये मै बेतकल्लुफीसे सैर-सपाटेके भावमे यात्रा कर रहा था, वह कभी वाछनीय नही समझा जा सकता था। तो भी बहिनजी जरा भी भयभीत नही थी, शायद खतरेका उन्हे उतना ज्ञान न था।

ताँगेवाला पूरबिया निकला। बलिया या आरा जिलेसे उसके बाप-दादा यहाँ छावनीमे साईसी करने आये थे, और एक तरहसे यही बस गये थे। मुझे मालूम था, कि इन पूरबियोमे शिवनारायणीपन्थका बहुत प्रचार है। मैने उससे जमातके 'लिखनीचद' 'प्रधान' आदिके बारेमे पूछा। ताँगेवाला समझ गया मै भी शिवनारायणी हूँ, क्योंकि बिना शिवनारायणी हुए कोई उन गुप्त शब्दोको जान नही सकता। उसने अपने यहाँ आनेका आग्रह किया। मुझे उस वक्त ख्याल आ रहा था, कनैलाकी बूढी चमारिन गरिबियाका। सन् चारके अकालमें उसका घर उजड गया। सिर्फ एक

लड़की बची थी, जिसका ब्याह पंजाबकी ऐसी ही किसी छावनीके आदमीसे हुआ था जिसे कभी-कभी मैंने कनैलासे देखा था।

हम आर्यसमाजमें ठहरे। सन्तरामजीसे मुलाकात हुई, और बहिनजीके आश्रममें दाखिल होनेमें कोई दिक्कत न हुई। लाहौरका रास्ता बन्द था। मार्शल-ला चल रहा था, किन्तु अब गोलियाँ नहीं चल रही थीं। अमृतसर नजदीक होनेसे वहाँके बारेमें लोग बतला रहे थे—डायर ओडायरकी गोलीके निशान कुछ सौ नहीं हजारसे कहीं ज्यादा स्त्री-पुरुष-बच्चे बने। डाक्टर सत्यपाल, डाक्टर किचलूके नेतृत्वमें अमृतसरकी जनताने कितनी निर्भीकता प्रदर्शित की, इसकी बहुतसी अतिरंजित खबरें हमें मिलने लगीं।

लाहौर अब दूरकी बात थी। बलदेवजी या रामगोपालजीके पत्रसे यह खबर मिली, कि हमारे सभी परिचित बच गये हैं। अब जलन्धरमें किसी तरह दिन काटना था। सन्तरामजीसे पहिले कई बार बातचीत करनेका मौका मिला था, किन्तु साथ रहनेका यह पहिला मौका था। हमारी तबियतें कुछ एक दूसरेसे मिलती हैं, इसका भी हमें आभास था। सन्तरामजीने रहनेके लिए मकान तो ले लिया था, किन्तु अभी खाना पकानेका कोई इन्तिजाम न था। शामके वक्त रोज हम स्टेशनपर तन्दूरकी रोटी खाने जाते थे। तन्दूरसे निकलती गर्मागर्म करारी रोटी, प्याजकी चटनीके साथ कितनी मीठी लगती है इसका अनुमान खाने वाले ही लगा सकते हैं। स्वाद और स्वास्थ्य दोनोंकी दृष्टिसे ऐसा अच्छा भोजन संसारमें मिलना मुश्किल है।

जलन्धरके अस्थायी निवासमें कई नये परिचित बने। हमारे लाहौरके पुराने दोस्त रामदेवजी इस वक्त वहाँके नव खुले डी० ए० वी० इंटर मीजियट कालेजमें प्रोफ़ेसर थे, और अपने दूसरे साथी प्रोफेसर ज्ञानचन्दके साथ एक ही मकानमें रहते थे। वहाँ प्याज डालकर तन्दूरमें पकी रोटियाँ मक्खन-सहित मट्ठेके साथ खानेसे ही 'मजा' नहीं मालूम होती थी बल्कि प्रोफेसर-द्वयके योग-ध्यान-सम्बन्धी नये एड्वेंचरकी कथा बड़े मनोरञ्जनकी बात रही। योग मन्त्र, देवताके आकर्षणोंसे मैं पहिले ही गुजर चुका था, इसलिए मेरे लिए उनमें कोई खिंचाव न था; किन्तु मैं देखता था, बिना स्वयं भुक्तभोगी बने लोग इन आकर्षणोंके खिलाफ कुछ भी सुननेके लिए तैयार नहीं होते। प्रोफेसर रामदेव बी० ए० (आनर्स पीछे एम्० ए० भी) और प्रोफ़ेसर ज्ञानचन्द एम्० ए० हो कर स्वामी दयानन्दके ग्रंथोंमें योगकी महिमा पढ़ उस महान् साधना-की ओर प्रेरित हुए। कानों-कान उड़ती खबर उन तक पहुँची—आजकल स्वामी सियाराम नामके एक महान् योगी हृषिकेशके आसपास रहते हैं। वह सिद्ध-पुरुष

हैं, बिरले ही वैसे महापुरुष संसारमें पैदा होकर माताकी कोखको पवित्र करते हैं। वह एम्० ए० है, प्रोफेसर रह चुके है।'

दोनो तरुण चुम्बकसे खिंचे लोहेकी भाँति दौडकर स्वामी सियारामके पास पहुँचे। स्वामी सियारामने पहिले तो कितने ही दिनो तक शिष्योकी श्रद्धाकी परीक्षा की। अधिकारी पा, योग प्रारम्भ करनेसे पहिलेकी साधनाये शुरू कराई। महीनो मूँगके रस और निराहारका सेवन कराया। और भी क्या-क्या व्रत रखवाये। और योगध्यान क्या बतलाते, दोनो प्रोफेसरोके कथनानुसार—अपनेमे अटल श्रद्धाका उपदेश करते, योगकी जगह वह यमराजके समीप हमे पहुँचाना चाहते थे। खैर! समयसे पहिले दोनो जनेकी आँखे खुल गई। सियाराम और योगके फदेसे बचकर वे सही-सलामत लौट आये, और अब वे कालेजमे प्रोफेसरी कर रहे थे।

लाला देवराजके पास भी हम अक्सर जाते थे, उनकी बाते मनोरजक होती थी; किन्तु हमारी आयुओमे युगोका अन्तर था, इसलिए वहाँ वह मनोरजन नही होता था, जो कि प्रोफेसर-द्वयके यहाँ। हाँ, उस वक्त हमारी ही समवयस्का एक और मूर्ति जलन्धरमे विद्यमान थी, जिसने यौवनके सरोवरको सुखाकर, सजीवताके उद्यानको जलाकर, ब्रह्मचर्यके कठोर पुरातन-पथको अपनाया था। मै भी ऋषि दयानन्दका भक्त था, विदेशमे धर्मप्रचारके लिये ही अपनेको तैयार कर रहा था, किन्तु जिन्दगी भर मनकी ताजियादारी करना मुझे पसन्द नही था। सन्तरामजी भी मजाक-पसन्द आदमी थे। हमे ब्रह्मचारीजीका व्यवहार उपहासास्पदसा मालूम होता था, यद्यपि हम उनकी नियतपर हम्ला करनेके लिए बिल्कुल तैयार न थे, बल्कि उनके त्यागकी दाद देते थे। ब्रह्मचारीजी मुजफ्फरनगर जिलेके रहनेवाले तरुण थे। वह स्वामी दयानन्द और आर्यसमाजकी पुस्तकोको पढकर आर्यसमाजी हो गये। फिर आर्यसमाजके आदर्शके अनुसार जीवन व्यतीत करने तथा स्वामी दयानन्दकी शिक्षाके अनुसार वेदविद्या पढनेके लिए वह घरसे निकल पड़े। घरसे निकलनेसे पहिले अपनी सारी सम्पत्तिको—जो कि उनके जीवनके लिए काफी थी—दान कर दिया। जहाँ-तहाँ घूमते-घामते वह जलन्धर पहुँचे। वह दस आर्यसमाजी गृहस्थोके घरोसे मधूकरी माँगकर भोजन किया करते, ब्रह्मचारियो जैसा तहमद और लँगोट पहनते, लकड़ीके खड़ाऊँपर चलते। पढनेमे भी ऋषि दयानन्दके बताये अनुसार ही पढते, सिद्धान्तकौमुदी आदि सभी अनार्ष-ग्रथोकी छायासे भी परहेज करते। उस समय अष्टाध्यायी और महाभाष्य जैसे आर्ष-ग्रथोके पढानेवाले पडित दुर्लभ थे, इसलिए वह स्वय ग्रंथोका स्वाध्याय करते। कन्या-महाविद्यालयके धर्मशिक्षक भक्त रैमलजी,

आर्यसमाजके मत्री, तथा बहुतसे श्रद्धालु आर्यसमाजी ब्रह्मचारीजीको बडी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। हम भी उनसे सर्वथा वीतश्रद्ध न थे, तो भी कुछ बाते हमे अवश्य वहुत पुरानी मालम होती, और यदि गाँवभरकी स्त्रियाँ 'भवेह' (अनुजबधू) मान ली जावे, तो आखिर मज़ाक किनसे किया जावे ?

ब्रह्मचारीजी गर्मियोंमे कागडा-पहाडके लिए रवाना होनेवाले थे। सन्तरामजी और मेरी सलाह हुई कि ब्रह्मचारीजीको एक विदाई-भोज, तथा अभिनन्दनपत्र दिया जावे। भक्त रैंमलको शामिल नही किया था। आर्यसमाजके मन्त्रीको सिर्फ सख्या बढानेके ख्यालसे शामिल किया। हम दोनोने मिलकर एक अभिनन्दनपत्र तैयार किया। भोजके लिए तेलमे तली सिर्फ प्याजकी पकौडियाँ दोनोमे रखी गईं। ब्रह्मचारीजी खडाऊँपर, अँचला पहने, चादर ओढे, नगे शिर आकर कुर्सीपर बैठे। सब मिलाकर पाँचसे ज्यादा आदमी वहाँ मौजूद न थे। कार्रवाई शुरू करते हुए मैंने कहा—इस सभामे मुझसे योग्य कोई व्यक्ति इस पदके लिए नही है, इसलिए मै सभापतिके आसनको शोभित करता हूँ। चार कान कुछ खडे तो जरूर हुए, किन्तु अभी वह उतनी दूर तक सोचनेके लिए तैयार न थे। फिर पडित सन्तरामजीने अभिनन्दन-पत्र पढना शुरू किया—

"　　हम याद करके तडप-तड़पकर मरेंगे, जब आपकी खडाऊँपर खट्-खट् करती सूरत स्मरण होगी।. . .जब आपकी गगनचुम्बिनी शिखा. . "

ब्रह्मचारीजी कुर्सीसे उठकर भागने लगे। सभापति और अभिनन्दन-वाचकने मिन्नतें कर-करके ब्रह्मचारीको तो रोका, किन्तु मन्त्रीजी अलग आँखे लाल-पीली कर रहे थे—'ब्रह्मचारीको तेलकी पकौडी खिलाना किस शास्त्रमे लिखा है ?'

फिर अभिनन्दनपत्र शुरू हुआ, फिर अनुप्रासोकी छटा और नखशिख-वर्णन। फिर ब्रह्मचारी भागने लगे। याद नही, तीसरी बार हम लोग ब्रह्मचारीको लौटानेमे समर्थ हुए या नही। अभिनन्दनपत्र शायद ही समाप्त हुआ हो। मन्त्रीजी तो पहिले ही सटक गये।

उस दिन बडा मजा रहा। दूसरे दिन भक्त रैंमलजीको जब यह खबर मिली, तो उन्होने हमें फटकारना शुरू किया—'ब्रह्मचारीसे मजाक ?' 'मजाक नही बेसरोसामानीके साथ भोज-अभिनन्दनपत्रका दान था।' 'तेलकी पकौडी ब्रह्मचारीको ?' 'किस शास्त्रमें ?' हम लोग ज्यादातर शिर नीचे गाड़कर सुनते ही रहे। इस घटनाके वाद मन्त्रीजी और भक्त रैंमलजीने निश्चित कर लिया, कि मैं विदेशमे क्या देशमें भी धर्मप्रचार करने लायक नही हूँ।

कई दिनके इन्तिजारके बाद भी जब लाहौरका रास्ता न खुला, तो सन्तरामजीकी सलाह हुई घर हो आनेकी। हम लोग रेलसे जा होशियारपुरमे उतरे। पुरानी बस्ती वहॉसे बहुत दूर नही है। सन्तरामजी गाँवमे न रह अपने बागवाले मकानमे रहा करते थे। बागमे आडू, लुकाट आदिके कितने ही दरख्त थे, जिनमे एक यारकन्दी तुर्क माली काम कर रहा था। सन्तरामजीकी स्त्री (पहिली पत्नी) घरका काम-काज करनेमे असाधारण क्षमता रखनेवाली स्त्रियोमे थी। वह रोज हमे नाश्ता, मध्याह्न-भोजन, सायभोजन बनाकर खिलाती। एक दिन सबेरे बर्तन ले दूध दूहने गई, दोपहर-को मालूम हुआ—लडकी पैदा हुई। मुझे विश्वास नही हुआ, किन्तु बात सच थी। हवन करानेमे व्यास मै था, और बच्चीका गार्गी जैसा वैदिक नाम चुनना भी मेरा ही काम था। उसके बाद हम खाना खाने गॉवमे जाया करते।

सन्तरामके भाई-बन्द पचासो बरसोसे चीनी तुर्किस्तानके व्यापारी है। उनके परिवारमे दर्जनो ऐसे थे, जो यारकन्द, खोतन, लदाखमे बरसो रह आये थे, और फिर जानेके लिए तैयार बैठे थे, वे तुर्की और तिब्बती भाषाये फरफर बोलते थे। दूर देशका नाम, वहॉके घर, गाँव, शहर, वहॉके रीति-रवाजकी कथा चल रही हो और 'सैर कर दुनियाकी' ऋचा मेरे कानोमे न गूँजने लगे। रायसाहेब (सन्तरामजीके चचा)ने बतलाया—जाना मुश्किल नही, पासपोर्ट (?) लेना होगा, उसके बाद का इन्तिजाम हम लोग कर देगे। खानेमे वहाँका काला किन्तु मिश्रीके दानोकी तरह चमकते दानोंवाला गुड दहीके साथ खानेमे बडा स्वादिष्ट मालूम होता था। और सरसोंका सूखा साग इतना स्वादिष्ट हो सकता है, इसका मुझे कभी ख्याल भी न आया था। मुझे उस वक्त हलायुधका यह श्लोक बार-बार याद आता था—

"नूतनसर्षपशाक पिच्छलीनि च दधीनि।
अल्पव्ययेन स्वादु ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति॥"

सन्तरामजीके दो या तीन भतीजे और भतीजियोके गोरे गुलाबी रगको देखकर मुझे यहीं ख्याल आया, कि युरोपीय जातियोकासा सुन्दर रग भारतमे भी देखा जा सकता है। अभी तक कश्मीरके पडितोको मैने नही देखा था।

पुरानी वस्तीसे हम लोग होशियारपुर पैदल आये, और फिर तॉगा वदलते जलन्धर शहर आ गये। थोडे ही दिनो बाद टिकट मिलने लगा, और मै लाहौर पहुँच गया।

लाहौरमे भी लाहोरी दर्वाजेपर गोली चली थी, जहॉ मरनेवालोमे मुंशीराम शास्त्री एक तरुण विद्यार्थी था। इसी साल उसने शास्त्री परीक्षा दी थी, और परि-णामके इतना खराब निकलनेपर भी वह पास देखा गया, यद्यपि उस वक्त वह उसे

सुननेके लिए मौजूद न था। मुशीराम अनाथालयमे पला था, और एक होनहार नौजवान था।—'हसरत उन गुचो पै है, जो बिन खिले मुर्झा गये।' उसे कई गोलियाँ लगी थी, देखनेवाले साथियोने बतलाया, कि सभी गोलियाँ सामनेसे उसकी छाती, बाहों और जाँघोंमे घुसी थी। मुशीराम जैसे कितने बहादुरोंने मार्शल-लाके हाथों—क्रोधान्ध ब्रिटिश शासकोंके हाथो—अपनी जाने गँवाई।

अभी मार्शल-ला जारी ही था, जब कि मै लाहौर पहुँचा। अखबार पढनेको बहुत कम मिलते थे। जगह-जगह फौजी आज्ञाये चस्पाँ थी—लोगोको कब चलना चाहिए, कब सोना चाहिए, दूकानदारोको चीजे किस भाव बेचनी चाहिए. . . , नही तो क्या दड होगा। इस वक्त पजाबके लफ़्टेट-गवर्नर ओडायरको अपनी हृदय-हीनताका पूरा परिचय देनेका मौका मिला था। सेनाने निहत्थे स्त्री-पुरुषो, बाल-वृद्धो-पर जो अत्याचार किये थे, उनकी कथाये सुनकर खून खौलने लगता था। म्युजियम-की ओर मार्शल-लाकी अदालते बैठती थी। पकडे हुए लोगोके भाग्यका निबटारा देखनेके लिए उनके सम्बन्धी सहस्रो नरनारी जमा रहते थे, और बेगुनाहोकी फाँसी, लम्बी-लम्बी सजाये सुन-सुनकर हमारे जैसोको अपनी बेबसीपर गुस्सा और ग्लानि होती थी। भगवान्मे मेरा विश्वास अभी टूटा नही था, तो भी सोचता—उनका न्याय आज क्यो नही होता? आज इन अदालतोंपर बिजली क्यों नही गिरती? पहिले गोले-गोलियो, हवाई-जहाजोसे नन्हे-नन्हे बच्चोके खूनसे हाथ रगके पीछे फाँसी-डामिलका हुक्म सुनानेवाले इन आततायियोकी जीभ कट हजार टुकडे हो क्यो नहीं गिरती? ऐसी अत्याचारी कौमका बेडा महायुद्धमे क्यो नही हमेशाके लिए गर्क हो गया?

गर्मियोमे पजाबमे ल्हस्सी (मट्ठा) पीनेका बहुत रवाज था, किन्तु दही नौ बजते-बजते साफ हो जाती थी। फौजी अफसरने दर मुकर्रर कर दी थी, उससे बेशी दामपर बेंचनेपर कडी सजा और जुर्माना होता। लोग सबेरे ही दहीकी दूकानपर भीड लगा देते थे। हाँ, केसरीदासका लेमनेड, लाइम-जूस इसी वक्त सारे नगरमे प्रसिद्ध हुआ था। यह दूकान वशीधरके मन्दिरसे बिल्कुल पास थी, इसलिए हम लोग अक्सर वहाँ पहुँच जाते थे।

रोलट-एक्टके विरुद्ध जो भारी विद्रोहकी यह भावना पैदा हुई थी, उसने बहुतसे मुर्दोंमे रूह डाल दी थी, किन्तु मार्शल-लाके दिनोने इनमेंसे कितनोको सडी लाशोमे परिणत कर दिया। कलके रगे सिह आज अपने असली रूपमे दिखलाई देने लगे। कल जिनके नाम जोशीली नोटिसोंपर छपते थे, आज वह सर्कारकी

फर्माबर्दारीके लिए नोटिसे निकाल रहे थे। वे ओडायर-शाहीकी खुशामदके लिए रास्तेमे पडी अपने शहीदोकी लाशोपरसे पैर रखकर जानेमे जरा भी आनाकानी नही करते थे। पजाबने इन्हे 'कुत्ते', 'झोली-चुक्क'के खताब दिये, जिसकी चोटसे उन्हे बचानेमे मार्शल-ला भी असमर्थ रहा। उस वक्तके इन 'झोली-चुक्को'पर पीछे सर्कारकी पूरी कृपा होना स्वाभाविक था, और उसने उन्हे सर, मिनिस्टर और क्या-क्या नही बनाये। किन्तु देश क्या उनके गुनाहोको भुला देगा? जो देश अपने विश्वासघातियोको उनके कियेका मजा नही चखाता, वह अपनी इज्जत और स्वतन्त्रताको कभी नही कायम रख सकता।

मार्शल-लाका लोगोपर आतक छा गया था, किन्तु उस आतकका जरा भी असर हमारे जैसोपर नही था। जासूसोका जाल बिछा रहनेपर भी मित्रमडलीमे अग्रेजी शासनके खिलाफ हमारी टिप्पणियाँ उसी तरह होती थी। अग्रेजी शासनके प्रति हमारी घृणा कई गुना बढ गई थी, और 'झोली-चुक्क' हमारे मानसिक कोपकी आगमे बुरी तरह भस्म हो रहे थे। पजाबके अखबार करीब-करीब बन्द थे, हम खबरोके लिए दूसरे प्रान्तोके पत्रोका इन्तिजार करते। दिल्लीके 'विजय'(सम्पादक, इन्द्रजी)की कापियाँ आतेके साथ बिक जाती थी। कुछ ही दिनो बाद जब मालूम हुआ, कि दिल्लीके एक सस्कृतके पडित—खुशामदके बलपर महामहोपाध्याय—विजयकी खबरो और लेखोको जाँचनेके लिए सेन्सर बने है, तो वैसे पडितोके खिलाफ हमारी घृणाकी सीमा नही रह गई। मै सोचा करता—आखिर किस स्थायी लाभके लिए ये लोग इतने नीचे गिरते है? पेट तब भी उनका चल रहा था। कुछ पैसे ज्यादा मिल गये, किन्तु वह तो सदाके लिए नही मिलते रहेगे। उस वक्त देशद्रोहसे हजारो रुपये पैदा करनेवाले कुछ तो पीछे दाने-दानेको तरसते देखे गये।

मार्शल-ला हटा, किन्तु इसी समय अफगानिस्तान-अग्रेज युद्धकी खबरे आने लगी। सारे बेल्जियम, आधे फ्रास, तथा उनके दोस्तोकी बहुतसी भूमिपर बढते चले जानेपर भी जर्मन अग्रेज दुनिया भरमे अपनी ही जीतकी खबरे फैला रहे थे, तो अफगानिस्तानके युद्धके बारेमे हमे सच्ची खबरे मिलने पायेगी, इसकी तो सम्भावना ही न थी। तो भी हम लोगोका दिया फैसला सदा अग्रेजोके खिलाफ रहता।

घटनाओकी गर्मीके बीचसे हमे लाहौरकी उस सालकी गर्मी बीतते मालूम न हुई। बलदेव और सोमयाजुलू घर चले गये थे, और परीक्षा-परिणामकी खबर देनेको कह गये थे। क्रमश. परिणाम निकले। मै अपनी सारी शास्त्री-जमायतके साथ अनुत्तीर्ण, बलदेव पास, सोमयाजुलू फेल। बर्सात शुरू होना चाहती थी, पढाईके

शुरू होनेमे अभी दो महीनेकी देर थी। पसीनोके बाद बदनमे छोटी-छोटी फुन्सियाँ शुरू हुईं, मुझे लाहौरमे उदासी मालूम होने लगी। उसी समय पडित गोविन्ददासको मैने एक पत्र लिखा, उन्होने बडे आग्रहपूर्वक चले आनेके लिए लिख भेजा।

## ९

# चित्रकूटकी छायामें (१९१९-२० ई०)

जूहीसे जब मैं बाँदाकी लाइनपर चल रहा था, तो देखा ताल-तलैयाँ भरी हुई है। ढाई मास पहिले यही मैंने लोगोको दरख्तोके पत्तोसे पशुओकी प्राणरक्षा करते देखा था। महोबा-स्टेशन पार होते वक्त मुझे पादरी ज्वालासिंहके मुबाहिसेकी बात याद आई, किन्तु इस बार मैं वहाँके किसी परिचित आर्यसमाजीसे भेट करनेकी चाह नही रखता था। कर्वीमें स्टेशनसे उतरकर—महन्त जयदेवदासके मठमे पहुँचा। अयोध्याके परिचित मित्रोमे मिले सिर्फ व्याकरणाचार्य पडित गोविन्ददास पाठशालाके प्रधानाध्यापक।

महन्त जयदेवदास चित्रकूट-मडलके वैरागी महन्तोमे सबसे अधिक धनी और प्रतिष्ठित महन्त थे। धनी होनेपर भी उनको अभिमान न गया था। वेष-भूषासे तो मालूम होता, कि कोई मामूली रमता साधु है। खाने-पीनेका भी उन्हे शौक न था। यद्यपि वह मामूली हिन्दी भर जानते थे, किन्तु विद्याके प्रति उनका स्नेह था, इसी-लिए तो उन्होने सस्कृतकी एक बडी पाठशाला खोल रखी थी। श्रावणमे रासलीला और सस्कृतपाठशाला ये दो उनके शौककी चीजे थी। दोनोके लिए उन्होने कुछ जायदाद अलग कर दी थी। रासलीलाके लिए पत्थरके खम्भोकी एक खुली बारा-दरी बनवाई थी, जो पाठशालाके क्लास-रूमका भी काम देती थी। विद्यार्थियोके रहनेके लिए मठके बाहरी ओर भी बराडे सहित कितनी ही कोठरियाँ थी, जिनमे मठ और आवासोंमे न आ सकनेवाले साधुविद्यार्थी रहते थे, इन्ही कोठरियोमे बारादरीसे तीसरी या चौथी कोठरीमे मेरा आसन था। गृहस्थ (ब्राह्मण)-विद्यार्थियोके रहनेके लिए बारादरीसे दक्खिन एक मकान था। उस वक्त पडित गोविन्ददासके अतिरिक्त पडित जगदीश त्रिपाठी और पडित शिवनारायण शुक्ल दो और अध्यापक थे।

मेरा इरादा कलकत्ताकी किसी परीक्षामे बैठनेका था। वेदमध्यमा पास हो गया था, इसलिए वेदतीर्थमे मै बैठ सकता था, किन्तु यहाँ उसके किसी ग्रथका कोई अध्यापक न था। पाठशालाके विद्यार्थी अधिकतर काशीकी सरकारी परीक्षा देते थे। पडितजीकी राय हुई, कि मै सम्पूर्ण न्यायमध्यमासे बैठूँ। स्मरणशक्ति अब भी मेरी क्षीण न थी, किन्तु रटनेको मै बडी नफरतकी निगाहसे देखता था, इसलिए सफलतामे सन्देह था। आगे चलकर साख्य-मध्यमा (विहार), साधारणदर्शन-मध्यमा (कलकत्ता), मीमासा-प्रथमा (कलकत्ता)के लिए भी फार्म भरे, जिनमे बिहारकी परीक्षामे तो दूसरी परीक्षाके उसी समय पड जानेसे बैठ नही सका। उसी विषयकी प्रथमा जिसने पास नही की है, वह मध्यमामे नही बैठ सकता, इस नियमके अनुसार साधारणदर्शन मध्यमामे मुझे बैठनेकी इजाजत नही मिली।

सावनमे रासलीला शुरू होनेसे पहिले ही मै कर्वी पहुँच गया था। रामलीला तो पहिले भी कितनी ही बार देख चुका था, किन्तु रासलीला देखनेका यह पहिला मौका था। रातको दर्शक नरनारियोकी बडी भीड लगती थी। मथुराकी मडली थी, और 'पारखी' लोग बडी तारीफ कर रहे थे। मुझे तो उनके सलाप अस्वाभाविक, वेष बेहूदे, गान अश्लील मालूम होते थे। मै तो इस बातके लिए तअज्जुब करता था, कि मडलीका अध्यक्ष अपने बेटे-भतीजेमेसे एकको राधा और दूसरेको कृष्णका वह प्रेमाभिनय नाटय करनेकी इजाजत कैसे देता है? किन्तु ऐसा भाव प्रकट करते हुए मै यह भूल जाता, कि मै वैरागी ऊपरसे दिखलाने भरके लिए था, और भीतरसे आर्यसमाजके विचार उन बातोका विरोध कर रहे थे।

न्यायके दो-एक ग्रथोको मैने पडित गोविन्ददासजीके पास पढा, और योगसूत्र, साख्यकारिकाको याद किया। शास्त्रीमे फेल होकर आया था, किन्तु पाठशालामे विद्यार्थियो और साधुओकी ओरसे मुझे शास्त्रीकी आनरेरी उपाधि मिली थी। महन्तजीको अग्रेजीका कागज-पत्र जब पढाना होता, तो मेरी खोज करते, और सिर्फ उसी वक्त मै उनके पास जाता; बाकी वक्त उनके उत्तर कोनेके दोमहलावाली बैठके-पर मुझे जाते किसीने कभी नही देखा। महन्तजी शायद इसे विद्या तथा परसा जैसे बडे मठके उत्तराधिकारी होनेके कारण मेरा अभिमान समझते हो, किन्तु सहवासी विद्यार्थी, अध्यापक और साधारण साधु भी वैसा समझनेकी गलती नही कर सकते थे। मै सबसे मिलता, सबसे बात-चीत करता, काम पडनेपर सबकी सेवाके लिए तैयार रहता। क्वारका महीना था, दोपहरको हरिनारायणदास—एक तरुण साधु—का शिर बहुत जोरसे दर्द करने लगा। लोग उसे पकडे हुए थे, और वह पक्के फर्शपर

अपना सिर पटकनेकी कोशिश करता था। लोग जिस किसीकी दवाका उपचार करना चाहते थे। मैंने कहा—डाक्टर बुलाना चाहिए। डाक्टर बुलाने कौन जावे ? मैं तैयार हो गया, इसपर फर्रुखाबाद जिलेका एक तरुण साधु भी मेरे साथ हो लिया। कर्वीमे एक बगाली डाक्टर प्राइवेट प्रेक्टिस करते थे, उन्हें हम बुला लाये। उन्होंने कई घडा ठडा पानी हरिनारायणके सिरपर उडेलवाया। धीरे-धीरे दर्द जाता रहा। उस वक्त मुझे यह नही मालूम था, कि क्वारकी वह कडकती धूप इतनी भयकर साबित होगी। उसी दिन अयोध्यासे मीमासकजी (मैसूरवाले तामिल पडित) आ गये, और उनके साथ मै तो भरतकूप आदिकी ओर उन्हे दर्शन कराने चला गया, किन्तु इधर फर्रुखाबादी साथी सख्त बीमार हो गया। तीसरे या चौथे दिन ९ बजे दोपहरको मै जब लौटकर आया, तो यह बात मालूम हुई। उसकी कोठरीकी ओर जानेपर यह देखकर मुझे खुशी हुई, कि उस दिनके बाद आज बिछौनेसे उठकर वह बाहर दातवन कर रहा है। मैने जाकर ललाटपर हाथ रखा, वह बर्फकी तरह ठडा था, हाथ भी शीतल। खैर, उठकर बाहर बैठे दातुवन करते देख, तथा 'बडे जोरकी भूख लगी है'—कहते सुन मैंने उसके बदनके ठडे होनेकी कोई चिन्ता न की। लौटकर अभी अपनी कोठरीमे पहुँचा ही था, कि खिचडी पकानेमे लगा साथी दौडा हुआ आया—'देखिए वह तो गिर गये।' जाकर देखा, हमारा वह निर्भीक साथी बिछौने-पर मुँहके बल गिरा है, उसके मुँहसे निकले रक्तमिश्रित कफसे दो अगुल कपड़ा भीग गया है, उसका शरीर ठडा हो गया है, नाडी और हृदयकी गति बन्द हो गई है। क्वारकी उस खतरनाक दोपहरीमे मै उसे क्यों लिवा गया—इस पछतावेसे अब होनेवाला ही क्या था ? जिस वक्त सभी सहवासी साधुओंमेसे एक भी डाक्टरको बुलानेके वास्ते मेरे साथ जानेके लिए तैयार न हुआ था, उस वक्त वह स्वय तैयार हुआ। उसने अपने छोटेसे स्थानमे महन्त होकर सार्वजनिक काम करनेके बारेमे मुझसे कितनी ही बार बाते की थी—ये सब बाते जल्दी भूल जानेवाली न थी। अब उस साथीके शवके जलानेका प्रश्न था। मुझे वहाँके साधुओके व्यवहारको देखकर क्रोध और घृणा पैदा हो गई। त्याग और वैराग्यके ये ठीकेदार, भक्त और भगवानके ये इश्तिहारी-सेवक अपने एक साथीके शवको मठके पीछे नदीपर ले जाकर फूँक आनेके लिए भी तैयार नही थे। लकडी तो खैर, मठसे मिल गई। बहुत कहने-सुननेपर एक-दो साथी मिले। शवको ले जा, नौसिखिये हाथोंसे मैने चिता चिनी, और उसपर अन्तर्लीन नई उमगवाले उस तरुण निश्चेतन शरीरको रखकर जला दिया।

कर्वीसे चित्रकूट, तथा आसपासके पहाड और साधुओके आश्रम नजदीक है।

मैं कई बार चित्रकूट-पर्वतकी परिक्रमा करने गया।—तीर्थका भाव तो आर्यसमाजने हृदयसे हटा दिया था। वाल्मीकि कालके एक ऐतिहासिक स्थानके तौरपर अभी उसके प्रति सन्मान नही पैदा हुआ था, किन्तु प्रकृति देवीकी एक विचित्रताका आकर्षण जरूर था, यद्यपि हिमालयके दर्शनके कारण वह परिमित सीमा ही तक हो सकता था। चित्रकूट पहाडकी परिक्रमामे बने सैकडो मन्दिर, मठ और उनकी दूकानदारी, उनका वाह्य योग और आन्तर भोग मुझे अब उतना विकल नही करते थे, क्योकि मैं धार्मिक जगत्के 'खानेके दाँत और दिखानेके और'से पूरा वाकिफ था। चित्रकूटके शिखरपर चढनेमे मुझे आनन्द आता था। परिक्रमाके बहुतसे स्थान परिचित हो गये थे, इसलिए कही दो गिलास पानी पीते, कही मध्याह्न-भोजन करते, कही आध घटा गप करते परिक्रमा सबेरेसे शाम तक पूरी हो जाती थी।

यद्यपि यहाँ भी वही नदी थी, जो कर्वीमे हमारी पाठशालाकी बगलसे बहती थी, किन्तु वहाँ हमे 'चित्रकूटके घाटपर भइ सन्तनकी भीड' याद न आती थी। नदीके और ऊपर चित्रकूटसे कुछ मीलपर जानकीकुड था। यहाँ नदी पथरीली जमीनपर कल-कल करती बह रही थी। पानी स्वच्छ, जिसमे झुडकी झुड मछलियाँ तैरती थी। साधुओने यहाँ एक अपना गाँव ही बसा लिया था। कुटियाँ अधिकतर मिट्टीके भिडोंको खोदकर बनाई गई थी, जो भीतरसे ठडी मालूम होती थी। ऐसी ही कुटियोको देखकर तुलसीदासने अपने ऋषि-आश्रमोका चित्रण किया होगा। जानकीकुडके 'ऋषि' कितनी ही बातोंमे भेद रखते हुए भी, बहुत सी बातोमे अपने पूर्वजोसे समानता रखते थे। पहिलेके ऋषियोकी भाँति ये सकलत्र न थे, किन्तु ये उन्हीकी भाँति सपरिग्रह थे। पहिलेके ऋषियोकी भाँति ये सिर्फ वन्य कन्दमूलपर गुजारा नही करते थे, किन्तु थे ये उन्हीकी तरह यूथ बाँध अरण्यमे बसे। इगुदीके तेलको यहाँ कोई नही पूछता था, यहाँ तो हमारे रसिक सन्तो (सखी लोगो)के दीर्घ केशोसे चमेली और गुलरोगन चुआ करते थे। आखिर जिस सगुण पूजाको एक मात्र ये पूजा मानते थे, उसमे तारुण्य-का आनन्द लेनेवाले सीता-रामको उनके अनुरूप ही तो भोगसामग्री जुटानी चाहिए थी। जानकीघाटमे जब-तब सीतारामदास नामक एक युवकसे मिलकर वडी प्रसन्नता होती। वह अच्छे प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे। सिद्धान्तकौमुदी प्रायः समाप्त कर चुके थे। पढाईसे वैराग्य हुआ था, किन्तु अव आसपासके जगलों, राजापुर, बाँदा आदि स्थानोमे पैदल बे-सरोसामान घूमनेमें उन्हे आनन्द आता था। सगुण-उपासना और सखी-मार्गसे उन्हे भी मेरी ही तरह वहुत घृणा थी; सन्तो-महन्तोकी मुसाहिवीसे उन्हे भी विरक्ति थी। कर्वीके गोलेमे (किराना-बाजार) एक रसिक साधु आये

हुए थे, रसिक होते हुए भी वह कुछ पढे-लिखे थे, इसलिए पढे-लिखे साधुओंका सन्मान करते थे। सीतारामजीके साथ मुझे भी कई बार वहाँ जाना पडा। क्या सत्सग होता था, याद नही, हाँ, जानेपर भोजन वही करके आते थे। सीतारामजीके साथ एक बार राजापुर भी गया। यमुनाका स्नान तथा "गोस्वामीजीके हाथ"की लिखी रामायणका दर्शन किया। कई पर्त कपडोको हटाकर पुजारीने हाथके कागजपर लिखी खुले पन्नेकी पुस्तकको दिखलाकर बतलाया—'कोई साधु इसे चुराये लिये जाता था। पकडे जानेके डरसे उसने नदीमे फेक दिया, उसीसे ये पानीके दाग है।' मुझे उस वक्त कनैलाकी कैथीमे लिखी रामायण-पोथी याद आ रही थी, जो मेरे बचपनमे ज्यादा नही तो सौ-डेढ सौ वर्ष पुरानी तो जरूर रही होगी, और जिसपर ही लोग 'गोविन्द-साहेब'के नीचे रामायण गाया करते थे।

कर्वीके पूरब कुछ दूरपर एक गाँवमे एक ब्रह्मचारीकी कुटिया थी। एक दिन सीतारामदासजीके साथ हम लोग वहाँ गये। कुटियाकी दीवार और फर्श कच्चे थे, किन्तु वह बहुत साफ-सुथरी गेरूसे रगी हुई थी। कुछ फूलके पौधे, स्वच्छ छोटा-सा आँगन बहुत सुन्दर मालूम होते थे। वैष्णव वैरागियोके मुल्कमे यह गेरुआधारी ब्रह्मचारी कहाँ से ? ब्रह्मचारी, सीतारामजीके दोस्त थे, शायद उस दिन हम उनसे मिल न सके। रास्तेमे हमने बाजरेका होला खाया और आगे पहाडकी किसी गुफामे गये। बतलाते थे, रातको यहाँ बाघ आया करता है। पहाड ही पहाडसे हम जानकी-कुडकी ओर गये। रास्तेमे इगुदी, चिरौंजी और दूसरे कई प्रकारके जगली फलदार दरख्त मिले। शायद पहाडके अन्तपर एक कुटी मिली, जिसे किसी एकान्तप्रिय योगीने बनवाई थी। योगीके विचारोने पलटा खाया, और वह रामके जमानेके ऋषियोकी तरह सहयोगी बन गया, किन्तु आज दूसरी या तीसरी पीढीके गृहवासियोने उसे साधारण दरिद्र गृहस्थका घर बना दिया था, जिसके आँगन मे नगे बच्चो तथा फटे कपडोवाली स्त्रियोके साथ दारिद्रय और दैन्य डोलते-फिरते दीख रहे थे।

चित्रकूटसे दडकारण्यके रास्तेकी ओर जानेका आकर्षण मेरे लिए बहुत था, किन्तु इतनी बडी मुहिमके लिए वहाँ समय कहाँ था ? अनुसूयाके आश्रमपर हम एक बार गये थे। पहाड और घना जगल, जगली जानवरोकी हर जगह सम्भावना थी, तो भी इन जगली गाँवोमे गाये-भैसे बहुत दिखाई पडती थी—चरागाह काफी रहे, तो बाघ-बघेरे गायोकी सख्याको कम नही कर सकते। विन्ध्याटवीमे घुसनेपर बाणके हर्षचरितमे बहिनकी खोजमें भटकते हर्ष और दिवाकरमित्रका आश्रम स्मरण आने लगता, और जगलमे किसी कृष्णकाय ब्राह्मणको देखकर कादम्बरीका

जरद्-द्रविड धार्मिक याद हो आता। 'आश्रम' नदीके बाये किनारे था। वहाँ एक धर्मशाला थी। हम लोग खाना बनानेकी तैयारी करने लगे, धूआँ आसमानमे मेघ-चित्र बनाने लगा, तब हमे पिछवारेके पहाडके पाषाण पार्श्वपर काले-काले बडे-बडे मधुच्छत्र लटकते दिखलाई पडे। समयसे पहिले हम सजग हो गये, और आगको दूसरी ओर ले गये, नही तो वह लम्बी मधुमक्खियाँ यदि एक बार हमारी गुस्ताखी-को अपनी शानके खिलाफ समझ जाती, तो हमारा वहाँसे बचकर निकलना मुश्किल था। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ, कि ग्रामीण लोग रातको मशाल बाले, बाँस या रस्सेके सहारे सैकडो हाथ ऊँची आगेकी ओर लटकती इन चट्टानोपर पहुँच मधु जमा करते है। मेरे दिलमे तो यह ख्याल आनेपर भी तलवा पसीजने लगता था। भालू भी इन छत्तोकी मधुको खाता है, यह मेरे लिए नई जानकारी हुई, जिससे पीछे उसका रूसी नाम मेद्वेद (मधु-अर)के समझनेमे आसानी हुई।

कर्वीमे रहते ही वक्त जानकीघाट (अयोध्या)के एक साधु एक हस्तलिखित पुस्तक लाये। कह रहे थे, इसके ग्रथके परिचयवाले अशको छोडकर उतारे, हम लोग इसे वेदान्तसूत्रोपर रामानन्दभाष्य कहकर इसे प्रकाशित करेगे। मैने उसके कितने ही अशोको पढा। वह किसी महात्मा तुलसीदासका बनाया वेदान्तभाष्य था, जिसमे अद्वैत वेदान्तका खडन करते हुए द्वैतवादका प्रतिपादन किया गया था। आर्यसामा-जिक विचारोके ग्रहणके साथ मै शकरके अद्वैत वेदान्तको छोड द्वैतवादी हो गया था, इस दृष्टिसे मुझे इस भाष्य या टीकाकी बाते पसन्द थी, किन्तु तुलसीदासका नाम हटाकर उसे रामानन्दके नामसे प्रकाशित करना मुझे अनुचित मालूम हुआ, इसलिए मैने वैसा करनेसे इन्कार कर दिया। पीछे मालूम हुआ, कि वह काम किसी दूसरेने किया।

कर्वीके साथियोमे पडित इन्दिरारमणकी ओर मेरा विशेष ध्यान आकर्षित हुआ था। व्यवहार-बुद्धिमे उनकी कमियोको जानते हुए भी उनकी अध्ययन-सम्बन्धी प्रतिभाका मै कायल था। इसके अतिरिक्त एक और बात थी, जिसने मुझे उनका अज्ञात पक्षपाती बना दिया था। इन्दिरारमणजी छपरा जिलाके एक गोसाई-वशमे पैदा हुए थे। गोसाई-वशका हिन्दुओमे कितना ऊँचा स्थान है, यह इसीसे स्पष्ट है, कि बड़ीसे बड़ी उम्रका ब्राह्मण भी एक छोटेसे गोसाई-लडकेके सामने शिर नवाता है। पन्दहामे मेरे नानाके दोस्त एक गोसाई आया करते थे, उनका काला बड़ा-बडा गलगुच्छा तथा गलेमे रेशममे पिरोया एकहरा रुद्राक्ष मुझे अब भी याद आता था। उनको देखते ही नानाजीके सिखाये अनुसार मै 'नम्मो नरायन' (नमो नारायण)

कह उठता। मेरे लिए बहुत पहिले भी यह विश्वास करना असम्भव बात थी, कि गोसाई छोटी जाति है। और अब तो मै भीतरसे पक्का आर्यसमाजी था। साधुओको गुसाईं कहकर उनको नीची दृष्टिसे देखनेकी बात मेरे लिए असह्य थी। शायद, वैरागी वैष्णवोका जन्मजात शकर-मतानुयायी होनेसे भी गोस्वामी गृहस्थोंके साथ इस तरहका विरोध हो। इन्दिरारमणजीके दोस्त उन्हे ब्राह्मणवशिक कहते थे, मै भी ब्राह्मण कहकर उनके प्रतिद्वन्दियोको फटकारता। मै चूँकि स्वय छपरा जिलेके एक प्रतिष्ठित मठका 'उत्तराधिकारी' था, इसलिए मेरी बातका उनके पास जवाब न होता। यह देखकर मुझे कभी-कभी चिन्ता होती थी, कि इन्दिरारमणजीको जब-तब उनकी बाते चुभती है, लेकिन उस वक्त यह ख्याल न आया था, कि यह अपमान उन्हे साधुका स्वतन्त्र जीवन—जो कि साधकावस्थामे अपनेको तैयार करनेके लिए बहुत सहायक हो सकता है—छुडा गृहस्थीके जजालमे फँसा देगा। छपरामें राजनीतिक कार्य करते वक्त जब पहिले-पहिल मुझे यह खबर लगी, तो मुझे बहुत भारी धक्कासा लगा। गृहस्थ होनेपर आदमीको नोन-तेल-लकडीसे ही छुट्टी नही मिलती, वह अपने जीवनको विशेष कार्यके योग्य कैसे बना सकता है ?

कर्वीके साथियोमे एक और सीतारामदास (मिथिलावासी) थे। वह पढनेमें दुर्बल थे, किन्तु उनका हृदय बहुत मृदुल था। सार्वजनिक सेवाके बारेमे उनसे बराबर बाते होती थी। बीमार साधुओको कैसे अनाथ छोड दिया जाता है, इसका अनुभव मुझसे भी ज्यादा उन्हे था। मैने उनसे कहा—आप कोई ऐसा स्थान बनावें जहाँ बीमार साधुओकी पूरी तौरसे सेवा-सुश्रूषा होवे। उन्होने उसके लिए योजना बनानी और तैयारी करनी भी शुरू की। अपने हृदयसे मैं उनके बारेमे भी समझ सकता था, कि देशाटनकी साध पहिले न पूरी करनेपर शायद पीछे उन्हे अपना काम बन्द करके निकलना पडे, इसलिए पहिले इस साधको पूरा कर लेने के लिए मैने सलाह दी। एकाध बार प्रयाग, बनारस और शायद जबलपुरतक हम साथ घूम भी आये। कर्वीके आखिरी दिनोमे मेरे पास दो लँगोटी, एक अँचला (जो पीछे एक कम्बलकी अल्फीके रूपमे परिणत हो गया), एक अँगोछी और एक लौकाका कमडलू मात्र रहता था। मैने अपने साथीको कहा—बस यही बाना लो, और बिना एक भी पैसा-कौडीके 'चारो मुल्क जागीरीमे' समझो। पीछेकी यात्राओमे एक जगह सीतारामदासजीका सिर्फ एक बार पता लगा था, किन्तु भेट फिर कभी नही हुई।

न्यायमध्यमा परीक्षामे सिद्धान्तलक्षण और 'सिहव्याघ्रलक्षण'पर जागदीशी टीका भी थी। उसके पढनेके लिए मुझे बनारस जाना पडा। स्वामी वेदानन्दजीके यहाँ

नन्दनसाहुकी गलीमे ठहरा, और पढनेके लिए रणवीर-पाठशाला (हिन्दू विश्वविद्यालय)मे उत्कल पंडित श्रीकर शास्त्रीके यहाँ जाया करते थे। श्रीकर शास्त्री पुरानी पीढीके उन पंडितोंके अवशेष थे, जिन्हे पुत्र और शिष्यके स्नेहमे भारी अन्तर नही मालूम होता था। पाठ हो जानेके बाद बाते शुरू होती। वे काशी पढने आये थे, शिक्षा समाप्तिके बाद यही रह गये। काशीका कोई भी प्रकाड पडित पैसोके लोभसे काशी छोड बाहर नहीं जाना चाहता। श्रीकर शास्त्रीकी भाँति ही मेरे मोतीरामके बगीचेमे रहनेके समय अस्सीपर एक वैयाकरण पडित रहा करते थे। उन्हे रोज़ भाँगका गोला छाननेके लिए चाहिए था। व्याकरणके अच्छे पंडितोमेसे थे, और नगवामे १० या १२ रुपया महीनेपर पढाते थे। एक बार एक रानीने उन्हे साठ या सत्तर रुपया मासिक तथा खाना-कपडापर अपनी राजधानीकी पाठशालामे पढानेके लिए भेजा। पंडितजी महीनेके भीतर ही लौटकर फिर अस्सीसगमपर भग छानते दिखाई पडे। कह रहे थे—पाठ रुपिल्लयोंके लिए क्या मै सारी पढी-पढाई विद्याको भुलवा देनेके लिए वहाँ रहता? वहाँ तो लघुकौमुदीके ऊपरके विद्यार्थी ही नही मिलते; फिर मेरे 'परिष्कार', और फक्किका-विमर्श तो धरे ही रह जाते। श्रीकरशास्त्रीकी इसके सिवा और कोई कामना न थी, कि काशीमे अपना एक मकान हो जाये। मै एक-दो महीने उनके पास पढता रहा, किन्तु इतने हीमे मै उनके प्रिय शिष्योमे हो गया था।

काशीमे आनेसे भी मै डरता था, फिर रहनेकी तो बात ही क्या? क्योकि, वहाँ कनैलाके आसपासके किसी आदमीसे भेंट हो जानेका डर था। एक दिन टौनहालके हातेमे आर्यसमाजके वार्षिकोत्सवमे गया। देखा, मेरे पीछेकी पाँतीकी एक कुर्सी पर रामाधीन पाडे बैठे हुए है। मेरी नजर उधर फिरते ही हमारी चार आँखे हुई। उन्होने पूछा—'घर नही चलोगे?' क्या जवाब दिया, मालूम नही; किन्तु खतरेका डंका बाज गया, यह समझनेमे तो कोई सन्देह नही रह गया। सौभाग्यसे मेरी पाठ्यपुस्तके समाप्त हो चुकी थी।

कर्वीमे लौटकर फिर परीक्षाकी तैयारी करने लगा, लेकिन सम्पूर्ण न्यायमध्यमामे जितने ग्रथोंको रटना था, वह उतने थोड़े समयमे साध्य नही था।

जाड़ोंमे कर्वीके ज्वायंट-मजिस्ट्रेट मिस्टर खरेघाट शादी करके लौटे थे। उस समयके बडे आदमी किसी उपलक्ष्यमे बड़े हाकिमोको दावत देना अपना फर्ज़ समझते थे, इन बातोंकी परम्परा और कायदा बन चुका था। इधर महन्त जयदेवदासजी हाल हीमे अनारी-मजिस्ट्रेट बने थे। अभिज्ञोने सलाह दी, ज्वायट-मजिस्ट्रेट

नया कलेक्टर साहेबको दावत देनी चाहिए। दावतकी तैयारियाँ होने लगीं। छपरा आने-जानेवाले एक साधु महन्तजीके मुसाहिबोंमें थे। जब उनसे मालूम हुआ, कि प्रयागकी एक अंग्रेज-कम्पनी (किलनर?)को दावतकी चीजोंके इन्तिजामका भार दिया जा रहा है, तो मैंने समझ लिया उसमें गोमांस भी आयेगा। उधर बगलके मठ रामबागके महन्तके साथ हमारे महन्तकी बहुत चल रही थी। मैंने सोचा, इसकी खबर उन्हें लगके रहेगी फिर वह बात वह समाचारपत्रोंमें छपवा देंगे। यद्यपि अब मैं सोलहों आने गरम राष्ट्रीयतावादी था, और इस प्रकार अंग्रेजों तथा उनके खुशामदियोंसे चिढ़ी रखता था, किन्तु महन्त जयदेवदासजीमें बहुतसे गुण थे, जिनके कारण मैं उनकी इस एक कमजोरीका ख्याल नहीं रखता था; इसलिए मैंने सद्भावनासे ही प्रेरित होकर उनके मुसाहिबसे कहा—'अंग्रेज लोग गोमांसको अनिवार्य भोजन नहीं समझते। खासकर महन्तजी जैसे धार्मिक व्यक्तिकी ओरसे उसके प्रस्तुत होनेपर तो भीतर ही भीतर वह घृणा करेंगे, इसलिए खाद्य-सामग्रीमें उसे छोड़ देना चाहिए। महन्तजीको दुविधामें पड़े देख, उनके 'राजभक्त' दोस्तोंने—जिन्हें खुद ऐसी दावतें करके धन्य-धन्य होनेका मौका मिल चुका था—उन्हें यह कहकर डरा दिया, कि वैसा करनेपर तो कलेक्टर साहेब अपनी तौहीन समझेंगे। फिर जिस देवताके मृदु-हासकी प्रतीक्षा हो, उसीकी आँखे लाल कराने कौन जावे। महन्तजीने कह दिया—'हम जमींदार हैं हमें सर्कार-दर्बारसे भी काम पड़ता है, इसलिए दावतमें जो चीजें लगती हैं, वह आवेंगी। मेरे मनपर इसका बुरा प्रभाव पड़ा। हिन्दुओंमें गोभक्ति कितनी मौखिक है, इसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण था।

दावत यद्यपि व्हेरथाट साहेबके ब्याहके उपलक्ष्यमें हो रही थी, किन्तु उसमें निहित था वाँगके कलक्टर (अंग्रेज)को अनारी-मजिस्ट्रेटी देनेके लिए धन्यवाद देना। तो भी व्हेरथाट-दम्पतीके सामने ही अभिनन्दन आदि तैयार करना था। पंडित गोविन्दराम और पंडित जगदीश त्रिपाठीकी राय हुई, कि इस समय कुछ संस्कृत-पद्य व्हेरथाट साहेबको प्रदान किये जावें। महन्तजीने इसमें अपनी पाठशालाकी भी सार्थकता समझी, और पंडितोंके प्रस्तावको स्वीकार करते हुए, उसपर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। और दोनोंने पद्य बाँधना शुरू किया, किन्तु उसमें उन्हें सफलता नहीं दीख पड़ी। फिर वह भार 'शास्त्री'जी (मुझ)पर डाला गया। याद नहीं कितने पद्य बनाये लेकिन वे पाँच-छै पत्रोंमें कमपर नहीं लिखे गये थे। सुलेखक होनेसे कवि और लेखक दोनोंका काम मुझे ही करना पड़ा। संस्कृत कविताओंमें गोमूत्रिका मृदंग, पद्म आदि कई बन्ध आये थे, एक गीतिका भी थी, और एक गद्य-

लकार तथा अर्थालकार मिश्रित कोई रचना। एक हिन्दीकी भी तुकबन्दी किसी सस्कृत छन्दमे थी, जिसमे खरेघाटके पारसी-वशकी प्रशसा करते हुए मैने दादाभाई नौरोजी, सर फीरोजशाह मेहता, और सर दीनशा वाचाका गुणानुवाद किया था। लाल-काली स्याहीमे सफ़ेद चिकने मोटे कागजपर लिखकर तैयार हो जानेपर, बिना अर्थ समझे भी देखनेवालेको वे पत्रे अच्छे लगते थे। इसी वक्त किसीने महन्तजीसे जाकर कह दिया, कि एक कवितामे दादाभाई नौरोजी आदि सर्कार-विरोधियोका नाम आया है। 'झोली-चुक्कों'की गुटने महन्तजीको सलाह दी—तब तो 'पूत माँगने गईं पति खा आईं'की मिसाल होगी। महन्तजीने पडित जगदीश तिवारीसे कहा कि कवितामेसे वह अश निकाल दिया जावे। मुझे यह सुनकर बडा क्षोभ हुआ, क्योकि मै अपनी इच्छाके विरुद्ध सिर्फ महन्तजीकी लालसा पूरी करनेके ख्यालसे यह सब कर रहा था। मैने त्रिपाठीजीको कह दिया, कि महन्तजी नाहक इन खुशामदी टट्टुओके फेरमे पडे है, यदि स्वय खरेघाट साहेबसे आप पूछेंगे, तो वह अपने सम्बन्धमे दादाभाई आदिका नाम गौरवकी चीज समझेंगे। उस कविताके छोड देनेका रुख देखकर मैने कह दिया—'फिर मै अपने एक भी पत्रेको नही दूँगा।' उन्हे मालूम था, कि मै कर्वीमे अपने मित्र पडित गोविन्ददासजीके बुलानेसे आया हूँ, मै किसीकी प्रसन्नताके लिए इतनी दूर तक न जाऊँगा। दावतके दिन खरेघाट-दम्पती एक डेढ घटे पहिले आये। जगदीश पडित उन्हे मठके कितने ही भागोको दिखलाने ले गये। उसी समय उन्होने दादाभाई शब्दवाली कविताका जिक्र कर दिया। खरेघाटने बडे उत्साहसे कहा—'कोई हर्ज नही है। कलेक्टर क्या नाराज होगा ?'

कवितायें पढी गईं। दूसरे दिन हमे उसका अर्थ समझानेके लिए खरेघाटने अपने बँगलेपर बुलवाया।

काशी न्यायमध्यमाकी परीक्षा देने प्रयाग जाना पड़ा और कलकत्ताकी मीमासा प्रथमाके लिए जबलपुर। मध्यमामे अनुत्तीर्ण, मीमासाप्रथमामे प्रथमश्रेणीमे उत्तीर्ण।

मार्चके अन्तमे हम जगलकी सैरके लिए गये थे, वहाँसे लौटनेपर बुखार आने लगा। इधर भाई साहेबने लाहौरसे शास्त्रीकी फीस दाखिल करा दी थी। साल भर पुस्तकोके पढनेका मौका ही नही मिला था, फिर फार्म भर देने भरसे परीक्षा कैसे पास की जा सकती है ? किन्तु, अबके एक लम्बी यात्रापर निकलनेका इरादा था, साथ ही लाहौरके दोस्तोसे भेटका अवसर भी था।

## १०

# फिर घुमक्कड़ीका भूत (१९२० ई०)

कर्वी छोड़ते वक्त भी अभी बुखारने मुझे छोडा न था। पैसा पास न था, इसलिए सारी यात्रा "दस-आने-छै-आने"मे करनी थी। "दस-आना-छै-आना" बिना टिकटकी रेलयात्राका नाम था; समझा जाता है हर सम्पत्तिमे छै आना शाही-अश होता है, और रेलमे सफर करते वक्त हम उसी अपने छै आनेवाले हकको ले रहे है। सारी यात्रामे किसी स्टेशनपर भी मैने छिपकर जानेकी कोशिश नही की, और न टिकट-चेकरसे ही कही बचना चाहा। दिल्लीमे लाहौरवाली डाकपर जानेसे रोका, लेकिन फिर क्या समझकर टिकट-कलेक्टरने छोड दिया।

बुखार रहते भी परीक्षामे बैठा, बस परीक्षाके बारेमे इतना ही याद है। बलदेव, रामगोपाल, भाईसाहेबसे मुलाकात हुई। कई सालोसे जमा होते भावोने बुद्धके प्रति मेरे दिलमे परमश्रद्धा उत्पन्न कर दी थी। इधर उनकी जीवनियोंके पढ़नेसे बुद्धके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले स्थानोके दर्शनके लिए उत्सुकता बढ़ी थी, अबके तै किया उन्हे देखनेका। लौटते वक्त जलन्धर उतरा। सन्तरामजीने इरादेको सुना तो कहा—स्थानोके बारेमे "भारती" (कन्या महाविद्यालयकी मुखपत्रिका)के लिए लेख लिख देगे—'भास्कर'के बाद यही हिन्दीमे मेरे प्रथम लेख थे, और यात्रा-सम्बन्धी तो सबसे पहिले लेख।

मुझे ख्याल नही, जलन्धरके बाद और कही रास्तेमे उतरा या नही। बनारस पहुँचनेपर अब भी बुखारने पिड नही छोडा था। स्वामी वेदानन्दजी पडित छन्नूलाल वैद्यके यहां ले गये, और उनकी दवाने फायदा जरूर किया, क्योकि आगे ज्वरकी याद नही।

सारनाथ एक बार फिर गया। उस वक्त पुराने ध्वस, अशोकस्तम्भ ही वहाँकी मुख्य दर्शनीय चीजे थी। महाबोधिसभाका एक छोटासा मकान और उसमे छोटीसी पाठशाला थी। सारनाथसे सीधे तहसील-देवरिया होकर कसया जानेमे आजमगढ़का जिला पडता है, इसलिए मुझे छपराका रास्ता लेना पडा, और मार्गमे होनेसे एक-दो दिनके लिए परसामे ठहरा। महन्तजीने मुझसे निराश हो उत्तराधिकार देनेके लिए अपने भतीजेको चेला बना लिया था, यह सिर्फ इतने ही अंशमे मुझे बुरा लगा,

कि वरदराज और वीरराघव जैसे महन्तीके योग्य उनके दो शिष्य पहिले हीसे मौजूद थे, मेरे अस्वीकार करनेपर उनमेंसे किसीको उत्तराधिकारी बनाना वाजिब था। किन्तु, जिस राजनीतिक आदर्शवादकी ओर मैंने कदम बढाया था, उसमे परसा मठके कुप्रबन्ध या सुप्रबन्धसे बहुत अन्तर पडनेवाला नही था।

शामके वक्त मैं तहसील-देवरिया स्टेशनपर उतरा। रातको बाजारसे बाहर किसी मन्दिरमे ठहरा, सबेरे वहाँसे कसयाकी सडक पकडी। अप्रेलका अन्त या मईका शुरू था। धूप और बोझ यात्रामे मेरे सबसे जबर्दस्त शत्रु है।—बोझसे तो मैं निश्चिन्त था; एक पतले कम्बलकी घुटनेसे थोडा नीचे तककी अल्फी, दो लँगोटियोके अतिरिक्त एक गमछा—बस इतने ही कपडे थे। पानी पीनेके लिए लौकाका एक कमडलू था। पैर और सिर नगे। शायद एक या दो किताबे थी। हाँ, धूपका डर जरूर था, और उसकी दवा एक ही थी, कि नौ बजेसे चार बजे शामतक चला ही फिरा न जावे। दोपहरको मै रास्तेके किसी मद्रसेमे ठहरा। वहाँ गोरखपुर जिलेका नकशा देखने गया, पीछे अध्यापकने खानेका निमन्त्रण दे दिया। शामको सडककी बाई ओर एक नया आमोका बगीचा मिला। कूआँ था, और शायद एक पक्का चबूतरा भी। ज़मीदारका पक्का घर और गाँव थोडा हटकर था, मुझे खानेकी इच्छा न थी, इसलिए गाँवमे जानेकी जरूरत नही थी। वहाँ चबूतरेपर पडे मुझे शामकी ठडी हवाके झोके बहुत अच्छे मालूम होते थे।

सबेरे चलते वक्त भूख नजदीक मालूम होती थी, इसलिए सडकपर बाई ओरके गाँवमे जब एक वैरागी मठका पता लगा, तो मैंने वहाँ जाकर पहिले भोजनसे निवृत्त हो लेना जरूरी समझा।

गाँवसे रामाभार ('मुकुटबन्धन'—बुद्ध-शवदाह)का ताल नजदीक ही था, शायद मठके कुछ मकानोमे किसी पुराने ध्वसकी ईटे भी लगी हुई थी। साधु वतला रहे थे, कि माथाकुँअर राजकुमार थे, उनकी बहिनका नाम रामा था। कुशीनगरमे काले पत्थरकी बुद्धमूर्ति राजकुमार माथाकुँअर थे, और बुद्धका चितास्तूप राजकन्या (रामाभार)का स्थान। 'मुझे माथाकुँअर (कुशीनगर) जाना है'—कहनेपर बोल उठे—क्या वर्मावालोके देवताका दर्शन करने जाओगे।

कसयामे भी किसी वैरागी मठमे ठहरा। उसमे तहसीली स्कूलके मिटल-क्लासके कुछ लडके भी रहते थे। मैंने मनोरजनके लिए कुछ प्रश्न पूछे, जिससे उन्होने समझ लिया, मै स्कूलका पढा-लिखा हूँ, और इससे मेरी कद्र वढ गई।

शामको पाँच वजे बाद मै वुद्धके निर्वाणस्थान (माथाकुँअर) पर गया। दिनकी

दहकती धूप अपनी तेजीसे वंचित हो सुनहले रंगमें परिणत हो गई थी, और भूमि मेरे नंगे पैरोंके लिए सह्य थी। नये निकले कोमल पत्तोंवाले शीशम दूर तक भूमिको अपनी छायासे ढाँक रहे थे। मैंने बुद्धकी जीवनियाँ पढ़ी थीं, यद्यपि मूल प्राचीन भाषामें नहीं। उस भूमिके भीतर प्रविष्ट होते वक्त मेरा हृदय ढाई-हजार वर्ष पहिलेके उस महान् भारतीयकी ओर खिंचा हुआ था, जिसने अपनी जन्मभूमिका नाम संसार भरमें फैला दिया और संसारके एक तृतीयांशके मनुष्योंके लिए भारतको पुण्यभूमि बना दिया।

ध्वंसके बाहर शीशमोंके पास एक चिताकी सफ़ेद-सफेद राख, बिना छूई-छाई देखी। पूछनेपर मालूम हुआ महावीर महास्थविर अभी-अभी मरे हैं, उन्हींका यहाँ दाहसंस्कार हुआ है। मुझे महावीर स्वामीसे न मिल पानेका अफ़सोस हुआ। सदियों बाद वही पहिले उत्तर-भारतीय थे जो कि भिक्षुसंघमें प्रविष्ट हुए थे। महावीरसिंह, कुँअरसिंहके रिश्तेदारोंमें पड़ते थे, और १८५७के स्वातन्त्र्ययुद्धमें उन्होंने भी कुँअरसिंहका साथ दिया था। पीछे अपने जैसे दूसरे वीरोंकी तरह उन्हें भी भेस बदलकर मारा-मारा फिरना पड़ा। वह पहलवान् थे, इसलिए राजाओंके यहाँ कुश्तीका कर्तब दिखलाते थे। इसी तरह भटकते-भटकते वह लंका (सीलोन) पहुँचे। बीमार पड़ जानेपर एक भिक्षुने उनकी सेवा-सुश्रूषा की और उसीके सम्पर्कसे उनका बौद्धधर्मसे परिचय हुआ। बल्कि पतनसे पहिले ही वह वहाँ जाकर भिक्षु बन गये थे। बौद्धधर्मकी शिक्षाने महावीर स्वामीको अपना भक्त बना लिया, और जब उसके भव्य इतिहासको सुनकर एक बार फिर इस भूले देशमें बुद्धकी स्मृति लानेके लिए उत्सुक हो गये। उन्होंने इसी अभिप्रायसे कुसीनगरमें मठकी स्थापना की, और अपने शेष जीवनको यहीं बिताया।

महास्थविर चन्द्रमणि अभी उतने बूढ़े नहीं हुए थे। महावीर बाबाके वह सहायक और उत्तराधिकारी थे। उनसे मिलकर मुझे बुद्धकी जीवनी, तथा कुसीनाराके मल्लोंके बारेमें और भी कितनी ही बातें मालूम हुईं। उन्होंने द्वार खोलकर सोई हुई विशाल मूर्तिको दिखलाया जिसको पूजनेसे मेरे शिर हृदय और हाथोंको आर्यसमाजी विचार भी नहीं रोक सके। मैंने व्याख्या कर दी—मैं ईश्वरकी मूर्तिकी तो पूजा नहीं कर रहा हूँ, यह एक ऋषिके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

कसयामें रातको ठहरकर सबेरे फिर मैं देवरियाके लिए रवाना हुआ। दोपहर [illegible]में बीता। कनैलावाले मेरे एक दोस्तका जन्मस्थान इसीके आसपास किसी गाँवमें था। मैं उन्हें चिढ़ाया करता—रामसुन्दरदास, तरकुलहिया भवानीके बनाये ब्राह्मण हैं। आसपासके कितने लोग जिनके पास अपने यज्ञोपवीत-संस्कार करानेके

लिए न पैसा है, और जो न विन्ध्याचल ही जा सकते है, तथा माँ-बापने जिनके लिए मानता मान दी है, वे तर्कुलहिया भवानीके नाबदानमे ही डुबोकर जनेऊ पहिन लेते है। रामसुन्दरदासको क्या मालूम था, कि जो उनके जनेऊके लिए मजाक करता है, उसे खुद विन्ध्यवासिनीके नाबदानमे डुबोकर जनेऊ पहनाया गया था। रामसुन्दरदासके लिए मेरे दिलमे अच्छा स्थान था, क्योकि कर्वीमे वही थे, जो कि इन्दिरारमणजीके पक्षका खुल्लखुल्ला समर्थन करते थे।

देवरियासे गोरखपुर स्टेशनपर उतरकर जब मै बाहर निकलने लगा, तो टिकट-कलेक्टरने टिकटके बारेमे तो कोई खासतौरसे नही पूछा, किन्तु उसने निवास-स्थानके बारेमे पूछना चाहा। मैने जब 'रमता साधु' कहा, तो उसे और दृढ हो गया कि मै खुफिया पुलीसका कोई अफसर हूँ। उसने बडी नर्मीसे कहा—नही, मै आपको दिक नही करना चाहता, किन्तु आप यह न समझे कि मै आपको पहिचानता नही। शायद मेरा लम्बा-चौडा कद तथा शुद्ध साहित्यिक भाषा इस भ्रमका कारण हुई हो।

गोरखपुरमे किसी वैष्णवमठमे ठहरा। दूसरे दिन जब नवगढरोड स्टेशनपर उतरा, तो गर्मी दूर हो चुकी थी, किन्तु साथ ही दिन भी बहुत कम रह गया था। पूछनेपर रुम्मिनदेई (लुम्बिनी) बहुत दूर मालूम हुई। ककरहवा बाजारकी ओर घूमनेवाली सडकपर न जा मै थोडी दूर और आगे सडकके बाई ओरके गाँवमे गया। शायद कुर्मी लोगोका गाँव था। रातको अनिच्छा प्रकट करनेपर भी उन्होने कुछ खिलाया। ककरहवा बाजार पहुँचा, तो अभी बहुत सबेरा था। लोगोने भगवानपुर होते रुम्मिनदेई जानेका रास्ता बतलाया।

भगवानपुर नेपालकी सीमाके भीतर शायद पहिला ही गाँव था। नेपालका अभी तक सिर्फ मैने नाम और गुणगान तक सुन रखा था, अब साक्षात् उसकी शासित भूमिमे पैर रख रहा था। भगवानपुर कुछ वर्षो पहिले गोर्खा-अफसरोका हेडक्वार्टर था। अब भी वहाँ नेपाली ढगके बने कितने ही घर मौजूद थे, लेकिन अफसरोके चले जानेसे गाँव श्रीहीन तथा बनिये आश्रयविहीन बन गये थे। पूछनेपर उत्तर ओर-के आमोके बागमे एक साधुनीकी कुटियाका पता लगा। छोटीसी कुटिया थी, और दरख्तोकी घनी छाया। अब धूप तेज हो चली थी, इस वक्त लुम्बिनी जानेका सवाल नही था। साधुनी प्रौढा थी। उनका लम्बा कद, गोरा शरीर, दीर्घ कृष्ण केश यौवनके अपराण्हको बहुत देरसे गिरा नही बतलाते थे, और चेहरेकी रेखाये-तो साक्षी दे रही थी, कि यह सौन्दर्य तरुणाईमे अनाकर्षक नही रहा होगा। प्रौढा-योगिनी आचारी वैष्णव थी, तो भी किसी कामसे वहाँ ठहरे नेपाली ब्राह्मणके हाथका बनाया

खानेमे आना-कानी नही करती थी। मुझसे पूछनेपर मैंने भी अपनेको परमहस कह दिया। उस गर्मीमे चूल्हा फूँकनेके लिए कोई भारी बेवकूफ ही तैयार होसकता था।

दिन जब खूब ठडा हो गया, तो मैं लुम्बिनी पहुँचा। एक छोटी पोखरीके भिडोपर वहुतसी कँटीली झाडियाँ, तथा बेल और दूसरे वृक्ष थे। एक छोटासा मन्दिर था, जिसके आँगनमे बकरा, मुर्गा आदि बलि-प्राणियोके खूनका रग लगा हुआ था। मन्दिरके भीतरकी मूर्ति अस्पष्ट थी। मन्दिरके पिछवाडे कुछ पक्तियोके लेखके साथ अशोकका शिलास्तम्भ था। जीवदयापर इतना जोर देनेवाले गौतमबुद्धके जन्म-स्थान पर यह पशु-बलि, रुधिर-रक्त-प्रागण—सचमुच इससे दिलपर एक धक्का लगा। वहाँ कोई न था। कुछ देर बैठकर इस स्थानके अतीतपर सोचता रहा। वहाँसे उत्तर दूर दिखाई देते हिमालयके श्वेत शृगोपर नज़र पडते ही, वह मुझे 'आओ' 'आओ' कहकर बुलातेसे जान पडे। एक बार ख्याल आया, यहाँसे उधर ही बुटवलको चल दूँ, किन्तु अब सूर्यास्त नजदीक था, बुटवल पहुँचने भरके लिए समय न था। शामको फिर योगिनीकी कुटियापर चला आया। नेपाली ब्राह्मण थोड़ा-बहुत सस्कृत भी जानते थे, इसलिए उन्होने मेरी कद्र की। उनसे नेपाल और हिमालयके तीर्थो, वस्तियो, रास्तोके बारेमे पूछता रहा।

कपिलवस्तुका दर्शन बाकी था, इसलिए मुझे बुटवलकी यात्रा स्थगित करनी पडी। सवेरे तिलौराकोट (कपिलवस्तु)की ओर चला। बदनपर बोझ नही था, तो भी मन्द-मन्द चल रहा था। नौसे ऊपर बज रहे थे, एक छोटेसे गाँवको पार हो, एक पीपलकी छायामे मैं सुस्ताने लगा। कुछ ही देर बाद एक मुसल्मान किसान आ गया। उससे दो-चार बाते हुई। उसने कहा—धूप बहुत हो गई, चले आज इसी वस्तीमे दोपहर बितावे। अपनी गोशालामे उसने चारपाई बिछा दी। मालूम हुआ, गाँवके अधिकाश बाशिन्दे मुसल्मान है। रसोई बनानेके लिए उन्होने एक हिन्दू बुला दिया। रसोई उधर बनती रही, और हमारी बातचीत भी जारी रही। कुछ बेला ढलनेपर एक 'मौलवी' साहेब भी आ गये। वह गाँववालोको नमाज-रोजा सिखलाते थे। कुरान कुछ टो-टाकर पढ लेते थे। मेरे सामने जब कुरान रखी गई, तो मैं फरफर पढने ही नही लगा, बल्कि आयतोके अर्थ भी करने लगा। मौलवी साहेवपर खूब धाक जमी, और गाँवके साधारण अनपढ मुसल्मान तो साधु-बाबाकी अल्फी-कमडलूसे पहिले हीसे प्रभावित थे।

पिपरहवाके नजदीक होनेकी बात सुन मैंने तिलौरा कोटसे पहिले वहाँ जाना पसन्द किया। वहाँकी खुदाईमे निकली डिबिया, पत्थरका सन्दूक और दूसरी चीजोका

फोटो जितना सुन्दर मालूम होता था, उतना वहाँका ध्वस नही था। ध्वस तो पहिलेसे पढा-सुना न होता, तो मालूम ही नही होता। नेपालकी सीमासे थोडासा हटकर खेतों और दरख्तोके किनारे ज़रासी ऊँची जमीन थी, जिसमे कुछ टूटी-फूटी ईंटे और छोटेसे गडहेकी सूरतमे खुदाईका निशान था। शाक्योने अपने वशके श्रेष्ठ पुरुष (बुद्ध)की धातुओ (हड्डियो)के ऊपर यहाँ कोई स्मृतिचिह्न बनाया था, जिसके अभिलेखको भारतकी ब्राह्मी लिपिका सबसे पुरातन नमूना होनेका सौभाग्य प्राप्त है, यह बात स्थान देखनेसे नही झलकती थी।

अभी दिन था, इसलिए मैंने तौलिहवा बाजारकी ओर तिलौराकोटके रास्तेमे कुछ और चलना पसन्द किया। शामको एक समृद्ध ब्राह्मणके घरपर पहुँचा। उसके पास काफी गाये, कितने ही धानके 'बखार' (ठेक) तथा बडा सारा घर था। ब्राह्मण देवताने भोजन कराया। आसपास पुरानी ईंटोवाले भिडोके स्थानोके बारेमे बतलाते रहे, और सबेरे ले जाकर अपने गाँवमे ही कुछ प्राचीन ध्वस्त कोठरियोकी नीव दिखलाई, जिन्हे शायद पुरातत्त्वविभागने खुदवाया था।

तौलिहवा बाजारमे बडा-अफसर और उनकी कचहरी है, लेकिन मै अफसर और उनकी कचहरीको देखने नही गया था। दोपहरको किसी जगह भोजन विश्राम कर जब तिलौराकोट पहुँचा, तो पाँचसे ज्यादा नही बजा था। दूर तक फैले उस गढ़—जहाँ बहुत पीछे तकके बस्तीके चिह्न ईंटो, तालाबो, खाइयो, भीटोके रूपमे मौजूद थे—मे बुद्धके बाल्य-गृह और शुद्धोदनका प्रासाद ढूँढना सम्भव न था। मेरे लिए इतना ही सन्तोष देनेके लिए काफी था, कि इन रजकणोमे बुद्धकी चरणधूलि भी है।

उसी शामको निगलिहवाके तालाबपर खडित अशोकस्तम्भ और उसके अभिलेखको देखा। रातको पासके गाँवमे ठहर गया। अब मेरा ध्यान हिमालयकी सफेद चोटियोकी ओर लगा था, लेकिन उधर जानेसे पहिले रास्तेके बारेमे और जानकारी पैदा करनेकी जरूरत थी।—नेपालके पहाडोके भीतर मनमाना नही घुसा जा सकता। वहाँ हर जगह टोकनेवाले मौजूद है।

सबेरे सात-आठ बजे वाणगगा (तिलौराकोटके पास भी यही नदी है)के किनारे बस्तीसे दूर आमके बागोमे एक पक्का विना-शिखरवाला मन्दिर दिखलाई पडा। वहाँ गया। वह एक वैरागीका स्थान था। मन्दिरमे शायद राम-लक्ष्मण-सीताकी मूर्तियाँ थी। वाहर छोटा बराडा या जगमोहन था। मन्दिरके पूरब एक मकान और पश्चिम एक फूसकी झोपडी थी। मन्दिरके अध्यक्ष एक वृद्ध वैरागी थे, जिनकी आँखे, चेहरा

बिना पूछे ही उनके गोर्खा होनेकी गवाही दे रहे थे। उन्होने स्थान-आदिके बारेमें पूछा, फिर पच्छिमवाली झोपडीमें—धुनीके पास—आसन लगवाया। आते वक्त पूजा-पाठके लिए आये हुए कई और व्यक्ति भी थे, जिनमेंसे एक नेपाली पटवारीने उर्दू पढवाकर देखा और फिर मेरी विद्वत्ताका जबर्दस्त सर्टीफिकेट महन्तके सामने पेश किया। भक्तों, दर्शकोके चले जानेपर मालूम हुआ, कि स्थानमे वृद्ध महन्तजीके अतिरिक्त उनकी अतिप्रौढा योगिनी तथा एक गूँगी वृद्धा दासी तीन व्यक्ति रहते है। योगिनीके हाथका बनाया मै खा लेता हूँ—महन्तके यह कहनेपर, मैने भी उसके पक्षमें अपनी सम्मति दी। योगिनीके हाथकी भाजी बहुत स्वादिष्ट थी, यह तो पहिली ही बार मालूम हो गया, किन्तु इसका कारण पीछे मालूम हुआ जब मिट्टीमे दबाकर सडाये-सुखाये कटहल तथा मूलीके टुकडोको देखा। तौलिहवाके छोटे-बडे सभी ही नेपाली महन्तजीको मानते थे, और जब वह वहाँ जाते तो हफ्ते भरकी खर्ची उठा लाते। महन्तजी भारतके बडे-बडे तीर्थोमे हो आये थे, इस बातमे मै भी उनसे वहुत पीछे नही था, किन्तु जिस वक्त वह उत्तराखड और नेपालकी बात करते, तो मुझे शिर झुका लेना पडता।

धीरे-धीरे महन्तजीका अभ्यागतके प्रति स्नेह उत्तराधिकारीके स्नेहमे परिणत होने लगा। उनके कोई शिष्य न था, मै भी उनका शिष्य न था, किन्तु एक सम्प्रदायका होनेसे उत्तराधिकारी हो सकता था, मठको डूबनेसे बचा सकता था। उन्होने अपने पचासो आमोके दरख्त, कुछ हटकर धानके कितने ही एकड खेत दिखलाये। मठकी और भी स्थावर सम्पत्ति बतलाई, जो सब मिलकर दस-पन्द्रह एकडसे ज्यादा नही रही होगी, जगम सम्पत्ति तो थी ही नही। वह बडे अभिमानसे कह रहे थे—मेरे गुरुने आकर यहाँ यह स्थान वनाया। पहले चोर-बदमाश लोग नही चाहते थे, कि साधु यहाँ बसने पावे, और उनके अपने व्यवसायमे बाधा पडे; किन्तु गुरुजी बडे लम्बे-तगडे जवान थे, साथमे और साधु रखते थे, यह मन्दिरके भीतर रखी बन्दूक और तलवार तभीकी है। रातको महन्तजी मन्दिरकी छतपर सोया करते, जहाँ बन्दूक, और भालेके अतिरिक्त काफी ईटोका ढेर रहता। उनकी योगिनी और दासी पूरबवाले रसोईके घरमे ताला-वन्द हो सोती, और मै पच्छिमवाली झोंपडीमे खुला ही, आखिर डाकू आकर मेरा लेते ही क्या ?

धीरे-धीरे अपने विश्वासको बढाते अपनी विवशताको दिखलाते, जब कोई व्यक्ति स्नेहका फदा फैलाता है, तो उसे तोडकर तिकलना—साफ नही कह देना—बहुत मुश्किल होता है। महन्तजीने धीरे-धीरे 'यही मुश्किल' मेरे सामने पेश की।

महन्ती लेना यह तो उपहासकी बात थी। अर्धजरती योगिनीको 'रॉड बाभनी टूटा पीपल इनमे हक फकीरोका है'के नियमानुसार उन्होने अपनाया था—ब्राह्मणी न होनेपर भी अतीथिनी होनेसे वह एक दर्जा ऊपर ही थी। वह भी मेरे खाने-पीनेका बहुत ध्यान रखती थी। भाँग-गॉजोपर यहाँ कोई रुकावट न थी, इसलिए ये वहाँ घासके मोल थे, और पढ़ने-लिखनेसे मुक्त होनेके कारण महन्तजीकी गोष्ठीमे सम्मिलित हो समय काटनेमे मेरे भी ये बडे सहायक बन गये थे। एक दिन घास काटनेके लिए एक प्रौढा ब्राह्मण-विधवा आई। अर्धजरती योगिनीने, उसके बारेमे बतलाया—महन्तजीने एक नौजवान साधुको अपना उत्तराधिकारी बनाकर रखा था, इस कलमुखीकी सनीचर-दृष्टि उसपर बस गई, और आज वह इसके घर सानी-पानी करता है।

साफ इन्कार करते न देख महन्तजीकी लालसा दृढ होती जा रही थी, उस वक्त मैंने कहा—आपका स्थान मुझे पसन्द आया है सही, किन्तु अभी मुझे उत्तराखड जाना है, मै भोटियोके मुल्क तक जाना चाहता हूँ। वहाँ तक हो आने दीजिये, तब फिर आपके साथ रहूँगा। इस उत्तरसे उन्हे सन्तोष तो नही हुआ, किन्तु साथ ही आशा भी बिल्कुल विच्छिन्न नही हुई। उनसे पूछकर मैंने रास्तेके पते लिखे। पहले मुझे तराई पारकर डाँग-देवखुर जाना होगा। वहाँके किसी सिद्ध महात्माका उन्होने नाम बतलाया। फिर किन-किन गाँवो और नदियोसे होते मै भोटिया लोगोकी आबादी-मे पहुँचूँगा। 'हला डोगो ?' (ग-ला डो-गी ?—कहाँ जाना ?) जैसे बिल्कुल अशुद्ध चालीस-पचास भोटिया शब्द भी उन्होने लिखवा दिये।

एक दिन सबेरे उठकर मै नदी पार हो उत्तरकी ओर चल दिया। मील-दो मील गया होऊँगा, खर्बूजोका खेत आया। कुछ लडके रखवाली कर रहे थे। दो-चार पैसे दे उनसे कुछ खर्बूजे लिये। खाते वक्त मेरा दिमाग आगेकी योजनापर विचार करनेमे तन्मय था।—'यह बिल्कुल ऊटपटागसा रास्ता है। रास्ता बतलानेवाला शायद कोई आदमी भी नही मिलेगा—पता मिल जानेपर नेपाल-सर्कार पकड लेगी। इधरसे जाना अच्छा नही। जेतवनविहार और लौरिया नन्दनगढका अशोकस्तम्भ भी नही देखा है, उसे देखकर रक्सौलके रास्ते जानेकी कोशिश करनी चाहिए।' मै वहीसे लौट पडा।

महन्तजीका स्थान बचाते हुए तौलिहवा बाजारके पासके एक दूसरे स्थानमे कुछ देर विश्राम किया। यहाँ भी साधुके साथ योगिनी! हिन्दू राज्य होनेसे, मै समझता था, कि वहाँ धर्म-पालनमे ज्यादा कडाई होगी, किन्तु हर जगह योगी-योगिनीको

सयुक्त आश्रम चलाते देख, मुझे यह कुछ अजीबसी बात मालूम हुई। रातको शोहरतगजमे आसन पडा।

सबेरे जानेवाली गाडीसे मैं बलरामपुर पहुँचा। कुशीनारामे ही वहाँ रहनेवाले भिक्षु वरसम्बोधिका पता लग गया था। उस वक़्त वह धर्मशाला बनवा रहे थे। अभी दीवारे भर खडी हो पाई थी और वह कामकी देखभाल कर रहे थे। एक अर्ध-निर्मित कोठरीमे ईटोपर बैठे हम बात करते रहे। वरसम्बोधिजी अपना पाइप खीचते जा रहे थे। इसी बीच उनका नौकर आकर बोला—'मछली आध सेर ले ली।'

'ठीकसे देख लिया न ?'

'हाँ, कोई जिन्दा नही।'

जिन्दा होनेपर मछलीको तालाबमे डलवाना पडता, और यह पैसेका नुक-सान था।

वहाँसे रेलकी दूसरी तरफ एक उदासी मठमे गया। महन्तने रसोई बनानेके लिए कहा। मैंने रोटी बनाई, उन्होने दूध दिया, जब रसोई अपनी हो और अपने मत्थे पडे, तो मै कमसे कम श्रम और समयका पक्षपाती हूँ।

सहेट-महेटके लिए ठडेमे ही चला। उस वक्त देवीपाटनके मेलेके लिए बहुतसे नरनारी पैदल जा रहे थे, यात्री सडकपर सभी जगह मिलते थे। शाम आती देख सडकसे दाहिने थोडा हटकर एक गाँव दिखलाई पडा। वहाँ पहुँचनेपर घर ब्राह्मणोके मालूम हुए। उनके यहाँ एक अवधूतिनी रहती थी, जो बहुत तीर्थाटन कर चुकी थी। उससे तीर्थोके बारेमे बातचीत हुई, और सस्कृतका क-ख जाननेवाले एक व्यक्तिसे सस्कृतके बारेमे। फिर अल्फी-कमडलूधारी महात्यागी साधुकी आव-भगत क्यों न बढ जाये।

सबेरे ही मै सहेटमहेट पहुँचा। जेतवन श्रावस्तीका कोई बहुत ऐतिहासिक ज्ञान तो उस वक्त मुझे था नही। सर्सरी तौरसे जेतवनकी कुटियों-कूओंको देख श्रावस्तीके ध्वसमे गया, और जगलकी खाक छान उत्तर तरफके एक गाँवमे पहुँचा। वहाँ प्राइमरी स्कूल था, वही मास्टर साहेबका बनाया भोजन और दोपहरका विश्राम हुआ।

दिन ढलनेपर जब मैं बलरामपुरको लौट रहा था, तो एक वैरागी साधु रास्तेमे मिले। वेषभूषासे—लेकिन ललाटमें चन्दन शायद ही कभी लगाता था, क्योकि वैरागी, आर्यसमाजी कई पार्ट मुझे एक साथ अदा करने थे—उन्हे वैष्णव साधु होनेका सन्देह हुआ। दडवत्-प्रणाम किया, और आज अपनी कुटियापर विश्राम करनेके

लिए बहुत आग्रहपूर्वक वचन लिया। वह, किसी दूसरे कामसे जा रहे थे, उन्होने गाँव और कुटियाका पता दिया। वहाँ जा कुछ प्रतीक्षाके बाद स्थानधारी महात्मा आये। गाँवमे जितना अच्छा आतिथ्य-सत्कार होता है, किया।

दूसरे दिन बलरामपुरसे रेल पकड़ी। गोरखपुरसे नरकटियागज जरूर गया, किन्तु जहाँ तक स्मरण है, छितौनी घाटमे पैदल नही चलना पडा था, अर्थात् रेलका पुल मौजूद था। नरकटियागजकी सस्कृत पाठशालाके सस्थापक ब्रह्मचारीजीने बहुत रुकनेके लिए कहा, जब कि अपने अध्यापकसे उन्होने मेरी सस्कृतके बारेमे सुना, किन्तु मैं लौरिया-नन्दनगढके लिए चल पडा। जब धूप नही होती तो खाली हाथो पैदल चलनेमे बहुत मजा आता है। सडकसे दीखते विशाल शिलास्तम्भ और उसके सिंहको देखते ही, बिना किसीसे पूछे मुझे अशोक-स्तम्भ मालूम हो गया। इस यात्रासे पहिले मैंने इस सम्बन्धके कुछ ग्रथ पढे जरूर थे, तभी तो 'लौरिया' (यष्टी=पाषाणयष्टी) देखकर ही नही लौट पडा, बल्कि नन्दनगढ भी देखने गया। गढके पास ही एक छोटासा वैरागी मठ है। सन्यासियोसे कई शताब्दी बाद पैदा होनेपर भी वैरागी मठ इतने अधिक क्यो है? इसपर सोचनेपर मुझे तो मालूम होता है, इसमे कारण उनकी सगुणोपासना (साकार ईश्वरकी पूजा) ही है। वेदान्तप्रेमी सन्यासी-का बिना मूर्तिकी पूजाके भी काम चल सकता है, किन्तु वैरागीके लिए मूर्ति चाहिए, महाबीरजी चाहिएँ, और नही तो शालिग्राम ही चाहिएँ। फिर उनकी पूजाके लिए कुछ धूप-दीप, कुछ बालभोग (नाश्ता), राजभोग (मध्याह्न-भोजन) और व्यालू भी चाहिए। पूजाकी पूजा खाद्य-भोज्य-पेय-चोष्यका सचय। इस सचयमेसे थोडासा उपस्थित भक्तोंको दिया जा सकता है, जिसे देखकर मुझे बचपनमें रानीकी-सरायके लडकोकी होशियारी याद आती।—आम पकनेके समय लडके आमकी गुठली किसी बन्दरके पास फेक देते, बन्दर चाटता, फिर डालियोपर चढकर हिलाता, कई पके आम जमीनपर आ पडते। वैरागियोकी पूजा, उनके राग-भोग साधारण जनताकी समझकी बाते थी, इसीलिए उन्हे अधिक सफलता मिली।

नन्दनगढके उस मठमे शायद एक-दो साधु थे। 'दर्शनीय त्यागी' महात्माका उन्होने सत्कार किया। नेपाली बाबाने लत लगा दी थी, और अब 'नवाजिन्दा' मुझपर सवार था, इसलिए भाँग-गाँजेका स्वागत हो रहा था। स्थानीय साधुने जब गाँजेकी चिलम चढाकर आदरके साथ मेरी ओर बढाई, तो मैं उसका तिरस्कार नही कर सकता था। 'दम' (पीना) अभी खतम नही हुआ था, कि एक प्रौढा वैरागिन आ पहुँची। बहुत घूमी-फिरी मालूम होती थी, वह निस्सकोच बात करने लगी।

उसने दो चिलम् गाँजेके फेंके। चिलम तैयार होने लगी, और गप जारी रही। मालूम हुआ, वह नेपालकी तराईमे वीरगजके पास कही रहती है। तौलिहवाके आसपास मैने योग-भोगका सग्रह कई मठोमे देखा था, इसलिए इस अवधूतिनीकी बातो और उसके स्थानकी समृद्धिके बारेमे कोई सन्देह नही हुआ। मुझे तो अब नेपालका ही तरीका अच्छा मालूम होने लगा—योगियोको योगिनियोके साथ रहनेकी इजाजत देकर वहाँका समाज साधुओको कई खतरोसे बचा लेता है, यदि उसमे कही सन्तति-निग्रह भी शामिल होता, तो सोनेमे सुगन्ध, मठमे कच्चो-बच्चोंके बढनेसे उसका मठत्व नष्ट हो जाता है। अवधूतिनी दम लगानेमे खुर्राट वैरागियोका भी कान काटती थी।

चला तो था मै बौद्ध पुनीत स्थानोको देखने, किन्तु नवाजिन्दा जब सीधे रास्ते चलने दे तब न ? नन्दनगढसे मुझे स्टेशन हो रक्सौल जाना था, किन्तु नही समझता मै दो दिनसे कममे किसी स्टेशनपर पहुँचा। एक दिन तो सूर्यास्तके समय एक कबीरपथी कुटी पर पहुँचा। बाहर महुआके वृक्षके नीचे चटाई ले आसन जमाया। कुटीमे एक अधेड महात्मा और उनकी अर्धजरती योगिनी रहती थी। मै शायद कुछ ज्यादा चलके आया था, और थककर लेट गया था। योगिनी मुझे देख सारे वैरागियोपर टिप्पणी कर रही थी—'इन लोगोका बहुत मोटा ज्ञान है। पाथर पूजते-पूजते बुद्धि ही पथरा गई है।' उनको कबीर साहेबके निर्गुणका अभिमान था। मै थकावटके मारे उनके 'शब्द' 'सुरत'के सत्सगमे शामिल नही हुआ, इसीलिए उस टिप्पणीकी जरूरत पडी।

रक्सौल उतरनेपर मालूम हुआ, वीरगजके रास्तेपर नेपाली पुलीस रहती है, बाहरी आदमीको भीतर जाने नही देती। मै पुल पार हो सडकसे पूरब, नदी तटपर अवस्थित वैरागी-स्थानमे चला गया। घर तो काफी थे, किन्तु एक पुजारी और एक रमता साधुके अतिरिक्त वहाँ कोई न था। पुजारीने कहा—यदि आप दो दिन पहिले आये होते, तो थापाथल्लीके महन्त ऊपर गये, उन्हीके साथ चले गये होते; अब तो कोई वैसा ही प्रभावशाली आदमी हो तभी राहदारी (पास) मिल सकती है। रमता साधु बहुत घूमा-फिरा था। उसकी और बाते तो मै बडी दिलचस्पीसे सुनता था, किन्तु जब वह रूस देशकी ज्वालामाईके बारेमे कहने लगा, तो मुझे बुखार चढ आया—'ज्वालामाई, आपरूपी ज्वालाँई। भोग-राग रख दिया जाता है, माई स्वय अपनी जीभसे उन्हे ग्रहण करती है।' वह बतला रहा था कि मै उसी ज्वालामाईसे कश्मीरके रास्ते पहाड ही पहाड नेपाल आया। मुझे उसकी यह सारी बाते झूठ

मालूम होती थी। यद्यपि वह असंभव न थी, रूसमे बोलशेविक क्रान्तिके बाद चलते गृहयुद्धके समय वह बाकूसे मध्य-एसिया और वहाँसे चीनी तुर्किस्तानके रास्ते या सीधे ही कश्मीर हो जम्मू, चम्बा, कुल्लू होते, अथवा लदाखसे मानसरोवर होते नेपाल पहुँच सकता था।

दो-चार दिनकी प्रतीक्षासे नेपाल जानेका कोई रास्ता निकलता नही दीख पडा, इसलिए मै वहाँसे पूरबकी ओर चला। कुछ दूर पगडडी, फिर रेलकी सडक पकडी और अन्तमे रेलसे घोडासाहन उतरा। पैसा एक भी पासमे नही रहता था, तो भी कभी खाने-पीनेका कष्ट नही हुआ, और प्रशसा और सन्मान टोकरीके टोकरी प्राय रोज ही मिलते रहते।

नेपालके अन्तिम नेवार-राजाओके पूर्वज कभी सेमरौनगढमे राज्य करते थे, पहिले वे कर्नाटकसे भागकर यहाँ आये थे, यह बात मुझे मालूम थी। इतिहासका अध्ययन और ऐतिहासिक चीजोका प्रेम मुझे धीरे-धीरे आर्यसमाजसे आगे ले जा रहा है, इसका उस वक्त मुझे भी पता नही था, लेकिन बात ऐसी ही थी। डी० ए० वी० कालेजके पुस्तकालयमे मै अक्सर ऐसी पुस्तके पढता, और पुरातन वस्तुओकी वैज्ञानिक खोजोंपर वहाँ काफी पुस्तके आया करती थी। पडित भगवद्दत्तके सम्पर्कसे मेरा उधर झुकाव हुआ था, किन्तु वह ले जा रहा था बिल्कुल उल्टी दिशाकी ओर। जहाँ पडित भगवद्दत्तजी इतिहासकी अपेक्षा साइसको वेदकी विभूति समझनेका प्रयत्न कर रहे थे, वहाँ मै ऐसे रास्ते पर आरूढ था, जो मुझे 'नैरुक्त'से ऐतिहासिक ही बनाकर छोडनेवाला था।

घोडासाहनसे मै पैदल ही खेतोसे होते सेमरौनगढकी ओर चला, उसी वक्त कोई बनिया भी एक घोडेपर सौदा लादे चल रहा था। दिमागमे ख्याल आया—इसीलिए तो घोडासाहन कहते है!

सेमरौनगढमे तालाबपर देवीस्थानमे ठहरा। मठ वहाँसे पच्छिम था। आम अब एकाध पकने लगे थे, शायद मईका उत्तरार्ध चल रहा था। देवीस्थानमे कुछ मूर्तियाँ थी, किन्तु मूर्ति-विद्या और मूर्तिकलासे मेरा अभी परिचय नही हुआ था। मठके बडे आँगनमे नेपाली ढगका एक मन्दिर खडा था, आँगनके चारो ओर बराडे और शायद बहुतसे मकान और कोठरियाँ थी। पहिले थापाथल्ली (नेपाल) और सेमरौनगढके एक ही महन्त होते थे, किन्तु किसी शिकायतके कारण बूढे महन्त निकाल दिये गये, उन्हे मैने १९१३ ई०मे शोलापुरमे और उसके एक साल बाद अयोध्यामे देखा था। इस वक्त सेमरौनगढमे उनके शिष्य महन्त थे।

बड़ी-बड़ी जटा और लम्बे-चौडे शरीरका भक्तोंपर काफ़ी प्रभाव पड़ता है। मठकी आमदनीका ठीकसे व्यय हो, इसके लिए नेपाल-सर्कारका एक अफ़सर—डीठा (द्रष्टा)—वहाँ बराबर रहता था। खाने-पीनेका अच्छा इन्तिज़ाम था। साधुओंकी संख्या अधिक न थी। डीठा-साहेबसे बातचीत हुई। उन्होंने रहनेके लिए बहुत आग्रह किया। उनकी इच्छा थी, कि मैं उनके लडकेको पढाऊँ। मन्दिरमें राणा जंगबहादुर या उनके पुत्र गोरा जर्नेलमेंसे एक, वा दोनोंकी मूर्तियाँ भी थी।

दो-चार मील दूर एक गाँवसे शिष्य बनानेके लिए महन्तजीके पास, एक सोनार-भगतका निमन्त्रण आया। लोग बतला रहे थे, यह चौथी या पाँचवी बार बूढ़ा कंठी-मन्त्र ले रहा है। बेचारा कठी-मन्त्र लेता, मछलीका दिन आता और जब घरवाले तेलमें भून हल्दी सरसों डाल मछली पकाते, उसकी सुगन्ध घरके हर एक कोनेमें व्याप्त हो स्वर्गके देवताओं तकको अपने पास खीच लानेमे समर्थ होती, तो दर्वाजेपर बैठे ठकुच-ठुकुच करते बूढे सोनारका मन कैसे अपने हाथमें रहता? वह कंठीको गलेसे निकालकर खूँटीपर रखते हुए बोल उठता—'लाओ, आज तो मनछरी (मन हरने-वाली) खा ले।' मुझे इस वक्त जानकीनगर (परसा मठके गाँव)के प्रदीपसाहुकी बात याद आई। १८५७के गदरमें वह और रेखा महतो पूरे जवान थे, और प्रदीपके मोटे-तगडे शरीरको देखकर तो एक बार उसे 'बागी' सेनामें ले जानेकी बात तै पाई थी। परसाके तत्कालीन बूढे अधिकारी (मनेजर)ने प्रदीपको कठी-मन्त्र दिया था। एकसे अधिक बार मनछरीके आकर्षणमें पड़ प्रदीपने कंठी तोड़ डाली थी। अबकी बार जब किसीने इसकी खबर अधिकारीजीको दी, तो उन्होंने तुरन्त दोहा कहा—

'कठीमाला तोरिके, गग दियो दहवाय।
अधिकारीजीके .मे, परदिपवा मछरी खाय॥'

सोनार भगतको फिर कठी-मन्तर दिया गया। महन्तजीको पूजा, और साधुओं-को भी कुछ विदाई मिली। और लोग तो मठमें चले गये, किन्तु एक जटाधारी साधूके साथ पर्यटनकी योजना बनाते तथा गाँजा पीते मैं दो-तीन दिन इधर-उधर घूमता रहा। जिस दिन मैं सेमरौनगढ लौट रहा था, उस दिन देखा, पोखरेसे थोड़ा पूरब एक गाँवमें आग लग गई है। यहाँ गाँव फूसकी छतवाले घरोका होता है; हवा न भी बहे, तो भी एक छतसे सटी हुई दूसरी छतमें आग लग जाना आसान है। देख रहा था, कुछ लोग अपनी-अपनी छतोंपर घड़ेमे पानी लेकर बैठे थे, और कुछ लोग—जिनमें स्त्रियाँ अधिक थीं—चिल्लाती हुई पशुओं, पिटारियो तथा दूसरी चीजों-को घरसे निकाल गाँवके बाहर रख रही थीं। सौभाग्यसे हवा उस दिन बन्द थी।

घोड़ासाहनसे मै सीतामढी गया। शायद उसी दिन, मेरी उमरका एक घुमक्कड साधु भी स्टेशनसे उतरकर वहाँ पहुँचा। अब मारवाडी भक्तोका पूडी-हलवेका भोजन किसको अच्छा लगता। तरुण आसामसे तुरन्त आ रहा था। उसने अपनी झोलीसे निकालकर गाँजेकी पीली पत्तियाँ दिखलाई। भीतरसे 'नवाजिन्दा' बोलने लगा—कही यह जवान तौलिहवा बाजारमे मिला होता, तो हम अब तक डाँग-देवखुरसे बहुत आगे भोटियोके देशमे पहुँच गये होते। हमारी सलाह हुई, जनकपुर चलनेकी।

पुपरीरोडपर जब उतरे तो अभी दिन बाकी था। शाम तक हम लोग चोरउत मठमे पहुँचे। काशीमे विद्यार्थी-अवस्थामे मैने चोरउतके महन्तको बडे विशाल श्वेतच्छत्र (मेघडवर) के नीचे गगामे अर्घ देते देखा था, उनकी अन्यत्र बात करती तथा अन्यत्र देखती आँखे मुझे याद थी। हम दोनो ही टकसाली साधु थे, अर्थात् पन्थके कायदा-कानूनसे पूरे वाकिफ तथा देश देखे। हमारे पास कमसे कम सामान था। तिर्हुतके मठोमे खवासो (खिदमतगारो) का राज होता है। महन्तोके उत्तराधिकारी उनके भतीजे हुआ करते है, इस प्रकार मठकी सम्पत्तिका अधिक भाग एक परिवारकी सम्पत्तिसा बन जाता है। गद्दी निश्चित रहनेसे महन्त होनेसे पहिले उन्हे तीर्थाटन आदिका तजर्वा नही रहता, वे बडे ही कूप-मडूक तथा अभिमानी होते है। भेस और मठकी आमदनी देख वे आदमीकी इज्जत करते है। हम दोनोको जहाँ आसनके लिए जगह दी गई, वह महन्तजीके अस्तबलसे बेहतर न थी। रातके ब्यालूको देखकर तो हमारा मुँहफट साधु कडी नुक्ताचीनी कर बैठा। हमने ख्याल किया, ऐसे नालायक महन्तके हाथसे मटिहानी-की सत्तर-पचहत्तर हजारकी आमदनीको छीनकर नेपाल-सर्कारने अच्छा ही किया।

चोरउत ब्रिटिश इलाकेमे मुजफ्फरपुर जिलेमे है, और मटिहानी नेपाल राज्यमे। दोनोमे तीन-चार कोससे ज्यादाका फर्क नही है। दूसरे दिन हम मटिहानी पहुँचे। यहाँ साधुओकी सख्या पचास-साठसे ऊपर थी। मुझे देखकर प्रसन्नता हुई, कि उनमे कुछ पढने-लिखनेवाले भी है। नेपाल-सर्कारने पिछले महन्तोकी बदचलनी और कुन्बापर्वरीकी शिकायते सुनकर मठसे महन्तको निकाल दिया था। एक नये महन्त थे, जिनके ऊपर देखभालके लिए एक 'डीठा' रहता था। इन्तिजाम अच्छा करनेकी पूरी कोशिश की गई थी। चार या पाँच अच्छे-अच्छे पडित पाठशालामे पढाते थे। विद्यार्थियोको छात्रवृत्ति, साधु-विद्यार्थियोको भोजन-वस्त्र-पुस्तक मिलनेका प्रबन्ध किया गया था। दिनको कच्ची रसोई और रातको पक्की रसोई—खीर-पूरी—की व्यवस्था थी। चोरउत जैसा साधुओको अपमान भी सहना नही पडता था। तो भी विद्यार्थी सन्तुष्ट न थे। उनमेसे एक कवीके 'शास्त्री'जीके बारेमें सुन चुका था, इसलिए

सबने शास्त्रीजीका गहरा स्वागत किया। अपनी शिकायतोको मेरे सामने रखा। शामके ब्यालूमे मैंने खुद देखा कि उन पूरियोको खानेके लोहेके दाँत चाहिएँ। भोजन-सामग्रीसे महन्त, डीठा और रसोइयोंका काम बनता था, और साधुओ तथा दूसरोंके पास यह पथरीली पूरियाँ पहुँचती थी। पूरीमे कमसे कम घी डालनेका परिणाम ही यह पत्थरकी पूरियाँ थी। खीरमें कमसे कम दूध-चीनी डालनेका परिणाम वह गीला फीका भात था। महन्तजी पैसे जमा करके ब्रिटिश भारतमे एक स्थान बनानेकी तैयारीमे थे। 'नेपालमे महन्तीका क्या ठिकाना। वहाँके अधिकारियोके पास तो आँख है नही, वह तो सिर्फ़ कानसे सुनते हैं'—यह बात आम तौरसे कही जाती थी। मटिहानीकी आमदनी काफी थी, इसलिए उसकी लूटमे डीठा और स्थानीय अफ़सर तक शामिल बतलाये जाते थे। मैंने विद्यार्थियोसे इतना ही कहा, कि यदि नेपाल जानेका मौका मिला, तो मै इन शिकायतोको उच्च-अधिकारियोके सामने रखूँगा।

जनकपुरमे हम टीकमगढकी किलानुमा ठाकुरबाड़ी—जानकीभवन या जानकी-मन्दिर—मे ठहरे। यहाँके महन्तके शिष्य कर्वीमे मिल चुके थे, इसलिए हमे बड़े सन्मानके साथ रखा गया। शायद यहाँ स्थानमे गाँजा-चिलम नही चलती थी, इसलिए हमारे साथीको गाँजाका बहुत आदी होनेसे दूसरे मठोमे आना-जाना पडता था। मेरे लिए गाँजा अनिवार्य चीज न थी, किन्तु टीमके भावको तो दृढ़से दृढ़तर बनाना ज़रूरी था।

जनकपुरमे बहुतसे मठ है और जानकीसे सम्बन्ध रहनेसे उनमे अधिकाश वैरागियोके है। सिर्फ राममन्दिर सन्यासी-मठ है, उसकी भी आमदनी काफी है, और महन्तको निकालकर नेपाल-राज्यकी ओरसे वहाँ एक अच्छी पाठशाला और छात्रावास बनाया गया है। यहाँके विद्यार्थियोके साथ नज़दीकसे मिलनेका मौका नही मिला, इसलिए वहाँकी शिकायतोके बारेमे नही जान सका।

दो-तीन दिनके बाद हम 'धनुषा'की ओर चले। जगलमे वृक्षोंकी मोटी जडोकी तरहकी कोई पथरीली चीज़ है, इसीको लोग रामजी द्वारा तोड़ा गया सीतास्वयवर-वाला धनुष कहते है। धनुषासे अब हमने पहाड़ ही पहाड नेपाल पहुँचनेका इरादा किया। इधर जगल काटकर नई बसाई आबादियाँ ज्यादा थी, जिनमे ज्यादातर थारू लोग बसते थे। उनकी मुखमुद्रा मगोल थी। जगलमे धोबीके अभावमें भी स्त्रियोके साफ धुले कपडे उनकी सुरुचिको प्रकट कर रहे थे। उस रातको हम एक साधुकी कुटियामें ठहरे। पहाडकी जडमे कितने दिनोमे पहुँचे, यह मुझे याद नही। हम सिर्फ शाम-सबेरे ठडेमे कुछ घटे चला करते थे। गाँजेकी इफ़ात थी, इसलिए 'दम' बराबर ही लगती रहती थी। कमला पार होनेसे पहिले सबेरे आठ-नौ बजे हम गोर्खोंके एक

गाँवमे गये। ये नये आकर बसे थे। खानेके लिए हमे मक्केका भात मिला। मेरी सगतसे या पहिले हीसे सीखा-समझा होनेसे मेरे साथीने भी गोर्खाके हाथके भातमे कोई एतराज नही किया। कमलाका पानी ठडा था और उस गर्मीमे अच्छा लगता था। धार गहरी न थी। उस दिन खडी दोपहरीमे हम चलते ही चले गये, इसलिए बहुत तकलीफ हुई। पहाडकी जडमे एक कुटिया है, यह हमे पहिलेसे मालूम था। लिपी-पुती खूब साफ कुटिया, धूपसे बचाव फिर हल्की बहती बयार—थके-माँदे आदमियोको और दूसरी बात ही क्या याद आती ? हम लोग लेटे और जल्दी ही नीदमे गर्क हो गये।

नींद खुली तो देखा, एक अधेड साधु, कमरमे अँगोछेका तहमद लपेटे आँगन वहार रहे है। हमे जगा देखकर वह पास आये, बोले—'यहाँ तो सब चीज पडी थी। मै तो किसी घरमे ताला नही लगाता, इसीलिए कि कोई साधु-अभ्यागत आवे, तो बनावे खावे। मै गायोकी सेवामे बाहर चला जाता हूँ, कभी-कभी देरसे आना होता है। आपने क्यो नही भोजन बनाया खाया ?'

हमने सच्ची-सच्ची बात कह सुनाई—'उस अवस्थामे हमारे लिये लेटनेसे प्यारी कोई चीज़ न थी।'

सबेरे भी साथीको मक्केका भात अच्छा न लगा था, और अब भी उसीको पकाकर खानेके लिए पेश किया गया। साथी आना-कानी कर रहा था, किन्तु मक्केका भात पकाना भी एक नई चीज है, समझकर मैंने उसका स्वागत किया। महात्माने इतना ही बतलाया था, कि पानी गर्म करके उसमे मक्केकी दलियाको डालना। कितने पानीमे कितनी दलिँया डालनी चाहिए, इसका न हमे पता था, न महात्माने ही बताया। हमने दलिया डाल दी। फूलकर उसने सारे बर्त्तनको भर दिया, और अभी वह पकी न थी। कुछ निकालकर तस्लेमे रखा। पानी डाला। कुछ देरमे फिर बर्तन भर गया। फिर कुछ तस्लेमे निकाला, और अपने जान काफी, किन्तु पानी डालकर पकानेपर फिर बर्तन भर गया। अभी भी 'चावल' पका नही था। अन्तमे भूखसे उकताकर हमने अधपका ही उसे नीचे उतारा। दूध या दहीमे उसे मैंने तो पेट भर खाया, किन्तु साथी आधा पेट भी न खा सका।

हमने कुटीसे नीचे गोशालामे रसोई वनाई थी। हम लोगोके खाना खा चुकते ही गाये आ गई, और सभी घरोमे भर गई। गोशालेकी छतो और दीवारोमे नज़दीक-नज़दीक मजबूत लकडियोकी डाट बँधी हुई थी। गोपालोने वतलाया, यहाँ वाघके आनेका डर रहता है, इसीलिए उससे वचानेका यह प्रवन्ध है। रातको गोशाला

हीमें किसी मचानपर सो गये। साथीके रुखसे मालूम तो हो रहा था, कि वह हिम्मत हार रहा है, किन्तु यात्रा बन्द करनेका निर्णय उसने रातको नहीं सुनाया।

सबेरे साथीके निर्णयको सुनकर मैंने भी क़दमको पीछे हटाना ही पसन्द किया, क्योंकि लोग बतला रहे थे, आगे पहाड़में पहरा है, बिना राहदारीके आगे बढ़ने नहीं दिया जाता।

फिर बनुपा और फिर जनकपुर। जनकपुरसे साथी तो स्टेशनकी ओर गया, और मैं एकाध-दिन रहकर वराही (जि० मुज़फ़्फ़रपुर) मठकी ओर चला।

यहाँके महन्त यद्यपि तिर्हुतके दूसरे महन्तोंकी भाँति चचा-भतीजेकी परम्परामें पले थे, किन्तु उनके विचार कुछ उन्नत थे। उन्होंने अपनी सारी आयको खवासों और खवासिनोंपर खर्च करनेकी जगह उसे अविद्या और साधुसेवापर खर्च करना पसन्द किया था। स्थानमें एक अच्छी संस्कृत पाठशाला थी, जिसमें तीन-चार अच्छे-अच्छे पंडित पढ़ाते थे। पढ़नेवाले साधुओंकी अच्छी कद्र थी। महन्तजी स्वयं सबके साथ पंक्तिमें बैठकर भोजन करते, और साधुओंकी अवश्यकताओंका ध्यान रखते थे। वह खुद कोई पढ़े-लिखे विद्वान् व्यक्ति नहीं थे, और न उनके आसपासके तिर्हुतके स्थानोंमें ही कोई ऐसी परम्परा थी, ऐसी अवस्थामें उनके कार्यको मैंने बहुत प्रशंसनीय समझा था।

यहाँके भी किसी विद्यार्थीको मेरा नाम मालूम था, इसलिए आनेके साथ ही महन्तजी जान गये, और मेरा आसन एक अच्छे कमरेमें लगवाया गया, जिसमें नेवारकी पलंग, पंखा और कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। भोजनके बाद महन्तजी पाठशाला, मठके सुधार आदिके बारेमें बातचीत करते रहे। समयकी गति कुछ-कुछ उन्हें मालूम होने लगी थी, इसलिए वह उसके अनुसार कुछ चलना चाहते थे, किन्तु अपने लिए उत्तराधिकारी उन्होंने भतीजेको ही चुना था। कुछ ही सालों बाद महन्तजी जब मर गये तो, एक कांग्रेसी नेता जाति-बिरादरीकी दोहाई दे उसके संरक्षक बन गये।

चलते वक्त महन्तजीने बीस या पच्चीस रुपये और स्टेशन तकके लिए हाथीकी सवारी दी। हाथीपर बैठनेमें मैंने एक गलती भी की, और दुमकी तरफ मुँह कर रस्सेको उल्टे हाथों पकड़ा, जिससे धमसे ज़मीनपर आ पड़ा। खैर, चोट नहीं लगी। लोगोंने समझा होगा, हाथीपर बैठना नहीं जानते।

सुरसंडका गढ़ रास्तेसे दूर न था, तो भी मेरा वहाँ कोई काम न था। शामको बिठरखमें ठहर गया, और हाथीको लौटा दिया। अब आमोंकी फसल ज़ोर-शोरसे शुरू हो गई थी।

विडरख तक मुझे मालूम हो गया था, कि मेरी यात्राका अन्त तिरुमिशीमे होगा, इसीलिए पुपरीरोडसे मैने अपनी पुस्तको—जो ३, ४ छोटी पुस्तकोसे ज्यादा न थी—को तिरुमिशीमे हरिप्रपन्न स्वामीके पास भेज दिया।

अब मेरे पास रुपया था, इसलिए "दस-आना-छै-आना"मे चलना पाप था। मैने टिकट खरीदा, और दर्भगा गया। राज-लाइब्रेरी देखी, और शहरके कुछ हिस्सेको भी। रातको किसी मठमे न ठहर स्टेशनपर चला आया।

रास्तेमे पातेपुर-जैतपूरा स्थानोमे एक-दो दिन मैने बिताये। परसा मठसे इनका नजदीकका सम्बन्ध था, और रामानन्द स्वामीसे अब तककी परम्परापर मै कुछ थोडासा मसाला जमा कर रहा था, इसीलिए मै इन स्थानोमे गया। किन्तु वहाँ कोई नई चीज नही मिली, और चैनपुरा मठके धरनीदासकी परम्परामे होनेकी धारणापर भी धक्का लगा।

पातेपुरसे मैने बसाढका रास्ता लिया। बसाढ पहुँचनेसे पहिले एक बुढिया भक्तिनने खाने-पीनेका इन्तिजाम किया था। दोपहरको सड़कपर अवस्थित एक अग्रेजी स्कूलके अध्यापकने—जो शायद पोस्टमास्टर भी थे—भोजनके लिए बहुत आग्रह किया। कर्वी छोडनेपर अब कभी-कभी दिनरात सिर्फ सस्कृत बोलनेकी सनक चढ जाया करती। इस दिन मै उसी सनकमे था। अध्यापकपर सस्कृत-भाषणकी भी धाक रही होगी। उनसे बसाढके किलेके बारेमे तो पता लगा, किन्तु अशोक-स्तम्भके बारेमे शायद मैने पूछा ही नही या क्या, ठीकसे मालूम न हो सका।

बसाढके गढको देखा। वज्जी-गणतन्त्रका जो अपूर्ण स्वरूप चित्तपर अकित था, उसपर एक दृष्टि डाली। अशोकस्तम्भके बारेमे कई तरहकी बाते सुनकर मै भ्रममे पड गया। रातको गढसे पच्छिम एक ठाकुरबाडीमे ठहरा, जिसमे कितनी ही पुरातन खंडित मूर्तियाँ भी मौजूद थी। मन्दिरके पुजारी एक वृद्ध राजपूत थे। अयोध्याके बारेमे बात करते वक्त उन्होने अपनेको पडित रघुवरदासका पिता बतलाया। मैने कुछ आश्चर्यसा प्रकट किया। उन्होने बड़े करुण स्वरमे कहा—यदि उन्हे इस सम्बन्धको प्रकट करनेमे लज्जा मालूम होती है, तो खोलनेकी क्या अवश्यकता, यह तो मैने प्रसगवश कह दिया।

बसाढसे मुझे पटना आना था। मैने रास्तेको नकशेसे देखकर नही निश्चित किया था। रास्तेसे दस-पॉच मील इधर-उधर हो जानेकी कोई पर्वाह नहीं थी, क्योकि किसी जगह पहुँचनेकी कोई खास तिथि तो निश्चित कर नहीं रखी थी।

गडकका घाट पार हो मकेर, परसा (थाना) होते शीतलपुरसे रेलद्वारा दिघवारा

आया। पटना कभी आया न था, और न जाने कौनसे संस्कारवश मैंने समझा कि दिघवारासे नदी पार होनेपर पटना पहुँच जाते हैं। स्टेशनके सामनेवाले हलवाईसे चटाई लेकर रातको वहीं सो रहा। इधर जो गाँजा-चिलमकी कुछ मश्क हुई थी, तो देखा-देखी सिग्रेटका डिब्बा खरीदकर सीखनेके लिए सिरहाने रखा हुआ था। सबेरे किसी धार्मिक आदमीकी उसपर नज़र पड़ी, तो उसने फटकारा—"कैसे साधु हो, सिग्रेट पीते हो ?" सचमुच ही साधुके लिए शंकरकी बूटी गाँजा-भाँग ही शोभा देती है, सिग्रेटको छूकर मैं धर्ममर्यादा तोड़ रहा था। सिग्रेट पीनेकी एकाध बार मैंने कोशिश जरूर की, किन्तु उसके धुयेंसे मुँहका स्वाद और शिरकी अवस्था जैसी हो जाती है, उसे बर्दाश्त नहीं कर सका। बिना शागिर्दीकी सटक बर्दाश्त किये कोई उस्ताद थोड़े ही होता है ?

नावसे जब मैं गंगा पार हुआ, तो काफी धूप थी। अभी दियारा ही दियारा था, दानापुर बहुत दूर था। अन्तिम रेतीमें पहुँचते वक्त वह खूब तप गई थी, और मैंने दौड़कर जलते तलवोंमें बड़े कष्टके साथ उसे पार किया। छाले पड़नेका पूरा अन्देशा था, किन्तु बच गया।

दानापुरमें किसी उदासी साधुकी कुटियामें ठहरा। दूसरे दिन बाँकीपुरमें भीखम-दासकी ठाकुरबाड़ीमें रुका। उस समय ठाकुरबाड़ीमें रोज़ माल्दा आम आते थे। यह आमोंका राजा पटनाकी खास चीज़ है, यह मुझे नहीं मालूम था। मैं दो या तीन दिन पटनामें रहा। साधुओंको जहाँ तक हो सके पायखानेका बायकाट कर शहरके आसपासके खेतोंमें खुली हवा खुली ज़मीनको इस्तेमाल करना चाहिए—इस शास्त्रके अनुसार वह बगीचीके आसपासके उन खेतोंमें डोल-डाल (पायखाने) जाया करते थे, जहाँ अब नया कदमकुँआ बसा हुआ है।

पटनासे बख्तियारपुर होते बिहारशरीफ कचहरी उतरा। डाकबँगलेके हातेमें गुप्तकालीन पाषाणस्तम्भ और उसके शिलालेखको देखते—पढ़ते नहीं, क्योंकि अभी पुरालिपिका परिचय नहीं था—कस्बेमें किसी ठाकुरबाड़ीमें रातको ठहरा।

आगे नालन्दा पैदल ही गया। उस वक्त खुदाई तो हुई थी, किन्तु इतने अधिक विहार उद्घाटित नहीं हुए थे। चीनी यात्रियों—फाहियान, ह्वेन्साग, इत्सिंगको मैंने ध्यानमें पढ़ा था—काल्पीमें रहते फाहियानकी यात्राका आधा बल्कि अनुवाद कर डाला था, जिसे कि ओंकार प्रेस (प्रयाग) वालोंने लेकर कहीं गुम कर दिया—इसीसे बौद्ध स्थानोंकी मेरी यात्रा बड़ी अन्तर्दृष्टिके साथ हो रही थी। अब तक एकसे अधिक लेख मैं 'भारती'को लिख चुका था। उस वक्त नालन्दाके पासके विशाल ह्रद

लाल कमलोसे बिछे सचमुच ही पद्मक्षेत्रसे दीखते थे। म्युजियम देखनेकेलिए गया। उस वक़्त पडित (डाक्टर) हीरानन्द शास्त्री नालन्दामे खुदाई कर रहे थे। म्युज़ियम् देखनेके इच्छुक एक साधु आये हैं—सुनते ही वे चले आये, और खुदाईसे निकली चीज़ोको दिखलाते रहे। मैने स्थानकी गर्मीके बारेमे पूछा, उन्होने बतलाया—गर्मी तो है, किन्तु स्वास्थ्यके लिए कोई हानि नही करती। मै एकाध साल कश्मीरमे रहकर आया हूँ, किन्तु यहाँ आनेपर मेरे बच्चोको कोई खास शिकायत नही।

नालन्दासे राजगिर गया। (ब्रह्मकुड-बैभार पर्वत)के पासकी वैष्णव मठियामे ठहरा। उस वक्त वहाँ एक बूढे साधु रहते थे। राजगिरिमे इतने मकान या धर्मशालाये नही बनी थी। न वर्मी(?), जापानी विहार ही थे। मठमे एक और तरुण साधु थे, जो कुछ पढे-लिखे भी थे। मेरे पहाडोपर घूमने और दर्शनीय स्थानोके देखनेमे उन्होने बड़ी सहायता की। मै फाहियान्-ह्वेन्-चाङ्की यात्राओको पढकर निकला था, यह अब खूब याद आ रहा है, इसीलिए यात्रामे मज़ा आ रहा था।

गया जानेकेलिए मैने सीधा रास्ता पूछा। यदि बुद्धकी बोधगयासे राजगिर आनेकी यात्राका पता होता—जिसे कि मैने अपनी 'बुद्धचर्या'मे दिया है—तो मै उसी रास्ते चलता। मुझे पहाडका वह रास्ता बतलाया गया, जो कि राजगिरसे नवादाकी ओर जाता है। पहाडमे एक जगह रास्ता भूलनेपर जैनमन्दिरोके एक पुजारीने बतलाया—पहाडोपर जहाँ-तहाँ बिखरे हुए जैनमन्दिरोकी पूजाके लिए ऐसे कुछ पुजारी गाँवके पडोंमेसे रखे गये है। पहाडोको पार कर, और कितनी ही दूर चलकर शामको मै किसी स्टेशनपर पहुँचा। वहाँसे गया, गोलपत्थरके पास एक वैरागी-स्थानमे ठहरा।

बोधगया जानेके लिए दो-एक वैरागी साथी भी मिले। हम लोगोने पैदल ही उस रास्तेको तै किया। पीछे दर्जनो बार गया जानेका मौका मिला, इसलिए उस आरम्भिक साक्षात्कारकी छाप बहुत कुछ मिट गई है। तो भी बुद्धके प्रति मेरी भक्ति दयानन्दसे भी बढकर थी—हाँ उस वक़्त मै यह समझनेकी भी गल्ती कर रहा था, कि बुद्ध दयानन्द हीकी भाँति वैदिक धर्मप्रचारक ईश्वरविश्वासी ऋषि थे। गर्मीके दिन थे, इसलिए उस वक्त वहाँ कोई विदेशी बौद्ध नही मिला। मेरे साथियोने बोधगया महन्तके यहाँसे सदावर्त ली, निरजनाके किनारेकी ओर एक धर्मशालामे रसोई बनाई, और दोपहरका भोजन वहीं हुआ।

गयासे रेल द्वारा मै भागलपुर पहुँचा। कालेजकी पुरानी इमारतके पास एक वैरागी-स्थानमे ठहरा। महन्त पतले-दुबले बूढे ब्रजवासी थे। अब एकाध झोके वर्षाके आ चुके थे। आम खानेको खूब मिल रहे थे। महन्तजीका रहनेका आग्रह

हुआ, और मैंने भी सोचा, आमोंकी फ़सल बिताकर यहाँसे आगे चलना चाहिए। मठके बाहरकी फुलवारीमें कई हरे-भरे नारियल थे, जिनको देखकर मुझे भ्रम होने लगा था, कि मैं बंगालकी भूमिमें पहुँच गया हूँ। मठकी एक शाखा चम्पानगर नालेके उस पार गंगाके किनारेके किसी गाँवमें थी। उस वक्त गंगाकी धार गाँवको काट रही थी, इसलिए लोगोंने लकड़ीके लोभसे कितने ही आमके दरख्तोंको कटवा लिया था। वर्षोंसे गाँववालोंको कुछ आशा बँधी थी, कि शायद घर बच जावे। महन्तजी गाँजा-भाँगका नियमसे सेवन करते थे, और अब मैं भी उसमें शामिल था। नाच-नाचकर 'हरे राम' कहते हरिकीर्तन करना मुझे यहीं देखनेमें आया। भागलपुरके (तथा विहारके भी) विख्यात कीर्तनाचार्य क्रिस्टो बाबू कीर्तनके लिए आये हुए थे। दर्शकों की बड़ी भीड़ थी। कीर्तनका समय रातको था। महन्तजीने गोली कुछ बढ़ाकर शर्बतमें घोली थी, इसलिए मुझे नशा ज्यादा चढ़ गया, और क्रिस्टो बाबूके कीर्तनका मज़ा नहीं उठा सका।

भागलपुरके मठमें महीने भरसे कुछ ही कम दिन रहा हूँगा। यहाँ, मठके दर्वाज़े-पर सड़ककी दूसरी ओर एक पुस्तकालय था, जहाँ पुस्तक और अख़बार पढ़नेका भी कुछ सुभीता था।

भागलपुरसे मेरा इरादा हुआ मुर्शिदाबाद चलनेका। पैसा ख़तम हो जानेसे अब "दस-आने-छै-आने"में चलना था। रातकी गाड़ीमें सवार हुआ। सो गया, जब नींद खुली तो देखा सवेरा हो रहा है, और मैं मुर्शिदाबादवाले जंकशनसे बहुत आगे चला आया हूँ। बंगालमें कुछ पैदल चलनेका इरादा था, इसलिए वहीं उतर पड़ा। पासका गाँव कासिम-बाज़ारके राजा साहेबका था, वहाँ उनकी ओरसे एक हाईस्कूल भी था। मुझे भूख लगी थी। एक ब्राह्मणीकी कुटियामें जाकर पूछा—माई, कुछ खाना देगी ? ब्राह्मणीने फूसके सुन्दर छतवाले साधारण किन्तु स्वच्छ घरके लटकते ओसारेके नीचे सीमेंटके फर्शपर चटाई दे बैठा दिया। खाना बनानेमें देर होती, इसलिए मैंने गुड़की मूरी (लाई)को ही पसन्द किया। घरमें कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति पैदा हुआ था, उसने अभी-अभी कमाई शुरू की थी, और सीमेंटके फर्श तथा कुछ और सुधार घरमें किये थे, कि मौतने आ घेरा। अब घरमें दो प्रौढ़ा और वृद्धा विधवायें रह गई थीं।

भागीरथीकी किसी धाराको पारकर फिर सड़क पकड़ी। अब मैं ठेठ बंगालमें था। लोगोंके तेल चूते सँवारे हुए केश, पानसे काले पड़ गये दाँत, मलेरियाका मारा स्वास्थ्य। कितनी ही जगह गृहस्थ धानके खेतोंकी निराई करते थे। ग्रामसे

पहिले ही मैं पलासी या उसके पासके स्टेशनपर पहुँचा। मालूम हुआ मुर्शिदाबाद दूर छूट गया, आगे थोडी ही दूरपर रानाघाट आयेगा। मैने सोचा, अच्छा है, आसाम भी हो आवे। स्टेशनके छोटे-छोटे नौकरोमे कुछ बिहारी थे। उन्होने रातको भोजन कराया।

सबेरे सात या आठ बजे मैं रानाघाट उतरा। किसीसे पूछ-ताँछ नही की, स्वय तै कर लिया कि रानाघाट ब्रह्मपुत्रके किनारे है, और ब्रह्मपुत्र पारसे आसाम वाली रेलको पकडना अच्छा होगा। अभी मुँह-हाथ धोना भी था, इसलिए मैने 'गगा-धारे'का रास्ता पूछा। लोगोने एक सडक बतला दी। आगे जानेपर देखा वहाँ ब्रह्मपुत्र कहाँ, वहाँ तो एक छोटीसी नदी है, जिसपर नावोका पुल बँधा है। सडक शान्तिपुरको जा रही थी। कहा—चलो, इधर भी यजमानी है। नदी किनारे मुँह-हाथ धो आगे बढ़ा। धूप नही थी। आसमानमे बादल घिरे हुए थे। चारो ओर हरे-भरे खेत या वृक्ष दिखलाई पडते थे। सस्य-श्यामला वगभूमिकी मनोहारिनी छवि वर्षाके कारण अपने यौवनपर थी। बँगला कुछ पढ तो लेता था, किन्तु अभी तक बकिमचन्द्र या किसी दूसरे महान् उपन्यासकारके बँगला ग्रन्थ पढे नही थे, नही तो शायद उस प्रकृति-अवलोकनमे और भी मजा आता।

दस या ग्यारह बजे भूख मालूम हुई। एक पक्के किन्तु बेमरम्मत घरमे गया तो मालूम हुआ उसमे उपस्थित पुरुष कुछ पागलसा है। वहाँसे आगे शायद उसी गाँवमे एक दूसरा बँगलानुमा घर मिला। भिखमगेसे बिल्कुल उल्टे स्वरमे मैने वृद्ध गृहपतिसे पूछा—'क्या कुछ भोजन देगे?' वृद्धने तुरन्त उत्तर दिया—'हाँ, ज़रूर, आइये।'

उन्होने बैठकमे एक आरामकुर्सीपर बैठाया। वहाँ कुर्सी-मेज काफी थे। दीवारोपर तस्वीरे भी थी, किन्तु उनकी अवस्थासे मालूम होता था, कोई उनकी कदर करनेवाला नही है। रसोई तैयार होनेमे ज़रा-सी देर थी। वृद्धने एक आठ-दस वर्षके बच्चेको बुलाकर प्रणाम करवाया। फिर एक बडे फोटोको दिखलाकर कहा—"यही इसके बाप थे, मेरे एक मात्र पुत्र, वकील हुए थे, अभी काम चल ही निकला था, कि भगवान्ने बुला लिया। अब यही एक पौत्र हमारे वशका अवलम्ब है। मैं स्टेशन मास्टर था, इससे कुछ पेशन (?) मिलती है। कुछ खेत-पात भी है। खानेका भगवान्की दयासे कोई दुख नही। किन्तु पुत्र-वियोग, पुत्रवधूका वैधव्य बराबर सताता रहता है।" मालूम नही, मैने कुछ वैराग्यका उपदेश दे, उन्हे सान्त्वना दी, या किसी दूसरी तरहसे। गृहस्थके घरमे बगाली-भोजनका शायद पहिला मौका था।

कटहलके कोये जो सेर-सेर, डेढ़-डेढ़ सेर बग़ैर हिचकिचाहटके खा जाये, उसके सामने यहाँपर डरते-डरते दो-तीन कोयेका रस गारकर कटोरीमें रखना क्या मजाक नहीं था? भोजन स्वादिष्ट मालूम हुआ, उसमें नारंगी रंगका एक आचार तो और भी, जिसे दो तीन बार काटकर खा लेनेके बाद मैं जान सका कि यह बड़ा भींगा है। ख़ैर, "हरेरिच्छाबलीयसी", वही मत्स्यावतार धारण कर यदि हर जगह पहुँचे रहते हैं. तो मैं निर्बल मनुष्य क्या कर सकता।

भोजनके बाद जब मैं चलने लगा, तो गृहपतिने एकाध दिन रहनेका बहुत आग्रह किया, किन्तु अकृत्रिम ढगसे उसे अस्वीकृत कर मैं आगे चलता बना। शायद उसी दिन शामको शान्तिपुर पहुँचा। साधुका स्थान पूछनेपर क़स्बेसे बाहर तालावके भीटेपर एक साधुका पता लगा। वह एक पजाबी उदासी थे। लाल लँगोटा, पीली खुली जटायें, गलेमें काले ऊनकी माला, तरुण दीर्घ देहमें अखंड भभूती। भाषासे अनजान तथा बहुत कुछ निरक्षर होते हुए भी साधुने हाल हीमें आकर वहाँ अच्छा सिलसिला जमा लिया था। गाँजेकी कमी नहीं रहती थी, और गाँजेकी महकपर तो गृहस्थ भी मधुमक्खियोंकी तरह टूटते हैं। मछली-मासके कारण महात्मा छूत-छातका बहुत खयाल करते थे। बस, धुनीपर ही एक बड़ासा टिक्कर लगा लेते, तथा बराबरके घी-चीनी-दूधमें भोजन होता। धोतीके शान्तिपुरी पाढको मैं बहुत सुन चुका था, किन्तु यह जानकर अफ़सोस हुआ, कि अब वह पाढ़ अधिकतर मान्चेस्टरसे बनकर आता है।

रातको मैं स्टेशनपर जा रहा था, उस वक्त कुछ मनचले गाना गाते जा रहे थे। सुर ग़ज़लका किन्तु भाषा बँगला थी, मैंने कहा—चलो एक बातमें तो बगालियोंने कुछ हमसे लिया। रेलमे रवाना तो हुआ, किन्तु कितनी दूर इसका ख्याल नहीं। एक रात कृष्णनगरमें ठहरा था, शहरसे बाहर सड़कपर के एक पान-सिग्रेटवाले तरुणकी दूकानपर। रातको उसने मछली-भात खिलाया। बचपनके मत्स्यप्रेमको आजके भींगाके अचारने जगा दिया था।

गंगा पार उतरनेपर जब मैंने पैसा देना चाहा, तो घटवारने छपराकी बोलीमें बोलते हुए कहा—'नहीं, बाबा, हम तुमसे पैसा नहीं लेंगे।' यहाँ, इतनी दूर छपराके लोगोंका घाटका ठीका!

नदिया (नवद्वीप)में एक गौड़िया साधुके स्थानमें आसन रखा। न्यायशास्त्रमें नदियाकी कीर्ति काशी और दूर तक पहुँची हुई थी। वहाँ कुछ विहारी संस्कृत-छात्र भी मिले। उनसे संस्कृतमें बातचीत हुई। मैंने हालमें ही नव्यन्यायके कुछ ग्रंथ

पढे थे, इसलिए न्यायके उन विद्यार्थियोको भी अपना परिचय देनेमे मुझे दिक्कत न हुई। हिन्दी भाषाभाषी छात्रोकी सख्या बहुत कम थी, उन्होने मुझे देखकर बडी प्रसन्नता प्रकट की, और वही रहकर पढनेके लिए आग्रह किया। महामहोपाध्याय कामाख्यानाथ तर्कवागीशके बारेमे मै काफी सुन चुका था। न्यायवात्स्यायनभाष्य पढ़नेकी जब दिक्कत हो रही थी, तो उनका नाम कई बार मेरे सामने आया था। उनके चेहरेकी बहुत क्षीण स्मृति रह गई है, शायद वह महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्यकी भाँति दुबले-पतले मझोले कदके वृद्ध थे। उनके हाथमे नारियल और मुँहसे निकलता धुँआ मुझे अब भी याद है। वह चारपाई या कुर्सीपर नही बैठे थे। विद्यार्थियोने मेरा परिचय उत्तर-भारतके नये विद्यार्थीके तौरपर कराया। मैने श्रवणसे सुने हुए विद्यावैभवको आँखोसे देखकर अपनेको धन्य-धन्य समझा। शायद नदियामे विद्यार्थियोकी कमी रहती है, इसीलिए महामहोपाध्यायजीने मुझे आग्रह-पूर्वक रहनेके लिए कहा। बनारसमे निश्चय ही मध्यमा और आचार्यके एकाध खड-वाले विद्यार्थीको कामाख्यानाथकी कोटिके पडित उतना आग्रह नही करते, विशेषकर प्रथम दर्शनमे। आखिर, काशीके लिए सारे भारतसे विद्यार्थि-धाराये आती है, और नदियामे सिर्फ बगालसे, जहाँ भी कलकत्तामे एक प्रतिद्वन्दी सस्था सस्कृत कालेज है। सस्कृतके विद्वानोकी कठिनाइयाँ छात्रावस्थाके साथ खतम नही हो जाती। पडितावस्थामे भी यदि योग्य विद्यार्थी नही मिले, तो पढी-पढाई विद्या भूल-भुलाकर साफ़ होनेका डर रहता है।

नवद्वीपके कई मन्दिरोंको देखा। उस मठको भी देखा, जिसका सम्बन्ध गौराग महाप्रभु (चैतन्य)से है? एक भजनाश्रममे पचासो विधवा-स्त्रियोको आधसेर चावलके लिए घटो 'हरे राम' 'हरे राम' करते देखा। भजनाश्रमकी लोग बडी शिकायत कर रहे थे। जैसे उत्तरभारतकी कुलीन तरुण विधवाओका निस्तार काशीमे होता है, वैसे ही बगालका नवद्वीपमे, फिर भजनाश्रम बेचारा बदनामीसे क्यो बचता? शामको ढूँढनेपर उत्तरभारतीय वैरागी स्थान भी मिला। मैने तो तै किया—दक्षिणमे पढने जानेकी जगह यही पढा जावे, न्याय-मीमासा ही सही।

रातको जब मच्छरोकी फौजने हम्ला शुरू किया, तो शामका निश्चय जवाब देने लगा। किसी तरह रात काटी। सवेरे सारे बदनमे मच्छरोकी चोटके दाग थे, दाहिने हाथकी तर्जनीके मध्यमे तो खूब खुजली हो रही थी।

सवेरे उठते ही मैने स्टेशनका रास्ता लिया, किसीसे विदाई भी लेने नही गया।

कलकत्तामें अबके जगन्नाथमन्दिर (जगन्नाथ घाट)में ठहरा। कलकत्ता महीनों रह चुका था, इसलिए देखने-सुननेकी कोई खास चीज बाक़ी बची न थी।

सोचा, समयकी बचतका भी ख्याल रखना जरूरी है, तो भी अधिकसे अधिक स्थानों और प्रान्तोंको देखते चलना चाहिए।

हवड़ासे मैंने बी० एन० आर्०की लाइन पकड़ी। पहिली रात एक गाँवमें ठहरा, जहाँ यात्रा (रासलीला) हो रही थी। खड़गपुर कितने दिनोंमें पहुँचा, याद नहीं। आखिरी दिन दोपहरको एक गाँवमें एक ब्राह्मणने छोटी मछलीके साथ भात खिलाया। खड्गपुरसे खुर्दा रेलसे गया और आगे पुरी तक पैदल। उड़िया देहातकी दरिद्रता देखी। एक बड़े जमींदारके यहाँ सदावर्त मिलती थी। कई साधुओंके साथ मैं भी वहाँ गया। उनके यहाँ एक अच्छा शिखरदार मन्दिर था। जिस वक्त साधुओंको सदावर्त दिलवा रहे थे, उसी वक्त किसी रैयतने कई जीती माँगुर मछलियाँ भेटमें पेश कीं। मुझे याद आया—'माँगुर माछेर झोल। तरुणी मेयेर कोल। बोल हरी बोल।' रामकृष्ण परमहंस भी रँगीला रहा होगा।

साक्षी गोपालमें रातको ठहरा था, किन्तु अब उसका नाम भर याद रह गया, सो भी पीछे हजारीबाग़ जेलमें पंडित गोपबन्धुदासके दर्शन करने तथा उनके द्वारा स्थापित विद्यालयके बारेमें सुननेपर। पुरीमें अबके डाँडिया जगन्नाथदासके स्थानमें ठहरा। डाँडिया जगन्नाथकी हजारोंकी जमात मद्रास, महाराष्ट्र छोड़ बाक़ी सारे भारतमें, घूमघामसे घूमनेके लिए मशहूर थी। वह बराबर चलती ही रहती, सिर्फ़ बरसातके तीन महीने किसी बड़े शहरको देख चातुर्मासा करती। जगन्नाथदास इस जमातके बड़े महन्त थे और उनके नीचे ग्यारह और महन्त—जिससे उन्हें बारह भाई डाँडिया कहा जाता था। हर कुम्भपर डाँडियोंकी जमात जाती, और उस वक्त इनकी संख्या कई हजार पहुँच जाती थी। जमातमें कपड़ेके चलते-फिरते मन्दिर (तम्बू), साधुओंके रहनेके लिए बड़े-बड़े छाते, छोलदारियाँ और शामियाने रहते। इतनी बड़ी जमातमें व्यवस्था कायम रखना तथा बिना पैसेके सारा खाने-पीनेका प्रबन्ध करना आसान काम न था। महन्त जगन्नाथदास 'चेताने'में बहुत सिद्धहस्त थे। उनकी मीठी बातों, विशाल जटाओंको देखकर कौन प्रभावित हुए बिना न रहता। उनकी जमात पैदल चलती थी। एक-दो दिन पहिले अगले मुकामपर खबर चली जाती—कि जमाअत आ रही है; फिर उस क़स्बे या शहरके गृहस्थ घी, आटा, चीनी, रुपया जमा करनेमें लग जाते। एक साथ हजार-हजार जटा-भभूतधारी सन्तोंको देखकर गृहस्थ गद्गद हो जाते, फिर खाने-पीनेकी तकलीफ़ कैसे हो सकती

थी ? पूजाके रुपयेमें महन्तोका भाग काफी रहता। महन्त जगन्नाथदासने अपने उन्ही रुपयोसे यह स्थान बनवाया था, जो अभी पूरा नही हो पाया था। वैरागी लोग वैसे छुआ-छूत, और जूठ-मीठका वहुत विचार रखते है, किन्तु जिस तरह जगन्नाथजी (पूरी)मे एकादशीको उल्टी बॉधकर टाँग दिया गया है, उसी तरह छुआछूतको भी। मठमे जगन्नाथजीके चढे कुछ हटके भी आया करते थे। परोसनेवाले साधु परोसते हुए, बीचसे गफ्फाभी लगाते जाते थे। मुझे ख्याल आता था—सारा भारत ही पुरी हो जाता, तो कैसा अच्छा रहता।

पुरीमे नदियाके मच्छरोकी सताई अँगुली कुछ पक आई, किन्तु मैंने उसकी पर्वाह नही की। आध्रमे दो या तीन जगह दीहातके स्टेशनोमे उतर कुछ पैदल चला था। राजमहेन्द्रीमे गोदावरी तीरपर उस वक्त एक भारी मेला लगा हुआ था। गृहस्थोके अतिरिक्त ज्यादातर दक्षिणके साधु थे, और उत्तरके साधुओसे तुलना करनेपर वे निरे भिखमगे जँचते थे। उत्तरीय साधुओमे आचार-विचारके कितने ही अलिखित नियम है, वेषधारी साधु उनकी अवहेलना खुल्लमखुल्ला करनेकी हिम्मत नही रखता, किन्तु यहाँ सभी अपने आप अपने आचार्य। मेलेमे कुछ उत्तरभारतीय साधु भी थे, जिनके यहाँ मै ठहर गया। दो-एक दिन अस्पतालमे अँगुली धुलाने गया, किन्तु अभी वह अच्छी नही हुई थी। विजागमे भी दो-एक दिन रहकर अँगुली धुलवाई, फिर तिरुपती पहुँच गया।

तिरुपती मठमे अबके कुछ नये नियम बर्ते जा रहे थे। साधुको मठसे बाहर रहना पडता, जब वह बालाजीसे हो आता, तो मठके भीतर आसन दिया जाता। मै भी पिछवारेके एक बराडेमे ठहरा। सयोगसे दारागज (प्रयाग)के तुलसीदासके स्थानके बाबा रामटहलदास (सितारची) भीतर ठहरे हुए थे, उन्होने मुझे देख लिया—'शास्त्रीजी ! आप कहाँ ?' फिर मठके किसी अधिकारीसे कहकर मुझे भीतर लिवा गये। उस वक्त जलगोविन्द (?) स्थानमे एक परमहस वैरागी साधु—जो जन्मसे बगाली थे—ठहरे हुए थे, उनके साथ चन्द्रनगर (फ्रेच)का एक लडका था। महन्तजीने चेला बनानेके लिए एक लडका खोज लानेके लिए कहा था, इसीलिए परमहसजी इस लडकेको लाये थे। लडका मिडल तक पढा हुआ था। हमारे पुराने परिचितोमे अब कोई न था। तिरुपती सस्थानने एक सस्कृत-कालेज खोला है, सुनकर मैं उसे देखने गया। प्रधानाचार्य श्रीदेशिकाचार्यसे मिला। देशिकाचार्य दक्षिणके प्रकाड पडित थे, उनके पाडित्यके वारेमे मैं पहिले हीसे सुन चुका था। उन्होने पाठशाला दिखलाई, और वेदान्त मीमासाकी पढाईकी बात चलने पर वही रहकर पढनेके

लिए कहा। वह सब तरहसे सहायता देनेको तैयार थे। ऐसे गुरुसे पढनेके लिए मै कम लालायित न था, और बालाजीसे लौटनेपर पढाई आरम्भ करनेकी बात कहकर चला आया। यही लोकमान्य तिलककी मृत्युकी खबर मिली, और शोकसभा देखी।

बालाजीमे अबके वह मस्ताना बाबा 'कृष्ण कन्हैया तुम्ही तो हो' नही मिले। बतास-पछी कही एक जगह रहा करते है? रघुवरदास (?) पिछली बार जो लघु-कौमुदीके कुछ पन्ने घोखते मिले थे, अब वह बडे हो गये थे, और योग्यतासे भी अधिक अपने पाडित्यका अभिमान रखते थे। छपरा जिलामे उनका जन्म हुआ था, इस ख्यालसे तथा पहिलेके परिचयके कारण भी मैने कुछ अधिक नजदीकीपनसे बात शुरू की, किन्तु तुरन्त ही मालूम हो गया, कि हमारे दोस्त कई ताड ऊँचेसे बात कर रहे है। इसे सहन करना मेरी प्रकृतिके विरुद्ध था, किन्तु साथ ही उसके लिए झगडा मोल लेनेको भी मै भारी मूर्खता समझता था। रघुवरदासजी (या जो उनका नाम रहा हो) को हालमें कुछ बुखारसा आया था, और महन्तजीने डाक्टर बुला दिया था। कह रहे थे—"बड़ी गर्मी थी, सोडावाटर और बर्फ कितना ही पीता, कुछ असर नही होता।" सोडावाटर और बर्फको ऐसे ढगसे कहते, मानों वह इन्द्रपुरीका दुर्लभ अमृत-कलश है। उनके बदनपर साधुओंका साधारण अँचला नही बल्कि अच्छे कपडोका किन्तु जगह-जगह सिकुडा हुआ कमीज़ था। अपने उस सम्भ्रान्त वेषके सामने मेरी कम्बलकी अल्फीकी वह क्या गिनती करते? सस्कृत कालेजकी बात चलानेपर, वह इस तरह बाते करने लगे, मानो उसके कर्त्ता-धर्त्ता सब कुछ वे ही है। मैने यह तो देखा, कि पिछले सात वर्षोको इस पुरुषने खोया नही है, किन्तु उसका विद्याभिमान 'जस थोरे धन बौराई'वाली बात थी। मैने वही तै किया, कि तिरुपतीमें रहनेपर इन्हें अपनी इन्द्रगद्दी छिन जानेका डर रहेगा, इसलिए सीधे तिरुमिशी चलना ही अच्छा है।

पहाडसे उतरकर मै सीधे स्टेशनपर पहुँचा। मठमे जानेकी ज़रूरत न थी, फिर जलगोविन्दके परमहससे भेट होती, और महन्तके आये होनेपर उनसे बातचीत करनी पड़ती।

अब न मुझे दिव्यदेशोंके देखनेकी इच्छा थी, न पर्यटनकी लालसा। तिरुपतीमें अँगुली धुलवाने अस्पताल जाना पडा था। बीचमे कई दिन न धोनेसे वह ज्यादा पक गई थी। मैने तो डाक्टरकी कैंचीके सामने भीतरसे शकित रहते भी बाहरसे मुस्कराते अँगुली बढा दी, किन्तु रामटहलदास वहाँसे भाग गये। बालाजीमें दो-तीन दिन अँगुली न धुली, उसीसे मवाद फिर बढ गया था। अब कही भी बिना ठहरे मै सीधा तिरुमिशी पहुँचा।

# ११

# दुबारा तिरुमिशीमें ( १९२०-२१ ई० )

स्वामी हरिप्रपन्नाचार्य अब कुछ ज्यादा मोटे हो गये थे, और बाहरसे स्वस्थ दीखते हुए भी भीतरसे अधिक जीनेकी आशा नही रखते थे। कर्वीसे भेजे एक पत्रके उत्तरमे उन्होने जीवनकी अस्थिरताके साथ मुझे शीघ्र आनेके लिए लिखा था। मैं स्थानसे पढनेमे सहायता जरूर चाहता था, किन्तु महन्त बननेकेलिए तैयार न था। आषाढ महीनेमे अपने नये मन्दिरमे उन्होंने नई मूर्तियोकी स्थापना की, और उसी वक्त उत्तराधिकारी भी घोषित कर देना चाहते थे, मेरे न आनेपर उन्होने बदायूँ या बिजनौर जिलेके एक ब्राह्मण-लडकेको उत्तराधिकारी शिष्य बनाया। उन्होने देरसे आनेके कारण उक्त व्यवस्था कर डालनेके लिए अफसोस जाहिर किया। मैंने उसके लिए प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"महन्त दूसरा हो, यही तो मुझे पसन्द है। मैं चाहता हूँ विद्या पढना, बस इसीमें आपके आतिथ्यको चाहता हूँ।" उन्होने बडे प्रेमसे मेरे रहनेका अच्छा प्रबन्ध कर दिया। पहिलेका एकमहला पच्छिमवाला मकान अब दोमहला हो गया था। ऊपर सफेद सीमेटके फर्श और दीवारोकी कई पक्की कोठरियाँ थी, उन्हीमेसे एकमे मेरेलिए स्थान दिया गया। देवराजजी अब भी हरिप्रपन्नाचार्यके विश्वासपात्र तथा भगवान्‌की पूजा-रसोईमे निरत थे। उनके रीवाँवाले गुरुभाई मद्रासमे किसी वेश्याके फन्देमें पडे, और अब सदाके लिए आतशक लेकर बैठे हुए थे, और उनकी जबान ऐंठ गई थीं,—अक्षरोको ऐंठकर बोलते थे।

पिछले सात वर्षोमे मठकी काफी उन्नति हुई थी। सिर्फ दोनो घर ही अच्छे नही बन गये थे, बल्कि मद्रासमे मासिक चन्देकी आमदनी भी प्रतिमास डेढ सौसे ऊपर हो गई थी उगाहनेके तरद्दुदसे बचनेके लिए हरिप्रपन्न स्वामी उसे और बढा नही रहे थे, नही तो और दाता भी मिलनेको तैयार थे। पचीस-तीस हजारसे अधिक रुपया सूद-पर दिया हुआ था, और कितने ही धानके खेत भी खरीद लिये गये थे। मठकी सारी सम्पत्ति साठ हजारसे ऊपरकी थी।

महन्तीका उम्मीदवार दूसरा है, इसे जानते भी मैंने जिस तरह अपना भाव दिखलाया, उससे हरिप्रपन्न स्वामी भी प्रभावित हुए। दूसरे दिनसे वड (वैल-ताँगे) पर मैं पुन्नमले अँगुली धुलाने जाता, और आठ-दस दिन बाद नदियाके मच्छरोकी चोट चगी हुई, निशान तो खैर सारी जिन्दगीके लिए वे दे गये।

मेरी इच्छा वेदान्त और मीमासा पढनेकी थी। स्वामी हरिप्रपन्नकी इच्छा हुई, कि 'अष्टादशरहस्य' ग्रथोंको भी द्रविड भाषामे पढूँ। वेदान्त पढाना मेरे पुराने सहपाठी भक्ति—अब टी० वेकटाचार्य—के पिता श्रीनिवासाचार्यने स्वीकार किया। भक्ति स्वय अब 'मीमासाशिरोमणि' हो गये थे, इसलिए उनके साथ शास्त्रदीपिका आदिका पढना तै हुआ। मै रोज 'भक्ति'के घर पढने जाया करता। व्याहका कुछ विरोधी होनेके कारण 'भक्ति'के व्याहकी खवर मुझे कुछ प्रसन्नतादायक नही मालूम हुई—इस व्याहमे उनकी अपनी सगी फूफी ही सास हुई थी। पडित भागवताचार्यको मेरे आनेकी खवर लगी, तो वहुत खुश हुए, और उन्होने भी श्री-निवासाचार्यके पास मेरे लिए पत्र लिखा। मै मन लगाकर पढने लगा। रामा-नुजभाष्य—श्रुतप्रकाशिकाके कुछ अशोको देखते हुए—, तथा शास्त्र-दीपिकाका पाठ खूब जोरसे चलने लगा। 'भक्ति' वेदान्त, मीमासा अच्छी तरह पढे थे। पिछले वर्षो मे इसके लिए वह अधिकतर मेलापुर-विद्यालयमे रहे थे। किन्तु, आर्यसमाज—और वाहरकी हवा लगनेसे मेरे तर्क सिर्फ पुस्तकोके सुझाव तक ही महदूद न रहते थे। कितनी ही वार हम दोनो साथ रामानुजभाष्य पढते। पहिले रामानुजसे श्रीनिवास तककी गुरुपरम्पराके श्लोकोको पढकर दडवत् करते फिर पाठारम्भ होता। रामानुजका द्वैत-सिद्धान्त इसवक्त मेरा अपना सिद्धान्त था, क्योकि वह आर्यसमाजी सिद्धान्तोसे मिलता-जुलता था, तो भी और वातोमें मैं कितनी ही वार रामानुजपर आक्षेप कर वैठता। एक वार भक्ति उत्तर देते-देते अन्तमे निरुत्तर हो गये। मुझे वडा आश्चर्य और करुणा आई, जव मैंने देखा, कि उनकी आँखोमें आँसू भर आये है, और वह भर्राई आवाजमे कह रहे थे—"आचार्यका प्रश्न कमजोर नही हो सकता, नही हो सकता" मेरी उम्रके जवानको इतनी धर्मभीरुता! तवसे मै प्रश्नोको एकाध कोटि तक ही ले जाता। कितने ही प्रश्नोको सिर्फ पुस्तकपर लिख लेता। हाँ, तर्कपाद (शास्त्रदीपिकाके)के तर्कको हम दोनो निर्दयतासे प्रश्नोत्तरका विषय वनाते।

सितम्वरके शुरूमे ही मै तिरुमिशी पहुँचा था। जाडेके आनेसे उसका असर क्या होता, वहाँ तो कोठेपरकी कोठरीमे पसीनेके मारे मेरी गत वनने लगी। इसी वीच हरिप्रपन्नाचार्यका मन नये उत्तराधिकारीसे ऊव गया, और वे फिर अस्पष्ट रूपसे मेरी ओर रुजू होने लगे। पहिले मेरे चौकेमे खानेके लिए पडित भागवताचार्यसे कहा गया। उन्होने पढ़नेमे विघ्न समझ पहिले मना किया, पीछे स्वामी हरिप्रपन्नके कहनेपर आज्ञा दे दी। फिर मन्दिरके पीछेकी कोठरीमे दो वड़े-वडे जँगले वनवा उस

हवादार घरमे मुझे उतर आनेके लिए कहा गया, इसका तो, खैर, मैने हृदयसे स्वागत किया। हरिप्रपन्न स्वामी अब मुझे अपने उत्तराधिकारीकी भावनासे मानने लगे। मैने रूसी-क्रान्तिकी उडती खबरोंके बलपर क्रान्तिप्रसूत ससारका एक नकशा अपने मनपर अकित किया था, कभी-कभी महन्तो, जमीदारोंकी सम्पत्तिका क्या हस्र होगा, इसे मै महन्तजीके सामने चित्रित कर देता—इसका ध्यान रखते हुए कि अपने विचारो को नही बल्कि वस्तुस्थितिको रख रहा हूँ—तो बेचारे हरिप्रपन्नाचार्य घबरा उठते। आखिर, पैसा-पैसा जोडकर उन्होंने यह सम्पत्ति और नई ठाकुरबाडी बनाई थी।

तिरुमिशीका सस्कृत-विद्यालय अब उत्तरार्धि मठसे दो घर पूरब अपने घरमे आ गया था। वहाँके बूढे अध्यापकसे मै "अष्टादश-रहस्य" पढने जाता। रामानुज-सम्प्रदायकी दो शाखाओ—तिगलो और बळहलो—मेसे तिंगल-शाखाके 'अष्टादश रहस्य' पुस्तिकाओके निर्माता पिल्ले लोकाचार्य थे, जो रामानुजीयोके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् वेदान्ताचार्यके प्रतिद्वन्दी थे। ये रहस्य-ग्रथ सूत्र-रूपमे 'मणिप्रवाल' भाषामे लिख गये है। 'मणि-प्रवाल' (मणि-मूँगा) ऐसी तमिल-भाषाका नाम है, जिसमे सत्तर-अस्सी फीसदी तक शुद्ध सस्कृतके शब्द हो। रहस्योमे ऐसी ही भाषाका प्रयोग है। मै रहस्योंको शुरू करनेसे पूर्व तीन-चार तमिल-रीडरोको समाप्त कर चुका था, इसलिए भाषा समझनेमे आसानी थी। बीच-बीचमे आये तमिल शब्दोको ही समझना पडता था। रहस्यके अध्यापकको साधारण अध्यापकसे अधिक धर्मगुरुकी तरह माना जाता है। मेरी योग्यताको जानते हुए, गुरुजी खुश हो तत्परतासे पढाते थे। 'रहस्य' गोप्य ग्रथ है—यद्यपि सब ही तमिल और तेलगू अक्षरोमे छपे मिलते है—इसलिए बहुत देख-सुनकर पढानेका विधान है, तो भी तमिल प्रान्तके ब्राह्मण उसपर उतना ध्यान नही देते। मेरी वे पुस्तके उत्तर भारतमे आते ही गुम हो गईं, इसलिए फिर एक दृष्टिसे देखनेका अवसर नही मिला, किन्तु दो बाते अब भी याद है। रामानुज-सम्प्रदायके कितने ही परमपूज्य आळलवार (ऋषि) और महात्मा तथा स्वय रामानुजके गुरु शूद्र और महाशूद्र जातियोमे पैदा हुए थे। इसपर वर्णाश्रमियोका आक्षेप होता था, और पीछेके रामानुजीय ब्राह्मण भी जात-पाँतमे दूसरोसे दस कदम आगे हो गये, इसलिए उनके मनमे सन्देह होता था। इसके समाधानमे कहा गया था—गुरुकी जातिका खोज-खाज करना मातृ-योनि-परीक्षा जैसी है, इसी तरह "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज' (सारे धर्मोको छोड अकेले मेरी शरणमे चले आओ। मै तुझे सारे पापोसे छुडाऊँगा, शोक मत कर।) इस भगवद्गीताके वाक्यमे धर्म-कर्मकी आशा छोड सिर्फ भगवान्की शरणमे जाने मात्रमे मुक्ति बतलाई

है, इस बातको अति तक ले जाते हुए रहस्योंमें भक्तिसे भी बढकर प्रपत्ति (निश्चेष्ट हो इष्टदेवकी दयापर एक मात्र भरोसा) पर ज़ोर दिया गया है। इससे वर्णाश्रम-धर्म तथा ब्राह्मणोंकी सभी धार्मिक रूढियोंका प्रत्याख्यान हो जाता है, तो भी हिन्दुओंके सम्प्रदाय 'हाथीके दाँत खानेके और और दिखानेके और'में तो एक दूसरेका कान काटते हैं। शकराचार्यने भी 'न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा.' कहा, किन्तु अन्तमें 'व्यवहारे भाट्टनय'से सारे ढोंगोंको रहने दिया। रामानुजानुयायी शकरमतानुयायियोंसे भी अपनेको ज्यादा आस्तिक साबित करते हैं।

("वेदोऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृत ,
प्रामाण्यमेतस्य च तस्य चानृतम् ।
बोद्धाऽनृतो बुद्धिफले तथाऽनृते ,
यूय च बौद्धाश्च समानससद. ॥")

ख़ैर ! शकरवेदान्तके साधारण ग्रथ ही मैंने पढे थे, किन्तु रामानुजभाष्य और उसकी टीका श्रुतप्रकाशिकाके पढते वक्त मुझे शकरवेदान्तके और ग्रंथोंको देखनेका मौक़ा मिला। आर्यसमाजका प्रभाव रहनेसे सिद्धान्तमे मै द्वैतवादी हो रामानुजका समर्थक रहा। उसके कितने ही महीनो बाद कुर्गसे मैंने गुरुकुलकागड़ीसे निकलनेवाली अग्रेज़ी पत्रिका 'वैदिक मेगज़ीन'मे व्यास और उपनिषद्को शकरीय अद्वैतके विरुद्ध साबित करते हुए दो लेख लिखे। इसी दार्शनिक ऊहापोहमे बौद्धदर्शनके लिए अधिक जिज्ञासा उत्पन्न हो गई, रामानुज और शकरकी ओरसे, अन्तत. वर्णाश्रम धर्मका श्राद्ध करके दार्शनिक खडन द्वारा ही बौद्धोका विरोध किया जाता था। और दार्शनिक सिद्धान्तोंमे रामानुजीय शकरको प्रच्छन्न बौद्ध कहते थे, फिर बौद्धदर्शन क्या है, इधर ध्यान जाना ज़रूरी था, और पूर्वपक्षके तौरपर उद्धृत कुछ वाक्योसे मेरी तृप्ति नही हो सकती थी। किन्तु और कामो—विशेषकर राजनीतिक परिस्थिति—ने जो मेरा ध्यान आकर्षित किया था, उसके कारण मै ज्यादा समय इधर दे नही सकता था।

तिरुमिशीसे महीनेमे एकाध बार मद्रास जाता था। मेरे साथी वेकटाचार्य और दूसरे तरुण दोस्त वहाँके उत्तरभारतीय होटल आनन्दभवनकी मिठाइयोंको छिपकर चख आये थे, और उन्हीसे मालूम हुआ, कि मद्रासमें एक नास्तिक समाज—आर्यसमाज—का प्रचार हो रहा है। मद्रासमें पता लगानेपर मालूम हुआ, कि वहाँ आर्यसमाजके प्रचारक मेरे परिचित मित्र पडित ऋषिरामजी (लाहौर) है। अब तो जब भी मद्रास जाता, उनसे भेंट होती। वह प्रचारका काम हाथमें लेनेपर ज़ोर देते, मैंने भी अभी वैदिक-प्रचारक बननेके मंसूबेको छोड़ा नही था, तो भी आजकल करता

रहा। पडित ऋषिरामजीके यहाँसे आर्यसमाज सम्बन्धी अग्रेजी पुस्तको—गुरुदत्त-ग्रथावली आदि—को ले जाता, और एक तीर्थवासी दीवालिया बूढे सेठ (चेट्टी)के साथ उन्हे पढ़ता। सेठजी उसके तर्कोकी दाद देते।

माघ महीनेके आसपास तिरुमिशी दिव्यदेशका वार्षिक-महोत्सव आया। स्वामी हरिप्रपन्नका कैंकर्य (सेवा) अब बहुत आगे बढ चुका था। उत्सवके तीन-चार दिनोंके लिए उनका मठ एक बडी अतिथिशालाका रूप धारण करता। सभी घर, कोठरियाँ, मद्रास और दूसरी जगहोंके यात्रियोसे भर जाती, यात्रियोंमे अधिकाश अब्राह्मण होते। यह दोनोंके लिए अच्छा था, उत्तरभारतके भुक्तभोगी होनेसे हरिप्रपन्न स्वामी सभी अब्राह्मणोंको खान-पानमे बिल्कुल अछूत जैसा नही मान सकते थे और उधर अब्राह्मण चेट्टी, नायडू, मुदलियार आदि ही तो धनिक तथा धर्मविश्वासी होते हैं, इसलिए धनकी आयके रास्ते भी वही है। जो गृहस्थ उत्सवके दिनोमे एक बार हरिप्रपन्न स्वामीके मठके 'भुज्यता' 'पीयता'को देख गया, वह भला हरिप्रपन्न स्वामी-को क्या कभी खाली हाथ लौटा सकता था ?

उत्सवसे एक-दो सप्ताह पहिले हरिप्रपन्न स्वामी मद्रास डट जाते। अबके अपने सेवकोको दिखलानेके लिए वह मुझे ले गये। बडी सख्त मेहनत थी। धूपमे मद्रासके दूर-दूरके मुहल्लोंमे दौडते फिरना भारी मेहनतकी बात थी। हरिप्रपन्न स्वामी रिकशा या बडीपर एक भी पैसा खर्च करना पसन्द न करते थे। सुबहसे शाम तक घूमते-घूमते मैं तो थक जाता। कहीसे दो बोरा नीलौरी चावल मिलता, कहीसे एक टीन घी, कोई कुछ हज़ार पत्तले देता, और कोई इम्ली और मिर्च। तेलगू भाषाभाषिणी चेटियाइनोंका इस विषयमे अनुराग मारवाडी सेठानियोंकी तरह था। मुझे चिढ यही थी, कि हरिप्रपन्न स्वामी उनके सामने अपने भाषणको छोटा क्यो नही करते। खानेके इतने पदार्थ जमा करते भी भूख-प्यासके मारे हम मरे जाते थे, क्योंकि अब्राह्मण घरका अन्न-जल तो छू भी नही सकते थे। हरिप्रपन्न स्वामीके दायकोमे एक वेश्या भी थी। वह हर साल बडी श्रद्धासे, अपनी शक्तिसे अधिक मिर्च-मसाला या कोई और चीज़ देती थी। वह तिरुमिशीके भगवान्‌की देवदासी थी, उत्सवोपर वहाँ पहुँचती, किन्तु बाकी समय व्यवसायके सुभीतेके लिए मद्रासमे रहती। वेश्यावृत्ति एक व्यवसाय था, इसीलिए उसकी धार्मिक भावना क्षीण नही हुई थी।

उत्सवके वक्त आनेवालोमे कितने ही उत्तरभारतीय तीर्थवासी आचारी तथा आचारिने भी थी, और एक मद्रासका गृहस्थपरिवार भी। हरिप्रपन्न स्वामीके एक

शिष्य उस घरमे आते-जाते थे। सैकडो वर्षोंसे उत्तरभारतीय पुरुषोने इधरकी स्त्रियोसे शादी करके अपने अलग परिवार बना लिये है, जो हिन्दुओके पारम्परिक धर्मके अनुसार एक स्वतन्त्र जातिमे परिणत हो गये है। ये परिवार बराबर कोशिशमे रहते है, कि उनकी सन्तानोकी शादी हिन्दीभाषाभाषियोमे ही हो। हमारे आचारी भी इसी फेरमे पडकर उस घरमे शादी कर बैठे और अब घर-जमाई बने हुए थे। स्त्रीके सामने रूप और आयु दोनोमे वे जँचते नही थे, किन्तु कुलका ख्याल कर माँ-बापने लडकी दे दी थी। घुमक्कड तरुण साधुओके रास्तेमे एक नही सैकडो बाधाये है। जब कभी मै अपने अतीत जीवनपर नज़र डालता हूँ, तो एक बात साफ मालूम होती है—मेरी जीवनकी सफलताये निर्भर थी मेरे विवाह-बन्धन-मुक्त, स्त्री-स्नेहसे स्वतन्त्र रहनेपर। मैने यही एक नही, पचीसो उदाहरण देखे, जिसमें स्त्री-स्नेहने तरुणोकी उमगोपर पानी फेर दिया। तिरुपतीमे कानपुरकी एक प्रौढ़ा सेठानी आई थी, वह एक साधुको अपना 'पुजारी' बनाकर ले गई। हमारे एक साथीने प्रेमिकाके पानेमे आल्हा-ऊदलसा पराक्रम दिखलाया, किन्तु अन्तमे उसकी उन्नति वही खतम हो गई। लकामे एक जम्मू-वासीको देखा, एक काली तमिल स्त्रीके लिए उसने अपने पर कटा लिये। जब तक उडानकी चाह है, जब तक अपने आदर्शके सहायक साधनोको आदमी जमा नही कर सका है, तब तक उसका दोपाया रहना सबसे ज़रूरी चीज़ है, इस तत्त्वको मै कुछ समझ गया था जरूर, किन्तु सिर्फ इतनेके बलपर मै दोपाया रहनेमे सफल न होता। आखिर, मै स्वस्थ तरुण था, देखने-सुननेमे कुरूप नही था, बल्कि लोलाके कथनानुसार सुन्दर था। मेरे पढने-लिखने, सैर-तजर्बेका प्रभाव भी आदमीपर पड जाता था। धनका उपयोग तत्कालीन अवश्यकताओ तक ही मै परिमित समझता था, इसलिए धनिक होनेके फन्देसे बचना कुछ आसान था, किन्तु सबसे ज्यादा जिस बातने मुझे मुक्त रहनेमे मदद दी, वह थी लज्जा और सकोच। यदि लोगोकी दृष्टिमे गिरनेका मुझे डर न होता, यदि स्त्रियोके सामने बोलने-चालनेमे—विशेषकर प्रेमालाप-की दिशामे ले जानेवाले वार्तालापमे—सकोच न होता, तो सिर्फ आदर्शके लिए द्विपाद रहनेकी अनिवार्यता, या सिर्फ ज्ञानसे मै बच न सकता, क्योकि काम-वेग खास-खास अवस्थामे ज्ञान-विवेकको तिनकेके तौरपर बहा ले जाता है। जीवनकी दो-चार घट-नाएँ है, जिनसे मै इसलिए वच गया, कि कामकी साकेतिक भाषाके प्रयोगसे अपरिचित और समझनेमे मै सन्देहयुक्त था। इस जीवनीमे जीवनके इस अशपर भी मै और लिखता, क्योकि व्यक्ति पूजाको तोडनेके लिए मेरा दिल बाज़ वक्त वैसे ही चुलबुला उठता है, जैसे हाथमे पत्थर लिये छोटे लडकोको मिट्टीके बर्त्तनोको देखकर खन-

खन चर-चर करके टूटते बर्त्तन अच्छे मालूम होते है। समाजके ढोग मुझे क्रोधान्ध बना देते है। मेरा विश्वास है—या तो ये ढोग ही रहेगे या समाजका अस्तित्व ही। इसलिए समाजके ढोंगोंके साथ-साथ अपने व्यक्तित्वको भी चूर-चूर करनेमे मुझे प्रसन्नता होती। इसके लिए आजके कितने ही लोग मेरे साथ अन्याय भी करते, किन्तु भविष्यके कद्रदानोंकी सख्याके सामने वह नगण्यसे होते। तो भी इस विषयमें कलम रोकनेमे मुझे अपने मित्रो और स्नेहियोके आग्रहको भी पालन करना पडता है। सक्षेपमे पिछले ३० सालके स्वच्छन्द जीवनमे मुझे सिर्फ एक स्त्रीके साथ घनिष्ठता पैदा करनेका मौका आया, कुछ घटनाये तो रेतके पदचिह्नके तौरपर उस वक्त भी घटित हुई थी, और उनको यदि उन सिद्धो और महात्माओके जीवन-घटनाओसे मुकाबिला किया जावे, जिनके भीतरी जीवनको जाननेका मुझे मौका मिला था, तो वह नगण्य साबित होगी। मद्रास, पजाब, बुदेलखडके चिरनिवासोमे ऐसे खतरे आये थे, किन्तु आदर्शप्रेमके साथ लज्जा और सकोचने मुझे उनसे बचाया।

तिरुमिशीमे सारा समय पढनेमे लगता था। टी० वेकटाचार्य, उनके पिता टी० श्रीनिवासाचार्य तथा 'रहस्य'-अध्यापक बिना सकोचके अपना समय देनेमे बडी उदारता दिखलाते थे। भाई साहेब, रामगोपाल और बलदेवजीके पत्र समय-समयपर आते रहते थे। 'प्रताप' (कानपुर)और एकाध दूसरे उत्तरभारतीय अखबार भी मै मँगाया करता था। पुस्तकके अतिरिक्त देश-विदेशकी बातो, भारतकी राजनीतिक प्रगतिके साथ-साथ साम्यवाद द्वारा ससारकी उलटफेरके सबधमें मेरी बातें अक्सर हुआ करती थी। सुनते-सुनते जमीदारो और महन्तोकी सम्पत्तिके निकल जानेका तो स्वामी हरिप्रपन्न-को इतना विश्वास हो गया था, कि वह कलियुगकी भाँति इसे भी अवश्यभावी समझ आँख मूँदकर सन्तोष कर लेना चाहते थे। आर्यसमाजके बारेमे मैं 'अन्यपुरुष'के तौरपर उनसे बाते करता, क्योकि आर्यसमाजको वह नास्तिकवाद कह बडी घृणाकी दृष्टिसे देखते, और मेरे आर्यसमाजीपनको सुनकर उनके दिलपर भारी धक्का लगता। वेकटाचार्य तथा दूसरे जवान एनी बेसेटके होमरूल तथा हालकी राजनीतिक प्रगतिका धुँधलासा ज्ञान रखते थे, जिससे उन्हे मालूम था कि समाजमे कोई क्रान्ति होना चाहती है, और आर्यसमाजके उदार विचारोको उसीका एक अग समझकर वे विशेष क्षुब्ध नही होते थे।

मीमासा, वेदान्त और रहस्यग्रथ अब समाप्तिपर आ रहे थे। स्वामी हरिप्रपन्न-जीको भी मै बतला रहा था, कि इस मठका सचालन मेरे वशकी बात नही है। उन्हे मैं यह भी समझानेमे सफल हुआ कि मै यह बात परसाकी महन्तीके लालचसे नही कर

रहा हूँ। मेरे राजनीतिक उग्र विचारोंका उन्हे पता लग गया था, इसलिए वह समझने लगे थे—यह जेलखानो और कालापानीमें ठूसा जानेवाला आदमी है। इस तरह शनैः शनैः जब विदाईकी बात उनके सामने रखी गई, तो उन्हें उतना दुःख न हुआ। 'भक्ति'के साथ मेरा 'नर्मसचिव'का सम्बन्ध था। १९१३ हीमें हम मित्र बने थे, जब कि हमने एक साथ न जाने कितने काव्य, नाटक और चम्पू समाप्त किये। 'मालती माधव'में वातायनस्था मालती द्वारा रथ्यामे घूमते माधवके अवलोकनको हम बड़े रागसे पढ़ा करते, सात वर्ष बाद अब हम १९–२०के वे नवतरुण नही रह गये थे, तो भी हमारा स्नेह प्ररूढ़ हो चुका था। सबसे ज्यादा अफसोस मुझे 'भक्ति' (टी० वेंकटाचार्य)से विदाई लेते वक्त हुआ।

१७

# कुर्गमें चारमास (१९२१ ई०)

तिरुमिशी छोड़नेसे पहिले ही पंडित ऋषिराम कुर्गमें जानेके लिए मुझे तैयार कर चुके थे। कवींमें एक बार 'मिस्टर' सोमयाजुलूका पत्र मुझे मलबारसे मिला था। उसमें उन्होने केरलके नारियल-सोपाडीकी सुन्दर वृक्ष-पंक्तियोंसे छायाकृत तथा पुष्करिणियो और जलाशयोंसे आच्छादित केरल-भूमिका सुन्दर वर्णन किया था। सोमयाजुलू वैदिक-मिश्नरी बनकर कुछ दिनो कुर्गमें रह चुके थे, और अब वहाँके नौजवान किसी उपदेशकको भेजनेका लगातार आग्रह कर रहे थे। मित्रकी तैयार की गई भूमिपर जानेका भी एक आकर्षण था, और दूसरा आकर्षण था नये देशके देखनेका। ऋषिरामजीने मडिकेरि (मर्कारा, कुर्ग) पत्र लिख दिया, और एक दिन मैं मद्राससे रवाना हो गया।

बंगलोरमें स्नातक सत्यव्रत और उनके साथी एक दूसरे स्नातक गुरुकुल-पार्टीकी ओरसे आर्यसमाजका प्रचार कर रहे थे, कालेज-पार्टीने जब मद्रासमें ऋषिरामजीको भेजा, तो गुरुकुल-पार्टी क्यों पीछे रहती? वे लोग बंगलोर शहरमें एक किरायेके मकानमें रहते थे। सत्यव्रतजीके सहकारी विदेश जानेके लिए अत्यन्त लालायित थे। उनसे मैसूरके कुछ आर्यसमाजियोका पता लगा। तिलकके देहान्तके बाद गांधी भारतके सर्वमान्य नेता बन चुके थे। नागपुर-कांग्रेसने, असहयोगका प्रस्ताव स्वीकृत

कर लिया था। मैसूरमे आर्यसमाजने धर्मप्रचारके साथ हिन्दी प्रचारको भी अपने हाथमें लिया था। स्वामी पूर्णानन्द (यदि मेरी स्मृति गलती नही करती तो यही उनका नाम था) और युक्तप्रान्तीय एक काव्यतीर्थ पडित वहाँ आर्यसमाजकी ओरसे काम करते थे। स्वामीजी तो सिर्फ हिन्दी भर जानते थे, किन्तु उनके साथी सस्कृतज्ञ थे। मैसूरकी भाषा कन्नड (कर्नाटकी) है, जिसमें पचास-साठ सैकडे सस्कृतके शब्द है, इसलिए वहाँके लोगोको संस्कृत-मिश्रित हिन्दी पढनेमें बहुत सुभीता था। कालेजो, स्कूलोके कितने ही विद्यार्थी हिन्दी सीखते तथा हिन्दी प्रचार कर रहे थे, वह इसे राजनीतिक आन्दोलनका एक अग समझते थे। मैसूर शहरमे हिन्दी भाषाभाषी बहुतसे हिन्दू-परिवार थे, जो या तो उत्तरभारतसे आये थे, या मिश्रित ब्याहसे पैदा हुए थे। युक्तप्रान्तके एक अच्छे व्यापारी थे, जिन्होने यहीकी दो बहिनोंसे शादी कर ली थी। उनकी जेठी औरत नागपुर जाकर गाधीजीका दर्शन कर आई थी, और राजनीतिक कार्योंके लिए उनमे बडा उत्साह था।

मैसूर टाउनहालमे तीन-चार दिनके लिए एक व्याख्यानमाला रखी गई, जिसमे भिन्न-भिन्न आर्यसामाजिक विचारोपर मुझे हिन्दीमें और काव्यतीर्थजीको सस्कृतमे बोलना था। पहिला व्याख्यान तो समाप्त हुआ, किन्तु दूसरेके वक्त मेरे साथी बीमार हो गये, इसलिए मुझे ही सस्कृतमे बोलना पडा। सभापति एक सस्कृतज्ञ इजीनियर थे। उन्हे मेरे सस्कृत-भाषणकी स्वाभाविकता और शब्दकोष ज्यादा पसन्द आये, और कहा—कल भी आपने ही क्यों नही सस्कृतमे भाषण दिया? वैसे भी सस्कृत भाषण-लेखनमे मेरी कुछ अच्छी प्रगति थी, किन्तु एक वर्षकी भाषणप्रतिज्ञा, तथा दो बारके दीर्घ मद्रास-प्रवासोके अनवरत सस्कृत भाषणने बहुत सुभीता पैदा कर दिया था। मैसूरकी राजकीय पाठशालाके पडितोंसे भी विचार-विनिमय करता रहा, किन्तु उनके लिए आर्यसमाजके पास कोई आकर्षक साहित्य—दार्शनिक या शुद्ध साहित्यिक—मौजूद न था। उसकी समाज-सुधारकी बातोको वह अतिलौकिक, स्थूल, शिष्टाचार-वहिष्कृत कहकर टाल देते, और उसके द्वैतवादी वेदान्तको माध्वों और रामानुजीयोकी कच्ची नकल बतलाते।

मैसूरसे मडिकेरिके लिए मोटर लॉरी मिली। पहिले तो दक्षिण-भारतीय साधारण पाण्डुभूमि रही, किन्तु जब पहाडकी चढाई शुरू हुई, तो दृश्य मेरे मनको अपनी ओर आकर्षित करने लगा। कही छायादार रौप्यवृक्षो (सिल्वर ट्री)के नीचे बेले जैसी चायकी झाड़ियाँ दूर तक चली गई थी। कही दीर्घकाय वृक्षोपर कालीमिर्चकी हरी लतायें चढ़ी हुई थी। कही-कही स्वाभाविक आरण्य गिरिवक्षको घेरे हुए थे।

पानीके झरने जगह-जगह थे। ऊँचाईके साथ-साथ हवा शीतल होती जा रही थी। अब तक जितने पहाड पार किये थे, सभी को पैदल चलकर किया था। लडाईके बाद मोटर लारियाँ चलने लगी थी, और तिरुमिशीसे मद्रास जाते वक्त पुन्नमलीसे स्टेशन तक कितनी ही बार मोटरवसमे मै गया था; किन्तु अब यह पहिला मौका था, जब कि मुझे पर्वतयात्रामे वसकी सवारी मिली थी।

शामके वक़्त हमारी बस मडिकेरि पहुँची। पुवैय्या, उत्तप्पा, मन्डन्नाकी लॉजका पता लगानेमे दिक्कत न हुई।

लॉज (वासा) एक बँगलामे थी, जिसे चार-पॉच तरुणोने किरायेपर ले रखा था। बँगलेकी चारो ओर काफी और चायका बाग था। यहाँ खुली हवामें ही नही बल्कि खुले समाजमे भी सॉस लेते ताजगी, एक अजीब तरहकी प्रसन्नता मालूम होती थी। लॉजवाले सभी कुर्ग तरुण थे, उनमे छुआछूतका नाम नही था। आर्यसमाजी उपदेशक होनेसे मेरा निरामिषाहारी होना जरूरी था, लॉजके तरुणोमे भी अधिकाश निरामिषाहारी थे, और रसोईखानेमे तो मास-मछली पकती नही थी। प्याज-लह-सुनके लिए कोई रुकावट न थी। खाना मेजपर हिन्दुस्तानी-अग्रेजी मिले-जुले ढगसे खाया जाता। मडिकेरिमे बर्फ नही पड़ती, किन्तु वह दक्षिणके दार्जिलिग और नैनी-ताल जैसे सुन्दर पार्वत्य शीतनिवासोमेसे है। ऐसे स्थानोंपर चाय-काफी पीनेमे आनन्द आता है। यहाँ आकर मैने पहिले पहिल काफ़ी देखी। काफीका पौधा-बढ़कर ऊँचा हो जानेपर फल तोडनेमें दिक़्कत तथा फलोंकी सख्या और आकार-की कमी होती है, इसलिए हाथ-डेढ हाथपर उसे छाँटकर झाडीकी शकलमे रखा जाता है। उसके बेले जैसे सफेद फूल और डालीमें लाल बेरो जैसे गोल-गोल फलोकी लम्बी लढ़ी देखनेमे बहुत सुन्दर मालूम होती है। हमारे पीनेके लिए अक्सर काफीके फल अधजले करके भूने, फिर पीसकर चूर्ण बनाये जाते थे।

लॉज (वासा)के साथियोमे पी० एम्० उत्तप्पा ग्रेजुएट थे, बाकी सभी प्राय' मैट्रिक पास थे, और सरकारी कचहरीमे क्लर्कका काम करते थे। उनके चेहरोके देखने हीसे मालूम होता था, कि मद्रासियोसे भिन्न हम एक दूसरी जातिके देशमें आगये है। जहाँ पहाडसे नीचे, तथा यहाँके प्रवासियोमें अस्सी-अस्सी, नब्बे-नब्बे फीसदी स्त्री-पुरुष काले और नाटे होते थे, वहाँ ये सभी गेहुँआ रगके अपेक्षाकृत लम्बे पुरुष थे। पोशाक अग्रेजी भी पहनते थे, किन्तु आफिस जाते वक्त या विशेष समयपर वे उसके ऊपर अपना जातीय चोगा, कमरबन्द और उसमे बँधी पेश-कब्ज लगाते थे। वे हिन्दुत्वके लिए चोटीकी अनिवार्यताको कबूल नही करते थे। उनकी स्त्रियोको

पहिले पहिल जब मैने गढवाली स्त्रियोकी भाँति दाहिने कन्धेपर सूईके सहारे नत्थी करके चादरको पहनते देखा, तो मुझे मालूम हुआ, हिमालयका एक टुकडा सिर्फ अपने वनपर्वतोके साथ ही उठकर नही चला आया है, बल्कि वहाँके समाजके आधे अगको भी लेता आया है। आसपाससे भिन्नता रखते हुए भी कुर्गी भाषा द्रविडवशसे सम्बन्ध रखती है, तो भी कुर्ग लोग अपनेको उत्तर भारतसे आया बतलाते है। उनका रग, डील-डौल, स्त्रियोका साडी पहिननेका ढग, शिरमे बँधी रूमाल, घरके इस्तेमालके बर्तन, तथा मकानोकी बनावट तो जरूर उन्हे हिमालय—विशेषकर गढवाल या कुल्लू—से सम्बद्ध करते है। मडिकेरि हाईस्कूलके हातेमे छात्रोको ड्रिलकी तरह बाजेपर नाचते देख मैने उस वक्त तो उतना पसन्द नही किया, किन्तु कुछ ही वर्षो बाद मुझे वह भारतीय स्कूलोके लिए एक अनुकरणीय चीज जँचने लगी।

सोमयाजुलूने यहाँके कुछ नौजवानोमे आर्यसमाजके विचारोका प्रचार किया था, इनके अतिरिक्त शहरके एक वकील कोई पिल्ले पहिलेसे ही कुछ आर्यसमाजी विचार रखते थे, यद्यपि अब वे विचार कुछ बूढे होते जा रहे थे। पिल्ले महाशयके हातेमे ही सड़कपर एक कमरा हमने सस्कृत-क्लास और आर्यसमाजके व्याख्यानके लिए ले रखा था। उस वक्त तिलक स्वराज्यफडके चन्दो तथा असहयोगकी तैयारीकी मुल्कमे इतनी धूम थी, कि मुझे व्याख्यानोकी जरूरत नही महसूस हुई। हाँ, सस्कृत क्लास और सत्सग नियमपूर्वक लगता है। मडन्ना आदि ४, ५ तरुण पढने आते। आर्यसामाजिक विचारोपर चर्चा यहाँ और लॉजमे भी बराबर रहती। मडिकेरिमे रामकृष्ण-मिशनकी एक शाखा थी। मद्रासमे रामकृष्ण-मिशनने एक अच्छा छात्रावास ही नही खोल रखा था, बल्कि वहाँसे 'वेदान्तकेसरी' नामक एक अग्रेजी मासिकपत्र भी निकलता था। इस तरह जिन तरुणोको स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थकी 'अमेरिकाविजय' और वेदान्तकी बारीकीका कुछ पता लग गया हो, उन्हे आर्यसमाजमे लाना मुश्किल था। यही मैने स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्दके सारे ग्रथोको पढा। मुझे रामतीर्थ ठीक वेदान्ती किन्तु पागल मालूम पडे, और विवेकानन्द गलत-वेदान्ती किन्तु चालाक। लॉजके एक सदस्य श्री पुवैय्या रामकृष्ण-विवेकानन्दके बडे भक्त थे, और उनसे अक्सर गर्मागर्म बहस हो जाती, तो भी वह हमारे स्नेह-सम्बन्ध पर बुरा असर नही डाल सकती थी। यही मैने शकरके वेदान्तको व्यास और उपनिषद्के मतसे विरुद्ध साबित करनेके लिए 'वैदिक मैगज़ीन'मे दो लेख लिखे।

मडिकेरिमे एक अच्छा बाज़ार है। कुर्ग लोगोमे शिक्षा बहुत है, लडको हीमे नही लड़कियोमे भी। रोमन कैथलिक साधुनियोने उनके लिए कान्वेंट कायम किये है;

अपने भीतर छुआछूतका ख्याल न होनेके कारण कुर्ग लडकियाँ वहाँ बहुत पढने जाती थी, यद्यपि उनमेसे किसीके ईसाई होनेकी बात मैंने नही सुनी। पासमे कालेज न रहनेसे भी लडकियोको ग्रेजुएट होनेका कम मौका था। उस वक्त एकही कुर्ग तरुणी ग्रेजुएट थी कुमारी पुवय्या, जो कि कन्या-महाविद्यालय जलन्धरमे पढाती थी, उनके बारेमे मेरे मित्र सन्तरामजीने लिखा था।

इतनी शिक्षा होनेपर भी कुर्ग लोगोका ध्यान सिर्फ क्लर्कीकी ओर था। वे सर्कारी दफ्तरो या चायके प्लाटरोके यहाँ लिखने-पढनेका काम करते थे। व्यापार सारा कुर्गसे बाहरके लोगों—कोकणी मुसल्मानो, कर्नाटक जगमो तथा दूसरो—के हाथमे था। वहाँके एक अच्छे दूकानदार एक कोंकणी मुसल्मानसे मेरी घनिष्ठता बहुत वढ गई थी। उन्होने मुझसे हिन्दी पढनी सीखी थी, और उनकी दूकान तो मेरे राजनीतिक क्लासका एक मजबूत अड्डा बन गई थी। अब तकके अर्जित अपने प्रगतिशील ज्ञानका मै वहाँ खुलकर प्रचार करता था। जबानी जमाखर्चसे बढकर जब वे मुझे अपने साथ रोटी-तर्कारी एक दस्तरख्वानपर खाते देखते तो उनका मेरे प्रति खास भाव पैदा होना जरूरी था। चलते वक्त जीवनमें पहिला अभिनन्दनपत्र इन्ही मुसल्मान दोस्तोने मुझे दिया था।

मडिकेरिमे आते ही मैने कन्नड सीखनी शुरू की। तेलगू अक्षरोंसे परिचित होनेसे अक्षर-परिचय आसान था। भाषामे मैने देख लिया था, कि सस्कृतके शब्द अधिक है, इसलिए वहाँ पहुँचनेके दूसरे या तीसरे ही दिन मै अपने कुर्ग-अध्यापकके साथ होड लगा बैठा—'लैंड होल्डर' एसोसियेशन (जमीदार सभा)की कान्फ्रेसके कन्नड भाषणोका मै आपको साराश सुना दूँगा। कान्फ्रेस बीस-बाईस दिन बाद हुई और मैने वैसा करके दिखाया, वस्तुत इसका अधिक श्रेय मेरे भाषाध्ययन-पाटवको नही, बल्कि कन्नडके "मणिप्रवालत्व"को है। कान्फ्रेसमें कितने ही कुर्ग और कन्नड नेताओके भाषण हुए, भाषण देनेवालोमे एक अग्रेज प्लान्टर मिस्टर ग्रीन्प्राइस भी थे। कान्फ्रेसने कुर्गके लिये एक निर्वाचित कौंसिलकी स्थापनाका 'गर्म प्रस्ताव'—उस वक्तके कुर्गियोके लिए यह दरअसल गर्म प्रस्ताव था—पास किया। गाधीजीकी भी दुहाई दी गई—और यह पहिला समय था, जब मुझे उसके सुननेका मौका मिला। ६ अप्रेल १९१९मे ब्रेड-ला हालकी सभाओमे उनके नामके साथ वह प्रभामडल न था, क्योकि उस वक्त भारतके बूढे चाणक्य बालगगाधर तिलक जीवित थे।

वैसे तो सारा कुर्ग पार्वत्यदृश्योसे भरा है, किन्तु दोदा-बेटा तथा कावेरी-स्रोत दर्शनीय स्थान है।

कावेरी दक्षिणकी गगा है। गगोत्री यमुनोत्रीकी भाँति इसके स्रोतको भी पवित्र माना जाता है। यद्यपि कावेरी-स्रोत कुर्गका सबसे ऊँचा पहाड नही है, तो भी वह ऊँचे पर्वतोमे है। लेकिन, हिमालयकी नदियोके स्रोतोंकी बहार यहाँ कहाँ? हिमालयकी सनातन श्वेत हिमानियाँ शुरू हीमे उन्हे पिघली रौप्यधार प्रदान करती है, और यहाँ नदियोके उद्गम है, जहाँ-तहाँके झरने और कुड। हरे-हरे जगलो और विशाल वृक्षोसे आच्छादित होनेपर भी सदा हरित वृक्षराज देवदारके अभावमे ये पहाड नगाधिराज हिमालयका मुकाबिला नही कर सकते। कावेरी-स्रोत पर्वतके पास छोटी इलायचीके 'जगल' मिले। इलायचीके पौधे कचूर या हल्दीकी तरहके होते है। पौधेसे निकली पतली जड या प्ररोह (बरोह)मे इलायचियाँ गुँथीसी रहती है। कुर्गमे एक वक्त काफी बहुत होती थी, किन्तु किसी बीमारीने जब उसके बगीचोको नष्ट कर दिया, तो उन्हे चायके बगीचोंमे परिणत कर दिया गया। प्राय सारे चायके बगीचे अग्रेजोके हाथमे है। चन्दन यहाँ राजवृक्ष है। आमतौरसे चन्दन जगलमे होते है, किन्तु यदि किसीके खेतमे भी कोई दरख्त उग आये तो मालिक न उसे काट सकता है, न पीछे उसकी लकडी पा सकता है। इलायचीके बगीचोपर भी कुर्ग लोगोका कम ही अधिकार है। जगल-विभाग सर्कारके हाथमे है ही, इस प्रकार कुर्गवासियोका इस सारी प्राकृतिक सम्पत्तिसे वास्ता नही, उन्हे तो गुजारेके लिए वही पहाडी खेती मिली है।

दोदाबेटा कुर्गका और शायद सारे मद्रास प्रान्तका सबसे ऊँचा पर्वतशिखर है। एक तरुणके साथ मै उसे देखने गया। ऊँचाईपर लाल फूलोकी वही कँटीली झाडियाँ मिली जो हिमालयमे तीन-चार हजार फीटके ऊपर मिलती है। जाते हुए एक दिन साथीके घरमे ठहरा। यहाँ खेती चावलकी ही होती है, तो भी कुर्ग लोगोको रोटीसे बहुत प्रेम है, हमे चायके साथ चावलकी रोटी जरूर मिलती थी। दोदा-बेटा सात हजार फीटसे अधिक ऊँचा है। ऊपरी जगलोमे, वडी जोके रहती है। आदमीके पैरकी आहट पाते ही ये हजारो अन्धे प्राणी, अपने सूई जैसे पतले मुँहको उस दिशामे हिलाने लगते है। हमने इसके लिए बहुतसे नीबू ले लिये थे, और बीच-बीचमे उसके रससे पैरोको चुपड लेते थे। खैरियत यह थी, कि उस दिन वर्षा नही हुई, नही तो जोके कई गुना बढ़ जाती, और नीबूका रस भी धुलता जाता। दोदा-बेटा कोई विचित्र शिखर नही है, वह समरस पर्वतपर एक मामूली चट्टानसी है। हमने उसपर चढकर दूसरी तरफकी निम्न विस्तृत वनस्थलीको देखा।

कुर्ग-प्रान्त, वहाँके लोग, पर्वत और वनकी ठीक समानता पीछे मुझे लकाके काडी प्रान्तसे मिली,—जहाँ काडीवाले सिहल हिन्दी-आर्य भाषा बोलते है, वहाँ ये एक

द्राविड़ी भाषाको।

कुर्गको अंग्रेजोके हाथमे आये सौ ही वर्षके करीब हुए है। अपने राजवशकी भ्रातृ-हत्याओं तथा कुप्रबन्धसे तंग आकर यहाँके लोगोने स्वय अपने शासनको कम्पनीके हाथमे सौंपा था। इसके पारितोषिक-स्वरूप कुर्गवालोसे हथियार छीने नही गये, और लकाकी तरह वहाँ भी बन्दूक रखनेमे रोक-टोक नही है। राजाका प्रासाद मडिकेरिमें है, किन्तु उसका एक उद्यानप्रासाद मडिकेरिसे कुछ हटकर भी है। दोनों प्रासादोके अव सिर्फ मन्दिर आबाद है, बाकीको सर्कारने मरम्मत करके देखनेके लिए रख छोडा है। कुर्ग लोग जहाँ हिन्दू होते हुए भी उदार विचारके है, वहाँ पुराना राजवश लिंगायत (वीरशैव) था, जो अपनी कट्टरताके लिए विख्यात है। सम्भव है, कुर्गके लोगोने लिंगायतोको अन्य जातीय समझकर भी शासन-परिवर्तन स्वीकार किया हो।

कुर्ग (कोडगु) लोगोमे दो शाखाये है—'अमा' कोडगु और साधारण कोडगु। अपने दूसरे भाइयोके विरुद्ध आमा कोडगु लोगोंमे विधवा ब्याह नही होता, वह सुअर नही पालते, और परिणामत: उन्हे ऊँचा माना जाता है। उस वक्त मानवतत्त्व मेरे अध्ययनका विषय नही हुआ था, किन्तु मै समझता हूँ, कोडगु लोगोंके आचार-व्यवहार आसपासके लोगोसे प्रभावित होते हुए भी बहुतसी अपनी पुरानी विशेषताओको रखे हुए है।

मेरे देखते-देखते असहयोग-आन्दोलनका असर धीरे-धीरे कुर्गपर पडना शुरू हुआ। सभाये होने लगी, जिनमे कोडगु लोग भी सम्मिलित होने लगे। मेरे ही सामने उन्होने "कोडगु" नामसे एक साप्ताहिक पत्र कन्नड़(?)भाषामे निकाला।

वलदेवजीका पत्र वरावर आता रहता था। अबके उनका और मोहनलालजीका पत्र आया कि अब हम असहयोग करने जा रहे है। मैने जल्दी-जल्दी दो पत्र लिखे, और कहा—आप लोगोकी बी० ए० परीक्षाके दो-तीन महीने रहते है, परीक्षा खतम करके असहयोग कीजिये। किन्तु, वहाँ कौन माननेवाला था, गाधीजीने जो 'साल भरमे स्वराज' देनेका ठीका ले लिया था। स्कूलों-कालेजोको शैतानी शिक्षणालय समझ उनसे असहयोग, तथा सालभरमे स्वराज इन दो बातोका शुरूसे ही मै विरोधी रहा, यद्यपि दूसरे तौरसे राजनीतिक जागृति और सघर्षका मै जबर्दस्त पक्षपाती था। कुर्गमे अपने साथियोसे मेरे वार्तालापका काफी समय राजनीतिक चर्चा मे वीतता था।

धर्मप्रचारकी भावनाकेसाथ-साथ अब मेरी अन्तर्निहित राजनीतिक भावनाये वाहरी वायुमडलकी अनुकूलता पा उभड़ने लगी। यद्यपि कर्गमे गाधीकी आँधी उतनी जबर्दस्त

नही आई थी, तो भी वह उससे अछूता न था, और फिर मै तो दैनिक 'हिन्दू' और दूसरे अखबारोंका नियमपूर्वक रोज पारायण करता रहता था। तो भी कुर्गको तुरन्त छोडकर चल देना मै उचित नही समझता था, क्योंकि पडित ऋषिरामजीको मैने इसके लिए वचन दिया था। इसी वक्त यागेशकी चिट्ठी आई, जिसमे पिताजीके मरनेकी खबर थी। मै कुछ स्तब्धसा हो गया, किन्तु मेरी आँखोंमे आँसूका पता न था। लॉजके साथी वहाँ बैठे थे। जब मैने साधारण तौरसे पिताकी मृत्युकी बात उनसे कही, तो दूसरे तो नही किन्तु मिस्टर पुवैयाने फटकारा—'कैसा हृदय है, बापकी मृत्युके लिए दो आँसू भी नही है।'—वे मुझे पडितजी कहते थे, मै वहाँ साधु-सन्यासीके वेषमे न था, नही तो शायद ऐसा न कहते।

पिताकी मृत्यु सुन छुट्टी लेनेका बहाना मिला, और मैने राजनीतिक जीवनमे प्रवेश करनेका निश्चय कर लिया।

---

# चतुर्थ खंड

## राजनीति-प्रवेश (१९२१-२७ ई०)

### १

### छपराके लिये प्रस्थान (जून १९२१ ई०)

उस वक्त तक असहयोग-आन्दोलन कार्यरूपमें परिणत हो चुका था। हजारों हजार विद्यार्थी कालेज स्कूल छोड़ चुके थे। कितने ही वकील, बैरिस्टर अपनी प्रेक्टिस बन्द कर चुके थे। गांधीजी तिलक-स्वराज्यफंडके एक करोड़ रुपये जमा कर चुके थे। राजनीतिमें प्रवेश करना यह तो तै कर लिया, किन्तु कहाँका प्रश्न हल करनेमे दो-चार दिन लगे। आज़मगढ़में जा नहीं सकता था। बाक़ी स्थानोंमें जालौन ज़िला और छपरा दो ही मेरे सामने थे, मैंने छपराके पक्षमें फ़ैसला किया।

मेरी किताबें मद्रासमें पंडित ऋषिरामजीके पास थी, उन्हें बंगलोर भेजनेके लिए लिख दिया और मडिकेरिके मित्रोंसे शोकपूर्ण हृदयके साथ विदाई ली। पुस्तकोंको बंगलोरसे कोत्र श्री पन्नालालजीके पास भेज दिया और एक पत्र छपरा ज़िला-कांग्रेस-कमीटीके मंत्रीके पास अपने आने तथा योग्य सेवा करनेके बारेमें लिख दिया।

असहयोग-आन्दोलनके फलस्वरूप शोलापुरमें अभी हाल हीमें गोली चली थी, इसलिए गोली चलनेके स्थानको देखनेके लिए मैं वहाँ उतरा। उस वक़्त गांधीजी महात्मा गांधी तो बन गये थे, किन्तु अभी वह गांधी टोपी तथा एक-बटन-खुले-गलेके कुर्तेमें रहते थे। बम्बईमें उनके इस वेषके फोटो बहुत प्रचलित थे। बम्बईमें मैं दो-तीन दिन ठहरा। चौपाटीकी कुछ सभाओंमें सम्मिलित हुआ। एक सभामें कोटगढ़के स्टोक साहेब बोल रहे थे—हिमालयसे कुमारी तककी सारी भारतभूमिको हिमशुभ्र खादीसे ढाँक देना चाहिए। लोगोंने गम्भीर करतल ध्वनिसे वक्ताका स्वागत किया था।

खड्डग्रामे एक गोशालामे ठहरा। लोगोने बाजार-चौकमे मेरा व्याख्यान रखा। यह था मेरा पहिला राजनीतिक व्याख्यान। क्या कहा यह मुझे याद नही, किन्तु कहनेके लिए तब तक मेरे पास काफी सामग्री थी, इसमे सन्देह नही।

कोच (जालौन)मे श्री पन्नालालजीके यहाँ ठहरा। अब उनका परिवार महेश-पुरा छोड़ यहाँ चला आया था, और स्त्रियोके झगडेके मारे दोनो भाई दो घरोमें रहते थे। चार सालोंके अन्तरकी छाप तो चेहरे-चेहरेपर होनी ही चाहिए थी। यहाँ चौरस्तेपर एक राजनीतिक व्याख्यानमाला ही शुरू हो गई, जो तीन या चार रातो चलती रही। मैंने मडिकेरिमे खद्दरका कुर्त्ता सिलवाया था, यहाँ मैंने खद्दरका अँचला (साधुओकी धोती) प्राप्त किया।

बनारसमे स्वामी वेदानन्दजी अभी मौजूद थे। उनसे मिलता सीधा छपरा पहुँचा।

सलेमपुरका वह पक्का मकान अब भी मौजूद है, जिसमे उस वक्त जिला कांग्रेस कमीटीका दफ्तर था। मै अपने उसी अँचलेमे एक कमडलू लिये नगे शिर, नगे पैर दफ्तरमे पहुँचा, वहाँ भरतमिश्र ही मेरे परिचित थे। सब लोग दरीपर बैठे थे, मैं भी एक ओर बैठ गया। मेरा पत्र पहुँच गया था, किन्तु कुछ दोस्तोंने इसे एक गुमनाम साधुकी गुस्ताखी समझा—वह पत्र द्वारा अपनी विशेषताको सूचित करना चाहता है। मुझे राजनीतिक कार्योके बारेमे कुछ पूछ-ताछ करनी थी। जिलेमे तिलक-स्वराजफडके सग्रहका काम खतम हो चुका था। मालूम हुआ इस वक्त चर्खा-खद्दर और मादक-द्रव्य-निषेधपर जोर लगाया जा रहा है। अपने कामको गाँवके छोटेसे स्थानसे शुरू करनेके बारेमे मैंने तै कर लिया था, और इसके लिए परसासे बढकर दूसरी जगह मेरे लिए कौन होती ? पूछनेपर मैंने परसा जानेका अपना निश्चय सुनाया। कुछ साथियोको सन्तोष हुआ कि साधुने जिलाकेन्द्रमे काम करनेकी गुस्ताखी नही की। मेरी अनिच्छापर भी एकमा थाना कांग्रेस कमीटीके मन्त्री बाबू प्रभुनाथसिंहको आफिस-की ओरसे एक परिचयपत्र लिख दिया गया। रातके वक्त मै एकमा स्टेशनपर उतरा। उस वक्त आश्रममे जाकर लोगोको उठाना अच्छा न समझ पत्रको तो मैंने आदमीके हाथ वहाँ भेज दिया, और खुद सीधे परसा मठ गया।

भादोकी कृष्ण जन्माष्टमी नजदीक थी, इसलिए तब तक परसासे बाहर जानेका सवाल ही नही था। मठमे ठहरना छोड कोई दिलचस्पी न थी। मालूम हुआ, वरद-राज कुछ मास पहिले यहाँ थे, उस वक्त उन्होने आन्दोलनमे कुछ काम किया था। परसाके कुछ नौजवान सेवासमितिमे शामिल हुए थे, और आदिम महीनोमे उन्होने

लालटेन हाथमें ले पहरा देनेका भी काम किया था, किन्तु अब वह उत्साह मन्द हो चुका था। छै ही महीने पहिले गुजरी बाते युगबीतीसी मालूम होती थी। बारातके लौट जानेके बाद जैसा अवसाद मालूम होता है, वैसा ही उस वक्त मालूम हो रहा था, किन्तु अभी भी चेतना बिल्कुल खतम नही हुई थी। स्वराज और गाधी बाबाकी चारो ओर धूम थी। परसाका एक तरुण बड़े उत्साहके साथ कह रहा था—गाँजा-शराव-वलिदान-लोग छोड नही रहे थे। मैंने एक दिन देवता आनेका नाट्य किया, देवताने मेरे शिरपर आकर घोषित किया—"हम सभी देवता गांधी बाबाके साथ है, न हमे वलि चाहिए, न गाँजा, न शराब, गाधी बाबाके हुक्मके खिलाफ जो इन चीजों-को चढावेगा, उसका हम नाश कर देगे।" और इसका बहुत अच्छा असर हुआ।

जन्माष्टमीके दूसरे या तीसरे दिन परसामे बाबूलालके नये बने गोलेमे गाँववालों-की सभा हुई। थानाके तरुण कार्यकर्त्ता भी आये, और रामउदार बाबाके (मेरे) सभापतित्वमे व्याख्यान हुआ। परसावालोको 'पुजारीजी'का व्याख्यान यह पहिले पहिल सुननेको मिला। महन्तके प्रमुख शिष्य होनेके कारण परसामे मेरी धाक थी। भाषण सुनकर थानाके तरुण कार्यकर्त्ताओपर भी प्रभाव पडा। उन्होने एकमामे ही रहनेका आग्रह किया। यह अभी नीचेसे ही काम करनेके ढंगमे शामिल था, इसलिए मैंने इन्कार नही किया। एकमामे उस वक्त शराब-गाँजेकी दूकानपर धरना चल रहा था। कुछ निर्लज्ज ही लोग दूकानपर खरीदने जाते थे। ठीकेदार शराबको पीनेवालोके पास पहुँचानेकी कोशिश करता था।

एकमामे स्कूल छोडकर आये तरुणोकी एक अच्छी जमातके साथ मुझे काम करनेका मौका मिला। प्रभुनाथ और लक्ष्मीनारायण मैट्रिकसे असहयोग करके आये थे। गिरीश अपने स्कूलके तेज विद्यार्थी थे, और मैट्रिक पास कर उन्होंने स्कल छोड़ा था। फुलनदेवने कालेजके प्रथम वर्षसे पढाई छोडी थी। हरिहर, रामबहादुर, और वासुदेव भी हाई स्कूलसे निकल आये थे। साठ-सत्तर हज़ार आबादीके थानेके लिए ऐसे आधे दर्जनसे अधिक तरुण कार्यकर्त्ताओंका मिलना सौभाग्यकी बात थी। पढाई छोडकर आये विद्यार्थियोके अतिरिक्त पडित नगनारायण तिवारी (रसूलपुर), पडित ऋषिदेव ओझा (हूसेपुर), रामनरेशसिंह (अतरसन) उस समय अपने सारे समयको राजनीतिक कार्यमे लगाते थे। अभी साथियोंसे परिचय प्राप्त करने तथा दो-चार सभाओमे—जिनमे अतरसनकी सभा भी थी—बोलने हीका मौका मिला था, कि एक गाँवकी सभामे भरतजी आये। जिलेके नेताओंमे प्रोग्राम तोडनेमे वह भी काफी ख्याति पा चुके थे; इसलिए उनके आ जानेसे कार्यकर्त्ताओंको सन्तोष हुआ।

वे पकड़कर मुझे छपरा ले गये। शराबकी दूकानोंपर धरना दिया जा रहा था, मैं भी एक दूकानपर जा खड़ा हुआ, एक शराबी मेरे अनुनय-विनयकी कोई पर्वाह न कर भीतर चला गया। उसके दूसरे दिन बाढ़में वह घर गिर गया, लोगोंने अफ़वा उड़ाई, साधु-महात्माको धक्का देकर जानेका यही फल होता है।

भरतमिश्रने सोनपुरमें सभाका प्रोग्राम दिया था, अपने वह जाना नहीं चाहते थे, इसलिए कामका बहाना बना मुझे वहाँ भेजा, शायद इसीलिए वह मुझे पकड़ भी लाये थे।

शामको थानेके एक गाँव. . .में महीके रेलके पुलके पास छोटीसी सभा हुई। दूसरे दिनकी सभाके लिए मैं स्वराज्य-आश्रममें प्रतीक्षा कर रहा था—स्वराज्य-आश्रम इसी जगह उस समय भी था, किन्तु उसका मुँह सड़ककी ओर न था। सवेरे आठ या नौ बजे किसीने आकर कहा—भारी बाढ़ आ गई है, छपरा तो डूबना चाहता है। ऐसे वक्तमें चुस्त सेवकोंकी कितनी अवश्यकता होती है, इसे मैं जानता था। साथियोंसे इजाज़त ले मैं तुरन्त छपराकी ओर रवाना हुआ।

## २

## बाढ़पीड़ितोंकी सेवा (सितम्बर १९२१ ई०)

लोग प्लेटफार्म और रेलवे सड़कपर थोड़ा-बहुत सामान लिये बैठे थे। कचहरी स्टेशनसे भगवानबाज़ार (छपरा) स्टेशन तक रेलवे सड़ककी एक ओर पानी ऊपर तक पहुँच चुका था, कुछ अंगुल और बढ़नेपर वह सड़ककी दूसरी तरफ गिरने लगता, और फिर छपरा शहरके लिए कोई आशा न रह जाती। भगवान्बाज़ार स्टेशनपर भी घरसे भागकर आये नर-नारियोंकी भीड़ थी। मैंने बाढ़की भीषणताका कुछ नज़ारा तो देख लिया, अब सहायता कैसे की जावे, इसकी जानकारीके लिए कांग्रेस आफिसका रास्ता लिया। स्टेशनसे भगवान्बाज़ारवाली सड़क पकड़, जेलखाना, ज़िलास्कूल, इलियट तालाब, म्युनिस्पेल्टी होता आफिसमें पहुँचा। छपराकी सड़कोंने छोटी-मोटी नदियोंका रूप धारण किया था। जेलके आस-पास तो मुझे कमर भर पानीसे चलना पड़ा। कच्ची दीवारोंवाले मकान गिर गये थे। पक्की दीवारोंके मकानोंमें भी पानी घुस गया था, और लोग भाग गये थे। जनशून्य महल्लोंकी निस्त-

ब्धता डरावनीसी मालूम होती थी। मकानोंकी खपडैलोंपर एकाध बिल्लियाँ और कही-कही भूखे कुत्तोका करुण क्रन्दन हो रहा था।

आफिसमे उस वक्त एक या दो आदमी थे। शामको बराडेके बाहर सीढ़ियोपर हमारी नजर थी। दो सीढियाँ डूब चुकी थी, चाँदनी रातमे हम धडकते दिलसे तीसरी-की ओर शनै शनै. पानीको बढते देख रहे थे। पानीका जब बढना रुक गया तो हमारी जानमे जान आई।

मै अभी बिल्कुल अपरिचितसा आदमी था, इसलिए उस वक्त पीड़ितोकी सहायताके लिए क्या विशेष प्रबन्ध करता, तो भी चुप बैठना मेरे बसकी बात न थी। काग्रेस-वालोको कुछ नावें मिल गई थी। हमे मालूम हुआ, कचहरी-स्टेशनके पच्छिमके कितने ही गाँव डूब रहे है। एक नाव ले मै उधर रवाना हुआ। एक गाँवसे जानेपर मालूम हुआ, लोग पोखरेके भिडेपर पशुप्राणी लेकर चले आये है, और अभी उन्हे खतरा नही। दूसरे कुछ गाँवोके आदमियोको ढो-ढोकर हम रेलवे लाईनपर पहुँचाने लगे। एक आदमीको गाँवके लोगोको निकाल लानेके लिए एक नाव सुपुर्द कर दी थी। उसने उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझ ली, और घरके आदमियो और पेटी सन्दूकको ढोनेके बाद अब वह भुस ढोने लगा था। गाँवके कितने स्त्री-बच्चे-बूढे अपनी खपडैलोपर भयभीत बैठे है, छतके नीचे तीन-तीन चार-चार हाथ पानी है, और अभी वह बढ रहा है। दीवार किसी वक्त भी बैठ जानेवाली है, और उस रातको डूबनेसे बचनेकी बहुत कमको आशा है, ऐसी भीषण अवस्थामे एक आदमी जान बचानेके लिए मिली नावसे अपना भुस ढो रहा है !! मुझे बडा गुस्सा आया, और जैसे ही स्टेशनसे आती नावको देखा, अपनी नाव ले जा उसपर कूद पड़ा। उस हृदयहीन आद-मीको बुरा-भला कह उससे नाव छीनी। दूसरे साथीके जिम्मे पहिली नाव लगाई। काम कामको सिखलाता है, चार-पाँच घटे मेरे साथ काम करते साथीको भी ढग मालूम हो गया, आखिर मैं भी तो यही काम और उसके तजर्बेको सीख रहा था। गाँवमे पहुँच-कर मैंने लोगोको नावपर चढनेके लिए कहा। जितने लोग आ सकते थे उतने बैठे। एक स्त्रीको लोग आनेके लिए कह रहे थे, किन्तु वह छतपरसे कहती थी—घरके भीतरसे सन्दूक बिना लिये मैं नावमे नही चढनेकी। छतोपर बैठे लोगोकी जान अभी भी खतरेमे थी, रेलवे लाइनपर उतारकर उन्हे लेनेके लिए हमे फिर आना था, और यह औरत छाती भर पानीमे जा घरके भीतरसे सन्दूक लानेके लिए कह रही थी। यदि कही इसी बीचमे दीवार भसक गई, तो सन्दूक लानेवाला भी भीतर ही रह जायेगा, इसकी भी उसे पर्वाह नही। लेकिन क्या करते ? उसका देवर या जेठ कन्धे

भर पानीमें घुसकर गया। सन्दूक लाकर नावमे रखी गई, तब हम रवाना हुए।

बाढ़की खबर सुनकर दीहातसे कार्यकर्त्ता आने लगे। एकमाकी तो सारी जमात पहुँच गई। सहायताके लिए सत्तू, चना, चूरा, चावल आदि चारो ओरसे आने लगा। कितनी जगहसे लोग पूड़ी भी भेजते थे। इलियट तालाबके पास रेलवे लाइनकी बगलमे काग्रेस-सहायता-केम्प खुला, जो कि छपरा क्या बिहारके इतिहासमे अपनी तरहका पहिला प्रयत्न था। कार्यकर्त्ता जरूरतसे अधिक थे, किन्तु उनका कोई सगठन नही, गैरजिम्मेवार लोगोंकी सख्या अधिक थी। मौलवी सालेह, सर्वश्री मथुराप्रसाद, नारायणप्रसाद, हरिनन्दन सहाय, गोरखनाथ, जलेश्वरप्रसाद, विन्ध्येश्वरीप्रसाद आदि जिलेके प्रधान कार्यकर्त्ता मौजूद थे, और इनमे जो वहाँ मौजूद थे, वह काममे डटे हुए थे। मै रात-दिन नाव लेकर दौड-धूपमे लगा था। शायद दूसरे दिनकी बात है, आधीरातको मालूम हुआ मसरख लाइनके बगलके एक गॉवमे लोग दरख्तोपर भूखे बैठे है। मै एकमाके अपने एक या दो साथियो (जिनमे रामबहादुरलाल भी थे)के साथ कुछ सत्तू-भूँजा, चावल ले रवाना हुआ। कमता 'सखीजी' एक और साधुके साथ दो वृक्षोंपर रखे बाँसोके ठाटपर बैठी थी। सत्तू-भूँजा लेनेके लिए कहनेपर उन्होने अपने साथी साधुको पूछकर दे देनेके लिए कहा। मसरखवाली रेलवे लाइन टूट चुकी थी। पानीके गिरनेकी आवाज़ दाहिनी ओर जोरसे सुनाई दे रही थी। नजदीकसे जानेपर नावके उधर खिंच जानेका डर था, किन्तु हम एक दूसरी ही नशामे थे। सावधानी रखते थे, किन्तु मृत्युसे भयभीत होकर नही। उस गॉवमे पहुँचे। लोग रेलवे लाईनपर गुमटीके नजदीक पडे थे। दो-चार प्रतिष्ठित आदमियोको बुलवाया, और उनके समर्थनके अनुसार खाने-पीनेकी चीजे बाँटी।

वही मालूम हुआ, सडककी दूसरी ओरका गॉव सडकके टूटनेसे खतरेमे पड गया है। लेकिन नाव तो हमारी इस पार थी? उन लोगोने केलेके स्तम्भोंका ठाट बनाया था। एक पथप्रदर्शक ले मै उसीपर बैठ गया। गाँव कुछ ऊँचेपर था, और लोगोने पानीके भीतर घुसनेके रास्तोपर मिट्टी डाल रखी थी। पानीके लिए आगेका रास्ता रुका हुआ था, इसलिए तुरन्त कोई उतना खतरा नही था। किसीको खानेकी जरूरत हो तो, आओ—कहकर कुछ आदमियोको लिये मै फिर नावकी जगह पहुँचा। उस दिन रातके तीन बजेसे बाद कचहरी स्टेशनसे पश्चिम एक ताडके दरख्तमे नावको बाँधकर हम सोये।

कामके वक्त सुस्ती मुझे असह्य मालूम होती है। अनिच्छावश भी मै ऐसे वक्त आगे आ जाता हूँ, और हो सकता है, ऐसे समय मेरे साथियोको गलतफहमी हो जावे।

इस वाढसहायता कालमे भी ऐसे मौके आये, किन्तु मुझे खुशी रही कि किसी साथीको गलतफहमी नही हुई। कचहरी स्टेशनके पास चार-पाँच हाथ पानीके वाद एक नाव खडी थी। सभी वावू लोग कह रहे थे—नाव आनी चाहिए; किन्तु नाव तो मानव-भाषाभिज्ञ प्राणी नही है। मै कपडोकी विना पर्वाह किये कूद पड़ा। नाव पकड लाया। वावू लोग शर्मिन्दा हुए, एकने साधुवाद दिया।

आफिसमें काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओमे कौडियाके एक तरुण कायस्थकी मुस्तैदी-का मुझपर वड़ा प्रभाव पडा था। यदि वैसे आधे दर्जन भी लोग होते, तो कितना सुव्यवस्थित रूपसे काम चलता। वह सर्कारी कचहरीकी कोई नौकरी छोड़कर आये थे। पीछे वी० एन० डब्ल्यु० आर०मे गार्ड हो गये थे। उनसे कभी-कभी फिर मिलने-का मौका मिला, और उस वक्त ख्याल आता—कभी फिर उसी तरह तन्मय हो हमें साथ काम करनेका मौका मिलता।

वाढका पानी वढना रुक गया, रेलवे लाइनके टूटनेसे पानी भी कम होने लगा, इस प्रकार डूवनेका खतरा जाता रहा, किन्तु लोगोंके कष्टोकी कमी नही हुई थी। शहरमें गोलेदारोंके गल्ले वोरोंमे ही सड गये थे। भगवानवाजारके मालगोदामके पाससे गुजरनेमें नाक फटती थी, सडे हुए अनाजसे सख्त वदवू निकल रही थी। सिवाय मसरखके सभी लाइने चल रही थी, इसलिए वाहरसे खाने-पीनेका सामान आ रहा था। शहरमे काम करनेवालोकी कमी न थी, इसलिए मैने गाँवोकी सहायताका भार अपने जिम्मे लिया। लोगोने भूगोल पढे थे, नकशे देखे थे, किन्तु उससे फ़ायदा उठाने-की वात अभी नही सीखी थी। एक रात जव मै नकशा उतार रहा था, तो कितने साथी उसे फजूलकी सनक समझते थे। गाँवोमे चावल-दाल, सत्तू-भूजा, चनाके अतिरिक्त मिट्टीका तेल, नमक भी वाँटना पडता था। कितने लोग जरूरत होनेपर भी लज्जावश मुफ्त लेना स्वीकार नही करते थे।

इस वाढका असर एकमा, सिसवन, और रघुनाथपुर थानोंके कुछ भागोंपर भी पड़ा था। वहाँकी खडी फसल मारी गई थी, और काम न मिलनेसे गरीवोंकी हालत खराव थी। छपरामें और कार्यकर्त्ताओके आ जानेपर मै एकमा चला आया। इधरके थानोमें वाँटनेके लिए दो-एक वोरा लाई-भूँजा ले रातको हम एकमा उतरे। आदतवश साथी कुलीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैने वडी वेतकल्लुफीसे लाईका वोरा शिरपर रखा। प्रभुनाथने कहा—वावा ठीक साम्यवादी है। किन्तु, दिनमें इस वेतकल्लुफीसे 'वावा' वोरेको शिरपर नही रख सकते थे, यह मै जानता था। किसी काममे सैनिक स्प्रिटके साथ काम करनेमें मजा आता है। एकमाके सभी साथी मेरा आदर ही नही

करते थे, बल्कि साथ काम करनेके लिए तैयार थे। सिसवन थानेमे पीडित-सहायता-की ज्यादा आवश्यकता थी, इसलिए मैंने गिरीशको वहाँ जानेके लिए कहा। उसी सिलसिलेमे वासुदेवसिंहने रघुनाथपुर थानेमे जाना स्वीकार किया। एकमाके लिए प्रभुनाथ, लक्ष्मीनारायण तथा दूसरे सभी कार्यकर्त्ता मौजूद थे। मैंने खुद नाव पर खाने-पीनेकी चीजे रख बहुतसे गाँवोका दौरा किया।

पहिली सहायताका काम समाप्त हुआ। देशके नेताओंकी अपीलपर प्रान्त और मुल्ककी जनताने अन्न और पैसेसे खूब सहायता की, और अब रब्बीकी फसलके लिए बीज, मलेरियाके औषध, और भूखोके लिए अन्न-वस्त्रकी जरूरत थी; तो भी अब उस काममे घटो और मिनटोकी जल्दी न थी।

कातिकके महीनेमे उधारपर देनेके लिए बीज एकमा भी आया। मलेरियाका जोर बढा, और मलेरिया मिक्सचरकी दर्जनों बोतले हम बाँटते थे। जाडेके लिए मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीकी ओरसे कम्बल-कपडे ले एक गढवाली तरुण जोशी आये। लोगोका कष्ट फागुन तकके लिये है, और सब घरोमे हम सहायता नही पहुँचा सकते, इसलिए मैंने सोचा, इस वक्त चर्खे और कर्घे सहायक हो सकते है। हमारे एकमाके गाधी-स्कूलमे कर्घा था, किन्तु अब वह ४×४ हाथ जमीन घेरनेके लिए रह गया था। मैंने सोचा, यदि चर्खे बाँटकर लोगोसे सूत कतवाया जावे, और साथ ही जुलाहोंको दे कपडा बुनवाया जाये तो लोगोको ज्यादा सहायता मिल सकती है। गिरीशने मेरे लिखनेपर चार सौ टकुए बनवाकर चैनपुरसे भेजे। बढईको चर्खा बनाने-का काम दे दिया। रामपुर (बिन्दालालके)मे एक पुरानी हवेलीमे पुरानी साखूकी लकडियाँ देख मैंने दस-बारह रुपयेमे सौ करघोके बनाने भरकी लकडियाँ खरीदकर परसा पहुँचवाई, उनमेसे कुछ तो बढईको जमीनपर बैठकर चलानेवाले फ्लाई-शटल कर्घा बनानेको दे दिया, और कुछ पुराने भट्ठीवानके घरमे अमानत छोड दिया। सैकडो चर्खे बने, और बाँटे गये, तीसियो कर्घे बने और उनमेंसे भी कितने ही बाँटे गये। कुछ रुपये लगाकर एक खद्दर डिपो खोला, जिसके इन्चार्ज फूलनदेव बने। कुछ सूत आया, उसका कुछ कपडा भी बना। आचार्य प्रफुल्लचन्द्ररायकी लिखी 'रग' पुस्तकसे मैंने कुछ रंगोका भी तजर्बा किया। किन्तु डिपोमे आये कपडेकी बिक्री बहुत कम होती। फिर नये चर्खो और कर्घोको बाँटनेसे फायदा? कर्घे, चर्खे और सैकडो टकुये वैसे ही पडे रहे। अमानत पडी लकडीको परसाके भट्ठीवालेने अपनी सम्पत्ति समझ ली। खद्दर-अर्थशास्त्र यही समाप्त हो गया।

सहायताके लिए मिली चीजोंमेसे कुछका दुरुपयोग भी हुआ, और कार्यकर्त्ताओं-

मेंसे कुछका ईमान डिग गया, किन्तु ऐसोकी सख्या बहुत कम थी और दुरुपयुक्त सामग्रीका परिमाण भी बहुत कम था, तो भी जनतापर इसका बुरा प्रभाव पड़ा, और उनसे भी ज्यादा बुरा असर पडा लगनवाले ईमानदार कार्यकर्त्ताओंपर। ऐसा विचारते वक़्त अक्सर हम भूल जाते है, कि हम जिस पूँजीवादी व्यवस्थामे जी रहे है, उसकी बुनियाद ही अपहरण और बेईमानीपर है, जब तक मूलका उच्छेद नही होगा, तब तक इन त्रुटियोके लिए हमे तैयार रहना चाहिए। मेरे जिम्मेवार साथियोमे सबने अपने कर्तव्यको बडी तत्परता और ईमानदारीके साथ निबाहा।

## ३

## सत्याग्रहकी तैयारी (१९२१ ई०)

जलियाँवाला बाग और मार्शल-लाके अत्याचारोको सुनकर सारे भारतमें रोषका तूफान फूट निकला। जलियाँवाला बागकी महती सभा और ६ अप्रेल १९१९के प्रदर्शनने बतला दिया, कि देश महायुद्धके बाद कहाँ चला गया है। आत्मग्लानि और प्रतिशोधकी भावना देशमे इतनी उग्र हो गई थी, कि यदि कोई विश्वासपात्र नेता आगे बढता, तो जनता उसका साथ देनेके लिए तैयार थी। दक्षिण-अफ्रीकाके अन्दोलनके बारेमे सुनकर गाधीजीको भारतकी शिक्षित जनता जानती थी। चम्पारन और खेडाके आन्दोलनोने उन्हे भारतकी साधारण जनतामे प्रसिद्धि और सर्वप्रियता प्रदान की। रोलट-एक्टके विरोधको लेकर गाधीजीका आगे आना ठीक समयपर हुआ। जनता—'विशेषकर किसान और निम्नमध्यम शिक्षित जनता—को अपनी ओर आकर्षित करनेका तरीका गाधीजी अपने समयके सभी भारतीय नेताओंसे—तिलकको लेते हुए—अधिक जानते थे। इस प्रकार भारतव्यापी आन्दोलनका नेतृत्व करनेके लिए उन्होंने अपनेको योग्य साबित कर दिया। अमृतसर (१९२०), कलकत्ता (१९२१), नागपुर (१९२१) काग्रेसोमे गाधीका सितारा ऊँचेसे ऊँचा उठता ही गया, और विदेशी सर्कारके साथ सघर्ष लेनेमे उन्हीको आगे बढ़े देख जनताने असहयोग और सत्याग्रहका स्वागत किया। छै महीनेके भीतर तिलकस्वराजफडके लिए एक करोडकी भारी रकम जमा कर देना, भारतीय जनताके लिए पहिली बात थी।

'सालभरमे स्वराज'की बातपर विश्वास तो जादू-मन्तरपर विश्वास रखनेवाली अशिक्षित ग्रामीण जनताके लिए कोई मुश्किल न था; किन्तु मुझे तो आश्चर्य आता था उन शिक्षितोकी अकलपर, जिनमेंसे जेलमे पडे कितने ही ३१ दिसम्बर १९२१की आधीरातको स्वराज सर्कार द्वारा जेलके फाटकके खुल जानेकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

जुलाई (१९२१)मे जब मैं बिहारमे आया, तो उस वक्त जोश ढीला पडने लगा था, किन्तु यह सिर्फ इसी अर्थमे कि लोगोंने अतिरिक्त प्रोग्रामो—रातको पहरा देना, हुक्का-तम्बाकू-मछली-मास छोड देना, पचायत द्वारा मुकदमोका फैसला कराना, मुठिया (प्रतिदिन मुट्ठीभर अन्न) निकालना, आदि—को भूलना शुरू किया था।

एकमामे सौभाग्यसे मुझे बहुत अच्छे साथी मिले। मुझे जीवनके वे दिन बडे मधुर मालूम होते है, जब कि प्रभुनाथ, गिरीश, लक्ष्मीनारायण, हरिहर, मधुसूदन, रामबहादुर, छबीला, वासुदेव जैसे एक दर्जन शिक्षित तरुण कष्टो और कठिनाइयोकी बिल्कुल पर्वाह न कर चौबीसो घटे राष्ट्रीय कामके लिए दे रहे थे। हमने एकमा थानेके कोने-कोनेको छान डाला था। ज़िलेके और स्थानोमे आन्दोलन शिथिलसा पड गया था, मुठिया बन्द हो गई थी, किन्तु एकमामे जागृति थी। यहाँ मुठिया निकालनेमे लोगोको उज्र न था (उज्र तो शायद कही नही होता)—और हम उसीको जमा करा स्वराज-आश्रम एकमाका खर्च चलाते। एकमामे एक गाधी विद्यालय खोला गया था। कर्घा और चर्खे भी रखे गये थे। पढानेमे रामउदारराय, रामवहादुर और हममेसे भी जो समय पाता, पढाते। विद्यालयके लिए हम इतने ही पर सन्तोष कर सकते थे, कि विद्यार्थियोका समय बर्बाद नही होने पाता था। विद्यालयमे रामदास गौडकी हिन्दी पुस्तके पढ़ाई जाती थी, जो कि उस समय की सर्कारी पाठ्य-पुस्तकोसे कही अच्छी थी। अग्रेजी पढनेके लिए लडकोंको पहिले दूर जाना पडता था, किन्तु यहाँ हमारे विद्यालयमे उसका भी प्रबन्ध था। रामदास गौडकी पुस्तको और खलीलदासके भजन "भारत जननि तेरी जय तेरी जय हो"के अतिरिक्त और पाठ्य-विषयोमे दूसरे सरकारी स्कूलोंसे कोई अन्तर नही था, तो भी हम 'बागियो'के स्कूलमे पढते है, इसका असर लड़कोपर होना ज़रूरी था। एक बार हमारे विद्यालयके दो छोटे-छोटे लडके रामचन्द्र और मगल अपने गाँव (एकमा)मे झुडके साथ 'गाधी महात्माकी जय', 'भारतमाताकी जय' आदि नारोके साथ जलूस निकालकर ६से १२ वर्षके लडकोकी सभा कर रहे थे। सभापति रामचन्द्र वने और मगलने व्याख्यान देना शुरू किया। सामने पन्द्रह-बीसकी 'जनता' बैठी थी। अभी व्याख्यान शुरू ही हुआ था, कि रामचन्द्रकी माँकी नजर उधर गई। वह सुन चुकी थी, पुलीस इसके लिए

धर-पकड करती है। दौड़कर आई, और मुँहसे बात निकालनेके पहिले ही सभापति रामचन्द्रकी पीठपर दो-तीन थप्पड़ लगे। सभा तितर-बितर हो गई। बच्चों तक में इस तरहके जोश लानेमे गाधीविद्यालय जैसे विद्यालयोंका हाथ कम न था।

मुझे एक दिनकी बात याद है। हम लोग शायद अतरसनकी सभासे रातको लौट रहे थे। खेतमे हरे-हरे धान खड़े थे। चाँदनी रातके निरभ्र आकाशमें बिखरे तारे और क्षितिजपर कजली पुतेसे वृक्ष-बगीचे दिखाई पड़ रहे थे। हमें जल्दी नहीं थी, इसलिए एक अकेले पीपलके पास बैठे या खड़े हमारे वार्तालापका रुख भूतोकी ओर चला गया। साथ कौन-कौन थे, सो तो याद नही किन्तु गिरीश जरूर थे। आर्य-समाजके प्रभावके कारण भूतप्रेतसे मेरा विश्वास उठ गया था, किन्तु भूतोंकी कथाओंको कहने-सुननेमे मुझे बडा मजा आता था। कथा मैंने शुरू की, किन्तु गिरीशने अपनी कथा द्वारा मुझे भी मात कर दिया। उन्होने राकस (राक्षस), ब्रह्मपिशाच, जिन्न, हुँडकसवा (गर्भगिरा), चुडैल, बूडा (पानीमे डूबकर मरा), तेलिया-मसान, सैयद, दैत (दैत्य) आदि कितनी ही भूतोकी किस्मे गिनाई, फिर उनमेंसे कुछकी कथा भी कही। बहुत रात गये हम एकमा पहुँचे। एक ऐसी ही रात्रि-यात्रा बलिया (चैनपूरके रास्तेमे)से एकमाके लिए हुई थी। सभा समाप्त कर भोजन करते-करते काफ़ी देर हो गई थी, किन्तु अगले दिनके प्रोग्रामके ख्यालसे हम रातको वहाँ रह न सकते थे। उस दिन कथा तो नही हुई, किन्तु मुझे तो मालूम होता था, सोता हुआ चल रहा हूँ।

बाढके बाद मेरे साथियोंने एकमाके अतिरिक्त रघुनाथपुर, सिसवन थानोंका भी काम सँभाला था, तथा एकमाके पासवाले मांझी थानेके गांवमे काम करना भी हमने अपने ऊपर लिया था। वस्तुत मेरी दृष्टि तो सारे जिलेपर थी, किन्तु संगठन टूट चुके थे। तजर्बेसे मुझे यही समझमे आता था, कि एक शिक्षित चतुर तरुण जिस थानेमे चौबीस घटे काम करनेको नही मिलेगा वहां काम स्थायी नही हो सकेगा। इसी ख्यालसे गिरीश और वासुदेवको मैंने दो थानोंमे भेजा था। एक थानासे दूसरे थानेके गांवोमे पैदल पहुँचना मुश्किल था इसलिए एक एक्का-घोड़ा रखना पड़ा। कितनी ही बार मेरे साथ पडित नगनारायण तिवारी भी रहते। वह हमारी थाना कांग्रेस कमीटीके सभापति ही नही थे, बल्कि अच्छे वक्ता, गायक और जनभाषाके कवि थे। मैंने छपरामे पहुँचते ही नियम कर लिया था, कि छपराकी भाषा (मल्ली या भोजपुरी)मे ही भाषण दूंगा। इसका असर मेरे साथियोंपर भी पड़ा था। पडित नगनारायणकी आवाज़ भी बहुत तेज थी, और बोलनेका ढंग भी अच्छा। कुछ वर्षों पहिले उनकी आँखे जाती रही थी किन्तु वे किसी आँखवाले कमीसे काम करनेमे कम

न थे। भोजपुरी (मल्ली)भाषाकी बहुतसी गीते उन्होने बनाई थी, जिनमे कुछ स्त्रियोकी भी थी इन्हे वे सभाओमे गाया करते। दिनमे दो सभाएँ—शाम और रातको होती, कभी-कभी तीन भी। हम लोग सिसवन थानेमे होते रघुनाथपुर निकल गये थे। इसी थानेके ब्राह्मणोके एक गाँवमे कार्तिक वदी छठकी रातको हम ठहरे थे। रातको छठ-पूजाके लिए स्त्रियाँ पोखरेपर जमा हुई थी। नगनारायणजी ऐसे मौकेको क्यो खाली जाने देते ? उन्होने अपनी गीतो द्वारा विदेशी माल और शासनके वहिष्कारकी बाते समझाई। रातमे अक्सर स्त्रियोकी पर्दा सभाये होती थी। छपराकी भाषामे बोलनेके कारण मेरे शब्दको तो समझ जाती होगी, किन्तु वे इसे किस लोककी बात समझती होंगी, जब मै कहता—'तुम्हे राज-काज चलाना होगा। मर्दोंके जूते खाना छोड, अपने बराबर हकके लिए लडना होगा। तुमको जज और मजिस्ट्रेट बनना होगा।' मेरे व्याख्यानमे चर्खा-कर्घा-प्रचार मादक-द्रव्य-निषेधका अंश बहुत कम रहता। मै तो विदेशी शासनके शोषण-अत्याचार, और देशके लिए सगठन और कुर्बानीपर ज्यादा जोर देता।

बाढके बाद जिलाके अन्य नेताओने मुझे भी अपनी बिरादरीमे शामिल कर लिया, और तीन-चार थानोके सगठनका काम मैने अपने जिम्मे लिया। गाधीजीने सत्याग्रहकी तैयारी शुरू की थी। बिहार प्रान्तमे स्वयसेवक-बोर्ड बना था, और सत्याग्रही स्वयसेवकोकी भरतीका आदेश मिला था। हमने तै किया एकमा, सिसवन, रघुनाथपुरमे चार-चार सौ वर्दीधारी स्वयसेवक तैयार होने चाहिए। एकमामे तो हम सभी थे। सिसवनमे गिरीशने तैयारी की। बाढकी सेवाओ, तथा अपनी कार्य-क्षमताके कारण गिरीशका वहाँ बहुत प्रभाव था। आश्रम (हेड-क्वार्टर) उन्होने चैनपुरमे रखा था। थाने भरके वर्दीधारी स्वयसेवको और जनताकी एक वडी सभा बुलाई गई, जिसमे मेरे अतिरिक्त जिलाके भी कितने ही नेता आये। पहिला मौका था, इसलिए मनका शकित होना स्वाभाविक था, किन्तु जब हमने खद्दरकी जाँघिया, खद्दरके कुर्ते, गाधीटोपी, झोले और लाठीके साथ चार सौसे अधिक स्वयसेवकोको पाँतीसे खडे देखा, तो प्रसन्नताका ठिकाना नही रहा। कई हजारकी जनतामे विना लौड-स्पीकरके बोलना असम्भव होता, यदि लोग स्वय शान्त रह सुननेके लिए तैयार न होते। शायद वर्दीका रग पीले रामरजका था।

मुरारपट्टीके बागमे रघुनाथपुरकी वडी सभा और चार सौ स्वयसेवकोका जत्था जमा हुआ था।—वासुदेव भी काममे सफल सावित हुए, और मेरी खुशीके लिए इतना ही कहना काफी होगा कि जिन्दगी भरमे सिर्फ इसी सभामे मैने भावावेशमे आ स्वरके

उतार-चढ़ावके साथ जोशीला व्याख्यान दिया था। मुझे छपराकी भाषामें बोलते देख, बाबू मथुराप्रसादने भी कोशिश की, किन्तु बीच-बीचमें उर्दूके शब्दोंको डालनेसे वह बाज न आ सके। चार सौसे अधिक रंगीन वर्दीधारी स्वयंसेवकोंको देखकर इन थानोंकी ओर ज़िलेके नेताओंका ध्यान विशेष तौरसे आकर्षित होना ज़रूरी था।

एकमाका स्वयंसेवक सम्मेलन और भी ज़बर्दस्त रहा। एकमामें आकर मिलने-वाली चार सड़कोंसे गाँव-गाँवके जलूस आये। फिर एक विराट् जुलूसकी शकलमें तीस-पच्चीस हाथियों सैकड़ों-हज़ारों झंडों-पताकोंके साथ वह पाँचवीं सड़कसे माधव-पुरको गया। एक विशाल जनप्रवाह हज़ारों पैरोंसे चलता, हज़ारों कंठोंसे गगनभेदी नारे लगाता जनशक्तिका परिचय दे रहा था। निर्दिष्ट स्थानपर बीस हज़ार मुंड एकत्रित दिखलाई पड़ रहे थे। जलेश्वर बाबू ज़िलेसे खास तौरसे व्याख्यान देने आये थे। उन्होंने थानेके कार्यकर्त्ताओं और जनताके उत्साहकी सराहना की। चारसौसे अधिक वर्दीधारी स्वयंसेवकोंको उन्होंने शायद पहिलेपहिल देखा था, इसलिए उनपर उसका खास प्रभाव पड़ा, किन्तु मैंने सिसवन और रघुनाथपुरके रंगीन वर्दीवाले स्वयं-सेवकोंको देखा था, इसलिए गिरीश और वासुदेवकी स्वयंसेवक-सेनासे अपनी सफ़ेद वर्दीवाली यह सेना कुछ कम जँची, तो भी और बातोंमें एकमा बढ़ा-चढ़ा था।

स्वयंसेवकदलको सर्कारने क्रिमिनल-ला-सुधार कानून द्वारा गैरकानूनी करार दे दिया। उसकी अवहेलनामें ज़िला कमीटीकी बैठकके वक्त छपरामें रामलीलाकी मठिया (जलखानेके पास)में एक सभा हुई, ज़िलाके प्रमुख कर्मियोंने स्वयंसेवकोंमें अपना नाम लिखाना शुरू किया, और पुलीसने गिरफ्तारी शुरू की। भरतमिश्र गिरफ्तार हुए बा० माधवसिंह वकील, और कितने ही और नेता तथा कार्यकर्त्ता गिरिफ्तार हुए किन्तु छपराके तत्कालीन कलक्टर मिस्टर लुइस होशियार आदमी थे, उन्होंने मुज़फ्फरपुरके कलेक्टरकी भाँति सैकड़ोंको पकड़कर जेलमें भेजना पसन्द नहीं किया। आठ-दस आदमियोंकी गिरिफ्तारीके बाद स्वयंसेवक घोषित करनेवालोंका नामभर पुलीस नोट करने लगी। घोषित करनेवालोंमें मैं और बाबू नारायणप्रसाद भी थे।

दिसम्बर (१९२१)में ज़िलेके कितने ही प्रतिनिधि अहमदाबाद-कांग्रेसमें गये। मैंने गिरिफ्तारीसे पहिले ज़िलेमें घूमकर जागृति पैदा करनेमें अपना समय देना पसन्द किया—आखिर मेरे लिए अहमदाबाद और दूसरे शहर कोई आकर्षण नहीं रखते थे कांग्रेस देखनेके और भी अवसर आनेवाले थे। अपना एक्का-टमटम ले मैं एकमासे निकला। पचरुखीमें उस वक्त चीनीकी मिल नहीं बनी थी, बाज़ारमें भाषण दिया। सीवान, मीरगंजमें व्याख्यान देते हथुआ पहुँचा। वहाँ कालेज छोड़कर आये एक

तरुण—जगतनारायण—बडी लगनसे काम कर रहे थे। भोरे थानामे भी स्कूल-त्यागी एक ब्राह्मण तरुण काम करता था, इसलिए वहाँ भी छोटे-मोटे कार्यकर्त्ताओको लेकर वह थानेकी जागृतिको सँभाले हुए था। कटयामे महेन्द्रसिंहके चले जानेसे कुछ शिथिलता थी, किन्तु कार्यकर्त्ता वहाँ भी थे। कुचायकोटमे जलालपुरका आश्रम काम कर रहा था, और वहाँ भी एक उत्साही नवयुवक तथा थानाके प्रधान बाबू भूलनशाही उत्साहपूर्वक काम कर रहे थे। बाबू भूलनशाहीके सीधे-सादे अशिक्षित, किन्तु भावुकतापूर्ण हृदयके लिए स्वराज आन्दोलन धार्मिक साधनासा मालूम होता था। स्वराज-आश्रमपर आते वक्त वह कभी खाली हाथ नही आते थे। कई साल बाद जब मै हज़ारीबागसे छूटकर, वहाँ गया, तो भूलनशाहीकी सौम्य वृद्धमूर्ति न देखकर मैने उनके बारेमे पूछा, और उनकी मृत्युकी खबर सुनकर एक स्थायी शोक हुआ। जब कभी मै जलालपुर जाता, या उधरसे गुजरता, भूलनशाहीका स्मरण बिना आये नही रहता। उसी यात्रामे मै गोपालगज, बरौली, रेवतिथ, बसन्तपुर भी गया। बरौलीमे कालेजके विद्यार्थी बा० शिवप्रसादसिंह बहुत अच्छी तरह काम सँभाले हुए थे। मीरगज, भोरे, कुचायकोट, गोपालगज, बरौलीके सिवाय बाकी थानोमे ज्यादा शिथिलता थी।

एकमा आनेपर मालूम हुआ, मेरी गिरिफ्तारीका वारट निकला है। रामउदार राय नामके सादृश्यसे गिरिफ्तार कर लिये गये थे। लोगोंको आश्चर्य हुआ, क्योकि रामउदाररायने स्वयसेवकोंमे नाम नही लिखाया था। पुलीसको भी गलतीका सन्देह हुआ, इस प्रकार उन्हे छोड दिया, और वारट रामउदारदासके नामसे दुरुस्त हुआ। पटना (प्रान्तीय काग्रेस कमीटीकी मीटिंग)से मैं उसी दिन छपरा पहुँचा, और जिला काग्रेस कमीटीकी बैठक ३१ जनवरी १९२२को मेरे सभापतित्वमे हो रही थी, जब कि पुलीस मुझे गिरिफ्तार करने आई।

जेलके फाटकको बाहरसे मैं बराबर देखता था, जब कभी साहेबगजसे भगवान बाजार (छपरा) स्टेशन जाता, किन्तु, उस फाटकके भीतर एक दूसरी दुनिया बसती है, इसका तजर्बा मुझे पहिली ही बार हुआ। डर और झिझककी बात नही थी। १९१५ हीमे मैं क्रान्तिकारियोकी जीवनियाँ उनकी जेलयातनाओके बारेमे काफी पढ-सुन चुका था, और मुझे उनमे भय नही प्रलोभ मालूम होता था।

एकमामे काम शुरू करनेसे थोडे ही दिनो बाद मैंने अपने अँचलेवाले भेसको बदल-कर फिर कम्बलकी अलफी पसन्द की। सोनपुरके मेलेसे एक सहारनपुरी काला कम्बल ले, बीचमे शिर डालनेके लिए छेद बना उसे अलफीमे परिणत कर दिया। गिरिफ्तारीके

वक्त भी मैं उसी काली अल्फीमें था। दिन भर हवालातमे रखनेके बाद शामको मुझे जेलमे और कैदियोसे अलग जेलमे रखा गया। छपराके कई कर्मी सजा पाकर बक्सर सेट्रल-जेल भेज दिये गये थे। नारायण बाबू अहमदाबाद काग्रेस चले गये थे, लौटकर आनेपर मुझसे दस दिन बाद (९ फर्वरीको) वह भी तारीखपर गिरिफ्तार होकर आये। याद नही, मुझे एक-दो दिन बालू भरे आटे, बाल और छिलके भरी दाल तथा आधी घासके साथ उबाले सागको खाना पडा था नही। नारायण बाबूके आनेपर हम दोनोको अपने हाथसे रसोई बनानेके लिए खानेका सामान मिलता था। मैने परसामे पकवान पकानेके एकाध हाथ नारायण बाबूको भी सिखलाये। अकेला रहते भी मै पढने-लिखनेमे लगा रहता था। यही त्रोत्स्कीकी 'बोल्शेविकी और ससार-शान्ति' अग्रेज़ीमे पढनेको मिली। किसी बोल्शेविक ग्रथकर्त्ताकी यह पहिली पुस्तक थी। मैंने कुछ समय सस्कृतकी तुकबन्दीमे लगाये, जिनमे एक भजन शुरू होता था—"शृणु शृणु रे पान्थ, अहमिह न ह्यकाकी।" नारायण बाबू उन नेताओमेंसे थे, जिनका सार्वजनिक जीवन असहयोग और गाधी-युगके साथ नही आरम्भ होता था। उन्होने अग्रेजीकी शिक्षा न पाई थी, और न देश-भ्रमणका अवसर पाया था, तो भी मनुष्यका कर्त्तव्य खाने-पीने-सोनेसे उसे ऊपर ले जाता है, इसे वह भली भाँति समझ गये थे। वे मध्यमवित्तके एक समृद्ध परिवारके मुखिया थे। बापने उनके लिए ज़मीदारीके अतिरिक्त कितना ही नकद रुपया भी छोड़ा था। यौवन, धनसम्पत्ति, प्रभुत्व उनके पास मौजूद थे, यदि अविवेक भी साथ रहता, तो दूसरे बाबुओकी भाँति वह भी ऐशकी जिन्दगी बिता सकते थे। किन्तु, इसकी जगह उन्होंने अपने जीवनको एक दूसरी ही ओर ढाला, और सो भी बहुत कुछ सिर्फ अपनी सूझके भरोसे। स्टेशनसे बारह मीलपर, शहर बाज़ारसे बहुत दूर एक अटट दीहाती गॉव गोरयाकोठीमे उन्होने एक अंग्रेजी स्कूल स्थापित किया, और उस समयकी प्रतिकूल तथा बहुव्ययसाध्य परिस्थितिमे उसे हाई स्कूल तक पहुँचाया। छपरा ही नही, सारे विहारमे उस वक़्त अपने ढगका वह अकेला स्कूल था। नारायण बाबू हिन्दीके पत्र-पत्रिकाओ तथा पुस्तकोको बहुत पढते थे, और लोकमान्य तिलकके बडे भक्त थे। इस राष्ट्रीय तूफानसे बच रहते, ऐसा हृदय उन्होने नही पाया था, इसीलिए अत्यन्त परिश्रमसे रोप और बढाकर हाई स्कूल तक पहुँचाये अपने स्कूलको उन्होने विश्वविद्यालयसे सम्बन्ध-विच्छिन्न कर राष्ट्रीय बनानेमे भी आनाकानी नही की। ऐसे आदमीके प्रति मेरी श्रद्धा शुरूसे ही हो जावे, इसमे आश्चर्यकी कोई बात नही। और अब सयोगसे हमे साथ रहना पडा। वह उस समय जिला काग्रेसके मन्त्री थे।

दूसरे दिन (११ फर्वरीको) हमारे मुकदमेका फैसला हुआ। हमने सर्कारी इल्ज़ामको स्वीकार किया। मिस्टर लुईने हम दोनोको छै मासकी सादी सजा सुनाई। मैने उन्हे 'धन्यवाद' कहा। तेरह दिन छपरा जेलमे रहनेके बाद, अब (१२ फर्वरीको) हम लोग दो कान्स्टेबलोके साथ बक्सरके लिए रवाना किये गये। कान्स्टेबलोके पास हथकड़ियाँ थी, किन्तु उन्होने हमारे हाथोमे नही लगाया। क्रान्तिकारियो-की कथाओमे हथकडियो और बेडियोकी बाते सुनकर क्षण भरके लिए भी हाथोमे हथ-कडी डलवानेकी मुझे लालसा हो आई। बहुत हिचकिचाहटके बाद सिपाहीने ज़रा देरके लिए उसे हाथमे डाला। मैने लोहेके उन ककणोको देखकर कहा—नानाने चाँदीके खड्वे जो लडकपनमे हाथोमे डाले थे, उनसे यह बुरे तो नही मालूम होते, फर्क इतना ही है कि सिर्फ दोनो हाथ नज़दीक-नज़दीक बँधे रहनेसे इनसे काम नही किया जा सकता।

रातको हम पटना होते दूसरे दिन चार बजे रातहीको बक्सर पहुँच गये थे। रामरेखाघाटपर गगामे स्नान कर दस बजेके करीब बक्सर जेलमे दाखिल हुए। छपरा जेलसे यह कई गुना बड़ा था किन्तु हमे जेल दिखलानेके लिए थोडे ही लाया गया था। आफिसकी मामूली कार्रवाईको समाप्त करनेके बाद हमे एक वार्डमे ले जाया गया। उस वक्त साढे तीन सौके करीब स्वराजी कैदी बक्सरमे रखे गये थे। कमरोसे बाहर धूप और छायामे वहाँ सौसे ऊपर आदमी मौजूद थे। दर्वाज़ा खुलते ही उनकी नजर हमपर पडी। नये आगन्तुकको परलोकसे लौटे आदमीकी भाँति समझ स्वतन्त्रतावचित राजवन्दी आकर हमारे इर्द-गिर्द जमा हो गये। घनिष्ट परिचयवालोने आलिगन किया, दूसरोने अभिवादन। बाहरकी आन्दोलन-सम्बन्धी खबर पूछी। हम लोग स्वय तीन हफ्तेसे बन्द रखे गये थे, तो भी जो कुछ मालूम था, उसे बतलाया। हम छपरावालोको इस बातका क्षोभ था, कि राष्ट्रीय सघर्षमे इतना आगे बढे हुए होनेपर भी हमारे जिलेकी अपेक्षा ज्यादा बन्दी दूसरे गुमनाम ज़िलोंने दिये थे। लेकिन हमारे ज़िलेका क्या कसूर ? मुज़फ्फरपुर ज़िलेको बहुत नाज़ था, कि उसके कैदी वहाँ सबसे ज्यादा थे। किन्तु इसमे नाज़की जरूरत क्या ? यदि मुज़फ़्फ़रपुरके कलेक्टर जैसा औढरदानी कलेक्टर किसी भी जिलेको मिल जाता, तो दो सौ चार सौ बहादुरोको जेलमे भेज देना मुश्किल न था।

मुजफ्फरपुर ज़िले तथा एकाध और जिलोसे कुछ साधारण स्वयमेवक आये थे, नही तो सभी राजवन्दी अपने जिले या थानेके प्रमुख नेता थे। मेरे साथियोमे प्रभुनाथ यहाँ आ पहुँचे थे। माँझीकी सभामे मेरी जगह वह व्याख्यान देने गये थे, वही रंगन

और बूढे विरजानन्द पडितके साथ पकड लिये गये। प्रान्तके प्रमुख नेताओंमे राजेन्द्र बाबू इसलिए बच गये थे, कि गवर्नरकी कार्यकारिणीके भारतीय सदस्य श्री सच्चिदानन्दसिंह उनकी गिरिफ्तारीसे असहमत थे। मौलवी शफी मुजफ्फरपुरके एक नामी वकील तथा प्रमुख नेता वहाँ मौजूद थे। उनके साथ मौलवी वद्रूद, तरुण मजूर, गगयाके बाबू मथुराप्रसाद, बरुराजके राजमगलशाही और ब्रजनन्दनशाही, ठाकुर रामनन्दनसिंह और दूसरे अनेक होनहार तरुण भविष्यकी महत्त्वाकाक्षाओंको कालेज स्कूलकी पढाईके साथ विसर्जित करके पहुँचे हुए थे। वहाँ चम्पारनके बाबू देवीप्रसाद साहु, दर्भगाके मौलाना वहाब, और दूसरे जिलोके भी प्रमुख नेता थे।

## ४

## बक्सर जेलमें छैमास १९२२ (१३ फर्वरी–९ अगस्त)

इसमें तो शक नही, कि इन राजवन्दियोमेसे अधिकाशने राजवन्दिजीवनके लिए अपेक्षित मानसिक शिक्षा नही प्राप्त की थी, इसलिए उन्हे एकान्तता कुछ असह्यसी मालूम होती थी, किन्तु सौभाग्यसे सभी लोग एक जगह रख दिये गये थे। दिनमे बाहर हातेमे वृक्षोके नीचे या धूपमे साथ रहते, रातको कमरोमे सत्ताईस-सत्ताईसकी सख्यामे (इकट्ठा बन्द होते) ताश-शतरज खेलना, पढना, बाते करना। यही नही मथुरा बाबू (गगया)ने अपना अखाडा भी तैयार कर लिया था, और सबेरे रोज दो-तीन घटे कुश्ती होती थी। वही हमारे सबसे बडे पहलवान् और अखाडेके खलीफ़ा थे, और लोगोंको दाव-पेच बहुत करके ज़बानी और हाथके इशारेसे बतलाया करते थे। कुछ ही दिनों बाद हम लोगोने सहभोजी दावतोका तरीका जारी कर दिया। जेलसे मिली चीजोके अतिरिक्त घरसे आई चीज़ो तथा पैसेसे भी लोग मदद करते थे। मथुरा बाबू खिलाने-पिलानेके प्रबन्धमे भी सिद्धहस्त साबित हुए। मथुरा बाबू हमारे कमरेमे रहते थे। मैत्रीको अक्षुण्ण रखते हुए उन्हे चिढानेके लिए कभी-कभी मैं उनके सगीतके विवेचनोपर आक्षेप कर बैठता, और जब उनके शीतल मस्तिष्कपर कुछ गर्मी आ जाती, तो अपनी सफलतापर बडा प्रसन्न होता। इसमे शक नही, यह मेरी अनधिकार चेष्टा थी। मैंने सगीतका क-ख भी नही सीखा था, और न गवैयोको अपना कर्त्तब दिखाते ही सुना था। राग-रागिनियोंके नाम तक मुझे याद नही,

उनकी सुर-तान-गतकी तो बात ही दूर ? इसके विरुद्ध मथुरा बाबू स्वय गायक न थे, किन्तु गुनियोकी उन्होने अच्छी सगति की थी, उन्हे सगीतकी खूब परख थी। एक दिन मीठे मनोरजक गानोको छोकरो-छोकरियोका गाना कहकर वह बूढे उस्तादो-की तारीफ कर रहे थे। कई और व्यक्तियोके साथ नारायण बाबू भी श्रोताओमे थे। मैने खूब जोरकी चुटकी ली—'मथुरा बाबू, मै आपकी सब बातोको माननेके लिए तैयार हूँ किन्तु उस व्यक्तिको मै गायक कहनेके लिए तैयार नही, जिसके अलापको असह्य समझ पासके पेडपर शान्त बैठी चिडिया भी उड जानके लिए मजबूर हो। मै उसे सगीत-शास्त्रज्ञ कह सकता हूँ, सगीत-शास्त्राचार्य माननेमे भी मुझे उज्र नही; किन्तु गायक तो उसे ही मानूँगा, जिसके गानेको सुनकर अनभिज्ञ व्यक्ति भी मुग्ध हो जाये।" मथुरा बाबूका बौखलाना स्वाभाविक था। मै अनाडीकी तरह बात कर रहा था। नारायण बाबू भी चुपचाप मेरे साथ मथुरा बाबूकी चिडचिडाहट-का मजा ले रहे थे। रसोई-अखाडेके अतिरिक्त मथुरा बाबूको ब्रजभाषा कविताके रस-अलकारोंके सुनने-पढनेका भी शौक था। उनके सौभाग्यसे कुछ ही दिनो वाद गयाके पडित बजरगदत्त शर्मा पहुँच गये, फिर तो 'भानु' कविके साहित्य ग्रथका पारायण उनका काफी समय लेता रहा।

मनोरजनके लिए हमने कई तरीके अख्तियार किये थे। शायद प्रतिदिन या सप्ताहमे कुछ दिन शामके वक्त स्नानवाली फाइलके सीमेटकी गचपर कविसम्मेलन होता। लोग अपनी-अपनी कविताये सुनाते। बाबा नरसिहदास तो ब्रजभाषाभाषी ही थे, फिर ब्रजभाषा कविताओमे वह दिलचस्पी क्यों न लेते। एक दिन हम दोनोने मिलकर 'फाइल' (File) और 'कारो'पर कवित्त बनाई, जिसका कुछ अश इस प्रकार था—

'फाइलमे बैठि रोटी फाइल भर माँगतु है,<br>
फाइल भर भात लाग करत काज कूरो है।<br>
कपडेको फाइल कुर्त्ते-कम्बलको फाइल होत,<br>
आप फेरि जेलर फाइल देख लेत पूरो है॥<br>
फाइलमे पानी अन्हाइबेको आवतु है,<br>
फाटक फटकारि फाइल बोल देत फूरो है।<br>
भनत नरसिंह फक्त फाइलहिं सम्हारि लेहु,<br>
फाइल बिनु फेल सारे फाइलको अधूरो है॥

कारो करीलमें है कुलतार औ कारोड कम्बल चारि बिछावें।
कोयला कारो औ कारोहि साग, औ कारी कढ़ाईमें डागि सिझावे।
कारोहि खान औ कारोहि पान केवारनमें रंग कारो लगावे।
कारो हि कारागार नृसिंह यो कारोको जन्म-स्थान कहावे॥

फ़ाइल जेलखानेका बह्वर्थक शब्द है, जिसके पाँती, निर्दिष्ट परिमाण, कायदा आदि कितने ही अर्थ होते हैं।

एक दिन रातको अपने कमरेमें हम लोगोंने पुलीसकी धर-पकड़, और असहयोगियोंके मुकद्दमेके फ़ैसलेका अभिनय किया। कुछ मनोरंजन होता देख, दो-चार दिनकी तैयारीके बाद (८ जूनको) भारतेन्दुकी 'अन्धेर नगरी'का अभिनय दिनमें ही किया गया। मैं उसके प्रबन्धकों हीमें न था, बल्कि उसमें मैंने पार्ट भी लिया था। हमारे छपराके मुन्शुन (देवनाथसहाय), और जगदीशपुर (शाहाबाद)के सोमेश्वरसिंहका पार्ट बहुत अच्छा रहा। सोमेश्वरसिंहमें अभिनयकी कुछ स्वाभाविकसी प्रवृत्ति थी, वह कुंअरसिंहके वंशज थे, और रजिस्ट्रार पिताके रोने-कलपनेकी कोई पर्वाह न कर कालेज छोड़ जेलमें पहुँचे थे।

बाबू ब्रजनन्दनशाहीने एम्० ए०में असहयोग किया था। वह बरुराजके पुराने ज़मींदार घरानेसे सम्बन्ध रखते थे। लड़कपनमें ऐसे घरोंमें फारसी पढ़ानेका रवाज बादशाही ज़मानेसे चला आता है, उसीके अनुसार उन्होंने भी फ़ारसी पढ़ी थी। मुझे भी फ़ारसीका शौक हुआ, और ब्रजनन्दन बाबूने शेख़ सादीके गुलिस्ताँके बहुतसे भागको पढ़ाया। बरसातके दिनोंमें बाहरके पक्के चबूतरोंपर काई जम जाती थी। पाखानेके पासके चबूतरेपर वह और भी ज्यादा थी। उसपर फिसलकर रोज़ ही एक-दो आदमी गिरते थे, और उनका धोती-कुर्ता गन्दा होता, तथा लोग हँसकर निहाल होते। एक दिन ब्रजनन्दन बाबूके ऊपर भी बीती। वह अपेक्षाकृत ज्यादा मोटे थे, इसलिए लोगोंका मनोरंजन भी ज्यादा हुआ।

फागुनके महीनेमें फाग गानेका उत्तरी बिहारमें बहुत रवाज हुआ। और इसमें शक नहीं, बहुत जगह गाँवके लोग पागलकी भाँति सिर-हाथ हिलाते गला फाड़नेमें होड़ लगाना ही फाग गाना समझते हैं। तो भी यदि उनका उसीसे मनोरंजन होता है, तो हमें बुरा माननेका क्या हक़ है? हमें नहीं पसन्द है, तो हम शामिल होनेके लिए मजबूर नहीं किये जाते। एक दिन मुज़फ्फरपुरके कुछ स्वयंसेवकोंको फागुनका गाँव याद आया। उन्होंने 'महदेवा (मैरवा)मे हो-ो हो-ो...' शुरू ही किया था, कि पासके चबूतरेपर लेटे एक सज्जनने डाँट दिया।

मुझे यह बात बुरी लगी। उन बेचारोके लिए मनोरजनकी सामग्री हमसे भी कम थी, फिर उनको इस साधारण मनोरजनके तरीकेसे भी वचित रखना क्या कभी उचित कहा जा सकता है ? घोडासाहनके निरसूलाल एक साधारण दीहाती कार्यकर्त्ता थे। बाहरसे चीजे मँगानेका हमे हक था, किन्तु सब तो मँगानेकी सामर्थ्य नही रखते थे; इसलिए जेलकी चीज़ोमे अधिकसे अधिक पानेकी लालसा कितनोको होती थी। निरसूलालने एक दिन कमी-बेशीकी शिकायत की। मेरे आश्चर्य-की सीमा न रही, जब मैने देखा, एक सम्भ्रान्त बी० ए० पठित व्यक्तिने गुस्सेमे निरसूके कन्धेमे हाथ डाल ऐसे झटका दिया, कि वह गेदकी तरह लुढकता दस-बारह हाथ तक चला गया। सन्तोष यही हुआ, कि शरीर हलका होनेसे चोट नही लगी। मुझे ढकेलनेवाले व्यक्तिकी बुद्धिपर तरस आया।

वहाँ पढनेके लिए काफी किताबे थी, क्योकि पढे-लिखे बहुत थे, और सभी अपने साथ कुछ न कुछ किताबे लाये तथा मँगाते रहते थे। साधारण मनोरजनके अतिरिक्त मैं अपने समयको पढने-लिखनेमे लगाता था। और जब जमातमे पढने-लिखनेका समय कम मिलते देखा, तो जेलरसे माँगकर (२६ फर्वरीको) सेलमे चला गया। उस वक्त गर्मी आ गई थी, और वार्डके खुले कमरो, तथा जगह-जगह वृक्ष लगे हातेकी अपेक्षा वह सेल बहुत गरम था। उस वक्त भी पहिननेके लिए मेरे पास वही काले कम्बलकी अल्फी थी। गर्मीको मैं तितिक्षाकी चीज़ समझता था। काल्पीमे रहते (१९१८ ई०मे) मैंने साम्यवादी समाजको चित्रित करते हुए एक पुस्तक लिखनी चाही थी। उसका खाका जिस नोटबुकमे था, उसे मैंने यागेशको दे दिया था, उनसे वह नोटबुक गुम हो गई। अब फिर वैसी पुस्तक लिखनेकी इच्छा हुई, और सस्कृतमे। इस बेवकूफीके लिए आश्चर्य करनेकी जरूरत नही। आदमीमे ज्ञानसे अज्ञान लाखो-करोड़ों गुना ज्यादा है। यद्यपि नई बात सीखनेके लिए मेरा दिल हर वक्त तैयार रहता था, किन्तु सीखनेके साधन हर वक्त सुलभ तो नहीं रहते। मैं पुस्तकको साम्यवादके प्रचारके लिए लिखना चाहता था, और यह निश्चय ही था कि संस्कृत-पद्यमे लिखी वैसी पुस्तकका कोई उपयोग न होता। मैंने अब तक साम्य-वादके विषयमे "प्रताप" आदि हिन्दी पत्रोमे छपे कुछ लेखो—विशेषकर रूसी क्रान्तिके सम्बन्धमे जब तब निकली कुछ पक्तियोकी खबरो—के सिवाय, एक तरह नहीसा पढ़ा था। 'बोलशेविकी और ससारशान्ति'से क्या ज्ञान प्राप्त किया था, यह भी नहीं कह सकता। किसी 'उटोपिया' (Utopia) का तो नाम तक न सुना था। किन्तु १९१७ ई०के आखिरमे रूसी क्रान्तिकी खबरे मैंने जो "प्रताप"मे पढ़ी और आगे जो

बातें मालूम होती गईं, उनके आधारपर मैंने एक समाज की कल्पना की थी, उसीको मैं इस पुस्तकमें चित्रित करने जा रहा था। ख्याल आया, आजके समाजसे उस समाज तक पहुँचनेके रास्तेके साथ उसका चित्रण किया जावे। और इसीके अनुसार एक युवा तपस्वी विश्वबन्धुको हिमालयकी ओर भेजा। उसकी आकृति और निस्पृहता मैंने स्वामी रामतीर्थसे ली थी। 'विश्वबन्धुप्रदीप'को छन्दोबद्ध काव्यके रूपमें लिखना शुरू किया, उसके पाँच-छै सर्ग समाप्त भी किये। सन्धिकी गडबडियों और दूसरी त्रुटियोंको दूसरे वक्त सुधारनेके लिए छोड मैं आगे बढता गया। दूसरी जेलयात्रामें संस्कृतकी अव्यवहार्यताका ज्ञान हुआ, और आजके समाजसे साम्यवादी संसारके मिलानेसे ग्रंथ-विस्तारका डर हुआ, इसलिए मैंने उसे 'बाईसवीं सदी'के रुपमें लिखा। 'विश्वबन्धुप्रदीप'की भाँति एक और ग्रंथ 'कुरानसार' यहीं संस्कृतमें लिखना आरम्भ किया, जो करीब-करीब पूरा हो गया था, उसे भी दूसरी जेल-यात्रामें हिन्दीमें किया। तीसरा हिन्दी ग्रंथ वेदान्त-सूत्रोंकी हिन्दी टीका मैंने पढाते वक्त लिखवाई थी। बिन्दा बाबू आदि कई साथी वेदान्तप्रेमी थे, वेदान्त ग्रंथ पढ़ना चाहते थे। मैंने कहा, तो उपनिषद् और वेदान्तसूत्रों[1] हीको क्यों न पढो, पढ़ाते वक्त हिन्दीमें टीका लिखवाता गया—यह टीका लिखनेवालोंके पास रही। बक्सर जेलमें संक्षेपमें लिखने-पढनेका कार्यक्रम मेरा इतना ही रहा।

हम लोग राजनीतिक कैदी थे, किन्तु जेलमें हममेंसे अधिकांशकी जो दिनचर्या थी, उसमें मालूम नहीं होता था, कि वे राजनीतिमें ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। दंड-कसरत, कबड्डी खेलना स्वास्थ्यके लिए अच्छा है, और इनमें बूढे भी यदि लड़के बनते थे, तो यह स्वास्थ्यके लिए बडी अच्छी चीज़ थी, किन्तु अधिकांश शिक्षित लोगोंका पूजा-पाठ और धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनमें लगाना, यह बतलाता था, कि हमारे साथी राजनीतिको कितनी हल्की दृष्टिसे देख रहे थे। वे शायद समझते थे, कि स्वराज तो आ ही जायेगा, फिर इस लोककी चिन्ता समाप्त हो जावेगी, इसलिए हम परलोकके लिए भी कुछ सबल क्यों न तैयार कर लें। गोपालगंजके बाबू महेन्द्रसिंहका हाथ सदा (माला रखनेकी) गोमुखीमें रहता था। वह समझते थे, कि हम हनुमत्-निवास (अयोध्या)के गुरुद्वारे हीमें चले आये हैं। बा० जगतनारायणलाल अभी नौजवान थे और अर्थशास्त्रके अध्यापक रह चुके थे, वह रामतीर्थ और रामकृष्ण परम-हंस बनना चाहते थे। मौलाना शफी दाऊदी कुरानकी तलावत (पाठ) और नमाज़के

[1] उपनिषद् आरम्भ, २० जून, वेदान्त-सूत्र आरम्भ, १० जुलाई।

बडे पाबन्द हो गये थे। कुछ रात रहते ही, जब कि सभी लोग खूब मीठी नीद सोते रहते, मौलाना वहाब अपनी दूरगामिनी आवाजमे अजान देते 'अस्सलातो खैरून् मिनन्नौम्' (नमाज नीदसे अच्छी है), यह बात सोनेवाले ही बतला सकते थे, लेकिन अल्लाके भय और दुनियाके सकोचसे कितनोंको अनिच्छुक होते भी उस सबेरेकी कडवी नमाजमे शामिल होना पडता। राजनीतिक साहित्यके अध्ययनकी ओर दिलचस्पी रखनेवाला तो वहाँ मुझे कोई नही दीख पडता था।

जेल-अधिकारियोसे एकाध बार खटपट भी हुई। गाधी-टोपी गैरकानूनी थी, जहाँ तक जेलके भीतरका सम्बन्ध था। २४ मईको बिहारके जेलोंके इन्स्पेक्टर-जेनरल कर्नल बनातवाला जेलके मुआयनेके लिए आये। जेलके अधिकारियोने हमारे साथियोकी गाधीटोपी छीन लीं। जिस वक्त बनातवाला आये, लोगोने अँगोछे फाड-फाडकर बिना सिली गाधीटोपियाँ बना उन्हे लगा ली और शायद उनके सामने हम लोग खडे भी न हुए। बनातवालाने एक लेक्चर दिया, इन्स्पेक्टर-जेनरल हो जानेसे, सर्कारके इतने वर्षोंके नमकख्वार होनेसे उन्हे अधिकार हो गया था, कि हमे सच्ची राजनीतिका रास्ता बतलावे। मुझे तो वह आदमी बिल्कुल ही रद्दीसा जँचा। भारतीय होते हुए, उसे अपनी बेबसीको देखते जबानको रोककर बोलना चाहिये था, किन्तु वह 'एका लज्जा परित्यज्य त्रैलोक्यविजयी भवेत्'का नाटच कर रहा था।

चम्पारन जिलाके एक मलग (कबीरपथी मुसल्मान साधु कविलास) उसी जुर्ममे कैद हुए थे। किन्तु दूसरे स्वयसेवकोके साथसे उन्हे अलग रखा गया था। वहाँ भी खटपट हुई। मलगको खडी हथकडी (छै फीट ऊपर टँगी हथकडीमे दोनो हाथोको बाँध खडा रहना)की सजा हुई। और बढते-बढते मामला यहाँ तक पहुँचा कि उन-पर खूब मार पडी। हम लोगोको खबर मालूम हो गई। मौलाना मजहरुल्हकने पटनासे अपना दैनिक "मदरलैंड" निकाला था। हमारे साथियोमेसे कोई छूटकर गया। उसने हकसाहेबसे कहा, और सारी खबर "मदरलैंड"मे निकल गई। बडा तहल्का मँचा। "मदरलैंड"पर मुकदमा चलाया गया, और हक साहेबको सजा हुई। लेकिन साथ ही, अस्थायी जेलर सन्तोषकुमारकी भी बदनामी हुई। उसके बाद तो उनका भविष्य ही खतम हो गया। कहाँ वह प्रथम श्रेणीके जेलर हो रहे थे, और कहाँ तीसरी या सबसे निचली श्रेणीमे कर दिये गये। सन्तोष बाबूका मिजाज कडा था, कैदियोके साथ जैसा बर्ताव जेलोंमे बर्ता जाता है, उससे किसी जेल-अधिकारीकी मनोवृत्ति प्रभावित हुए बिना नही रह सकती। सन्तोष बाबूको पीछे हजारीबागमे भी मुझे देखनेको मौका मिला। उनकी अबकी अवस्था देखकर मेरी सहानुभूति उनकी ओर थी।

जेल-चोरोंको भलेमानुष बनानेके लिए बना बतलाया जाता है; यदि वह नही तो कमसे कम जेलके कर्मचारियोको तो चोरोसे बेहतर होना चाहिए, किन्तु यहाँके छोटे-बडे कर्मचारी सभी चोर थे। कैदियोके खानेकी चीजोके साथ उनका वैसा ही बर्ताव था, जैसा राजा लोगोंके पालतू पशुओके साथ उनके नौकरोंका। तर्कारीमेसे अच्छी-अच्छी चीज सुपरिटेडेटके पास डालीमे, जेलर, असिस्टेट जेलर, डाक्टर, जमादार और मिल सका तो सिपाहीके पास भी पहुँचती थी, फिर कैदियोंको क्यों न बालू मिला आटा, ककड-छिलका मिली दाल-चावल, सागकी जगह लकडी-घास मिले। बक्सरमे एक बूढे डाक्टर थे। अस्पतालकी चीजोको वह अपनी समझते थे। मरीजोके लिए आई एक मुर्गीको पाकेटमे लिये वह बाहर जा रहे थे। फाटकपर पहुँचे, तो सुपरिटेडेट आ गया। बात करनेके लिये ठहरना पडा, उसी वक्त मुर्गीने पाकटके भीतरसे कुड-कुड किया। सुपरिटेडेटने मजाक करते हुए कहा—'डाक्टर बाबूके पाकटमें मुर्गी बोलती है।'

१० अगस्तको पूरे छै महीनेकी सजा भुगतकर मै और नारायण बाबू साथ ही छूटे।

## ५

# जिला-कांग्रेसका मंत्री ( १९२२ ई० )

छपरामे आनेपर देखा चारो ओर शिथिलता है। इसका अनुमान हमें जेलके भीतर हीसे था, जब सुना, कि चौरीचौराकाडके बहानेसे गाधीजीने बारडोलीमे सत्याग्रह स्थगित कर दिया। इतने बडे देशमे कही भी कोई—पक्षी या विपक्षी भी—यदि हिंसा कर बैठे, तो सत्याग्रह बन्द कर दिया जावेगा, इस शर्तपर क्या कभी सत्याग्रह हो सकता है? दूसरे जिलोकी भाँति सारन (छपरा) जिलेपर भी सत्याग्रह स्थगित होनेका बुरा प्रभाव पडा। अब लोग किसके लिए तैयारी करे। गाधीजी जेलके भीतर जाते वक्त कह गये—चर्खा-करघा चलाओ, मादक द्रव्य सेवन बन्द करो, पचायतोंसे फैसला करवाओ, सर्कारी शिक्षण-सस्थाओंका बायकाट करो। इन सबको सर्कारके साथ मोर्चा लेनेकी तैयारी समझकर लोगोंने बहुत कुछ किया था, किन्तु अब तो उस मोर्चेकी आशा भी न थी, गाधीजी जेलमे चले गये थे, फिर लोगोंका उस प्रोग्राम-

पर मन क्यों लगे ? लेकिन राजनीतिक स्वतन्त्रता हमारा स्थायी ध्येय था, हम गाधीजीके चले जानेपर भी उसे छोड नही सकते थे, इस ध्येयके लिए सघर्ष करना अनिवार्य था। सघर्ष जनजागृति तथा सगठन बिना हो नही सकता था, इसलिए हमने उधर ध्यान दिया। जेलसे आते ही उसी बरसातमे बाबू माधवसिह और मेरा प्रोग्राम कुआडी पर्गने (मीरगज, भोरे, कटया, कुचायकोटके थानो)के लिए बना। मीरगज, भोरे खतम कर हम (७ सितम्बरको) कटयाकी ओर चले। हम दोनोको दफा १४४ के अनुसार भाषण-निषेधकी आज्ञा निकली है, यह हमे मालूम हो गया था। हमने तै किया था, कि नोटिस मिलनेसे पहिले लोगोको कुछ कह दे। नोटिसकी अवहेलना हम अभी नही करना चाहते थे। उपस्थित जनताको लिये-दिये कटयासे पूरब एक तालाबके भिडेपर पहुँचे, और जो कहना था उसे सक्षेपमे कह चुके, तो थानेके सब-इन्स्पेक्टर नन्दी पहुँचे। उन्होने नोटिस तामील की। नदीने पचायत, मादकद्रव्य-निषेध, खद्दरके पक्षमे एक छोटीसी तकरीर की, यह कहते हुए कि सर्कार इसका कहाँ विरोध करती है ? आप इन्हे कीजिये न। दारोगा नन्दी उन पुलीसके नौकरोमे थे, जिनपर काजलकी कोठरीमे भी कालिख नही लगता। पुलीसमे रहकर रिश्वतसे बच जाये, यह नामुमकिनसी बात है, किन्तु नन्दीने इस नामुमकिन बातको मुमकिन कर दिया था। भोरे, कटयाके थाने गोरखपुर जिलेके सर्हदपर पडते है। जिलेके पुलीस हेड-क्वार्टरकी रिपोर्टोको देखेगे तो मालूम होगा, कि येही इस जिलेके सबसे ज्यादा चोर-बदमाश थाने है। यहाँ जो कोई नया दारोगा आता, वह इसकी पुष्टि करता, और दस-बीस नये दफा ११०वाले बना जाता। इसका परिणाम और दूसरा तो देखा नही गया, सिवाय इसके कि जिला-पुलीसका हर एक सब-इन्स्पेक्टर इन दोनो थानोंमे जानेके लिए उत्सुक रहता। जिसे कटया या भोरेकी थानेदारी मिल गई, उसके भाग खुले समझिये। दो-तीन सालमे दस-बीस हजार जमा करके रख देना उसके लिए बिल्कुल आसान काम था। ऐसे थानेमे इतने बडे आकर्षणके बीच रहते रिश्वत न लेनेकी प्रतिज्ञा कितनी मुश्किल है, इसे आसानीसे समझा जा सकता है; और नन्दीने अपनी प्रतिज्ञाको पूरी तौरसे निबाहा। इसीलिए सब तरहसे योग्य होते हुए भी, नन्दी कोर्ट-सबइन्स्पेक्टरसे ऊपर नही बढ सके। यदि प्रथम श्रेणीकी प्रतिभाके साथ वह प्रथम श्रेणीके रिश्वतखोर और बेईमान होते, तो डिप्टी सुपरिटेंडेंट नही सुपरिटेंडेंट होकर पेंशनर बनते।

नये चुनावमे २९ अक्तूबरको छपरामे मैं जिला-काग्रेसका मन्त्री चुना गया, मुझे कुछ कहनेका भी अवसर न दिया गया। सवा साल पहिले जब मेरी चिट्ठी

दक्षिणसे आई, तथा मैं स्वयं कांग्रेस आफ़िसमें पहुँचा, तो उस वक़्त किसीको गुमान भी नहीं हो सकता था, कि यह बुद्धूसा साधु थानेका भी प्रमुख कार्यकर्त्ता हो सकता है, किन्तु अब लोगोंने मन्त्री बनाया। किन्तु, मैंने मन्त्रित्व इसीलिए स्वीकार किया, कि ज़िलाकांग्रेस कमीटीको मज़बूत करनेके लिए पूरे परिश्रमकी ज़रूरत थी। ज़िला कांग्रेस कमीटीके पास आफ़िसके पत्रव्यवहारके लिए भी पैसे नहीं रह गये थे। भाड़ा न दे सकनेके कारण मकान छोड़ दिया गया था, और कांग्रेस आफ़िस राष्ट्रीय बनाये किन्तु अब बन्द कालेजियट स्कूलके मकानमें चला आया था। मैंने ख़ूब घूमना शुरू किया। सिसवन और एकमाका संगठन मज़बूत था और कार्यकर्त्ता कार्यपरायण थे। भोरेकी हालत अच्छी थी। कुचायकोटके मन्त्री चले गये थे, और वहाँके लिए मैंने रुद्रनारायण—मेट्रिक छोड़कर चले आये—एक उत्साही तरुणको रेवतिथसे भेजा। महाराजगंजमें महेन्द्रनाथसिंह—कालेजके असहयोगी विद्यार्थी—को और मशरखमें भी एक तरुणको भेजा। इसी तरह कुछ थानोंमें नये कार्यकर्त्ताओंके जानेसे जनतामें स्फूर्ति आने लगी। वास्तविक अवस्था यह थी, कि कितनी ही जगहोंपर लोग तैयार थे, किन्तु वहाँ मार्ग-दर्शक कार्यकर्त्ता मौजूद न थे, और कितने कार्यकर्त्ता काम करनेके लिए तैयार थे, किन्तु उनके लिए उपयुक्त कार्यक्षेत्र और परामर्शदाता मौजूद न थे। मैंने इसका ध्यान रखते हुए काम शुरू किया, और उसका फल दिखलाई पड़ने लगा। ज़िला कांग्रेसके पास पैसे आने लगे। गाँवोंमें सभायें होने लगीं, सब नहीं किन्तु बहुतसे थानोंमें फिरसे जागृति हो गई, जिनमें क्वाड़ीके चार थाने, तथा बरौली, एकमा, सिसवन, महाराजगंज प्रमुख थे।

अबके साल कांग्रेस गयामें होनेवाली थी। १६ दिसम्बरको मैंने प्रान्तीय कांग्रेस कमीटीमें प्रस्ताव रक्खा—बोधगयाका महाबोधि मन्दिर बौद्धोंका है, और उन्हें मिलना चाहिए। बहुत बहसके बाद गयाकी बैठकमें प्रान्तीय कांग्रेसने प्रस्तावको स्वीकार करके गया कांग्रेसके पास भेजना मंजूर किया। बौद्धधर्मके साथ मेरी सहानुभूति एक क़दम और आगे बढ़ी।

गयाकांग्रेसके लिए ख़ूब धूमधामसे तैयारी होने लगी। मथुरा बाबू, गोरखनाथ त्रिवेदी, हरिनन्दनसहाय आदि हमारे ज़िलेके कितने ही प्रमुख कर्मी स्वागतकारिणीके काममें योग देनेके लिये गया चले गये। ज़िलेमें कांग्रेसके कामको आगे बढ़ाना बाक़ी लोगोंके ऊपर था।

गांधीजीके सत्याग्रहके स्थगित करके जेल चले जानेपर जो शिथिलता आई, उससे कांग्रेसमें दो दल हो गये। अपनेको गांधीजीका पक्का अनुयायी कहनेवाले

अपरिवर्तनवादी लोग कह रहे थे—"महात्माजीने जो रचनात्मक कार्यक्रम हमारे सामने रखा है, उसीको हमे करते हुए महात्माजीके आनेकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।" इस दलके नेता श्री राजगोपालाचारी थे, जिन्हे गया कांग्रेसमे डिपुटी-महात्माकी पदवी मिली थी। दूसरा दल परिस्थितिके अनुसार प्रोग्राममे परिवर्तन चाहता था, और कहता था,—"यदि हम बाहरसे संघर्ष नही कर सकते, तो नये सुधारोंके अनुसार स्थापित एसबली और कौंसिलोंपर हमे अधिकार करना चाहिए, और गवर्नमेंटके काममे बाधा तथा जनताको अपने पक्षमे जागृत करना चाहिए। हम छै वर्ष तक महात्माजीके बाहर आनेकी प्रतीक्षामे चुपचाप नही बैठे रह सकते।" इस परिवर्तन-वादी दल या स्वराज पार्टीके नेता थे, पंडित मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल और देशबन्धु चित्तरंजनदास। देशबन्धु दास ही गया-कांग्रेसके प्रेसीडेंट चुने गये थे। गया कांग्रेसमे दोनों दलोंके संघर्षके पूर्वलक्षण दिखलाई दे रहे थे। सारन जिलेमें मैं और नारायण बाबू परिवर्तनवादी पक्षके समर्थक थे। नारायण बाबू तो तिलकवादसे प्रभावित हो वैसा कर रहे थे, किन्तु मै तिलकवादी नही था। मुझे यदि कोई वाद पसन्द था, तो वह साम्यवाद, किन्तु अभी तक मुझे उसका बिल्कुल अस्पष्टसा ज्ञान था।

आर्यसमाजके प्रभावमे आते ही छुआछूत और जातपाँतका मै विरोधी हो गया था। यद्यपि मै अब रामउदार बाबाके तौरपर वैष्णव साधु समझा जाता था, किन्तु परसासे एकमा हेडक्वार्टर बदलते ही मैंने खानेकी छुआछूत छोड दी थी। परसा मठवाले वैष्णव ब्राह्मणके हाथकी भी कच्ची रसोई नही खाते, मुझे इस तरह करते देख महन्त-जीको बुरा लगा। और लोगोने तो 'परमहंस हैं' कहकर व्याख्या कर डाली। आश्रममे, यह देखकर मुझे प्रसन्नता होती थी, सभी जातिके लोग—मुसलमान तक—एक पाँतमे खाते, यद्यपि एक दूसरेका छुआ खानेवाले बहुत कम है।

सोनपुर मेलेमे पिछले साल तो वेल्स राजकुमारके स्वागत-विरोधमे हम लोगोने काफी प्रदर्शन किया था। स्वयंसेवकोंका भारी जलूस निकाला था। अबके मेलेमे एक दूसरी ही चहल-पहल रही। करॉचीमे महम्मदअली शौकतअलीके साथ शंकरा-चार्य स्वामी भारतीकृष्णतीर्थपर भी मुकदमा चला था, और उस समय राजनीतिमे भाग लेनेवाले धार्मिक नेताओंमे उनका नाम भी प्रसिद्ध हो गया था। अबकी बार वह हरिहरक्षेत्र (सोनपुर)के मेलेमे आये। जरीका छत्र, स्वर्ण-जटित रुद्राक्ष माला, चाँदीका खडाऊँ, और चॉदी-सोनेकी कितनी ही और चीज़ोंके साथ कितने ही शिष्य और सेवक उनके पास थे। सेकंड क्लाससे उतरनेपर उनका ज़बर्दस्त स्वागत किया

गया। ३ नवम्बर (१९२२)को खूब अच्छी अंग्रेजीमे उनका घंटेभर राजनीतिक व्याख्यान हुआ। लोगोंपर भारी असर पड़ा। उनके आनेसे पहिले ही एक महाराष्ट्र ब्राह्मण बढेजी गोरक्षाका भार लेकर सोनपूरमे पहुँचे हुए थे। खिलाफ़तके आन्दोलनमें हिन्दुओके शरीक होनेसे हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध बहुत अच्छा हो गया था, इसलिए यह गोरक्षा ज्यादातर दानापुरके गोरोंके लिए खरीदी जानेवाली गायोके खिलाफ़ थी। महुरापारके बागमे बढेजीने गोबर्धनाश्रम खोला। कलकत्तासे एक दो अच्छी जातिके सॉड़ मँगवाये। शकराचार्य भी उसमे आनेवाले थे, इसलिए गोवर्धनाश्रममे बडी तैयारी हुई। जिलाके हम सभी राष्ट्रकर्मियोंने इसमे भाग लिया। मै और बाबू हरिनन्दनसहाय एक दिन बिहार-सर्कारके एक मन्त्री बाबू मधुसूदनदासके पास गोरक्षाका डेपुटेशन लेकर गये। वे बहुत भद्रतासे हमे मिले, और गोरक्षापर बात-चीत करते रहे। उनका कहना था, गोरक्षाका अस्ली मतलब अन्धी-लूली गायोंको जमा करना नही बल्कि बेहतर नसलकी वृद्धि करना होना चाहिए। हम लोग इससे सहमत थे, किन्तु सभी गोरक्षावादी उससे सहमत थोडे ही होते।

गोबर्धनाश्रममे स्वयसेवकों और कार्यकर्त्ताओंके लिए जो भोजनालय बना था, उसमे छुआछूत हटानेका हमने प्रयत्न किया। रसोईके प्रबन्धक कई जातियोके लोग थे, जिनमे धर्मपरसाके एक ब्राह्मण तरुण भी थे, किन्तु किसीके पूछनेपर हम उन्हे श्रीवास्तव ब्राह्मण कहते। लोग अकचका जाते; जब श्रीवास्तव (कायस्थ) ब्राह्मणका नाम सुनते, किन्तु भोजनालयका बायकाट करनेवाले हमे कोई दिखलाई नही पडे। शकराचार्यका ठाट शाहाना था, पद और प्रतिष्ठाके कम होनेके डरसे वह और दूसरा कर ही क्या सकते थे?

सोनपुरके भोजनालयके तजर्बेसे मैंने सोचा, छुआछूत हटानेके लिए होटलकी बडी जरूरत है। माँझीके सभापतिसिंहको सलाह दी, कि अबकी बार गया मे तुम्हारा 'सुदामा भोजनालय' चले। सभापतिसिंह एक असाधारण तरुण था। असहयोगसे पहिलेकी बात है। उस वक्त छपरामे एक गोरा पुलीस इन्स्पेक्टर आया था। उसका दिमाग बहुत चढा हुआ था, सामनेसे आते जिसको नही तिसको ठोकर लगा देता। सभापति उस वक़्त हाई स्कूलका विद्यार्थी था। वह अपने बडे भाईकी तरह पहलवान तो नही था, किन्तु उसका बदन अच्छा मजबूत गठीला था। उससे इन्स्पेक्टरका यह अत्याचार देखा नही गया। बरसातके दिन थे। एक दिन इन्स्पेक्टर साइकलसे आ रहा था, सभापति उसके सामने चल रहा था। इन्स्पेक्टरने गाली निकाली। सभापतिने भी डाँटा, और वही साइकलसे गिरा उसे पीटना शुरू किया। उसकी

साइकल तोडकर पानी भरी खदकमे फेक दी, और उसे मारते-मारते बेहोश कर छोड दिया। उस वक़्त गोरेका मारना स्वय इग्लेडके सम्राट्पर हाथ छोडना था। सभापति भाग गया, और किसीके परामर्शपर चम्पारनमे जाँच करते महात्मा गाधीके पास पहुँचा। मुकदमामे कुछ हुआ-होवाया नही। सभापतिने अब दुष्टोके दलनके लिए छपरामे एक "रपटपार्टी" कायम की। इस पार्टीमे सिर्फ हट्टे-कट्टे तरुण भर्ती होते थे, जिनमेसे कुछका नाम किसी हाई-स्कूलके रजिस्टरमे भी होता। पैसेके लिए सन्देश जानेपर छपराका कोई धनी 'रपटपार्टीको' 'नही' नही कर सकता था। ऐसे अत्याचारियों और अन्यायियोको दड देना पार्टीका काम था, जो सर्कारके कानूनसे बचकर निकल जाया करते थे। "रपटपार्टी"के पास अपना भोजनालय और अपना विश्रामगृह था, जहाँ पार्टीके मेम्बर पडे रहा करते। उसकी इतनी धाक थी कि पुलीसको "रपटपार्टी"से छेडखानीकी हिम्मत नही होती थी। रपटपार्टीका कृष्णपक्ष नही था यह बात नही। असहयोग और गाधीयुगके प्रारम्भके समय पार्टीके सस्थापक और नेता सभापतिपर प्रभाव पड़ा, और उन्होने पार्टीको तोड दिया, और वह स्वय भी राष्ट्रीय कार्यमे लग गये, किन्तु उनको वह काम कभी नही मिला, जिसके कि वे योग्य थे। वह जो किसी सेनाका निडर सचालक बनता, आज एक दीहाती पाठशालेका अध्यापक है। खैर बाबू सभापतिसिंहका 'सुदामा भोजनालय' गया-काग्रेसमें गया। बाबू माधवसिंहने अपने रसोइयेको वहाँ भोजन बनानेके लिए दिया था, और तजर्बेसे देखा गया कि समाज-सुधारके साथ भोजनालय घाटेका सौदा नही। मैंने सभापतिसे इस भोजनालयको प्रतिवर्ष सोनपुर मेलेमे ले जानेके लिए कहा था, और अगले साल—जब कि मै जेलमे था—वह वहाँ गया भी था। छपरा जिलेमे वह पहिला हिन्दू-भोजनालय था। इसी साल सोनपुरमे हमने एक बिहार-प्रान्तीय किसान-सभा क़ायम की।

गया काग्रेसमे दो बातोंमे मेरी दिलचस्पी थी, एक स्वराजपार्टीका प्रचार और दूसरी बोधगया मन्दिरको बौद्धोके देनेके बारेमे काग्रेसका स्वीकार। पहिलेके लिए मैंने भी बिहार प्रान्तके केम्पमे काफी काम किया, व्याख्यान दिये, दूसरे बडे नेताओके व्याख्यान तो होते ही रहते थे। बोधगया मन्दिरके बारेमे तो मेरा ही प्रस्ताव था, इसलिए उसके बारेमे खूब प्रचार करना मेरा आवश्यक कर्तव्य था। प्रान्तीय काग्रेस कमीटीसे प्रस्तावकी मजूरी कराते वक्त मैंने कुछ बौद्ध-भिक्षुओको बुलाया था। उनके पालीके व्याख्यानोंका अनुवाद मुझे ही करना पडा था। काग्रेसके समय महाबोधि सभाके संस्थापक अनागरिक धर्मपालने भिक्षु श्रीनिवासके अतिरिक्त भिक्षु धर्मपालको भी

भेजा था, वर्माके भी कई भिक्षु आये थे। आर्यसमाजके पंडालमे इस विषयमे एक वडी सभा हुई, जिसमे मेरे और कई अन्य बौद्ध तथा हिन्दू साधुओके व्याख्यान हुए थे। पाली, अंग्रेजी, संस्कृतके कितने ही व्याख्यानोके अनुवाद करनेका भार मुझ-पर पडा, जिसे देखकर लोगोने मुझे 'अनन्तभाषाज्ञ' बना डाला।

एक दिन व्रजकिशोर बाबू और राजेन्द्र बाबू सभापति देशबन्धु दासके निवास-स्थानसे लौटकर आये। उन्होने जोर देकर कहा—हमने दास साहेबसे आपके बोध-गयाके प्रस्तावके बारेमे कहा है, आपके विषयमे भी कह आये है, इसलिए उनसे जाकर मिलिये। कही ऐसा न हो कि परिवर्तनवाद-अपरिवर्तनवादके झगडेमे यह प्रस्ताव ऐसे ही खटाईमे पडा रहे।

२२ दिसम्बरको मै उस बँगलेमे गया, जहाँ दास साहेब ठहरे हुए थे। सूचना देनेपर बैठनेका हुक्म हुआ। बाहर बराडेमे बैठ गया। आध घटे बाद फिर सूचना दी, फिर बैठनेका हुक्म। तीस-चालीस मिनट बाद फिर सूचना दी, फिर बैठनेका हुक्म। भीतर कितने ही स्त्री-पुरुष बैठे हाहा-हीही कर रहे थे, और 'कार्यमे व्यस्त'का बहाना करके मुझे बैठनेकी आज्ञा होती रही। मै जल-भुनकर खाक हो गया, और वहाँसे सीधा चला आया।

२२ दिसम्बर १९२२की डायरीमे मैने लिखा—"व्रजकिशोरप्रेषितोऽगच्छं चित्त-रंजनदासमहाशयसमीपे। महता कृच्छ्रेण पश्चाचामगच्छम्, किन्तु, हन्त! धनिक-सम्प्रदाय एव दोषी न काचिद् व्यक्ति। चिरमतिष्ठम्। पश्चात् 'न समय' इत्युक्तम्। . धनिकेषु श्रेष्ठानामिय दशा। मनस्यतीवानुताप। कथ स्वसिद्धान्तमुज्झित्य तत्रागच्छम्। आढ्यसम्प्रदाय एवातीव हानिकर' येन चितरंजनसदृशो जना अपि तथा कर्तु समर्था भवन्ति। कदापि न अनिर्धन. अश्रमजीवी वा श्रमजीविना पक्ष ग्रहीतु समर्थ। बहुधा तत्र वञ्चनैव स्यात्।" बडे आदमियोसे अलग रहना, तथा दूसरोके दिलकी ओर भी ख्याल करनेकी मुझे इस घटनासे वडी शिक्षा हुई, और एक तरह बडे आदमियोसे हमेशाके लिए घृणा हो गई।

गया कांग्रेसमे परिवर्तनवाद और अपरिवर्तनवादका झगडा जोरोसे रहा, इस-लिए बोधगया मन्दिरका प्रस्ताव आने ही नही पाया। उस सम्बन्धमे मुझे जो बौद्ध भिक्षुओके साथ काम करनेका मौका मिला, उससे मैने अपनेको बौद्ध धर्मके और नजदीक पाया।

२० जनवरी (१९२३ ई०)मे जिला कांग्रेस कमीटीकी बैठक जलालपुर (स्टेशन)-मे होनेवाली थी। गया कांग्रेसके बाद परिवर्तनवादी होनेसे मै जिला कांग्रेस कमीटीके

मन्त्रित्वसे इस्तीफा देनेवाला था, किन्तु काम तो मुझे वैसे ही करना था। कुआडीके चार थानोके सगठनमे कुछ प्रगति हुई थी। रुद्रनारायणने कुचायकोटमे खूब काम किया था, और उन्हीके उत्साहसे जिला सभाकी बैठक जलालपुरमे बुलाई गई थी। १३ जनवरीको अभी कुछ समय था, इसलिए मैंने मकर-सक्रान्तिको त्रिवेणी (नेपाल) चला गया। गोरखपुर जिले के सिसवा स्टेशनसे उतरकर कुछ दूर बैलगाडीपर जा हम—मेरे साथी दर्पनारायण और मै—पैदल त्रिवेणी पहुँचे। त्रिवेणी गगाद्वार (हरिद्वार)की भाँति गडकद्वार है। गडक यही पहाडोसे नीचे उतरती है। रास्तेमे तराईके जगल बहुतसे कटकर आबाद हो गये है। त्रिवेणीमे चारो ओर जगल है। इसी जगलमे, तथा गडकके दोनों तटोंपर मेला लगता है, जिसमें गोरखपुर चम्पारनके जिलो तथा नेपालके पहाडोके बहुतसे नरनारी आते है। मेलेका प्रधान भाग गडकके दाहिने तटपर रहता है। बाये तटपर एक छोटीसी पहाडी नदी आकर मिलती है। जिसके कारण इसे त्रिवेणी (त्रिधारा) कहते है। छोटी नदी नेपाल और ब्रिटिश सीमाको अलग करती है, और ब्रिटिश सीमाके भीतरकी सारी भूमि बेतिया-राजकी जमीदारी है।

मेलेमे बेचनेके लिए आई चीजोमे नेपाली नारगी और केले बहुत मीठे और सस्ते थे। नेपाली टॉघन, कम्बल, खुकडी तथा कुछ और चीजे बिक रही थी। गडक-का पानी यहाँ बहुत स्वच्छ और नीला था। मै किनारे-किनारे दो-तीन मील तक ऊपरकी ओर गया, किन्तु मुझे तो जलालपुर लौटना था, इसलिए बहुत आगे कैसे बढ सकता था। बाये तटपर बेतियाके जगलमें कई मील तक गया। एक-दो साधुओके स्थान मिले, और घोर जगलमे होनेके कारण मुझे बडे आकर्षक मालूम हुए। एक पुराने मन्दिरमें बेतियाके किसी पुराने महाराजाका शिलालेख देखा।

लौटते वक्त पैदल चलकर स्टेशन आनेकी जगह हमने नावसे बगहा तक आना पसन्द किया। नीचेका माल लेकर बहुतसी नावे त्रिवेणी पहुँची थी। सस्तेमे ही हमे जगह मिल गई। (१७ जनवरीको) दोपहर बाद हमारी नाव रवाना हुई। हम गडककी तेज धारसे नीचेकी ओर जा रहे थे, इसलिए मल्लाहोको बहुत मेहनत करना नही था, हाँ, जहाँ भेडिया (उठती लहरें) लग रही थी, वहाँ उन्हे नावको सावधानीसे बढाना पडता था। त्रिवेणीसे थोडे ही नीचे बाई तरफसे बेतियाकी नहर निकली थी; इस पानीका सुन्दर उपयोग हो रहा था। उधर मेलेकी जगह मैंने एक उजडा हुआ लकडी चीरनेका कारखाना और उसकी परित्यक्त मशीने देखी जिन्हे काफी रुपया लगाकर किसी समय नेपाल-सर्कारने खडा किया होगा।

रातको नदी-तटपर बालूकी रेतीमें हम लोग उतरे। वहीं किसी कँवरथू (महादेवके ऊपर चढ़ानेके लिए गंगाजल भरकर काँवरमें लानेवाले)ने हमारे लिए भी खाना बना दिया। तराईका जंगल बहुत दूर नहीं था, किन्तु दो तीन नावोंके आदमियों तथा जलती आगके सामने हमला करना होशियार बाघका काम न था—रेतीमें ऊपरसे बहकर आये सूखे वृक्षों और लकड़ियोंकी कमी न थी। शायद दूसरे या तीसरे दिन हम बगहा पहुँचे। यात्रा बड़ी मनोरंजक रही। कभी हम आसपासके तटोंपर लहराते खेतोंको देखते, कभी रेतीमें धूप लेते नाकों और घड़ियालोंको सोया देखते। कँवरथू लोग पुराने-पुराने गीत गाकर और भैरवलालकी प्रशंसामें गा रहे थे। जाड़ेका दिन था, इसलिए धूप असह्य न मालूम होती थी।

बगहासे रेल पकड़कर (१९ जनवरीको) हम जलालपुर चले आये। जिला-कांग्रेस-कमीटीकी बैठकके साथ एक जलूस और बड़ी सार्वजनिक सभाका प्रबन्ध किया गया था। जलूसमें पच्चीस-तीस हाथी और भारी जनता शामिल थी। सभा भी शानदार हुई। जिलेके कोने-कोनेसे आये सदस्योंका बड़ी अच्छी तरह स्वागत हुआ। कुरसीके लिए विशेष आसक्ति न रखनेके कारण मुझे इस सफलतापर प्रसन्नता होनी ही चाहिए थी। जिला सभामें परिवर्तनवादी होनेके कारण मैंने इस्तीफ़ा दे दिया, पहिले लोग मंजूर करनेको तैयार नहीं थे, मगर ज़ोर देकर मैंने इस्तीफा मंजूर कराया।

२६ जनवरीको प्रान्तीय कांग्रेस कमीटीकी बैठकमें मैं भी पटना गया था। उस वक्त प्रान्तीय कांग्रेसका आफिस गुलाबबागमें था। बैठकके बाद एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें राजेन्द्र बाबू और दूसरे नेता बोले, मुझे भी कुछ बोलनेके लिए कहा गया। हालहीमें चौरीचौराके मामलेको लेकर कितने ही राष्ट्रीय कर्मियोंको फाँसीकी सजा सुनाई गई थी। मुझे अपने व्याख्यानकी बातें याद नहीं; किन्तु उस वक्त एक बात ज़रूर कही थी—देशकी आज़ादीके लिए इस तरहके शहीदोंका खून देश-माताके लिए चन्दन होगा।

एकमा, सिसवन आदिमें साथी अच्छी तरह काम कर रहे थे, मैं मन्त्रिपदके बोझेसे मुक्त था, और उधर समय-समयपर "नवाजिन्दा"के तक़ाज़ेको पूरा करना भी मेरा फ़र्ज़ था, इसलिए सहकारियोंसे नेपाल जानेके लिए डेढ़ महीनेकी छुट्टी ली।

# ६

# नेपालमें डेढ़ मास ( मार्च-अप्रैल १९२३ ई० )

यात्रामे दो साथी हों तो अच्छा है, बशर्ते कि दोनोंका मन मिलता हो। नेपाल यात्राके लिए मैने महेन्द्रनाथसिंहको साथी चुना। वह कालेज छोडकर आये एक उत्साही तरुण थे, मेरे कहनेपर महाराजगज थानेमे काम करने गये थे। ७ फर्वरीको रक्सौल पहुँचकर खाना बनानेके लिए हमने कुछ बर्त्तन खरीदे। उस वक्त रेल यही समाप्त होती थी, और आगे पैदल जाना पड़ता था। शिवरात्रि मेलेके वक्त राहदारी (पास) मिलना आसान होता है। यही समय है, जब कि नेपालसे बाहरके हिन्दुओको बेरोक-टोक राजधानीमे जानेका मौका मिलता है, इसलिए भारी तादादमें लोग भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे आते है। बीरगजमे एक डाक्टर नब्ज देखता जाता था, फिर नेपाली हाकिमके सामनेसे यात्री गुजरते और उन्हे कागजकी एक छोटीसी चिट—राहदारी—मिल जाती। लोटा-तसला और एकाध दूसरे बर्त्तनोंके अतिरिक्त हमारे पास और ज्यादा सामान नही था, इसलिए चलनेमे कोई दिक्कत न थी। पहिले ही दिन हम जगलमे पहुँच गये। दूसरे दिन चुरियाघाटीको पारकर बहुत आगे बढे। चुरियाघाटीकी चढ़ाई कुछ मुश्किल थी। सारा मेला ही साथ चल रहा था, इसलिए उस जंगली पहाड़ी रास्तेमे हम अकेले चलनेवाले नही थे।

भीमफेरीमे खासी भीड थी। सारी धर्मशालाये और दूकाने भी भरी हुई थी। सीसागढी (चीसापानी)के लिए उस वक्त आज ऐसी अच्छी सडक न बनी थी। और जो थी उसे भी न ले हमने पगडडीका रास्ता पकडा था। महेन्द्रनाथ चलनेमे मुझसे ज्यादा मज़बूत निकले। उसी रातको जब हम शिड्-तड्मे ठहरे तो महेन्द्रनाथके गाँव (सिताबदियर)के एक साधु कृष्णदास मिले। रसोई बनाना हमारे लिए बडी कबाहतकी बात थी, कृष्णदासके साथी बननेसे हमारी वह दिक्कत जाती रही। मै तो वही कालीकमलीवाला था, और कृष्णदास थे भूरी किन्तु छोटी-छोटी जटा और भभूतवाले तपसी।

चन्दागढीकी चढाई उतनी कठिन नही मालूम हुई, और सवेरे ९ बजेके करीब हम नीचे उतर गये। हम रास्तेसे जा रहे थे, तो आदमीने आकर मालपूयेकी सदावर्त लेकर जानेके लिए कहा। जलपान करके हम वैरागी साधुओंके स्थान थापाथल्लीमे पहुँचे। आसन बगलवाले चौकके बराडेमे लगा। कृष्णदासने लकडी लेकर धुनी

लगा दी, और नेपालके माघके जाडेमे भी हम आरामसे उसके गिर्द जम गये।

मुझे यह विश्वास नही था, कि यहाँ भी परिचित निकल आवेंगे। गयामे कांग्रेसके वक्त आर्यसमाजके पडालमे मेरे व्याख्यान तथा पाली, सस्कृत, अग्रेजीके भाषान्तरोको सुननेवाले साधुओमे दो चलते-पुर्जे साधु यहाँ पहुँचे हुए थे, उनमेंसे एक तो स्थान हीमें महन्तजीपर प्रभाव जमाये ठहरे थे, दूसरे तत्कालीन तीन सरकारके साले एक राजकुमारके मेहमान थे। उन्होंने बढा-चढाकर मेरी प्रशसा करनी शुरू की। थापाथल्ली मठ पहिले सेमरौनगढके महन्तके हाथमे था, महन्तके निकालनेपर सेमरौन-गढकी भाँति यहाँ भी डीठा बैठा दिया गया, और ऐसे ही एक रमता साधुको महन्त बना दिया गया था। किसी वक्त शिकायत हो जानेपर वह भी निकाले जा सकते थे, इसलिए उन्हे बहुत फूँक-फूँककर कदम रखना पडता था। उन्होने मेरे बारेमे जो सुना, तो विना माँगे ही घी, आटा, चीनी, तथा दूसरी खानेकी चीजे ज़रूरतसे अधिक हमारे ठहरनेकी जगहपर भिजवाना शुरू किया, और इस प्रकार हमे वैरागियोकी पगत (भोजन-पक्ति)के इन्तिजार करनेकी जरूरत न थी। कृष्णदास भोजन बना दिया करते, और खाना खा घूमकर हम पशुपतिनाथ, गुह्येश्वरी, महाबोधा ही नही काठमाडो और पाटनके अनेक दर्शनीय स्थानोको देखने जाते। एक दिन (१६ फर्वरी) हम उपत्यकाके पश्चिम बूढा नीलकठ देखने जा रहे थे, जहाँ कुडमे विष्णुकी बड़ीसी शिलामूर्ति पडी हुई थी, और जहाँसे पानीका नल काठमाडो-शहरमे आया था। रास्तेमें नदीके किनारे एक जगहसे लोग कालीसी कोई चीज़ उठा-उठाकर खेतोमे डालनेके लिए ले जा रहे थे। उसे देखकर मुझे नर्म पत्थरके कोयलेका शक हुआ, दो-चार टुकडे पासमे रख लिये। लौटकर धुनीमे रखनेपर मेरा शक दुरुस्त निकला—वह वस्तुत नरम कोयला (Peat) था। उसी शामको राजपुत्र एक और राज-वशिकके साथ मिलने आये—दूसरे सन्यासीने अनन्त भाषाविद् कहकर मेरी प्रसिद्धि वहाँ कर दी थी। मैंने वार्तालापमे जब नेपाल-उपत्यकामे कोयलेकी बात कही, तो उन्होंने कहा—हमे तो इसका पता नही। मैंने एक टुकड़ा धूनीमे जलाकर दिखलाया, और वह बहुत विस्मित हुए। उस वक्त तक लोग इसे खेतोकी प्राकृतिक खाद मात्र समझते थे।

शिवरात्रि-मेलेमे भारतसे आये विद्वान् तपस्वी योगी साधु-महात्माओके दर्शनके लिए नगरके सभी श्रेणीके व्यक्ति मठोंमें आया-जाया करते है। सर्कारी अधिकारी, विशेष व्यक्तियोके लिए खास प्रबन्ध करते है। उस वक़्त स्वामी सच्चिदानन्द एक विद्वान् सन्यासी आये थे, जिन्हे राजके अतिथिभवनमे ठहराया गया था। मेरे बारेमें

तो एक जगह ठहर जानेपर मालूम हुआ था, तो भी अन्यत्र रहनेके लिए जोर दिया गया, किन्तु मैने वही रहना पसन्द किया। मिलनेवाले व्यक्तियोमे राजगुरु पडित हेमराज शर्मा भी थे। वह (१५ फर्वरीको) शामको आये थे, और हमारा वार्तालाप शास्त्रीय विषय था। सन्ध्योपासनका समय होनेपर जब राजगुरुने उसका सकेत किया, तो मैने उदयनाचार्यका यह श्लोक (कुसुमाजलिमे) "उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता" कहा। उस वक्त मैने राजगुरुको एक अच्छे पडितके रूपमे देखा, किन्तु नेपालकी राजनीतिमे उनके स्थान, तथा धन-वैभवके बारेमे नही जान पाया था।

शिवरात्रिमे पशुपति दर्शनकी भीड, सेना-प्रदर्शन आदिके बारेमे मैने अपनी दूसरी नेपालयात्रा[1](१९२९ ई०)मे लिखा है, इसलिए मै कुछ खास बातोको ही यहाँ लिखना चाहता हूँ। शिवरात्रिके दिन (१३ फर्वरीको) प्रधान-मन्त्री महाराजा चन्द्रशम्सेरकी घोडागाडी घूमते-घामते थापाथल्ली भी पहुँची। उन्हे अपने सम्बन्धीसे मेरे बारेमे मालूम हुआ था। गाडी दर्वाजेपर खडी हुई, और मुझे बुलानेके लिए आदमी गया। एक बूढा किन्तु स्वस्थ आदमी सफेद दाढी और साफा बाँधे गाडीमे बैठा हुआ था। गाड़ीके आगे-पीछे कितने ही सशस्त्र पुलिस और सैनिक अफसर थे। उन्होने प्रणाम करते हुए रहनेवहनेके बारेमे पूछा। फिर उस समयकी जबर्दस्त भारतीय उथल-पुथल असहयोगके बारेमे पूछा, और अन्तमे हमे क्या करना चाहिए इसके बारेमे भी कहा। वहाँ खड़े-खडे इन बातोपर अपने विचार प्रकट करना मुझे उचित नही मालूम हुआ, और न उसकी मेरे मनमे चाह ही थी—इसीलिए कई बार कहनेपर भी मै महाराजाके यहाँ जानेको तैयार नही हुआ था। मैने दो-चार शब्दोमे जवाब देकर छुट्टी ले ली। मै अपने आसनपर चला आया, और सवारी आगे बढ गई।

मुझे मालूम था, कि शिवरात्रिके बाद आगन्तुकोको लौट जानेके लिए पुलीस पीछे पड जाती है, और मुझे एक डेढ महीना रहना था, इसलिए मैने पहिले हीसे दस-पाँच मील दूरके कई स्थानोके बारेमे पूँछ-ताँछ कर ली थी, और देवकाली स्थानको रहनेके लिए उपयुक्त समझा था। शिवरात्रिके सप्ताह भर बाद २० फर्वरीको मै और महेन्द्र दक्षिण-कालीकी ओर चले—कृष्णदास मेलेके साथ भारतकी ओर लौट गये थे। दक्षिण कालीके आसपासकी पार्वत्य भूमि तो अच्छी थी—चारो ओर हरा-भरा जगल, कलकल करके बहती नदी, पक्षियोका कर्ण-मधुर कलरव। किन्तु, जब हमने पाँच मिनटमे पाँच भेडोंके शिरको धडसे अलग हो काली देवीपर चढते देखा, और भेडो,

---

[1] "तिब्बतमें सवा वर्ष"

बकरों मुर्गोंके रक्तसे रंजित सारा आँगन हमारी नजरोंके सामने पड़ा, तो हमारा विचार बदल गया। पूछनेपर फर्पिङ्के पास शिखरनारायणका पता लगा। हम वहाँ पहुँचे।

यह स्थान हमें रमणीय जँचा। नीचेसे ऊपर तक जंगलसे ढका था एक बड़ा पहाड़। इसकी लकड़ी काटनी मना थी, इसलिए आसपासके कितने ही और पहाड़ोंकी भाँति यह चटियल नहीं पड़ गया था। पर्वतपार्श्वसे स्वच्छ शीतल जलका एक मोटा झरना निकला था। यह पानी नलके जरिये फर्पिङ् पावरस्टेशनके लिए ले जाया जा रहा था. जंगल काटनेसे झरनेके सूखनेका डर रहता है, शायद इसी-लिए इस पर्वतके वृक्षोंको काटनेकी सख्त मनाही थी। महन्तजीको आगन्तुक साधुओं-की सेवाके लिए जहाँ पाँच-सात हँडिया (एक व्यक्तिकी खाद्यसामग्री)का राजकी ओरसे बंधान था, वहाँ उपयुक्त लकड़ी काटनेका भी अधिकार था। पर्वत-वक्षमें आगेकी ओर झुकी एक चट्टान थी, जिसकी आकृति सर्पाकार है, इसीलिए वहाँकी विष्णु-मूर्तिको शिखरनारायण कहा जाता है। उक्त चट्टानकी एक ओर एक छोटीसी गुफा थी. सामने उसका फर्श। चन्द सीढ़ियाँ नीचे उतरकर फूलते झरनेके जलको पारकर धर्मशाला—एक दोतल्ला नेवारी ढंगकी इमारत—थी। मैंने गुफामें रहना पसन्द किया, और महेन्द्रको धर्मशालाके कोठेमें रहनेको कहा। भोजनकी व्यवस्था पासके गाँवके एक ब्राह्मण गृहस्थने हम कर दी। वह बना बनाया भोजन रोज हमारे पास पहुँचाने लगा। मैंने कुछ दिनों तक एक दिन छोड़कर अन्न खानेका नियम किया था, किन्तु जब उसे अनिष्ट होते देखा तो रोज खाने लगा।

हम लोग इस स्थानपर दो सप्ताह ठहरे। धनरासे संस्कृत और अंग्रेजीकी पाँच-सात पुस्तकें ले गये थे उन्हें पढ़ना. आपसमें बातचीत करना और इससे जो बचता था उस समयको मैं चिन्तन और मननमें लगाता था। लोग बतला रहे थे, कि आँगनमें कभी-कभी भालू आता है, किन्तु मैंने उसे किसी दिन नहीं देखा, हाँ, रातको जानवरोंकी कुछ अपरिचित आवाजें जरूर सुननेमें आती थीं। यदि कोई जानवर मेरी गुफाकी ओर आता तो वहाँ मेरे पास रक्षाका कोई साधन नहीं था, धुँआके डरसे उस छोटीसी गुफामें मैं आग भी बहुत कम जलाता था। महेन्द्रके पास एक कम्बल था, सर्दी ज्यादा लग रही थी, ब्राह्मणने रजाई-बिछौना भेज दिया। एक दिन लकड़ी जलाकर सो गये, कहींसे कपड़ेपर आग पड़ गई, सब जल गया. समयपर नींद खुल गई इसलिए खुद तथा वह लकड़ीका घर भी बच गया।

शिखरनारायण हिन्दुओं और बौद्धोंका सम्मिलित तीर्थ है, इसलिए कभी-कभी वहाँ तिब्बती लामा भी आते थे। एक-दो नेवार बौद्ध तो रोज ही पूजाके लिए आते।

उनसे मैंने किसी बौद्ध पंडितका नाम पूछा, तो उन्होंने पाटनके वज्रदत्त वैद्यका नाम बतलाया। शिखरनारायणमें काफी देवोत्तरसम्पत्ति लगी मालूम होती है। सवेरे ही बाजा लेकर कुछ गानेवाले चले आया करते, और अधिकतर विनयपत्रिकासे, पराती (प्रातः गान) गाया करते।

शिखरनारायणका पानी पावर-स्टेशनपर जाता है, एक बार वहाँ काम करने-वाले दो पंजाबी सज्जन (पं० प्यारेलाल और ठाकुर लालसिंह) हमारे यहाँ तक पहुँचे, और अपने यहाँ आनेका निमन्त्रण दे गये। ६ मार्चको स्थान छोडनेपर हम पावर-स्टेशन गये। इसके ऊपरवाले गाँवोंकी हालत बहुत बुरी थी। खेत बनानेके लिए लोगोंने चोटी तकपर वृक्ष नही रहने दिये। झरनोका वृक्षो और उनकी जडोसे खास सम्बन्ध होता है, इसलिए वृक्षोंके अभावमे वैसे ही झरने बहुतसे सूख गये थे। अब रहा-सहा पानी पावर स्टेशनमे बिजली तैयार करनेके लिए जा रहा था, जिससे खेती सिर्फ वर्षाके भरोसे ही हो सकती थी, और इन गाँवोकी अवस्था बदतर हो गई थी। पावर-स्टेशनमे हम लोग दोपहर तक रहे। दोनो परिचित सज्जन ओवरसियर थे, बडा इजीनियर एक अग्रेज था, जिसे मुफ्तमे एक हजार रुपया दिया जाता था, यद्यपि उससे कमपर भारतीय इजीनियर मिल सकता था। वहाँ एक कप्तान साहेब भी रहते थे, जो शायद पुलीसका काम करनेके लिए।

वहाँसे हम पाटन पहुँचे। वज्रदत्त वैद्यका पता आसानीसे लग गया। वह एक 'विहार' (गृहसमूहमे)मे कई और गुभाजू-परिवारोके साथ रहते थे, उम्र साठसे ऊपर होगी। नेपाली बौद्धोंकी परम्परा तथा पूजापाठके बारेमे उनको कुछ ज्ञान था, किन्तु सस्कृत सिर्फ पढ लेना भर जानते थे, और बौद्ध-धर्मके परिचयमे वे सहायक न हो सके। उन्होंने नेवार- और रजन-अक्षरमे लिखी कुछ पुस्तकें दिखलाईं। खैर, मेरे ज्ञानमें तो वह वृद्धि नही करा सके, किन्तु उनका बर्ताव बहुत अच्छा रहा। रातको अपने यहाँ ही रखा। शामको जब पुलिसका आदमी हम लोगोका नाम-धाम लिखने आया, तब हमे नेपाली पुलिसकी तत्परताका पता लगा। वज्रदत्तजी पाटनके एक अच्छे वैद्य थे, वैद्यक उनका खान्दानी पेशा था। उनका लडका भी वैद्य था। पहिली स्त्रीके मरनेपर पिताने नई शादी की थी, इसलिए पिता-पुत्रमे बनती न थी। नेपालके बौद्धोंमे आम तौरसे विधवाविवाह हो जाता है, और प्रौढ या वृद्ध विधुरको शादी करनेमे कोई दिक्कत नही होती। यही मुझे एक दूसरे बौद्ध पडित रत्नबहादुरसे भेट हुई। वह सिद्धान्तकौमुदी कुछ पढे हुए थे, किन्तु साहित्यमे प्रगति न होनेसे सस्कृत भाषा समझने-बोलनेमे दिक्कत अनुभव करते थे। बौद्ध-साहित्यके कुछ ग्रथोको

उन्होंने दिखलाया, और कुछ बातें भी बतलाई। तिब्बतमे वह रह चुके थे, और तिब्बती कन्जुरके कुछ ग्रथोकी सूची भी उन्होने बनाई थी। मै ज्यादा रह नही सकता था, इसलिए भी रत्नबहादुर पडितके ज्ञानसे ज्यादा फायदा नही उठा सका। दोपहरका भोजन उनके मित्र एक बडे सौदागरने कराया, इनकी कई कोठियाँ तिब्बतमें हैं, और कह रहे थे—यदि आप चलना चाहे तो हम आपको तिब्बत भेज सकते है। महेन्द्रकी तबियत तो हो गई, किन्तु मै डेढ मास बाद छपरा लौटनेकी बात कहकर आया था।

हम थापाथल्लीमे फिर तीन-चार दिन ठहरे। एक दिन (१० मार्च) राजगुरु हेमराज शर्माके यहाँ गये—पुस्तकागारके वही प्रधानाधिकारी थे। बडा महल, डचोढी-पहरेदार सभी, बाकायदा राजसी इन्तिजाम था। उस दिन शामको ऊनी चद्दर नेपाली पायजामा और सादी टोपी पहिने हुए व्यक्तिको देखकर उसके इस वैभवका अनुमान नही हो सकता था। सूचना देनेपर उन्होंने भीतर बुलाया, और दर्वाजे तक स्वागतार्थ आये। देखा एक बडे सजे हुए हालमे फर्शके कालीनपर बहुतसी सस्कृत पुस्तके पडी हुई है, कितने ही और पडित बैठे हुए है। वज्रदत्त वैद्यसे मुझे मालूम हो गया था, कि मध्यदेशसे आये स्वामी सच्चिदानन्द पशुबलिका बडे जोर-शोरसे खडन कर रहे है, और कह रहे है कि यह वेद-विरुद्ध और धर्म-विरुद्ध है; जिसके मारे ब्राह्मण पडित परेशान है, महाराज भी पशुबलिके विरुद्ध होते जा रहे है। यहाँ इन किताबोको देखनेमे वैद्यकी बात स्मरण हो आई, और गुरुजीसे बात करनेपर तो वह और स्पष्ट हो गई। पशुबलिके लिए यहाँ शास्त्रीय प्रमाण ढूँढे जा रहे थे। स्वामी सच्चिदानन्द अपने पक्षकी पुष्टिमे बुद्ध-वाक्य भी उद्धृत किया करते थे। मुझे उस वक्त कुमारिल (श्लोकवार्तिक)का एक श्लोक याद आया जिसमे कहा गया है कि बुद्ध आदि वेदबाह्योका वाक्य उचित होनेपर भी 'कुत्तेके चमडेमे रखे गायके दूध' ('गोक्षीर श्वदृतौ धृत')की तरह त्याज्य है। गुरुजीने श्लोकका पता पूछा। मैंने निकालकर दिखला दिया। उन्होंने आग्रह किया, कि मै भी इस विवादमे स्वामी सच्चिदानन्दके विरुद्ध भाग लूँ, किन्तु भीतरसे तो मै अभी आर्यसमाजी विचारोंको मानता था, जिसमे स्वामी सच्चिदानन्दके पक्ष हीकी पुष्टि की गई है।

एक बार फिर हम महाबौधा गये। वहाँ चीनिया लामासे मिले। चीनिया लामा उस वक्त हवनमे लगे हुए थे, तो भी उन्होने बैठाकर थोड़ी देरतक बातचीत की। उस वक्त उनके लड़कोको मैंने नही देखा था, हाँ उनकी एक लड़की वहाँ जरूर थी, जिसके कानोके बीचमे सोनेका बड़ासा कर्णफूल था। चीनिया लामा बूढे थे, उनके गलेमे घेघ था।

नेपालसे लौटनेके लिए राहदारीकी जरूरत होती है, और हमे उसे मिलनेमे दिक्कत नही हुई। पावर-स्टेशनके पजाबी भाइयोने उधर हीसे जानेके लिए आग्रह किया था। इस प्रकार हम चन्द्रागिरिकी चढाईसे भी बच सकते थे, इसलिए हम उसी रास्ते लौटे। तीन-दिन वहाँ रहे। वहीसे भीमफेरी तकके लिए एक भरिया (भारवाहक) और पाथेय मिल गया, और १८ मार्चको हम भारतके लिए रवाना हुए। हमारे रास्तेके पाससे बिजलीके खम्भे गये हुए थे, किन्तु अभी उनपर तार नही लगे थे। भीमफेरीसे काठमाडो तक रोप-लाइन तैयार की जा रही थी, उसीके लिए यहाँसे बिजली जानेवाली थी।

भीमफेरीसे आगेके पडाव तक हम दोनो साथ थे। अब मुझे कुछ बुखारसा हो आया, और चलना मुश्किल मालूम होने लगा, उधर इस बातसे अपरिचित महेन्द्र आगे निकल गये। मेरे पास एक पैसा भी नही था, (सिर्फ एक-दो बर्त्तन रह गये थे)। एक खाली गाडी आ रही थी, कहनेपर गाडीवानने बैठा लिया। रातको हम चुरिया-घाटीसे और नीचे जगलमे ठहरे। इधर बाघ, हाथी रहते है। खतरेसे बचनेके लिए पचीस-तीस गाडीवानोने अपनी गाडियोकी चारो ओरसे किलाबन्दी कर ली, बीचमे ही बैल रखे गये, और वही बडे-बडे कुन्दोकी आग जला दी गई। आगके पास बाघ नही फटकता, इसका उन्हे पूरा विश्वास था।

बैलगाडी सीमान्तके पासवाली नदीके तटपर उस कुटियाके सामनेसे गुजरी, जिसमे मैने बडी ज्वालामाईसे आये साधुको देखा था, किन्तु मै वहाँ ठहरा नही। मुझे क्या मालूम महेन्द्रनाथ वहाँ बैठे मेरा इन्तिजार कर रहे है। रक्सौलमे उसी दूकानदारको बर्तन लौटा मैने दो रुपये तेरह आने पाये, और (२२ मार्चको) सीधा छपराके लिए रवाना हो गया।

७

# हज़ारीबाग-जेलमें (१९२३—अप्रैल १९२५ ई०)

बाबू माधवसिंहके घरपर पहुँचते ही मालूम हुआ, कि पटनाके भाषणके सम्बन्धमें मेरे ऊपर वारट निकला है। साथियोंने परामर्श दिया—बैठे-बिठलाये दो-तीन वर्षके लिए जेलमे चले जानेकी जगह अच्छा है, कि मै इस वक्त हट जाऊँ। किसीने वारटके

बारेने मेरे पास नेपालसे चिट्ठी भी भेजी थी, किन्तु वह मुझे मिल न सकी। यदि मिल गई होती, तो तिब्बतकी ओर जानेका मुझे इतना आकर्षण था, और महेन्द्र भी इतना जोर दे रहे थे, कि हम उधरको ही चल दिये होते; किन्तु अब छपरा आकर इस तरह छिपकर चला जाना मैंने पसन्द नहीं किया। मैंने गिरिफ़्तार होनेका निश्चय किया, और अगले दिन पुलीसको सूचना दे दी—श्री राजगोपालाचारीके व्याख्यानके समय उसी सभामें मैं मौजूद रहूँगा, आप वहाँ मुझे गिरिफ़्तार कर सकते हैं।

कालेजियट स्कूल (वर्तमान विश्वेश्वर-सेमिनरी)के हातेमें बड़ी सभा थी, हजारों लोग जमा थे, इसलिए पुलिसने उतने बड़े मजमेमें मुझे गिरिफ़्तार करना पसन्द नहीं किया। पहिली जेलयात्रासे आनेके बाद छपरामें बाबू माधवसिंहका घर ही मेरा निवासस्थान बना था। शामको पुलीस-आफिसरने आकर कहा—पटना जाना होगा, और जिस वक्त आपको सुभीता हो, हम उसी वक्त गिरिफ़्तार करेंगे। मैंने अपनेको तैयार बतलाया, और उसी रात दो सिपाही मुझे ले पटना पहुँचे। रातको बाँकीपुर कोतवालीकी हवालातमें बन्द रहा। दूसरे दिन रविवार था, इसलिए वे घूमते-घामते एस्० डी० ओ०के बँगलेपर ले गये। धूप तेज मालूम होती थी, ऊपरसे ज्वरकी कमजोरी भी थी, इसलिए एक्केपर भी इतनी दौड़-धूप मुझे पसन्द न लग रही थी। दोपहरको बाँकीपुर (पटना) जेलके तनहाई-सेल्‌में पहुँचा दिया गया।

जाड़े ही जाड़ेमें मैं नेपाल चला गया, और अभी तुरन्त ठंडी जगहसे गर्म जगहमें आनेके कारण मुझे गर्मी और भी असह्य हो रही थी। उसके ऊपर सेल्‌में बन्द किया गया, जहाँ हवाका रास्ता ही न था, और पटनाके मच्छरोंके आक्रमणकी तो बात ही न पूछिये। पंडित वासुदेव पांडे उस वक्त जेलर थे। उनका बर्ताव अच्छा था। उन्होंने स्कूलोंके लिए एक वर्णमालाकी पुस्तक लिखी थी। मेरे बारेमें विशेष जाननेपर उनका आग्रह हुआ कि मैं उनके लिए भारतका एक इतिहास लिख दूँ। मैंने शुरू भी किया, किन्तु आधी दूर तक पहुँचनेसे पहिले ही सजा हो गई। हफ़्ते या अधिककी हाजतके बाद मुझे एक वार्डमें तब्दील किया गया। यहाँ रातको कुछ हवा आती थी, किन्तु जमीनपर कम्बल बिछाकर लेटे-लेटे मच्छरोंके मारे सोना हराम था।

मुझपर भारतीय दंडविधानकी धारा १२४ (ए)के अनुसार राजद्रोह का मुक़द्दमा चला था। पुलीसकी दो या तीन रिपोर्टें—जो शार्टहैंडमें नहीं थीं—तथा कुछ गवाह सर्कारकी ओरसे मेरे विरुद्ध पेश किये गये थे। सर्कार मुकदमा चलावे और सर्कारके ही प्रबन्ध-विभागका एक नौकर—सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट—न्यायाधीश बने, फिर

वहाँ दड छोड दूसरे फैसलेकी उम्मीद ही क्या हो सकती है ? सफाई मैने नही दी, सिर्फ एक लिखित वक्तव्य दिया, जिसमें भाषणको रिपोर्टसे भी ज्यादा कडा कह, इल्जामको स्वीकार किया, शायद भाषण 'देश' (पटना)मे छपा था। मजिस्ट्रेटने दो सालकी सादी कैद दी। धन्यवाद दे मैं जेल चला आया, और दो साल जेलमें बन्द होनेके लिए मुझे जरा भी अफसोस नही हुआ। उसका कारण था। राजनीतिमे भाग लेनेपर बाहर काममे फँसे रहनेके कारण कोई गम्भीर अध्ययन हो नही सकता था, इधर देशमे भी राजनीतिक शिथिलता आ गई थी, जिससे बाहर रहकर ज्यादा काम करनेकी आशा तो थी नही, जेलमें पढना-लिखना तो अच्छी तरह होगा, यही ख्याल मेरे दिमागमे उस वक्त काम कर रहा था।

सज़ाके एक या दो ही दिन बाद मुझे बक्सर जेल भेज दिया गया। स्टेशनपर मैंने कई पोस्टकार्ड लिखे, जिनमे एक नेपालके अल्प परिचित उस राजकुमारको भी लिखा था। जेलमे पुस्तकोकी अवश्यकता होगी, और उसके लिए कुछ रुपये भी चाहिए—यह सोचना ठीक था, किन्तु उसके लिए एक साधारणसे परिचयके बलपर किसीसे रुपये माँग बैठना बुद्धिमानी नही समझी जा सकती। किन्तु, यह ख्याल चिट्ठी डाल देनेपर आया। पछतानेसे क्या फायदा ? आदमीमें, आखिर बुद्धिमानीसे बेवकूफीका माद्दा ज्यादा होता है।

जेलमे हम पिछली बार जिस वार्डमे थे, उसीकी एक कोठरीमें—कमरेमे नही—रखा गया। मालूम हुआ, शकराचार्य स्वामी भारती कृष्णतीर्थ भी यही अपने मुँगेरके भाषणके लिए सालभरकी सजा भुगत रहे है, किन्तु वह अलग रखे गये थे। सुप्रेटेंडेट कप्तान बर्क जब मेरी कोठरीके सामने आया, तो मै खडा तो हो गया, किन्तु 'सर्कार सलाम'की आवाज़पर मैंने सलाम नही किया। बर्क आग-बगूला हो गया, और सजा देनेकी धमकी देकर चला गया। मुझे उसकी पर्वाह नही थी। पीछे जेलरने आकर समझाना शुरू किया। मैने सलाम करनेसे जब बिल्कुल इन्कार किया, तो उन्होंने कहा—किन्तु शकराचार्यजी भी तो सलाम करते है, यदि वह कह दे तब तो एतराज नही होगा ? और उन्होंने शकराचार्यजीकी राय मँगवा दी। मुझे अब झगड़ा मोल लेना पसन्द नही आया।

पिछली जेलयात्रामे मैने 'कुरानसार'को सस्कृतमें लिखा था। अबके, पटना हीमे उसका हिन्दी-अनुवाद शुरू किया, और यहाँ आनेपर पहिले उसी कामको खतम किया। मुश्किलसे हफ्ते भर बीते थे, कि सर्कारी हुकुम आया, कि सभी सादी कैदवाले राजनीतिक कैदियोको हज़ारीबाग भेज दिया जावे, और इस प्रकार स्वामी शकरा-

चार्य, मेरा—और शायद मदनलाल जोशी तथा रासबिहारीलाल भी तब तक बक्सर पहुँचे हुए थे—हजारीबागके लिए तबादला हो गया।

पटना जक्शनपर आनेपर मालूम हुआ, कि गयाकी ट्रेनमे बहुत देर है। शकराचार्यजीने गगास्नान का प्रस्ताव रखा। सिपाही भी राजी हो गये सामान स्टेशन पर छोडा, सिपाहियोने वर्दी-पेटी उतार धोती-अँगोछा हाथमे लिया; हम बाँकीपुर मैदान होते गगाकी तरफ जा रहे थे; इसी समय किसी परिचित आदमीने उस तरह मुक्त हो साथियोके साथ जाते देख, इतनी जल्दी छूट जानेके लिए मुझे बधाई दी। उन्हे आश्चर्य हुआ, जब मैंने अस्ली बात बतलाई।

गयामे भी हजारीबाग-रोडकी गाडीके लिए हमे काफी प्रतीक्षा करनी पड़ी। स्वामी शकराचार्यका कोई आदमी बाहरसे उनके फलाहार आदिका इन्तिज़ाम करनेके लिए बक्सरमे रहता था, वह यहाँ भी साथ था, इसलिए हमे सर्कारकी दी हुई ढाई आने रोजकी भारी रकमपर गुज़ारे करनेकी नौबत न आई।

हमारी मोटरबस सवेरे हजारीबाग जेलके फाटकपर पहुँची। फाटकपर हमारी सब चीजोकी जाँच हुई। मेरी पुस्तकोमे सिंहाली अक्षरमे पाली मज्झिमनिकाय था, जिसे मैं उस वक्त रोज़ नियमसे एक घटा पढता था। जेलरने लिपि, भाषा और विषयका पता न पानेसे उसे नही दिया। मैंने इसपर अनशन कर दिया। बक्सर जेलमे पहिली यात्राके वक्त भी एक या दो दिन अनशन करना पड़ा था, किन्तु उस वक़्त जेलवालोंके दुर्व्यवहारके विरुद्ध सारी जमाअतने अनशन शुरू किया था। अबके मैं अकेले था। जेलके गोरे जेलर मिस्टर मीककी सख्तियोंके बारेमे मैं काफी सुन चुका था। उसने आकर धमकी दी, और अनशन छोड़नेके लिए कहा, किन्तु मैंने उसे नही माना। स्वामी शकराचार्यसे कहनेपर उन्होने कह दिया—उनकी बौद्धधर्म पर श्रद्धा है, यह उनकी धार्मिक पुस्तक है, इसलिए हम मजबूर नही कर सकते। थोड़ी देरमे मज्झिम-निकाय मेरे पास चला आया। कुछ दूसरी पाली पुस्तकोंको सेसरके पास भेजनेका मैंने विरोध नही किया।

जेल-लाइब्रेरीमे पुस्तकें नहीके बराबर थी। हमारे पास भी गिनी-चुनी पुस्तकें थी। कागज, कलम, पेंसिल रखनेका हमे अधिकार न था। तो भी दिन काटना मुश्किल नही था। रोज़ डेढ-दो घटे स्वामीजीका अग्रेज़ीमे भिन्न-भिन्न राजनैतिक विषयोंपर व्याख्यान होता। उनके फलाहारकी ठीक व्यवस्था तथा पूजापाठका सरंजाम करनेकी ज़िम्मेवारी मैंने अपने ऊपर ली थी, इसलिए मुझे उनसे बातचीत करनेका और भी ज्यादा मौक़ा था। पहिले हमे दो नम्बरमे रखा गया। उस वक़्त

हमारी कोठरियोंसे सटी पिछली पंक्ति—वार्ड नम्बर एक—मे उडीसाके पडित गोपबन्धुदास, भगीरथ महापात्र ग्रादि रहते थे। हमे एक दूसरेसे मिलनेकी इजाज़त नही थी, और दीवारके ठोस रहनेसे आवाजका पहुँचाना मुश्किल था, तो भी हमने बातचीतका रास्ता निकाल लिया था। स्वामीजी रोज़ कुछ सस्कृत पद्योकी रचना करते, और इसके लिए उन्हे भी रद्दी कागजके टुकडो तथा पेंसिलका 'जोगाड' करना पडता था। शायद एक और दो वार्डोंके बीच सम्बन्ध स्थापित होनेकी बात मालूम हो गई या क्या, थोड़े ही समय बाद, हमे 'पजाबी' सेलमे भेज दिया गया। इस वक्त तक भागलपुरवाले साथी छूट चुके थे। युद्धके समय लाहौर षड्यन्त्रमे सजा पाये कैदियोको, सबसे सुरक्षित समझ, हजारीबाग़ जेलमे भेजा गया था—स्टेशनसे चालीस मील दूर, शहरसे बिल्कुल अलग-थलग, राजनीतिक जागृतिसे वचित यह स्थान उस वक्त इसके लिए उपयुक्त भी था। उन्ही पजाबी कैदियोको दड देनेके लिए ये सेल् बनाये गये थे, इसीलिए इन्हे पजाबी-सेल् कहा जाता था। चार सेल् थे, सामने हर सेल्का ४, ५ हाथ लम्बा-चौडा ग्राँगन, फिर ४ हाथ चौडा एक लम्बासा सम्मिलित ऑगन था। शाम होते ही हम सेल्मे बन्द कर दिये जाते, दिनमे सम्मिलित ऑगन तक और पेशाब पाखाने के लिए उसके बाहरके लोहेके सीकचोके घेरेमे आ सकते थे। दूसरे कैदियोको हमारे सामने तक आने नही दिया जाता था।

जेलर मिस्टर मीकसे पहिले ही चख-चुख हो गई थी, इसलिए पहिले तो वह नाराज रहा, पीछे उसे यह मालूम हो गया, कि मै पढने-लिखनेमे लगा रहनेवाला आदमी हूँ, इसे ख़ामख़ाह अपने हैरान होना और दूसरोको हैरान करना पसन्द नही। फिर वह नर्म पड़ गया। पहिले उसने अपनी निजी पुस्तकोमेंसे कितनी ही मुझे पढनेको दी। पजाबी सेल्में मुझे ख्याल हुआ—पढने-लिखनेका और साधन तो है नही, क्यो न इस समयको गणितके अध्ययनमे बिताया जाये। लडकपनमे मै गणितमे बहुत तेज़ था, दयानन्द-स्कूल (बनारस)मे सातवी क्लासमे जितना अल्जबरा पढा था, उससे आगे नही बढ सका। स्वामी शकराचार्य जहाँ सस्कृत भाषा, साहित्य, दर्शनके प्रौढ विद्वान् थे, वहाँ अग्रेजी और गणितके भी चतुर पडित थे। उन्होने इस रायको पसन्द किया। मीकसे कहनेपर उसने तुरन्त स्लेट-पेंसिल मुझे दे दी। अब मै गणितमे लग गया। बीजगणित, त्रिकोणमिति, क्वार्डिनेट ज्यामिति मुझे तो बहुत दिलचस्प मालूम होती थी। महीनेपर महीने बीतते गये और मै सारा समय गणितमे लगाने लगा, यह सिलसिला तभी टूटता, जब मुझे पेचिश हो जाती, और उसके लिए अस्पताल जाना पड़ता। प्रारम्भिक तीन-चार महीनोंमे मुझे बराबर पेचिश हो जाया करती।

अस्पतालमें रेंडीका तेल पी-पीकर चगा हो लौटता और चन्द दिनो बाद फिर वही बात। तब सुपरिटेंडेंट मेजर ली—जो हजारीबागके सिविल सर्जन भी थे—ने दो पाव-रोटी, दही और चीनी हमेशाके लिए बाँध दी। सबेरे मै उसे खाता, दोपहरको रसोइयाँ डेढ पाव आटेका एक मोटासा टिक्कर बनाकर लाता, और उसके बाद मै खाना नही खाता। हजारीबाग जेलके सारे निवासमे खानेका यही नियम रहा।

मेरे कुछ रुपये जमा थे, मैंने उनसे अपने लिए कुछ पुस्तके मँगवाई। पीछे मीक साहबने कागज, कलम, स्याहीकी भी सुपरिटेंडेंटसे इजाजत दिलवा दी, किन्तु यह स्वामीजीके छूटनेसे थोडा ही पहिले। उच्च बीजगणित, सरल त्रिकोणमिति, ऑपटिक्स (दृष्टिशास्त्र) आदिको समाप्त कर मैं गोल-त्रिकोणमिति पढ रहा था, और ज्योतिष-शास्त्रका आरम्भ हो गया था, जब स्वामी शकराचार्य छूटकर चले गये। मुझे उनके जानेका बडा अफसोस हुआ, किन्तु उनका जेलमें रहना भी तो वांछनीय नही समझा जा सकता। मैंने उनके सगका पूरा फायदा उठाया। और कोई काम न रहनेसे, पाठ-पूजासे बचा समय—जो दिनमे कई घटा होता—वह मुझे देते। वह बड़े प्रेमसे पढाते, उनके पढानेका ढग बडा आकर्षक था। बीजगणितके सूत्रोको कठस्थ करवाने-की जगह उन्हे वह मुझसे सिद्ध करवाते। बीजगणितमें अकगणित अन्तर्हित है, इसे उन्होंने मुझे पहिले ही पाठोंमे बतला दिया। पढाते वक्त पश्चिमके कितने ही प्रकाड गणितज्ञो, दार्शनिकोकी कथाये सुनाते। कभी-कभी हम भारतकी राजनीतिक, सामाजिक अवस्थाओपर भी बहस करते। सामाजिक बातोमे वह बहुत अनुदार थे। मलाबारके नम्बूदरी ब्राह्मणोके छोटे पुत्रोका जातिमे विवाह-अधिकारसे वचित हो, नायर-कन्याओंके साथ 'मुडू सम्बध' (चार हाथकी चादर डाल कन्याको अपनी एक मात्र रक्षिता बनाना) करनेपर जब मै आक्षेप करता, तो वह उत्तेजित हो कह उठते—तुम्हे वास्तविकता मालूम नही, इस प्रथाको, वहाँ जाकर देखो, वे कितना पसन्द करते है। वह यह समझनेकी तकलीफ गवारा नही करते थे, कि स्त्री तो ब्राह्मणपुत्रको पति माननेके लिए बाध्य की जावे, और पुरुष अपनेको सर्वबन्धन-मुक्त समझे, वह स्त्रीको नीच समझ उसके हाथका पानी तक न स्वीकार करे। मैं इसे मलाबारके ब्राह्मणोंकी पर-वचनाका उदाहरण देते हुए कहता—"कनिष्ट पुत्रोको तो इन नम्बूदरीपादोंने दायभागका अनधिकारी बनाया, साथ ही नायरोमे सम्पत्तिकी स्वामिनी सिर्फ कन्याओंको माना, जिसमे उनके कनिष्ट पुत्र जामाताके सुखको भी भोगें और स्त्रीके भरण-पोषणकी उन्हे चिन्ता भी न करनी पडे।" उस समय उनके कान लाल हो जाते। किन्तु यह सब कोप उनका बहुत ही वात्सल्यपूर्ण होता। एक बार मैंने

उलटा पक्ष ले वर्णव्यवस्थाको जन्मगत साबित करते हुए सत्यकाम जाबालकी जबाला ब्राह्मणी तथा एक ब्रह्मर्षिकी सन्तान बनानेकी खीचातानी शुरू की। स्वामीजी हँसते हुए बोले—क्यो मुझे चकमा देते हो, मै जानता हूँ, तुम्हारा क्या विचार है। उनका स्नेहपूर्ण बर्ताव, उनका विद्याके प्रति अनुराग पैदा करनेका तरीका ऐसा था, जिसे भूलना मेरे लिए असम्भव था।

स्वामीजीके जानेके बाद, मै अस्पतालमे शायद पेचिश लेकर चला गया था, जब कि 'बाईसवी सदी'को लिख डालनेका ख्याल आया, और लिखनेमे इतना तन्मय रहता, कि कई रातो तो भिनसार हो जाने, या पौ फट जानेपर ही कलम रुकती थी। दिनको लिखनेका काम कम, पढनेका ज्यादा करता था। दिनमे कभी-कभी कैदियोंके आत्मचरितोंको भी सुनता। अमृतसर जिलेका एक डाकू बूढसिह पाँच सालकी सजा लेकर आया था। वह अपनी डकैतियो, अपनी प्रणयलीलाओ, तथा उदारताओके बारेमे बतलाता था। उसका छोटा भाई—वह सिक्ख नही था—तातानगरमे काम करता था, उसका अभी ब्याह नही हुआ था। बूढसिह कह रहा था—भावे (चाहे) चूडी (मेहतरानी) ही क्यो न मिले, उसका ब्याह करके छोडँगा। बूढसिहके कोई सन्तान न थी। शाहाबादका देवनन्दन एक गँवार अहीर था, जब कि पहिलेपहिल कलकत्ता पहुँचा था। किन्तु वहाँ गुडोंका ससर्ग हुआ। उसने डडा और छुरी चलाना, चोरी और बहुत करके धमका कर पैसा ऐठनेकी विद्या सीखी, अच्छे कपडे-खानेकी आदत डाली, और वह गँवार देवनन्दनकी जगह एक नागरिक आदमी बन गया। वह दो सालोके लिए आया था।

अस्पतालसे छूटनेपर मुझे पहिले नम्बरमे रखा गया। इस वक्त तक पंडित पारसनाथ त्रिपाठी 'देश'के सम्पादक दो सालकी सजा भुगतनेके लिए चले आये थे। वह हिन्दीके दर्जनो ग्रथोंके लेखक और अनुवादक थे, और अग्रेजीसे अनभिज्ञ होना उन्हे खटकता था। उन्होने अग्रेजी सीखनेकी इच्छाके साथ उसकी कष्टसाध्यतापर भय प्रकट किया। मैने कहा—मै आपको ऐसे ढगसे अग्रेजी पढाऊँगा, कि दो-तीन घटा रोज देनेपर आठ मासमे आप साधारण अग्रेजी पुस्तकोको समझने लगेगे, किन्तु साथ ही पहिलेपहिल शुद्ध अग्रेजी लिखने-बोलनेका ख्याल छोडकर सिर्फ अर्थ समझनेकी ओर ही आपको ध्यान देना होगा—शुद्ध बोलना-लिखना तो हमारे यहाँके पन्द्रह-पन्द्रह, सत्रह-सत्रह वर्ष लगानेवाले अधिकाश एम्० ए०, बी० ए० लोगोको नही आता, तो आपको उसके लिए चिन्तित होनेकी क्या अवश्यकता? मिस्टर मीकने अपनी लड़कीकी पढी हुई बालकहानियोको भेज दिया, और व्याकरणपर बिना इशारा किये

मै उन्हीको पढाता रहा। पढनेके बाद और पाठारभसे पहिले एक बार पाठ देख जानेकी हिदायत थी। आठ महीना बीतते-बीतते त्रिपाठीजी दक्षिण-अफ्रीका और रूसो-जापानी युद्धके सम्बन्धमे 'टाइम्स' (लन्दन) के विशेष सवाददाताओंकी पुस्तके जब समझकर समाप्त कर ली, तो उन्हे भी रमशा बादशाहके सस्कृत काठिन्यकी भाँति अग्रेजी भाषाका काठिन्य—जहाँ तक पढने समझ लेनेका सम्बन्ध है—असत्य मालूम होने लगा।

एक नम्बरकी एक घटना है। दिनको तो मै पढ लेता था, किन्तु रातको चिराग़के विना पढना नही होता था, और समयकी बर्बादी मुझे अखर रही थी। चकिया (भोरेथाना, सारन) के पचानन तिवारी पाँच सालकी सजा काट रहे थे, और साधारण रसोईघरमे रसोइया थे। उनको मेरी दिक्कत मालूम हुई, तो एक दिन बिना पूछे ही सेरभर कडवा तेल लेकर मेरे सेल[1]मे आये। सिपाहीने देखते ही चुपकेसे आकर हेडवार्डर (बडे जमादार) सर्दार कृपासिहको खबर दी। वह पहुँच आये। मेरे लिए पचानन दडित हो, यह ख्याल आते ही मेरा मन विचलित होने लगा। मैने कृपासिहसे कह दिया—तेल मैने मँगाया है, रातको चिराग बालनेके लिए। मुझे दड होना चाहिए। खैर, बात वहीकी वही रह गई।

युद्धके दिनोमे जब कि हजारीबागमे लाहौर षड्यन्त्र-केसके कैदी आये, उसी वक्त एक एग्लो-इडियन पुलीस इन्स्पेक्टर मीकको जेलर बनाकर भेजा गया। जेलमें वह कैसा इन्तिज़ाम कर सके, इसका तो यही उदाहरण है, कि सब पहरा-चौकी रहते भी एक दर्जनसे अधिक राजनीतिक कैदी जेलसे निकल भागनेमे समर्थ हुए। हजारीबाग जेलमे हजारो आदमियोंके खाने-कपडे घर-दवाका इन्तिज़ाम करना पडता है, जिसमे लाखो रूपया सालानाका ख़र्च होता है। कैदियोके लिए खर्च होनेवाले पैसेमेसे जितना हडप किया जा सके, उतना हडप किया जावे, यह जेलका सनातनधर्म बहुत पहिलेसे चला आया था। मिस्टर मीक भी इस प्रलोभनसे न बच सके, और आगे तो गोरा होनेसे वह निर्भीक हो बडे-बडे खुर्राट जेलरोका कान काटने लगे। साधारण हडप तो उन्होने जारी ही रखी, मेरे हज़ारीबागमे रहते वक्त उनकी कोठी बन रही थी। जेलखानेके भीतर ईंटे बनती थी, सुर्खी कूटी जाती थी, लकडी-लोहेका

---

[1] हजारीबाग जेलके अधिकाश वार्डोंके कमरे बीचमें दीवारें दे सेलमें परिणत कर दिये गये है। यह बंगाल और पजाबके क्रान्तिकारियोके लिये किया गया था।

सामान तैयार होता था। दो-दो तीन-तीन हजारके गर्डर, दर्वाजे, ईट, पत्थर, दो-दो तीन-तीन सौमे नीलाम कराकर अपने दोस्तके नाम ले लेते। हर दूसरे-तीसरे महीने पुरानी मोटर लेते। जेलके कैदी मिस्त्री और मेकेनिकसे मदद ले मरम्मत करके उसे ठीक कर लेते। फिर दुगुना-तिगुना दामपर बेच देते। उस वक्त हजारीवागके सिविल सर्जन ही जेलके भी सुपरिटेंडेट होते थे। उन्हे जेलमे ज्यादा समय देनेकी फुर्सत ही कहाँ थी। एकाध घटेके लिए आनेपर मीक साहेब जो दिखलाना चाहते, वही देखते। हिन्दुस्तानी सिविल सर्जन गोरा होनेसे उनसे डरते, अग्रेज सिविल सर्जनकी दृष्टिमे मीक जैसा निर्मल आदमी कोई और जँचता ही नही था। धनवान कैदियोकी बुरी दशा थी। उन्हे कोल्हू या चक्कीमे दिया जाता। अपने खीचकर कोल्हूमे तेल पेलना सिर्फ जोरका काम ही नही, बल्कि थोडेसे घेरेमे घूमनेके कारण अस्वास्थ्यकर भी है। कैदी इस आफतसे बचनेके लिए घरसे रुपया मँगाकर जमादार और दूसरोको देते। भागलपुरके कुछ अहीर मारपीटमे कैद होकर आये थे। उनमे एक बहुत हट्टा-कट्टा पहलवान जैसा आदमी था। हम लोग उस वक्त (सितम्बर-अक्तूबर १९२४ ई०मे) मलेरियामे बीमार हो अस्पताल गये थे। वह आदमी अस्पतालके वराडेमे बैठा हुआ था, उठते वक्त जब उसने दोनो हाथोसे जमीनका सहारा लिया, तो हमे सन्देह हुआ। पूछनेपर मालूम हुआ कि उसे तेलके कोल्हूमे काम दिया गया था, वही उसपर मार पडी है। मारते वक्त जेल-अधिकारी इस बातका ख्याल रखते, कि कोई निशान न पडने पाये, इसके लिए कम्बल ओढाकर, भोथी चीजोसे मारा जाता था, ऐसी मार मारी जाती, जिसमे पीडा ज्यादा होती, किन्तु घाव भीतर लगती दूसरे ही दिन सुना कि वह अहीर मर गया। चाईवासाकी तरफसे एक बगाली बाबू गबनके मामलेमे सजा पाकर आये थे। तोद निकली थी। बेचारोका बहुत दूर तक चलना फिरना भी आसान न था, इसपरसे उन्हे भी कोल्हू दे दिया गया। काम क्या होता ? मार पडती। वह भी दो-तीन बार अस्पतालमे आ चुके थे। पीछे क्या हालत हुई, इसका मुझे पता नही।

खून, रिश्वत, अत्याचारमे उस वक्तका हजारीबाग जेल अपना सानी नही रखता था। एक गुजराती तरुण जम्शेदपुरसे मजदूर-आन्दोलनके सम्बन्धमे कैद होकर आया था। उसपर न जाने कितनी बार बेत पडे, हथकडी-बेडी जैसी सजाओकी तो बात ही क्या ? अन्तमे वह पागल हो गया था।

हजारीबागमे आनेपर मैने सबसे पहिले एक अग्रेजी पुस्तकके आधारपर ज्योतिष (जोतिस नही)पर बच्चोके लिए कहानीके रूपमे एक छोटीसी पुस्तक लिखी,

जिसे, जब शाहाबाद जिलेके पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र छूटकर जाने लगे, तो लेते गये, किन्तु वह पुस्तक मुझे फिर नही मिली। "बाईसवी सदी"के बाद मैंने अपने समयको ज्योतिषके एक बडे ग्रथ और खगोल-चित्र बनानेमे लगाया। मैंने सस्कृत ज्योतिषके कई ग्रथ मँगाये, और अग्रेजीके भी। पारिभाषिक शब्द कुछ पुराने लिये, कुछ नये बनाये, और ग्रथ लिखना शुरू किया। इसमे ग्रहगणित, नक्षत्र, नीहारिका, धूमकेतु आदिपर काफी लिखा गया था। साथमे तीन बड़े-बड़े खगोल चित्र दिये। दो में तो उत्तरी और दक्षिणी गोलार्धके नक्षत्रमडलके हजारो तारोके साथ दिये गये, और तीसरेमे पटनाके अक्षाशपर दिखलाई देनेवाले तारे थे। ९०से ऊपरके नक्षत्र-मडलोमे चालीसके आसपास ही तकके नाम सस्कृतमे मिल सके थे। बहुतसे नक्षत्र—जो भारतके दक्षिणान्तसे भी नही दिखाई देते, उनका नाम वहाँ कैसे मिलता? मैंने सबके नाम गढे। अग्रेजीमे छोटे-बडे आकारवाले तारोंके गिननेमे अकके अतिरिक्त यूनानी और दूसरे अक्षर व्यवहार किये जाते है। मैंने उनकी जगह ब्राह्मी आदि अक्षरोंका प्रयोग किया। ग्रथका बहुतसा अश अनुवाद मात्र था, प्रथम प्रयास होनेसे लिखनेके ढगमे भी ज्यादा त्रुटि रही होगी, किन्तु मुझे उसके लिखनेसे नकद फायदा हो रहा था—मालूम ही नही पडता था, कि मै जेलमे हूँ। पेसिल परकाल ले चित्र बनाते देख लोग जान गये कि मै ज्योतिषपर कोई ग्रथ लिख रहा हूँ। सिपाही बेचारे ज्योतिष (गणित ज्योतिष) और जोतिस (फलित ज्योतिष)का अन्तर क्या समझे? वह समझते थे, जोतिस ही लिख रहे है। हिन्दुओकी ऊँची जातोंमे जहाँ धनियोंके बच्चों-को छोटी ही उम्रमे शादी करनेके लिए लोग दौड पड़ते है, वहाँ गरीब लोग मुश्किलसे घर-जमीन बेच रुपयेसे छोटी बच्चीको खरीद ब्याह करते है। उनमे कितने बिन ब्याहे ही रह जाते है, इसे देखना हो तो पुलीस और जेलके सिपाहियोंको जाकर देखो। एक दिन शामको एक अस्थायी जमादार आकर बडी नम्रतापूर्वक पूछने लगे—'बाबा, ये दो तारे जो इकट्ठा दिखलाई दे रहे है, इनका क्या फल है?' मैंने जब अपना अज्ञान प्रकट किया, तो उनको विश्वास नही हुआ, और कहा—'लोग तो कहते है, अबके बडे जोरकी लगन है, ब्याह बहुत ज्यादा होगे।' धरतीपर ब्याहकी कोशिश करते-करते बेचारे हार गये थे, इसलिए उनकी नजर अब आकाशके तारोकी ओर गई थी।

मिस्टर मीकने मेरे पढनेके लिए कुछ उपन्यास दिये थे। शायद उस वक्त ज्योतिष ग्रथ लिखनेका काम खतम हो चुका था। मैंने समय काटनेके लिए साहसयात्रा-सम्बन्धी चार उपन्यासोका हिन्दीमें स्वतन्त्र परिवर्तन कर डाला, जो पीछे 'सोनेकी ढाल' आदिके नामसे छपे।

१९२४ ई०के किसी महीनेमें 'तरुण भारत' (हिन्दी साप्ताहिक, पटना)के स्वामी लालबाबू और उसके मुद्रक हनुमान पडित भी किसी लेखके लिए सजा पाकर चले आये। बाहर लालबाबूको कई प्रान्तीय काग्रेस कमेटीकी बैठकोमे देखा था, किन्तु यहाँ एक साथ रहनेका मौका मिला। वह चौधुरी-टोला (पटना)के एक धनिक परिवारके व्यक्ति थे, और राष्ट्रीय कामोमे रुपया खर्च करनेमें किसी तरहका सकोच नही करते थे। उनके सरल उदार हृदयका लोग अनुचित फायदा उठाते थे, यह बात उन्हे मालूम नही होने पाती थी, और इसलिए पिछले तजर्बेसे कोई फायदा नही उठा सकते थे। मुझसे वह अपनी उमगो और कठिनाइयोके बारेमे कहते, और मैं भी उन्हे वास्तविकतासे परिचय करानेकी कोशिश करता था। किन्तु इसमे सन्देह था, कि बाहर फिर खुशामदियो—वचकोके घेरेमे पडनेपर, रोज-रोज मेरे साथके वार्तालापसे नोट की हुई हिदायतोको वह याद रखते। लेकिन एक बात उन्होने मनमे ठान ली थी—अपने लडके मदनमोहनको विदेशमे इजीनियर या इस तरहकी किसी दूसरी उत्पादक और देशके लिए उपयोगी विद्याको सीखनेके लिए भेजूंगा। उनके साथी बेचारे हनुमान पडित तो पछताते थे, खुशामद आदमी करता है, दूसरेको फाँसकर कुछ ऐंठनेके लिए, और यहाँ बेचारे खुद ही फँस गये थे। पुरोहितजीको क्या पता था, कि "तरुणभारत"पर मुद्रकमे उनका नाम छपना इतना जोखिमका काम है। तो भी लालबाबू खाने-पीनेमें उनका ख्याल रखते, वह घरकी चिन्तामे न पडे रहे इसके लिए उन्हे प्रसन्न रखनेकी कोशिश करते थे।

क्वार-कार्तिकके महीनेमे, मै, पडित पारसनाथ त्रिपाठी, लालबाबू, हनूमान पडित चारो जने मलेरियासे बीमार होकर अस्पताल गये। हम लोगोका बुखार अच्छा हो गया, और हमे नीमू डालकर परवलका सूप मिलने लगा। लालबाबूका बुखार अभी भी वैसा ही था, किन्तु वह जीभको रोक न सकते थे। अच्छे हो जानेपर हमे तो वार्ड नम्बर-एकमे भेज दिया गया। किन्तु लालबाबू अस्पताल हीमे रहे। यदि मै साथ रहता तो खान-पानकी बदपर्हेज़ीसे रोकता, किन्तु अस्पतालमे रहना अपने हाथकी तो बात नही थी। अस्पताल आने-जानेवाले आदमीसे मैं बराबर खबर लेता रहता था, लेकिन कभी यह ख्याल भी नही आया था, कि वह लम्बा-चौडा स्वस्थ बलिष्ट भव्य तरुण शरीर फिर देखनेको नही मिलेगा। लालबाबू चले गये, और साथ ही बहुतसे मधुर मनोरथोको लिए हुये।

पंडित पारसनाथ त्रिपाठीको मैने बडा भाई बनाया था, 'बाबा'को छोटा भाई बनानेके लिए वे तैयार थे। कहाँ वह पूजा-पाठ, बात-बातपर भगवतीके नामकी

दुहाईके आदी थे, और कहाँ मै इन चीजोंका कट्टर विरोधी। मै खूब मीठी चुटकियाँ लेता, उनके भगतपनका परिहास उड़ाता, किन्तु वह इसे कभी बुरा न मानते। बरस भरके करीब हम साथ रहे, किन्तु मुझे कोई दिन याद नही, जब हममे कभी मुँहफुलाव हुआ हो। उनके घरपर बडे भाई परिवारका काम सँभालते थे, और वही अवलम्ब थे। बड़े भाईके कोई सन्तान न थी, और छोटे भाई (पारसनाथ)पर उनका असाधारण स्नेह था। मुलाकातका समय होनेपर शाहपुर पट्टी (आरा ज़िला)से हजारीबाग जेल पहुँचते; साथमे अचार, मिठाई और हफ्ते भरके लिए ठकुआ, पकौड़ी और क्या-क्या लिवाये आते। भावीके हाथकी मीठी चीजे पारसनाथके मीठे शब्दोके साथ और भी मीठी हो जाती थी। हमे सिर्केमे डाली प्याज बहुत अच्छी लगती थी, और पारसनाथ पाव-पावभरकी दो शीशियोको बराबर इसके लिए फँसाये रहते। लिखने-पढनेके हमारे समय नियत थे, उसके बाद हमारा समय वार्तालाप और मनोविनोदमे बीतता, वह अच्छे बात करनेवाले थे।

मुझे हजारीबाग जेलमे आये सालभरसे अधिक हो गया था, जब कि जेलके लिए एक अलग स्थायी सुपरिटेंडेट रखनेकी बात सर्कारने तै कर कप्तान अगरको सुपरिटेंडेट बनाकर भेजा। साप्ताहिक परेडमे एक बार उनको देखता, किन्तु किसी वक्त कोई बातचीतका काम नही पडा। उनके आनेपर जेलके कैदियोको बहुत खुशी हुई, खासकर यह सुनकर कि वह मीकके परामर्शसे स्वतन्त्र बुद्धि रखते है। कैदियोका चावल अच्छा बनने लगा, तरकारियोमेंसे घास अन्तर्धान हो गई, रोटीका रग-रूप और परिमाण बढ़ गया। अपनी धाक कायम रखनेके लिए मीक साहेब और उनके अनुचर हर सप्ताह जो दो-तीनको बेतकी सजा दिलवाते, उसमे भी कमी हुई। कई बार अगर साहेब चुपकेसे और यकायक भीतर आ जेलके कामकी देखभाल करते। मीक साहेब भी बहुत जागरुक रहने लगे। तीन-चार महीने बीतते-बीतते अगर साहेबकी पहिलेवाली तन्देही कम हो गई। कैदी कहने लगे—अगर साहेबकी मेम अग्रेज है, मीक साहेबकी मेम और लडकी (पत्नीकी लड़की) अगरकी पत्नीकी खुशामदमे पहुँचने लगी है, मीकके मायाजालसे कौन निकल सकता है? जेलसे छूटते वक्त सचमुच ही मुझे विश्वास न था, कि अगर साहेब जेलके रहस्यको समझकर समयकी प्रतीक्षा कर रहे है, और कुछ ही महीनोमे मीकको ऐसा पकड़ेगे, कि उन्हे गोली मारकर आत्महत्या करनेके लिए मजबूर होना पड़ेगा।

हज़ारीबाग जेलमे मेरे कुछ दिन कम दो वर्ष इतनी जल्दी बीत गये कि मुझे मालूम न हुआ। उससे पहिले जिन्दगीके किन्ही दो वर्षोमे दत्तचित्त हो पढ़ने-लिखनेमे

इतना व्यस्त नही रहा। लिखने-पढनेके अतिरिक्त कुछ फ्रेंच और अवेस्ताका भी मैंने अभ्यास किया। वैज्ञानिक दृष्टि और विस्तृत हुई। आर्यसमाजके विचारों-की कट्टरता कम होने लगी, और बौद्ध धर्मकी ओर झुकाव बढा। वेदकी निर्भ्रान्तता-पर सन्देह होने लगा, किन्तु ईश्वरपर विश्वास अब भी था। भाई रामगोपालके पत्र आते रहते थे, और जेलसे छूटते वक्त मैंने बडे उत्साहसे उनके पास लाहौरमे एक पत्र लिखा, कुछ दिनों बाद जब वह खत—रामगोपालजी मर गये—लिखा हुआ लौट आया, तो कई दिनो तक मेरा किसी काममे मन न लगता था।

१८ अप्रेल (१९२५ ई०)को दो वर्षकी सारी सजा भुगतनेके बाद हजारीबाग जेलसे मै छोड दिया गया।

८

# राजनीतिक शिथिलता ( १९२५ ई० )

छपरामे मै दो साल बाद पहुँचा। डिस्ट्रिक्टबोर्ड, जिला कांग्रेस कमीटीके मान-पत्रोसे मुझे प्रसन्नता नही हुई, जब देखा, कि चारो ओर राजनीतिक शिथिलता है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड कांग्रेस के हाथमे था, मौलाना मजहरुलहक जैसा उसका चेयरमैन था, और इसमे शक नही कि हक साहेबकी प्रेरणा तथा डिप्टी इन्स्पेक्टर बाबू राधिकाप्रसादके सहयोगसे शिक्षामे सारन डिस्ट्रिक्टबोर्ड बहुत आगे बढा। मातृभाषाकी शिक्षा सारे जिलेमे नि शुल्क कर दी गई थी, और जिलेमे शायद ही कोई जगह थी, जहाँके लडको-को पाठशालामे जानेके लिए एक मीलसे अधिक जानेकी जरूरत पडती हो। इतना होते भी, वैयक्तिक स्वार्थके लिए—अपने सम्बन्धियो और पिट्ठुओको ठीकेदारी या दूसरा आर्थिक सुभीता दिलानेके लिए मेम्बर लोग आपसमे झगडते थे। (२८ अप्रेलको) डिस्ट्रिक्ट बोर्डके मानपत्रके उत्तरमे मैंने सदस्योकी इस मनोवृत्तिके लिए फटकारा, और कुछ धमकीसी भी दी, जो हक साहेब जैसे वयोवृद्धके सामने उचित न था। उन्होने बहुत मीठे शब्दोमे इस अनधिकार चेष्टाकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया। साधारण अज्ञान के अतिरिक्त इसमे दो वर्षका जेलका एकान्तवास भी कारण था।

पुराने कार्यकर्त्ताओमे बहुतसे काम छोडकर बैठ गये थे। पडित गोरखनाथ त्रिवेदी जैसे वकालतकी पढ़ाई छोड़कर चले आये कितने ही लोगोने परीक्षा पासकर वकालत

शुरू की थी। बा० विश्वेश्वरप्रसाद, शिवप्रसादसिंह, महेन्द्रनाथ जैसे कितने ही असहयोगी विद्यार्थियोंने फिरसे कालेजकी पढ़ाई शुरू कर दी थी। देशमें जहाँ-तहाँ हिन्दू-मुस्लिम झगड़े शुरू हो गये थे, और मुसल्मान राष्ट्रीय आन्दोलनसे दूर हटते जा रहे थे। जहाँ-तहाँ हिन्दू सभायें क़ायम होने लगी थीं। सारन जिला हिन्दू-सभा भी मुझे मानपत्र देनेवाली संस्थाओंमें थी, किन्तु मैंने उसे निराश किया। मेरे दोस्तोंने प्रान्तीय हिन्दू सभाका मुझे उपसभापति चुन दिया था, किन्तु मैं शायद एकाध ही बार उसकी बैठकोंमें गया होऊँगा।

पहिले ज़िलेका दौरा करना ज़रूरी था, इसलिए गर्मीकी कोई पर्वाह न कर मैं निकल पड़ा। एकमा, सिसवनमें अब भी कार्यकर्त्ता मौजूद थे और काम चला जा रहा था। मीरगंज, भोरे थानोंकी कई सभाओंमें व्याख्यान देते मैं कटया पहुँचा। वैशाख पूर्णिमा नज़दीक थी, इसलिए बुद्धनिर्वाणके दिन बुद्ध-निर्वाण-स्थान कसया जानेकी इच्छा हुई। खुरहुरियाके बाबू महादेव रायनें अपना हाथी दिया, और १३ मईकी रातको मैं कसयाके लिए रवाना हुआ। अभी दो घंटा रात बाक़ी थी, कि चाँदनी रातमें कुछ दूर पर हमें एक हाथी आता दिखाई पड़ा। उसपर हाथीवान तो दिखलाई नहीं पड़ रहा था, किन्तु हाथीका आकार असाधारण और गति तीव्र थी। हमारा हाथीवान डरने लगा,—यदि कहीं उसने देख लिया, तो हम यदि उतरकर भागनेमें समर्थ भी हुए, तो भी हाथीको मारकर तो वह ज़रूर खराब कर देगा। थोड़ी देर हमारी ओर आकर हाथी दूसरी ओर मुड़ गया, उस वक़्त उसपर चढ़े हुए सवार भी दिखलाई पड़े, तब हमारी जानमें जान आई। कसयामें एक ही दो वर्षसे वैशाख-पूर्णिमा (बुद्ध-निर्वाण दिन)को मेला लगने लगा था। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई, कि जहाँ १९२० ई०में लोग यहाँकी बुद्धमूर्तिको वर्मावालोंका देवता समझ किसी तरहकी श्रद्धाकी तो बात ही क्या एक प्रकारकी घृणा प्रदर्शित करते थे, वहाँ अब पूजार्थियोंकी भीड़के मारे मन्दिरमें घुसना मुश्किल था। मन्दिरके द्वारके बाहर दो क़तारमें माली फूल-बताशा बेंच रहे थे। महास्थविर चन्द्रमणिसे भेंट हुई। पाँच वर्ष बाद अब वह ज़्यादा वृद्ध मालूम होते थे। वहाँ एक तरुण वर्मीभिक्षु (वासव) ठहरा हुआ था। मैंने चन्दा बाबा (महाचन्द्रमणि)से कहा, कि इन्हें संस्कृत पढ़कर भारतमें बौद्धधर्मका प्रचार करना चाहिए, तो उन्होंने उसे संस्कृत पढ़नेका इन्तिज़ाम कर देनेके लिए मेरे साथ कर दिया। कटयासे हम जलालपुर (कुचायकोट) आये। रुद्रनारायण खूब तत्परतासे काम कर रहे थे, और थानेने चुनकर उन्हें डिस्ट्रिक्टबोर्डमें भेजा था। बरौलीमें पहुँचे, तो यहाँ अभी शिवप्रसाद बाबू कामपर डटे हुए थे, यद्यपि कालेजकी

पढाई पूरी कर आनेकी उनकी इच्छा थी, और राष्ट्रकर्मीको ऐसा जरूर कर लेना चाहिए—इस धारणाके कारण मैंने भी उन्हे उत्साहित किया। रेवतिथसे आगे दिघवामे मैंने गुर्जर-प्रतिहारोके प्रसिद्ध ताम्रपत्रको मँगाकर पढनेकी कोशिश की। ब्राह्मी लिपिका अभ्यास तो मैने जेलमे नक्षत्रचित्र बनाते वक्त कर लिया, किन्तु यह ताम्र-लेख दूसरी लिपिमे था। गुरुकुल हरपुरजनमे गुरुकुल भैसपालके आचार्य स्नातक युधिष्ठिर ठहरे हुए थे, वे बडे आग्रहपूर्वक वर्मीभिक्षुको अपने साथ सस्कृत पढानेके लिए ले गये। वासवने सस्कृतकी प्रथमा परीक्षा पास कर ली थी, और हिन्दी अच्छी तरह पढने-बोलने लगा, उसी वक्त सग्रहणीने आ घेरा, जिससे वेचारे तरुणके प्राण न बचे।

'हसरत उन गुचोप' है जो बिन खिले मुर्झा गये।'

१५ अगस्तको मैं एकमासे रेलपर चढकर कुआडीकी ओर जा रहा था। उसी ट्रेनसे पचानन तिवारी हजारीबाग जेलसे छूटकर आ रहे थे। उन्हीसे मीककी आत्म-हत्याका पता लगा। मीरगज (हथुआ) स्टेशनपर उतरनेपर मालूम हुआ, कि यहाँ महावीरी झंडा निकल रहा है। बाजारमे होकर जब सीवानसे आनेवाली सडकपर पहुँचा, तो झडेका जलूस नजदीक आता दिखलाई पडा। कस्बेमे बडी सनसनी थी, कि आज हिन्दू-मुसल्मानोका झगडा होगा। 'मस्जिद'के सामने वाजा न वजना चाहिए—यह मुसल्मानोकी माँग थी, उधर हिन्दू इसे अपने धर्मकी तौहीन समझते थे। महावीरी झडाका सार्वजनिक प्रचार अभी नया-नया होने लगा था, और उसमे बहुत कुछ मुसल्मानोको अपनी शक्ति दिखलानेका भाव काम कर रहा था। जलूसमे देखा, आगे-आगे मेरे परिचित एक पजाबी उदासी साधु गेरुआ कपडा पहने चल रहे हैं। उन्होने ही झडा निकालनेकी प्रेरणा दी और उसका सगठन किया था। सडकसे एक छोटी सडक जहाँ बाजारकी ओर घूमती है, और फिर आगे मस्जिदपर पहुँचती है, वहाँ आकर उत्तेजित जनतामेंसे कुछ लोग वाजारकी ओर मुड पडे। मैं जब उधर चलने लगा, तो स्वामीजीने मेरा हाथ पकडकर उधर जानेसे मना किया। मैंने कहा—इस वक्त उत्तेजित भीडको शान्त रखनेकी अवश्यकता है। किन्तु स्वामीजीने आग तो लगा दी, अब मार खानेके डरसे थरथर काँपते थे। हाथ न छोडनेपर मुझे उनकी कायरतापर बहुत क्रोध और घृणा आई, और जवर्दस्ती हाथको खींच इधर चल पडा। भीडके कुछ आदमी आगे चले गये थे। सामनेसे जव वे गुजरे, तो मस्जिदसे ईंटे बरसने लगी। फिर क्रुद्ध हो जलूसके लठधरोने लाठी चलानी शुरू की। हिन्दू ज्यादा थे, और मुसल्मान कम, इसलिए उन्हे भागना पडा। अब लोगोने खदेड़कर

मारना शुरू किया। कस्बेके हर हिस्सेमे मै अकेला कैसे पहुँचता, किन्तु मैंने कई मुसल्मानोके शरीरको अपने शरीरसे ढाँककर बचाया। उत्तेजित लठधारी हिन्दू दाँत पीसते हुए मुझे हट जानेके लिए कहते, किन्तु मुझपर एक नशा चढ़ा हुआ था, और मरने-पिटनेका जरा भी भय दिलमे न रखते हुए मै नि शस्त्र मुसल्मानोको बचा रहा था। मेरी काली अल्फी, मेरा नाम, और मेरा राष्ट्रीयकार्य लोगोंको मालूम था, इसलिए किसीने मेरे शरीरमे हाथ लगानेकी हिम्मत न की। जहाँ-तहाँ छिपे मुसल्मानोंको पकडकर सुरक्षित स्थानमे ले जाना, उनकी रक्षा और गाँवकी शान्तिके लिए भी बहुत जरूरी था। पुलिसको डर था कि किसी मुसल्मानको पकडकर थानेमे भेजनेसे बीच हीमे हिन्दू छीनकर मारने लगेगे। उसी वक्त उन्हे मेरी उपस्थिति और बचावके कामका पता लगा। दारोगाने खतरनाक स्थानो—विशेषकर मस्जिदके पासके घरोंसे निकालकर मुसल्मानो को थानेमे भेजनेमें मेरी सहायता चाही। आगे-आगे मुझे चलते देख, किसी हिन्दूने मारपीट करनेका साहस नही किया। शाम तक मार-पीट शान्त हो गई, किन्तु अभी भी उत्तेजना दूर न हुई थी। तब तक प्रान्तीय कौसिलके मेम्बर सीवानके मौलवी गनी भी पहुँचे। हिन्दुओको झगडाके लिए तैयार करनेमे न स्वामीजीका जितना हाथ था, उतना ही, लोग कह रहे थे, मुसल्मानोको तैयार कर``` इनका हाथ है, किन्तु मुझे इसपर विश्वास न था। गनी साहेब मेरे पहिलेके काग्रेसके सहकारी थे, और इधर के दो वर्षोंके तूफानका मुझे कोई पता न था। मै उन्हे साथ ले घूमते हुए बाजारके उस तिरस्तेपर पहुँचा, जहाँसे सडक उक्त मस्जिदकी ओर गई है। हम दोनो चारपाईपर बैठे लोगोको समझा रहे थे, और मुझे उस वक्त पता नही था, कि कुछ हिन्दू मौलवी गनीपर अपना क्रोध उतारना चाहते है। खैर, मुझे साथमे देख उन्होने वैसा करना पसन्द न किया। चाहे मौलवी गनी मुसल्मानो-को झगडेके लिए तैयार करनेवाले न हो, किन्तु पृथक् निर्वाचनमे कौसिल चुनावकी सफलताके लिए अपनेको सबसे भारी मुस्लिम-हितैषी साबित करना जरूरी था, और शायद इसीलिए वैसा सोचा जाता था।

हिन्दूपनकी बू उस वक्त तक मुझसे निकल गई थी, यह तो नही कह सकता, किन्तु हिन्दू-मुसल्मानोकी एक रोटी-बेटी, एक जातीयताका पक्षपाती तो मै इससे पहिले ही 'बाईसवी सदी' लिखते वक्त हो गया था। इस प्रकार मीरगजमे मैंने जो कुछ देखा, उससे मुझे लडानेवाले हिन्दू, मुसलमान अगुओसे घृणा हो गई। एक ओर मै यदि उस कायर स्वामीको देखता था, तो दूसरी ओर मस्जिदके पासके घरमे भागकर छिपे एक हट्टे-कट्टे मुसल्मान लडाकेकी सूरतको देख रहा था, जो लल-

कार मारपीट करानेमे आगे था, और जब घरसे निकालकर सुरक्षित स्थानपर चलनेके लिए कहा गया, तो सत्रस्त पशुकी भाँति पीठ गडाये न भेजनेके लिए गिडगिडा रहा था।

असहयोग और राष्ट्रीय आन्दोलनकी तेजीके समय भोरे-कटयाकी पुलीस कुछ नर्म पड गई थी, किन्तु अब राजनीतिक शिथिलताके समय उसने फिर जुल्म ढाना शुरू किया था। नये चुनावमे मैने जिला काग्रेसके उपसभापतिका पद स्वीकार किया, और हमने हाल हीमे छपरामे प्रेक्टिस शुरू किये हुए डाक्टर महमूदको सभापति बनाया। असहयोगी पुलीस सब-इन्स्पेक्टर बाबू रामानन्दसिंह हमारे मन्त्री थे। जिला काग्रेसका सारा काम रामानन्द बाबू और मुझपर आ पडा था। पडित गोरख-नाथ त्रिवेदी अब वकालत कर रहे थे। छपरामे पहिलेपहिल जिस दिन मै राजनीतिक कार्यमे भाग लेने आया, उसी दिनसे हम दोनोमे घनिष्ठता बढती ही गई, और अब वकील होकर यहाँ बस जानेपर तो उनका घर मेरे लिए छपराका स्थायी निवास बन गया। त्रिवेदीजीने हजारीबागमे गणितकी पुस्तके भिजवानेमे बडी मदद की थी। वह खुद गणितके एक अच्छे विद्यार्थी थे, और यदि भारत परतन्त्र न होता, तो विज्ञान या राष्ट्रीय उद्योगनिर्माणके किसी क्षेत्रके एक प्रमुख कार्यकर्त्ता होते। किसी चीजको स्थायी और पवित्र न मानते हुए उसकी कडीसे कडी आलोचना और निर्माणमे हम दोनो एकसी प्रवृत्ति रखते थे। रातों हमने राजनीतिक, सामाजिक विषयोपर बहस की, और कभी-कभी तो सुननेवालोको सन्देह हो सकता था, कि हम वस्तुत झगड रहे है, किन्तु हमारा दिमाग कभी गरम नही होने पाता। हम लोगोका पारस्परिक सम्बन्ध सदा सगे भाईसे भी बढकर प्रेमका रहा, और यह सम्बन्ध उनकी माता और स्त्रीको भी इतना मालूम हो गया था, कि मै हमेशा उनके परिवारका एक व्यक्ति समझा जाता रहा।

भोरेके दारोगाके अत्याचारोको सुनकर जिला काग्रेसकी ओरसे मै और बाबू रामानन्दसिंह जाँच करने गये। रिश्वत लेनेके लिए पुलिसने क्या-क्या नही अत्याचार किये थे। किसीकी हथेलीपर खाटका पावा रख आदमी बैठाये गये थे, किसीको थाने-पर बुलाकर पीटा गया था, किसीपर झूठे गवाह तैयार कर मारपीटके मुकदमे तैयार किये गये थे, किसीको झूठमूठ दफा ११०मे फँसानेका उद्योग किया गया था। वर्षाके दिनोंमे पानी-बूँदीमे, और कही-कही जाँघभर पानीमे चलकर २७-३१ अगस्तके पाँच दिनोमे हमने हस्ताक्षर या अँगूठेकी निशानीके साथ पुलीसकी रिश्वते, उसके अत्याचारोके सम्बन्धमे वक्तव्य जमा किये। लोग पहिले कुछ कहनेसे डरते थे, किन्तु

हम लोगोपर विश्वास था, इसलिए उन्हे वक्तव्य देनेकी हिम्मत हुई। हमने रिपोर्ट लिखी, और हमारे सभापति डाक्टर महमूदने जिला मजिस्ट्रेटसे स्वय बातचीत की, और रिपोर्ट दे दी। मजिस्ट्रेटने कार्रवाई करनेके लिए वचन दिया, किन्तु वह आज तक हो रही है। इससे पता लगता है कि ब्रिटिश सर्कारका एक पैर पुलीस—जिसके अवलम्बपर वह भारतमे कायम है—कितना गन्दा, कितना अपराधपूर्ण है, और उसके दोषोको किस तरह सर्कार और उसके उच्च अधिकारी ढाँक देते है।

मेरे जेलमे रहते मुजफ्फरपुरमे हिन्दू-महासभा हुई, जिसने बोधगया मन्दिरके बारेमे एक कमीटी बनाई। उधर कांग्रेसने भी उसके बारेमे एक कमीटी बनाई, दोनोने उन्ही सातो सदस्योको रखा। सदस्योमे मै, बा० राजेन्द्रप्रसाद और जायसवालजी भी थे, राजेन्द्र बाबू सभापति थे। जाडोमे (नवम्बर दिसम्बर १९२५ ई०) कमीटीकी बैठक गया, पटनामे हुई। बोधगया भी हम गये। महन्तने सीधे कोई सम्बन्ध रखना नही चाहा, किन्तु अपने एक वकीलको कार्रवाईको देखते रहनेके लिए ज। बहुतसे गवाह गुजरे। महाबोधिमन्दिरके बारेमे पुराने और नये साहित्यको देखा। जिस जगह बुद्धने अपने मूल सिद्धान्त—अनात्मवाद (आत्मा—ईश्वर या जीव जैसी दुनियामे कोई चीज नही) और मध्यम-मार्ग (भोग और विरागकी परा-काष्टाका रास्ता छोडना)—खोज निकाले थे, जो स्थान ढाई हजार वर्षोसे दुनियाके बौद्धोंके लिए परम पुनीत है, जिसके प्रति उनका उससे भी अधिक सम्मान है, जितना कि ईसाई-यहूदियोंका योरोशिलमसे, मुसल्मानोका मक्कासे; आज वह स्थान ऐसे सम्प्रदायके महन्तके हाथमे है जो बडे अभिमानपूर्वक कहता है—हमारे आचार्य शकराचार्यने बौद्धोको भारतसे निकाल भगाया।

लेकिन महाबोधि मन्दिरको बौद्धोके हाथमे न जाने देनेमें सबसे बडा हाथ अग्रेजी सर्कारका है। उसीने टेकारीके गॉवसे निकालकर उसे महन्त बोधगयाके गाँवमे डल-वाया—सर्वेके कागजो और नकशेमे जालसाजी की गई। वर्माके राजाने मन्दिरकी मरम्मत शुरू करवाई, पूजाके लिए भिक्षु रक्खे। वर्मी युद्धमे जब राजवशका खात्मा हो गया, और वर्मा ब्रिटिश सर्कारके हाथोंमे आ गया, तो उसने खुद एक लाख रुपये लगाकर उसकी मरम्मत करवाई। जब देश-विदेशके बौद्ध और उनसे सहानुभूति रखनेवाले महाबोधि-मन्दिरका प्रश्न उठाने लगे, तो एक दिन सर्कारके स्थानीय बडे अफसर, गयाके जिला मजिस्ट्रेटने मन्दिरको महन्तके हाथ सौप दिया। अब वही सर्कार वैयक्तिक सम्पत्ति, दूसरेका चिरसे चला आता अधिकार कहकर उसमे अडगा लगाती है। कितने ही बौद्ध देश अब भी स्वतन्त्र है। वहाँके लोगोका बोधगया अड्डा

वन जावेगा, जो कि भारतमे ब्रिटिश-शासनके लिए खतरनाक सावित होगा—असल तो यह बात है, जिसने ब्रिटिश सर्कारको बौद्धोके साथ न्याय करने नही दिया।

कमीटीके एक सदस्य श्री काशीप्रसाद जायसवाल भी थे, किन्तु वह गया और बोधगया नही जा सके, रिपोर्ट तैयार हो जानेपर उसमे उन्होने कुछ परामर्श दिया। इसी वक्त पहिलेपहिल मुझे उनको देखनेका मौका मिला। अनागरिक धर्मपाल भी एक सदस्य थे, उन्होंने अपनी अनुपस्थितिमे ब्रह्मचारी देवप्रिय वलीसिंहको भेजा था। कमीटीके अधिकाश सदस्योकी राय हुई, कि मन्दिरका प्रबन्ध बौद्धों और हिन्दुओकी एक सयुक्त कमीटीको दे दिया जावे, जिसमे महन्त और एक सर्कारी मन्त्री रहे। मेरी राय थी, मन्दिर बौद्धोके सुपुर्द कर दिया जाये, किन्तु एक मतके ख्यालसे मैने रिपोर्टमें अपने विचारोको पृथक् नही दर्ज किया।

रिपोर्टका काम खतम होनेके बाद कानपुर काग्रेसका समय भी नजदीक आ गया। मै शायद पटना हीसे सीधे कानपुर गया। राष्ट्रीय आन्दोलन बिल्कुल शिथिल था। कोई खास काम नही हो रहा था, इसलिए कानपुर काग्रेसके बाद मैने कुछ महीनोके भ्रमणका भी निश्चय कर लिया।

# ९

# फिर हिमालयमें ( १९२६ ई० )

मै कानपुर काग्रेसके लिए प्रतिनिधि तथा आल इडिया काग्रेस कमीटीका सदस्य था। वहाँ विषय-निर्वाचनी और खुले अधिवेशनके निर्जीव व्याख्यानोको सुनता रहा। वलदेव चौवे भी आये थे, और एक युग बाद मिले थे। अधिवेशनके समाप्त होते ही हम दोनो भाई रामगोपालकी विधवा पत्नी श्री जानकीदेवीसे मिलने उनके नैहर हमीरपुर जिलेमें गये। जिस वक्त लाहौरमें रामगोपालजी प्लेगके शिकार हुए, उस वक्त वलदेवजी लाहौरमे थे, और उन्होने उनकी वडी सेवा की थी। जानकीदेवीकी भी खोज-खबर वह और भाई महेशप्रसादजी बराबर लिया करते थे। हम चाहते थे, जानकीदेवी कही शहरमें पढावें और कुछ स्वय भी आगे पढे, वलदेवजीने दिल्लीमे उनके लिए स्थान भी ठीक कर रखा था, किन्तु छोटेसे वेटेको ले रुपये-पैसेके व्यवहारको समेटकर वह उस वक्त जानेको तैयार नही हुई।

बलदेवजीने मेरे लिखनेपर भी बी० ए०की परीक्षा नही दी, और कालेज छोड़ दिया, यह मै पहिले ही लिख चुका हूँ। मेरा उनका प्रथम परिचय मुसाफिर विद्यालय आगरामे १९१५के अन्तमे हुआ था, जो लाहौरमे १९१६मे मिलनेके बाद और घनिष्ट होता गया। अपने आदर्शोको मजबूत करने और उनपर चलनेके लिए हमारे सकल्पको दृढ करनेमे उस समयके हमारे पारस्परिक विचार-विमर्श बहुत सहायक हुए। बलदेवजीका मुझपर बहुत स्नेह और विश्वास था, और मै उन्हे कुछ थोड़ेसे घनिष्ट मित्रोमे समझता रहा। बलदेवजी असहयोग करके अहमदाबाद साबरमती आश्रमको चले गये। पहिली जेलयात्राके बाद लाहौरके कौमी विद्यालयसे उन्होंने बी० ए० परीक्षा पास की। जब लाला लाजपतरायने अपनी लोकसेवक समिति कायम की, तो बलदेवजी उसके सदस्य बन गये, और आजकल मेरठमे अछूतोद्धार तथा राष्ट्रीय कार्य कर रहे थे।

बलदेवजीके साथ मै भी मेरठ चला आया। शहरसे बाहर उनका 'कुमार-आश्रम' था, जिसमे अछूत जातिके कुछ लडकोके रहनेका इन्तिज़ाम था। बहिन महादेवीजी आर्यसमाजकी कन्यापाठशालामे पढ़ाती थी। मेरठ जिला उस क्षेत्रमे है, जहाँकी ग्रामीण भाषा ही साहित्यिक हिन्दी और उर्दूकी बुनियाद है, किन्तु अभी भाषा तत्वसे उसपर विवेचन करनेके लिये मैने अपनेको तैयार नही किया था। हाँ, बलदेवजीके साथ बैलगाडीपर मवाना, हस्तिनापुर, परीक्षितगढ और कितने ही और स्थानोंको देखनेका मुझे अवसर मिला। हस्तिनापुरमे दूर तक फैली गगाकी कछार और कुछ ऊँचे-ऊँचे टीले देखनेको मिले; परीक्षितगढ़ एक अच्छा खासा गाँव था। सबसे अधिक प्रभाव मेरे मनपर ईसाई मिशनरियोके एक कन्याविद्यालयको देखकर पड़ा, जिसमे अछूत जातिकी लड़कियोको पढ़ानेका इन्तिजाम था। पढ़ाईके साथ-साथ उन्हे वैयक्तिक सफाई घरके कामकाजको सिखलाया जाता था। मुझे तो हिन्दू होते मनुष्यताके अधिकारसे वचित रहनेकी जगह उनका यह जीवन अधिक अच्छा मालूम होता था।

मेरठमे ही पहिलेपहिल श्री हरिनामदास—आजके भिक्षु आनन्द कौसल्यायन—से भेट हुई। दो-तीन दिन साथ रहनेसे बातचीतका भी मौक़ा मिला, किन्तु उस वक़्त मालूम नही हुआ था, कि यह बातचीत हममे चिर-भ्रातृत्व कायम करने जा रही है। उनका शरीर उस वक्त भी दुबला-पतला था, मानसिक-शारीरिक स्वच्छन्दताका उस वक़्त भी आभास मिलता था। उन्होने कोई आदर्श वाक्य बनानेके लिए मुझसे कहा था, जिसपर मैने लिख दिया था—'असिना गीतया चैव जयिष्ये भुवनत्रयम्'।

अभी ईश्वर विश्वास डिगा नही था, किसी वक्त पढे तिलकके गीतारहस्यका भी असर नही गया था। असि (तलवार)के सिद्धान्तपर आस्था रहनेसे ही मालूम होगा, कि सारे गाधीयुगने मेरे ऊपर कितना कम असर किया था।

भाई भगवती और अभिलाषचन्द्र आजकल इसी जिलेमे रहते थे। अभिलाषने मेकनिकल इजीनियरिंगकी परीक्षा पास कर ली थी, किन्तु उसका सारा समय एक धनिककी मोटरलारियोंकी देखभालमे लगता था। जिस स्त्रीके लिए उसने "नैनागढ" जीता था, वह अब उसके पैरोंकी बेडी हो गई थी, अब अपनी अगली उमगोको पूरा करनेके लिए उसके पर कट गये थे। उसकी बडी इच्छा थी, वायुयान-सचालक बननेकी, और उसके लिए वह सबसे योग्य आदमी था, किन्तु उसके वास्ते मौका निकालना अब उसके वशसे बाहरकी बात थी। यदि स्वच्छन्द एकाकी होता, तो उसीके फेरमें आवारागर्दी करता, देश-विदेशकी खाक छानते कही-न-कही अवसर मिल ही जाता; किन्तु स्त्री और छोटीसी बच्चीको कैसे छोडता? उसका दाम्पत्य-जीवन भी सुखमय नही था। स्त्रीसे बहुत खटपट रहती थी, तो भी वह सदा पत्नीके साथ एक थालीमे भोजन करता। मुझे अभिलाषकी इस अवस्था और उसके भीतर निहित शक्तिको देखकर बहुत अफसोस हुआ। मैंने इसका जिक्र बलदेवजीसे किया। उस वक्त उनकी धर्मपत्नी और बहिनजी भी मौजूद थी। मुझे यह मालूम नही था, कि वह इस बिनापर दूसरे दिन आनेवाली अभिलाषकी स्त्रीको उपदेश देने लगेगी। उपदेशको सुनकर स्त्री अभिलाषपर बहुत नाराज़ हुई। अभिलाषको इसके लिए मुझे कडे शब्दोमे उलाहना देना मेरे लिए उतना दुखकर नही हुआ, जितना यह ख्याल कर कि अभिलाषको मेरी सहानुभूतिसे सात्वना मिलनी तो दूर, मै उलटा उसके चित्तकी व्यथाको बढानेमे कारण बना।

बलदेवजीका गृहस्थ-जीवन भी सुखमय न था। व्याह करना तो माँ-बापका कर्त्तव्य था, और उन्होने दस ही बारहकी अवस्थामे उस कर्त्तव्यको पूरा कर दिया था। अब उसके परिणामको सारे जीवनभर भोगना था, सन्तानको। उनकी पत्नी बुद्धिहीन और कलहप्रिय थी, और पतिसे झगडनेके किसी उचित-अनुचित अवसरको हाथसे जाने नही देती थी। बलदेवजीका स्वभाव गम्भीर, उनका मन शान्त था, किन्तु चौबीस घटेके किचकिचका असर न पडै, यह हो ही नही सकता था। मैं उन्हे रातदिनकी जलती भट्ठीमे तपनेवाला तपस्वी समझता था, किन्तु मानसिक सहानुभूति—जिसे शब्दो द्वारा प्रकट करनेमे भी मै हिचकिचाता था—के सिवाय और मै कर ही क्या सकता था।

मेरठसे जनवरी (१९२६ ई०)के अन्तमे दिल्ली पहुँचा। मस्तानापन फिर सिरपर सवार था। दिनमे शहरमे घूमता, और एक-दो रात जमुनाके किनारे बिता दिये। एक कम्बल था, जाड़ेको भी काट-छाँटकर उसीके बराबर कर लिया था। लाल-किला, जामा-मस्जिद, तुग्लकोंके किलेपर अशोककी लाट, नई दिल्ली, कुतुब आदि दर्शनीय स्थानोको देखता रहा। उस वक़्त तक फीरोजशाहका किला सैरगाहके रूपमे परिणत नही किया गया था। कुतुब देखकर रातको वही धर्मशालामें ठहर गया। एसेम्बलीके अधिवेशनमे शामिल होनेके लिए मुज़फ़्फ़रपुरके मौलाना शफी दाऊदी आजकल दिल्ली हीमे थे। एक दिन उनका भी मेहमान रहा और एसेम्बलीके उद्घाटनके समय वाइसराय लार्ड रीडिंगके छत्रचँवरके अभिनयको भी देखा। एक दिन शहरसे गुज़रते वक्त देखा एक जलूस आ रहा है, फिर घोडागाड़ीपर शकराचार्य श्री भारती कृष्णतीर्थ स्वामीको देखा। जाकर चरण छू प्रणाम किया। उन्होंने मिलकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की, और निवास-स्थानपर आनेके लिए कहा। अब हिन्दू-सगठन, मुस्लिम-तन्जीमका जमाना शुरू हो चुका था, इसलिए उनका समय इसी काममे लग रहा था। आजकल वह नई दिल्लीकी सनातन-धर्मसभाके वार्षिकोत्सव-मे आये हुए थे। अधिवेशनमे उनके साथ मै भी गया, किन्तु व्याख्यान देना स्वीकार नही किया, भीतरसे आर्यसमाजी विचार रखते, सिर्फ चुप्पीसे ही मै सनातन धर्मित्वका मूक नाट्य कर सकता था।

स्वामी वेदानन्दजी बनारस छोड अब लाहौर चले आये थे, और गुरुदत्तभवनमे दयानन्द-उपदेशक-विद्यालयमे अध्यापक थे, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द उसके आचार्य थे। मै भी गुरुदत्तभवनमे ठहरा। पुराने दोस्तोके परिचयको फिर जागृत करनेका अवसर मिला। पडित भगवद्दत्तजीने डी० ए० वी० कालेजकी लाइब्रेरीको अब बहुत उन्नत कर लिया था। भारतीय सस्कृतिके अनुसधान-सम्बन्धी छपे हुए देशी-विदेशी साहित्य-के अतिरिक्त उन्होंने बहुतसे हस्तलिखित ग्रथ जमा कर लिये थे, और जमा करते जा रहे थे। उनका अध्ययन-अध्यापन, उनका दयानन्दके पथपर अनुराग पहिले ही जैसा दृढ था। मेरे शास्त्रीके वक्तके प्रतिभाशाली छात्र श्री चिम्मनलाल अब पडित विश्वबन्धु शास्त्री आजीवन सदस्य हो कालेजकी सेवा कर रहे थे। विश्वबन्धु-जीने एम० ए०मे विश्वविद्यालयके रिकार्डको तोड़ा था। उन्हे विदेशमे पढ़नेके लिए सर्कारी छात्रवृत्ति मिल रही थी, किन्तु उसे उन्होंने स्वीकार नही किया। डाक्टर हो लौटनेपर वह पजाब विश्वविद्यालयमे प्रोफेसर हो जाते, और हज़ारों रुपये मासिक कमाते हुए आरामका जीवन व्यतीत करते, किन्तु उन्होंने उस सुखमय जीवनपर

लात मारा, और तपस्याके जीवनको स्वीकार किया। लाला खुशालचन्द 'खुर्सन्द'का रोजाना "मिलाप" बड़े जोरशोरसे निकल रहा था, और अब वह शहरके सम्मानित प्रभावशाली पत्रकार तथा आर्यसमाजके प्रमुख नेता थे। मेरे लिए अब भी वह वही 'खुर्सन्द' थे, जिन्हे १९१६में मैने 'आर्यगजट'के मुल्लसरसे आफिसमे अपने साथ मित्रके तौरपर अकेले बात करते हुए बीसियो बार पाया था। वह अब भी उमी तरह अकृत्रिम रूपसे मिले। उस समय वह 'आर्यगजट'के लिए लेखकी माँग करते थे, और अब उन्होने 'मिलाप'के लिए कुछ लिखनेको कहा। मैने "बाईसवी सदी"के कुछ अध्याय उर्दूमे अनुवाद कर 'मिलाप'को दिये जो उसमे कई दिनो तक छपते रहे।

गुरुदत्तभवन, आर्यसमाज बच्छोवाली तथा दूसरी जगह मैने कई व्याख्यान दिये जो आर्यसमाजी ढगके थे, किन्तु उनमे बुद्धकी बहुत अधिक प्रशसा होती थी। जातपाँतके विरुद्ध हर व्याख्यानमे कुछ जरूर कहा करता था। पिछले लाहौरके निवासो-मे मै पजाबके भिन्न-भिन्न भागोंको देखनेकी लालसाको पूरा नही कर सका था, इसलिए अबकी बार जब आर्यप्रतिनिधि सभा—जिसका कार्यालय गुरुदत्तभवनमे ही था—वालोने बाहरकी आर्यसमाजोमे कुछ समय देनेके लिए कहा, तो मैने उसे स्वीकार किया। एक बार—और शायद सबसे पहिले—(उर्दू) "प्रताप"के सम्पादक महा-शय कृष्णके साथ नई दिल्लीके आर्यसमाजके वार्षिकोत्सवमे व्याख्यान देने गया। उस समय कन्यागुरुकुल दिल्ली हीमे था, महाशय कृष्णके साथ मै भी उसे देखने गया। आर्यसमाजकी शिक्षा-सम्बन्धी पुराणपन्थितासे मै पहिले भी सहमत न था, किन्तु उनके उत्साहकी तो सराहना ही करनी पडती।

पजाब और सीमान्तके भिन्न-भिन्न स्थानोके भ्रमणको वहाँसे लिखकर पटनासे निकलनेवाले बाबू जगतनारायणलालके पत्र 'महावीर'मे भेजता रहा, जिसमे कुछको छोड़कर बाकी अप्रकाशित रहे, और पीछे मैने उन्हे 'मेरी लदाखयात्रा'मे सगृहीत कर दिया। यात्राका अपेक्षित अश यहाँ दिया ही जा रहा है, किन्तु वहाँ आर्यसमाजके अपने सम्बन्धको मैने गुप्त रखा था, क्योंकि विहारमे मुझे लोग वैरागी वैष्णव समझते थे; इसलिए उसी छूटे अशके बारेमे यहाँ कुछ कहता हूँ। केम्बलपुर, रावलपिंडी, मुल्तानसे लेकर पुणछतकमें बहुत कुछ आर्यसमाजके वार्षिकोत्सवोमे व्याख्यान देने गया था। रावलपिंडीके उत्सवके समय शका-समाधानका काम मुझको दिया गया, और जवाबोंसे मालूम हुआ, कि महोबामे अन्तिम बार उपयुक्तकी गई वाद-विवादकी मेरी प्रतिभा कुठित नही हुई है। आर्यसमाजी ही स्वामी रामोदार—यही नाम वहाँ

प्रसिद्ध था—की तर्कशक्तिकी दाद नही देते थे, बल्कि प्रश्न करनेवाले कादियानी मौलवीने भी मेरी हाज़िरजवाबीकी तारीफ की।

उस वक़्तके लिखे लेखोसे मालूम होगा, कि आर्यसमाजका असर और कुछ-कुछ हिन्दू-मुस्लिम-संघर्षका असर भी मुझपर पड़ा था।

इस यात्रामे खैबरमे लंडीकोतल तक जानेका अवसर मिला, और आर्यसमाजके किसी प्रभावशाली नेताकी सिफारिशपर ही। यदि पुलीसको मालूम होता, कि मैं दो-दो बार राजनीतिक अभियोगोमे क़ैद काट चुका हूँ, तो न खैबरके भीतर ही घुसनेका मौका मिलता, न लदाख जानेका ही पर्मिट (आज्ञापत्र) पाता। रावलपिंडीके कुछ दोस्तोने तो विश्वास दिलाया, कि पासपोर्ट भी यहाँसे आसानीसे मिल सकता है। मैंने उसके लिए दर्ख्वास्त भी दे दी, निकट भविष्यमे विदेश जानेकी मेरी उत्कट इच्छा थी, किन्तु पासपोर्ट बहुत छान-बीन कर दिया जाता है। पुलीसने शायद कनैलामे जाँच-पड़ताल की होगी, और उसे मेरे बिहारके राजनीतिक जीवनका पता लग गया होगा। कुछ भी हो, पासपोर्ट नही मिला।

इस वक़्त मैं गेरुआ लुगी और चद्दरमे रहता था। सर्दीके वक़्त गर्म चादर ओढता, जैसा कि पेशावरमे लिये फ़ोटोसे मालूम होगा। कर्वीमे मुझे पहिलेपहिल पता लगा था, कि मैं दुबला-पतला नही हूँ, जैसा कि लड़कपनसे चला आता था। हज़ारीबागमे मेरा वज़न १५१ पौंड तक गया (आजकल मई १९४० ई०मे १८३ पौंड है), तो भी उस वक्त मुझे मोटा नही कहा जा सकता था।

श्रीनगरमे आर्यसमाज-मन्दिरमे ठहरा, किन्तु भोजनके लिए अक्सर डाक्टर कुलभूषणके घर जाता। डाक्टर कुलभूषण हीकी सहायतासे मुझे लदाखका परमिट मिला था, और उन्होने ही लदाखके इंजीनियर लाला रामरखामलको पत्र लिखकर मेरी आगेकी यात्राका प्रबन्ध कर दिया था।

कर्गिलमें लाला रामरखामल मिले। उनके तीन घोडोमेंसे एक मेरे लिए रिज़र्व हो गया, और वहाँसे लदाख, हेमिस तककी यात्रा उनके साथ बड़े आरामके साथ हुई। डाकबँगलो या खेमेमे सोते, घर जैसा पजाबी पुष्ट भोजन करते—हाँ, उस वक्त मैं निरामिषाहारी था, यद्यपि उसपरसे आस्था उठती जा रही थी।

लाला रामरखामलने राजके तहसीलदार तथा लेहके पंजाबी साहूकारो—जिनमे पडित सन्तरामजीके चचेरे भाई तथा लेहके बहुत प्रभावशाली व्यापारी लाला शिवराम भी थे—से परिचय करा दिया। मैं स्वामी भी था, इसका भी प्रभाव कम न था, इसलिए आगेका प्रबन्ध उन लोगोने कर दिया। लेहमे होशियारपुर ज़िलेके

बहुतसे व्यापारियोकी दूकाने थी, इनमेसे लाला शिवरामजी जैसे कितनो हीकी दूकाने चीनी तुर्किस्तानके यारकद, काशगर, खोतन शहरोमे भी थी। यहाँ आकर चीनी तुर्किस्तान जानेकी मेरी बडी इच्छा थी, किन्तु बीचमे सवाल था, पासपोर्टका। यदि उसका झगडा न होता, तो मै सीधे उधर चला जाता, लाला शिवराम यात्रा आदिका पूरा प्रबन्ध करनेके लिए तैयार थे।

हेमिस्से लाला रामरखामल तो अपने कामसे चले गये, और मै वहाँ कुछ दिनो ठहरा। हेमिस्के लामा स्तग्-सड्-रस-पाको उन्होने मुझे अच्छी तरह रखनेके लिये कह दिया था, और उन्होने मेरा बडा ख्याल रखा। तिब्बती लोग (लदाखी लोग भी तिब्बती जातिके है) बिना मासके भोजनको पसन्द नही करते, इसलिए निरामिष भोजनको उतना स्वादिष्ट नही बना सकते, तो भी मठसे रोटी, शलगमके पत्तोकी तर्कारी, दूध, मक्खन, दही आदि आ जाते थे।

काल्पीमे रहते हुए, मैने थोडा-थोडा मेस्मेरिज्मका हथकडा सीखा था—बहुत कुछ किताबके सहारे अपनी बुद्धिसे। एक दिन लामाने दिखलानेको कहा। मैने एक दुभाषिया (उर्दू जाननेवाले)को एक छोटे लडकेके साथ लामाके भीतरी कमरेमे बुलाया। लडकेके अँगूठेके नाखुनपर एक छोटासा चमकता हुआ काला काजल-बिन्दु लगा दिया। फिर लडकेके अपने प्रतिबिम्बको साफ देख लेनेपर सजेश्चन (परामर्श) दे दे दूसरी चीजो, स्थानो, व्यक्तियोका शब्द-चित्र बना देखनेकी प्रेरणा की। लडका, बम्बई शहर, समुद्र, जहाज, बोधगया मन्दिर—जैसे-जैसे मै बतलाता—देखता गया। अन्तमे हेमिस् गुम्बा (मठ)के लामाके बैठकेमे लाकर उस वक्तके बैठे आदमियोके बारेमे पूछा, तो लडकेने परिचित आदमियोके नाम अपरिचित आदमियोकी आकृति और बैठनेके स्थानको बतला दिया। दुभाषियाने दर्वाजेसे बाहर निकलकर देखा, तो बात बिल्कुल सच थी। लडका जिस वक्त उस कमरेसे भीतर आया था, उस वक्त वहाँ जो लोग बैठे थे, उनमे कितने चले गये थे, और कुछ नये आदमी वहाँ आकर बैठे थे। दुभाषियासे भी ज्यादा इस बातका आश्चर्य लामाको हुआ। यह सब कुछ तब हुआ, जब कि मै तिब्बती भाषासे अपरिचित होनेके कारण सीधे सजेश्सन् नही दे सकता, मेरे सजेश्सन्की भाषाको दुभाषिया अनुवाद करके लडकेको समझाता था।

दोपहर बाद लामाने अपने सामने इस प्रयोगको देखना चाहा। हम लोग इसके लिए मठसे नीचे सफेदेके बागमे लामा (महन्त)के बँगलेमे गये। वहाँ भी प्रयोग सफल रहा। काल्पीमे भी मैने इसके तीन-चार प्रयोग किये थे, और तत्काल परोक्ष

स्थानमे बैठे आदमियोकी पहिचान हर बार ठीक निकली थी, इसलिए सफलताके लिए मुझको अपनेपर विश्वास था।

लेहसे लौटकर खर्दोङ् पासके पार मै नुब्रा उपत्यका देखने गया। खर्दोङ्की चढाई और आगेकी यात्राका मैने एक बड़ा सुन्दर वर्णन लिखा था, जिसे सुनकर राजेन्द्र बाबू इतने प्रभावित हुए, कि उन्होंने मेरी लदाख-यात्रा सम्बन्धी लेखोंको पुस्तकाकार प्रकाशित करनेके लिये बनारसके अपने एक मित्रको पत्र लिख डाला। वह लेख मैने किसी पत्रको—शायद 'सरोज' (कलकत्ता)को भेज दिया था, किन्तु मूल या छपा लेख मुझे मिल नही सका।

लदाखके तहसीलदार साहेबने मेहरबानी करके अपने चपरासी गगाराम (लदाखी होते हुए महाराजा रणवीरसिहकी नीतिके अनुसार यह नाम उसे दिया गया था) तथा एक मुहर्रिरको मेरे साथ कर दिया था। हम लोग घोडेपर चढ शामके वक्त खर्दोङ्की ओर चले। लदाखसे चीनी तुर्किस्तानका रास्ता इधर हीसे जाता है, इसलिए रास्तेकी मरम्मत होती रहती है। जगह-जगह सराये भी मुसाफिरोके लिए . । रास्तेमे ब्रिटिश सर्कारके चरस-अफसर मिल गये—हिन्दुस्तानमे खपत होनेवाली चरस या सुल्फा करीब-करीब सारे चीनी तुर्किस्तानसे इसी रास्ते आता है, और उसपर निगरानीके लिए सर्कारका एक खास अफसर यहाँ रहता है। चरस-अफसर खॉ साहेबने रातको साथ ही ठहरनेका निमन्त्रण दिया। हम लोग गाँवसे बहुत ऊपर जोत (पास)के ३, ४ मील रह जानेपर ठहरे। अब मै दिल्लीकी तरह एक कम्बलसे जाडेको नाप-बाँध नही सकता था, इसलिए जाड़ेके लिए श्रीनगरसे लेकर चले ऊनी कपड़ोमे भी यहाँ काफी वृद्धि कर ली थी। पैरोमे यारकन्दी पप्पू जूता, और उसके भीतर नम्देका मोजा सोते वक्त भी पड़ा था, तम्बूके भीतर मै कनटोपके ऊपर ऊनी चादरसे सारे मुँह-कान-शिरको ढाँके, देहपर चुकटू, लोई आदि ओढे सोया था, तो भी वहॉ जबर्दस्त सर्दी थी।

खाँ साहेब किसी नये रास्तेके टोहमे गये थे, इसलिए यहाँसे उन्हे दूसरी जगह जाना था। मै और दोनो साथी घोड़ोंपर चढे, बेगारवाले किसानोके साथ दो बजे रातको ही चल पडे। लदाखमे बर्फकी जोतोंको पार करनेका यही उचित समय समझा जाता है, जिसमे कि धूप निकलनेसे पहिले बर्फका रास्ता खतम हो जावे। धूप चढनेपर बर्फके नरम होनेसे आदमियों और जानवरोंके पैर धँसने लगते है, और उनके दरारमे फँस जानेका डर रहता है, साथ ही आसपासकी ऊँची जगहोसे लाखो मनकी हिमानियोके गिरनेका डर रहता है। थोडी दूर तक नालेके किनारेसे हमे

साधारण चढ़ाई चढ़नी थी, किन्तु अब भी हम १४००० फीटसे ऊपर चढ रहे थे, और यदि घोडेपर न होते, तो आटा-चावलका भाव मालूम हुआ होता। फिर असली चढाई शुरू हुई। घोडे अब हर दस-दस कदमपर साँस लेनेके लिए रुक जाते। थोड़ी दूर बाद हम श्वेत बर्फके फर्शपर चलने लगे, चाँदनी रातमे वह खूब चमक रही थी। पतली हवाके कारण साँस लेने और पैरोके उठानेमे किसको बात करनेकी फुर्सत थी, और उस सन्नाटेमें सिर्फ जानवरोकी साँसकी आवाज़ सुनाई देती थी। चढाईके श्रमको हल्का करनेके लिए घोडे गोमूत्रिका बनाते हुए टेढे रास्तेसे चल रहे थे, हाँफनेसे उनका पेट फूल-पचक रहा था, और पीछेका सारा शरीर मालूम होता था, मुंहको ढकेलकर पैरोसे आगे खीच ले जावेगा। जानवरोके कष्टको देखकर हम उन्हे अपने मनसे चलने देते थे। आमतौरसे थोडी देर रुकनेके बाद वे खुद चल देते थे, नही तो ज़रासा लगामका इशारा कर देना पडता था। घोड़े सभी बेगार के थे, इसलिए लाला रामरखामलके मजबूत टॉघनोका मुकाबिला नही कर सकते थे। लदाखियोंने अपने कनटोपके ऊपर उठे हुए कनौटेको नीचे गिरा कानोको ढाँक लिया था। और मै ?—मैंने तो जो रातको मकी कैंपसे आँख-नाक छोडकर सारे शिर और गर्दनको ढाँका था, और ऊपरसे ऊनी चादर बाँधी थी, उसे जरासी भी हटाया न था। कश्मीरसे आते वक्त तीन जोतोको पार करते हुए मैंने देख लिया था, कैसे इस ऊपरी हवाके कारण चेहरेका रग झुलसकर काला हो जाता है, इसलिए अब नाक और उसके आसपासका जो थोडासा भाग खाली था, उसपर वेस्लीन मल ली थी। हाथोमे दस्ताने थे, और बाकी सारा शरीर अनेक तह मोटे ऊनी कपडोसे ढँका था। इतनेपर भी सर्दीकी शिकायत अनुचित होगी, तो भी मै अनुमान कर सकता था, कि यहाँ कितनी ठडक पड रही है।

धीरे-धीरे पैरोसे नापते, मालूम होता था, युगोमे रास्ता कट रहा है। पन्द्रह हज़ार, सोलह हज़ार, सत्रह हज़ार, अठारह हज़ार फीटपर पहुँचना—कहनेमे आसान मालूम होता है, लेकिन ये हर एक हज़ार मनुष्य और पशुओके फेफडे, पैरो और पुट्ठोपर कितना असह्य भार, कितनी पीडा पैदा करते है, इसका आभास भी शब्दो द्वारा चित्रित करना मुश्किल है। खर्दोङ् ला (जोत) अठारह हजार फीट ऊँचा है, और तिब्बतके कठिन जोतोमे गिना जाता है। ऊँचे स्थानोपर उषा और सूर्यकी किरणे कुछ पहिले पहुँचती है, किन्तु हम अभी डाँडेसे नीचे ही थे, तभी खूब सवेरा हो गया था। आज हवा और बादल नही थे, इसलिए यात्रा सुखपूर्वक हुई। लदाखी इसे देवताका प्रताप समझते थे।

जोतपर पहुँचकर हम घोडोंसे उतर गये। एक साथीने अदरकका एक टुकडा देते हुए कहा—जोतपर इसका खाना अच्छा होता है, इससे विषैली भूमिका असर जाता रहता है। वहाँ पतली बीरीकी शाखाओमे लाल-पीली भडियोसे अलकृत खर्दोङ् डाडेके देवताका स्थान था। लदाखी साथियोने शो-शो कहा। हमने थोडा विश्राम किया, और घोडोको उनके मालिकोके हाथमे पकडा पैदल ही उतरना शुरू किया। मुझे यह पता न था, कि खर्दोङ्की उतराई चढाईसे भी मुश्किल है। उतराईमे ऐसे भी सवारीपर चलना सवार और पशु दोनोंके लिए कष्टकी चीज है। एक दो फर्लाङ् हीमे जानवरकी पीठ कट जानेका अन्देशा रहता है। और यहाँकी चढ़ाई क्या, यह तो कही-कही ज़रासा पीछेकी ओर झुकी दीवारसे उतरना था। कितनी ही जगह मुझे चतुष्पाद बनना पडा। इस तरफ कई मील तक—परली तरफ़से दूनीसे भी अधिक दूर तक—वर्फ थी। लेकिन सारी जगह सीधी उतराई नही थी। खर्दोङ्की ऊपरी बर्फ कभी नही गलती, वह सनातन हिमानी है। ऊपरकी बर्फ गल जानेपर जब निचली कडी चिकनी चिरन्तन बर्फ ऊपर आ जाती है, तो बोझा ले चलनेवाले पशुओंके लिए बहुत खतरा हो जाता है। सीधी उतराईमे यदि पैर फिसला, तो बगलमे हज़ारों फीट नीचे अवस्थित सरोवरमे गिरकर फिर उनके जीते जी निकलनेकी आशा नही की जा सकती। खैर, इस वक्त अभी वह बर्फ अर्वाचीन बर्फोंसे ढँकी थी।

नौ-दस बजेके करीब हम राजकीय सरायमे पहुँचे। यही खाना-पीना हुआ। घटोके विश्रामके बाद पशु-प्राणी फिर कुछ ताजगी अनुभव करने लगे और दोपहर बाद हमने फिर प्रस्थान किया। यहाँके पहाडोके सानु अधिकतर मिट्टीसे ढँके थे, और हल्की होनेपर भी शताब्दियोसे होती वर्षाके पानीने उनको काट-काटकर खम्भ, खड्ड और गुफाओंकी शकलमें परिणत कर दिया था। इधर बस्ती नही दीख पडती थी। खर्दोङ्से आते नालेके सहारे चलते-चलते बहुत समय बाद हम शियोक नदीकी उपत्यकामे पहुँचे। शियोक सिन्धुनदकी दो प्रधान धाराओमे है, यद्यपि सिन्धुका नाम इसकी दूसरी बहिनको मिला है, जो मानसरोवरकी ओरसे आ लेहसे ५, ६ मील नीचेसे गुजरती है। तो भी सिन्धुमें समय-समयपर आनेवाली खतरनाक बाढे शियोकके कारण ही होती है। अक्षय सनातन शियोक-हिमानी गलकर अपने भीतरसे एक मोटी धार इस नदीके आदि-स्रोतके रूपमे फेंकती है। जब तक धारके निकलनेका रास्ता खुला रहता है, तब तक खैरियत है, किन्तु, जहाँ सर्दी आदिके कारण पानीने बर्फकी चट्टान बन धारका रास्ता रोका, वहाँ फिर पश्चिमी पजाब और पश्चिमोत्तर सीमान्तके सिन्धुतटवर्ती गाँवों और शहरोकी खैर नही। सर्कारकी ओरसे शियोक-हिमानीपर

चौकीदार रहते है। उनका काम हैं यह देखते रहना, कि धारका मार्ग मुक्त है या नही। बर्फके भीतरसे आती धारका रास्ता बन्द होते ही चौकीदार तहसीलदारके पास आदमी दौडाता है। अरबो मन पानीके जमा होकर काँच सदृश हिमप्राकारको तोडनेमे कुछ दिनोकी देर लगती है, तब तक, सावधानी करनेपर खतरेकी जगहोपर खबर दी जा सकती है। लेहके तहसीलदार जिस वक्त शियोक-हिमानीके खतरेका तार देगा, बाकी सभी तार रोककर उसे दिल्ली, स्कर्दो और सीमाप्रान्त-पजाब भेजना होगा। चौकीदार वैसे भी हर सप्ताह नियमपूर्वक धारके पानीकी गहराई आदि लिखकर भेजा करता है। एक बार गहराई कम होकर हिमानीका छिद्र बन्द होने लगा था। चौकीदारने रिपोर्ट भेजी, किन्तु तहसीलदारने उसे हमेशा जैसा कागज समझ रख छोडा। एक-दो दिन बाद जब उनकी नजर कागजपर पडी, तो परिस्थितिकी गम्भीरता उनकी समझमे आई, किन्तु जिस वक्त वह तार भेज रहे थे, उस वक्त खबर आई कि पानी स्कर्दोके पास तक पहुँच गया है।

शियोकके बाये तटपर धारसे कुछ ऊपरके गाँवमे हम रातको ठहरे। यहाँ सर्दी बहुत कम मालूम हो रही थी, शायद बहुत सर्द स्थानसे आनेके कारण। किन्तु ऐसे भी शियोक-उपत्यका गर्म है। गाँवमे खूबानी आदिके दरख्त है।

सबेरे चायपानके बाद हम फिर रवाना हुए, लोहेके झूलेवाले पुलसे शियोक नदी पार की, फिर दाहिनी ओरसे आती अधिकाश सूखी एक नदीकी उपत्यकामे बायेंसे घुसे। हम नुब्रामे रि-जोङ्के लामा सस-कुशोक्के पास जा रहे थे। रिजोङ्-लामा लदाखके लामोंमे सबसे ज्यादा शिक्षित और सस्कृत थे, इसलिए उनसे मिलकर बौद्ध-धर्मके बारेमे जानकारी प्राप्त करनेकी मुझे बडी इच्छा थी। लदाखके और स्थानोमे मै १९३३मे दुबारा गया था, किन्तु खर्दोङ् पार नुब्रामे १९२६के बाद फिर जानेका मौका नही मिला, और मै जो कुछ लिख रहा हूँ, वह स्मृतिके सहारे ही। शायद नुब्रासे पहिले कुछ झाडियाँसी मिली थी। नुब्राके चारो ओर हरे-हरे गेहूँके खेत लहरा रहे थे। कितने ही खूबानी, सफेदे और बीरीके वृक्षोके बाग थे। सरल रेखाओसे बने लदाखी गाँवके सफेद घर दूरसे बडे सुन्दर मालूम होते थे।

हम लोग लामा (गुरु, महन्त)के निवास स्थानमे गये। दुभाषियाने मेरा परिचय दिया। लामाने अपनी बैठकेमे बुलाया। यह साफ हवादार ही नही, बल्कि उसके सजानेमे काफी सुरुचि प्रदर्शित की गई थी। लामा स्वय चित्रकार थे, और दीवारोपर उनके चित्रित किये गुलाबके फूल बहुत सुन्दर मालूम होते थे। खानेमे छूत-छातका तो सवाल ही न था, किन्तु मेरा निरामिषाहारी होना दूसरोके लिए बला थी। यहाँ

साग-सब्जी, दाल सभी दुर्लभ थे। खैर, दूधके साथ पेटभर रोटी खा लेना मुश्किल नहीं था।

रिज़ोङ्-लामाकी उम्र उस वक्त साठसे ऊपर थी। वह बहुत सफाई-पसन्द आदमी थे। उनका बदन कुछ पतलासा, रंग पीलापन लिये हुए गोरा, चेहरेपर कम मांस, नाक कम चिपटी—हमारे मानसे भी वह जवानीमें सुन्दर रहे होंगे। लदाखके पुराने राजवंशमें पैदा होनेसे उन्हें सस्-कुशोक (कुशोक लदाखमें मठके महन्त भिक्षु-को कहते हैं, यद्यपि मध्य तिब्बतमें उसके लिए रिम्-पो-छेका व्यवहार होता है)—राजकुमार कुशोक—कहा जाता था। तिब्बती भाषा, उसके साहित्यपर घंटों हमारी बातचीत होती रही। उन्होने कन्जूरमें अनुवादित महायान महापरिनिर्वाणसूत्रका कुछ अंश अर्थके साथ सुनाया—दुभाषियाने उसका अनुवाद करके बतलाया। मैंने लामासे लदाखियोंमें कुछ सुधार करनेकी बातें कही, जिन्हें कि हेमिस् कुशोकके सामने भी मैं रख चुका था; उनमें मुख्य थी—सफाईके अभावमें सदा गन्दा रहने-वाले लम्बे-लम्बे बालोंको पुरुष कटवा दें। बहुपति-विवाहके कारण पति न मिलनेसे लदाखी स्त्रियाँ दूसरे धर्मवालोके साथ ब्याह कर लेती है, जिनसे लदाखमें उनकी सख्याका ह्रास हो रहा है, इसलिए बहुपतिविवाहकी प्रथा हटाकर हर भाईकी अलग-अलग शादी करनेकी रीति जारी करे। भिक्षुओके पढ़ानेका समुचित प्रबन्ध करें। रिज़ोङ्ने मेरे सुझावोका स्वागत करते हुए कहा, मैं भी इन बातोका अनुभव करता हूँ। लामाको सस्कृतसे प्रेम था, कह रहे थे, अब तो बूढा हो गया, नही तो सस्कृत पढता।

दो या तीन दिन रहनेके बाद मै नुब्रामें लेहकी ओर रवाना हुआ। लामाने अपने बनाये कुछ छोटे-छोटे चित्र तथा लेख दिये। मैं फिर लेह लौट आया।

गये रास्तेसे लौटनेको मैं बिल्कुल पसन्द नही करता। किस रास्ते लौटा जावे, इस पर मैं विचार कर चुका था, और मन्-पङ्-गोङ् झील देखते हन्ले, चुमुर्ति(तिब्बत), कनौरके रास्ते शिम्ला आनेका निश्चय किया था। लाला शिवराम इसके लिए पैसे-कौड़ीका इन्तिज़ाम करने लगे। हेमिस् लामाने हन्लेके अपने मठके प्रधान कर्मचारी, तथा कनौरके प्रथम बडे गाँवके मुखियाके नाम परिचयपत्र लिख दिया।

हेमिस्में मै मेलेके वक़्त गया था। सालमें एक बार इस वक्त वहाँ धार्मिक नाटच और नृत्य होता है, जिसे अग्रेज डेविल-डेन्स (भूतनृत्य) कहकर पुकारते है। तरह-तरहके चेहरे और पोशाकके साथ यह अभिनय होता है, और उस वक्त कितने ही युरोपीय यात्री भी पहुँच जाते है। इन यात्रियोमें पेरिसकी एक चित्रकयित्री मदमोज़िल्

(कुमारी) लाफूजी भी थी। वह फ्रेंच और इंग्लिश जानती थी, और मेलेके खतम हो जानेके बाद मैं ही ऐसा आदमी था, जो अंग्रेजी जानता था, इस प्रकार हेमिस्मे रहते हमारी घनिष्ठता बढ गई थी। नुब्रा जाते वक्त लेहमे लाफूजीको मैंने एक वागमे तम्बूके भीतर छोडा था। लौटके आनेपर मालूम हुआ वह डाकबंगलेमे चली गई है। उन्होने कहा था कि लौटकर नुब्राके बारेमे मुझे जरूर बतलाइयेगा, इसलिए एक दिन मैं शामको डाकबँगले पहुँचा। लाफूजीने गुड-इव्निङ् (सुसाय) कहते हुए खूब ज़ोरसे हाथ मिलाया। फिर अपने नये मित्र मेजर मेसनको मुझसे मिलनेके लिए बुलाने गई। बेचारीको भारतमे रहनेवाले अंग्रेजोकी मनोवृत्तिका पता न था। मेजर मेसन आये तो सही, और उन्होंने गुड-इव्निङ् कहकर हाथ भी मिलाया, किन्तु उनकी चेष्टा, तथा उनके चेहरेसे साफ मालूम हो रहा था, कि वह लाफूजीके दबावके कारण यह सब यन्त्रवत् कर रहे थे। मेजर मेसन भारत-सर्कारके सर्वेविभागके उच्च कर्मचारी थे, कराकुरम पर्वतमालामे गवेषणाके लिए गये थे। लेहके नायव-तहसीलदार उनके बारेमे सुना रहे थे—आगे जोतोंपर बर्फ ज्यादा होनेसे रास्ता बन्द है, इसलिए बेगारके घोडे, याक आदिका हम इन्तिजाम न कर सकते थे। एक दिन मेजर साहेब लाल-पीले होने लगे, तो मैंने कहा—साहेब, इतने जानवर और उनके आदमी जो इन खतरनाक जोतोमें जावेंगे, उनकी जानकी जिम्मेवारी कौन लेगा? इसपर साहेब बहुत बिगडे—"यह गाँधीवाला मालूम होता है।" मेजर मेसन जैसे अंग्रेज कर्मचारी ही है, जिन्होने भारतमे अंग्रेज़ोको वैयक्तिक तौरसे हमारे लिए असह्य बना दिया। उससे ज्यादा मुझे उनसे साबिका नही पडा। मैं इसे सुसयोग समझता हूँ, जो मुझे किसी अंग्रेजकी गुस्ताखीका सामना नही करना पडा, नही तो आत्मसम्मानकी जो आग ऐसे वक्त मेरे हृदयमे भडक उठती है, उससे अनर्थ हो सकता था।

लदाखके राजाके प्रासाद, शकरगुम्वा, पितोक्गुम्वा, फियाङ्-गुम्वा, सेह-प्रासाद आदि लेहके आसपासके दर्शनीय स्थानोको मैं देख चुका था। लाला शिवरामने रास्तेके लिए सौ रुपयेके करीब जमाकर दिये, और मैं आगेकी यात्राके लिए रवाना हुआ। तहसीलदार साहेवने गगारामको हन्ले तकके लिए साथ कर दिया। रास्तेमें ठिक्सेकी गुम्वाको देखता रातको चिमरेसे आगे, पुराने राजप्रासादके ध्वसके पास सर्कारी सरायमे ठहरा। गगाराम चपरासीसे लदाखका कोई गाँव बचा न था। उसकी वजहसे मुझे कोई तकलीफ न होती थी। वह गोवा (मुखिया)को पकड़ता। जहाँ सराय या ठहरनेका सर्कारी स्थान—और चाङ्-लाके आगे उसका अभाव था—न होता, वहाँ किसी अच्छे घरके सबसे अच्छे कमरेमे ठहरनेका इन्तिजाम होता। घोड़े

पडाव-पडावपर बदलते जाते। खानेका सामान मुखिया मुहैया करता, यद्यपि मै दाम चुका देता। निरामिषाहार नियमको जो नवद्वीपके रास्तेमे अजाने तोड़ा था, अब वस्तुत वह भार मालूम होता था और दिलसे बिल्कुल टूट चुका था, किन्तु अभी खुल्लखुल्ला उसकी अवहेलना नही कर रहा था, और इसकी वजहसे इधर खाद्यसामग्री जुटानेवालो और मुझे भी तकलीफ हो रही थी। सरायमे दो एक लदाखी अरगोन (कश्मीरी मुसल्मानसे लदाखी स्त्रीका लडका) मुसल्मान भी ठहरे हुए थे, वह चाड्-थाड् (लदाख और उसके पूर्वी सीमान्त मानसरोवर-ब्रह्मपुत्रसे उत्तर, मध्य-एसिया तक फैला निर्जन प्रदेश) व्यापारके लिए जा रहे थे। उनके पास चाय, कपडे, चीनीके बर्तन, तथा दूसरी कारखानोकी बनी चीजे थी। चाड्-थाड्के खानाबदोशो (घुमन्तू)को वे इन चीजोको अगले साल ऊन, समूर, पट्टू आदिके बदले दे आते थे, दूसरे साल फिर अगले सालके लिए उधार देकर, पिछले सालकी वसूली करते। खानाबदोश सीधे-सादे तथा लदाखी ग्रामीणोकी भाँति बडे ईमानदार होते है, इसलिए दुगना-तिगुना नफा होना निश्चित था। आजकल (जुलाई या अगस्त १९२६ ई०) उनके व्यापारका समय था।

दूसरे दिन हम जोत्की तरफ बढे। इस जोतका नाम चाड्-ला मै पुराने स्मरणके सहारे कह रहा हूँ, हो सकता है इसमे गल्ती हो। यह लेहसे पूरब तरफ है। यह भी खर्-दोड्की भाँति ही बहुत ऊँचा डाँडा (जोत) है, किन्तु इसकी चढाई-उतराई उतनी तीखी नही है। मेरुपर दोनो तरफ—उतराईकी ओर बेशी—दूर तक बरफ थी। शामसे बहुत पहिले हम उस पारके गाँवमे पहुँचे। उस गाँवका इतना ही स्मरण है, कि दूसरे दिन सवारीके लिए घोडा और सामान ले चलनेके लिए दो या तीन औरते मिली थी। वह सभी एक उम्रकी तरुणियाँ थी। बूढे गगारामको छ्ग (कच्ची शराब) पीने और मजाक करनेका बहुत शौक था। वे तिब्बती भाषामे बोल रहे थे, इसलिए मै तो समझ न पाता था, किन्तु बीच-बीचमे ठहाका खूब लगता था। वैसे तो जोजीला पार होते ही वनस्पति विशेषकर वृक्षोका दर्शन दुर्लभ हो जाता है, किन्तु इधर तो उसका बिल्कुल ही अभाव था। कारण स्थानकी ऊँचाई और सर्दी थी। नदी पतली थी, किन्तु उसकी उपत्यका बहुत चौडी थी, और चारों ओरके पहाड़ नगे थे। पश्चिमी हिमालयके रास्तेके सम्बन्धमे एक अग्रेजी पुस्तक, सर्कारी सर्वेविभागसे प्रकाशित, मुझे रावलपिडीके एक कबाडियेकी दूकानमे मिल गई थी, इसलिए उससे रास्तेकी जानकारीमे बडी मदद मिल रही थी। शायद दूसरे दिन हमे इस नदीको छोड दूसरी सूखीसी उपत्यका पकडनी पडी। रातको एक छोटेसे गाँवमे

ठहरे। वहाँके घरोमे लकडीका नाममात्र उपयोग होनेसे वे अनगढ पत्थरोके ढेरसे मालूम पडते है। लोग मुश्किलसे सत्तूभरके लिए कुछ खेती कर लेते है, नही तो उनका गुजारा भेड और याक्के दूध, मासपर होता है। आगके पास बैठे हम चाय पी रहे थे, पासमे घरकी बूढी दादी घुमौआ मानी (प्रार्थनाचक्र) लिये घुमा रही थी। मैने बात-चीतमे पूछा—'बूढी दादी! मरकर कहाँ जन्म लेनेका मन है?' झट जवाब मिला—'ग्यगर दोर्जे-दन् (भारत बोधगया)।' मैने कहा—'तो अभी चलो न, मै उधर ही जा रहा हूँ।' लेकिन जीते जी दोर्जे-दन् जानेके लिए बूढी दादी तैयार न थी।

आगे दो उपत्यकाये ऊपर उठती किसी पर्वत मेरुपर न मिलकर एक छोटेसे तालावको अपना जलविभाजक बनाती थी, चढाई-उतराई वहाँ इतनी कम थी, कि मालूम नही हुई। तालाव बहुत छोटा था, और उसमे सेवारकी तरहकी कोई घास फैली हुई थी। पानी स्वच्छ नही था। पुस्तकमे इसका नाम चकर-तालाव देखकर, हिन्दी नाम मुझे कुछ अजीबसा मालूम हुआ। गगारामने कहा—कोई साहेव किसी पथ-प्रदर्शकके साथ यहाँ आया। साहेवके प्रत्येक प्रश्नका जवाव तुरन्त न दिया जाये, तो पथप्रदर्शक अयोग्य समझा जावे। साहेवने पूछ दिया—'इस तालावका नाम क्या है?' पथप्रदर्शक बिना एक मिनटकी देरीके वोल उठा—'चकर हुजूर!' चा-कर (पक्षि-श्वेत)का अर्थ सफेद चिडिया है। पथप्रदर्शककी नजर उसपर पडी, और उसने वही नाम रख दिया।

मन्-पड्-गोड् झीलके पास उपत्यका टेढी-मेढी हो गई थी, और हम उसके बहुत पास आ गये जब कि झील पर हमारी नज़र पडी। मन-पड्-गोड् नीले पानीकी पचासो मील तक फैली एक टेढी-मेढी झील है, इसका आधेसे अधिक भाग तिव्वतकी सीमाके भीतर है। पानी स्वच्छ दीख पडता है, किन्तु उसमे कोई मछली नही। लोग कहते है, पानीमे जहर है, इसलिए मछली जी नही सकती। जाडोमे पानी जम जाता है, उस वक्त आदमी उसके ऊपरसे रास्ता वना लेते है।

हमे उस दिन जिस गाँवमे रहना था, वह पच्छिम-उत्तरके कोनेपर था। शायद दो या तीन घर थे। जव सभी भाइयोके लिए एक ही स्त्री मिलनेवाली हो, तो एकसे दो घर होनेकी वहाँ सम्भावना कहाँ, इसलिए ये दो घर 'सृष्टिकी आदि'से चले आते समझिये। गाँवमे पहुँचनेके वाद जो हवा शुरू हुई, तो वह रात तक चलती रही, जिसके कारण सर्दी और वढ गई थी। गंगारामने रोटी वनाई, दूधके साथ भोजन किया। गगारामको तो गाँवमे पहुँचनेके साथ छग मिलनी जरूरी थी, और लदाखके

गाँवोंके लिए वह तहसीलदार-साहेबसे कम न था। पहुँचतेके साथ छगकी मटकी उनके सामने आन उपस्थित होती।

दूसरे दिन हम पूरबकी तरफ झीलकी ओर मुड़े। कलकी उपत्यकाका मुँह पार किया। आसपासके पहाड़ बहुत छोटे, टीलेसे मालूम होते थे, जिनके सानुओं और कक्षोंमे भारी बालुकाराशि जमा थी। दोपहरकी चाय हमने एक छोटेसे गाँवमे पी। यहाँ खेतोमे सिर्फ छोटी मटर दिखलाई पडी। चौदह हज़ार फ़ीटसे ऊपर भी खेती हो सकती है, इसका नमूना यही देखा। छोटी मटरके अतिरिक्त शायद नंगा जौ ही था, जो यहाँ पक सकता था। आगे भी रास्ता झीलके तटके पाससे था। वहाँ ज़मीनसे बड़े-बडे वृक्षोके निम्न भाग खोदकर निकाले जाते थे। आज तो यहाँ वीरी जैसा बेशरम वृक्ष भी दातुवन लायक़ ही रह जाता है, किन्तु पहिले किसी युगमे मालूम होता है, यहाँकी आबो हवा इतनी सर्द न थी; हो सकता है, उस वक़्त हिमालयकी ऊँचाई भी इतनी न रही हो, जब कि यहाँ इस तरहके विशालकाय वृक्ष होते थे।

एक छोटीसी मानीके पाससे हमारा रास्ता दाहिनी ओर मुड़ा। शायद उधरसे ोई छोटीसी नदी भी आ रही थी। आगे नई उपत्यका जो मिली, वह हरी घासका मैदानसा मालूम हो रही थी, जिसमे जहाँ-तहाँ हज़ारो याक (चँवरी गाये) चर रही थी। उसके किनारे-किनारे हमे घटों चलना पड़ा, और चार बजेके करीब एक अपेक्षाकृत बडे गाँवमें पहुँचे। यहाँ एक छोटासा वीरीका बाग था, जो शायद राजकी ओरसे लगाया गया था। इसके वृक्ष बहुत छोटे-छोटे थे। आगन्तुकोके—विशेषकर सर्कारी आदमियोके—ठहरनेके लिए वहाँ एक छोटासा घर था। चीनी, सूखा फल तो हमारे पास था, किन्तु यहाँ साग और तर्कारी नही थी। श्रीनगरमे मैंने एक कश्मीरी पडितके यहाँ छेने (पनीर)की तर्कारी खाई थी, जो स्वादमे बिल्कुल मछलीसी मालूम होती थी। दूधकी वहाँ कमी न थी। मैंने गगारामसे छेनासे तर्कारी बनानेके लिए कहा, खुद भी सहायता की, किन्तु छेनेकी टिकियाको घीमे भूनकर बनानेकी विधिसे परिचय न होनेसे छेना टूट-टाटकर रवड़ीसा बन गया। शामको मै गाँवकी गुम्बा (मठ) देखने गया। बुद्धकी मूर्तिके अतिरिक्त वहाँ कितनी ही युगनद्ध (यब्-युम्—मैथुनासक्त) मूर्तियाँ थी। ऐसी मूर्तियोको लदाखमे पहिलेपहिल देखकर मुझे तिब्बतके बौद्ध-धर्मपर बहुत गुस्सा आता था; क्योकि उस वक़्त मै यह न समझ पाया था, कि यह भी भारतकी देन है।

अगले दिन फिर हमे नये घोड़े मिले। हम एक जोतकी ओर बढे। रास्तेमे दूसरे गाँवका स्मरण नही। जोतके देवताके स्थानपर झडियाँ और सैकड़ो वर्षोसे

पूजामे चढ़ी याक, हिरनके अतिरिक्त जगली भेडेकी मोटी-मोटी सीगे भी थी। चढाईकी भाँति उतराई भी आसान थी, और दोपहरको हम याकवालोके काले तम्बुओमे पहुँचे। लदाखके कुत्ते भी बहुत बड़े होते है, किन्तु यहाँके लम्बे-लम्बे काले बालोवाले विशाल कुत्ते तो बहुत खूँख्वार मालूम होते थे। लेह्मे ही सुन चुका था कि चाङ्-थाङ्के कुत्ते बहुत खतरनाक होते है, दूसरी जगह तो घोडेके सवारको वे भूँककर ही छोड देते है, किन्तु यहाँ वे कूदकर हमला कर देते है; इसलिए मै ज्यादा भयभीत रहता था। तम्बुओके पास पहुँचते ही दो-तीन कुत्ते 'हाँव' 'हाँव' करके पास दौड़ आये। खैर, तम्बूवालोने पहुँचकर उन्हे भगाया। गगारामसे 'जू-ले' (प्रणाम) होने लगा। एक तम्बूमें हमारे बैठनेके लिए स्थान बनाया गया, और थोडी देरमे आगपर देगचीकी चाय खौलने लगी। खूब आड़े हाथ मक्खन डाल चाय तैयार हुई, और मैने अपनी प्यास बुझाई। गगारामके लिए छङ्की ठिलिया हाजिर थी।

तम्बुओंसे सिन्धुके पारवाले पहाड हमे बिल्कुल साफ दिखलाई पड रहे थे, किन्तु चलनेपर हमें मालूम हुआ कि यहाँके स्वच्छ वायुमडलमे दूरी नापनेमे दृष्टि बडी भ्रामक होती है। दो बजेके करीब हम रवाना हुए। सूर्यास्त हुआ, किन्तु अब भी वे पहाड उतनी ही दूरपर थे। अँधेरा हुआ, घटाभर रात गई, अँधेरेमे साफ नही दीख रहा था, किन्तु अब भी सिन्धुकी धारका पता नही था। हमे दूर आगकी रोशनी दिखाई पड़ी। उसके पीछे भी घटे-डेढ घटे चले। आग कभी-कभी बुझ जाती थी। गगाराम उधर ही जाना चाहते थे, और मै निराश होकर चाहता था, कही विश्राम करना। मैने गगारामसे कहा—'अरे, वह आदमीकी जलाई आग नही है। मालूम होता है, कोई भूत हमे धोखा देना चाहता है।' गगारामने कबूल किया—'इधर भूत बहुत है, और कभी-कभी वे मुसाफिरोंके साथ ऐसी चाल चलते है।' उनको भूतकी बात सच मालूम हुई, और फिर अन्दाजसे नदीकी धारकी ओर हम बढे। नौ बजेके करीब हम पानीके पास पहुँचे। गगारामका इरादा था रात हीको नदी पार कर जाना, किन्तु शामको हिमानियोसे गलकर आया पानी कई गुना बढ जाता है। घोडेकी पीठपर चढ़कर गगाराम थाह लेने गये, पानी ज्यादा था। रातको कही पानी और न बढ आये, इसलिए जलके किनारेसे, कुछ हटकर हमने रातके विश्रामका इन्तिजाम किया। कपडे हमारे पास काफी थे, इसलिए सर्दीके लिए बेफिक्र थे। रातको चायका इन्तिजाम हो नही सकता था, इसलिए हम लोग बिना खाये-पिये ही सो गये।

सवेरे गंगाराम घोड़ेकी नंगी पीठपर चढकर धारकी थाह ले आये। सिन्धु यहाँ गहरी न थी, जाँघ बराबर पानी था। पहिले सामान फिर हम लोग पार उतरे।

अब हम नदीके बाये किनारेसे चल रहे थे। पहाड कही नजदीक और कही दूर हट जाते थे। इस तरफसे भेडो (अधिकतर नर)के झुड पीठपर नमक और दूसरा सामान लादे चले जा रहे थे। उनके साथ एक-दो गदहे भी थे, जिनपर तम्बू, चा-दुङ (चाय मथनेका लम्बा फोंफा) और दूसरा सामान लदा हुआ था। साथमे कुछ पुरुष और स्त्रियाँ थी। उस वक्त मेरे दिलमे एक जबर्दस्त लालसा पैदा हुई।—क्या ही अच्छा होता, कि मै भी इसी तरह कुछ भेडो, एक-दो गदहों, और एक तिब्बती तरुणीके साथ एक जगहसे दूसरी जगह घूमता फिरता। जहाँ मन आता वहाँ तम्बू लगाता। तरुणी और मै मिलकर गदहो और भेडोसे सामान उतारते। दो बडे कुत्ते हमारी चीजोकी रखवाली करते। तरुणी चाय बनाती, फिर उस निर्जन निर्वृक्ष नगी पार्वत्य-उपत्यकामे हम दोनो एक निर्द्वन्द विचित्रसा जीवन बिताते। जीविकाके लिए हम कुछ विक्रेय चीजे रखते, जिन्हे एक जगहसे दूसरी जगह बदला करते। इस प्रकार कभी लदाख, कभी मानसरोवर, कभी ब्रह्मपुत्रकी उपत्यकामे टशील्हुन्पो, कभी ल्हासा और कभी खम् (चीनके पास पूर्वीय तिब्बतका प्रान्त) हमारे पैरोके नीचे रहता। फर सोचा, मानसरोवर और तिब्बतके डाकुओसे हम दोनो बच कैसे निकलते ? और जीवनकी और भी तो बहुतसी लालसाये है, जवानी भी चिरस्थायी नही है; यह तो तब हो सकता था, जब कि जीवन हजार वर्षका होता, जिसमे जवानीके नकद पाँचसौ साल होते। क्या लालसा मात्रसे जीवनको बढ़ाया जा सकता है ? यह समझनेपर भी मेरी लालसा दबी नही। उसने एक कोनेमे स्थायी स्थान ग्रहण किया।

कितने ही मील चलनेके बाद हम बाईं ओरके एक नालेमे मुडे, वह ह्न्लेसे आ रहा था। अगला गाँव तीन-चार घरोंका था। सभी दर्वाजे बन्द थे, किन्तु ताले उनमे न थे। गगारामने आवाज दी, किन्तु वहाँ जब कोई हो, तब न बोले। पासके जौके खेतोंमे हिरन चर रहे थे। गगारामको देखकर वह भाग गये। घोडे यहाँ बदलने थे, और भूख भी जोरकी लगी हुई थी। नदीसे दो-तीन मील ऊपर जाकर गगाराम घरके मुखियाको पकड लाये। वह वही तम्बूमे चलनेके लिए कह रहा था, किन्तु हम बहुत भूखे थे।

खाना खाने और विश्राम करनेके बाद हम फिर नये घोडोपर रवाना हुए। आज ह्न्ले पहुँचनेकी कम सम्भावना थी। गाँववालोके तम्बुओंको बाईं ओर छोड़ते एक विशाल उपत्यकामें चल रहें थे, उस समय कितने ही 'घोड़ो'को मैने दूरसे अपनी ओर घूरकर देखते देखा। गगारामने बतलाया ये घोड़े नही क्याङ् (जगली गदहे) है। मैने कहा, इन्हें पकडकर लादते क्यो नही। गगारामने बतलाया—'क्याङ्का

एक तो पकडना ही आसान नही, यदि पकड़ भी लिया, तो वे पालतू नही बनाये जा सकते, मरनेसे बचनेपर वह भाग जाते है।' वे मझली राशिके घोडोके बराबर थे, पेट कम और छरहरा बदन था। मुँहके कुछ मोटेपन तथा गदहों जैसी दुमको छोड देनेपर वे बिल्कुल घोडो जैसे मालूम होते थे। शाम हो गई, अँधेरा छा गया, घड़ी भर रात भी बीत गई, तब गगारामने आज ही हन्ले पहुँचनेके इरादेको छोड दिया। हमारी बाई तरफ कुछ तम्बू दिखलाई पडे। हमने घोडे उधरको मोडे। दर्जनो कुत्तो-की 'हाँव' 'हाँव'को सुनकर मै तो ठहर गया, और गगारामने किसी आदमीको कुत्तोको खदेड़नेके लिए कहा। हन्लेके कुत्ते और भी खूँख्वार होते है, यह मै हेमिस् लामासे सुन चुका था।

याकोके बालके एक काले तम्बूमे हमे जगह मिली। तम्बूके बीचमे आग जल रही थी, धुँआ निकलनेके लिए ऊपर तम्बू थोडा कटा हुआ था। ग्यगर (भारत)-लामा कहनेपर घरवालोपर और भी प्रभाव पड़ा। गृहिणीने नया पानी नया चाय डालकर देगचीको आगपर रखा। मट्ठासे मुझे बहुत प्रेम है, और मेरे कहनेपर गाढे मट्ठेकी एक कठौती भरकर चली आई। तम्बूके भीतर चारो ओर किनारे-किनारे चीजोकी छल्ली लगी हुई थी। एक प्रधान स्थानपर चौकीके ऊपर कुछ मूर्तियाँ रखी थी, जिनके सामने पीतलके चिरागमे घीकी बत्ती जल रही थी। पासके तम्बूमे खबर लगनेपर पायजामा और कोट पहिने कनटोप उलटकर बनी गोल टोपी दिये एक अधेड आदमी आया। उसने 'राम राम' कह हिन्दीमें बातचीत शुरू की। वह कनौर (बुशहर-रियासत)से व्यापारके लिए आया हुआ था। देशकी चीजोके बदले ऊन खरीदना बस यही उसका व्यापार था। उससे रास्तेके बारेमे पूछा, और मालूम हुआ, चलता रास्ता है, तिब्बतके इलाके तकमे ही तकलीफ है, कनौर पहुँचनेपर तो देशसा मालूम होने लगेगा।

सबेरे एकाध घटे हीमे हम हन्ले गुम्बा (मठ)मे पहुँच गये। हन्ले गुम्बा हेमिस् गुम्बाकी शाखा है। हेमिस् लामाने मेरे बारेमे पत्र लिखा था, और ऊपरसे तहसील-दारका चपरासी मेरी अर्दलीमे था, फिर खातिरके लिए क्या पूछना। गुम्बा एक छोटीसी पहाडीके ऊपर है, नीचे उसकी दो तरफ हरी घासोसे ढँकी उपत्यका है। आसमानमे घिरे बादल, ज़मीनपर बिछी हरी घास और स्थानकी ऊँचाईने मिलकर हन्लेको ज्यादा शीतल बना दिया था। लामाके खातिर करनेकी सबसे अच्छी चीज तो मास है, किन्तु उसे मै खा नही रहा था, इसलिए उन्होने दही, घी, दूधसे ही सत्कार किया। सबसे सजे हुए कमरेमे मुझे ठहराया गया। जम्बूमे पैदल चलकर आनेवाले

एक तरुण सन्यासीने श्रीनगरमें कुत्तोंसे बाल-बाल बचनेकी आपबीती सुनाई थी, इसलिए लदाख पहुँचनेसे पहिले ही एक बड़ा कुत्ता साथ रखनेका मैंने संकल्प कर लिया था। मैंने हेमिस्-लामासे एक कुत्ता माँगा, तो उन्होंने कहा—'हन्लेके कुत्ते डीलडौलमें बड़े और मजबूत होते है, मै वहाँ चिट्ठी लिख देता हूँ, वहाँसे आप कुत्ता ले लेंगे।' चिट्ठी पढ़कर मठका अधिकारी कुत्तेकी तलाश करने लगा। फिर उसने एक पेकिनी (चीनी) कुत्ती मेरे सामने रखकर कहा—'बड़े कुत्ते बेवकूफ होते हैं, यह कुत्ती हमारे पास ल्हासासे आई है। आप भारतके लामा है, मै आपको इसे ही भेंट करना चाहता हूँ' कुत्ती छोटी और बहुत सुन्दर थी। उसके बाल लाल थे। बड़ी-बड़ी आँखें, कानोंके पास लटकती अलकें बहुत सुन्दर मालूम होती थी। मालिकके इशारा करनेपर कुत्ती अपने अगले दोनों पैरोंको ऊपर उठाये चिपटी नाकको और भी चिपटी कर पिछले पैरोंपर बैठ गई। मैंने बुलाया, झट मेरी गोदमें आ गई। दूसरे दिन तो वह मेरे पीछे-पीछे घूमने लगी। मैंने उसे ही लेना स्वीकार किया।

आगे जोत पार तिब्बतकी सीमामें काफी जानेपर गाँव मिलनेवाला था। गगारामने कहा—'यहाँसे चलकर गुम्बाके याक्-केम्पमें रातको रहा जावे, सबेरे आप उधर चले जाइयेगा, और मै लेहको लौट जाऊँगा।' हन्लेसे रवाना होते वक्त मेड्-टुक (यही उस कुत्तीका नाम था) के गलेमे ऊनकी रस्सी डाल मैंने अपने घोड़ेपर बैठा लिया। वह बार-बार नीचे उतरनेके लिए ज़ोर मार रही थी। मैंने समझा, शायद गुम्बाकी ओर भागना चाहती है, इसलिए पहिले तो नही उतारा, किन्तु दो-ढाई मील चलनेपर जब उसे जमीनपर रख दिया, तो वह हमारे पीछे-पीछे चलने लगी। गर्दनसे रस्सी निकाल ली गई, और उसे पैदल ही चलने दिया गया। दोपहरकी चाय हमने काले तम्बुओंमें पी, और सूर्यास्तसे पहिले ही गुम्बाके केम्पमें पहुँच गये। यहाँ गुम्बाकी सैकड़ो याकें चर रही थी। एक बड़े तम्बूमें पूजा, खाने-पीनेकी सामग्रीके साथ-साथ चमड़ेमें बन्द मक्खनकी बडी-बडी चाकियाँ तथा छुरे (सूखे पनीर) की बोरियाँ रखी थी। केम्पका प्रधान गुम्बाका एक साधु बड़े रोबदाबसे दर्जनसे अधिक स्त्री-पुरुषोपर हुकूमत चला रहा था। इन लोगोंका काम था, याकोंका चराना, दूहना, मक्खन बिलोना, छुरा तैयार करना और उन्हें हन्ले, फिर हेमिस्के लिए रवाना करना। जब हम पहुँचे, तो कुछ स्त्रियाँ ढोलकीकी तरहके मिट्टीके बर्त्तनोंमें—जिसका छोटासा मुँह लम्बाई-गोलाईके बीचमें था—दही डाले हिलाकर मक्खन बिलो रही थी। मक्खनके छूट जानेपर वह थोड़ा गर्म पानी डालती, फिर मक्खन अलग करती। सारे मट्ठेको वहाँ कौन पीता? मट्ठेको फिर आगपर चढाया जाता, और पानी

फट जानेपर छानकर गाढे भागको वर्फीकी तरह काटकर तथा सूतमे पिरो धूप या हवामें डाल दिया जाता, यही सूखकर छुरा होता। छुरा बहुत चिमड़ा, और खानेमे कुछ खट्टासा होता है। प्यासके मारनेमे वह बहुत सहायक होता है।

गगारामको अब लौटना था। नुब्रा और इधरकी सारी यात्रामे उनकी वजहसे मुझे बहुत आराम रहा, इसके लिए मैंने उनसे शब्दोमे ही नही बल्कि कुछ रुपयोके रूपमे भी कृतज्ञता प्रकट की। गगाराम बहुत खुश हुए और तहसीलदार साहेबको एक चिट्ठी लिखनेके लिए कहा। मैंने उनकी तारीफके साथ चिट्ठी लिख दी, लाला शिवरामको भी एक पत्र लिखा।

दूसरे दिन दो घोडो और एक आदमीके साथ मैं आगेके लिए रवाना हुआ। जोत तक पहुँचनेमे कई घटे लगे। चढाई शुरू होनेपर मैंने सेड्-टुक्को अपने सामने घोडेपर रख लिया, लेकिन वह बार-बार उतरकर पैदल चलनेके लिए छटपटाती थी, मैंने उसे नीचे उतार दिया। चढाई तीखी और लम्बी थी, जोत १८,००० फीटसे कम ऊँची न रही होगी। सेड्-टुक् घोडोके ठहरनेके साथ ठहरती और चलनेके साथ चलती रही। बरफ सब गल गई थी, और मेरु परसे बहुत दूर कुछ हिमाच्छादित चोटियाँ दिखलाई पड रही थी। उतराई भी काफी थी, और हम उसे पूरा तै किये बिना ही पानीके पास पास एक-दो तम्बुओको देखकर रातके विश्रामके लिए ठहर गये।

सेड्-टुक्को सत्तूकी गोली दी। उसने नही खाया। वह चुपचाप अत्यन्त श्रान्त हो मेरे बिछौनेपर पडी थी। आदमीने मट्ठा दिया, उसे भी नही पिया। फिर पडोसीसे गोश्त माँगकर दिया, उसकी एकाध टुकडियोको खाकर उसने छोड दिया। शामको उसे खाँसी आने लगी। रातको कितनी ही बार बिछौनेसे उठ-उठकर वह पाखाना-पेशाबके लिए जाती रही, और मुझे मालूम हो गया उसे बहुत तकलीफ हो रही है। सवेरे जब मैं नदी किनारे हाथ-मुँह धोने गया, तो उसने मेरा अनुगमन किया। चाय पीकर जब मैं चलनेके लिए घोडेपर सवार हुआ, तो सेड्-टुक् खडी होकर मेरे मुँहकी ओर कातर दृष्टिसे देखने लगी। उसकी सुदीर्घ काली-काली आँखोमे अपार करुणा भरी हुई थी, मैं समझ गया, अब उसमे पैदल चलनेकी शक्ति नही है। मैंने उसे अपनी गोदमें ले लिया। उसके शिथिल होते शरीरको देखकर, मैंने समझा, कलकी चढाई और रातकी भूखसे वह शिथिल पड रही है। दो-तीन मील चलनेपर पहिला घर मिला, मैंने एक कटोरी दूध लानेके लिए आदमीको भेजा। गृहपतिको कलछी भर दूध लाकर आते देख, मैंने सेड्-टुक्को उठाया। उसका शिर लटक गया। मैंने धडकते हुए

हृदयसे उसके शरीर, मुँह, हृदयकी गतिको टटोला, वह निष्प्राण थी! मैंने इतनी मात्रामे और अचानक पीडा कभी नही अनुभव की थी। असली मानीमे मै उस वक्त विचार-शून्य हो गया। मुझे सिर्फ एक तीव्र वेदना-मात्र कलेजेमे अनुभव हो रही थी। मैने सज्ञाहीनसा हो सेड्-टुक्के मृत शरीरको वही छोड दिया, और घोडेको आगे वढाया। घोडा वदलनेवाले गाँवमे पहुँचकर मुझे ख्याल आया—मैंने सेड्-टुकके शवके प्रति श्रद्धा नही दिखलाई, उसे एक जगह गाड तो देना चाहिए था। मैंने आदमी-को कुछ पैसे दिये, और वहुत प्रार्थना करके वचन लिया, कि वह उसे गाड देगा। मेरे मनकी पीडा वढती ही जाती थी। कितनी ही वार मेरी आँखोंसे आँसू निकल आये। माता और पिताके मरनेपर, तथा मेरे लिए प्राण देनेवाले नाना-नानीके मरने-पर भी जो आँखे नही पसीजी, उनमे आज छल-छल आँसू उमड आ रहे थे। उसी रातको मैंने सेड्-टुक्की मृत्युके कारण अतिसन्तप्त हृदयसे आठ श्लोक (सेड्-टुकाष्टक) लिखे, जिनका अन्त होता था—'सेड्-टुके ! त्वत्प्रयाणे'।

मुझे मालूम होता था, उस सुन्दर चीज़की हत्या मेरे इन हाथोने की।

तिव्वतमें—जोत पारकर अव मै पश्चिमी तिव्वतके छु-मुर्ति इलाकेमे था। प्राकृतिक दृश्योमे अभी कोई अन्तर नही पडा था। स्त्री-पुरुषोकी पोशाकमें कुछ विशेष तिव्वतीपन झलक रहा था। गाँवके मुखियाके घरमे छोडकर घोडेवाला चला गया। उस वक्त मुझे यह मालूम नही था, कि आगेके लिए सवारीका इन्तिज़ाम करना यहाँ इतना मुश्किल होगा। मुखिया कही वाहर गया हुआ था। गृहिणीने वतलाया, कि अभी उसके आनेकी जल्दी उम्मीद नही है। ऊपरके कोठेपर एक अँधेरेसे मकानमे मुझे ठहराया गया। मै काफी दिन रहते पहुँचा था। दिन तो छतसे विस्तृत उपत्यकाको देखते, और अर्धमूक वार्तालापमे वीत गया। रात आते पिस्सुओंकी पल्टनने जव तावड-तोड हमले शुरू किये, तो परेशानी वढी। रातके वीतनेके साथ उनकी सख्या और चोट वढ चली, उस वक्त नींद कहाँ लग सकती थी ? सारे वदनमे आग, और काटनेकी जगहोपर चकत्ते पड गये। मुझे वह रात आसपासके पहाडोसे भी वहुत वडी मालूम हुई।

पैसे मेरे पास थे, और खानेकी चीज़ोमे कुछ चीनी और सूखे फल थे। सत्तू और आटा गाँवमे भी मिलता था, किन्तु तर्कारीके स्थानपर दूधभरका वन्दोवस्त हो सकता था। गृहिणी अधेड स्त्री थी, घरमे एक-दो नौकर, एक-दो वच्चोके सिवाय और कोई न था। भाषाकी वडी दिक्कत थी, तो भी जहाँतक घरकी मालकिनका सम्वन्ध था, उनका वर्ताव रूखा न था। दूसरे दिनको भी किसी तरह विताया,

और पिस्सुओसे बचनेके लिए मैने आँगनमे विस्तरा किया। तीसरे दिन मुखियाका वडा लडका भेडोमेंसे आया। उसने वतलाया, घोडे नही मिल सकते। मुझे ठीक याद नही, उस गाँवमें कितने दिन रहने पडे। किन्तु दिक्कते और आगे चलनेकी चिन्ता इतनी अधिक थी, कि मालूम होता था, महीनो नही तो हफ्तो रहने पडे।

घोडोसे निराश होकर मैने सामान ले चलनेके लिए आदमी माँगा, और उसका मिलना भी आसान न था। लदाखमे तो तहसीलकी सहायता थी, लामा (महन्त) लोग भी परिचित हो गये थे, किन्तु यहाँ मेरे पास कोई सर्कारी परिचय-पत्र न था। हेमिस् लामाका एक साधारण पत्र था, जिसकी ये लोग उतनी ही कद्र कर सकते थे, जितनेमे उन्हे कोई तरद्दुद न उठाना पडे। आखिर एक आदमी दुगनी-तिगुनी मजदूरीपर मिला, और मै उन पिस्सुओको याद करते वहाँसे रवाना हुआ। गाँवमे ठहरनेकी तकलीफे इतनी थी, कि चलते वक्त सेड्-टुक्की मृत्युका धक्का दिलपर वहुत कम रह गया था।

गाँवसे निकलनेपर वहुतसी भेडोपर सामान लादे कनौरका एक व्यापारी घोडेपर चढा आता मिला। उसने रास्तेको अच्छा वतलाया। स्पितीकी नदी और रास्तेको पार कर शामको रारग (?) जोतसे पहिले ही भेडवालोके एक अड्डेपर पहुँचे। 'दूधका जला मट्ठा फूँककर पीता है'—सोच मैंने उनकी दीवारके भीतर न जा वाहर ही भेडोके बैठनेकी जगहमे विस्तरा विछाया। लेकिन रातको यहाँ भी, मालूम देता है, पिस्सुओके पास उनके भाइयोका तार आ गया था। दो-एक वार जगह वदलनेके वाद मैने भेडोकी जगह छोड दी। मालूम होता है, भेडे भी पिस्सुओको पोसती है।

**बुशहर-रियासत**—रातके स्थानसे जोत वहुत दूर न थी। चढाई भी उतनी मुश्किल न थी, हाँ उतराई कुछ कठिन जरूर थी। अगला गाँव रारग था, जहाँ हम दोपहर तक पहुँच गये। जोतको लाँघते ही मै वुशहर-रियासतमे आ गया था। रारगके वडे गाँव तथा उसके प्रधानके अच्छे साफ घर तथा भद्रोचित पोशाकको देखकर मुझे वडी आशा वँधी। हेमिस्के लामाने प्रधानके नाम मेरे लिए एक खास पत्र दिया था, किन्तु उसे पढकर मुखियाके ऊपर अच्छा असर पडनेकी तो वात ही अलग चेहरेपर अँधेरा छा गया। उसने कहा—यहाँ घोडा कहाँ मिलेगा। मैने कहा—घोडा नही आदमी ही दे दो। उत्तर मिला—मुश्किल है।

छतपर वाहर ही मेरा सामान रखवाया गया था। चाय-पानीके इन्तिजाम तकका होना मुश्किल था। मुझे पिछले तिव्वती गाँवका तजर्वा भूला न था,

इसलिए यहाँ ज्यादा समय उस शशपजकी स्थितिमे खोना नही चाहता था। खैरियत यह थी, कि भाषाके संबधमें अब मै अधिक स्वतत्र था, यहाँके बहुतसे आदमी हिन्दी समझते थे। मैने सामानको वही छोडा। बोझा ढोनेवाले आदमी और खानेके प्रबन्धके लिए गाँवमे निकल पडा। एक जगह तम्बू ताने कुछ स्पितीवाले स्त्री-पुरुष पडे हुए थे। मै उनके पास गया। वे लोग अमृतसर, लाहौर घूमे हुए थे। गाना-नाचना उनका व्यवसाय था। मैने वहाँ एक लडकेको कुछ पैसे दिये, और कहा कि मुझे हरे गेहूँका होला भूनकर प्रधानके घरपर पहुँचा दो। जब वह होला पहुँचाने आया तो प्रधानके बर्तावसे मालूम हुआ, कि वह इन स्पितीवाले गायक-नर्तकोको नीच जातिका समझता है। खैर, मुझे उसकी क्या पर्वाह थी, मैने होला लेकर खाया। दूसरी बार गाँवमे घूमनेपर एक तरुण व्यापारीसे भेंट हुई। वह हिन्दी खूब बोल लेता था। उसने बडी खातिरसे बैठाया, चाय पिलाई। मैने अपनी कठिनाईको कहा, तो उसने उत्साहित करते हुए समझाया—इधरके लोग बहुत रूखे होते है, किन्तु अब आप नजदीक आ गये है। आगे आपको कष्ट नही होगा। घोडे तो आजकल तिब्बतकी ओर चले जाते है, किन्तु भार ढोनेवाला आदमी मिल जावेगा। मेरा यह गॉव नही है, तो भी मैं कोई मजदूर ठीक कर दूँगा। शामको मैं अपना सामान उठवाकर उस तरुणके ठहरनेकी जगहमे चला आया। यह ऐसी जगह थी, कि यदि एकाध दिन रहना भी पडता, तो मुझे बुरा न मालूम होता।

दूसरे दिन तरुणने मुझे एक नौजवान—जो पहाडमे नीच समझी जानेवाली लोहार जातिका था—भरिया दे दिया। उसकी पीठपर सामान रखे मैने उस स्वागत-शून्य गॉवको छोडा। भरियाने इस इलाकेके दूसरे गरीबोंकी तरह दो-तीन जाडे शिम्लेमे मजदूरी करनेमे बिताये थे, इसलिए कहा जा सकता है, कि वह देश-देखा-हुआ आदमी था। सिन्धुको जबसे छोडा, तभीसे रास्ता खराब मिलने लगा था, तो भी पहिली जोत तक कोई दिक्कत न थी। दूसरी जोतका रास्ता भी कुछ सह्य था, किन्तु अब रास्ता बहुत खराब यद्यपि प्रदेश अपेक्षाकृत गरम था। हम एक कोनेकी तरफ मुड रहे थे, मैने समझा वहाँ, किसी धारको पार करना होगा। किन्तु यकायक हमारे सामने एक दूसरी ही धार आ गई। तीन-चार सौ फीट ऊपरसे नीचे हज़ार फीट तक ८० डिग्रीके झुकावपर—करीब-करीब सीधी—एक धूल और छोटे-छोटे पत्थरोकी धार मन्दगतिसे गिर रही थी। मै तो समस्यापर विचार करने लगा, किन्तु नौजवान छलाँग मारते हुए एक पैरको धारसे छुआते दूसरे पार चला गया। उस चल धूलीपर पैर रखते मुझे मालूम होता था, कि मै धारके साथ हजार फीट नीचे खड्डमे

चला जाऊँगा। नौजवान समझा रहा था—डरिये मत, हल्केसे पैर रखते, विना एक सेकडकी देर किये दूसरे पैरको इस पार रख दीजिये, किन्तु मेरी सारी तर्क-शक्ति नौजवानकी बात और उसके क्रियात्मक उदाहरणके पक्षमे नही हो रही थी। प्रश्न था—आगे चलना है, या फिर उसी प्रधानके गाँवकी ओर लौटना है। अन्तमे मैंने हिम्मत की। उतनी फुर्तीसे तो पैरको मै उठा न सका हूँगा, किन्तु जव दूसरा पैर सही-सलामत परलेपारकी ठोस भूमिपर पड गया, तो जानमे जान आई।

दोपहरको रास्तेमे हमने चाय पी। पहाडी दृश्य यहाँ भी लदाख ही जैसा था, सिर्फ स्थान कुछ गरम मालूम होता था। तरुण व्यापारीका गाँव काफी वडा था। उस वक्त वहाँ अभी गेहूँके खेत बिल्कुल हरे थे, इसलिए मालूम होता था, हम अभी काफी ऊँचे है। पिछले गाँवसे इस गाँवके स्त्री-पुरुषोकी पोशाकमे कुछ फर्क था, यहाँके घरोमे लकडीका व्यवहार कुछ ज्यादा था—यद्यपि छु-मुर्तिकी अपेक्षा रारगमे भी लकडीका व्यवहार ज्यादा था, तो भी वहाँ सफेदे और वीरीके अतिरिक्त शायद खूबानीके एकाध दरख्त दिखलाई पडे थे।

तरुण व्यापारीकी चिट्ठीने काम किया और दूसरे दिन आसानीसे एक भरिया मुझे अगले गाँव तक पहुँचानेके लिए मिल गया। भरियाने एक-दो वालिश्तकी लकडी तथा पाँच-सात हाथ लम्बी रस्सी साथ ले ली थी, मैंने समझा, शायद लौटते वक़्त कुछ सामान उसे लाना होगा। रास्ता सारा उतराई ही उतराईका था। नीचे हम घोर गर्जन करती एक नदीके किनारे पहुँचे। देखा, वहाँ परलेपार जानेके लिए सिर्फ एक इच मोटा लोहेका तार है, जिसके दोनो सिरे दोनों तटोके चट्टानोपर पापाण राशिसे दबाये हुए है। भरियाने सामान जमीनपर रख दिया। तारके वरावर गहरी रेखा छिले लकडीके टुकडेको उसपर रखा, फिर रस्सीको लकडीकी पीटपर वनी गहरी रेखाओंमें लपेटकर नीचे दो फन्दे झुलाये। पीठपर भार लिये भरियाने अपने दोनो पैरोंको दोनो फन्दोमे जाँघ तक डाल लिया, और फिर तारको हाथसे दूहता सरसर आगे वढने लगा। धार काफी चौडी थी, और चट्टानोके वीच नीचेकी ओर वहुत तेजीसे वहते हुए गम्भीर गर्जन और खौलते पानीके रूपमे जा रही थी। भरिया जाते वक्त मुझसे कहता गया, कि मै सामान उस तरफ रखकर आता हू तो आपको भी ले चलता हूँ।

मै कभी उस खौलते गर्जते हुए पानीकी ओर देखता, कभी उससे कई हाथ ऊपर लटकते उस पतले तारपर नजर दौडाता। घूलिकी नदीके पार करनेने कुछ हिम्मत वँधी थी, किन्तु वह इतनी न थी, कि इस तारपरकी यात्राको आसान वना देती।

भरिया इस तरफ लौट आया, उसने मेरे लिए भी एक वैसा ही फन्दा बनाया। जाँघ फँसाते वक्त मेरे कलेजेकी धडकन बहुत बढ गई थी, और जब पैरोंने चट्टानको छोड दिया तो उसका वेग कई गुना बढ़ गया। किन्तु जब भरियाने ढकेलकर मुझे चट्टानसे आगे धारके ऊपर सरकाया, तो उस डरका कही पता न था। मालूम होता था, मै लचलचाते हुए तारपर झूला झूल रहा हूँ। पार पहुँच जानेपर मन कहता था, एक बार फिर इस झूलेका मजा लिया जाये, किन्तु भरियाके समयका भी ख्याल करना था।

यहाँ काफी गर्मी मालूम हो रही थी। नदीसे कुछ आगे जानेपर खेत मिले, जिनकी फसल कट चुकी थी। ऊँचाईके लिहाजसे एक ही पहाडपर कही गेहूँ कट गया, कही होलेके लिए तैयार, और कही बिल्कुल कच्चा हरा देखना हिमालयमे मामूली बात है, इसलिए दो-तीन घटे ही बाद हरे गेहुँओकी जगह उन्हे खलिहानमे रखा देखना मेरे लिये आश्चर्यकी चीज न थी। गाँवके पास बहुतसे खूबानीके वृक्ष मिले, जिनपर पीली-पीली खूबानियाँ पककर लटक रही थी। गाँव बहुत दूर न था, और वहाँ पहुँचनेपर जब भरियाने सामान रखकर आदमीके लिए कहा, तो वहाँवालोको जल्दीसी पड गई। मैंने ढूँढकर दो गिलास मट्ठा पिया—दूध पीनेसे मुझे जितनी चिढ़ है, उतना ही मट्ठेसे प्रेम। अबके भार ढोनेके लिए एक बुढिया मिली।

चढाई कुछ थी, किन्तु रास्ता मुश्किल न था। शायद अगस्त बीत चुका था, कही बर्फका नाम तक न था। सुम्नम्-जोतके पहिले अन्तिम गाँव तक पहुँचते-पहुँचते आसमानमें बादल घिर आये थे। गाँव छोटा था, किन्तु लकडीके इस्तेमाल मे काफी साखर्ची दिखलाई गई थी, और मकान साफ और बेहतर किस्मके थे। रहनेवाले ज्यादातर सुम्नम्के लोग थे, जो अब तकके लोगोसे ज्यादा साफ और सस्कृत थे। गाँवके आसपासके खेतोमे हरे-हरे गेहूँ और ग्रिम् (नगे जौ) लहरा रहे थे। रातको शायद कुछ वर्षा भी हुई थी। यहाँ भी आगेके लिए भरिया मिलनेमे दिक्कत न हुई।

सुम्नम्—दूसरी चढाई मालूम न हुई। कई दिन पैदल चलते-चलते अब चलनेकी मुझे आदत भी पड गई थी, और खाली बदन चलनेमे रास्तेका मजा आने लगा था। जोत् पारकर उतराई आई, और वह भी आसान थी। अब तक पायजामा पहिने मैली-कुचैली भारी चेहरे, गोल आँख, और गालकी हड्डी निकली औरतोको देखते-देखते बहुत दिन हो गये थे, इसलिए जब मैंने पहिले-पहिल पानीकी नहर मरम्मत करनेवाली ऊनी साडीको काँटेके सहारे कन्धेपर बाँधे सुम्नम्की स्त्रियों, उनके निर्मासल

गोरे चेहरे, नुकीली नाक और गौर शरीरको देखा, तो मुझे मालूम हुआ कि मै सौन्दर्यके देशमे आ गया हूँ। उनके असाधारण मधुरकठसे निकले सगीतको सुनकर तो सस्कृत साहित्यकी किन्नर-कठियोंकी प्रशसा बहुत ठीक जँची—कनौर वस्तुत. किन्नरका अपभ्रश है। इधर हमे अब देवदारके दरख्त मिलने लगे। यद्यपि आकारमे अभी वे उतने ऊँचे न थे, तो भी हरियालीको देखनेके लिए तरसती आँखे अब बहुत तृप्ति अनुभव करने लगी।

गाँवके मकानोकी छते लकडीकी पट्टियोकी थी, जब देवदारके वृक्षोकी इतनी इफ़ात हो, तो फिर लकडीके इस्तेमालमे कजूसीकी जरूरत क्या ? खेत सब कट चुके थे, और खलियानोमे उनके गजको देखकर पता लगता था, कि खेती यहाँ खूब होती है। कितने ही खेतोमे फाफड जम आये थे, और शायद पानीकी नहर उन्हीके लिए मरम्मत हो रही थी। मुझे एक बडेसे हवा और रोशनीवाले साफ घरमे ठहराया गया। लोग सभी बडे मिलनसार मालूम हुए, और पिछले कई दिनोकी तकलीफे भूल गईं। घरकी मालकिनसे खानेके बारेमे कहा, तो मालूम हुआ वहाँ रोटी, साग, भाजी खानेका रवाज है। फाफडके साग और गेहूँकी रोटी बिल्कुल अपने यहाँके ढगसे बनी थी, और उसे खानेमे बहुत स्वाद मालूम हुआ। गाँवमे उर्दू पढे-लिखे कितने ही आदमी थे, और पता लगानेपर मालूम हुआ, एक आदमीके पास लाहौरका कोई उर्दू अखबार—शायद 'प्रकाश'—आता है। लेह छोडनेके बाद मुझे अखबारसे भेंट न हुई थी, इसलिए चार-पाँच सप्ताहोके अकोको ले मै उनपर भूखे भेडियेकी भाँति टूट पडा। सस्कृतिकी वृद्धिके साथ-साथ शायद आदमीकी जिज्ञासा बढ जाती है, इसीलिए यहाँके लोग मुझसे भी अधिक बातचीतके लिए उत्सुक थे। कही घूमने कही आने-जानेके लिए कोई भी नौजवान पथप्रदर्शक बननेके लिए तैयार था। स्त्रियाँ भी आगन्तुकके साथ बात करने और सहायता करनेमे पुरुषोसे पीछे न थी। सुम्नम्के लोग खेतीके अतिरिक्त तिब्बतके साथ व्यापारका भी काम करते है। तिब्बती मुलायम ऊन तथा पशमके कातने, गुदमा, पट्टू, पशमीनेकी चादर बनानेमे यहाँकी स्त्रियाँ बहुत दक्ष है—यही सुम्नम्के लोगोकी खुशहालीके कारण है।

यद्यपि जोत्के इधर प्रकृति और मनुष्योके आकार-प्राकार, वेषभूषामे बिल्कुल परिवर्तन था—यहाँवाले जोत् पारके लोगोको जाट कहकर नीची निगाहसे देखते थे, तो भी धर्ममे ये लोग लामा बौद्धधर्मके अनुयायी तथा, व्याहमे सब भाइयोके सम्मिलित व्याहको (बहुपति विवाह)को मानते थे। कुछ सालोमे राजाने बहुपति-विवाहको वर्जित कर दिया था, तो भी अभी वह बन्द नही हुआ था। कनौरमे

कनौरियो—जो अपनेको राजपूत कहते हैं—के अतिरिक्त कही-कही लोहार भी मिलते हैं, जिन्हे अछूत समझा जाता है। लोहार सोनारका भी काम करते हैं। मै एक लोहारके घरपर गया, उसकी हथौडी बडी बारीकीसे चल रही थी, और जब मै जाकर उसके पास बैठ गया, तो मेरे प्रति उसका स्नेहभाव और बढ़ गया—एक बडी जातिके आदमीका अछूतके पास बैठना कोई मामूली बात थोडी ही है। मेरे साथ गया' नौजवान आर्यसमाजी था (बुशहरके पहाडोमे जहाँ-तहाँ आर्यसमाजी मिलते हैं), इसलिए उसको आपत्ति नही थी।

सुम्नम्मे एक दिनसे अधिक रहा। वहाँसे एक गुदमा, एक ऊनी साडी (चादर) और एक पश्मीनेकी चादर खरीदी। कनम्के लिए वहाँसे एक सीधा रास्ता सामनेके डाँडेको पार करना था, किन्तु पैदल पहाडकी चढाई पार करनेके लिए मुझे उत्साह न था, यद्यपि वहाँ लिप्पेके जोतिसीके लिए हेमिस् लामाने खास तौरसे पत्र लिख दिया था। दूसरा रास्ता सुम्नम्की धारके साथ नीचेकी ओर जाकर सतलज-पर तिब्बत-हिन्दुस्तानकी प्रधान सडकसे मिल जाता था। मैने 'बरस दिन'के रास्ते-को पसन्द किया। आदमी कनम् तकके लिए मिला था। उतराईमे खाली हाथ चलना, सो भी सुधरी सडकपर, वस्तुत- शौककी चीज थी। रास्तेमे एक गाँवमे थोडी देरके लिए पानीके डरसे रुकना पडा। यहाँ खूबानीके अतिरिक्त सेबके वृक्ष और अगूरकी लताये भी थी, किन्तु अभी फल तैयार नही थे। यही पहिलेपहिल दूकानदार देखनेको मिला। उसके पास तेल, नमक, सिग्रेट, दियासलाई जैसी कुछ चीजे थी। आगे नदीपर एक पुल मिला, उसके इस पारसे ऊपरकी ओर एक सडक जा रही थी, यही शिम्लासे जानेवाली तिब्बत-हिन्दुस्तान रोड, सैनिक महत्त्वकी सडक है, जिसपर भारत सर्कार काफी रुपया खर्च करती है। इसपर हर जगह मजबूत पक्के या लोहेके पुल है, थोडी-थोडी दूरपर डाक बँगले है, और सडक इतनी चौडी है, कि थोडासा बढाने या इतनेसे भी बेबी आस्टिन जैसी कार आ जा सकती थी।

पुलसे थोडा आगे चलकर हम साक्षात् सतलजके दाहिने तटपर, किन्तु धारसे काफी ऊँचाईपर पहुँच गये। जितना ही हम आगे बढ रहे थे, उतने ही देवदारके दरख्त ऊँचे तथा हरियाली घनी होती जाती थी। इन तनकर सीधे खड़े, हाथकी तरह अपनी फैली शाखाओसे शिखरकी ओर गावदुम बनते सदा हरित विशाल वृक्षोसे ढँके हिमालयको जिसने देख लिया, उसने अपने नेत्रोको सफल कर लिया और जिस जगह मै उन्हे देख रहा था, उस उपत्यकाका एक महत्त्व यह भी है, कि सारे हिमा-लयमे इतना लम्बा देवदार-क्षेत्र कही नही मिलता, काफी जगहोमे वह दस, पन्द्रह

या बीस मील तक पहुँचकर रह जाता है, किन्तु यहाँ वह सुम्नम्के सामनेसे सराहनके करीब तक चला आता है। इस उपत्यका—मध्य सतलज उपत्यका—को प्राकृतिक सौन्दर्योंकी रानी कहना चाहिए।

आगे सडककी मरम्मतमे कुछ बल्ती मजदूर लगे हुए थे, वही एक नौजवान सडकके अधिकारी मिले। उन्होने मेरे सफरके बारेमे पूछा, और हम परिचितके तौरपर वहाँसे कनम्की ओर रवाना हुए। नौजवानका नाम वेलीराम था, और वह सडकके इन्स्पेक्टर थे। मुझे उस वक्त तिब्बतके इतिहास उसकी भाषा आदिका कोई परिचय न था, इसलिए बेलीरामके गॉव कनम् और उसके लोचवा रिन्छेन्-जड्-पोका महत्त्व मालूम न था। हेमिस् लामाने बतलाया था, कि कनम्मे एक पुराना मठ है, जिसका सम्वन्ध एक वडे लामा लो-छेन्-रिन्-पो-छेसे है। वेलीरामके घरमे न ठहरकर मैने मठमे ही रहना पसन्द किया, क्योंकि मै मठको कोई वडा मठ समझ-कर उसे देखना चाहता था। मठ गाँवके भीतर, आसपासके घरोसे वहुत विशाल नही, कुछ असाधारणसा मकान था। वहाँ कनजुरकी पुस्तके रखी थी। मठमे एक-दो आदमी थे, किन्तु कोई भिक्षु नही था। मेरे पहुँचनेके वाद वगलकी गलीसे रोशन-चौकीकी सुरीली आवाज कानोमे पडी। देखा, लाल कपडा पहने कुछ भिक्षु सत्तूके वलिपिंडको पानीमें बहानेके लिए ले जा रहे है, शायद किसीके घरके भूतको भगानेमे वे लगे हुए थे। श्रीनगरका लिया बूट अब जवाब दे रहा था, मैंने गॉवके मोचीके पास जाकर उसकी मरम्मत कराई।

कनम् बडे सुन्दर स्थानमे है, उसके चारो ओर विशाल देवदारोका वन है। कई सौ फीट नीचे सतलज—जिसे यहाँके लोग 'समुन्दर' कहते है—की धार वहती है, किन्तु दूर होनेके कारण उसकी गम्भीर ध्वनि गॉव तक पहुँचने नही पाती। गाँवके एक कोनेमे एक विशाल घरको दिखलाकर वेलीरामने वतलाया, इस घरमे हालमे कई अग्रेजी और तिब्बतीके विद्वान् हो गये है, किन्तु वे सभी जवानीमे मर गये, अब कुछ वच्चे रह गये है।

आगे भार ढोनेके लिए बेलीरामजीने एक या दो स्त्रियोको कर दिया। अब रास्तेके गॉवोंमे दूकाने थी। डाकवँगले तो हमे रहनेको नही मिल सकते थे, क्योंकि उसके लिए पहिलेसे शिम्लेसे इजाजत मँगानी पडती, किन्तु दूकानो, लोगोंके घरों और कही-कही वनी धर्मशालाओमे जगह मिल जाती थी। देवदारुओंकी छायामे चलनेसे मालूम हो रहा था, मै अपने प्राणो और आयुको वढाता चल रहा हूँ। रास्तेमे

जहाँ-तहाँ सुस्ताने, पानी पीने या गप करनेके लिए भार ढोनेवाली औरते बैठ जाती थी। याद नही उसी दिन या दूसरे दिन मै चिनी पहुँचा।

**चिनी**—चिनी आखिरी डाकघर है। यहाँ बुशहर-रियासतका तहसीलदार रहता है। यहाँ कई दूकाने, मिडल स्कूल, देवीका मन्दिर और डाकबँगला है। बुशहर-रियासतकी वार्षिक आय तीन लाखके करीब है, किन्तु राजाको सबसे ज्यादा आमदनी इन देवदारके जगलोसे होती है, जो सत्रह-अठारह लाख सालाना बतलाई जाती है। जगलात-विभागने डाकबँगले, मुशीखाने और मजदूरोके लिए दूकाने जगह-जगह बनवाई है। बेलीरामने जगलातके डाकबँगलेके मुशीके नाम पत्र लिख दिया था। बँगलेपर पहुँचनेसे पहिले रास्तेपर देखा कि कुछ स्त्री-पुरुष नाच रहे है। एक तरफ छै-सात औरते हाथ बाँधे खडी थी, दूसरी ओर पाँच-छै पुरुष। वह कुछ गाती थी। पासमे एक आदमी ढोलकपर ताल देता, और उसपर पैर उठाते वे आमने-सामनेसे एक बार नजदीक आती, और दूसरी बार पीछे हटकर चन्द्राकार पक्ति बनाती। मै कुछ देर खडा होकर उनके नृत्यको देखता रहा। उनकी शिकायत थी—जबसे राजाने शराब-बदीका हुक्म दे दिया है तबसे नाचमे पहिले जैसा रग नही जमता।

डाकबँगलेमे जंगलातके कन्जर्वेटर एक जवान 'कश्मीरी' पडित ठहरे हुए थे। मालूम नही कैसे उनसे परिचय हो गया, फिर तो उन्हीकी मेहमानदारी स्वीकार करनी पडी। बाजार और स्कूल देखने गया, तो मदिरमे एक जटाधारी वैष्णव साधु मिले। बेचारे मानसरोवर जा रहे थे, किन्तु दो दिन ऊपर जानेपर जब सत्तू और मट्ठेसे पाला पडा, साथ ही मास, जूठ-मीठके विचारको हवा होते देखा, तो धर्म बचाकर लौट आये। हो सकता है रास्तेकी कठिनाइयाँ भी पस्तहिम्मती पैदा करनेमे कारण हुई हो। चिनी मुझे आदर्श ग्रीष्म-आवास मालूम हुआ। चारो ओर देवदारोकी सुषमा, वृष्टि कम, आकाश अधिकतर स्वच्छ, बाहरकी दुनिया और अखबारोसे सम्बन्ध रखनेके लिए पास डाकखाना, साधारण खाने-पीनेकी चीजोके लिए दूकाने, खूबानी, अखरोट, सेब आदिके फलदार वृक्ष। लेह और खलचेकी भाँति चिनीमे भी मोरावियन मिशन काम कर रहा था। लेकिन यहाँके जर्मन पादरी लडाईके वक्त चले गये। मिशनके बँगलेमे आजकल राजकी ओरसे डिस्पेसरी खुली है। बगीचेकी गूजबरी मुझे भी खानेको मिली थी।

राजकीय दफ्तरमे क्लर्कका काम करनेवाले यहाँ कायस्थ कहे जाते है, चाहे वह किसी जातिके हों। उर्दूके अतिरिक्त एक और लिपिका भी लोग व्यवहार करते है, जो कश्मीरकी शारदा या पुरानी गुप्तलिपिसे ज्यादा मिलती है। तहसीलदार

साहेब बाहर गये हुए थे, इसलिए उनसे चिनीसे चलनेपर रास्तेमे भेट हुई, और वेष-भूषासे शिक्षित सन्यासी देखकर उन्होने लौटकर दो-चार दिन रहनेके लिए बहुत आग्रह किया, किन्तु चल देनेपर लौटना मुझे पसन्द नही और वहाँ तो फिर चढाईकी ओर लौटना था।

चिनीसे सराहन मै कितने दिनोमे पहुँचा, यह याद नही, किन्तु रास्तेमे जगलात मुहकमेके कर्मचारियोसे मुझे बहुत मदद मिली। मै अधिकतर उन्हीके यहाँ ठहरता। किन्ही-किन्ही गाँवोंमे सस्ते सिगरेटोके बडे-बडे इश्तिहार चिपके हुए थे, पहाडी लोग सिगरेट पीनेमे बडे बहादुर होते है, इसलिए सुदूर हिमालयमे इन वडे-वडे कागजोका चिपकाना अकारथ नही था।

स्पितीकी ओर जानेवाले रास्तेके पास पक्के पुलसे सतलज पार कर जब मै हल्कीसी चढाईको पार कर रहा था, तो दो-एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी ऊपरकी ओर जाते मिले। पूछनेपर मालूम हुआ, वे सराहनकी ओरसे आ रहे है, और यजमानीमे जा रहे है। जब कनौरोने अपनेको राजपूत कहना शुरू किया, तो ब्राह्मणोंका स्वीकार करना, और फिर नीच-ऊँच, छूत-छातकी भावनाकी पराकाष्टापर पहुँचना उनके लिए लाजिमी था—मै इसे बौद्धधर्मको छोडकर पतनकी ओर जानासा समझता था।

जिस दिन मै सराहन पहुँचनेवाला था, उस दिन जगलात-विभागका एक तरुण कनौरी क्लर्क साथ हो गया था। नौजवान मेट्रिक पास और वातचीतमे तेज मालूम होता था, नाम शायद प्रतापसिंह था। दूसरी देशी रियासतोंकी भाँति यहाँ भी वैयक्तिक स्वतत्रता सिर्फ राजा और उनके कृपापात्रोको ही है। रियासतके अत्याचारोपर एकाध लेख लाहौरके उर्दू पत्रोमे निकले। अधिकारियोको इसी नौजवान-पर सन्देह हुआ, और उसे जेलमे डाल दिया। अपराध स्वीकार करानेकी वडी कोशिश की गई, उसमे सफलता न मिलने, तथा इसकी भी खवर अखवारोमें छपनेपर नौजवानको छोड दिया गया। प्रजापर राजकी ओरसे होनेवाले अत्याचारोके वारेमे उसने बहुतसी बाते बतलाई, किन्तु इतने लम्बे अर्सेके वाद अव वह याद नही आते। सराहनके पासवाले घुमावसे पहिले ही देवदार कटिबन्ध खतम हो गया था, और उसका स्थान दूसरे वडे-वडे दरख्तो और घने जगलने लिया था। इधर गाँव भी काफी थे।

सराहनमे मै जगलातके ओवर्सियरके यहाँ ठहरा, जिनके लिए किसीका परिचय-पत्र था। सराहन बहुत कुछ खुले ढलुआँ भूमिमे बसा हुआ कस्वा नही एक बडा गाँव है, जिसमे राज्यश्रीके वाह्य प्रदर्शनके रूपमे राजमहल, राजोद्यान और दो-एक

मंदिर विद्यमान हैं। गर्मियोंमें राजा साहेब रामपुरसे यहाँ चले आते हैं। तत्कालीन महाराज अंग्रेज-अधिकारियोंके कृपापात्र होनेसे गद्दीके मालिक माने गये, नहीं तो उत्तराधिकारी एक दूसरा ही राजकुमार था, जो अपनी शोखी और स्वतंत्रताके कारण राजगद्दीसे महरूम कर दिया गया। कितने ही सालोंतक वह दुर्गम पहाड़ी, खोहों और जंगलोंमें छिपकर लड़ता रहा, किन्तु अंग्रेज़ोंकी शक्तिका मुकाबिला क्या करता? इस राजकुमारके बहुतसे पँवारे अब भी साधारण जनतामें मशहूर थे, जनताकी दृष्टिमें नवीन राजा वंचक थे।

ओवर्सियर साहेब एक दिन मुझे भी राजा साहेबके पास ले गये। उनकी अवस्था पचाससे ऊपर होगी। देखने और बातचीत करनेमें वे सीधे-सादे तथा नम्र मालूम होते थे, और सन्देह होता था, कि ऐसे भलेमानुस व्यक्तिके विरुद्ध प्रजाके साथ वे बर्त्ताव कैसे ठीक हो सकते हैं। लेकिन वह दोष तो संस्थाका है, जिसके ऊपर उठना असाधारण व्यक्तिका ही काम हो सकता है, और अंग्रेज रेजीडेंटकी वक्रदृष्टिके सामने वैसा करना भी आसान नहीं है। जन-प्रिय राजा, बुशहर जैसी सीमान्त-रियासतके लिए तो उन्हें और भी खतरनाक मालूम होगा। सराहनसे रामपुर तक टेलीफोन लगा हुआ है। राजप्रासादके हातेमें ही एक पागल साधुकी कुटिया थी, उसकी सिद्धाईके बारेमें तरह-तरहकी खबरें प्रसिद्ध थीं। राजा साहेबकी उसके ऊपर बड़ी श्रद्धा थी। गाली देनेमें यह पागल बहुत मुँहफट था, और राजाको भी हजारों सुनाता था, किन्तु शापके डरसे राजा साहेब सबको हँसते हुए सुन जाते थे। राजा साहेबके सिर्फ एक पुत्र उस वक्त मौजूद थे, जो राजका काम थोड़ा-बहुत करते थे। कहते थे, पुराने राजकुमारको वंचित करने, तथा उसे जंगलोंकी खाक छानते हुए मरनेके लिए मजबूर करनेके पापका यह परिणाम है, और उसीसे एक बार राजवंशपर महामारी आ गई। एक दूसरे सज्जनने कुछ साल बाद इसकी कथा इस प्रकार बतलाई।—तिब्बतके लामा टोमो-गेशे-रिन्पो-छे एक बार कनौर गये। उनकी करामातकी खबर जनतासे होकर राजा तक पहुँची। राजाने अपने परिवारके ऊपर भूतोंकी ओरसे होती बाधाको शान्त करनेके लिए टो-मो-गेशेको बड़े आदरसे बुलाया। लामाने तंत्र-मंत्र किया, उसका शुभ परिणाम राजाने देखा, और उनकी आस्था लामापर बहुत बढ़ गई। बिदाईके वक्त लामाने कन्-जुर, तन्-जुरकी एक-एक प्रति राजप्रासादमें रखनेके लिए कहा। राजाने कई हजार रुपये खर्चकर तिब्बतसे ये दोनों विशाल ग्रंथ-संग्रह मँगवाये। किन्तु, परिणाम उल्टा हुआ। एकको छोड़

सभी राजपुत्र मर गये, वही हालत रानियोंकी भी हुई। ब्राह्मण लामाके प्रभावसे शकित थे, उन्होंने इस मौकेको गनीमत समझ, झट कहना शुरू किया—नास्तिकोकी पुस्तकोंके रखनेसे देवता लोग नाराज़ हो गये है। राजाने कन्-ज़ुर, तन्-ज़ुरको राजप्रासादसे निकालकर एक दूसरे घरमे रखवा दिया, और मैंने शायद उसी घरमे उसे देखा था।

राजोद्यानमे लाल-लाल सेव खूब फले हुए थे, किन्तु अभी उनके पकनेमे देर थी। सुम्नम्मे वहुत कम वर्षा होती है, कनम् और चिनी भी मानसूनके छींटे भर पानेके अधिकारी हैं, किन्तु सराहन और उसके नीचेके इलाके मान्सूनके हल्केमें है। इस वक्त (सितम्बरमें) पानी खूब वरस रहा था, और कश्मीरसे खरीदकर लाई वरसातीका लाभ मुझे अब मिला। वर्षाके कारण रास्तेको कई जगह वरसाती नालोंने तोड़ दिया था। एक ऐसे ही टूटे स्थानपर देखा, पैर फिसलनेसे एक लदा हुआ खच्चर रास्तेसे नीचे उतरकर बैठ गया है, और यदि आगे जरा भी पैर विचलित होता, तो सामान लिये दिये वह कई सौ फीट नीचे खड्डमे चला जाता। खच्चरवाला किराये पर किसी व्यापारीका माल शिम्लेसे ला रहा था। खच्चरकी काफी कीमत होती है, वेचारा रो रहा था, और खच्चरको वचानेकी कोशिशमे लगा हुआ था। उसके साथ-साथ मुझे भी वडी खुशी हुई, जब कि खच्चर उठकर बाहर निकल आया। खच्चर पहाडी दुर्गम मार्गोमे चलनेमे मजबूत ही नही वडे सजग होते है, किन्तु उनसे भी खता हो ही जाती है।

रामपुरमे राजाके कर्मचारी एक ब्राह्मणके लिए मेरे पास परिचयपत्र था, जिसे सराहनके पजाबी ओवरसियरने दिया था। ठहरनेके लिए जगह आदि मिलनेमे दिक्कत न हुई। यहाँ नदी (सतलज) किनारे साधुओंके स्थान थे, वहाँ भी रहनेका प्रवन्ध था। मैंने एक या दो दिन रह राजधानी, राजप्रासाद, वाजार आदिको देखा। ऊपरके प्राकृतिक सौन्दर्यके सामने यह प्रदेश मुझे दरिद्रसा मालूम होता था। हाँ, अब दूकानों और वनियोका ज़ोर सब जगह था।

ब्राह्मणने राजसीमाके पास शिम्ला ज़िलेके रास्तेपरके एक गाँव तकके लिए भरियाका इन्तिज़ाम कर दिया, और उस गाँवके एक साहूकारके नाम एक चिट्ठी लिख दी। मै कृतज्ञता प्रकट कर रामपुरसे रवाना हुआ। नही कह सकता उसी दिन या दूसरे दिन उक्त गाँवमे पहुँचा। रास्तेमे राजकी ओरसे ठहरनेके लिए धर्मशालायें थी, रियासतमे सभी जगह नये आदमियोके मिलनेमे कोई दिक्कत न हुई, किन्तु इस गाँवमें आकर सारी कसर निकल गई। साहूकारका मकान अम्वाला ज़िलामे था, और

उसने आसपासके भोले-भाले पहाड़ियोको ठगकर काफ़ी सम्पत्ति जमा कर ली थी। कपडा, नोन-तेल-सिग्रेटके अतिरिक्त वह लेन-देनका भी व्यवसाय करता था। गाहको-को अपनी ओर खीचनेकी विद्या उसे भली भाँति मालूम थी। उनके लिए तम्बाकू हुक्का हर वक्त हाजिर रहता था। चिट्ठी और मुझे देखकर साहुका मुँह गिर गया। उसने बैठनेके लिए भी नही कहा, और मुझे कुछ जवाब देनेकी जगह घरकी एक तरुण स्त्रीसे उसके लिए लाये नापसन्द बूटोके बारेमे बाते करता रहा, स्त्री उस बूटको पसन्द नही करती थी, जिसे साहुने शिम्लासे उसके लिए मँगवाया था। मुझे उसके इस रूखे बर्तावपर रज तो हुआ, किन्तु यह देखकर कुछ प्रसन्नता हो रही थी, कि इस सूमके धनका सदुपयोग करनेवाली कोई स्त्री भी इसके घरमे है।

साथमे आये आदमीके चले जानेपर साहुने रूखे स्वरमे कहा, यहाँ आदमी मिलना बहुत मुश्किल है। मुझे यह बहुत बुरा लगा, यदि यही उत्तर देना था, तो आये हुए आदमीके रहते-रहते क्यो नही दिया ? मै गाँवमे किसी दूसरे घरकी तलाशमे निकला, थोडी ही दूरपर एक दूसरा गरीब बनिया रहता था। उसने रहनेके लिए जगह दी, और आदमी खोज देनेका भी वचन दिया। शायद वह फसल कटनेका वक़्त था, या क्या आदमी मिलना सचमुच ही मुश्किल था। इधर स्टोक साहेबने जो बेगारके खिलाफ आन्दोलन किया था, उससे बेगार बन्द कर दी गई थी। मुझे इस आन्दोलन-की खबरोको सहानुभूतिके साथ पढते वक़्त यह क्या पता था, कि इसका परिणाम एक दिन मुझे खुद भोगना पडेगा। उक्त स्थानसे कोटद्वार ३, ४ मीलकी चढाईपर था। कोटद्वारमे कुली मिलना आसान है, यह सभी बतला रहे थे, किन्तु प्रश्न था वहाँ तक जानेका। अन्तमे सवा या डेढ़ रुपये मजदूरी—सिर्फ ३, ४ मीलके लिए—देकर एक आदमी ठीक हुआ और मैने उस शतवार-सशप्त गाँवको छोड़ा।

रास्ता चढाईका था, और चारों ओर पहाड खेतोसे ढँका था। कोटद्वारमे डिस्ट्रिक्ट-बोर्डकी ओरसे बनी धर्मशालामे ठहरा, अपनी श्रेणीके घरोसे वह काफी अच्छी और साफ थी। यहाँसे शिम्लेके लिए भरिया हर वक्त मिल सकता है, यह सुन-कर बडा इत्मीनान हुआ। पके सेबोकी खबर पाकर मैने दो-तीन सेर एक बगीचेसे मँगवाये। खाने-पीनेसे निवृत्त हो स्टोक्स साहेबके बँगलेपर गया। पहाड़की पीठपर, सेब आदि फलदार वृक्षोसे ढँकी एक विस्तृत भूमिके बीच उनका बँगला और कितने ही और घर थे। स्टोक्स अपने कुर्ते-धोतीमे बड़ी प्रसन्नतासे मिले। उनकी स्त्री और एक ३, ४ वर्षका बच्चा बीमार था—बच्चेको मेरे सामने उन्होने गोदमे उठाकर दूसरे बिस्तरेपर लिटाया—और इसके मारे मनमे ज़्यादा तरद्दुद होना स्वाभाविक

था, तो भी उन्होने मुझसे बहुत अच्छी तरह बात-चीत की। अपने स्कूलके प्रधानाध्यापक एक मद्रासी तरुणको मुझे सब चीज दिखलानेके लिए कह दिया। स्कूलके मकान स्वच्छ, हवादार, और मजबूत थे। यहाँ बालक-बालिकाये एक ही साथ शिक्षा पाती थी, पढाई निःशुल्क थी।

भरियापर सामान उठवाये उसी शामको मै शिम्ला पहुँच गया। वहाँ कोई परिचित तो था नही, इसलिए पहिले धर्मशालामे ठहरा, लेकिन पीछे देखा तो वह सनातन धर्मसभा भवनसे सम्बद्ध थी, और उसके अपरिचित नियम-उपनियमसे बचनेके लिए मै वहाँसे आर्यसमाजमें चला गया। शिम्लामे बहुत घूमने-घामनेका विचार न था, राजनीतिक क्षेत्रसे काफी समय तक अनुपस्थित रहनेके कारण अब मुझे छपरा लौटनेकी जल्दी पड रही थी। एकाध दिनमे सर्सरी तौरसे शिम्लाके बाजारो और सडकोको देखकर मेरठके लिए रवाना हो गया। बलदेवजीके पास दो-तीन दिन बिताये, और फिर छपरा चला आया।

## १०

# १६२६का कौंसिल चुनाव और बाद

शिम्लामे ही बाबू महेन्द्रप्रसादसे—जो कि कौसिल आफ-स्टेटके अधिवेशनमे शामिल होनेके लिए गये हुए थे—मालूम हो गया था, कि छपराके कार्यकर्त्ताओमे कौंसिलके उम्मीदवारोको लेकर मतभेद हो गया है। यह मतभेद मेरे घनिष्ट सहकारियोमे पैदा हुआ था, अत मेरे लिए खास तौरसे तरद्दुदका कारण था। गिरीश बाढके बाद सिसवन थानेमे काम करने लगे थे, और अब भी एकमाके कार्यकर्त्ताओपर उनका काफी प्रभाव था। मेरे दो सालके जेलके समय छितौलीके बाबू श्रीनन्दनप्रसाद नारायणसिंह काग्रेसमे शामिल हुए और गिरीशकी सहायतासे डिस्ट्रिक्ट बोर्डमे चुने जाकर वह सीवान लोकलबोर्डके चेयरमैन भी हो चुके थे। अब वह प्रान्तीय कौंसिलके लिए उत्तरी सारनसे उम्मीदवार थे, दूसरे उम्मीदवार बाबू जलेश्वरप्रसाद थे, जो उससे पहिले स्वराज-पार्टीकी ओरसे कौसिलमे गये थे। जलेश्वर बाबूने छपरामें वकालत शुरू कर दी थी, और आरम्भिक प्रेक्टिस होनेसे कार्यकर्त्ताओके साथ सम्पर्क रखनेके लिए वह काफी समय दे नही सकते थे; उधर श्रीनन्दन बाबूने अपनी सहानु-

भूति और मिलनसारीसे कार्यकर्त्ताओंपर पूरा असर जमा लिया था। सिसवन, एकमाके ही नही मीरगज आदिके कार्यकर्त्ता भी उन्हीके पोषक थे, और गिरीश तो उनके जबर्दस्त समर्थक थे। उन्हे पूरी उम्मीद थी कि मै उनके पक्षका समर्थन करूँगा, क्योंकि वह जानते थे, कि मै हमेशा कार्यकर्त्ताओके साथ रहता हूँ। कार्यकर्त्ताओने श्रीनन्दन बाबूकी उम्मीदवारीका समर्थन करते हुए प्रान्तीय कांग्रेसके पास अपना प्रस्ताव ही नही भेज दिया था, बल्कि उनके पक्षमे उन्होंने कनवासिग भी शुरू कर दी थी। मेरी स्थिति बडी विचित्र थी। कार्यकर्त्ताओंके इतने जबर्दस्त बहुमतकी अवहेलना करना मुझे पसन्द न था, उधर प्रान्तीय कांग्रेसके निर्णयके विरुद्ध भी जाना उचित न जँचता था। मैंने एक ओर कार्यकर्त्ताओको समझाना शुरू किया, कि प्रान्तीय कांग्रेसके निर्णयके विरुद्ध न जावे, दूसरी ओर प्रान्तीय नेताओपर भी जोर डाला, कि उम्मीदवार चुननेमे कार्यकर्त्ताओकी इच्छाका भी ख्याल करे। छपरा लौटनेपर एक महीनेसे अधिक तटस्थ रहते मै कोशिश करता रहा। प्रान्तीय कांगेसने मेरे आनेसे पहिले ही जलेश्वर बाबूको अपना उम्मीदवार चुन लिया था, किन्तु मुझे विश्वास था, कि सब बातोपर विचार करनेके बाद वह अपना निर्णय बदलकर श्रीनन्दन बाबूको अपना उम्मीदवार बनावेगे। जलेश्वर बाबूसे मेरी ज्यादा घनिष्ठता थी, और उधर श्रीनन्दन बाबू जिसके बलपर खडे हो रहे थे वह गिरीश मेरे प्रिय सहकर्मी थे। मैंने कह दिया था, कि उम्मीदवारी बदलनेका मै प्रयत्न कर रहा हूँ, किन्तु अन्तमे मुझे उधर ही रहना होगा, जिधर कांग्रेसका निर्णय होगा। मुझे यह देखकर बडा अफसोस हुआ, कि प्रान्तके नेता स्थानीय कार्यकर्त्ताओ और स्थितिका बिल्कुल न ख्यालकर पूर्व निर्णय ही पर कायम रहे।

कनवासिंग जोर-शोरसे शुरू हुई। एकमाके प्राय. सारे कार्यकर्त्ताओने तो मेरी वजहसे श्रीनन्दन बाबूका साथ छोड़ दिया, किंतु गिरीश और दूसरे कितने ही वचनबद्ध हो चुके थे, इसलिए उन्हे साथ छोडना विश्वासघात मालूम होता था। सारे निर्वाचनक्षेत्रमे व्याख्यानो और नोटिसोकी धूम थी। कांग्रेसका समर्थन न पा श्रीनन्दन बाबू मालवीयजीकी स्वतत्र कांग्रेस-पार्टीके उम्मीदवार बने। छितौलीके बड़े जमीदार होनेसे उनके पास रुपया और उसके खर्च करनेके लिए दिल था। उस क्षेत्रके कार्यकर्त्ताओकी सहायता उन्हे प्राप्त थी, और अपने व्यवहारसे वह जनप्रिय भी थे। इस प्रकार उनकी सफलताका आभास शुरू हीसे मालूम होता था, तो भी कांग्रेसका साथ देना छोड़ मेरे लिए कोई रास्ता न था। चुनावकी कनवासिंगमे बहुत कड़वाहट पैदा हो जाती है, लोग एक दूसरेपर कीचड उछालनेमे कोई आनाकानी नही करते,

किन्तु गिरीशके प्रभावके कारण मेरे प्रति श्रीनन्दन बाबूके सहायकोने भी सम्मानका भाव रखा। गिरीशसे जब मुलाकात होती, तो वह एकमाके उसी पुराने भावके साथ मिलते। वह सम्बन्ध इतना भीतर तक चला गया था, कि चुनावकी आँधी उस-पर चोट पहुँचानेमे असमर्थ थी। दक्षिणी सारनकी ओरसे बाबू निरसूनारायणसिंह काग्रेस उम्मीदवार थे, और उनके विरोधमे खडे हुए थे हथुआके दामाद माँझाके बाबू साहेब। इधरके काग्रेस कार्यकर्त्ताओमे कोई मतभेद न था, और माँझाके बाबू बडे जमीदार और सर्कारपरस्त होनेसे जनप्रिय भी न थे, इसलिए चुनावमें काग्रेसकी विजय निश्चित थी। महाराजगजमे पक्ष कमजोर देखकर मैंने धूपनाथको उस थानेमें स्थायी तौरसे काम करनेको भेजा। धूपनाथ अतरसनके मेरे सहकारी बा० रामनरेशसिंहके चचेरे भाई थे, और एकाध बार उनसे भेंट हुई थी, किन्तु तब वह अधिकतर बनेली राजमे तहसीलदारी करते थे। इस वक्त उनको वैराग्य आ गया था, नौकरीको अपने छोटे भाईको सुपुर्दकर ब्रह्मज्ञानकी तलाशमे फिर रहे थे, और इसी सिल्सिलेमे वह मुझसे मिले थे। ब्रह्मज्ञानका महत्त्व मेरी नजरोमे गिर चुका था, किन्तु सीधे उसकी निंदा न कर मैंने सार्वजनिक काम कराते हुए धीरे-धीरे उस आकर्षणको उनके दिलसे हटाना चाहा। इस चुनावमे धूपनाथके रूपमे मुझे एक स्थायी मित्र मिला।

छपरामें मैंने जबसे राजनीतिक काम किया, तबसे ही सभाओमे मेरा भाषण सदा वहाँकी भाषा (भोजपुरी, मल्ली)मे होता था। इस चुनावके समय उम्मीद-वारोके पक्षमे मैंने कई नोटिसे इसी भाषामे निकाली, जिसको पहिले तो लोगोने उचित नही समझा, किन्तु जनतापर सीधी-सादी दीहाती भाषाका असर देख उन्हे उसके महत्त्वको स्वीकार करना पडा। "जे जगदीपा गाँव उजरली ठूँठ कइली पीपर। से जगदीपा आवतारी हाथे लेले मूसर।" के हेडिंगसे निकले नोटिसने तो निरसू बाबूके विरोधीको 'जगदीपा' नाम दे डाला।

वोटके दिन मैं भोरे और कटया थानोमे रहा। स्वामी सहजानन्दजी उस वक्त भूमिहारोके प्रबल समर्थक और सम्माननीय नेता थे, अभी जातीय पक्षका उनके ऊपर बहुत असर था। श्रीनन्दन बाबूके पक्षमे काम करनेके लिए वह भी उस दिन इन दोनो थानोमे थे। हम दोनो दो परस्पर-विरोधी कैम्पोमे काम करते थे, किन्तु उनकी प्रतिभा उनकी कर्मठताको देखकर इतने सकुचित क्षेत्रमे काम करना मुझे पसन्द न लगता था—यह इसलिए कि भीतरसे मैं उनका प्रशसक था। कटयाकी सभामें किसी विरोधीने मेरी जात-पाँतपर आक्षेप किया था, जिसका उत्तर वहीं खडा होकर

एक वृद्ध ब्राह्मणने दिया—मै वनारस जाते हुए इनके घरपर ठहरा हूँ, बडीसी हवेली है, खूब धनी ब्राह्मण-घर है। धनीकी अत्युक्तिको तो मै समझ सकता था, किन्तु बडी हवेलीपर मुझे विश्वास नही पडा। मै समझता था अभी कनैलामे मेरे भाई उसी घरमे रहते है, जिसे मै छोड आया था। वोटकी सभामे मेरे पक्षमे कहनेकी वजहसे मै उसकी बातका खडन कैसे करता, किन्तु मुझे उस ब्राह्मणके झूठपर मन-ही-मन बुरासा लगा; किन्तु दो-तीन बरस बाद (१९३०के अन्तमे) यागेश जब मिले, तब उन्होने बात ही बातमे बतलाया, कि मेरे भाइयोने पुराने मकानोंको तोडकर दीहातके लिए एक अच्छासा मकान बनाया है।

वोट देना समाप्त हुआ। कटयामे जलेश्वर वाबूका बहुमत रहा और शायद भोरेमे भी। अधिकाश थानोमे श्रीनन्दन वाबूको ज्यादा वोट मिले, और वह दुगने वोटोसे मेम्बर चुने गये। दक्षिणी सारनमे निरसू बाबू बहुत अधिक वोटोसे विजयी हुए। केन्द्रीय एसेवलीके लिए मेरे मित्र बाबू नारायणप्रसाद काग्रेस-उम्मीदवार थे, जिला काग्रेसके एक प्रधान कर्मीके तौरपर उनके लिए भी काम करना पडा था। उनके प्रतिद्वन्दी भी बडी बुरी तरहसे हारे। नारायण बाबूके बारेमे मुझसे कई बार लोगोंने कहा कि वह श्रीनन्दन बाबूका समर्थन करते है, किन्तु मैने इसे व्यक्तिगत द्वेषसे कही गई बात समझी। हाँ, उत्तर सारनमे उनके द्वारा काग्रेस उम्मीदवारका खुल्लम-खुल्ला समर्थन न होना मुझे पसन्द नही था।

इस चुनावके सिल्सिलेमे सारन जिलेसे बाहर भी मुझे काम करना पडा था। दर्भंगाके काग्रेस-उम्मीदवार पडित शिवशकर झा और महन्त ईश्वरगिरिके चुनाव-क्षेत्रोंमे मैने कई व्याख्यान दिये। काग्रेस-उम्मीदवार बाबू सत्यनारायणसिंहके पक्षमे प्रचार करनेके लिए एक ही साथ मै और राजेन्द्र बाबू दलसिंगसराय पहुँचे। धर्म-शालामे सभा रखी गई। सारा आँगन लोगोंसे खचाखच भरा हुआ था। सभामे गोलमाल करनेके लिए प्रतिद्वदी उम्मीदवार एक वडे जमीदार बाबू महेश्वरप्रसाद नारायणसिंह, नरहनके बाबू तथा कितने ही अनुयायियोंके साथ पहुँच गये। उन्होंने झटपट नरहनके बाबूका नाम सभापतिके लिए पेश कर दिया। राजेन्द्र बाबूने कहा—रहने दो, वही सभापति रहे। मालूम नहीं मेरा व्याख्यान राजेन्द्र बाबूसे पहिले हुआ या पीछे। मैने छपराकी बोलीमे भाषण शुरू किया। दो ही मिनटमे किसानोंके शिर हिलने लगे, फिर तो सभापतिने यह उज्र पेशकर हिन्दीमे भाषण करनेके लिए ज़ोर दिया, कि लोग छपराकी बोली नही समझते। मैने जनतासे पूछा—'यदि आप लोग मेरी भाषा नही समझते तो क्या करूँगा उर्दू-फारसीमे बोलनेकी कोशिश

करूँगा।' जनताने एक स्वरसे कहा—'नही, हम आपकी भाषा खूब समझते है। जिसमे हम समझ न पावे, इसके लिए यह चालाकी चली जा रही है।' सभापति अब क्या बोलते, जनता मेरे साथ थी। मैंने अपने भाषणको जारी रखते हुए कहा—'जमीदारोंके स्वार्थ और किसानोंके स्वार्थ एक नही हैं। किसानोका ख्याल करनेपर जमीदार कहाँ रहेगे ? ' सभापति और महेश्वर बाबूने राजेन्द्र बाबूसे कहा—'आप कहे, कि यह काग्रेसके मतके विरुद्ध बोल रहे है, क्योकि काग्रेसमे जमीदार भी है।' मैंने कहा—'और काग्रेसमे किसान सबसे ज्यादा है।' राजेन्द्र बाबूने बीचमे दखल देनेसे इन्कार कर दिया। सभापतिने मेरे भाषणमे कुछ दखल देना चाहा, मैंने जनतासे कहा—'यदि आप कहे तो मै बोलना बन्द कर दूँ।' जनताकी ओरसे जोरकी आवाज आई—'नही, हम आपका व्याख्यान सुनना चाहते हैं।' अब यदि सभापतिजी मुझे बोलनेसे रोकते, तो आँगनमे वह, महेश्वर बाबू उनके दस-पाँच अनुयायी रह जाते, और जनता मेरे साथ उठकर बाहर अलग व्याख्यान सुनती। मेरे व्याख्यानसे जमीदारो और किसानोके परस्पर-विरोधी स्वार्थोंका लोगोको इतना ख्याल हो गया, कि दूसरे दलका व्याख्यान नही जमा।

उसी शामको हमारा व्याख्यान समस्तीपुरमे हुआ। शहरकी जनता थी, किन्तु यहाँ भी मैं छपराकी बोलीमे बोला। तिर्हुतकी म्युनिस्पेल्टियोसे रायबहादुर द्वारिकानाथ काग्रेस-उम्मीदवार थे। व्याख्यानके बाद उन्होने कहा—'राजेन्द्र बाबू, आप लोगोंका व्याख्यान विद्वानोंके लिए ठीक हो सकता है, किन्तु जहाँ तक वोटरोका सम्बन्ध है, वह तो रामउदार बाबाके ही व्याख्यानको समझ सकते हैं।'

सारे प्रान्तके चुनावका परिणाम निकला। कौंसिलके भीतर सबसे बडा दल काग्रेसपार्टीका था, किन्तु निर्वाचित और मनोनीत सदस्योंको मिला लेनेपर उसका बहुमत न था। पार्टीके सदस्योंकी पहिली बैठकके दिन मैं भी पटना पहुँचा, और किसानोंके हितकी कुछ बातोपर मैंने सदस्योसे बातचीत करके उनके हस्ताक्षर लिये। बहुतोने हस्ताक्षर कर दिये, और कितनोंने बहुत हिचकिचाहटके बाद हस्ताक्षर किये। उस वक्त मुझे पता लगा, कि किसानोके हितोंके लिए आधी दूर तक जानेके लिए भी बहुतसे काग्रेसी तैयार नही है।

× × ×

उस साल (१९२६ ई०) काग्रेसका अधिवेशन गोहाटीमे होनेवाला था। पटनासे मै सुलतानगज गया। धूपनाथसे सलाह हुई थी, उधर हीमे गोहाटी साथ चलनेकी। रामनरेशसिंहके बडे भाई बाबू देवनारायणसिंह उस वक्त वहाँ बनैली

राजके तहसीलदार थे। वैसे भी अतरसनके सम्बन्धसे मेरा काफी परिचय था, किन्तु अब तो धूपनाथ भी वही थे। भागलपुरसे गगापार हो हमने छोटी लाइनकी गाडी पकडी, और एक दिन सबेरे अमीनगॉव पहुँचे। ब्रह्मपुत्रका यह पहिला दर्शन था। दिसम्बरका स्वच्छ जल गम्भीर ब्रह्मपुत्रको और काला बना रहा था। दूसरे पार कुछ दूरपर काग्रेसकेम्प था। हम लोग अपने एक परिचित मित्र—जो खद्दर-डिपोके कार्यकर्त्ता थे—के साथ प्रदर्शनीमे ठहरे।

स्थान दर्शनीय था, और पासका कामाख्या-पर्वत, हरे वृक्षों और झाडियोसे लदा बहुत सुन्दर मालूम होता था। धूपनाथके साथ एकसे अधिक बार मै वहाँ गया। कँवरू (कामरूप) कमच्छा (कामाख्या)के जादूके बारेमे लडकपनमे मैने बहुतसी कथाये सुनी थी, किन्तु अब वह बच्चोंकी कहानी थी। हॉ, वहॉकी सुन्दर तरुण कन्याओ—जिनके चेहरेपर मगोल मुख-मुद्राका हल्कासा असर तथा रग पाडु था—को देखकर मुझे अपने मित्र इन्दिरारमणजीकी बात याद आई। वह एक बार विचरण करते हुए कामाख्या पर्वतपर पहुँच गये। वहॉ किसी पडेने बडे स्नेहके साथ उन्हे अपने यहॉ ठहराया। चन्द ही दिनोंमे उन्हे मालूम हो गया, कि गृहपति उन्हे अपनी तरुणकन्याके प्रेमपाशमे बद्ध करना चाहता है। उन्होंने चुपकेसे भागकर अपनी जान बचाई। उन्होंने यह भी बतलाया था—बस यही कला, कँवरू-कमच्छाका जादू है, इसीको रूपकके तौरपर 'आदमीको भेडा बना लेना' कहा जाता है। पहाडकी स्वच्छ हवामे रहने, निर्द्वन्द खाने-पीने और स्वच्छन्द विहरनेसे उन तरुणियोंका रूप और स्वास्थ्य श्लाघनीय जरूर था, किन्तु मुझे तो रूपकके तौरपर भी वहॉ 'भेडा बनानेवाली' कोई बात नही दीख पडी। पहाडपर ही मैने कई करोडके मालिक एक धर्मप्राण धर्मध्वजी महाराजाकी रखेलीके लिए बना एक बँगला देखा, लेकिन कितने ही 'ऋषियों' और 'महात्माओं'के जीवनको भीतरसे देखने और सुननेके कारण मेरे लिए वह कोई आश्चर्यकी चीज न थी।

वरदराज बहुत दिनोंसे नही मिले थे। मैने सुना था वह आसाममे रहते है। किसीने यह भी बतलाया कि उनपर कँवरू-कमच्छाका जादू चल गया है, और वह अपनेको किसी सुन्दरीके हाथ बेच चुके है। अपने बालमित्रसे मिलनेकी मुझे बडी उत्सुकता थी। मैने शहरके वैरागी स्थानोंमे जाकर कई बार पूछ-ताछ की, किन्तु उनका कोई पता न मिला। मेरठमे मिले बलदेवजीके सहपाठी (हरिनामदास)—जो कालेज जीवनमे अपने रुग्ण शरीरके कारण साथियों द्वारा डाक्टरकी उपाधिसे भूषित किये गये थे—चुनावके दिनोमे ब्रह्मचारी विश्वनाथके नामसे स्वामी सत्यदेवजीके प्राइवेट

सेक्रेटरीके रूपमे छपरा पहुँचे थे। यहाँ फिर उनसे मुलाकात हुई। राजापुर (कटया थाना)के महन्तने मुझे एक उत्तराधिकारी ढूँढ देनेका भार सौंपा था। कुआडीमे एक योग्य राष्ट्रीय कर्मीकी मुझे भी जरूरत थी, इसलिए महन्तजीकी बातको मैंने स्वीकार किया। ब्रह्मचारी विश्वनाथके साथ शुरू हुआ परिचय घनिष्ठताका रूप धारण कर चुका था। मैंने उनके सामने जब दोनों बातोंको रखी तो उन्होंने पसन्द किया और तै हुआ कि यहाँसे वह छपरा चलेंगे।

गोहाटी कांग्रेसका कोई खास असर मेरी स्मृतिपर नही हुआ। अधिवेशनके समय स्वामी श्रद्धानन्दकी हत्याकी खबर आई। लोगोमे कुछ उत्तेजना फैली। मजहब भारी अशान्तिकी जड है---इस धारणाकी ओर मै एक कदम और बढा। इस वक्त भी मै आल-इंडिया कांग्रेस कमीटीका मेबर था, किन्तु बहस-मुबाहिसोमे मुझे कोई खास दिलचस्पी नही थी। कानपुर कांग्रेसने कौंसिल-प्रवेश स्वीकार कर लिया था, इसलिए किसी खास बातका विवाद भी न था।

स्टीमरसे ब्रह्मपुत्र पार हो अमीनगाँवमें रेलमे बैठे। हम लोग डिब्बेके भीतर अभी आये ही थे, कि एक पतले-दुबले नौजवानको अपने साथ देखा। मेरे एक साथी-की छातीपर काँटासा गडता दिखलाई पडा, देखा तो उनकी जेब कटी है। हमने उस तरुणको लापता पाया। कितनी ही जगह ढूँढा किन्तु वह कहाँ मिलनेवाला था? उस जेबकटको तो इस सफाईके लिए इनाम देना चाहिए था। धूपनाथजीने ब्र० विश्वनाथजी और मेरे किरायेके रुपये दिये।

छपरा पहुँचकर (१९२७ ई०) सबसे जरूरी काम हमे करना था, गाधीजीके सारनके दौरेका प्रबन्ध करना। सार्वजनिक सभाके स्थानोमे एकमा भी था। प्रबन्ध करनेवालोमे मै मुखिया था, किन्तु गाधीजीके साथ-साथ रहनेकी मुझे बिल्कुल इच्छा न थी। जिन्हे लोग बडा आदमी समझते है, उनके गिर्द एक प्रभामडल छा जाता है, उसमे रहते मुझे अपना दम घुटतासा मालूम होता है। जीरादेईमे मुझे राजेन्द्र बाबू गाधीजीके पास ले गये, उस बार बस वही दो-एक मिनट मेरा उनके साथ साक्षात्कार हुआ। कौंसिलके चुनावका मुझे अनुभव हो चुका था, अब डिस्ट्रिक्ट बोर्डका चुनाव होनेवाला था। कांग्रेसने इसके लिए भी अपने उम्मीदवार खडे किये थे। हक साहेबने डिस्ट्रिक्ट बोर्डका तीन साल चेयरमैन रहकर शिक्षामे सारन जिलेको प्रान्तमे सबसे आगे बढा दिया था। बोर्डके हर एक विभागमे नई सजीवता दिखलाई पडती थी। हम चाहते थे, कि अबकी बार वह फिर बोर्डमे जावे और चेयरमैन बने, किन्तु उन्होने निर्विरोध स्थानपर खड़ा होना स्वीकार किया था। हमे बडा अफसोस हुआ, जब देखा कि

उनके स्थानसे एक दूसरे आदमी खड़े हो गये, और हक साहेबने अपना नाम हटा लिया। हक साहेब बडे आदमी थे असली अर्थमे, तो भी मेरा उनकी ओर बडा आकर्षण था। उनके बर्त्ताव बात-चीतमे एक तरहकी सादगी अकृत्रिमता होती थी, जो मेरे जैसो पर भारी असर किये बिना नही रह सकती थी। पहिली बार हक साहेबके घरपर (फरीदपुरमे) मै १९२२मै गया था। हक साहेब वहाँ न थे, उनकी बेगम साहबाने चाय पिलाया। चाय बिस्कुटमे कोई हर्ज नही—बाबू मथुराप्रसाद यह जानकर मुझे समझा रहे थे, कि मै वैष्णव होनेसे छूत-छातमे अभी सकीर्ण विचार रखता हूँ। उसके बाद हक साहेबको कई बार देखा। दूसरी बार जेलसे लौटनेपर तो अनेक बार उनसे मुलाकात होती। डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी उम्मीदवारीके सिल्सिलेमे मै खास तौरसे उन्हे मनानेमे (२० मार्च १९२७ ई०) फरीदपुर गया। उस वक्त मुझे पता न था, कि उस कर्पूर श्वेत दाढी, उस भव्य गौर मुखमडल—जिसपर बुढापा अपनी छाप सिर्फ बालोके रग तक छोडने पाया था—, उस सीधे-सादे किन्तु मनमोहक बात करनेके ढगको मै अन्तिम बार देख-सुन रहा हूँ। दूसरी बातोके बाद मै और मेरे साथी बा० रामानन्दसिह (जिला काग्रेसके मत्री) श्रोता बन गये। हकसाहेबके सामने दो बडी-बडी आल्मारियोमे 'स्प्रिचुअलिज्म', और दर्शनकी अग्रेजी पुस्तके भरी थी, जिनमेसे अधिकाश नई थी, यह उनकी लाल-पीली जिल्दोसे मालूम हो रहा था। उन्होने उन किताबोकी ओर इशारा करते हुए कहा—'राम-उदार; क्या मारे-मारे फिरते हो, यहाँ आकर बैठ जाओ, इन पुस्तकोको पढो। अध्यात्मवाद कोरी कल्पनाकी चीज नही है। परलोक और मृत्युके बाद भी आत्माका अस्तित्व प्रत्यक्ष सिद्ध होनेकी चीज है। . .युरोपमे आत्माओका लोग साक्षात्कार करते है। . हमारे यहाँ उतने अच्छे माध्यम नही मिलते।....मजहबी झगडे उन्हीकी तरफसे होते है, जो उन शिक्षाओकी तहमे क्रियात्मक रूपसे प्रविष्ट नही होना चाहते....।'

मैने क्या उत्तर दिया, यह मालूम नही; किन्तु स्प्रिचुअलिज्मपर उस वक्त भी मेरा विश्वास न था। मै यह भी जानता था, कि जबसे उनका बडा लडका बगलकी नदीमे तैरते हुए डूब गया, तबसे उनका ध्यान इस ओर ज्यादा हो गया है। तत्कालीन राजनीतिक नेताओमे जिस व्यक्तिके प्रति मेरी अपार श्रद्धा हुई, वह हक साहेब ही थे। कितनी ही बार मेरी इच्छा थी कि कुछ समय फरीदपुरमे उनके पास रहूँ, किन्तु मेरा सारा समय कांग्रेसका काम ले लेता था। उनकी मृत्युकी खबर जब मैने ल्हासा(?)मे पढ़ी तो इस लालसाके अपूर्ण रहनेका बहुत अफ़सोस हुआ। हक साहेबके व्यक्तित्वका

मुझपर क्या असर हुआ था, इसकी बानगी अपने एक-दो स्वप्नोसे देता हूँ।— मै चाहता था, कि छपरामे हक कालेज खोला जावे—उस वक्त राजेन्द्र कालेजका ख्याल भी लोगोको नही आया था। छपरामें एक विस्तृत हक हाल बने, जिसमे उनकी मूर्ति रखी जावे। उनके प्रिय फरीदपुरके बगीचेको एक स्थायी स्मारक उद्यान, पुस्तकालय, कृषिविद्यालयके रूपमे परिणत कर दिया जावे। उनका एक विस्तृत जीवन लिखा जावे।

डिस्ट्रिक्ट बोर्डके चुनावमे भी काफी कटुता रही। उम्मीदवारोकी सख्या, और क्षेत्र अधिक होनेसे एक तरह इस वक्त झगडा और व्यापक बन गया। पिछले कौंसिल चुनावमे जो कुछ कटुसघर्ष रहा, वह उत्तर सारनमे था किन्तु अबकी वार तो सारे जिलेमे आग लग गई थी। एकमासे लक्ष्मीनारायण खडे हुए थे। काग्रेसके नाते ही नही, अपने घनिष्ठ सम्बन्धके नाते भी उनकी सफलताके लिए प्रयत्न करना मेरे लिए जरूरी था। चुनावके सम्बन्धमे सभा करनेके लिए मै ३० मार्चको परसा पहुँचा। बाजारमे कुछ लोग जमा हो गये। लक्ष्मीनारायणके प्रतिद्वन्दी बाबू शिवजी (राजदेवप्रसाद नारायणसिंह) परसाके बडे जमीदार थे। उनके आदमियोने आकर मेरे व्याख्यानमे विघ्न डालना, गाली-गलौज करना शुरू किया। उन आदमियोमे मैने दो-तीन आदमी ऐसे भी देखे, जो काग्रेसके कामोमे भाग लेते थे, और जरूरत पडती, तो जेल और मारपीट सहनेके लिए सबसे आगे रहते। मेरे दिलको भारी धक्का लगा इन 'अपने' आदमियोकी इस चेष्टासे। मैने सोचा—आखिर ऐसा हो क्यो रहा है? और अन्तमे इस निर्णयपर पहुँचा, कि यदि बा० शिवजी गाँवके वडे जमीदार न होते, तो न उन्हे ऐसा करनेका मौका मिलता, न ये लोग भय और खुशामदसे ऐसा करनेके लिए मजबूर होते। ३० मार्च १९२७ ई०को वह मेरा अन्तिम वार परसाका दर्शन था। उसी दिन रातको मैने प्रतिज्ञा की—जब तक जमीदारी-प्रथा रहेगी, मै फिर परसामे पैर न रखूँगा।

महाराजगज थानेमे काग्रेस-उम्मीदवारके विरुद्ध एक दूसरे उम्मीदवार खडे हुए थे। बा० नारायणप्रसाद काग्रेस-उम्मीदवारके विरुद्ध हो उनके लिए काम कर रहे थे। मुझे इसका अफसोस होना स्वाभाविक था, किन्तु जब एक घनिष्ठ मित्रके तौरपर वह (३ अप्रेलको) मिलने आये, तो चुनावकी बात चल जानेपर मैने उन्हे कुछ कडे शब्द सुना दिये। चुनाव तो खतम हो गया, किन्तु उन कडे शब्दोके इस्तेमालके लिए मेरा अफसोस दिनपर दिन बढता गया। मुझमे यह भारी दोष है, कि किसी काममे आधे दिलसे पडना जानता नही। पडनेपर सारा ध्यान मेरा एकसू हो जाता

है। यही कारण था, जो मै नारायण बाबू जैसे व्यक्तिसे बात करते वक़्त भी अपनेपर क़ाबू न रख सका। किसी व्यक्तिके गुण-दोषको देखते वक्त मै अक्सर उसकी दृष्टिसे देखना चाहता हूँ, जिसमे दोषोको कमसे कम आँक सकूँ। मेरी एक स्वाभाविक कम-जोरी है, कि किसी व्यक्तिसे घनिष्ठता हो जानेपर मैं उसे सूदपर लगी एक मानसिक पूँजी मान लेता हूँ, और उस पूँजीपर जरा भी आघात पडनेसे तिलमिला उठता हूँ। नारायण बाबूके प्रति मेरी श्रद्धा और स्नेह उसी तरहकी पूँजी थी। उसपर आघात करनेके लिए मैं अपनेको भी क्षमा नही कर सकता था। और यह दिलमे लगी आग तब बुझी, जब १९२९ ई०मे मैंने ल्हासासे अपने उस व्यवहारके लिए पत्र द्वारा अफसोस ज़ाहिर किया और नारायण बाबूका सहृदयतापूर्ण पत्र पा लिया।

बोर्डका चुनाव समाप्त हुआ। काग्रेस-विरोधी उम्मीदवारोकी विजय हुई, और सबसे शोचनीय बात यह हुई, कि बोर्डकी दलबन्दी भूमिहार, राजपूत, कायस्थ आदि जातियोके नामपर हो गई। मेरे लिए यह सबसे अप्रिय बात थी।

कांग्रेसके सामने कोई नया कार्यक्रम न था। मेरे साम्यवादी विचार 'बाईसवी सदी' लिखकर रख रखने ही तक सीमित थे, और उनके प्रचारके लिए साथी और अनुकूल वातावरण नही था। उधर बौद्धधर्मके विशेष अध्ययनकी मेरी इच्छा, जो लदाखयात्रासे जग उठी थी, अब मुझपर भारी ज़ोर दे रही थी। २२ फर्वरीको सार-नाथ जानेपर मैंने अपना विचार भिक्षु श्रीनिवासजीसे कहा, उन्होने मेरे विचारोका समर्थन करते हुए कहा—इस वक्त अच्छा अवसर भी है। लंकाका विद्यालंकार विहार एक सस्कृत-अध्यापककी खोजमे है, आप वहाँ चले जाये, बडी अनुकूलता रहेगी।

× × ×

ब्रह्मचारी विश्वनाथ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन) राजापुरमे तीन माससे अधिक रहे। महतजी उनको बहुत मानते थे, किन्तु वहाँ उस दीहातमे बौद्धिक और सास्कृ-तिक जीवनका बिल्कुल अभाव था। मैं देख रहा था, स्कूल सबइन्स्पेक्टर चौधरीजी जब राजापुरमे आते, तो ब्रह्मचारीजीको कुछ सन्तोष होता, नही तो दिन काटना मुश्किल हो जाता। एक बार (६-८ फर्वरी १९२७) हम दोनो महन्तजीके हाथीपर कसया बुद्ध-निर्वाण स्थानको देखने गये। भोरेसे आगे चलनेपर हमे हाथीकी पूरी करामात मालूम हुई, और हमने उसका नाम समय-संहारक-यंत्र रख दिया। लेकिन महन्तजीके पास वही अकेला वैसा यत्र न था। एक दिन (९ फ़र्वरी) राजापुरसे छपरा आना था। खाना खा लेने के बाद मैने सोचा, बैलगाड़ीमे सो रहेगे और सबेरे तक मीरगंज पहुँच

जावेंगे। नौ बजे रातको गाडी रवाना हुई। मैं सो गया, बीच-बीचमें नींद खुलती, तो देखता गाडी चल रही है। सबेरा होते वक़्त पूछा, तो मालूम हुआ, सारी रातमें हम सिर्फ़ तीन मील आ सके है। मैंने गाडीको वही छोडा और पैदल मीरगजका रास्ता लिया। पहिले उकतानेपर, 'नई जगह है, पीछे मन लग जायेगा'—कहकर ब्र० विश्वनाथको समझाता रहा, किन्तु अन्तमें देखा, कि उस वातावरणमें उनका रहना मुश्किल है, इसलिए मैं उनके स्थान छोडनेसे सहमत हो गया। २ मार्चको हमारे साथ ही विश्वनाथजी भी एकमा आये। भविष्यका प्रोग्राम बनाते मैंने उन्हें परामर्श दिया, कि वह कपडोको पीले रगसे रँग कर कमडलू ले कुछ दिन घुमक्कडकी जिन्दगी बितावे। एकमासे कपडे रगकर उन्होने अपना साधु जीवन शुरू किया।

मई (२ मई) पहुँचते-पहुँचते मैंने भी लका जाना तै कर लिया।

# परिशिष्ट

## १. १९२२ डायरीसे

सन् १९२२की पहिली जेलयात्रामे १३ फर्वरीसे ६ अगस्त तक मै बक्सर-जेलमे रहा। उस समय डायरीमे मैने अपने उलझे-सुलझे विचारो तथा कितनी ही तुकबन्दियोंको नोट किया था। उनके कुछ अशोको यहाँ उद्धृत करता हूँ, जिनसे तत्कालीन परिस्थितिमे जीवनयात्राका पता उसी व्यक्तिके मुँहसे मालूम होगा।—यह निश्चय है, कि अपने सदृश उत्तराधिकारीको छोडकर, वह व्यक्ति मर चुका है। डायरी सस्कृतमे लिखी गई है, वह जैसीकी तैसी उतारी जा रही है।—

१७ मार्च—"अस्मिन्नान्दोलने मनागपि सफलीभूता जनताऽग्रे भीष्मप्रयत्नेऽपि सकुचितमनस्का न भविष्यति।"

२८ मार्च—"धन्या जैत्रवनभूमिर्यत्र प्रभोस्तथागतस्य चरणधूलि. पर्यापतत्। धन्यः कोऽप्यन्यश्च सौराष्ट्रचन्द्रो द्वितीयो बुद्ध परहितकामेन येन सर्वस्वमर्पितम्।"

३१ मार्च—"उत्पत्ति-सयमविषयेऽवश्य चिन्तयितव्यम्। पैतृकरोगिणा सन्तानोत्पत्तिक्रमो न साधु॰। नात्र सर्वथा भौतिकनिर्बन्धप्रकार एवाश्रयणीय। स्त्रीणा कथमपि सन्तानोत्पत्तिशक्तिहरण स्यात्, पर पुरुषाणा कथ स्यात्? यदि कृतवन्ध्याससर्ग एव तै कर्त्तव्य, तदा हीनचारित्र्य विलासबाहुल्य, विषयतृष्णावृद्धिश्च स्यु॰। मनसा सयम्यैव सन्ताननिरोधस्साधु.। परन्न सर्वे योगिनो भवितुमर्हन्तीत्यपि निश्चितमिव। अत्रावश्य किमपि निर्बन्धनम्।"

६ अप्रेल—"१ सत्यवकाशे तदेव क्षेत्र द्वितीयर्त्तुकृतेपि सन्नद्धीकर्त्तुं (शक्यम्)। २ कृषिप्राधान्यहानिरपि स्यादस्य देशस्य। ३. कार्यविराम एव गीतादिकलाभिर्मनोविनोद। ४ आलस्यपरित्यागवत् जात्यभिमानहानिरपि स्यात्। ५ यन्त्रागाराणि राष्ट्रीयान्यपि भवितु शक्यन्ते। ६ कर्मकराधिक्य व्यक्तिसेवा विना, तेन कार्यसमयन्यूनता। ७. यन्त्रगृहाद् दूरस्थेषु गृहेषु यातायातम्। ८ यन्त्रमुक्तपय प्रक्षालितमूत्रनलिका.। ९ पुरीषोत्सर्गश्च वहिः मृत्तिकापिधानपूर्व.। १०. रुग्णसेवा त्वन्या। ११. पृथक् पृथग् यन्त्र-

गृह नदपरिसरे। १२ स्त्रीपुसो कार्यपार्थक्यम्। १३ वालवर्धनशिक्षा रुग्णसुश्रूषाभोजनादि स्त्रीणाम्। १४. बहुपरिश्रमसाध्य कार्य पुसामेव।"

१६ अप्रेल—"स्वप्नेऽपश्य—रूसबोल्शेविकसेना युद्धानन्तर कृष्णपर्वतमुल्लघ्या गता। यत्र यत्र सेना व्रजति जना साहाय्यपरा भवन्ति। विमानेन सूचनामपि यत्र तत्र निक्षपन्ति—न वय युष्मान् शासितुमागता परै पीडिताना भवतामुद्धार एवास्माक लक्ष्यम्। सैनिकापेक्षितविशेषाधिकारोऽस्मद्धस्ते तु यावच्छत्रुर्देशे, अन्यत् प्रबन्धादिक भवत्स्वेव तिष्ठतु इति। पञ्चनदाद् विद्राव्य शत्रु इन्द्रप्रस्थ अगताया वाहिन्या लक्षश पञ्चनदयोद्धार स्वदेशसेनाया प्रविशन्ति। अन्यप्रान्तीया अपि तूष्णी न किमपि आड्ग्लेभ्य साहाय्य दातुमुत्सुका। गते इन्द्रप्रस्थ आड्ग्ला उद्घोषयन्ति—भारतीया वान्धवा युष्मत्सेवा साहाय्य चोरीकृत्य उपनिवेश-स्वराज्य दीयते, आयान्तु सकटापन्ने देशे धन-जनसाहाय्येन इति।"

२२ अप्रेल—

"किंचिन्न मेऽस्ति भगवन्! त्वयि चार्पणीयम्,
रिक्ताशय सपदि ते चरणौ वहामि।
दीनार्तिहन्! प्रभुवरस्य गुणान् विमृश्य,
प्रेमास्पदेन निचित हृदय ममास्तु॥१॥
मात! सदा वहसि मुञ्चसि वैभव स्व,
सन्तान एष यदुवशसम प्रयाति।
हा हन्त! पश्य विपदाविकला पर ते,
ह्यक्षि प्रमील्य शयनातुरता नटन्ति॥२॥

२३ अप्रेल—

"कील हुवन्नास मुहिब्बुल्-हैवान्।
कुल्लो मन् यह्य वादे मौतेही॥
तिलकल् अक़ीलो सार फिज्जमा।
विल्-हुब्बे मख़्लूक व हक्॥"

"दरदिलम् इश्के ख़ुदा बह्ले दुनी पैदा शुद्।
दिलेमन् ख़िद्मत्-ओ हर्-एक् आँ वक्फ शवद्॥
हैफ सद्-हैफ जिन्दगानी तू।
ज़ज नफ़्स वेह् न वसर् आयद् हेच्॥

मलिक दर्-खल्क शुदम् वाजबेनवा ।
हस्तियेमन् बशवद् गैर-बदल् ॥
दर् रहे इश्क्श गर् बेह् बकुनी ।
बे. बवद् सम्र ह्यातक् बदुनी ॥"

"मन तू मनको मति करै, मनको मनकौ तोरि ।
हिय बिच हितसों हेरि ले, नहि यामे कछु खोरि ॥
हा ! थी हा ! थी सब कहैं, आँ कुश काहू दै न ।
हाथी हाथी सब कहैं, आँकुश काहू दैन ॥
जीते मीते कित गये, जीहाते अब आँहि ।
जीते जीते हित धरहिं, मीते मीच सकाहिं ॥
"मनमे तो पैनी छुरी, जिह्वा जिमि रसखानि ।
नहिं 'उदार' फल लाभ हो, शुभ इन मित्रन पाहिं ॥
दिल खोलत खुलता नही, खुलत खुलत रहि जाइ ।
कृपा भई जब ईशकी, आपुहि ते खुलि जाइ ॥

२४ अप्रेल—

"दोषा दोषयुता गता, दिवा हित नाकारि ।
अहितहिते जानासि न, किं त्वं प्रिय ! भवितासि ॥
जननी भूमि प्रभू पिता, भ्राता सब जग जान ।
नतरु स्वर्गसम जग सबै, नरक दु:खकी खान ॥
श्रम करि थकि थकि कोउ मुवै, भोग करै कोउ आन ।
को यह जगको न्याय है, करम बिना फलदान ॥
रे बबूल ! को काम तुव, थकित पान्थ दुख देत ।
हरि रसाल भख रस सदा, ना फल मीठो हेत ॥
काठ पात फल छाल तउ, जनहितसाधन मोर ।
काम बिगारन हितहरन, तुव बिच केतो जोर ॥
धूली मगकी धन्य तू, सबके चरनन लागु ।
कबहुँक तरवर सिर धरे, सहनो ई बड़ भागु ॥
कारा कारा अब कहाँ, सन्त अंक है तासु ।
जिनके पदरज परसिके, तीरथराज उजास ॥

बहुश्रमते शुभ्रा भई, लोहा थालि परन्तु।
निज सुभाव छाडत नही, बहुरि होत मसिवन्त ॥"

२५ अप्रेल—

"चन्द्र-चमत्कृत-शोभया, दाई लुमिनस् फेस।
मन चकोर ता मोहमे, चूँ मजनूँ दर्वेश ॥
नयना नय ना जानही, तीखो तिनको गैल।
सयना ते सयना लरैं, हियपर मेलत मैल ॥
है नदी नही जलादि, है समीर ना सुवास।
दुर्शवद् मगर बे-आब्, यौवने तथासि तात ॥
तुग धवल हिमिगिरि शिखर, स्फाटिक सरिता माल।
स्नेहतरगित सिंधुपय, जननी लालित बाल ॥
पीत रक्त सित कृष्ण सब, सम प्रिय तव शिशुजात।
शीत-उष्ण निम्नोन्नत, स्नेहमयी तव गात ॥
चन्द्र हास इच्छा जलधि, ज्वालागिरि तव द्वेष।
क्रमण यत्न तनुकम्प दुख, हितचिन्तनि तव वेष ॥
आर्य अनार्य विभेद नहि, नहिं वर्णनको भूत।
देशभेदभेदक कहाँ, सब जननीके पूत ॥
अज्ञ सुज्ञ निर्बल सबल, सुन्दर अवर कुरूप।
बन्धु स्नेहमे मत्त हो, सजो सकल सुररूप ॥"

२६ अप्रेल—

"दिले बेकारकी यही आदत। न पकडता है यह कभी कामत ॥
सैर करता है आस्माँकी कभी। नूर नज्मुल्-फलक दिखाता सभी ॥
सदियोमे पहुँचती जहाँसे शुआअ। हद्दे-इम्काँ नही है जिसकी रफाअ ॥
तेज रफ्तार उसकी है ऐसी। दह्रमे तेज है न शै वैसी ॥
क्या अजबका है रखता फर्राटा। कोना-कौनैन पहुँचे धर्राटा ॥
इब्ने-आदमके पास यह दौलत। हैफ दारद् न इल्म ई सौलत् ॥
दर खलक ताकतै दुधारी तेग। यूज करना न उनको ला-तद्रीग् ॥
ताकत् उसकीमे मोजजात् सभी। मल्क ताऊत हो विगडता जभी ॥
नेक नेकीमे करता इस्तेमाल। बद बदी उसकेसे हुआ पामाल ॥
उसके हाथोमे सारी ताकत है। उसकी बातोमे सारी बावत् है ॥

सख्त आह्न्सा मोमसा है नरम् । बर्फसा सर्द मिस्ल शम्श गरम् ॥
जुज खता (मन्) न जुर्म-ओ बीनम् । मन् नदानम् कि चीस्त रह् सिद्कम् ॥
दिल है मुहताज तेरे हुक्मोका । न सजावार तल्ख जख्मोका ॥
सोच कर ले तो होवे परले पार । वर्न तहकीक डूबना है मँझार ॥
न यह समझो कि वह हरीफ़ तेरा । गर् शवद् बाज़ बह्र हुक्म तुरा ॥
तेरे ताबे किया खुदाने उसे । दर् अदावत बयाफ्तश् न कसे ॥
क्या करै चश्मा ऐब-चश्मीको । देना दुश्नाम् है अबस् उसको ॥
तू ही फाअेल है वह है इक् आला । तू ही है माह वह फकत् हाला ॥
फ़ेले बद्मे मुतीअ है जैसा । खैर मै खैरख़ाह है वैसा ॥
दिलकी बातोंको समझकर यारो । बनो दिलदार ता न तुम हारो ॥
कृपा क्रीडा तेरी प्रभु रहै सर्वस्व मेरी ।
रहै चिन्ता चित्ते चिर सखे स्नेहार्द्र तेरी ॥
धनानन्दाब्धौ ते हृदयमामग्न भवतु मे ।
जलप्लावे गगा मम हृदयकुल्या ग्रसतु ते ॥"

२७ अप्रेल—

"वह ग्रीष्मकी जलती तपन सनसन सनकती लू चलै ।
वे अरर-विरहित जगले नहि ओट जिनसे कुछ मिलै ॥
रज पत्र लेकर उष्ण वायू, धूलिधूसर तन करै ।
परित हरित सस्यालि ग्रीष्माक्रान्त जल बिन सज्वरै ॥
पर्याप्त जल पानीय नहि स्नानीयकी वैसिहि दशा ।
अति मूत्रगन्ध असह्य जिससे है भरी चारो दिशा ॥
अधिकारियोके नाजको जो थे न पूर्व उठा सके ।
क्षुद्राधिकारी गण यहाँ अब मुग्ध उनको पा सके ॥
जिसको समझते थे समुच्चय रत्नका भडार है ।
कहते यथा है सर्वजन वैसा नही ससार है ॥
हाँ, पक्षिगण भी त्राससे इस घर्मके कुम्हला रहे ।
विह्वल (विकलसे) लोक भी नहि वेश्मसे है आ रहे ॥
आधिक्य है ज्वरपीडितोंका डाक्टर निश्चिन्त है ।
नहि पथ्यका कुछ है पता कूनैन कोरी किन्तु है ॥

यदि साग आता है कभी नहि कोयलेका है पता।
जब लवण आता तो पुन अब तेल होता लापता॥
फूटी हुई चिमनी तथा दीपक वेचारा चुप्प है।
गृह भस्ममय अथवा कभी अतिशय भभकता पुष्प है॥
सन्तापयुत गृह है अभी बाहर हुई कुछ शान्ति है।
अब बन्द करनेके लिए सर्दारका आह्वान है॥
एवमस्य विधेर्वाक्यं प्रत्यह प्रतिवर्त्तते।
निजसिद्धान्तमाश्रित्य जनता नातिवर्त्तते॥"

२८ अप्रेल—

"हृदयेश ! तव विरहेऽतिकातर एष एकमना जन ।
ताम्यति तले सीदति शरीरे स्तम्भमेति तथा मन ॥
शुश्रुम न-धन-धन हे प्रभो ! ते प्रेमपूर्णगुणावलीम् ।
अर्पितमखिलमात्मीयमित्थ पश्य पुण्यपदावलीम् ॥
माधुर्यमाविकसितमुपरित. क्रौर्यमविदितमाहितः ।
विकसितसरोजतले यथास्ते कण्टकुलमन्तच्छिदम् ॥
निष्करुण ! करुणापूरता निस्पृह ! न ते स्पृहयालुता ।
पापच्यमान परहृद परिपश्य ते प्रशयालुताम् ॥
निर्घृण ! घृणा मे हृदि सदा जागर्ति तेऽतिसुदुस्सहा ।
अक्षम ! क्षमा क्व त्वयि गिरा गौरवधरो न गुणैस्सह ॥
लाघवसदन ! गौरवगरिम्णा व्यर्थमिह विख्यायसे ।
क्षुद्रातिक्षुद्रहृदय ! महाशय एष किन्तु विभाव्यसे ॥
विह्वल-विरह-दग्ध जन सत्रातुमस्ति न ते मन ।
गुर्वी गुणैर्वद वीरुदेव क्वाविशीर्य जहौ मन ॥
नहि हृदयहारि त्वद्वचो विश्वासजुष्ट हे सखे ।
असकृत् परीक्ष्य कुत पुन हृदयेन तत्प्राप्य सखे ॥
हतहृदय ! हा ! दग्ध स्वय कि क्रूरकर्माण व्रजे ।
मृदुफलरसास्वादनमना कण्टकितरु न मुधा यजे ॥
दत्त सकृद्धृदय परावर्त्तितुमहो नाल त्वहम् ।
दुर्वृत्तिदुर्गुणपूर्णतामपि हातुमसि नाल स्वयम् ॥"

३० अप्रेल—

"खिले प्रसून प्रसन्न ह्वै कूजत विहग न थोर।
अन्य अभ्युदय देखिके, सन्त हृदय सुख शोर॥
जीर्ण पत्र भूषा तजि, पहिरि हरित नव वास।
त्यागु पुन सुखसम्पदा, याको करत प्रकास॥
वायुवेग अति घर्मते, जग विह्वल करि देत।
शीतल खस टट्टीन ते, गुण-अवगुण सँग हेत॥
उपजि उपजि पुनि मरि गयो, चना बिना ऋतुकाल।
काल पाय निर्बल सबल, जग बिच सबको हाल॥
पुष्पवाटिका साजते, आल बाल खनि दीन।
अस्थिर मनके कारणे, सूखे तोय विहीन॥
बहुत भये बहुशक्ति नहिं, गल्ल एकता सुष्ट।
मेरु भसकि मरुभूमि ह्वै, तृणते रज्जू पुष्ट॥
जनसँग जनसुखमे पगे, मुनि मन होत कलेस।
व्यक्तिभेद ते एकही, वस्तु कृतान्त गणेश॥
जामे कोउ चित ना धरै, दूजो तजत परान।
सबहि कुरूप सुरूप है, मानस विन्दु प्रमान॥
अनुभव ते पडित कहै, एकहि वस्तु विभेद।
भाव साँच ही देखनो, शान्ति सोई सोइ खेद॥
जगत निहोरा का करी, अपुन निहोरा साँच।
खुशी भइल जब आपनी, सब जग आपन जाँच॥

१ मई—

"गर सताता है कोई तो जुल्मको सहता रहे।
जुल्म सहनेमें मजा है जुल्म करनेमे नही॥
गर बहुत जीना भी होवे तो भी राहत-कल्बको।
हिल्ममें मिलती तुम्हे जो जुल्ममें मिलती नही॥
दिलकी ख्वाहिशके मुताबिक जब कोई करता नही।
है मतानत टूट जाती लुत्फ़ फिर रहता न है॥
बाहरी चीज़ोमें है ना लुत्फ़ हर्गिज ऐ जनाब।
लुत्फ उसमे क्या भला कि जो पसन्दे-दिल न है॥

रहम जौहर है बनी-आदमका मिस्ले नूर नार।
हो तरस मस्अब् अद्व पर गो कि वह मुश्फिक न है॥
हेच् है दर नज्रे अश्रफ नेमतुज्जन्नात् भी।
खैर खादिमके लिए मख्दूम् कस् मुनअम् न है॥
नज्र हो कालिब अनास् है यह फरिश्तोकी दुआ।
खल्क की खिदमतमे तो बेहतर फरज इससे न है॥
दर्द दिल हो औरको पर आह सद् भरता रहूँ।
जिन्दगीका यह मजा मकबूलतर किसको न है॥
गैरकी जलतीमे कूदै जिस्म उस्कीकी लिये।
सर्द है आतिश व बादे-सर्द फर्हतदेह न है॥
खल्करा दर-हुब्ब बीनी हुब्बरा दर-खल्क बीं।
गर् तु लज्जत जीस्त ख्वाही हुब्बरा दर दिल निही॥
कॉच आँच बहुतै सहै, निर्मल तत तब सोय।
कह 'उदार' किमि आँच विन, मनमलशोधन होय॥
जामे जेतो श्रम लगै, वाको तेतो दाम।
मानिक मोल अमोल है, गुजा लहै न काम॥
थिर गुन गुनिको मोल बहु, अथिर थोरही पाय।
पीतल सुन्दर वरन किमि, कचन भाव बिकाय॥
खेत श्वेत जिन कारणे, तिनको करत न ख्याल।
जिनके धन पीवर भये, तिनहिं विनासत व्याल॥
सूत बहुत सन्तान ते, पटहित करत पुरान।
उपल गध बरिसान ते, स्वारथ हृदय जुरान॥"

३ मई—

"न्याय सहायक और ह्वै, जहाँ मिलत है न्याय।
झूठ ढिंढोरा न्यायका, तहाँ पिटावत धाय॥
सब पन्थन मे ऊपरो, धर्माडंवर वेष।
दूरहि ढोल सुहावनी, यही सिद्ध अवशेष॥
धर्म दोहाई देइकरि, लूटि खात ससार।
सब ठगईके जानतेउ, वनत न नर हुसियार॥"

"बहिस्तनवृत्तोपासका लोका नान्तरनिरीक्षका । अध्यात्मवादव्याजेन कति नु वञ्चका दृश्यन्ते । अध्यात्ममया अपि जना लोकमायाप्रलोभिता तद्रागाक्रान्ताश्च ।"

४ मई—"धर्ममय जगत् ! अहो वञ्चना ! यदि वञ्चना प्रकाशयेत् कश्चित्, सर्वे तत्पृष्ठलग्ना तत्प्रतारणपरा । तदनुसरणपरा एव तद्बहुमान्या, महानुभावा, योगीश्वरा., विद्वदग्रेसरा, विरागावतारा, काकविष्ठावत्परित्यक्तसर्वपरिग्रहा, ब्रह्मभूता', सन्यासिप्रवरा इमे ! हन्त नैभ्य परे वञ्चका, दु शीला, लम्पटा, अविद्याग्रस्ता., रागग्रस्ता, लिप्तसर्वविषया, अज्ञानिन स्यु ।"

५ मई—"लोका ! किं वो फलमेभि. पाषण्डै ? परस्पर वञ्चयन्त. कि तन्महत्त्व . यत्साधनैकपरा अविगणय्य सर्वमन्यद् एव सत्यपराङ्मुखा । अहो ! आत्मवञ्चका. . उपरि सुधालिप्तप्रासादा अन्तर्मलीमसा एव । सर्वोऽपि व्यवहारो जगति वञ्चनया प्रचलति ।"

१७ मई—"साम्यधर्मार्थ ग्रामे ग्रामे कृषकसघा, श्रमजीविसघा. स्थापनीया । सग्रथन कांग्रेस क्रमेणैव स्यात् । काग्रेससस्थायामपि गच्छेयु, काग्रेसाभावे तादृश्यो माण्डलिकप्रान्तीयसस्था स्यु । स्वराज्यस्थापनानन्तर यावद्बाह्यशत्रुभय तावन्नास्त्यपेक्षा बृहदान्दोलनस्य । सुधारेणैव तावत् श्रमजीविना दशा सुधारणीया । स्वशासने पुष्टे सम्यग् आन्दोलन प्रचलेत् । धर्मवर्णभेदो न मध्ये स्याद् भिन्नताकारणम् । धनिकनिर्धनभेद एव भेदहेतु' । धनिकान् स्ववश्यानधुनाऽनुव्रजन्ति निर्धना । स्वभाव परिवर्त्तनीय । . "

१८ जून—"शैशव धन्यम् । आजन्ममधुर शैशव कथ नाभूत् । बृद्धाना तत्कथाश्रावणम् ।. शैशवमेव कि, यद् यत् परोक्ष सर्वं मनोरम तत् । शिक्षाप्रदा कथा कालान्तरे एव विस्मृता. स्यु. । अन्या एव पुस्तकै. प्रचार्यन्ते । स्वत कालान्तरे प्राचीनाना विनाशो ध्रुवम् । मन भौतिकसामग्रीविरचितो न (वेति न) वक्तु सन्नद्ध । असम्भवकथाप्रचारे को लाभ । बुद्धिहीनप्रलापे किंसारे किं सारइति । . ."

२९ जून—"हन्त ! लोके विचित्रा मौर्ख्यपरम्परा । स्त्रैणा केचन स्वजघन्यैराचरणैरेव स्वर्गागारलुठनपरा कृतार्थम्मन्या । घृणितक्रियाकलापैरन्ये नि श्रेयसमधिजिगासते । आचारभ्रष्टा कुटिलहृदया साम्प्रत जनै पूजिता अवतारपदवी यावद्भजमानास्तिष्ठन्ति, (तथैव) जीवनचरितेषु प्रकाश्यन्ते । कालान्तरे समसामयिकानामभावे ते तथैव स्वीकृता' स्यु । इदानीमेव यदा ईदृक् ख्याति अग्रे को रोद्धुमलम् ।"

२६ जून—"हन्त कीदृश जीवनम् ! क्षणे कटुमरीचिका आस्वादवती प्रतीयते, क्षणे सुमिष्ठमोदका कटुतां व्रजन्ति। दिन कदाचिदुल्लासमय रजनी सुखरजनी, तत्परिवर्त्तनेऽपि न भवति चिरम्। अहो नास्ति वस्तु किमपि स्वादु नीरस वा, नास्ति कुरूपा सुरूपा वा काचित् सती, यामेव पति रन्विच्छेत् सैव रूप-राशि। यत् स्वमनोनुकूल तदेव समीचीन वस्तु।"

३० जून—"(यान्त्रिक) व्यवसाय ? सहस्राणा दारिद्र्यक्रोडगताना श्रमजीविना को महानुपकार सति महति सुधारेऽपि। न साम्प्रत आढ्याना क्षेत्रपाना चोन्मूलनमभिप्रेत । कथ तर्हि सजीवनम् ? कलावृद्धौ महानुपकार आढ्यानामेव वाणिज्यवृद्धौ वणिजाम्। शिल्पवृद्धौ न शिल्पिना वराका-णाम्। .."

५ जूलाई—"अभ्यासायैकान्तवासोऽपेक्ष्यते केषाचिन्मासानाम्। न युक्तमस्मादृशा सर्वथा वसतिवास। ज्ञानहानि, आत्महानि स्वभावहानिरिति सर्वतो हान्याधिक्य लाभमात्रा स्वल्पीयसी। तथापि जनहितसाधनाय सर्वसहेन मया भवितव्यम्। न कस्य राग. न कस्य दोष। मदीय सर्वस्व अखिल-जगत्यै। न साधनापुष्टिर्भवेद् यथा तथा परिवर्त्तितव्यम्।"

१४ जूलाई—" .जनहितविघातिका या का अपि सस्था. तासा भूतलाद् अत्य-न्ताभाव एव वर जातु ता ईश्वरवादिन्योऽनीश्वरवादिन्यो वा स्यु।"

२७ जूलाई—"साहित्य एव शुद्धहिन्दीभाषाया अपेक्षा। इतिहासादिग्रन्थानामेकैव भाषा। लिपिभेदस्तु तिष्ठतु तावद्। काले स्वैर राष्ट्रीयतोदये किमपि भविष्यति परिवर्त्तनम्। अन्यत्रापि साहित्यभाषा भिन्ना भवति। एव उभ-योरुर्दूहिन्द्यो साहित्याध्यापनपार्थक्य स्यात्, अन्यत्सर्व एकत्रैव भवितु शक्यते। सर्वधर्मानुयायिनामेकस्मिन् विद्यालयेऽध्ययन साधु।"

२६ जूलाई—

"मान मिलता है अगर मानकी मानै न कही।
जिन्दगी हेच है जिसके लिए जीता है वही॥

एक मर मरके भी मिट्टीमे नही मिल जाता।
चमनमे सैकडो फूलोकी शकल खिल जाता॥

लुत्फ दुनियाकी हवस् हो न तो लुत्फ उसमे है।
बाग तो बाग रेगिस्तानमे हर फूल खिले॥

दमबदम शक्ल शगल खल्क बदलती है मुदाम् ।
गैर-अस्बातमे अस्बातके फँसनेका क्या काम ॥
शोर सुनते हैं हम आलिम है व आजम है मगर ।
दिलमे देखा तो है कोई नही हमसे अहक़र ॥
चहकती बुल्बुले औ कूकती कोयल है कहाँ ।
कैसे वाँ ठहरै दबिस्तान है वीरान जहाँ ॥
किसमे लज्ज़त है नही स्वाद है यह किसमे कहै ।
जबकि हर चीजमे हर दम न वह लज्ज़त ही रहै ॥
है यह नफरतके हटानेको न नफरत काफी ।
मर्जे दिलके लिए इक हुब्ब है काफी शाफ़ी ॥

१ अगस्त (१९२२)—

"विम्बाविम्बोदकजनयने चन्द्रचक्रान्तहासे ।
पद्मच्छद्मोद्धृतनिजकरे शिशुपुष्पांगयष्टे ॥
विश्वभूतेऽम्ब ! हृदि कलये सुप्रवालाधरोष्ठाम् ।
पादाम्भोजाश्रितमधुकराव्यूहवैवर्ण्यवृत्त. ॥
"चूर्ण करके क्षोद सम उत्तुग गिरिको इस तरह ।
फूत् करके धूलि सम वीभत्स नाटक खेलना ॥
सर्वमगलमयि ! नशा इस रम्य (मृदु) उद्यानको ।
क्या कोई इसमे छिपा है भव्य अन्य रहस्य भी ॥

(तिलक)—

"साल होता है तेरे जानेमे । ख्याल तेरा है दाना दानेमे ॥
बीज बोया था जिसका तूने यहाँ । खूनसे मीचे था जिसे तू यहाँ ॥
फूल लगनेका उस प वक्त आया । नजरै दौडी न तू नज़र आया ॥
ज़िन्दगीसे पढाया था जो सवक । कौमके दिल प है जमा वह तबक ॥
ज़ाहिरी नज़रोमे न गो तू है । पर बहक सबका दिलनशी तू है ॥
दिल यह कहता है देखूँ फिर वह जमाल । हैफ़ गो है यह मिन् अमूरे महाल ॥
तिलक क्या फिर न तू अब आयेगा । मुतज़िर नजरोंमे समायेगा ॥"

"अब्दौ जातौ द्य इव मनसि प्रत्यत्ययस्त्वत्प्रयाणे ।
आवर्तान्यं पदमु शुशुभे त्वद्वचस्त्वादधानाः ॥

दृष्टेर्वृष्टि शिशुषु पतति क्वास्ति ते विग्रहार्हं ।
हन्तात्माते स्थित इत इव प्रार्थयाम शरीरम् ॥
आपाद्य स्वायुरखिलरसैः स्वक्षितेरुर्वरात्वम् ।
उप्त बीज च रुधिरपयोवर्द्धित' पादपस्ते ॥
काले पुष्पोद्गम इह विभो! दृष्टयस्त्वद्दिशीका ।
आमोदास्त्वद्विरहविधुरा न प्रमोदावहा स्यु' ॥
दिव्यावाणी हृदयकुहरान् पावयन्ती सदा ते ।
सौम्याचारा सृतिषु सकलान् माधुरी मादयन्ते ॥
निर्भीकास्ते गमनसरणी सारथी सारथीनाम् ।
एकैकस्ते गुण उपकृतेस्सक्षमो वाल सूरे ॥
कुर्वन्तस्ते हितयुतवचः पालन प्राञ्जलान्ता ।
धर्मेणैव जननि सितपादाम्बुज सेवमाना ॥
क्लेशाश्लेषान् विवृतहृदया आदरादाददाना ।
शत्रुश्रीणा मुखमसितमाधाय चाग्रे सरन्ति ॥
वर्षस्यैकं स्मरणनटना त्वन्मता स्यान्न मन्ये ।
आजन्मार्च्यं प्रणतिविरहा स्वार्चना स्वादिता ते ॥
वाणी भाणप्रहितनुतित पाणिमूकस्तवस्ते ।
प्रेय सर्वात् सरलसुगम' कर्मयोगो यतस्ते ॥
दोषादोषे　　दनुजहृदयाह्लादकल्हारचन्द्रः ।
क्षीणाधीनाकुञ्चित जनतापद्मिनी पद्मिनीश ॥
ज्वालामालाऽऽटवि निशिभी भीष्मनृश्वापदानाम् ।
लोकालोकस्तिलक ! जगतो जीवन जीवन ते ॥"

४ अगस्त—"....आजन्मन' किलाध्ययनाध्यापनपर्यटनानि हि मे कार्याणि.. ।"

८ अगस्त—"....अस्माभि स्वकर्त्तव्यमेवानुसर्त्तव्यम् । प्रदानेन न क्वचित् केनचित् स्वातन्त्र्यमधिगतम् । जगति स्वार्थान्धा धूर्त्ता चाङ्गलजाति., न प्रसन्नतया किमपि सुकृत्यमनुतिष्ठति । अमेरिका स्वय स्वतन्त्रतामध्यगात्, आयर्लैण्डोऽप्येवम् ।"

९ अगस्त—
"जाता हूँ तेरी गोदसे मुहसिन है विदा । ऐ जेल मेरे गोशये-तस्कीन अल्विदा ॥
पाबन्द था आ तुझमे मै आज़ाद हुआ । आज़ाद फरिश्तोकी जगह-पाक विदा ॥

उल्मा व रहीबोंके हुए दर्स यहाँ। माज़ीके व हालके सबके ही विदा ॥
ख़स्लतको फरिश्तोंकी यहाँ करते है मात। कम है न मगर काँटे भी महरम् है विदा ॥
कुछ कम नही छ माह तेरी गोद पले। दिल होता है मुज्तर फ़िराक तेरे विदा ॥
औराक़े कुतुब-दीन रहे तुझमे खुले। औराक-ख़लक खालिके-ताला भी विदा ॥
कुल्फतमे तेरी था वह हलावतका मजा। एहसास् है होता नही इज्हार विदा ॥
दीवार व दर तेरे थे महबूब अगर। अहबाब हकीकी थे तेरे सब्जा विदा ॥
होता हूँ जुदा पर न हमेशाकी उमीद। मिलनेकी रियाजतमे रहूँगा ही विदा ॥
है हल्कये-एराफ़ अगर खुल्द नही। दोजख़ व अदन आते नज़र तुझसे विदा ॥"

"शयन भोजन साथ था होता यहाँपर इस तरह।
भाइ भाई बालपनमें मातृक्रोडे जिस तरह ॥
पढने लिखनेके लिए मानो सतीर्थ्य समग्र ही।
बैठे है आचार्य ऋषियोंके चरणतलमे सभी ॥
युग गये जिनके सुदिव्य पवित्र विगह उठ गये।
उनके अनुपम शास्त्रविग्रह-दर्शसे दुख मिट गये ॥
साथ रह जडजन्तुका भी, प्रेमपथ होता प्रशस्त।
फिर न प्रेमागार मानवहृदय क्यों हो प्रेम-मस्त ॥
सन्त सन्त-वियोग दुख दारुण सहैं बुधजन कहैं।
हम असन्त वियोग-दुख-गम्भीर-धारामे बहैं ॥
चिर-प्रतीक्षित कर्मपथ आह्वान यद्यपि कर रहा।
स्नेहबन्धन बन्धुओका मुक्त पर नहि कर रहा ॥
इतने दिन निश्चिन्त हो थे प्रेमसे रहते रहे।
हो प्रसन्न विपत्तियोको साथ थे सहते रहे ॥
इस नगरसे जानेवालेको यदपि दर्शन नही।
पर भविष्य स्वकर्मसे होता अनाश्वासन नही ॥
बन्धुओ ! आजन्म यह मिलना न भूलैगा कभी।
स्मरण होवेगा जभी स्वर्गीय सुख होगा तभी ॥
कर्ममें जा अपने अपने लग्न हो जाना अगर।
भूल जाना अपने इन लघुप्रेमियोंको फिर न पर ॥"

# २. सांकृत्यायन-वंश*

## (सरयूपारीण मलाँव-शाखा)

### (क) वैदिककाल

उत्तरी भारतके ब्राह्मणोंमें सरयूपारीण या सरवरिया ब्राह्मणोका एक खास स्थान है। इनकी बस्ती अधिकतर फैजाबाद, बनारस और गोरखपुरकी कमिश्नरियो (बनारस, मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर, आजमगढ, गोरखपुर, बस्ती, फैजावाद गोडा, बहराइच, प्रतापगढ, सुलतानपुरके जिलो) तथा विहारके सारन, चम्पारन, शाहाबादके जिलोमे है। इन जिलोके पडोसी जिलोमे भी इनकी काफी सख्या है। वैसे विस्तार तो मध्यप्रदेश तक चला गया है। इसी प्रदेशमे काशी नगरी जैसा सस्कृत-विद्याका केन्द्र होनेके कारण इनके भीतर सस्कृतका गभीर पाण्डित्य होना स्वाभाविक ही है। साथ ही इनमे सामाजिक सकीर्णता यहाँ तक रही है, कि अभी तीन-चार वर्ष पहिले तक कोई भी सरयूपारी किसी विलायती विश्वविद्यालयका ग्रेजुएट नही था। सरवरिया ब्राह्मणोके प्रधान १६ गोत्रोमे साकृत्य गोत्र भी एक है। गोरखपुर जिलेका मलाँव गाँव (गोरखपुरसे १४ मील दक्खिन अक्षाश २६°।३२′ उ०, देशातर ८३°।२५′) इनका मूल स्थान है, इसीलिए पदवीके साथ मिलाकर इन्हे मलाँव-पाँडे भी कहा जाता है।

भरद्वाज, कश्यप, गोतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वशिष्ट ये सात वैदिक ऋषि सप्त-ऋषियोके नामसे विख्यात है।[1] ऋग्वेदके दो सूक्तो (६।६७, १०।१३७)

---

* १९३९में लिखित

[1] "विश्वामित्रोऽथ जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गोतमः।
अत्रिर्वशिष्टः कश्यप इत्येते सप्तर्षयः"॥

(बोधायन-सूत्र, प्रवराध्याय)

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिरा। वसिष्ठो वामदेवोऽत्रिस्तथा सप्तर्षयोऽमलाः॥ (अध्यात्मरामायण, उत्तरकाण्ड)

कहीं-कही आठ ऋषि भी मिलते हैं—भृगु, अगिरा, मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु (वायु-पु० १९।६८-९, मत्स्य-पु० १७१।२८)

में इन सातों[1] ऋषियोंकी बराबर संख्यामें कुछ ऋचायें एकत्रित की गई हैं। पहिले सूक्तमें तीन-तीन और दूसरेमें एक-एक ऋचायें हैं, और दोनो जगह सर्वप्रथम भरद्वाज-की ऋचायें हैं, जो अभ्यर्हित पूर्व (पूज्यको पहिले) के नियमानुसार भरद्वाजकी प्रधानता सिद्ध करती हैं। ऋग्वेदके १०१७ सूक्तोंमेंसे ३६ से अधिक[2] भरद्वाज-रचित हैं, यह भी भरद्वाजकी विशेषताको बतलाता है। भरद्वाज बार्हस्पत्यका वंश-वृक्ष इस प्रकार है—
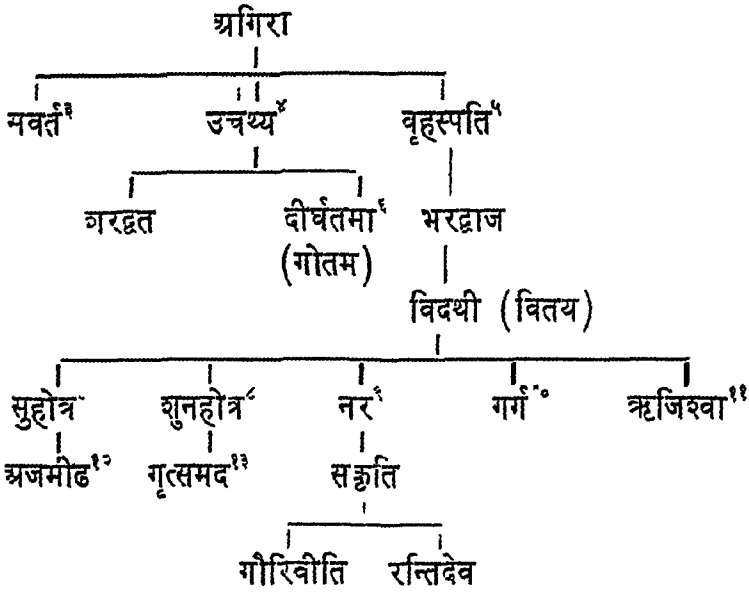
[1] बाकी छ ऋषियोंके मंत्र ऋक्-संहितामें निम्न प्रकार पाये जाते हैं। कश्यप मारीच १।६६; ८।२६; ६।६४; ६।६७। ४-६; ६।६१; ६२, ११३, ११४; १०।१३७। २।। गोतम राहूगण १।७४-६३; ६।३१; ६।६७।७-६; १०।१३७।३।। अत्रि भौम ५।२७, ३७-४३, ७६, ७७, ८३-८६; ६।६७।१०-१२; ६।८६।४१-४५; १०।१३७, ४।। विश्वामित्र गाथिन ३।१-१२, २४, २५, २६ (१-६, ८, ६), २७-३२, ३३ (१-३, ५, ७, ६, ११-१३), ३४, ३५, ३६ (१-६, ११), ३७-५३, ५७-६२; ६।६७।१३-१५; १०।१३७।५; १०।१६७।। जमदग्नि भार्गव ३।६२।१६-१८; ८।१०१; ६।६२, ६५, ६७ (१६-१८), १०।११०, १३७ (६), १६७।। वसिष्ठ मैत्रावरुणि ७।१-३२, ३३ (१-६), ३४-१०४; ६।६७ (१६-३२), ६०, ६७ (१-३); १०।१३७।७।

[2] ऋक् ६।१-१४, १६-३३, ३७-४३; और ६।६७ तथा १०।१३७के सप्तमांश।

[3] संवर्त आंगीरस ऋग् १०।१७२।।

[4] उचथ्य आंगीरस ऋग् ६।५०-५२।।

[5] बृहस्पति आंगीरस १०।७१,७२

[6] दीर्घतमा औचथ्य ऋग् १।१४०-१६४।।

[7] सुहोत्र भारद्वाज ६।३१,३२।।

[8] शुनहोत्र भारद्वाज ६।३३,३४।।

[9] नर भारद्वाज ६।३५,३६।।

[10] गर्ग भारद्वाज ६।४७।।

[11] ऋजिश्वा भारद्वाज ऋग् ६।४६-५२; ६।६८, १०८।६,७।

[12] अजमीढ सौहोत्र ऋग् ४।४३, ४४

[13] गृत्समद आंगिरस शौनहोत्र पश्चाद् गृत्समद भार्गव शौनक ऋग २।१-३, ८-४३; ६।८६।४६-४८।

कात्यायनकृत ऋग्वेदके सर्वानुक्रममें[1] वितथ या विदथीके सुहोत्र आदि पाँच पुत्र लिखे हैं, किन्तु महाभारत[2] आदिमें शुनहोत्रको छोड बाकी चार वितथके पौत्र और भुवमन्युके पुत्र कहे गये हैं।

संकृति ऋषिका काल—भरद्वाजके चचेरे भाई तथा उचथ्यके पुत्र दीर्घतमा—जो पीछे गोतमके नामसे प्रसिद्ध हुये—ने दुष्यन्तके पुत्र शाकुन्तलेय भरतका अभिषेक[3] कराया था और भरतने सन्तानोके मर जानेपर दीर्घतमाकी प्रेरणासे भरद्वाजको गोद लिया। भरद्वाजने स्वयं गद्दी न ले अपने पुत्र वितथ या विदथीको राज्य-सिंहासन दिया।[4] इस प्रकार भरद्वाजकी सन्तान आगे चलकर भरतके वंश और राज्यकी उत्तराधिकारी हुई, और इसीलिए महाभारतने "भरद्वाजो ब्राह्मण्यात्

---

[1] सर्वानुक्रम (कात्यायन) और वेदार्थदीपिका (सायण) ऋग् ६।५२

[2] दायादो वितथस्यासीद् भुवमन्युर्महायशाः।
महाभूतोपमाः पुत्राः चत्वारो भुवमन्यवः॥
बृहत्क्षेत्रो महावीर्यो नरो गर्गश्च वीर्यवान्।
नरस्य संकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रौ महौजसौ॥
गुरुधी रन्तिदेवश्च सांकृत्यौ तावुभौ स्मृतौ।
गर्गाः संकृतयः काव्याः क्षमोपता द्विजातयः॥
—(वायुपुराण ६१।११५; ब्रह्माण्ड ३।६६।८६;
महाभारत १२।२३४।४३९६के आधारपर)

[3] ऐतरेय ब्राह्मण ८।२३,२१

[4] "उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै।
दायादोऽङ्गीरसः सूनुरौरसस्तु बृहस्पतेः॥
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य विभुर्ब्रवीत्।
प्रजायां संहृतायां वै कृतार्थोऽहं त्वया विभो॥
ततस्तु वितथो नाम भरद्वाजात् सुतोऽभवत्।
तस्मात् दिव्यो भरद्वाजो ब्राह्मण्यात् क्षत्रियोऽभवत्॥
ततोऽथ वितथे जाते भरतः स दिवं ययौ।
भरद्वाजो दिवं यातो ह्यभिषिच्य सुतं ऋषिः॥"
—(महाभारत १।९४।३७१०-३)

क्षत्रियोऽभवत्" लिखा। नीचे दिये भरद्वाजके वंशवृक्षसे पता लगेगा, कि कौरव-पांडव स्वयं भरद्वाजके पुत्र विदथीकी संतान थे, और उन्हींके दूसरे पुत्र नरसे संकृति पैदा हुये।

१. दुष्यन्त
२. भरत[1]
३. भरद्वाज (१५०० ईसा-पूर्व)
४. विदथी (वितथ)
५. सुहोत्र — शुनहोत्र — नर
६. अजमीढ़ (सुहोत्रके पुत्र) — पुरुमीढ़ (सुहोत्रके पुत्र) — गृत्समद (शुनहोत्रके पुत्र) — संकृति (नरके पुत्र)
७. ऋक्ष (अजमीढ़के पुत्र) — रन्तिदेव (संकृतिके पुत्र)
८. संवरण (१४०० ई० पू०)
९. कुरु (१३८० ई० पू०)
१०. चित्ररथ
११. जह्नु
१२. सुरथ
१३. विदूरथ (१३०० ई० पू०)
१४. सार्वभौम (१२८० ई० पू०)
१५. जयत्सेन
१६. अपराचीन
१७. अरिहा
१८. महाभौम (१२०० ई० पू०)
१९. अयुतानायी
२०. अक्रोधन
२१. देवातिथि
२२. ऋच (अरिहा)
२३. ऋक्ष (२) (११०० ई० पू०)
२४. भीमसेन
२५. दिलीप
२६. प्रतीप
२७. शन्तनु
२८. विचित्रवीर्य (१००० ई० पू०)
२९. पाण्डु
३०. अर्जुन
३१. अभिमन्यु
३२. परिक्षित्
३३. जनमेजय (९०० ई० पू०)
३४. शतानीक
३५. अश्वमेधदत्त
३६. अधिसीम कृष्ण
३७. निचक्षु
३८. उष्ण (भूरि) (८०० ई० पू०)
३९. चित्ररथ
४०. शुचिरथ
४१. वृष्णिमान
४२. सुषेण
४३. [2]सुनीथ (७०० ई० पू०)
४४. नृचक्षु (भिचक्षु)

---

[1] Chronology of Ancient India (S. N. Pradhan) pp. 79-80;
[2] वही, p. 256

४५ सुखीबल
४६. परिप्लुत
४७ सुनय
४८ मेधावी (६०० ई० पू०)
४९ नृपजय
५० तिग्म
५१ वृहद्रथ
५२ वसुदामा
५३ शतानीक (५०० ई० पू०)
५४ उदयन (४८० ई० पू०)

इस वंशावलीमे भरद्वाजसे उदयन (वत्सराज)तक ५४ पीढियाँ होती है। डाक्टर प्रधानने प्रत्येक पीढीके लिये २८ साल रखा है, किन्तु मेरी समझमे वह ज्यादा है, खासकर राजाओं और उनके दायादोंके सबधमे, इसलिए प्रत्येक पीढीके वास्ते २० साल रखना ठीक होगा। उदयन वत्सराज, बुद्धके निर्वाणके समय ४८७ ई० पू० मे मौजूद था, और उतना वृद्ध न था। उसे ४८० ई० पू० माननेपर भरद्वाजका समय १५०० ई० पू० और सकृतिका १४४० ई० पू० होगा।

पचालका प्रतापी राजा दिवोदास भरद्वाज ऋषिपर विशेष श्रद्धा रखता था, इसीलिए ऋषिने दिवोदासकी प्रशसा ऋग्वेदकी, अपनी कई ऋचाओमे की है। किसी शवर (शबर या आर्यभिन्न)-राजा पर दिवोदासके विजयको इन्द्रके धन्यवादके रूपमे ऋषिने इस प्रकार वर्णन किया है—

"हे इन्द्र! तुम (शत्रु-नि)वर्हण, प्रशसायोग्य हो, तुमने सैकडों सहस्रों (असुर-) शूरोको परास्त किया, तुमने पहाडसे आये दास शबरको मारा, और विचित्र रक्षा-प्रकारसे दिवोदासकी रक्षा की।"[3]

इसी दिवोदासकी बहिन[4] अहल्या थी जो दशरथ, वशिष्ठ और विश्वामित्र-

---

[1] A. I. H. T. (Pargiter) p. 112, A I.H T. (Pargitei) p. 112 Chronology of Ancient India (S.N Pradhan) pp. 79 80, p. 259

[2] इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति॥
—ऋग् ६।२६।२

[3] त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहसा शूर दर्षि।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती॥
—(ऋक् ६।२६।५)

[4] वध्र्यश्वान्मिथुन जज्ञे मेनकायामिति श्रुति।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी॥
—वायुपुराण ९९।२०० (मिलाओ हरिवंश १।३२।७०; विष्णुपुराण ४।१९।१६)

कालीन गोतम ऋषिकी पत्नी थी। गोतम ऋषि कौन थे? भरद्वाजकी माता ममता और चचा उचथ्य (उतथ्य)के पुत्र जन्मान्ध दीर्घतमा ही पीछे आँख प्राप्त कर लेनेपर गोतम कहे गये।[१] इस प्रकार भरद्वाज वैदिक कालके आरम्भमे पैदा हुए थे, और ऋग्वेदके निर्माणमे उनका काफी हाथ था। भरद्वाजसे चौथी पीढ़ी अजमीढ़, पुरुमीढ़, गृत्समदके वाद वेद ऋचाओके निर्माणका काम वहुत कुछ समाप्त हो जाता है।

ऋग्वेदके मन्त्र-कर्ताओंको जब हम देखते है, तो मालूम होता है, कि अभी आर्योमे क्षत्रिय, ब्राह्मण जातियाँ अलग अलग नही बनी थी भरतवशके उत्तराधिकारी विदथी क्षत्रिय नृपति थे, और उनके पौत्र अजमीढ सौनहोत्रसे कुरु, उत्तर-पचाल, दक्षिण पचालके राजवश पैदा हुये। पुराणोंके अनुसार शुनहोत्रके तृतीय पुत्र गृत्समदके वशज शौनकने ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्णोको कायम किया। भारद्वाजगोत्री[३] शौनकका वंशवृक्ष डाक्टर प्रधानने इस प्रकार दिया है[४]—

| | |
|---|---|
| गृत्समद (१४४० ई० पू०) | तमः |
| सवेता | प्रकाश |
| वर्चा सावेतस | वागीन्द्र |
| विहव्य (ऋग् १।१२८) | प्रमिति |
| वितस्त्य (वितत्य) | रुरु |
| सत्य | शुनक |
| शिवस्तसन्ता | शौनक (परीक्षित् ९२० ई० पू०) |
| शर्वा. | |

---

[१] वायुपुराण ९९।२६-३४, ४७-९७; ब्रह्माण्डपुराण ३।७४।२५-३४, ४७-१००; मत्स्य ४८।२३-२९

[२] ब्रह्मपुराण २।३२, ३३; विष्णुपुराण ४।८।१; वायुपुराण ९२।२, ३, ४, देखो Chronology of Ancient India (Dr. S.N. Pradhan) p. 28

[३] ऋक् ६।३१, ३२ (सुहोत्र); ६।३३, ३४ (शुनहोत्र); वेदार्थदीपिका (सायण), ऋग् ६।५२ और सर्वानुक्रम ऋग् ६।५२; "य आंगिरस शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः. .को अभवत्, स गृत्समदः....स च पूर्वमांगिरसकुले शुनहोत्रस्य पुत्रः सन् यज्ञकालेऽसुरैर्गृहीत इन्द्रेण मोचितः।" (सायण, ऋग् २।१)

[४] Chronology. Ancient India pp. 59, 60

शौनकका समय महाभारतकालके करीब पडता है, और उस समय तक वर्ण-व्यवस्था—खासकर ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्ण-व्यवस्था—नही थी, यह बात तो व्यास, और धृतराष्ट्र तथा पाँडुके उदाहरणोसे भी सिद्ध होता है।

नर ऋषि (१४६० ई० पू०)—राजा विदथी या वितथके पुत्र नर ऋग्वेदके ऋषियोमेसे है। ऋग्वेदके छठे मडलके ३५, ३६ सूक्तोकी दश ऋचाओमे उन्होने इन्द्रकी वीरताकी स्तुति की है, और अपने वशजो भरद्वाजो और आँगिरसोके लिये खासतौरसे गोधनकी याचना की है। "समुद्र न सिन्धव" (समुद्रमे नदियाँ जैसे) ऋचाभागसे पता लगता है, कि नरका रहना अधिकतर पजाबमे रहा। नदीवाचक सिंधु शब्द कुरु-पचाल या काशी-कोसलमे नही फैलने पाया था। दर्द-भाषामे (गिल्गितके पास) तो आज भी हर एक नदीको सिन्धु कहा जाता है।

संकृति (१४४० ई० पू०)—सकृति नर जैसे मत्रकर्ताके पुत्र थे और गौरिवीति (गुरुधी, गुरुवी)[1] जैसे मत्रकर्ता ऋषि तथा रन्तिदेव जैसे चक्रवर्ती राजाके पिता थे। सकृतिके बारेमे हम इससे अधिक नही जानते।

गौरिवीति सांकृति (१४२० ई० पू०)—ऋग्वेदके मत्रकर्ता ऋषि गौरवीति[2] को शाक्त्य कहा गया है, इसलिए भ्रम हो सकता है कि यह गौरिवीति शायद वशिष्ट-सूनु शक्तिके पुत्र हो। लेकिन वशिष्ट-वशज तो यह नही थे, क्योकि (१) इनके रचित एक सूक्त (५।२९) मत्रको वशिष्टके मडल (ऋग् ७)मे न रखकर आत्रेय-अगिरस मडल (ऋग् ५)मे रखा गया है, (२) इनकी रचित दो ऋचाये (९।१०।१-२) ऐसे सूक्तमे रखी गई है, जिनके ऋषि ऊरु आँगिरस, ऋजिश्वा भरद्वाज, ऊर्ध्वसद्मा, आँगिरस, कृत्ययश आँगिरस—सकृति-वशियो जैसे आँगिरस है,' (३) इनके दो सूक्त (१०।७३,७४) बृहस्पति आँगिरसके दो सूक्तो (ऋग् १०।७१, ७२)के बाद आते है, (४) जैमिनिय ब्राह्मण[3]ने स(ा)कृति गौरिवीतिका जिक्र किया है, वह गौरिवीति शाक्त्य[2] और, आसित धाम्न्य असुरकी कुमारी कन्यासे पैदा हुआ था इस प्रकार गौरिवीतिका सबध शक्ति वाशिष्ट से नही बल्कि सकृतिसे स्थापित हो जाता है; (५) अपने एक पद्य (ऋचा)मे ऋषिने अपने नामके साथ वशके

---

[1] ऋग् ५।२९; ९।१०८ (१-२); १०।७३, ७४

[2] सरयूपारीण-ब्राह्मण-वंशावली, पृष्ठ ८२में "गौरवीति"

[3] जैमिनीय-ब्राह्मण (III-197 Caland का उद्धरण, p. 269)

पूर्वज ऋषियोमे वैदथिन (नर), ऋजिश्वाका जिक्र किया है।[1]

(६) सक्रृतिके पुत्र गौरिवीतिके बारेमे पर्जिटर लिखते है—"The other Sānkriti's name is given as गुरुवीर्य (वायु पु०) गुरुधी (मत्स्य पु०) गुरु (भागवत) and रुचिरधी (विष्णु पु०)। He is no doubt the same rishi who is named among the Āngirasas as गुरुवीत and गौरवीति and the correct name is गौरिवीति. there was also a शक्ति among the Āngirasas."[2]

(७) सांकृत्य मलाँव पाडे लोगोके तीन प्रवर[3] है—अगिरा, सक्रृति और गौरवीति।

---

[1] स्तोमासः त्वा गौरिवीतेः अवर्धन् नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम्।
आ त्वां ऋजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीः अपिवः सोममस्य॥
—(ऋग् ५।२९।११)

[2] Ancient Indian Historical Tradition(F.E. Pargiter)p.249

[3] सरयूपारीण-ब्राह्मण-वंशावली (डाक्टर इन्द्रदेव प्रसाद चतुर्वेदी, द्वितीय सस्करण पृ० ८२)। इसी वंशावलीमें अन्य दो स्थानों (पृष्ठ ९ और ३४)में, तथा "सवर्य्यि पंक्ति-ब्राह्मण-वैभव" (पृष्ठ २८)में साकृत्योंके पाँच प्रवर—कृष्णात्रेय, अर्चनानस, श्यावा, सांख्यायन, संकृति लिखे है, जो कि सांकृत्योंकी त्रिप्रवरवाली सार्वजनीन परम्पराके विरुद्ध होनेसे त्याज्य है। कृष्णात्रेयके तीनों प्रवर—कृष्णात्रि, अर्चिमान, यावाश्य (कान्यकुब्जभास्कर पृष्ठ १७१) और आत्रेय, आर्चनानस, श्यावाश्य (सर्वा० पं० ब्रा० वैभव पृष्ठ २७, स० ब्रा० वंशावली पृष्ठ ९)—को सांकृत्य प्रवरोके साथ मालूम होता है, मिला दिया गया है। कान्यकुब्जोंकी लिखित परम्परामें सांकृत्यके तीन प्रवरोकी संख्या (कान्यकुब्जभास्कर पृष्ठ १४—सांकृत, किल, सांख्यायन; पृष्ठ १७५, सांकृत्यायन—चामन, मध्यायन, मौनस; और पंडित देवीदत्त शुक्ल संपादक "सरस्वती" की कृपासे प्राप्त मुद्रित सांकृत्य-वंश-वृक्षमें—किलायन, सांख्यायन, सांकृत)में तीन संख्या तो ठीक रखी गई है, किन्तु नाम दूसरे है। यहाँ सांकृत्य और सांकृत्यायन एक ही हैं, जहाँ तक गोत्रका सम्बन्ध है। गुणाख्य सांख्यायन, जनमेजय (९०० ई० पू०)कालीन वैशम्पायनके शिष्य याज्ञवल्क्य और समसामायिक कहोल कौषीतकिके शिष्य थे (Chronology of Ancient India, chart pp. 1-46-77) और इस प्रकार वह संकृति

वैदिक ऋषि गौरवीति साकृत्यसे ही मलाँवकी साकृत्य शाखा निकली है। गौरिवीति की बनाई और ऋग्वेदमे सुरक्षित ३४ ऋचाओमे २६ इन्द्र, ६ वसु, और २ सोमकी प्रशसामे है; वसु और सोमके वर्णनोमे भी ऋषिने इन्द्र[1] हीका जिक्र किया है।

रन्तिदेव सांकृति (१४२० ई० पू०)—विदथीके बाद सुहोत्र और उनकी ज्येष्ठ सन्ताने अजमीढ, ऋक्ष आदि पौरवराज्यकी स्वामी हुई। नर वैदिक ऋषि थे, वह कही के राजा थे या नही, यह पता नही लगता, यही बात सकृतिके लिए भी है, किन्तु रन्तिदेवको हम भारतके प्राग्-महाभारतीय कालके १६ यशस्वी राजाओमे[2] पाते

---

(१४४० ई० पू०)के बहुत पीछे हुये, वंशवृक्षमें उन्हें सकृतका पूर्वज बनाना गलत है। सांकृत्योके तीन प्रवर—अंगिरा, संकृति और गौरवीति ही ठीक है, जैसा कि—

"संकृतिपूतिमाषतण्डिशम्बुशैवगवानामाङ्गिरस गौरिवीत सांकृत्येति। शाक्त्यो वा मूलं शाक्त्य गौरवीति सांकृत्येति।" आश्वलायनसूत्र ६।१२।५ (Baptist Mission Press ? Calcutta)

"गोत्रप्रवरनिबंधकदम्बक" (लक्ष्मीवेंकटेश्वर-प्रेस, बंबई, १९१७ ई०)में सांकृत्य-गोत्रके तीन ही प्रवर मिलते है—

संकृतिप्रवराः आंगिरस-गौरुवीत-सांकृत्येति आंगिरस सांकृत्य गौरु-वीतेति शाक्त्य-गौरुवीत-सांकृत्येति (पृष्ठ ४)। "संकृति पूतिमाष ताण्डि साम्ब सैपठ-जानकि तैराघातव्य-ऋषिभी-वारायणी सहिगांगिलौक्षितालागा आंगिरस सांकृत्य-गौरिवीतेति, अङ्गिरावत् सकृति-वद् गुरुवीतवत्।" (पृष्ठ ८३-८४, कात्यायनलौगाक्षिप्रणीत-भरद्वाजगोत्रकाण्डतः)

"संकृतयः मलकाः पौलस्तण्डि. शम्बुशैम्भवयः परिभावास्तारकाद्या हारिग्रीवा. पैणायाः श्रौतायना आग्रायणा आम्रापय. पूतिमाषा इत्येते संकृतय.। तेषा त्र्यार्षेय. प्रवरो भवति आंगिरस सांकृत्य गौरुवीतेति होता। गुरुवीतवत् संकृतिवदङ्गिरोवदित्यध्वर्युः।" (पृष्ठ ५५, बोधायनोक्त-केवलाङ्गिरस-प्रवरकाण्ड) "आंगिरस सांकृत्य गौरुवीत इतीमं प्रवरं संकृतीनां आपस्तम्ब-बोधायन-कात्यायन-मत्स्या आहु. आश्वलायनस्तु आंगिरस गौरुवीत सांकृत्य . " (पृष्ठ १८६-८७)

[1] पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम ऋतुवित् तमोमद.। महिद्युक्षतमोमद.॥
यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विद.।"

[2] महाभारत, द्रोणपर्व ६७ (षोडशराजकीय)। शान्तिपर्व २९ (षोडश राजकीय)।

हैं।[1] रन्तिदेवका राज्य चम्बल (चर्मण्वती)[1] के किनारे था। कालिदासकी टीका करते मल्लिनाथने रन्तिदेवकी राजधानी दशपुर[2] लिखी है। रन्तिदेव सांकृति अपने दान और अतिथिसेवाके लिए बहुत प्रसिद्ध थे। अतिथियोंके भोजनके लिए उनके यहाँ रोज दो हजार गायोंका माँस पकता था।[4] बल्कि महाभारतमें दूसरे स्थानोंपर एक्कीस[5] हजार, और बीस हजार एक सौ[6] गायोंके मांसकी बात बतलाई है। माँसका

---

ये सोलह राजा हैं—

| | |
|---|---|
| (१) मरुत्त आवीक्षित | (९) मान्धाता यौवनाश्व |
| (२) सुहोत्र आतिथिन | (१०) ययाति नाहुष |
| (३) बृहद्रथ वीर (आंग) | (११) अम्बरीष नाभागि |
| (४) शिवि औशीनर | (१२) शशबिन्दु चैत्ररथ |
| (५) भरत दौष्यन्ति | (१३) आमूर्तरयस |
| (६) राम दाशरथि | (१४) रन्तिदेव सांकृति |
| (७) भगीरथ | (१५) सगर ऐक्ष्वाकु |
| (८) दिलीप ऐलविल खट्वांग | (१६) पृथु वैन्य |

[1] चर्मण्वतीं समासाद्य नियतो नियताशनः।
रन्तिदेवाभ्यनुज्ञातमग्निष्टोमफलं लभेत्॥
—महाभारत, वनपर्व ८२।५४ (चित्रशाला प्रेस, पूना)

[2] "तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलता-विभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरि विलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं,
पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्॥ —मेघदूत १।४७
"रन्तिदेवस्य दशपुरपतेर्महाराजस्य" मल्लिनाथ-टीका

[3] सांकृते रन्तिदेवस्य स्वशक्त्या दानतः समः।
ब्राह्मण्यः सत्यवादी च शिविरौशीनरो यथा॥ —वनपर्व २९४।१७

[4] राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वै द्विज।
अहन्यहनि बध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा॥ —वन० २०८।८,९

[5] सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत्।
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः। —द्रोणपर्व ६७।१६, १७

[6] सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमवसन् गृहे।
आलभ्यन्त शतं गावः सहस्राणि च विंशतिः॥ —शान्तिपर्व २९।२७

खर्च इतना था कि उन गायोंके ताजे चमडे—जो महानस (रसोई) मे रखे हुए थे—के पानीसे एक नदी निकली, जिसे चर्मण्वती (वर्तमान् चम्बल) कहा गया।[1] इतने भारी परिमाणमे सामिष भोजन पकने पर भी राजाके मणिकुण्डलधारी दो सौ हजार (दो लाख ?) रसोइये अतिथियोसे प्रार्थना करते थे[2]—"सूप (माँस-रस) अधिक ग्रहण करें आज माँस कुछ कम है।" महाराज (?) रन्तिदेव साकृति अपने भाई गौरिवीतिकी भाँति

---

[1] "नदी महानसाद् यस्य प्रवृत्ता चर्मराशितः।
तस्माच्चर्मण्वती पूर्वमग्निहोत्रेऽभवत् पुरा॥" —द्रोण० ६७।५
"महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात् संसृजे यत.।
ततश्चर्मण्वतीत्येवं विख्याता सा महानदी।" —शान्तिपर्व, २९।१२
"अतश्चर्मण्वती राजन् गोचर्मभ्यः प्रवर्तिता।" —अनुशासनपर्व ६६।४३
"आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद् वीणिभिर्मुक्तमार्गः।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतो मूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्॥"४५॥
—मेघदूत १।४५

"सुरभितनयानां गवामालम्भेन संज्ञपनेन जायत इति तथोक्ताम्। भुवि लोके स्रोतोमूर्त्या प्रवाहरूपेण परिणतां रूपविशेषमापन्नां रन्तिदेवस्य दशपुरपतेर्महाराजस्य कीर्तिम्। चर्मण्वत्याख्यां नदीमित्यर्थः। पुरा किल राज्ञो रन्तिदेवस्य गवालम्भेष्वेकत्र संभृताद् रक्तनिष्यन्दाच्चर्मराशेः काचिन्नदी सस्यन्दे। सा चर्मण्वतीत्याख्यायत इति।"—मल्लिनाथी टीका

[2] "समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यश.।
अतुला कीर्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम।" —वनपर्व २०८।६,१०
"सांकृतिं रन्तिदेवं च मृतं सृंजय शुश्रुम।
यस्य द्विशतसाहस्रा आसन् सूदा महात्मन.॥१॥
गृहानभ्यागतान् विप्रानतिथीन् परिवेषका.।
पक्वापक्वं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम्॥२॥
न्यायेनाधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत।" —द्रोणपर्व ६७
तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डला॥१७
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा।" —द्रोणपर्व ६७।१७; और शान्तिपर्व २९।२८

चाहे मंत्रकर्ता न रहे हों, किन्तु वे वेदाध्यायी जरूर थे, और शत्रुओंको उन्होंने अपने वशमें किया था।[1] उनकी समृद्धि अतिमानुषी थी, और उनके दानमें चाँदी नहीं सोनेकी मुहरें (सौवर्ण निष्क) दी जाती थीं। रन्तिदेव सांकृतिने इन्द्रसे वर लिया था—हमारे पास खूब अन्न हो, अतिथि हमारे पास आवें, हमारी श्रद्धा कम न होवे, और हमें किसीके सामने हाथ पसारना न पड़े।[2]

**सांकृत्य पाराशरी आचार्य** (७०० ई० पू०)—जनमेजय पारिक्षित (९०० ई० पू०?)के समकालीन वैशम्पायनके शिष्य याज्ञवल्क्यसे पहिले किसी निवृत्तिप्रधान धार्मिक पाराशरी सम्प्रदायके एक आचार्य सांकृत्यका जिक्र बृहदारण्यक-उपनिषद् (शतपथब्राह्मण)में आता है।[3]

**सांकृति पार्थरश्म** (७०० ई० पू०)—जैमिनीय शाखाके आर्षेय-ब्राह्मणमें[4]

---

[1] "वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतोर्वशे ॥४॥
ब्राह्मणेभ्योऽददन्निष्कान् सौवर्णान् स प्रभावतः।
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह्स्म प्रभाषते ॥६॥
तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।
रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ॥१४॥
नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मानुजेष्विति ॥१५॥
रन्तिदेवस्य यत् किंचित् सौवर्णमभवत् तदा ॥१८॥
तत् सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत।" द्रोणपर्व ६७
"नासीत् किंचिदसौवर्णं रन्तिदेवस्य धीमतः।" शान्तिपर्व २९।२६

[2] "रन्तिदेवं च सांकृत्यं मृतं सृंजय शुश्रुम।
सम्यगाराध्य यः शक्राद् वरं लेभे महातपाः ॥२०॥
अन्नं च नो बहु भवेद् अतिथींश्च लभेमहि।
श्रद्धा च नो मा व्यगमत् मा याचिष्म कञ्चन ॥२१॥" —शान्तिपर्व २९

[3] शतपथ, १४।५।५।२०; १४।७।३।२६; बृहदारण्यक (माध्यन्दिनशाखीय) २।५।२०; ४।५।२६

[4] वैदिकपदानुक्रमकोश (विश्वबन्धुशास्त्री)में उद्धृत आर्षेय ब्राह्मण २।२०।३

इस वैदिक आचार्यका पता लगता है। ये दोनो ही आचार्य याज्ञवल्क्य (६८० ई० पू०) से पूर्व हुये थे, और दोनो ही उपनिषद्-ज्ञानके प्रचारक थे।[1]

## (ख) बौद्धकाल

कृश सांकृत्य (६०० ई० पू०)—बुद्धकाल और उससे पूर्व भारतके सभी महान् विचारक उपनिषद् और वेदके तत्त्वज्ञानके ही प्रचारक नही थे, वल्कि जैसे राजतन्त्रके साथ-साथ उस वक्त भारतमे कितने ही अराजक गणतत्र भी थे; वैसे ही कितने ही अध्यात्मज्ञानसे पराङ्मुख अर्धभौतिकवादी या पूर्ण-भौतिकवादी आचार्य भी हुये थे, गौतम बुद्ध पहिली श्रेणीके विचारक थे और कृश साकृत्य दूसरी तरहके। कृश साकृत्यका भौतिकवाद आजकलके वैज्ञानिक भौतिकवाद सा नही था, और विज्ञानयुगसे सत्त-स्राब्दियो पूर्व वह हो भी कैसे सकता था, तो भी कृश साकृत्य आजीवक सप्रदायके प्रधान तीन आचार्यो[2]—नन्द वात्स्य, कृश साकृत्य और मक्खलि गोसाल—मेसे एक थे, इन्हे आजीवकोका "शास्ता" (उपदेशक) कहा गया है, और यह गौतम बुद्धके समकालीन मक्खली गोसालसे पहिले हुये थे, इसलिए इनका समय ईसा-पूर्व ६००के करीब होगा। ये आजीवक आचार्य अधिकतर काशी-कोसल, वज्जी-मगधमें घूमते थे, और यही उनकी प्रधानता थी, इसलिए बहुत सभव है कि प्राचीन काशी-कोसल ब्राह्मणोंका स्थान लेनेवाले सरयूपारीण ब्राह्मण तथा तदन्तर्गत साकृत्यवशमे ही यह कृश साकृत्य पैदा हुये थे।

सांकृत्य श्रामणेर (५०० ई० पू०)—श्रावस्तीमे गौतम बुद्धके चमत्कारी शिष्योमे श्रामणेर साकृत्यका नाम आता है।[3] बहुत छोटी ही अवस्थामे बुद्धके प्रतिपादित दर्शनका इन्हे मर्मज्ञ समझा जाता था। श्रावस्ती (कोसल, आधुनिक सहेट-महेट जिला गोडा)के होनेके कारण आज इनका वश सरयूपारीण-साकृत्योके अन्तर्गत है, इसमे सदेहकी गुजाइश नही।

---

[1] निम्न श्लोकमें भीष्मको सांकृति-प्रवर कहा गया है, किन्तु हमें मालूम है, वह संकृतिके चचा सुहोत्रके पुत्र अजमीढ़की परंपरामें थे—"वैयाघ्रपद्यगोत्राय साकृति-प्रवराय च। अपुत्राय ददाम्येतत् सलिलं भीष्मवर्मणे।" (तिथितत्त्व, बंगला-विश्वकोपमें उद्धृत)

[2] मज्झिमनिकाय २।३।६ (पृष्ठ ३०४)

[3] बुद्धचर्या (नाम-सूची)।

सांकृत्य अर्थशास्त्री (५०० ई० पू० ?)—ऋग्वेदी आश्वलायन गृह्यसूत्रमें एक "शूलगव" प्रकरण है, जिसमें शूल (लोहेकी तीली) पर भुने गव्य मांसके धार्मिक कृत्यकी श्रौत-प्रक्रिया लिखी हुई है। उस वक्त गायके चमड़ेको अकसर लोग फेंक देते थे, और इस प्रकार वह बेकार जाता था। इसके विरुद्ध आचार्य शांवव्यने कलम उठाई, और कहा—उस चमड़ेसे जूता आदि उपभोगकी चीजें बनानी चाहियें'।[1] शांवव्य सांकृत्य गोत्रकी एक शाखा है।[2]

सांकृत्य वैयाकरण (४०० ई० पू०)—तैत्तिरीय प्रातिशाख्य[3]में संधि नियमोंके संबंधमें किसी सांकृत्य आचार्यके मत उद्धृत हैं, इनके समय और कालके बारेमें हम निश्चित कुछ नहीं कह सकते। यद्यपि सरयूपारीण-सांकृत्य शुक्लयजु-र्माध्यंदिनीय शाखासे संबंध रखते हैं, किन्तु संधिनियमोंमें कृष्ण-शुक्लका क्या भेद हो सकता है ?

## (ग) मध्यकाल

सांकृत्यगोत्री (१०९३ ई०)—कुश सांकृत्य और श्रामणेर सांकृत्यके बाद एक प्रकारसे काशी-कोसल या आधुनिक सरयूपारियोंके प्रदेशमें हमें करीब डेढ़ सहस्र वर्ष तक किसी सांकृत्यका पता नहीं लगता। प्रथम गहड़वार-नरेश चन्द्रदेव या चन्द्रादित्यदेवने अपनी भुजाकी प्रभुतासे कान्यकुब्जके विशाल राज्यको अर्जित किया,[4] पूर्वीय होनेके कारण वे कन्नौजसे कम काशीका प्रेम नहीं रखते थे, इसीलिए गहड़वार

---

[1] "भोगं चर्मणा कुर्वीतेति शांवव्यः।" (टीकामें—)शांवव्यस्त्वाचार्यः चर्म्मणा भोगमुपानदादि कुर्वीतेति मन्यते। आश्व ४।९।२४

[2] फ़ुटनोट २, पृष्ठ ८

[3] सांकृत्यस्योकारम् (तै० प्रा० ८।२१)। एष्टर्रायः एष्टोरायः (तै० प्रा० १।२।११) वकारस्तु सांकृतस्य (तै० प्रा० १०।२१)। वाय इष्टये वाय-विष्टये (तै० संहिता ३।२।१२)। अनाकारो ह्रस्वं सांकृतस्य (तै० प्रा० १६।१६)। हवींषि=हविंषि (तै० सं० ५।५।१)

[4] "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निजभुजोपार्जित-श्रीकान्यकुब्जाधिपत्य श्रीमच्चन्द्रादित्यदेव" Chandravati Plates of Chandradeve, Epi. Ind. vol. XIV, pp. 192-209

भूपाल कान्यकुब्जेश्वरकी भाँति "काशीग"[1] "काशीराज्ञा" भी कहे जाते थे। काशीको विद्या-केन्द्र बनानेवाले चन्द्रदेवने चन्द्रावतीवाले ताम्रपत्रमे "पचशत" ब्राह्मणोको कठेहली पत्तला दान दिया, जिनमे २२ साकृत्य-गोत्री है—

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. राजपाल | (१४) | ९ गाग | (४२) | १७ नॉटे | (२७९) |
| २. माहव | (१५) | १० योगे | (४३) | १८ नारायण | (२८१) |
| ३ केशव | (१७) | ११ महेश्वर | (४४) | १९ ब्रह्मर्षि | (३००) |
| ४ आल्हण | (२२) | १२ जाने | (६४) | २० देवशर्मा | (३२८) |
| ५ अमृतधर | (२३) | १३ सलखू | (८२) | २१ महेश्वर | (३६४) |
| ६ विठु | (३७) | १४ कडुआइच | (८३) | २२ छोटे | (३८४) |
| ७. साहु | (४०) | १५ गाल्हे | (१६६) | | |
| ८. धरणीधर | (४१) | १६ तीती | (२७८) | | |

यह ताम्रपत्र सवत् ११५० (१०९३ ई०) आश्विन बदी १५ रविवारको लिखा गया था। उस समयतक चतुर्वेदी, त्रिपाठी, द्विवेदी, मिश्र—यही चार पदवियाँ प्रचलित हुई मालूम होती है। यह पदवियाँ विशेष शिक्षित कुछ थोडेसे व्यक्तियोके नामोके साथ लगी है, जिससे मालूम होता है, तब तक उनका अधिक प्रचार नही हुआ था। ऊपर आये २२ साकृत्य गोत्रियोमे किसीके साथ ऐसी पदवी नही लगी है; आल्हण, विठु, गाग, जाने, सलखू, कडुआइच, गाल्हे, तीती, नॉटे, छोटे जैसे सस्कृत-प्राकृत दोनोसे अछूते नाम बतला रहे है, कि इनके परिवारमे विद्या—जो उस वक्त सस्कृत विद्या थी—का बहुत अभाव था।

**चक्रपाणि**[2] (१२११ ई०)—यह मलॉव साकृत्य-वशके बडे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इनके बारेमे बहुत सी चमत्कारिक कथाये प्रसिद्ध है—इनकी धोती आकाशमे सूखती थी आदि। इनके बारेमे ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम उपलब्ध है। इनके बारेमे आगे प्रसगवश कुछ जिक्र किया जायेगा।

---

[1] "काशीराज्ञा" प्राकृत-पैंगल, Asiatic Soci Bengal, p 180; "काशीश जयच्चन्द्र" Indian Historical quarterly 1929, pp. 14-30

[2] चौदहवी सदीके पहलेके इस नामके ग्रन्थकारके नामसे निम्न ग्रंथ मिलते है [Catalogus Catalogorum (Th Aufrecht)]

चक्रपाणि—पद्यावली। चक्रपाणि पडित—कालकौमुदी-चम्पू। चक्रपाणि—ज्योतिर्भास्कर। चक्रपाणि—विजयकल्पलता

## (घ) आधुनिककाल

साकृत्य-गोत्री ब्राह्मण उत्तरीय भारतके प्रायः सभी प्रधान विभागों—सरयूपारीण, कान्यकुब्ज, सारस्वत आदिमे मिलते हैं। कान्यकुब्ज (कन्नौज)के उत्तर-भारतकी राजधानी बननेके समय (ईसवी छठी शताब्दीके उत्तरार्द्ध)से पहिले कान्यकुब्ज ब्राह्मण कान्यकुब्ज (कनौजिया) अहीर, कान्यकुब्ज काँदू, आदि भेद नही हो सकते थे, यह भेद मौखरियोंके नायकत्वमे कान्यकुब्ज-साम्राज्यकी स्थापनाके बाद हुये होंगे। अपने पूर्वीय सीमान्तपर—छपरा, आरामे—सरयूपारीण भी अपनेको कनौजिया कहते है। त्रिपाठी, पाठक पदवियाँ भी कनौजिया और सरवरिया ब्राह्मणोमे कान्यकुब्ज काल (छठी सदीके उत्तरार्द्धसे १२वी सदीके अन्त)मे प्रचलित हुई। बुद्धके समय (ईसा-पूर्व पाँचवी-छठी सदीमे) ब्राह्मण अपने-अपने जनपदोके कारण कोसलक, मागधक, आदि नामोसे विख्यात थे। उस समय ब्राह्मणोके भीतर सहभोज, अन्तर्विवाह-का कोई प्रश्न ही न था, क्यो कि वह तो क्षत्रियो तकसे जायज समझा जाता था।[1] कान्यकुब्ज-कालमे कोसल, काशी, भर्ग (मिर्जापुर जिला), कारूष (शाहाबाद जिला) और मल्ल-शाक्य गणतत्रो (जो कि कोसलकी प्रधानताके अन्तर्भुक्त थे)के ब्राह्मण ही एक होकर पीछे सरयूपारीण ब्राह्मणोके रूपमे हमारे सामने आये। आजके सरयूपारीणोके प्राय सारे ही उद्गम गाँव सरयूके उत्तर और उसमे भी प्राय सभी गोरखपुर जिलेमे है। उस समय सरयू और गंगासे दक्षिण ब्राह्मण नही रह गये थे, यह मानना मुश्किल है। मालूम होता है, गहडवार-कालसे जब सरयूपार वालोकी प्रधानता और पक्तिबद्धता स्थापित हो गई, तभीसे दूसरी जगहके ब्राह्मणोको भी उनके भीतर गोत्रके अनुसार शामिल होना पड़ा।

सरयूपारीणोंमे साकृत्यगोत्रियोका मूलस्थान मलाँव है, कान्यकुब्जोमे साकृत्योंके मूल ग्राम है, कौशिकपुर और पुरैनियाँ—पीछे जाजामऊ (रूपनवंशज तथा घनश्यामवंशज शुक्ल, घनश्यामवंशज मिश्र), गौरा (रूपनवशज शुक्ल), कौशिकपुर (धनावंशज मिश्र और अवस्थी), दिजौली (धनावंशज दूबे), चचेडी (घनश्यामवशज मिश्र), इटावा (घनश्यामवशज मिश्र)—कान्यकुब्जोकी सर्वमान्य परपराके अनुसार ये लोग कान्यकुब्जोमे सरयूपारीण या शाकद्वीपीय ब्राह्मणोसे पीछे

---

[1] दीघनिकाय, अम्बट्ठसुत्त (बुद्धचर्या पृ० २१५, २१६)

आकर शामिल हुये।[1] शाकद्वीपीयसे उनका आना संभव नहीं मालूम होता, क्योंकि युक्तप्रान्त और बिहारमें यह गोत्र उनमें पाया नहीं जाता। सांकृत्योंका आकर कान्य-कुब्जोंके सर्वश्रेष्ठ षट्कुलोंमें सम्मिलित होना बतलाता है, वे मलाँव-वंश जैसे किसी प्रतिष्ठित कुलसे संभवतः मलाँवध्वंस (पंद्रहवीं सदी)के समय आये हों।

---

[1] "सांकृत (? संकृति) जीके पुत्र जीवास्व (?) जी हुये और इस वंशमें अनेक पीढ़ी बाद एक पृथ्वीधर नामके पुरुष प्रसिद्ध हुए। इनको किसी किसीने सरवरिया ब्राह्मण तथा किसी किसीने शाकलद्वीपी ब्राह्मण बतलाया है—और यह बात प्रायः सर्वमान्य है कि यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण न थे और विवाह संबंध द्वारा कान्यकुब्ज जातिके अन्तर्गत हुये, और वह वंश विद्या और सत्कर्मों द्वारा जातिमें प्रतिष्ठित हुये(।) पृथ्वीधरका निवास-स्थान कुरहर ग्राममें था और इनको कौशिकपुरके राजाने बुलाया। और अवस्थ यज्ञ किया और तब पृथ्वीधर जी कौशिकपुरके अवस्थी प्रसिद्ध हुये। पृथ्वीधरके दो पुत्र महीधर, धरणीधर जिनमेंसे महीधर कौशिकपुरके शुक्ल तथा धरणीधर (त्रिगुणायत) अवस्थी कौशिकपुरके कहाये। महीधरके पुत्र नाभू जी हुये। पृथ्वीधरने अपने पौत्रको मनीराम वाजपेयीसे शास्त्र पढ़वाया। तब मनीराम वाजपेयीने इनको त्रिगुणायतकी पदवी दी और पृथ्वीधर अवस्थी त्रिगुणायत कौशिकी-वाले कहलाये। नाभूजी विद्या प्राप्तकर व्याकरण व न्यायशास्त्रमें बड़े पारगत हुये और वैसे ही सुन्दर गौरवर्ण व सुशील भी थे, और उन पर मनीराम जीका बड़ा प्रेम था। इसी भाँति मनीरामजीकी कन्या भुवनेश्वरी नाम्नी भी परमसुन्दरी व पंडिता थी, और उसके योग्य वर खोजनेमें मनीरामजी नितान्त असमर्थ हुये उनकी स्त्रीका अनुरोध था कि भावी जामातृ नाभूकी भाँति सर्वगुणालंकृत होना चाहिये। निदान मनीराम जीने अपनी कन्याका विवाह नाभूजीके साथ कर दिया और इनको शुक्ल उपाधि देकर पुरैनियाग्राम में अपने समीप ही बसा दिया। और इस भाँति नाभूकी सन्तान शुक्ल नभेल पुरैनिया प्रसिद्ध हुये। किसी किसीका मत है कि मनीरामजीकी कन्याका नाम पूर्णिमा था और इस भाँति नाभू और पूर्णिमाकी सन्तान नभेल पुरैनिया विख्यात है।"

—(कान्यकुब्जभास्कर, हजारीलाल त्रिपाठी कृत पृ० ७८-९)

पंडित देवीदत्त शुक्ल द्वारा प्राप्त सांकृत्योंके वंशवृक्षमें नाभूजीको पृथ्वीधरका पुत्र लिखा गया है, उसके अनुसार पुराना भाग इस प्रकार है—
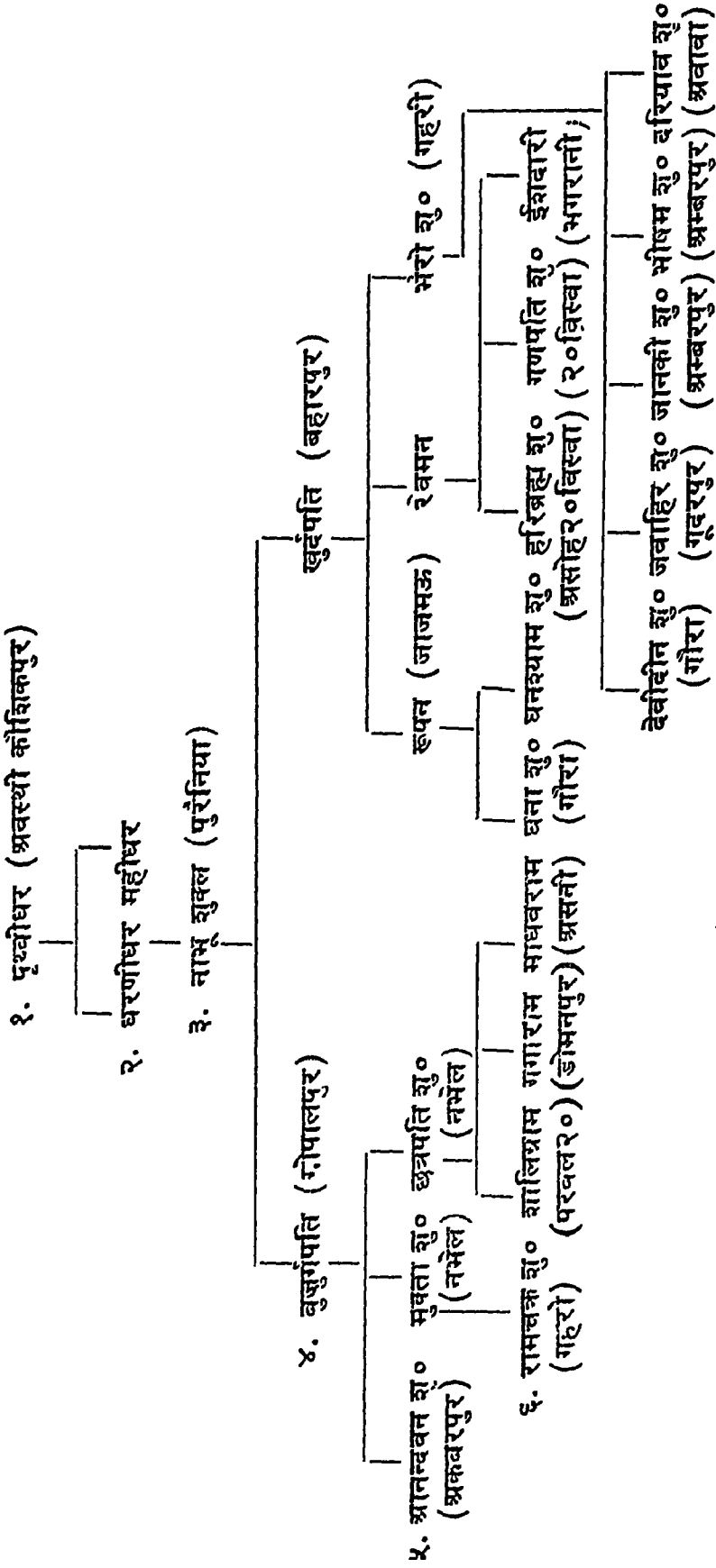
आजसे एक पीढ़ी पहिले तक पृथ्वीधरकी पन्द्रहसे सत्रह पीढ़ियाँ बीती हैं (अहिरुद्र १५७५ ई०के पूर्व शायद उजड़े मलाँवसे भागे हों)—
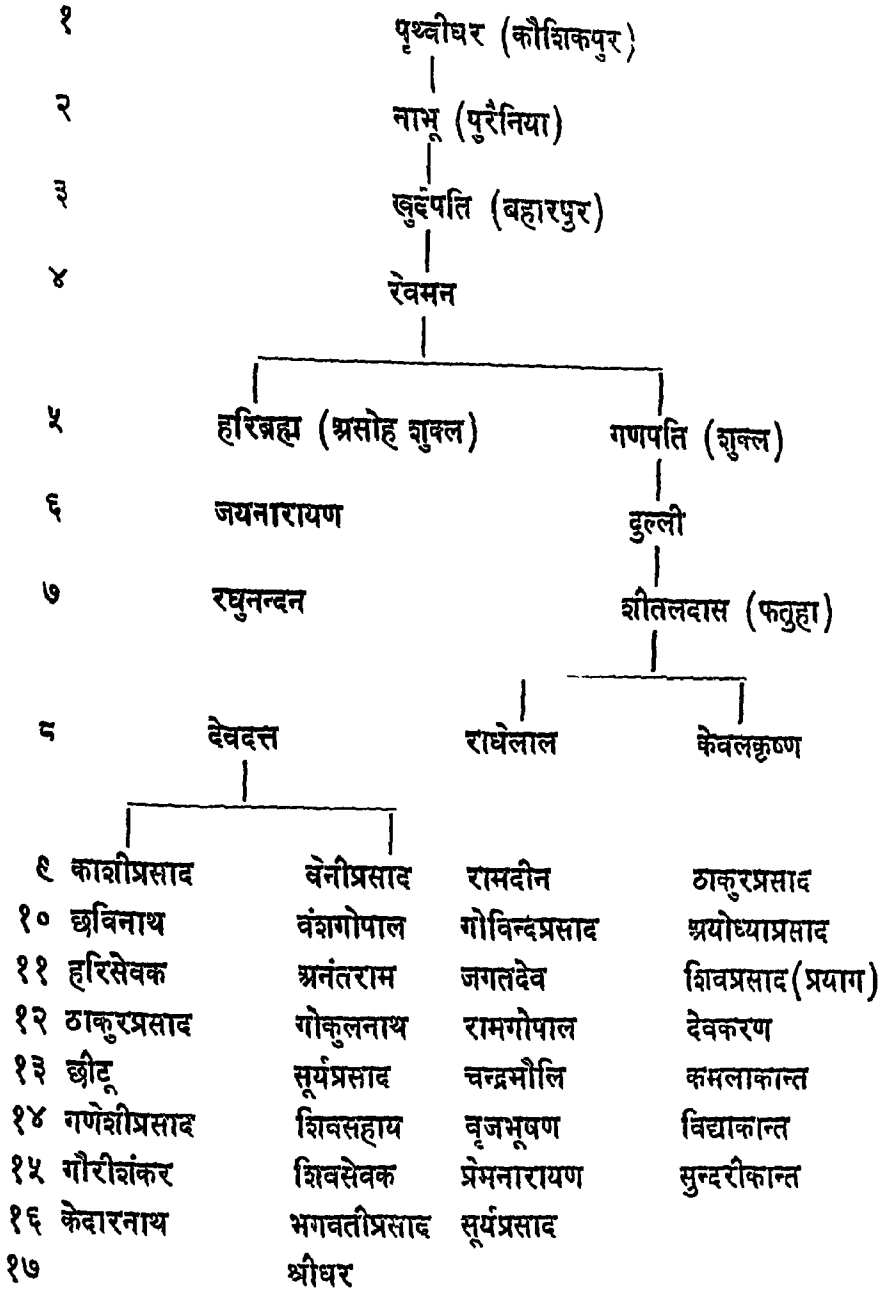
औसत १६ पीढ़ी लेनेपर पृथ्वीधरका समय होता है १७×२६=४४२ वर्ष सन् १४९७ ईसवी अर्थात् अहिरुद्र १५७५ से पहिले।

दूसरे ब्राह्मणोंमें भी निम्न प्रकारसे सांकृत्य गोत्र पाया जाता है। (जाति-भास्कर, पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र; श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई संवत् १९८३, पृष्ठ ७६, ८९, ९५, ९८, १०९)—

चक्रपाणि-वंशज राजेन्द्रदत्तकी १२ पीढ़ियोका हमे नाम भर मालूम है। राजमणिदत्तके[1] दो पुत्रोमें अम्बिकादत्त तो पहाडी (जिला इलाहाबाद)मे रहे।

राजेन्द्रदत्तके समय मलाँव एक समृद्ध गाँव था। वह सम्राट् अकबरके शान्त और न्यायपूर्ण शासनका जमाना था। मलाँवके पाडे लोगोका रोबदाब मलाँवसे बाहर आसपासके प्रदेश तक भी फैला हुआ था, बहुत सभव है मलाँवके अतिरिक्त कुछ और गाँव भी उनके आधीन रहे हो। विदथी, सङ्कृति, रन्तिदेवका "क्षत्रोपेत द्विजातित्व" अब भी वहाँसे लुप्त नही हुआ था। मलाँवके एक कूयेके बारेमे ख्याति थी, कि उसका पानी पीनेवाली माता बध्यात्वसे ही मुक्त नही हो जाती, बल्कि वह मल्ल (मल्लग्राम=मलगाँव=मल्लाँव)पुत्र प्रसव करती है। राप्तीकी दाहिनी ओर गोरखपुरसे नातिदूर डोमिनगढ[2] गाँव अब भी मौजूद है। उस समय वह एक डोमकटार राजपूत

---

पृष्ठ ७६ "मेडतवाल (गौड़)

| | |
|---|---|
| खलसिया | तिवाड़ी |
| सिहोरिया | पंड्या |
| हेरसदा | ,, |
| धामणोदरिया | ,, |
| नवमोस | ,, |
| बलायता | ,, |
| वणोयला | ,, |
| वेटला | ,, |
| मेहलाण | ,, |
| नलतडा कठगोला | ,, |

पृष्ठ ८६ (महाराष्ट्र)

गायधानी—३ प्रवर

पृष्ठ ६५ (औदीच्य-सहस्र गुर्जर टोल)

ऋगुण—जोशी ३ प्रवर

पृष्ठ १०६ (कंडोल ब्राह्मण, गुजरात ?)

सांकृत

मेडतवालोमें सांकृत्य गोत्रके साथ बहुतोंकी पदवी भी पंड्या है, जो कि पांडेसे मिलती-जुलती है।

[1] पंडित रामनाथ पांडे आचार्य, भ्योरा, जिला बस्ती (रघुनाथ प्रिंटिंग प्रेस, बलरामपुर) द्वारा संपादित वंशवृक्षमें तारादत्तको चन्द्रमौलिका पुत्र लिखा है, अम्बिका दत्तको गूदरनाथका पुत्र। हमने यहाँ नाउर-देउर (श्री ज्वाला प्रसाद पांडे)के वंशवृक्षको मूलस्थानीय होनेसे प्रमाण माना है।

[2] "Tharu....Mansen was overthrown in the tenth century by the Domkatars. These people had their chief stronghold at Domingarh near Gorakhpur." (Gorakhpur Gazetteer, 1909 ed. p. 259)

राजाकी राजधानी थी। तत्कालीन राजाकी रानीको कोई सन्तान न थी। रानी बनारस जा रही थी। बनारसका पथ अब भी गोरखपुर-बडहलगंज दुहरीकी पक्की सडकके रूपमें मौजूद है। शामको रानीका डेरा मलाँव (उक्त पक्की सडकसे एक मील परे)मे पडा। मलाँवके वीर-प्रसवक कूयेका पता रानीको लगा।[1] रानीने पानी लानेके लिए आदमी भेजा। पानी पाना तो दूर रहा उल्टा रानीको बहुत अपमानित होकर मलाँवसे जाना पडा। रानी बनारससे डोमिनगढ लौटी, और उन्होंने एककी जगह नौ लगाकर अपने अपमानकी दुःखभरी गाथा राजाको कह सुनाई। राजा क्रोधसे जल उठा। उसने पानी लानेके लिये आदमी भेजे, न देने पर जबर्दस्ती लानेके लिये सैनिक भेजे, लेकिन मलाँवकी तलवारमे अभी जंग नही लगा था। राजाके सैनिकोको करारी हार खानी पडी। राजाने कई बार कोशिश की, किन्तु उसे सफलता न हुई।

राजाको पता लगा कि भादौ शुक्ला (अनंत) चतुर्दशीको मलाँवके पाडे लोगोके यहाँ शस्त्रपूजा होती है, उस दिन वे लोग हथियार नही धारण करते, और व्रत रखते हैं। राजाने इसके लिए पूरी तैयारी कर ली। आजकी तरह उस समय भी प्राचीन अचिरवती (राप्ती) मलाँवके पाससे गुजरती थी।[2] डोमिनगढके सैनिक नावोमे आकर पहिले हीसे कुछ दूरपर छिपे बैठे थे। अनन्तव्रत रखे मलाँवके पाडे, तरुण-वृद्ध सारे अचिरवती गगापर स्नान करने गये। उनके पास हथियारका नाम न था, न उन्हे उस दिन शत्रुसे कोई भय था। राजाके सैनिक एक-ब-एक उन निहत्थोके ऊपर टूट पडे। उनमेंसे एकने भी प्राण बचानेके लिए पीठ न दिखाई, और वहीं एक एक करके कट गये। राप्तीको साकृत्योके खूनसे लाल कर सैनिक गाँवमे पहुँचे, सभी बाल-वृद्ध-तरुण पुरुषोको तलवारके घाट उतारा,[3] और मलाँवके कूओको उनकी लाशोसे पाट दिया। तभीसे मलाँवके साकृत्योके लिए अनन्तचतुर्दशी पर्वका दिन न रहा, लोग आज भी न अनन्त व्रत करते है, न 'अनन्त' बाँधते है। (मै कलकत्ताकी पहिली यात्रामे चाँदाकी अनत पहिन आया था, जिसे घर पहुँचते ही उतारना पडा।)

---

[1] दूसरी जनश्रुतिके अनुसार राजाने पहिले उस कुयेंका जल माँगा, किंतु बडे तिरस्कारके साथ इन्कार कर दिया गया। [2] वर्त्तमान मलाँवके तीन ध्वसावशेषोमेंसे दो राप्तीके कारण ही नष्ट हुये मालूम होते है। [3] डोमिनगढके राजा और कूयेंके पानीकी कथा, कोसलराज प्रसेनजितके प्रधान सेनापति बन्धुल-मल—जो स्वयं कुशीनगरका मल्ल क्षत्रिय था—के अपनी स्त्रीके दोहदको पूरा

यहाँ एक बात और ध्यान देनेकी है। डोमिनगढ मलाँवसे छै सात कोससे ज्यादा नही है, और उस समय डोमिनगढ़-राज मलाँव वालोका पडोसी था। सभवत. इस सहारके पीछे अधिकारोंकी छीना-झपटी काम कर रही थी।

अहिरुद्र पाडे (१५७५ ई०)—दूरके अपने (भरद्वाज-)वंशज परीक्षित्‌की भाँति अहिरुद्र पाडे माताके गर्भमें थे, जब कि मलाँवका भीषण नर-सहार हुआ। राजेन्द्रदत्तकी पत्नी उस समय अपने पीहर प्रतापगढ जिलेमे थी। दूसरी परपरा बतलाती है, कि उन्होने हत्यारोके हाथसे पाडेवशके अकुरको बचानेके लिए एक धोबीके घरमे शरण ली, और इसीलिए अहिरुद्रकी सन्तान धोबियापट्टी कहलाई, इस बातको बदनामीके डरसे छिपाया जाता है। किन्तु यह भ्रम सरयूपारीणोके धोबियापट्टी' विभाग (पट्टी)के नामके कारण मालूम होता है, जिसमे कि मलाँव पाडेके अतिरिक्त मणिकठके तिवारी और वृहद्‌ग्राम (सोहगौरा)के दूबे भी शामिल है।

---

करनेके लिए वैशालीके गणतंत्री लिच्छवियोंकी अभिषेक-पुष्करिणीमें जबर्दस्ती नहलानेकी कथासे सादृश्य रखती है। (धम्मद-अट्ठकथा ४।३ देखो मेरी 'बुद्ध-चर्या' पृष्ठ ४७३-७५) और मलाँव-वंशका यह हत्याकाण्ड कोसलराज विदूढब द्वारा शाक्यवंशके संहार सा मालूम होता है (देखो वहीं पृष्ठ ४७६)

' सरयूपारीण ब्राह्मणोंमें सोलह या ३+१३ कुल सबसे अधिक प्रतिष्ठित माने जाते है, जो निम्नप्रकार पाँच पट्टियोमें बाँटे गये है—

"तिन्नार्थेई और निराशौ। सायन पट्टी चरम प्रकाशो॥
इन चारोके अरा बनाय। धोबिया-पट्टी परिधि लगाय॥
सत्य नाहमें करें संयोग। पंडित कहें पंक्तिरथ सोय॥"

—"सर्व्वार्थ-पंक्ति-ब्राह्मण-वैभव" खंड १ पृष्ठ ड (पं० नन्द-कुमार शर्मा शुक्ल पिछौरा, कुमारप्रेस; गोरखपुर सन् १९२८ ई०)

आगेके पदोमें इन पट्टियोंके इस प्रकार अन्तर्विभाग किये गये है—

(१) तिन्नार्थेई गौ-ग-शा। (२) पा-खो-पांडे निराशा॥
(३) तीन चकारे चमरू। (४) सायन पट्टी प-प-सा॥
(५) पाँच पवर्ग धोबिया॥ —(वहीं, पृष्ठ ढ)

विवरण इस प्रकार है—

| पट्टी | मूलग्राम | पदवी | गोत्र |
|---|---|---|---|
| १. तिन्नाथेई | (१) भेड़ी | *शुक्ल | गर्ग (गार्ग्य) |
| | (२) बइसी | *मिश्र | गौतम |
| | (३) गोरखपुर (गोरखी) | *त्रिपाठी (तिवारी) | शाण्डिल्य (श्रीमुख) |
| २. निराशा | (४) सोनौरा | पाठक | भारद्वाज |
| | (५) खोरी | उपाध्याय | " |
| | (६) त्रिफला | *पांडेय (पांडे) | काश्यप |
| ३. चरम (चमरु) | (७) नवपुरा | चतुर्वेदी (चौबे) | " |
| | (८) नागचौरी | *पाडेय (पाडे) | वत्स (वात्स्य) |
| | (९) इटारि | *पांडेय (पांडे) | सावर्ण्य |
| ४. सायन | (१०) परवा | द्विवेदी (दूबे) | काश्यप |
| | (११) पडरहा | मिश्र | पराशर |
| | (१२) समदारि | द्विवेदी (दूबे) | वत्स (वात्स्य) |
| ५. धोबिया | (१३) मलॉव | *पांडेय (पांडे) | साकृत्य (साकृत्यायन) |
| | (१४) मणिकठ | त्रिपाठी (तिवारी) | शाण्डिल्य |
| | (१५) वृहदग्राम (सोहगौरा) | *द्विवेदी (दूबे) | भारद्वाज |
| नाभि | (१६) पिछौरा | शुक्ल (सत्य) | कृष्णात्रेय |

*चिन्हांकित वशोंमें अभी "पंदित वाले कुल हैं। इन सोलह कुलो (जिनमें गर्ग, गोतम, शण्डिल, भरद्वाज, कश्यप", वत्स, सवर्ण, पराशर, संकृति और कृष्ण-अत्रि दस गोत्र, तथा शुक्ल, मिश्र, तिवारी, पाठक, उपाध्याय, पांडे, चौवे, और दूबे आठ पदवियाँ हैं)मेंसे दस गोत्रोंको प्रधान तथा कौडीरामके पाडे (कौंडिल्य) एवं पांडेपारके पांडे (अगस्त्य)को लेकर बारह गोत्रोको महाराज जयचन्द्रने "पंक्ति" में परिगणित किया था (वही, पृ० २१७)। कौंडिन्य और अगस्त्य गोत्रियोंको

---

सोलह ऋत्विजोंमें नहीं रखा था, इसलिए उन्हें आधा-आधा गिना जाता है; इस प्रकार कुलोंकी संख्या १७ (१८) होती है। महाराज जयचन्द्रके बाद भी लोग पंक्ति बने थे, सिंहनजोरीके तिवारी (भार्गव), हरिनाके तिवारी (वाशिष्ठ) उपमन्यु-गोत्री ओझा, पिण्डीके तिवारी (शाण्डिल्य), पयासीके मिश्र (वात्स्य), इँडिया पांडे (गार्ग्य), मलैंया पांडे (भारद्वाज) और राढी मिश्र (भारद्वाज) पीछेसे पंक्तिमें मिलाये गये; इनमेंसे पयासी-मिश्र (वाशिष्ठ) और भार्गव तिवारीमें अभी भी "पंक्ति" है।

पिंडीके तिवारियोंके "पंक्ति"में लिये जानेके बारेमें एक कथा है—गौतमगोत्री दिनमणिके कोई वंशज गंगास्नान करने आये थे। वे वहाँ भीषण रोगसे ग्रस्त हो गये। पिंडीके कसेरू तिवारीकी स्त्री सुखाने उनकी बड़ी सेवा की। पंक्ति ब्राह्मणने पीछे कृतज्ञता प्रकट करते हुए सुखाकी सन्तानको सुखापतिके नामसे "पंक्ति"में ले लिया (वही, पृ० १९६, १९७)।

राढ़ी-मिश्रके सरयूपारीण और पंक्तिबद्ध बननेके बारेमें कथा है—मलाँव वंशी आचार्य माधव विजयनगर(?)के गहड़वार कृष्णदेव(?)के गुरु थे। उनके यहाँ एक वंगीय राढ़ी ब्राह्मण श्री हरिहर मिश्र उच्च कर्मचारी थे। कृष्णदेवको परास्त करके अलाउद्दीन खिल्जी(?)ने उनके राज्यपर अधिकार पाया। हरिहर मिश्र गोरखपुरके चकलेदार (जिलाके प्रधान अधिकारी) बनाये गये। आचार्य माधवकी सहायतासे हरिहर मिश्र सरयूपारीणोंमें ले लिये गये। माधवकी प्रेरणासे सब ब्राह्मणोंने हरिहर मिश्रके साथ सहभोज किया, किन्तु सिंहनजोरीके भार्गव तिवारियोंने इन्कार कर दिया, जिसपर कहावत मशहूर हुई—"बड़ बड़ कौर मचइया जेवें भार्गव रहें उपासी"। पीछेसे पंक्तिमें आये कुलोंके बारेमें कहावत है—

"तीन पाँति भो पांडे हीन। सिंह करैली-पयसो-चीन्ह ॥
तीन पाँति गंगापारीण। हरिण-मचैयाँ-तिवनी कीन्ह।"

(वही पृ० १८५, १८८)

सबको मिलानेपर निम्न कुल भी पंक्ति-भुक्त समझे गये—

| | मूलग्राम | पदवी | गोत्र |
|---|---|---|---|
| (१७) | कोडीराम | पाडेय | कौंडिन्य |
| (१८) | पांडेपार | पांडेय-त्रिपाठी | अगस्त्य |
| (१९) | सिंहनजोरी | त्रिवेदी (तिवारी) | भार्गव* |
| (२०) | हरिना (हरनहा) | त्रिवेदी (तिवारी) | वाशिष्ट |
| (२१) | करैली | ओझा | उपमन्यु |
| (२२) | पयासी | मिश्र* | वत्स |
| (२३) | पिंडी | त्रिपाठी* | शाण्डिल्य (गर्दभी) |
| (२४) | मचैयाँ | पांडेय | भारद्वाज |
| (२५) | इटिया | पांडेय | गार्ग्य |
| (२६) | राढ़ी | मिश्र | काश्यप |

ये २६ कुल या राढ़ीको अलग कर, तथा कौंडिन्य (१७) और अगस्त्य (१८) को आधा-आधा गिननेपर २४ कुल "पंक्ति" (मृष्ट) कहलाये थे, उनके अतिरिक्त बाकी सरयूपारीण कुल "जाति" (मार्जनीय) कहलाये। ऊपरके १२ गोत्रोंके अतिरिक्त निम्न गोत्र भी सरयूपारीण ब्राह्मणोंमें मिलते है—

| मूलग्राम | पदवी | गोत्र |
|---|---|---|
| धर्मपुरा | मिश्र | कौशिक (घृत-) |
| धमेरि | त्रिपाठी | वरतन्तु |
| तिलौरा | द्विवेदी | काण्व |
| पिपरासी | चतुर्वेदी | कात्यायन |
| छपवा | द्विवेदी | मौनस |
| | पांडेय | माण्डव्य |
| | त्रिपाठी | वन्धुल |
| कन्तित | चतुर्वेदी | अत्रि |

प्रतापगढ़ जिलेमें अपने नानाके घर अहिरुद्रका जन्म हुआ। वे वहीं पले और बढ़े। एक बार डोमिनगढ़के राजाकी रानी (मालूम नहीं वही या दूसरी) आसन्न-प्रसवा थीं। कई दिनोंसे मर्मान्तिक पीड़ासे पीड़ित थी, किन्तु प्रसव नहीं हो रहा था। जोतिसियोंने बतलाया—बिना मलाँव-वंशके किसी व्यक्तिको प्रसन्न किये क्षेम नहीं होगा, यह ब्रह्मदोष है। बहुत परिश्रमपूर्वक खोजनेके बाद अहिरुद्र पाँडेका पता लगा। राजाने बड़ी प्रार्थना और सत्कारपूर्वक उन्हें बुलाया, भोजन कराया और शापानुग्रहके बदले मलाँवके साथ नाउर-देउर तथा डोमवार गावोंको प्रदान किया।

अहिरुद्र पांडे अपने पूर्वजोंके गाँवमें पहुँचे। मकान ढह गये थे। उनपर जंगल जम आया था। वहाँ कोई आदमी न था, जो बतलाता कि उनके वंश-ग्रामकी सीमा क्या थी। वहीं डेरा डालकर उन्होंने प्रार्थना की—यदि मेरे कुलका कोई देवता हो, तो वह सीमा-निर्धारित करनेमें मेरी मदद करे। परम्परा आगे कहती है—उसी वक्त आजकल सुअरहाके नामसे प्रसिद्ध स्थानसे एक विकराल सुअर निकला और उसने घूमकर उस सीमाको प्रकट कर दिया। यही सुअर मलाँव-वंशका कुलदेव मलकबीर' (मल्लिकवीर) है।

---

महाराज चन्द्रदेवके उपरोक्त ताम्रपत्रमें निम्न गोत्र और मिलते हैं, जिन्हें सरयूपारीणोंमें होना चाहिये—कपिष्ठल, शार्कर, शार्कराक्ष, सत्य, शौनक, जीवन्त्यायन, धौम्य, सौश्रवस, कुत्स, गालव, दक्ष, जातूकर्ण्य, गौण्य, पिप्पलाद, मौन्य, यास्क, हारीत, मौद्गल्य, दर्भ (? दाल्भ्य) (E. Ind. Vol. XIV. PP 192-209)। जातूकर्ण्य, विष्णुवर्धन, मुद्गल, मौनस, शौनकेतु (?), यास्क, दाल्भ्य, बाभ्रव्य गोत्र कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंमें मिलते हैं। (कान्यकुब्ज भास्कर पृ० १६)

सरयूपारमें अब भी १६ उच्च कुलोंकी पाँच पट्टियोंका पंक्तिरथ अंकित कर पिछौरा (चद्दर) दान करनेका रवाज है। (सर्वार्य्य पंक्ति ब्राह्मण वैभव, पृष्ठ, ८, ९)। (पंक्तिरथ के लिये देखिये चित्र २)—

' श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन बिना मीठेकी खीर और नमकीन कच्ची रसोईसे मलकबीरकी पूजा होती है। उस दिन ब्राह्मण-भोजन गायके घीमें पकी पूड़ीसे कराया जाता है। एक और भी कुलदेव-पूजा विशेष महत्त्वकी है। प्रत्येक पुत्र-प्रसव, यज्ञोपवीत और ब्याहके लिये मलकबीरको एक शूकर-शावक (सायन या छौना)

अहिरुद्र पाडेके जन्म और मलाँवके हत्याकाण्डके समयके जाननेके लिये, तबसे अब तक पीढियोंको छोडकर और दूसरा साधन नही है। यहाँ हम ऐसे छ उदाहरण दे रहे हैं—

---

चढ़ाना पड़ता है। यह उसी साल चढ़ाया जाता है, जिस साल घरमें कोई व्यक्ति मरा न हो; मरनेका मतलब यह नहीं कि उस सालकी पूजासे छुट्टी मिल गई। बलि गिनकर और विषम-संख्या (१, ३, ५, ७)में चढ़ानी पडती है। सन्तानके अनिष्टके डरके मारे मलाँवके पक्के "वैष्णव" परिवार भी इस बलिको रोकनेकी हिम्मत नहीं करते। नाउरदेउर वालोंने चन्द साल हुये सुअर चढाना बन्द कर दिया, अब वह उसकी जगह सुपाड़ी या पेठा काटते हैं। कनैलामें यह कुलदेव पूजा कैसे होती है, इसे मलाँवकी बातका कुछ भी ज्ञान न रखते मेरे अनुज रामधारीने अपने पत्र (नवंबर १९३९)में लिखा है—

"यहाँ नरसिंह तथा महावीर कुलदेव हैं। नरसिंहको पटऊ-पटका (खद्दरका कपड़ा) ढूँढी साठीकी (षष्ठिका चावलका लड्डू) और हनूमानजीको रोट . । और गोरियाडीहकी पूजा होती है, छवना (सुअरका बच्चा) भी चढ़ाते हैं।" निश्चय ही कनैला (मेरे पितृग्राम)की इस पूजामें मलकवीरकी पूजा मौजूद है। कनैला वाले भी अनन्तके व्रत और धागेका उपयोग नही करते।

मलकवीरकी पूजा, बड़े परिवारोंमें छूतकके कारण कभी-कभी कई सालोकी इकट्ठी पड़ती है। पूजाके दिनसे कुछ रोज पहिले चावलका कोहवर (दीवारपर चित्रण) लिखा जाता है, जिसमें "जिवता-जिवती" (अनेक मुडवाले स्त्री-पुरुष) का चित्र होता है। बलि श्रावण शुक्ला सप्तमीके बाद वाले मंगलको होती है। एक-एक बलिके लिये दो-दो जौकी पूरियाँ (पूडी नहीं, दाल वाले परोठे) बनाकर देहलीके बाहर जोडे-जोड़े सजाई जाती हैं। वही छौनेको काट दिया जाता है। खूनको दरवाजेकी बगलमे धरतीमें गाड़ दिया जाता है। इस प्रकार सुअर मलाँवके सांकृत्य वंशजोंका टोटम् और बलि पदार्थ दोनो है।

मलाँव और नाउरदेउरमें एक और भी प्रथा है, यज्ञोपवीत होनेसे पहिले दिन बालकको कुर्मीके घर कच्ची रसोई खानी पडती है।

१ चक्रपाणि

२ सिद्धेश्वर

३ मातृदत्त

४ रमाकान्त

५ चन्द्रमौलि

६ राजमणि

७ गूदरनाथ — अम्बिकादत्त[1] (पहाडी)

८ प्रभुनाथ

९ मखसूदन

१० भालचन्द्र

११ गजेन्द्र — दामोदर

१२ राजेन्द्र — शिवेन्द्र[2]

१३ अहिरुद्र

१४ (२) गोल्हई (ज्येष्ठ) — अपक्ति-कन्या=गयाधर=पक्ति-कन्या,

१५ (३) श्रीपति — नरेन्द्र — प्राण (चकरपानपुर) — प्रभाकर (नाउर-देउर)

१६ (४) चतुर्भुज — वसन्त — सूगा (शुक), — वासुदेव

---
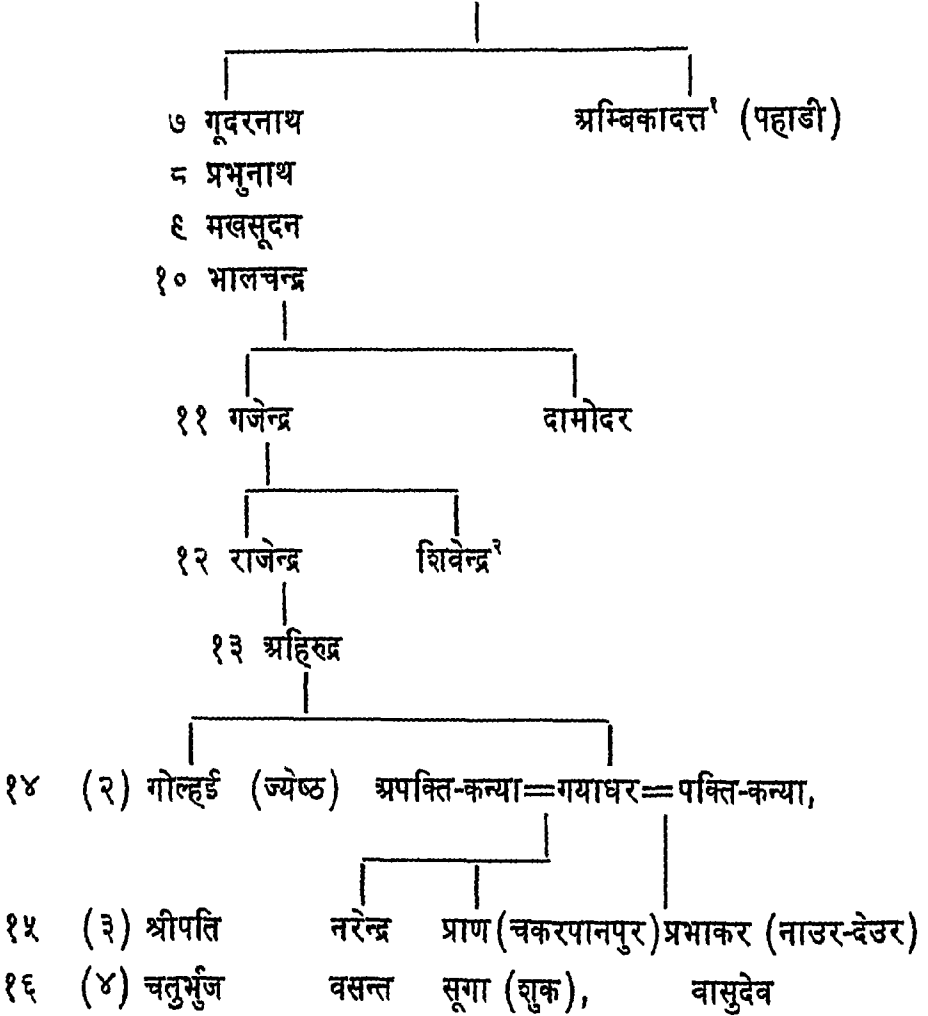
[1] पंडित रामनाथ पांडे (भ्योरा) द्वारा प्रकाशित वंशवृक्षमें यहाँ तारादत्त और अम्बिकादत्तको गूदरनाथका पुत्र लिखा है, हमने यहाँ नाउर-देउर (श्री ज्वालाप्रसाद पांडे) के वंशवृक्षको प्रमाण माना है।

[2] सुनेन्द्र—पंडित रामनाथके वंशवृक्षमें।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १७ | (५) जयराम | | हरिराम | भोजू | | हेमानद |
| १८ | (६) जीवनराम | | विहारी | इजहार | | शिवदास |
| १९ | (७) यज्ञमणि | | कुलपति | इच्छा (कनैला) | | रघुनाथ |
| २० | (८) लोचनराम | रघुनाथ | घनश्याम | रामहित | गौरीदत्त | विष्णुदत्त |
| २१ | (९) हरिलाल | शिवनाथ | देवीदत्त | रामसहाय | गगादत्त | गुरुप्रसाद |
| २२ | (१०) विश्वेश्वर | हितराम | रामप्रसाद | गोपाल | जयगोपाल | यदुनाथ |
| २३ | (११) जगतराम | अयोध्याप्रसाद | हर्षलाल | जानकी | कुमारदत्त | चन्द्रभूषण |
| २४ | (१२) घासीराम | रामसेवक | नन्द | गोबर्धन | मुजेश्वर प्रसाद | शूरसेनप (सुरेश) (७ वर्ष) |
| २५ | (१३) रमणराम | वलिराम | सूर्यनारायण* | राहुल | वलभद्र | |
| २६ | (१४) दूधनाथ | सत्यनारायण | शिवपूजन | इगोर | रमापति (७ वर्ष) | |
| २७ | (१५) विश्वेश्वर | जगदीशनारायण | शैलेन्द्र | | | |
| २८ | (१६) मुना | शशविन्दु (वालक) | शरत्कुमार (५ वर्ष) | | | |
| २९ | (१७) रूपनारायण | | | | | |
| ३० | (१८) रामचन्द्र | | | | | |

---

[1] पडित सूर्यनारायणके तीन पुत्र हुये मधुसूदन, शिवपूजन, दीपनारायण। श्री दीपनारायणके दो तरुण पुत्र हैं—विनेशकुमार और नगेन्द्रकुमार।

चक्रपाणिसे आजतक अधिकसे अधिक ३० और कमसे कम २४ पीढ़ियाँ बीती हैं। संक्रान्तिके कालके बारेमें लिखते हुये हमने प्रति पीढ़ी २० साल समय रखा था, जो राजवंशोंके संबंधमें पुत्रके अतिरिक्त दूसरेके भी उत्तराधिकारी होनेसे कुछ पीढ़ियोंका बढ़ना संभव होनेके कारण ठीक है। किन्तु चक्रपाणिके बारेमें पीढ़ियाँ निश्चित हैं। स्वयं मलाँवकी एक पाँच पीढ़ीका काल हमें मालूम है। अवधके नवाब शुजाउद्दौलाके समय गोरखपुरके चकलेदार श्री अयोध्याप्रसाद पांडेकी जन्मकुंडली उनके प्रप्रपौत्र श्री जगदीशनारायणके यहाँ है। उसमें उनका जन्मदिन "विक्रमादित्यस्य राज्याद् गतसमाः ॥१८११... शालिवाहनस्य भूपतेर्गता. शकाब्दाः ॥१६७६.... वैशाखमासे शुक्लपक्षैकादश्यां भृगुवासरे घटीपले ३॥१८ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रे घट्यादिः ॥२६॥३०" लिखा है। उनके प्रप्रपौत्र श्री जगदीशनारायणका जन्म सवत् १९५०का है। अर्थात्

१. अयोध्याप्रसाद जन्म संवत् १८११ (१७५४ ई०)
२. रामसेवक
३. बलिरामसेवक
४. सत्यनारायण सेवक
५. जगदीशनारायणसेवक १९५० (१८९३)

इस प्रकार पाँच पीढ़ियोंमें १३९ वर्ष हुये। अर्थात् प्रत्येक पीढ़ीमें २७.८ वर्ष। डाक्टर सीतानाथ प्रधानने अपने ग्रंथमें[1] भारतीय वंशोंका अलग-अलग औसत २६से २९.८ वर्ष तक दिया है। इनमें भट्टनारायणसे राम समाहार तककी २० पीढ़ियोंके लिये ५२० वर्ष हैं, अर्थात् प्रति पीढ़ी २६ वर्ष। ऊपर दिये पाँच उदाहरणोंमें शूरसेनप (७ वर्ष १९३९)से अहिरकतक १२ पीढ़ियाँ हैं, रामचन्द्रसे वहाँ तक १८ पीढ़ियाँ होती हैं। इस प्रकार—

| | | | |
|---|---|---|---|
| इच्छा पांडे (कनैला) इधरसे | ८×२६=२०८ | साल | १७३१ ई० |
| प्राग पांडे (चकरपानपुर) इधरसे | १२×२६=३१२ | साल | १६२७ ई० |
| प्रभाकर पांडे (लाउर-खेउर) सूरजसे | १२×२६=३१२ | साल | १६२७ ई० |
| अहिरक पांडे (मलाँव) | १४×२६=३६४ | साल | १५७५ ई० |
| चक्रपाणि (मलाँव) शरत्कुमारसे | २८×२६=७२८ | साल | १२११ ई० |

चक्रपाणि गहड़वार राजवंशके अंतिम समयमें मौजूद थे। संभव है वह गहड़वार राजवंश द्वारा सरयूपारीणोंके पंक्तिबद्ध किये जाते समय मलाँवके प्रतिनिधि हों (यदि यह पंक्तिबंधन जनश्रुतिके अनुसार महाराज जयचंदकी[2] सरजतामें हुआ) और

---

[1] Chronology of Ancient India pp. 170-74

[2] चन्द्रदेवके महादानसे पंक्तिबद्धता १०९३ ई०के आसपासकी हो सकती है।

शायद इसीलिए आज उनकी इतनी ख्याति सुननेमे आती है।

इस प्रकार मलाँव-हत्याकाण्ड १५७५ ई०के आसपास हुआ प्रतीत होता है।

**अहिरुद्रकी सन्तान—**

**गोल्हई पांडे** (ज्येष्ठ-पुत्र १६०० ई०)—अहिरुद्रके दो पुत्रो गोल्हई और गयाधरमे गोल्हई ज्येष्ठ थे। पिताकी भाँति यह भी अधिक शिक्षित नही मालूम देते। उनकी सन्तानने आगे भी चलकर धन और विद्यामे अधिक उन्नति नही की।

**गयाधर पांडे**—यह छोटे पुत्र थे। पक्ति-नियमानुसार गयाधरका व्याह पक्ति-कन्यासे हुआ था, जिससे इनके एक पुत्र प्रभाकर हुये। यह नाम बतलाता है कि गयाधर अपने पितासे कुछ अधिक शिक्षित और सस्कृत थे। एकबार वह जलोदर रोगसे ग्रस्त हुये। बहुत दवादारू की गई किन्तु कोई फायदा नही हुआ। मीठावेलके कौशिक दूबे वैद्यने कहा कि यदि आप मेरी कन्यासे व्याह कर ले, तो मै आपके रोगको अच्छा कर दूँगा। "पक्ति" टूटनेके डरसे पहिले गयाधरने इन्कार कर दिया। रोग असाध्य होते देख उन्होने काशी जाना तै किया, किन्तु अभी काशीमे मरकर मुक्ति प्राप्त करनेसे अधिक उन्हे इसी दुनियॉमे जीनेकी लालसा थी। फलत मलाँवसे निकलकर वह काशीकी ओर न जा मीठाबेल पहुँचे। वैद्य पक्ति दामाद पानेके वड़े इच्छुक थे। उन्होंने कन्याको ब्याह दिया और गयाधर पडित उनकी चिकित्सासे स्वस्थ भी हो गये। उसी कन्यासे उन्हे एक पुत्र नरेन्द्र उत्पन्न हुआ। मलाँवमे दायभागकी आशा न देख नानाने नातीके लिये एक गाँव दे दिया, जिसका नाम उसीके नामपर नरेन्द्रपुर पडा। गयाधर पडित पीछे वहाँसे काशी चले गये।

**गयाधर कनैलावालोंके पूर्वज**—मलाँवकी इस शाखाके वारेमे रामधारीने अपने पत्रमे जनश्रुतिको इस प्रकार लिखा है—

"सुना जाता है पडित चक्रपाणि (?) जी मलाँवसे काशी विद्याध्ययनके निमित्त गये। उनके साथ एक नाई और (एक) वारी भी सेवार्थ गये थे। वहाँसे लौटते समय जाठी...ग्राममे ठहरे। वहाँ एक भूमिहारके यहाँ व्रतवध हो रहा था। .. ये भी पहुँचे।. वहाँसे दुर्गा पडितके यहाँ आये। यही उनकी पडित दुर्गाजीकी लडकीसे शादी हुई। उस से ५ लडके हुये, जो इस समय रानीपुर, वडौरा, टाडी, दिलमनपुर, डीहा, जलालपुर इत्यादिमे फैले है। पहिली शादीसे जो मलाँवमे (रहते) हुई थी, उनसे दो लड़के हुये थे जो वही रह गये थे। और जव वह (मलांववाली स्त्री) चकरपानपुर आई तो उनसे पाँच लडके हुये।. इन लडकोसे चकरपानपुर, कनैला, एकौना वसा है। चकरपानपुरसे हिच्छा (इच्छा) पाडे कनैलामे आकर वसे।"

यह बात रामधारीने (नवबर १९३९मे) कनैलासे मलाँवकी परपराका कुछ भी ज्ञान न रखते लिखी है। दोनो जगहोकी परम्पराओको मिलानेसे मालूम होता है, कि कनैलावालोने चकरपानपुर (चक्रपाणिपुर) नामसे भ्रममे पडकर गयाधर पाडेकी जगह बहुत पहिलेके पूर्वजके नामको रख दिया। शूकर-बलि, अनन्त चतुर्दशीका वर्जन, तथा अबतककी बीती पीढ़ियोके साथ-साथ जब गयाधर पडितके मीठाबेलसे काशी-प्रस्थान, मलाँवमे उनकी दो सन्ताने आदिपर विचार करते है, तो सन्देह नही रह जाता, कि कनैलामे जिन्हें चक्रपाणि कहा गया, वह चक्रपाणि-वशज गयाधर पाडे ही थे। दुर्गा पडित आजमगढ जिलेके इस सुदूर दक्षिणीभागके रहनेवाले थे, इसलिए उनकी कन्या उस सन्मानका पात्र नही हो सकती थी, जैसी कि, सरयूपारवाली, चाहे वह मीठाबेलके अपक्ति कौशिक दूबेकी ही कन्या क्यों न हो ? मलाँवकी परपरासे मालूम होता है, गयाधर पाडे काफी प्रौढ हो चुके थे, जब कि वह प्रभाकरको मलाँवमे छोड़ वहाँसे रवाना हुए, उस समय उनकी मीठाबेल वाली स्त्री अभी अल्पवयस्का रही होगी, इस प्रकार गयाधरकी प्राण आदि सन्ताने प्रभाकरकी मातासे न होकर इन्हीसे हुई मालूम होती है।

सरयूपार वाली स्त्रीकी सन्तान होनेके कारण चकरपानपुर-कनैला वाले अपनेको दूसरोकी अपेक्षा अधिक कुलीन मानते है, बल्कि कई पीढ़ियोंतक तो वे अपनी कन्यायोका विवाह सरयूपार गोरखपुर जिलेमे ही किया करते थे, यह बात अब भी कुछ परिवारोमे देखी जाती है।

गयाधरकी छठी पीढीमे इच्छा पाडे हुये। जब वह चकरपानपुर छोड़कर कनैला आये, तो उस वक्त वह एक उजाड गाँव था। कनैलाके पुराने पोखरे, जगह-जगह निकल पडने वाले कुये, पुराना कोट और उसके सैय्यद, तथा "बड़ी" पोखरमें एक जगह प्राप्त होने वाली सील-सी बडी-बडी ईंटे, कनैलाको एक पुराना स्थान बतलाती है; इच्छा पाडेके वक्तमे कनैलामे कुछ बस्ती चूडीवालो और भरोकी ज़रूर थी, जिनकी सन्तान अब भी वहाँ मौजूद है। इच्छा पाडे पडित न थे, और जहाँ तक मैंने सुना है, उनके वंशमे सरस्वतीकी ओर मुँह करनेका अपराध सबसे पहिले मैंने ही किया। १७३०के आस-पास—जब कि शेरशाहसे औरगज़ेब तकके दृढ शासनके विशृंखलित होनेके कारण चारों ओर देशमे अशान्तिका दौरदौरा था—के लिये, इच्छा पाडे अनुकूल व्यक्ति थे। उन्होंने कनैलाको दखलकर वहाँ अपना कच्चा कोट बनाया (चकरपानपुरका अपना हिस्सा भी नही छोड़ा, उनके वशज आजभी चकरपानपुर-कनैलाके ज़मीदार-किसान है)।

विदथी, सकृति, रन्तिदेवसे चला आता "क्षत्रोपेतत्व" मलाँवसे कनैला भी पहुँचा था, और कनैलामें अब भी बेलहाके वैसो तथा भदयाके ठाकुरोंसे लोहा लेनेकी कितनी ही कहानियाँ मशहूर हैं। बचपनसे अपने वंशके बारेमें मैंने सिर्फ विश्वेश्वर पाडे, रामेश्वर पाडेकी लाठियोंका ही चमत्कार सुना। ऐसी परिस्थितिमें कनैलाके जवानोंकी बलमें विशेषता रखना स्वाभाविक बात थी। कनैलाका वंशवृक्ष इस प्रकार है—
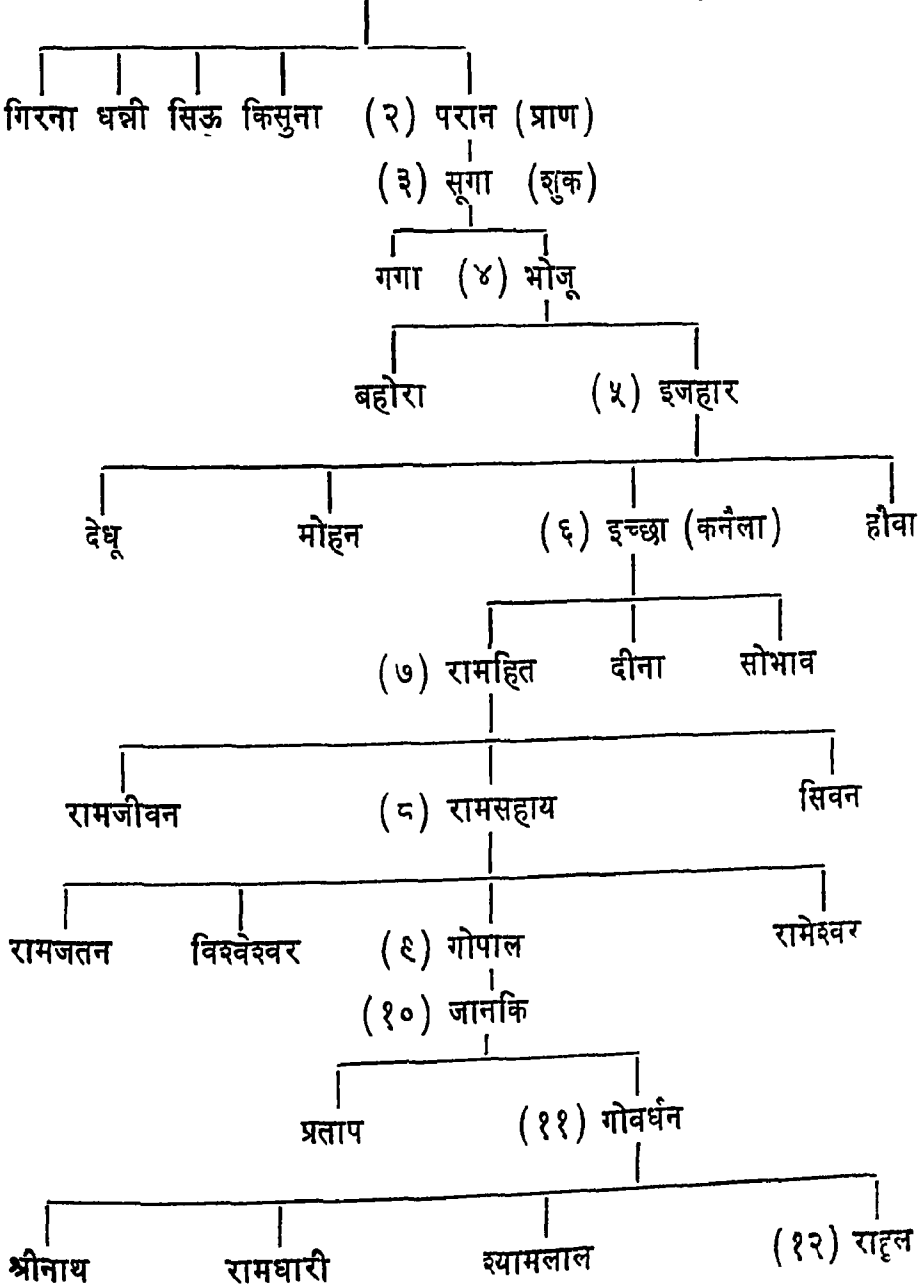
प्रभाकर-वंशज (नाउर-देउर)—मलाँव पर ज्येष्ठ पुत्र गोल्हई पांडेकी सन्तान (आधुनिक पश्चिमपट्टी, पहिलेकी पूर्वपट्टी[1])का अधिकार हुआ। गोल्हईकी सातवीं पीढ़ी वाले रोपन पांडे तक पंक्ति रही। नरेन्द्र अपंक्ति-कन्याके पुत्र थे, इसलिए पंक्तिसे परित्यक्त समझे गये; किन्तु प्रभाकर-वंश अभी भी पंक्ति या अर्धपंक्तिमें है। सरयूपारीण पंक्ति ब्राह्मणोंकी संख्या घटते-घटते अब कुछ हजार घर रह गई है। पंक्तिलोग अपने ही भीतर शादी-ब्याह करते हैं पंक्ति-भिन्न ब्राह्मणसे ब्याह करनेपर त्रुटित (टुटहा) कर दिये जाते हैं। पंक्ति ब्राह्मणोंका सन्मान अधिक है। प्रभाकर-वंशज नाउर-देउरके सांकृत्योंका ही ऐसा कुल है, जिसकी कन्या पंक्तियोंमें ब्याही जाती है। ब्याह हो जानेपर कन्या माता-पिताके भी हाथकी कच्ची रसोंई नहीं खा सकती। साधारण सरयूपारीण ब्राह्मणोंसे रक्तसंबंध जोड़नेके लिए यही वंश खिड़कीका काम देता है। लेकिन नाउर-देउरवाले पंक्तियोंसे कन्या पानेके अधिकारी नहीं हैं।

नरेन्द्र-वंशज—नरेन्द्रकी मृत्युके बाद ननिहालवालोंने उनके पुत्रों—उद्धव, माधव, वसन्तसे नरेन्द्रपुर छीन लिया। इसपर उन लोगोंने मलाँव आकर अपना आधा हिस्सा जबर्दस्ती दखल किया। इसके कारण दोनो परिवारोंमें वैमनस्य बहुत बढ़ गया। गोल्हई-पुत्र श्रीपतिकी सन्तानने नरेन्द्रकी सन्तानके जन्मके बारेमें झूठी बातें फैलानी शुरू की; जिससे उनकी ब्याहशादी रुक गई। अन्तमें श्रीनगर-राज्यके पूज्य (सांकृत्यगोत्री) सरयाके तिवारीकी सहायतासे सोलहो कुलोंकी पंचायत बैठी। पंचायतने दोनों तरफकी बातें सुनकर 'दिव्य" साक्षी द्वारा इसका फैसला करनेके लिए कहा—पीपलका पत्ता हाथमें रख उस पर दहकते लाल लोहेके गोलेको लेकर २१ कदम जाना था। ज्येष्ठ भाई उद्धवने आगे बढ़कर कहा—मैं ज्येष्ठ हूँ, मेरा अधिकार पहिला है। कहते हैं एक्कीसकी जगह ४२ कदम वे चले गये। पंचोंने नरेन्द्र-सन्तानको जातिमें मान लिया और गोल्हई-सन्तानकी बड़ी भर्त्सना की। धीरे-धीरे इनका इतना अवसाद हुआ, कि जहाँ उन्होंने नरेन्द्र-सन्तानका विवाह रोका था, वहाँ उन्हींको प्रतापगढ आदि में ब्याह करनेके लिये मजबूर होना पड़ा।

माधवके वंशज नेत्रानंद अमेठी (सुल्तानपुर)के एक प्रसिद्ध तांत्रिक हुये थे।

---

[1] पहिले मलाँव बस्ती आजकी बस्तीसे दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित "डीह" पर थी, वहाँ पूर्वकी ओर ज्येष्ठ पुत्रकी सन्तानोंके घर थे, इसलिए उन्हें पूर्वपट्टी कहा जाता था। आजकी नई बस्तीमें बात उल्टी हो गई है।

वसंतके पौत्र बिहारी बडे उदार थे, एक बार मालगुजारीके दो सौ रुपये बाकी पड गये। पूर्वजोकी जमीन छिनी जाती थी। उनके पुत्र कुलपति बनारसमे अपनी धनाढ्य ससुराल गये। वहाँ बर्तन-भाडेके अतिरिक्त उन्हे दो सौ रुपये मिले। घर लौटते, शामको नैनीजोर (जिला आजमगढ)मे ठहरे। वहाँके भूस्वामीको प्रतिदिन २०० रुपया हाथखर्च के लिये चाहिये था। राज्यके कर्मचारी उस दिन उतना रुपया वसूल नही कर पाये थे। कुलपति पाडेने कर्मचारियोको भयत्रस्त देख अपने दो सौ रुपये दे दिये। बर्तन-भाडा लिवाये जब वे सबेरेके वक्त मलाँव पहुँचे, तो विहारी पाडे दातौन लिये बैठे दिखाई दिये। बोले—भले समय आ गये, लोटा एक गरीबको दे दिया, बर्तन लाओ दातौन तो करे।

उन्हे जब पुत्रकी उदारताका पता लगा, तो रुष्ट न होकर और प्रसन्न हो बोले—दूसरेकी इज्जत बचाना धर्म है। इधर नैनीजोरमे सबेरे जब लोगोने कुलपतिको ढूँढा, तो वह तडके ही बिदा हो चुके थे। उनके स्वामीने सातवे दिन दो सौ उधारके अतिरिक्त पाँच सौ रुपये बिदाईके भी कुलपतिके पास भेजे। यहीसे कुलपतिके वंशकी समृद्धि शुरू होती है। १७०० ई० के आसपास पाँचसौ रुपयोका बहुत मूल्य था। कुलपतिने अपने पुत्र योगमणिको राजविद्या पढाई, और वह पढते-पढते अपने समयके गोरखपुर-जिलेके सबसे बडे राज्य रुद्रपुर (सतासी)के दीवान हो गये। नदुआ, कटया, धनसडी, देवकली गाँव उनकी मिल्कियत हुए। योगमणिकी सन्तानमे कोई वैसा योग्य न था, इसलिए उनके भतीजे मनसाराम (घनश्यामके पुत्र) रुद्रपुरके दीवान बने। मनसारामके वक्त रुद्रपुरके राजा अस्सी सालसे अधिकके हो चुके थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र लाल साहब उक्ता गये। उन्होंने बिंबिसारके पुत्र अजातशत्रुकी भाँति पिताके खिलाफ बगावतका झडा खडा किया। कहते है, यह पिता-पुत्रका झगडा बढते-बढते रुद्रपुरके सतासी कोसके राज्यके प्रत्येक घरमे फैल गया। हर घरमे पिता राजाका पक्ष लेता और पुत्र तरुण लालसाहेबका। लालके सातसौ सिपाहियोने एक दिन मनसारामको घेर लिया, और लाल न पहुँच गये होते, तो शायद उनकी जान न बचती। मनसाराम राजाको समझाते रहे, और अन्तमे राजाने पुत्रको गद्दी देना स्वीकार किया। इस खुशीमे बाप-बेटे दोनोने मनसारामको ५२ गाँवोंकी माफी देनी चाही। मनसारामने यह कहकर उसे लेनेसे इन्कार कर दिया—यदि हर दीवानको इस तरह गाँव दान दिये जाते रहे, तो चार पीढीमे राज्यके पास रहेगा ही क्या? बहुत आग्रह करने पर उन्होने नौआ-डुमरी, गोधवल, जद्दूपुर, तरवा और बघमौआ-पुन्नौली गाँव स्वीकार किये। कुरुक्षेत्रमे ग्रहणके वक्त बूढे राजाने विरैंचा तप्पा मनसारामको

दान करना चाहा, जो उनके इन्कार करनेपर सोहगौराके तिवारी लोगोको मिला।

गोरखपुर जिला उस समय नवाब-वजीर अवधके राज्यमे था। उसकी चकलेदारी (जिलेके प्रधान अधिकारीके पद)के लिए एक लाख रुपये नकदकी जमानत देनी पड़ती थी। मनसाराम बढते-बढते गोरखपुरके चकलेदार हो गये। शोभामणि उपाध्याय (पिपरा, तहसील हाटा) उनके कारपर्दाज थे। मालगुजारी जमा करने वे ही लखनऊ जाते थे। वे रुपयोंको अपने नाम जमा कराते गये और बाकी मनसारामकी चकलेदारीके नाम गिरती गई। लाख रुपये बाकी लग जानेपर चकलेदारी छिन गई, मनसाराम पकड़कर लखनऊ ले जाये गये। कुछ दिनों तक मार पडती रही। उनके भाई भवानीदत्त इधर रुपये इकट्ठे कर रहे थे। इसी बीच मनसारामको हुक्म हुआ कि यदि सप्ताहके भीतर रुपये नही आये, तो तुम्हे गायकी ताजी खाल ओढनी पडेगी। मनसारामने रातको जहर खाकर अवधिसे दो दिन पहिले ही शरीर छोड दिया। भवानीदत्त रुपया लिवाये बाराबकी पहुँचे, तो भाईके निधनकी खबर लगी, अफसोसके मारे वे वही मर गये, रुपये जिसको जहाँ मिले उसने लूट लिये।

मनसारामके रुपयोको अपने नामसे जमा कर शोभामणि उपाध्याय स्वय चकलेदार बन गये। एक लाखके बकायेके बदलेमे नवाबने यह कहकर लखनऊसे सैनिक भेजे कि मनसारामके घरसे डोला (स्त्री) निकाल लाओ। मनसारामके चचाके प्रपौत्र अयोध्याप्रसाद[1] और त्रिभुवनदत्तके लिए यह असह्य बात थी। उन्होंने घरकी स्त्रियोंको रिश्तेदारियोमे भेज दिया। मनसारामके चारो भाई मर चुके थे। अब उनके भतीजे रामप्रसाद और फर्यादीके बच्चे बच रहे थे। अयोध्याप्रसाद-त्रिभुवनदत्तने अपने आपको लाख रुपयोका देनदार कह फौजको अर्पण कर दिया। दोनों भाइयोको पकडकर लखनऊ ले गये। उनपर बाँसके फट्टोकी मार पडती थी, तो भी उनको सतोष था, कि उन्होने कुलकी लज्जा रखनेमे सफलता पाई। अमेठीके नेत्रानदके वशज एक ज्योतिषी—जिन्हे गोसाई बाबाके नामसे लोग स्मरण करते थे—को अपने वशके इन दो तरुणोंकी दु खगाथाका पता लगा। वे नवाबके दरबारमे गये। ज्योतिषका कोई चमत्कार दिखलाया। नवाब बहुत प्रसन्न हुये। गोसाई बाबाने अपने वशके इन दोनो

---

[1] जन्म, वैशाख शुक्ल एकादसी भृगुवासर १८११ संवत् (अयोध्याप्रसादकी जन्मपत्री, श्री जगदीश नारायणके पास है)

तरुणोकी मुक्तिकी भिक्षा माँगी। नवाबके शिरदर्द होनेपर पाँच कैदियोके छोडे जानेका नियम था। जिसीके उपलक्षमे नौआ-डुमरीके रहने वाले नवावके प्रधान खवासकी चतुराईसे अयोध्याप्रसाद दोनो भाई पहिले ही छोड दिये गये थे। इसपर नवाबने जब फिर कुछ देनेके लिए आग्रह किया, तो गोसाई वावाने सिर्फ इतना ही माँगा कि बागोके ऊपर मालगुजारी न लगे। नही मालूम यह वरदान सारे अवध राज्यके लिए था, या सिर्फ गोरखपुर जिलेके लिये। गोसाई वावाको नवावने अपने वागके आम भेजे थे। उनमेसे कुछ अयोध्याप्रसाद-त्रिभुवनदत्तको भी मिले। उन्होने खाकर गुठली रोप दी।

अयोध्याप्रसाद दोनो भाई उस तरह श्रीहीन वैभवहीन हो मलॉव नही लौटना चाहते थे और वे वही लखनऊमे पडे रहे। उनके खाये आमको गुठलीके वृक्षने फल दिया। उन्होने नवाबके पास उसकी डाली लगाई। नवावको भ्रम हुआ, कि आम उनके बागकी चोरीके है, क्योकि वैसे आम और दूसरे बागीचेमे नही थे। दोनो भाई पकड मँगाये गये। पूछनेपर पता लगा कि वे उतने दिनोसे लखनऊ हीमे पडे है, और भिखारी बनकर मलॉव लौटना नही चाहते। इसपर नवावने १२ सौ रुपये मालगुजारी लगनेकी जमीनका माफीनामा लिखकर दे दिया। कहते है अयोध्याप्रसादने उसपर एक शून्य और लगवाकर १२ हजार करवा लिया, जिसमे ३६ हजार बीघा जमीन मिली। इसी माफी मे अमियार आदि गॉव शामिल है।

शोभामणि उपाध्याय चकलेदारके अत्याचारोसे लोग तग आये हुये थे। ब्राह्मणो और राजपूतोंकी एक गुप्त सभा इसपर विचार करनेके लिये बैठी। सलाह हुई कि शोभाका काम तमाम किये बिना लोगोका उद्धार नही हो सकता। खुटहनाके सूर्यवशी क्षत्रिय वीरेन्द्र सिहने शोभाके बध करनेका जिम्मा इस शर्तपर लेना स्वीकार किया, कि उन्हे ब्रह्महत्याका दोष न लगे। ब्राह्मणोने उसकी जिम्मेवारी अपने ऊपर ली। वीरेन्द्र रातके वक्त शोभामणिके पुत्र वेनीदत्तके रूपमे महलमे घुसा। शत्रुको जगाया। शोभाने कहा—"मै तुम्हारी गाय हूँ।" "मै तुम्हारा वाघ हूँ"—वीरेन्द्रने जवाव दिया, और शिर काटकर ब्राह्मणोकी सभाके सामने उपस्थित किया। सभी ब्राह्मणोने वीरेन्द्रसिहके हाथसे चना लेकर खाया और उन्हे ब्रह्महत्याके महापातकसे मुक्त कर दिया।

अयोध्याप्रसाद-त्रिभुवनदत्त फिर रुद्रपुरके दीवान बने और उन्हे "शाहआलम बादशाह गाज़ी (के) जगयार वफादार सिपहसालार रुस्तमेजग शुजाउद्दौला यहिया

खाँ आसफ़ुद्दौला....११९५ (हिजरीमें)....एतमादुद्दौला आसफजाह, मदारुल्महाम, वजीरुल्मालिक"[1]ने गोरखपुरकी चकलेदारी दी। रुद्रपुरके महाराज पहलवान सिंह उन्हें बहुत मानते थे। कितने ही दरवारी पांडे-वन्धुओंसे वड़ी डाह करते थे। उन्होंने षड्यन्त्र रचा, और राजाके दीवानको वेलीपार, कौडीराम, धसका, कर्णपुरा, दाढा, कोनो, सेमरौना, भिसवाके गाँव दिलवा दिये। इनमें वेलीपार, कौडीरामके गाँव पहिले हीसे रुद्रपुरके वंशज पांडेपारके वाबूको "खोरिश" (जीविका)में मिले थे। उन्होंने दीवानसे अपनी जीविकाके इन गावोंको छोड़ देनेके लिए वड़ी मिन्नत की, किन्तु दीवान साहवने उसपर कुछ भी ध्यान न दे जवर्दस्ती गावोंको दखल कर लिया। जीविका चली जानेपर जीवन रखना भार है, यह समझ पांडेपारके वाबूने भी जानपर खेलनेकी प्रतिज्ञा की। अयोध्याप्रसाद और त्रिभुवनदत्तका आपसमें असाधारण प्रेम था। दोनों भाई एक दूसरेसे अलग नहीं रहते थे। नवावसे फर्मान लेते वक़्त तक भी अयोध्याप्रसादने उसमें त्रिभुवनदत्तका नाम रखवाना ज़रूरी समझा था। दोनों एक चारपाईपर सोते थे। पांडेपारके वावू ताकमें लगे हुये थे और एक दिन गोरखपुरमें अपने मकानमें एक चारपाईपर जव दोनों भाई सोये हुये थे, उसी समय आकर रातको उन्होंने दोनोंको काट दिया।

अयोध्याप्रसाद-त्रिभुवनदत्तने सरकारी कागजोंमें मलाँवको अपने नाम लिखाया था। पूछनेपर कहा था—कागजमें नाम न रहनेसे घवराना नहीं चाहिये, मलाँव जैसे हमें "माफी" मिला है, वैसे ही वह हमारी तरफसे भाइयोंको माफी रहेगा।

अयोध्याप्रसाद-त्रिभुवनदत्त मर गये। लखनऊके नवावका राज्य भी उठ गया। ईस्ट इंडिया कम्पनीने राज संभाला। वन्दोवस्त होनेको आया। कम्पनीकी सरकार मलाँवपर मालगुजारी वैठाने लगी। रामसेवकने वड़ी कोशिश-पैरवी की। ५०० रुपये और १० घड़े घी लेकर माफी लिख देनेके लिये वन्दोवस्तका वड़ा अफसर तैयार था। रामसेवकने चचेरे भाई हरिसेवक (त्रिभुवनदत्तके पुत्र)को कहा। उनकी समझ हमेशा ही उल्टी रहती थी। उन्होंने इन्कार कर दिया। माफी टूट गई। मलाँवपर मालगुजारी लग गई।

---

[1] **दीवान अयोध्याप्रसाद पांडेके प्रपौत्र श्री जगदीश नारायण सेवकके यहाँ मौजूद शावान ११९८ हिजरीमें लिखित नवाबी फरमान।**

अब भी मलाँव अयोध्याप्रसाद त्रिभुवनदत्तके लडकोके नाम रहा। गाँववाले पाडे लोग अपने हिस्सेके मुताबिक जमीनको मुफ्त जोतते थे। हरिसेवकने दुवौलीके भूमिहार ब्राह्मण सुबुद्धरायसे ५००० रुपये कर्ज लिये। हरिसेवककी वही रफ्तार बेढगी रही, वह कर्ज क्यो अदा करने लगे? सुबुद्धरायने इच्छा प्रकट की कि यदि पाडेजी आकर मुझे गुरुमत्र दे दे, तो रुपये उन्हे भेट चढा दूँगा। हरिसेवक नही गये। सुबुद्धराय बीमार पडे, बोले—यदि पाडेजी आकर दर्शन दे जाते, तो मै रुपये छोड देता। हरिसेवक फिर भी नही गये। सुबुद्धराय मरते वक्त कह गये—यदि मरनेके बाद पाडेजी पुछारीके लिए आवे, तो कर्ज छोड देना, नही तो नालिश करके वसूल करना। हरिसेवक अब भी नही गये।

महाजनने नालिश करके हरिसेवकका आधा हिस्सा नीलाम करवाया। कटया वाले श्री उग्रदत्त भैरवदत्त (दीवान योगमणि पाडेके वशजो)ने पूर्वजोकी भूमि समझ उसे खरीद लिया। गाँवके और लोग न लड सके, रामलाल, मथुरा पाडेने आगरा हाईकोर्ट तक लडाई की, और अदालतसे उनको अपना हिस्सा मिल गया। उन्होने अपना आधा हिस्सा कटयावालोको देकर आधा अपने नाम लिखवाया।

कुलपति पाडेके दूसरे पुत्र घनश्यामके प्रप्रपौत्र नन्द पाडे बडे अध्यवसायी व्यक्ति थे। उन्होने एक बहुत भारी जगल खरीदा। उनके पुत्र श्री सूर्यनारायणने ऐश्वर्यको और बढाया, और कटयावालोके खरीदे हिस्सेको लौटा लिया।

१६वी सदीके उत्तरार्द्धके अहिरुद्र पाडेकी सन्तान आज मलाँवमे ही सौ घरसे अधिक नही हो गई है, बल्कि वह बहुत दूर तक फैल गई है। बैकुठपुर (देवरिया), पकडियार, फर्दहा, डागीपार, भिलौरा, नाउरदेउर, कटया, नउआ, नदुआ, कमियार, रुद्रपुर आदि गाँव गोरखपुर जिलेमे ही है, जहाँ मलाँवके साकृत्य वशज बसते है। आजमगढमे विक्रमपुर (घोसी), चकरपानपुर, कनैला, बडौरा, टाडी, दिलमनपुर, डीहा, जलालपुर आदि गाँवोमे वे पाये जाते है। पतुलकी और वृन्दावन (प्रयाग); विजयमऊ (प्रतापगढ), मथुरा शहर और कितने ही और स्थान है, जहाँ अहिरुद्र पाडेके वशज आज रहते है। पहाडी (प्रयाग) आदिमे पहिलेवाली परम्पराके बहुनमे घर है।[1]

---

[1] सांकृत्यगोत्री चौबे भौंआपार, नगवा, उनवली, देउगर, सरसैया, तेलिया-डीह आदिमें रहते हैं और इस गोत्रके तिवारी बारीडीह, विसुहिया, नयपुरा, सरयामें

## ३. रामशरण पाठक[1] (नाना)

औरंगजेबकी मृत्युके साथ मुसलमानोंके प्रभुत्वका पतन आरंभ हुआ, लेकिन वही समय है, जब कि मुगलोंके दृढ़ शासनके फलस्वरूप बढ़ी हुई जन-संख्याने नये-नये गाँवों और बस्तियोंको बसाना शुरू किया। पाठकजीके पूर्वज इसी प्रकार १८वीं शताब्दीके प्रथम पादमें पंदहा गाँवमें आकर बस गये। उस समय पंदहाके आसपास घना जगल था, जिसमें भेड़िये बहुतायतसे रहा करते थे। पश्चिम ओर छोटे द्वीप वाली एक पुरातन विशाल पोखरी थी। इसका महामाई नाम शायद पाठकके पूर्वजों ने स्वयं रक्खा था। इसी पोखरीके पश्चिम तटपर बलई नामका छोटा गाँव था, जिसमें खानदानी सैयद, कारीगर, जुलाहे, साग-भाजियाँ पैदा करनेवाले मेहनती कोयरी लोग निवास करते थे। यहाँकी अनेक ईंट-चूनेकी क़ब्रोंसे प्रकट होता था, कि कभी यह स्थान बहुत समृद्धिशाली था। पंदहाके उत्तर-तरफ़ भी पुरानी बस्ती के कुछ चिह्न थे। लोग पूँछनेपर बतलाया करते थे—यहाँ कभी सिउरी रहते थे, जो पीछे उजड़कर दूर देशमें चले गये, अब भी उनके वंशज उन सुदूर देशोंसे कभी-कभी आकर रातको बीजककी सहायतासे अपने पूर्वजोंके गड़े खजानेका पता लगाया करते हैं।

सवा सौ वर्ष बाद अपने प्रथम पूर्वजकी ५वीं पीढ़ीमें (१८४४ ई०में) रामशरण पाठक पैदा हुये। तब चारों ओर अंगरेजोंका राज्य था। पंदहाके एक घरके ब्राह्मणोंके १७ घर बन गये थे। उनके साथ आ बसे अहीरों और चमारोंके भी कितने ही घर हो चुके थे। यद्यपि अब जंगल काटकर बहुतसे खेत बना लिये गये थे, तो भी इतना जंगल आसपासमें था, जिसमें भेड़िये गुजर कर सकते थे। रामशरण पाठक अपने पिताके तीन पुत्रों (शिवनंदन बड़े, रामबरन छोटे)में मँझले थे। तीनों भाइयोंमें पाठक कम गोरे थे, तो भी उनका रंग गेहुँएसे ज्यादा साफ था। तीनों ही भाई विशाल-काय थे, जिनमें पाठककी शरीर-गठन बहुत ही अच्छी थी। पाठकके पिताके पास खेतीके अतिरिक्त काफी गायें-भैंसें थीं। लड़कपनसे पाठकको उन्हींके चरानेका काम मिला था। जब पाठक १२-१३ वर्षके हुए तभी माता-पिताने शादी कर दी। पाठक अपनी भैंस-गायोंके चरानेमें मस्त रहते थे। घरमें दूध-घीकी इफरात थी। यौवनमें पदार्पणके साथ पाठकके रग-पुट्ठोंमें असाधारण बलकी झलक दिखाई

---

[1] यहाँ दिये सन् संदिग्ध हैं

पड़ने लगी। लडकेकी रुचि कुश्तीकी ओर देखकर पिताने उस समयके रवाजके मुताबिक बरसातमे कसरत-कुश्ती सिखानेके लिए एक नट रक्खा। तीन महीने बाद नटको एक भैंस इनाममे मिली। पाठकने और भी कुछ बरसाते अखाडेमे बिताई।

× ×

पदहाका कोई आदमी नौकरी करनेके लिए जिलेसे बाहर गया हो, इसका पता नही। यही नही, आसपासके गाँवोंसे भी शायद ही किसीने प्रान्तसे बाहर पैर रक्खा हो। पाठककी चरवाहीकी पाठशालामे भूपर्यटकोके ज्ञानका भाण्डार खुला रहता हो, इसकी सभावना नही थी, तो भी पाठकको कहीसे हवा लगी जरूर। १८ वर्षकी उम्रमे ही पिताके कही रक्खे हुए डेढ सौ रुपयोको लेकर १८६२ ईसवीमें वे वैसे ही चपत हुए, जैसे ४६ वर्ष बाद उनका नाती उनके रुपये लेकर। युक्त-प्रान्तके इस पूर्वी छोरसे सुदूर-दक्षिण हैदराबादको अभी रेल शायद न बनी थी। विदेश चले, इतना ही उन्हे घर छोड़ते समय खयाल आया था। चलकर हैदराबादके जालना कस्बेके अगरेजी पलटनमे नौकरी करेंगे, इसका उन्हे कुछ खयाल भी न था। किन्तु रास्तेके साथियोके कारण आखिर वह एक दिन जालना पहुँच गये। वहाँ उस समय एक पूरबिया फौज रहती थी, जिसमे पाठकके जिलेके कितने ही राजपूत सिपाही भी थे, पलटनके सूबेदार-मेजर रम्मूसिह भी उनके अपने ही जिलेके थे।

पाठक भी अखाडेपर गये। आज कुछ विशेष चहल-पहल थी। कुश्ती देखनेके लिए पलटनके अफसर भी कुर्सियोंपर डटे थे। पाठकने भी लडनेकी इच्छा प्रकट की। वे सबसे तगडे आदमीसे लडे। १८-१९ वर्षके नवयुवकके लिए वह आदमी बहुत भारी मालूम होता था, और लोग सन्देहमे थे; किन्तु कुछ ही मिनटोंमें पाठकने उसे चित्त कर दिया। कर्नल साहबने कूदकर तरुणकी पीठ ठोकी, कुछ इनाम भी मिला, और सबसे बडी बात यह हुई कि कर्नल साहबने खुद सूबेदार-मेजरसे कहकर उसी दिन पाठकको फौजमे भर्ती करा दिया। पाठकने इनाम और अपने रुपयोंमेंसे सौ रुपये सूबेदार-मेजरके हाथमें रखकर कहा—मैं अशर्फियोका एक कठा पहनना चाहता हूँ। उसी दिन वे रुपये जालनाके मारवाडी सेठके पास भेजे गये और दो-तीन दिन बाद पाठकके गलेमे सात मुहरोंका कठा पड गया।

पाठक शरीरमें जैसे बलवान थे, वैसे ही निशानेमे भी सिद्धहस्त निकले। क़वायद-परेडका काम सीख लेनेके बाद ही साहबने उन्हे अपना अर्दली बना लिया। पलटनके अफ़सरोंको हमेशा उतना कोई काम तो होता नही। जाड़ोमें साहब-बहादुर कभी हैदराबादके जंगलोंमें, कभी मालवा और नागपुरके वनोमें शिकार करते फिरते थे। पाठक भी उनके साथ रहते थे। कितने ही बाघ साहब मारते थे, और कितने ही पाठकके मारे बाघ भी साहबके नाम दर्ज होते थे। हाँ, बाघ मारनेका सरकारी इनाम और उसके चमड़ेका दाम, ऊपर साहबकी ओरका भी कुछ इनाम पाठकको मिल जाया करता था।

इन शिकारयात्राओंकी बातें बुढ़ापेमे पाठक बड़ी रात बीते तक अपनी सहृदय धर्मपत्नीको सुनाया करते थे। उस वक्त उनकी बग़लमे बैठा या गोदमे लेटा आठ-सात वर्षका उनका नाती उन बातोंको सुनता और आश्चर्य करता। कामठी, धुलिया, अमरावती, नासिक यद्यपि उस समय उस बच्चेको बेमानी मालूम होते थे, किन्तु उन्होंने पीछे भूगोल और नक्शा पढ़नेमें बडी दिलचस्पी पैदा की। पाठक कहा करते थे—उधर पहाड़ोंमें 'बिसकर्मा' (विश्वकर्मा)के हाथके बनाये बड़े-बड़े महल है, वे पहाड़ काटकर बनाये गये है। बिसकर्माने उन्हें बनाया तो था देवताओंके लिए, किन्तु जब तक देवता आयें आयें, तब तक राक्षसोंने उनमें बसेरा कर लिया। देवताओं-को खबर देकर जब वे लौटे, तो देखा कि चारों ओर बोतलें खनखना रही है। बिसकर्माने शाप दिया—जाओ तुम सब पत्थर हो जाओ। पाठक बड़ी गंभीरतासे पठकाइनसे कहते—आज भी वे राक्षस या तो हाथमे बोतल लिये है, या तायेई तायेई नाचते, या आँख-मुँह बनाते दिखाई देते है; देखनेमें क्या मालूम होता है कि वे पत्थर हो गये है।

पाठक इसी प्रकार साहबके साथ जाड़ोंमें शिकार खेलते, गर्मियोमें शिमला और ठंडे पहाड़ोंपर घूमने मौज कर रहे थे। उन्हें नौकरी करते दस वर्ष हो गये थे और इसी बीचमें उनके साथी—और कुछ तो उनकी सिफारिश पर—तरक्की करके नायक और जमादार बन गये थे, किन्तु न उनको उसकी उतनी इच्छा थी और न साहब ही वैसा करना चाहते थे।

पिछले सात-आठ वर्षोमें पाठकने कभी एक-आध चिट्ठी तो जरूर भेज दी थी, किन्तु घर आनेका जिक्र तक न किया था। 'उड़ती हुई चिड़ियाने' घरपर खबर दे दी थी, कि पाठकने वहीं स्त्री कर ली है। वस्तुतः था भी ऐसा ही। जालनामे कितने ही घर ऐसे भी थे जो पूरबिया सिपाहियोंकी मराठी स्त्रियोकी संतान थे। ऐसे ही एक

परिवारकी स्त्री उनकी चिररक्षिता हो गई थी। उससे उन्हे एक पुत्र भी हुआ था। पाठकने उसके लिए घर भी बनवा दिया था। शायद पाठकका वह पुत्र या उसकी सन्तान अब भी जालनामे हो, (यदि जालनाकी अगरेजी छावनीके टूटनेके साथ वे अन्यत्र न चले गये हो)। आठ-नौ वर्ष बीत गये। पाठकके पिता भी मर गये। पाठकके भाइयोका बर्ताव उनकी स्त्रीके साथ कुछ बहुत अच्छा न था। स्त्रीने अपने भाईको हैदराबाद भेजा। पाठक स्वय तो न आये, किन्तु उन्होने सालेके हाथ स्त्रीके लिए कुछ रुपये भेजे। सालेने उस रुपयेको अपनी दुखिया बहनको देना पसन्द नही किया।

३, ४ वर्ष और बीते, इसी बीच पाठक दिल्ली दरबार भी हो आये। अभी उनका जीवन-स्रोत वैसा ही बह रहा था। बलजोर और दवन दो राजपूत नौजवानोंसे उनको सगे भाईसे भी ज्यादा मुहब्बत थी। सच पूछिये तो अब उनके लिए जालना घरसे कम न था। उनको पदहाकी फिक्र हो तो क्यो? किन्तु एक दिन किसीने पाठकसे सूबेदार रम्मूसिहकी कथा सुनाई। वह कई वर्ष पूर्व पेन्शन पाकर घर चले गये थे। रम्मूसिहने पलटनमे जबसे नौकरी की थी, तब से वह एक ही दो बार कुछ समयके लिए घर गये थे या शायद नही ही गये थे। पेन्शनके बाद एक बक्समे अशर्फियाँ भर-कर वे घर पहुँचे। उनकी स्त्री अब बूढी हो चुकी थी। बूढे सूबेदार-मेजरने अशर्फियो-का बक्स उनके सामने खोल दिया। ख़याल किया होगा, स्त्री बहुत प्रसन्न होगी; किन्तु प्रसन्नताका पता तो तब लगा, जब सूबेदार-मेजरने पानी माँगा और उत्तर मिला —"उन्ही अशर्फियोसे लो। तुमने तो जिन्दगीमे अशर्फियाँ ही पैदा की, पानी देने वाले थोडे ही पैदा किये।" बेचारे सूबेदारपर क्या बीती होगी, इसका तो पता नही, किन्तु पाठकपर इस बातका बडा असर हुआ। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनोके बाद सबके समझाते रहनेपर भी वह नाम कटाकर घरके लिए रवाना हो गये।

× × ×

घर लौटनेकी सबसे अधिक प्रसन्नता पाठककी स्त्री (जगरानी)को होनी ही चाहिये थी। यदि भाइयोके पास समय-समयपर कुछ रुपया आया करता, तो इसमे शक नही, पाठककी स्त्रीकी उतनी उपेक्षा न होती। पठकाइनमे एक बडा गुण यह था, कि वह झगडापसन्द न थी, किन्तु इसका ही दुष्प्रभाव यह था, कि दूसरोके प्रतिकूल व्यवहारको वे मनमे रखती जाती थी। कडवे मुँहवालोमे अकसर देखा जाता है, कि वे किसीके दुर्व्यवहारको फौरन मुँहसे निकालकर भीतर बाहर दोनों ओर ठडे हो जाते है। बेचारी पठकाइनमे यह गुण या अवगुण था नही, वह बारह वर्ष तक की

उठेंगायें-ताने सब कुछ दिलमें रखती गई। पाठकके आनेके बाद वह लेखा एक-एककर चुकने लगा। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समयके बाद पाठक भाइयोंसे अलग हो गये।

अब उन्होंने अपने घरको कुछ अपनी रुचिका बनाना चाहा। पहले तो उन्होंने द्वारपर पक्का कुआँ बनवाया और रहनेके लिए ईंटोंका मकान। पाठकको यह पसन्द न था कि वह अपना गन्ना दूसरोंके कोल्हूमें पेरने जायँ। इसलिए चुनार जाकर एक पत्थरका कोल्हू ले आये। कोल्हूको अपने द्वार पर ही गाड़कर उन्होंने दो घर 'कुल्हाड़'के लिए भी बनवा दिये। उनके पास अपना पैतृक खेत दो बीघेसे ज्यादा न था। कुछ दिनोंके बाद उनके एक समीपी कुटुम्बी (महावीर पाठक)ने तीनों भाइयोंसे कहा—मुझे रुपयेकी आवश्यकता है, तुम लोग मेरे हिस्सेका इतना खेत ले लो, नहीं तो मैं दूसरेको बेच दूँगा। तीनो भाइयोंने मिलकर खेत लिखा तो लिया, किन्तु छोटा भाई दाम न दे सका। पाठकने उस भूमिको भी ले लिया। इस प्रकार अब पाठकके पास पाँच बीघे (तीन एकड़से कुछ अधिक)के करीब जमीन हो गई। घरमें दो प्राणी थे। एक लड़का हुआ, किन्तु कुछ ही समय बाद मर गया। १८७६ ईसवीके करीब पाठकको एक लड़की कुलवंती पैदा हुई। कुलवंती उनकी अंतिम और एक-मात्र जीवित सन्तान रही। घरमें उसका लड़केके ही समान लाड़-प्यार था और होना भी चाहिये था। ९-१० वर्षकी होने पर लड़कीका ब्याह १० मील दूर कनैला गाँवमें कर दिया गया। लड़की अधिकतर मायके हीमें रहती थी, ससुराल जानेपर हर दूसरे हफ्ते माँका आदमी कुछ लेकर पहुँचा रहता था। १८९३ ईसवीमें लड़कीको एक पुत्र हुआ। नातीके जन्मसे पाठक-पठकाइन दोनोंको अपार आनन्द हुआ। नाती (केदारनाथ) जब अपनी माँसे अलग रहने लायक हो गया, तब वह नानाका ही गया। अब बेटीकी ममता नाती पर चली आई, इससे अब उसे ससुरालमें अधिक रहनेकी इजाजत हो गई।

पाठकके बड़े भाईके पाँच बेटे थे और छोटेके दो। उस थोड़ी-सी भूमिसे बड़े भाईके इतने बड़े परिवारका गुजर होना बहुत कठिन था। वे देखते थे कि जो जायदाद उनको मिलती, उसके लिए नाती तैयार किया जा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ, कि दोनों परिवारोंमें अनबन रहने लगी। दिलमें जलन तो थी ही, जरा-सा भी मौका मिलने आग भड़क उठती, दो चार गाली-गलौज होती और फिर तीन-चार मासके लिए दोनो ओरके गाल फूल जाते।

पाठक अपने हाथसे काम करना अच्छा न समझते थे, पलटनके तिलगा जो रह चुके थे। घरमे दूध देनेवाली एक भैंस वे जरूर रक्खा करते थे। बहुत पशुओके शौकीन न थे, सिर्फ दो बैल और एक भैंस रखते थे। दूध और छाछके बिना उनका काम न चल सकता था। पहले मछली-मासकी भी खूब चाट थी, किन्तु पीछे खानदानी गुरु और अपनी स्त्रीके बार-बार कहनेपर मजबूर हो बेचारे एक सौ ग्यारह नम्बर वाले धर्मके चेले हो गये। एक काठकी कठी गलेमे डाल दी गई और पाठकको अपने प्रिय भोज्यसे वचित हो जाना पडा। तो भी जब उनका नाती कुछ खाने पीने लगा, कठी और वैष्णवताके रहते भी यदि कही मछली मिल जाती, तो नातीके लिए लाये बिना नही रहते थे। ज़ीती मछलियोको तो चार-चार पॉच-पॉच सेर लेकर वे एक नादमे पाल लेते थे, जिन्हे नाती निकाल-निकालकर भूनता-तलता था। नाना-नानी ढग बतलाने और हल्दी-मसाला पीसकर दे देनेमे कोई हिचकिचाहट नही रखते थे।

पाठककी थोडी भूमि उनकी परिमित आवश्यकताके लिए काफी थी। खेतसे अनाज और भैंससे दूध घी उन्हे मिल जाया करता था। घरका काम-काज बहुत कम था। बाहरका काम उनका हलवाहा या दूसरा कर देता था और घरका उनकी स्त्री। बस, पाठकको खाना, सोना और सबसे बडा काम गप्पे मारना था। उस समय पदहाके किसी बाग, कुल्हाड, या खलिहानमे यदि आप पाँच-सात आदमियोके बीच एक मोटे-ताजे अधेड पुरुषको देखते, जो पैर और कमरको अँगौछेमे बाँधकर कुर्सी बनाये बैठे बाते करता होता, तो समझ जाइये वह पाठक महोदय है। यद्यपि उन्होने बारह-तेरह वर्षोमे बहुत-से देश और लोग देखे थे, तो भी जब उन्ही बातोको और उतने ही आदमियोमे रोज दो-तीन घटा कहा जाय, तो वह कितने दिनो तक नई रह सकती है? फलत. बाज श्रोता पाठकके बात आरभ करते ही कह देते—हाँ, यह हिंगौली-छावनीके पहलवानकी कथा होगी। तो भी पाठक ऐसे जीव न थे, कि श्रोताकी अनिच्छाके कारण अपनी कथा छोड बैठते।

पदहामे सरस्वतीका सत्कार न था। पाठकके छोटे भतीजे रामदीनने प्राइमरी तक पढा था, फिर उनका नाती ही पहला आदमी था, जिसने मिडिल पास किया। पाठक स्वय अनपढ रहते हुए भी विद्याके लाभको जानते थे, इसीलिए अभी नाती जब पाँच ही वर्षका था, तभी पासके रानीकीसराय स्कूलमे पढनेके लिए बैठा दिया। वह कहा करते थे—और नही तो बैठना तो सीखेगा। पाठकके फुफेरे भाई मदर-आला होकर मरे थे, वही ख़याल करके वह अपनी स्त्रीसे कहा करते थे—ज़रा मिडिल

पास हो जाने दो, फिर मैने जहाँ एक दिन जाकर पादरी साहबके यहाँ जगी सलामी दागी, कि बच्चेको अंग्रेजी स्कूलमे भर्ती कराकर ही छोडूँगा। पाठकको इस बातसे और भी बडे-बडे मनसूबे बाँधनेकी उत्तेजना सबसे अधिक मिलती थी, कि उनका नाती पाठशालामे अपने दर्जेमे बराबर अव्वल रहा करता था।

× × ×

पाठकने नातीको अपने सुखके लिए ही इतने लाड-प्यारसे पाला था, किन्तु इसी प्रेमने उनके जीवनकी सध्याको दु खान्धकारपूर्ण बना दिया। वस्तुत. यदि पाठकको अपने मनसे करने दिया गया होता, तो वह अपने भतीजोको दुश्मन न बनाते। अपने भाइयोके प्रति उनका बर्ताव हमेशा स्नेहपूर्ण रहता था। जिस वक्त वायुमडल बिलकुल कड़वा हो जाता, उस वक्त भी सतहसे जरा नीचे जानेपर पाठकके हृदयमे भाइयोका स्नेह वैसा ही तर पाया जाता। ऐसे मौके आये, जिस वक्त ये तीनो वृद्ध भाई झगडेके तूफानके बीच भी स्वच्छन्दतापूर्वक मिलनेपर 'भैया' 'भैया' कहकर फूट-फूटकर रोने लगते। तो क्या पाठककी स्त्री (जगरानी)को दोष दिया जा सकता है? उनका स्वभाव भी बहुत मधुर था। आदमी-जन, हित-पाहुना, ही नही, रातके टिकने वाले भिखमगे भी उनकी तारीफ किया करते थे। अतिथियोको खिलाने-पिलानेमे उनको बडा आनन्द आता था। मधुरभाषिणी तो इतनी थी कि सिवा अपनी जेठानीके (जिसका कारण और ही था) उन्होने किसीको कभी कडे शब्द न कहे होगे। दयाका उदाहरण लीजिये। वैसे पाठकके घरसे कुत्ते-बिल्लियोका बिलकुल संबध न था, किन्तु एक बार एक कुतियाने आकर बाहरके घरके कोनेमे बच्चे जन दिये। फिर क्या था? पठकाइनने समझा—इस प्रसूताकी परिचर्याका सारा भार उन्हीपर है। कुतियाको प्रसूताकी तरहका खाना मिलने लगा। इस दयाका फल तुरन्त ही यह हुआ कि कुतिया द्वारकी मालकिन बन गई और उसने एक बुढिया भिखमगिनको काट खाया। एक प्रकारसे कहा जा सकता है—अपने दो दायादोके सिवा वह अजातशत्रु थी।

तो क्या उनकी जेठानी-देवरानी कसूरवार थी? देवरानी और पाठकके घरका विरोध तो हमेशा क्षीण रहा (न उन्हे कुछ आशा थी, न कुछ मिला)। हाँ, जेठानी उन सासोमे थी, जो कडाईके बिना अपनी बहुओंको शासनमे रख सकती थी। उनमे बहुत गभीरता थी। अनपढ, अल्प-वित्त, बहु-सन्तान और ग्रामीण होते हुए भी उनमे व्यवस्था और परख करनेका गुण था। वह उदारमना थी, जो गुण उनकी

परिस्थितिकी स्त्रियोंमे बहुत कम पाया जाता था। उनके पति—पाठकके वडे भाई शिवनदन पाठक तो पूरे धृतराष्ट्र थे। लडकोंके मारे भाईका विरोध करते भी अस-मजसमे ही पडे रहते। पाँच लडके थे। इतने परिवारका उतनी थोडी भूमिसे निर्वाह होना मुश्किल था। इसलिए होश सँभालते ही दो (बच्चा और जवाहर) कलकत्ता जाकर पुलिसमे भर्ती हो गये। जब वे दो-चार वर्षमे छुट्टीमे घर आते, तब चाहे चचा (पाठक) और अपने घरसे बोलचाल भी न होती, भेटकी चीजे लेकर वह चचाके पास जरूर पहुँचते; भेट सामने रखकर चरण छूकर चाचा-चाचीको प्रणाम करते। एक बार एक पुलिसमैन-भतीजा उस वक्त घर आया, जिस वक्त रूस-जापानकी लडाई चल रही थी। आकर उसने घटो पनडुब्बी नावो और दूसरी खबरो—जिन्हे कि वह कलकत्तामे सुना करता था—का वर्णन करता रहा। सबसे छोटा भतीजा रामदीन असाधारण व्यवहारकुशल तथा प्रतिभाशाली था। यदि उसे शिक्षाका अच्छा अवसर मिला होता, तो वह एक विशेष आदमी हुआ होता। पाठकके नाती या अपने भाजेके साथ रामदीनका प्रेम था। उसीने ले जाकर उसे अक्षरारभ कर-वाया था। घरपर रहते वक्त वह भाजेको कुछ कामकी बाते बतलाकर उत्साहित करता रहता था। अपर प्राइमरी तक पढकर उसे चिट्ठीरसाकी नौकरी कर लेनी पडी थी, इसलिए जिलेमे ही किन्तु बराबर बाहर ही रहना पडता था। बाकी दो भतीजे अपनी स्वतंत्र बुद्धि न रखते थे। वस्तुत यदि वह थोडी-सी जमीन—जो सारी कड़वाहटकी जड थी—का ख्याल हटा दिया जाय, तो भतीजे बुरे नही, बहुत अच्छे थे। भतीजोकी बहुएँ ? एक पाठकके सालेकी लडकी थी। दूसरी उनके ही कथनानुसार गौ थी। सबसे छोटी (रामदीनकी) बहूकी तो वह प्रशसा करते न थकते थे। और बाकी दो बेचारी घरके भीतर चुपचाप रहनेवाली थी, उन्हे झगडा झझटसे कोई वास्ता नही था।

और नाती केदारनाथ ? वह तो लडका था। वह सभी चीजे अपने शिशु-नेत्रोसे देखता था। तो भी यदि उसके उस बाल-अनुभव—चौदह वर्षकी अवस्थाके पूर्वके अनुभव—की कोई कीमत है, तो उसे सभी मामियाँ बडी ही मधुर मालूम होती थी। छोटी मामीसे उसे असाधारण प्रेम था। स्कूलसे लौटते ही, जहाँ नानीने कुछ खाना दिया नही, कि वह छोटी मामीके दरबारमे हाजिर होता। इस मामीमे असा-धारण कोमलता थी। वह सुन्दर थी, स्वच्छ थी, शीघ्र बात समझने वाली थी, और अपने भाजेको खुश करने वाली मीठी बाते करना जानती थी। आनेपर खानेको पूछना, पानीके लिए पूछना फिर दिल खोलकर बाते करना—एक बालकके लिए

और चाहिये ही क्या ? सचमुच यदि उस लड़केको पूछा जाता, कि तुमको सिर्फ एक आदमी दुनियामें मिलेगा, चुन लो और हमेशाके लिए निर्जन वनमें चले जाओ; तो वह अपनी इसी छोटी मामीको चुनता। उसका बालक-हृदय टूक-टूक हो गया, जब एक बार दोनो घरोंकी बोलचाल बन्द होनेपर भी वह छोटी मामीके पास गया; और आते ही बड़े ही रूखे शब्दोंमें उससे कहा गया—तुमने बहूको गाली दी है, ख़बरदार! अब इधर मत आना। मामीको भी इससे कम दुःख न हुआ होगा, क्योंकि उसे भी अपने भानजेको शाम-सवेरे देखे विना चैन न आता था। बालकको क्या मालूम था, आजकी दुनिया प्रेम और सद्भावका स्रोत बहानेके लिए नही है। कुछ ही वर्षों बाद वह प्यारी मामी (दीपचंदकी माँ) मर गई।

व्यक्तियोंमें अलग-अलग ढूँढनेमे तो किसीको दोषी नही ठहराया जा सकता था, किन्तु समुदायमें भयकर कडवाहट पैदा हो जाती थी।

१९०५ ईसवीमें पाठककी लडकी (कुलवन्ती) मर गई। अब पाठकके चार नाती थे, तीन छोटे अपने घर पर रहा करते थे। पठकाइनने जोर दिया—नातियोके नाम लिखा पढ़ी कर देनी चाहिये, ज़िन्दगीका क्या ठिकाना है। १९०६मे पाठकने अपनी जायदादको नातियोंके नाम लिख दिया।

युद्धकी घोषणा हो गई। किन्तु बेचारी पठकाइन उस युद्धके प्रचड होनेसे पूर्व ही लेगमें चल बसी। नाती अब गाँवसे कुछ दूर निजामाबादके मिडिल स्कूलमे पढता था, जहाँ से छठे-छमाहे ही आता था, और जब झगडा जोर पकड चुका, तब तो आता भी न था। लड़ने वाले थे, एक ओर पाठकके भतीजे और दूसरी ओर पाठक और उनका दामाद। अनुकूल प्रतिकूल आदमी सभी जगह मिल जाते है। वही यहाँ भी हुआ। भतीजोंने पहिले तो हिब्बेको नाजायज़ करार दिलानेके लिए दीवानीमे मुकद्दमा दायर किया, किन्तु वह जानते थे, क़ानून उनके विरुद्ध है। फिर उन्होंने फ़ौजदारी मुक़द्दमे और मारपीट शुरू कर दी। फौजदारीमे तो जो पुलिसको खूब रुपया दे, झूठे-सच्चे गवाह दे, उसीकी जीत होती है। दोनो ओर से रुपया खर्च होने लगा। साल भर तक यह घमासान युद्ध होता रहा। जितनीकी जायदाद नही थी, उतनी हानि और खर्च पाठकके दामादको उठाना पड़ा। भतीजों-को भी उससे कम ख़र्च नही करना पड़ा। दोनोंको कुछ होश आने लगा। दामाद

साहव (गोबर्धन पाडे) भी समझने लगे—दूसरे गाँवमें आकर लालच करनेमे हम नुक्सानमे रहेंगे। उनके अपने घरका लेन-देन, खेतीवारीका काम विगड़ रहा था। अन्तमे महादेव पडित पच माने गये। पचने नातीको ग्यारह-वारह सौ रुपये दिलवाये। जमीन भतीजोकी हुई।

भतीजे अब भी पाठकको रहनेके लिये कह रहे थे, किन्तु पाठक समझते थे, कि किसी समय भी उन्हे ताना मारा जा सकता है। यद्यपि वह अपने सबसे छोटे भतीजेकी बहू (छोटी मामी कैलाशकी माँ)को देवता मानते थे। साथ ही पाठकको इससे भी कम ग्लानि न थी, कि जिस लडकीके गाँव तकमे धर्म-भीरु लोग पानी पीना नही चाहते, वही अपरिचित मुखडोके बीच उन्हे अपनी जिन्दगीका अन्तिम समय बिताना पड़ेगा। साँप-छछूँदरकी दशा थी। यदि पाठकने पहिले इस परिणामको जाना होता, तो अपने भतीजोको वह विरोधी न वनाते। एक दिन पाठक इच्छा या अनिच्छासे दामादके गाँवमे चले गये, साथ ही जवानीके लाये उस पत्थरके कोल्हूको भी लेते गये।

यद्यपि, जहाँ तक दामाद और सबधियोका सबध था, उनका वर्ताव अच्छा था, तो भी पाठकको वह स्थान अनुकूल नही, अपरिचित-सा जान पडता था। अब भी वह अपने शिकार, अपनी यात्राओकी बाते सुनाते थे, और सुनने वाले भी होते थे, किन्तु उन्हे कहनेमे वह रस न आता था। अब उनका अपना नाम चला गया था, और उसकी जगह वह अमुकके ससुर कहे जाते थे। पाठकका अपना मकान एक छोटे गाँवमे था, किन्तु वहाँ मील भरपर रानीकीसराय अच्छा बाजार था, और फेरीवाली खटकिने, कोइरने भी साग-भाजी लेकर आ जाया करती थी। इस झारखडके गाँवमें खाने-पीनेकी उन चीजोकी सुविधा न थी। ऊपरसे स्त्री-वियोग और पुत्री-वियोग चित्तको खिन्न किये रहता था। अब एक और घटना हुई, जिसने उनके जीवनको विलकुल ही नीरस बना दिया। पहले तो नानाकी विचित्र यात्राओकी वातोसे प्रभावित नाती केदारनाथ एक वर्ष घुमक्कडपनमे गवाँ आया। फिर मिडिल पास करनेपर उसपर दूसरा खब्त सवार हुआ। कहने लगा—अगरेजी म्लेच्छ भाषा है, मै तो संस्कृत पढूँगा, उसीमे स्वर्ग-मोक्षका मार्ग रक्खा है। घरवालोके जिद करनेपर एक दिन वह चुपकेसे निकल भागा। पाठकके लिए यह वात असह्य थी। उनका सारा प्रेम उसी नातीमे केन्द्रित था। जव उन्हे पता लगा, कि नाती वदरीनारायणकी ओर गया है, तो वह भी उधर चल पडे, किन्तु उससे भेट न हुई। पीछे नातीको

बनारसमे रहकर सस्कृत पढ़नेकी अनुमति हो गई। कुछ वर्षो तक वह बनारसमे सस्कृत पढता रहा, किन्तु इसी बीच १९१२ ईसवीमें पाठकने सुना, कि नाती साधु होकर कही चला गया।

पाठक अब जीवनकी अतिम सीमा पर पहुँच चुके थे। उनका शरीर और हड्डियाँ जितनी दृढ थी और जैसे वह नीरोग रहते आये थे, उससे अभी वह और जी सकते थे; किन्तु अब उन्हे जीनेकी चाह नही रह गई थी। १९१३में वह बीमार पड़े, जान गये अब चलना है। उस वक्त उनकी एक यही इच्छा थी, कि अन्तिम समय नातीको देख ले। किन्तु नाती उस समय डेढ हजार मील दूर मद्रासमे था। वह जानता भी न था और यदि सुन भी पाता, तो कौन जानता है, वह अपने वृद्ध नानाकी आत्मशान्तिके लिए उनके पास आना पसन्द करता। रामशरण पाठक एक दिन चल बसे और उस प्रथाको याद करते हुए जिसके द्वारा भाइयों-को वचितकर दूर गॉवके सबधियोको अपनी सपत्तिका उत्तराधिकारी बनाया जा सकता है।

## ४. गोबर्धन पांडे[1] (पिता)

पुजारी यह गोबर्धन पाडेका निजी नाम न था, किन्तु गाँव वाले जवानीसे ही उन्हे इस नामसे पुकारते थे।

पुजारीका जन्म १८७५ ईसवीमे ठेठ देहातके एक बहुत ही छोटे गाँव कनैलामे हुआ था। उनके गाँवसे कोस-कोस भर तक कोई कच्ची-पक्की सड़क न थी, डाक-खाना आठ मील दूर था और बाजार भी उतनी ही दूर। यही हाल पाठशाला या मदरसाका था।

पुजारी अपने पिताकी ज्येष्ठ सन्तान थे। उनके पिताकी अपने गाँवमे ही प्रतिष्ठा न थी, बल्कि आसपासके कितने ही गॉवोमे उनके बिना पंचायत न होती थी। ईमानदारी और विशालहृदयता उनकी पैतृक सपत्ति थी। पुजारीके पिता जानकी पाडे एक बड़े परिवारके प्रधान थे। यद्यपि जानकी पांडे अपने पिताके एक

[1] वंशके लिए देखो 'सांकृत्यायन-वंश" परिशिष्ट ३

मात्र पुत्र थे, तो भी अपने चचेरे तीन भाइयोके साथ उनका सगे भाईसे भी अधिक प्रेम था। सबसे छोटे महादेव पाडेको तो उन्होने दूरके गाँवमे सस्कृत पढनेके लिए भी भेजा था। यद्यपि उनकी पढाई 'सत्यनारायण' और 'शीघ्रवोध'से आगे नही बढी, तो भी उन्हे गाँवमे पडित कहा जाता था, और वह थे भी उस गाँवके लिए वैसे ही।

पुजारीके पिताका देहान्त ४५-४६ वर्षकी ही उम्रमे हो गया। उस वक्त पुजारी १५ वर्षके हो पाये थे। उनसे छोटा एक भाई प्रताप और तीन वहने वरता, शिव-वरता, महरानी थी, जिनमे सबसे छोटी ६-७ वर्षसे अधिककी न थी। पिताने रवाजके मुताबिक बडे लडके और बडी लडकीकी शादी १०-१२ वर्षकी ही अवस्थामे कर दी थी। पिताके मरनेके समय तीनो चचेरे चचा (मथुरा, गोकुल, महादेव) एक ही घरमे रहते थे। तीनो ही भलेमानस और अपने भाईके प्रेमपूर्ण वर्तावके चिर-कृतज्ञ थे। यदि उनकी चलती तो वह पुजारीको बापके मरनेका खयाल भी न आने देते, किन्तु पुजारीकी मा लखपती दूसरी धातुकी वनी थी। मीठी बोली तो मानो वह जानती ही न थी। जरा-सी वातमे चार सुना देना उनकी आदतमे था। पतिके जीते समय तो जबानपर भारी अकुश था, किन्तु पीछे कोई रोकने वाला न था। उनका हृदय बहुत सकीर्ण था। वह कुढा करती—खेतो और धनमे हमारा आधा हिस्सा होता है, देवर और उनके लडके-वाले हमारे धनको खा रहे है? जरा-सी बातमे वह ताना दे डालती थी। उनके देवर और देवरानियाँ पहिले वहुत लिहाज करती रही, किन्तु आये दिनकी किचकिचसे उनका नाको दम हो गया, और तीन वर्ष बीतते-बीतते उन्हे अलग हो जाना पडा।

× × ×

पुजारीकी माँ अब बहुत प्रसन्न थी। उन्होने घरमे ही नही, हर खेतमे आधा-आधा करवाया था। खेत उनके पास काफी थे। काम करनेके लिए कुछ चमार-और भर-घर भी मिले थे। किन्तु पुजारीको खुशी कहाँसे हो सकती थी? माँके झगडालू स्वभावके कारण १५ वर्षकी ही उम्रमे परिवारका सारा वोझ उनके कधे-पर आ पडा था। कहाँ खाने-खेलनेका समय और कहाँ यह जिम्मेवारी! उन्हे खेती-बारी और परिवारको ही सँभालना न था, वल्कि छोटे भाई और दो वहिनोकी शादी भी करनी थी। भाई-बधु इच्छा रहते भी सहायता न कर सकते थे, क्योकि पुजारीकी माँके स्वभावसे वे परिचित थे। कहावत थी—लखपतीके मारे कुत्ते भी दरवाजेपर नही फटक सकते।

कनैलाके आसपास पढनेका कही इन्तजाम न था, यह कह आये है। किन्तु पिताके जीते समय—जब पुजारी तेरह-चौदह वर्षके थे—तभी कहीसे भूले भटकते एक मुशीजी उस भारखडके गाँवमे पहुँच गये। यद्यपि पीढियोसे उस गाँवके ब्राह्मणोने विद्यासे नाता तोड़ रक्खा था, तो भी अभी कुछ श्रद्धा बाकी थी, और मुशीजीके पास आधे दर्जनसे ऊपर लडकोने पढ़ाई शुरू कर दी। दो-ढाई सप्ताहके भीतर ही अधिकाश घर बैठ गये। डेढ़ महीनेमे मुशीजी भी समझ गये—"धोबी बसिके का करे, दीगवरके गाँव।" मुशीजीके चेलोंमे पुजारी ही थे, जो अन्त तक डटे रहे। कोदो देकर पढनेकी कहावत बहुत मशहूर है; पुजारीने कोदो तो नही दिया, किन्तु कहते है, दक्षिणामे मुशीजीको कुछ धान ही मिला था।

इस प्रकार पंद्रह वर्षकी उम्र, डेढ़ महीनेकी पढाई और नीमसे भी कडवे जबानवाली मा—इन तीनो साधनोके साथ पुजारी गृहस्थी सँभालनेके काममे लग गये।

× × ×

पुजारी गोवर्धन पाडे असाधारण मेधावी थे। बत्तीस वर्षकी उम्रमे उनका जो ज्ञान था, उसे देखकर कोई नही कह सकता था कि उनकी पढाई सिर्फ डेढ महीनेकी है। उनमें ज्ञानकी बडी प्यास थी। अथवा ज्ञान कौन-कौन है, यह भी तो उन्हे मालूम नही था, फिर प्यास कहाँसे आती? हाँ, काममे जिस ज्ञानकी जब-जब आवश्यकता होती, वह उसके पीछे पड जाते और न जाने कहाँ और किसके पाससे सीखकर ही छोडते। उन्हे जोड, बाकी, गुणा, भाग ही नही मालूम था, बल्कि भिन्न, त्रैराशिक और पचराशिक भी लगा लेते थे। एक समय गाँवमे सरकारी पैमाइश शुरू हुई। उस समय उन्होंने अमीनोके पास बैठकर पैमाइशका हिसाब भी सीख लिया।

गोवर्धन पाडेकी पूजापाठमें बडी श्रद्धा थी, इसीसे अठारह वर्षकी उम्रमे ही वह पुजारी कहे जाने लगे। वह बिना स्नान-पूजाके पानी भी नही पीते थे। उनके पाठमे यद्यपि पहले हनूमान-चालीसा था, किन्तु धीरे-धीरे हनूमान-बाहुक, विनय-पत्रिका और रामायण भी शामिल हो गये। रामायणके उन्होने बहुत पाठ किये थे, और उसके ज्ञानदीपक जैसे स्थलोंका उनका किया अर्थ बहुत बुरा न होता था। हर एक धर्मभीरु ब्राह्मणको अच्छी बुरी साइतका ज्ञान रखना जरूरी ठहरा। पुजारीके सारे गाँवके ब्राह्मणोंके लिए कुल मिलाकर सिर्फ एक घर यजमान था। यदि यजमानी बड़ी होती

तो शायद पुजारीको कुछ और पढनेका अवसर मिला होता। जब उनकी स्त्री (कुल-वन्ती) बीमार पडी, उस समय उन्होने 'रसराज-महोदधि'को भी मँगा लिया, और यदि लोग कच्चे औषधकी भयकरताका डर न दिखलाते, तो शायद वह अपने बनाये मडूरसे ही पत्नीकी चिकित्सा करते। उस समय अखबार अभी गाँवो तक नही पहुँचे थे, तो भी जिन पुस्तकोका गाँवोमे प्रवेश था, पुजारी उन्हे पढ-समझ सकते थे।

एक ओर पुजारी कट्टर पुजारी थे, दूसरी ओर नई बातोके सीखनेके लिए उनका दिमाग बिलकुल खुला था। पुजारीकी बस्तीके भीतर सिर्फ एक कुआँ था, जिसके लबे चौडे आकार और टूटी-फूटी हालतको देखकर लोग उसे सतयुगके आसपासका बना कहते थे। उसकी ईंटे एक ओरसे पहले ही गिर चुकी थी। एक दिन वह सारा ही कुआँ बैठ गया। अब लोगोको दूरके कुयेसे पानी भरकर लाना पडता था। पुजारी उस समय ३०-३१ वर्षके हो चुके थे। उनके पास धन भी था। उन्होने अपने द्वार पर एक कुआँ बनवाना चाहा। उन्होने अपने दिलमे कुएँका नक्शा खीचा—कुआँ ऐसा हो, जिसकी दीवारसे घडा न टकराये; यदि नीचेकी अपेक्षा कुयेका ऊपरी भाग सकीर्ण कर दिया जाय, तो यह हो सकता है। ईंटोके भी प्रचलित आकारको छोडकर उन्होने अपने मनके आकारकी ईंटोका साँचा बनवाया। उनमे कुछ तो डेढ फुट लबी और ६-७ इच चौडी थी। अपने गाँवकी 'बडी पोखर'की प्राचीन ईंटोको देखकर शायद उनको इतनी लबी ईंटोके बनवानेका साहस हुआ। उस कालकी ही भाँति यदि ईंधनकी इफरात होती और ईंधन ठीक तरह लगाया जाता, तो कदाचित वे पक जाती। किन्तु पुजारीका ध्यान इधर न गया, और ईंटे बहुत-सी अधपकी रहकर टूट गई। तो भी उनके काम भरके लिए ईंटे तैयार मिल सकी। पुजारीके बुलानेपर उनके ससुर पाठकजी कुआँ बँधवानेके लिए राज लिवाकर आये। ईंटोके विचित्र आकारको ही देखकर ससुर और राज दोनोंका माथा ठनका। उसपर पुजारीने कुआँ बाँधनेकी अपनी योजना पेश की। राज चिल्ला उठा—अरे! यह क्या कह रहे हो? यदि कुयेका मुँह सिकोड दिया जायगा, तो ईंटे कुछ ही दिनोमे आगेकी ओर गिर जायँगी। पुजारी ने कहा—और मेहराबमे ऐसा क्यो नही होता?

खैर, पुजारीके आग्रहको देखकर राजने उसी प्रकार कुएँको बाँधना शुरू किया। कुछ दूर बाँधने और मिट्टी निकालनेपर कुआँ भीतरसे बहुत बालू फेकने लगा। राजने सारा दोष कुएँकी नई चिनाईके मत्थे मढा और फिरसे उखेडकर पुरानी चालमे बाँधनेके लिए कहा। किन्तु पुजारी कब माननेवाले थे। जब कुआँ सही सलामत

बनकर तैयार हो गया, तब पाठकजी कहने लगे—तैयार तो हो गया, किन्तु इसकी शकल कुइँयाँ-सी है; पुराने ढगसे बनवाने पर यह एक अच्छा खासा कुआँ मालूम होता।

× × ×

पुजारीने छोटे भाईको अपने बहनोई महादेव पडित (बछवल) के घर पढनेके लिए भेजा था, किन्तु उसने इतना ही पढ़ा—'ओनामासिधम, बाप पढ़े ना हम्।' दो-चार बार भाग आनेपर पुजारीने और जोर देना छोड दिया। दोनों बहिनो और भाईकी भी शादी कर दी। अब दोनो भाई मिलकर खूब मेहनत करते थे। घरके प्रबधमे मा बहुत दक्ष थी। हर साल ही खर्च करनेके बाद कुछ पैसा और अनाज बचने लगा। पुजारीने उसे सूद और सवाई पर देना शुरू किया। सूद और मूलमें गाँवके कुछ लोगोंके खेत भी अपने पास रेहन आये। यद्यपि गाँवमे ट्रीनीडाडसे लौटे जयपाल पाडेके पास सबसे अधिक खेत थे, किन्तु अगहन बीतते-बीतते उनका घर अनाजसे खाली हो जाता था, और उधार और खरीदकी नौबत आती थी; इसीलिए पुजारी गाँवमें सबसे अधिक धनी समझे जाते थे।

पुजारीका जीवन अब सुखका जीवन था। यद्यपि सट्टेके रोजगारियो और सौदागरोकी भाँति तो नही, फिर भी पुजारीका धन प्रति वर्ष बढ रहा था। उन्हे अभी तक कचहरियोसे वास्ता न पडा था, किन्तु इसी समय पुजारीके गाँवमे पैमाइश होने लगी। अभी तक खेत, बाग, परती सभीका हिसाब पटवारीके यहाँ रहता था; किन्तु अमीनोने पैमाइशके साथ दखल-कब्जा पूछना शुरू किया। यही तो कमानेका समय होता है। यदि इधरकी उधर और उधरकी इधर न करे, तो खाक कोई अमीन-को पूछेगा। हाँ, यह ऐसा भी समय है, जब पहलेकी पैमाइशकी बेइमानियाँ भी प्रकट होने लगती है। हम कह चुके है, पुजारी बडे मेधावी पुरूष थे। गाँवमे आये हुए अमीनके पास जाकर वह कागज-पत्र देखने लगे। उन्हे मालूम हुआ कि पहलेके कितने ही उनके खेत औरोंके कब्जेमें है। कुछमे इधर नये सिरेसे गोलमाल हुआ है। पुजारी उन आदमियोंमेसे थे, जिनका सिद्धान्त होता है—न अपना एक पैसा जाने देना और न दूसरोंका एक पैसा लेना। अब पुजारीके लिए बन्दोबस्तके डिप्टीके पड़ावो और जिला तथा तहसीलकी कचहरियोपर धरना देना जरूरी हो गया। जिस पूजाके नियमके कारण उनका नाम पुजारी पडा था, वह छूटे कहाँसे? उसमे तो कुछ वृद्धि भी हुई थी। यदि पहले एकादशीका ही व्रत होता था, तो अब महीनेके

चार अलोने अतवार भी शामिल कर लिये गये थे। कचहरीका काम तो घरकी तरह अपने वशका नही, और बिना पूजा-स्नानके पुजारी पानी भी नही पी सकते थे। फलत कभी-कभी सूर्यास्त और पुजारीकी स्नान-पूजा साथ-साथ होती थी। उन्होने गगातट या काशीमे बाल बनवानेका भी नियम कर लिया था, इसलिए उनके दाढी-बाल दो-दो चार-चार महीनो तक नही बन पाते थे।

पुजारी यद्यपि धार्मिक और श्रद्धालु आदमी थे, तो भी उनकी श्रद्धा अधश्रद्धा न थी। यही कारण था, जहाँ गाँवके लोग सभी लबी दाढी, भारी जटा, छोटी लँगोटी और सफेद भभूतको साष्टाग दडवत करना अपना धर्म समझते थे, वहाँ पुजारी बिना गुणकी परख पाये ऐसे साधुओकी आवभगतसे दूर रहते थे। हाँ, उनके गाँवसे कुछ दूर उमरपुरके निर्जन स्थानमे एक वृद्ध परमहस रहा करते थे, जिनकी आयुके बारेमे बूढे-बूढे लोग भी कसम खानेके लिये तैयार थे कि उन्होने जबसे होग सँभाला तबसे परमहस बाबाको ऐसा ही देखा। यह भी कहा जाता था कि परमहस बाबा अपनी जन्मभूमि (पोखरा) नेपालसे विद्या पढनेके लिए बनारस आये थे, वही पीछे विरक्त हो राजघाटके पास एक कुटियामे रहने लगे। जब राजघाटमे रेल आई और उसकी गडगडाहटसे उनके ध्यानमे विघ्न पडने लगा, तो वह मुफ्तमे मुक्त देनेवाली काशीको छोडकर अपने एक भक्तके साथ पुजारीके आसपास वाले प्रदेशमे चले आये। पुजारी परमहसजीके प्रति बडी श्रद्धा रखते थे। हर चौथे-पाँचवे दिन वह दर्शनार्थ वहाँ पहुँचते थे।

पुजारीके सुखमय जीवनकी दिशाका अब अन्त हो रहा था। इतने समयमें उनकी आर्थिक अवस्था ही अच्छी नही हो गई थी, बल्कि उनके एक कन्या और चार पुत्र भी हो चुके थे। पिताकी मृत्युके बाद घरमे किसीकी मृत्युसे उन्हे अपनी आँखें भिगोनी नही पडी थी। एक तरह वह भूल ही गये थे, कि ससारमे मृत्यु भी कोई चीज है। इसी समय पुजारीकी धर्मपत्नी बीमार पडी। पुजारीके उस झारखडके गाँवमे वैद्य पहुँचते ही कहाँ थे? ओझा-सयाने ही सुलभ थे, किन्तु पुजारी उन्हे फूटी आँखसे भी देखना नही चाहते थे। उनकी माँने एक-आध बार चुपकेमे जाकर अपने देवर ओझासे पूछा और सहृदय ओझाने बताया कि सारा फिसाद घरके पास बाँस वाली चुडैलका है, किंतु पुजारीके मारे उसकी शान्ति-पूजा हो तब न! पुजारी इस समय स्वय "रसराजमहोदधि"के पन्ने उलट रहे थे। उन्हे यह मालूम

हो गया कि स्त्रीको पांडु रोग है। कुछ अपनी और कुछ दूसरे यमराज-सहोदर वैद्योंकी दवा भी की; और भी जो उपचार बन पड़ा, किया; किन्तु, कुछ महीनोंकी बीमारीके बाद स्त्री चल बसी। बाहर प्रकट न करनेपर भी पुजारीको बड़ा दु:ख हुआ।

इस समय पुजारी पूरे तीस वर्षके भी न हो पाये थे। खाते-पीते व्यक्तिका व्याह करनेके लिए सभी लोग तैयार रहते हैं। स्त्रीकी वर्षी भी न हो पाई थी, कि व्याह करने वाले मँडराने लगे। लेकिन पुजारीने साफ कह दिया—मेरे पाँच बच्चे हैं। व्याहका फल मुझे मिल चुका है। अब मुझे शादी नहीं करनी है।

पुजारीके इस दु:खको कम करनेमें सहायक कुछ और भी बातें थीं। सबसे पहले तो उनके अपने मनकी दृढ़ता थी। बच्चोंका प्रेम भी मददगार था। उनका भाई बहुत ही आज्ञाकारी था—इतना आज्ञाकारी कि कभी-कभी इसके लिए उसे अपनी स्त्रीका ताना सुनना पड़ता था। पुत्रोंके सयाने होनेपर पुजारीको और अच्छे दिनोंकी आशा थी।

× × ×

पुजारीके धार्मिक विचारोंमें उदारता, दया भी सम्मिलित थी।

एक समयकी बात है। पुजारी उस समय २०-२१ वर्षसे अधिकके न रहे होंगे। वह एक जगह चुपचाप उदास बैठे थे। साधारण उदास नहीं, बहुत ही उदास। कारण यह था। पुजारीके पूर्वज कुछ पीढ़ी पहले सरयूपारसे आकर इधर बस गये थे। अब भी लोग कमसे कम अपनी कन्याओंको सरयूपार (गोरखपुर ज़िलेमें) ही व्याहना पसन्द करते थे। वह अपनी दोनों छोटी बहनोंके लिए वर ढूँढने सरयूपार गये। लोगोंने भुलावा देकर एक घरके दो लड़कोंका तिलक चढ़वा दिया। घर आनेपर पता लगा कि वरवाला घर किन्हीं कारणोंसे नीच समझा जाता है। उन्होंने तिलक लौटा देनेकी बात कही, जिसपर वरवाले तरह-तरहकी धमकी देने लगे। पुजारीके भाई-बन्धु भी उन्हें समझाने लगे। किन्तु, पुजारी कब अपनी बहनोंको कुजातके घर व्याहने लगे? बहुत जोर देनेपर वह फूट-फूटकर रोने लगे, और बोले—मैं दोनों बहनोंको गलेसे बाँधकर पानीमें डूब मरूँगा, पर उस घरमें शादी नहीं करूँगा।

आखिर पुजारीने वहाँ शादी नहीं की।

और जगहोंकी भाँति पुजारीके गाँवमे भी गरीब व्यक्ति विना व्याहे ही बूढे हो जाते थे। गाँवका एक ब्राह्मण तीस वर्षसे ऊपरका हो गया था, और अब तक उसका ब्याह नही हुआ था, न होनेकी आशा ही थी। दूसरे गाँवमे उसकी रिश्तेदारीमे एक तरुण-विधवा थी। दोनोंका देवर-भाभीका नाता था। नित्यकी आवाजाहीसे दोनोंमें प्रेम ही नही हो गया, बल्कि छिपकर रखनेकी अपेक्षा वह अपनी भावजको घरपर लाकर रखने लगा। पहले तो मालूम हुआ, वह मेहमानीमे आई है, किन्तु पीछे बात प्रकट हो गई। पुजारीको यह बात असह्य मालूम हुई और वह बलपूर्वक उस विधवाको गाँवसे निकालनेके लिए गये। बडी मुश्किलसे लोग उन्हे मनाकर लाये। कहते थे—गाँवमे यह बहुत ही बुरा उदाहरण होगा, इसे देखकर यह रोग औरोमे भी फैलेगा।

इस घटनासे पुजारीकी सामाजिक अनुदारता सिद्ध होगी, तो भी यदि पुजारीको दुनियाके बारेमे और अधिक सुनने-जाननेका मौका मिला होता, तो वह अपने विचारोको जल्दी बदल भी देते, समझमे आ जानेपर वह किसी बातके लिए दुराग्रह नही करते थे।

पुजारीकी तीन हरकी खेती थी, जिसमे एक हलवाहा था चिनगी चमार। चिनगी किसी समय कलकत्तामे किसी साहबका साईस रह चुका था। उसके एक लड़का कलकतिया और तीन लडकियाँ थी। ब्याह हो जाने पर लडकियाँ अपने घर चली गईं, और कुछ समय बाद चिनगीका एकलौता बेटा मर गया। पुत्रस्नेह बहुत बड़ी चीज होती है, किन्तु इन मजदूर-जातियोके लिए बेटा तो बुढापेका बीमा होता है। खुशी-नाराजी जैसे भी हो, उसे अपने बूढे माँ-बापका बोझा उठाना ही पडता है। बूढे चिनगीके लिए पुजारी भारी अवलम्ब थे। वह उसके पुत्र-शोक और भूखको मिटानेका बहुत ध्यान रखते थे। इसके लिए पुजारीकी मा कभी-कभी बोल भी उठती थी। कुछ दिन बीमार रहकर एक दिन माघकी बदलीमे चिनगी चल बसे। लोगोंको बहुत अचरज हुआ, जब पुजारीने कहा—चिनगी भगतकी दाह-क्रिया गगातटपर (जो वहाँसे प्राय: तीस मीलपर था) होगी। शर्म-सकोच या दबावसे ही चिनगीके भाई-बन्धु उस बदलीमे लाश ले जानेके लिए तैयार हुए। पुजारीने साथ जाकर गंगातटपर चिनगीका दाह-कर्म कराया, क्रिया-कर्म भी हुआ। लोग कहते थे, पुजारीपर चिनगीका पहले जन्मका कर्ज था।

पुजारीका एक बलिष्ठ बैल एक दिन लडते-लडते उनके अपने बनवाये कुएँमे गिर पडा। बहुत प्रयत्नसे जीता तो निकल आया; किन्तु उसका पिछला एक पैर

बेकार हो गया। लँगड़े बैलसे कोई काम लेना मुश्किल था। कम खेतवाले कुछ लोगोने कई बार कहा—बैल हमें बेच दीजिए। पुजारीका कहना था—बैल न बेचा जा सकता है और न कामके लिए दिया जा सकता है। तन्दुरुस्त और मजबूत होते वक्त उसने हमे कमाकर खिलाया। क्या काम न कर सकनेपर बूढ़े माँ-बाप बेच दिये जाते है ?

थोड़ी-सी महाजनीके अलावा पुजारीका प्रधान पेशा था खेती। खेतीके सबधमें किसान कट्टर सनातनी होते है। पुजारीका गाँव कनैला बाजार, स्टेशन, शहर, सडक सभीसे बहुत दूर था, इसलिए उनके गॉवमे खेती-संबधी नई बातोका पहुँचना मुश्किल था। तो भी पुजारी लोगोंके मजाक करते रहने पर भी घरके कामके लिए आलू, मूली, गाजर और गोभी बोने लगे थे। एक बार वह कही लाल रग वाली बड़ी ऊख देख आये। उसे लाकर उन्होने पाँच बिस्वा खेतमे बो दिया। गाँव और घर वाले कहते ही रह गये—यह ऊख क्या कोल्हूमे जाने पायेगी, इसे तो लोग दातोसे ही साफ कर डालेगे। ऊखकी फसल अच्छी हुई, साथ ही लोगोंकी बात भी सच निकली, और नरम तथा मोटी ऊख पर छिप-छिपकर बहुतोने दाँत साफ किये। किन्तु उससे यह फ़ायदा हुआ, कि दूसरे साल गॉवमे कई और आदमियोने उसी गन्नेकी खेती की। तीसरे साल तो पुजारीने डेढ-दो एकड़ बोया। ऊख इतनी जबर्दस्त हुई कि घर वाले चिन्ता करने लगे—यह ऊख तो साझेवाले पत्थरके कोल्हूमे आषाढ़ तक भी खत्म न होगी। पुजारीने पहले आसपाससे पत्थरका कोल्हू खरीदना चाहा। न मिलनेपर बनारसके पास तक की हवा खा आये। पुजारी किसी बातका फ़ैसला तुरन्त नही कर सकते थे। इसीलिए उन्हे अनेक बार मीठी-कडवी भी सुननी पडती थी। पाठक जी तो उन्हे 'जुडवा-रोग' (ठडकका रोग) कहा करते। दो-तीन बार खाली हाथ लौटने तथा कामके डेढ-दो मास निकल जानेपर घर वाले और नाराज़ हुए। अन्तमे हफ़्तेभर गुम रहनेके बाद एक दिन पुजारी बैलपर लोहेका कोल्हू लदवाये पहुँच गये। गॉवमे, और शायद उस देहातमें भी, वही पहला लोहेका कोल्हू था। लोग डर रहे थे—कल तो अक्सर बिगड जाया करती है; बिगड़ जानेपर कौन मरम्मत करेगा ? किन्तु पुजारी बेफिक्र थे। सयोगसे कोल्हू बहुत अच्छा निकला। उसी साल उसका दाम सध गया। तीन-चार साल काम लेकर पौन दामपर उन्होने उसे बेच भी डाला।

पुजारी सादगीके पुजारी थे। वह एक-नम्बर वाली मार्कीनको बहुत पसन्द करते थे। कहा करते थे, यह कपड़ा बहुत मज़बूत होता है, जाड़ा-गर्मी दोनोमे काम आ सकता

है; इसको पहनने वाला न शौकीन ही कहा जाता है और न दरिद्र ही। खद्दरके युगसे कुछ दिन पूर्व ही वह इस ससारसे चल दिये, नही तो पुजारी उसके अनन्य भक्त होते।

पुजारीकी भूरे बालोवाली गोरी-गोरी एक-मात्र कन्या रामपियारी माँकी मृत्युके एकाध ही वर्ष बाद मर गई। पुत्रोमे बडा ननिहालमे पढता था, बाकी तीन, गाँवसे तीन मील दूरके मदरसेमे पढनेके लिए बैठा दिये गये थे। पुजारी अभी भविष्य-का सुख-स्वप्न देख रहे थे। इसी समय एक घटना घटी, जिसने उस स्वप्नको चूर-चूर कर दिया। उनका बडा लड़का केदारनाथ अब पिताके गाँवमे अधिक आने-जाने लगा था। पिता और उनके मित्रोंकी देखादेखी वह भी परमहस बाबाकी कुटियामे पहुँचने लगा, और परमहसजीके एक शिष्य उसके कानमे वेदान्त और वैराग्यका मन्त्र फूँकने लगे। वैराग्यशतक और विचार-सागरके साथ देश-देशके नदी-पर्वत, नगर-अरण्यके मनोरम चित्र उसके सामने खिंचने लगे। इसका असर पडना ज़रूरी था। आखिर पुत्रने भी पिताकी भाँति पूजा-पाठ शुरू किया, त्रिकाल सन्ध्या-स्नान और एकाहार आरम्भ किया। पुजारीको तो इससे चिन्ता न हुई, किन्तु घरके सारे लोग सोलह वर्षके लडकेके इस रग-ढगको देखकर आशकित होने लगे।

एक दिन (१९१० ईसवी मे) अचानक लड़का गायब हो गया। यद्यपि दो बार पहले भी वह भागकर कुछ महीने कलकत्ता रह आया था, किन्तु तब वैराग्यका भूत सिरपर सवार न होनेसे उतना डर न था, इसीलिए उस समय इतनी चिन्ता न हुई थी। पुजारीकी चिन्ता तब दूर हुई जब उन्होने सुना, लडका घूम फिरकर बनारस लौट आया है और वहाँ सस्कृत पढ रहा है। पुजारीने खुशीसे सस्कृत पढनेकी अनुमति दे दी, और उन्हे आशा हो चली कि अब वह हाथसे न जायगा।

दो वर्ष बीतते-बीतते उन्होने सुना—लडका बनारससे कही चला गया। कुछ महीनो बाद जब उन्हे मालूम हुआ कि वह दूसरे प्रान्त (बिहार)के एक मठमे साधु हो गया है, तो वह अपने बहनोई महादेव पडितको लेकर वहाँ पहुँचे। उन्होने लडकेकी अनुपस्थितिमे समझा-बुझाकर मठके महन्तजीको इस बातपर राजी कर लिया कि वह घरवालोको दर्शन देनेके लिए एक बार अपने चेलेको जाने दे। लौटानेका वादा तो झूठा था, तो भी भोलेभाले महन्तजी पडितजीकी चिकनी-चुपडी बातोमे आ गये। आनेपर लडकेको यह बात अरुचिकर मालूम हुई, किन्तु दूसरा चारा न था। लड़का घरपर लाया गया। अब एक ओर तो लड़केके लिये (पुजारीके स्वभावके विरुद्ध) शौकीन कपडो तथा पान आदिका प्रबन्ध किया गया और दूसरी ओर उनके

जाने-आनेपर कड़ी निगाह रक्खी जाने लगी। लड़का एक बार भागा, लेकिन स्टेशन-पर पुजारीने जा पकड़ा। इस तरह काम न बनते देखकर लड़केने विश्वास पैदा कराना चाहा, और तीन मास तक अवसर ढूँढ़नेके बाद वह अपने इस बन्दी-जीवनसे मुक्त हुआ।

पुजारीको इसका कितना दुःख हुआ, यह इसीसे मालूम होगा, कि चिन्ताके मारे दो वर्ष बीतते-बीतते उनके दिमाग़में एक प्रकारका उन्माद हो गया। लड़का उस समय आगरेमें पढ़ता था। एक मित्रने सब हाल बताकर एक बार पिताको देखनेके लिये कहा। इसपर लड़का घर आया। पुजारीको प्रसन्नता ही नहीं हुई, बल्कि जब उनके दिमाग़की गर्मी दूर करनेके लिए फ़स्द खोलनेवाला लाया गया तो उन्होंने कहा—क्या करोगे? अब मेरी तबीअत अच्छी हो गई। एक हफ़्तेके बाद लड़केको इच्छानुसार जाने भी दिया गया।

X X X

दो वर्ष और बीत गये। लड़केका कोई पता न था। एक दिन पता लगा, वह बनारस आया हुआ है। फिर ज़बर्दस्ती घरपर लाकर नज़रबन्दीका वही अस्त्र काममें लाया गया। उसने अपने बन्धुओंसे कह दिया—इस बार निकल जानेपर फिर तुम नहीं पकड़ सकोगे। आख़िर आदमीका बच्चा कब तक बाँधकर रक्खा जा सकता है? एक दिन वह निकल भागनेमें समर्थ हुआ। बनारससे वह विन्ध्य-पर्वतकी तलहटीमें पहुँचा। किन्तु पुजारीको लड़केके एक मित्रने बता दिया, और वह वहाँ जा पहुँचे।

पुजारी उन आदमियोंमेंसे थे, जो घोरसे घोर वेदनाको हृदयके भीतर इस तरहसे छिपा सकते हैं कि उसकी छींट आँख तक भी नहीं पहुँचने पाये। तो भी एक बार उन्होंने पुत्रके सामने दिल खोलनेका प्रयास किया। 'नहीं' कहके अभी हल्ला-गुल्ला सुननेकी हिम्मत न होनेसे पुत्रने उन्हें वहीं कहीं रहकर प्रतीक्षा करनेके लिए कह दिया। पुजारी यद्यपि पुत्रकी मानसिक अवस्थाको समझने लगे थे, और कभी-कभी चाहते भी थे, कि उसे अपनी मर्ज़ीपर रहने दिया जाय, किन्तु अन्तमें पुत्रस्नेहका पल्ला भारी हो जाता था।

उनकी वह अर्द्ध-विक्षिप्तावस्था जानकारोंके हृदयमें सहानुभूति पैदा किये बिना नहीं रहती थी। लड़का जिनका अतिथि था, उनकी माता पुजारीकी अवैतनिक गुप्त-चर थीं। कुछ सप्ताहों बाद जब लड़का चुपचाप एक्केपर सवार होकर स्टेशनकी ओर

भाग चला, तब पुजारीको खबर मिलते देर न लगी, और एक्केके पहुँचनेके कुछ ही देर बाद वह भी स्टेशन आ धमके। दस या बारह मीलके रास्तेको उन्होने दौडकर ही काटा होगा। वह जानते ही थे कि एक बार रेलमे बैठ जानेपर उसे पाना उनके लिए असम्भव हो जायगा। ट्रेनके आनेमे पन्द्रह-बीस ही मिनटकी देर थी।

लडकेने साथ छोड देनेके लिए जब कुछ अधिक कहना चाहा, तो पुजारी बच्चोकी भाँति फूट-फूटकर रोने लगे। स्टेशनके यात्री इकट्ठे होकर उसको लानत-मलामत करने लगे। जान बचानेके लिए उसे फिर बनारस आना पडा। बनारसमे आकर उसने समझाकर कह दिया—आप पकड़कर मुझे नही रख सकते। मेरी इच्छा घर जानेकी बिलकुल ही नही है। घर न जानेकी मै प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। आपके हठसे अपने ध्येयको छोडनेकी अपेक्षा मुझे मरना प्रिय होगा।

पुजारी शायद पहलेसे काफी सोच चुके थे। उन्होने तुरन्त और बहुत सक्षेपमे कहा—अच्छा अब मै तुम्हे नही रोकूँगा, किन्तु मै भी घर न जाऊँगा। यही काशीमे रहकर जिन्दगी बिता दूँगा।

लडकेको इतनी आसानीसे छुटकारा पानेकी कभी आशा न थी। वह दूसरी ट्रेनसे चला गया।

× × ×

कितने ही महीनोके बाद घरवाले मनाकर पुजारीको घर ले गये। घर उन्हे काल-सा लगता था। धीरे-धीरे फिर चिन्ताने देह और दिमागपर प्रभाव जमाया। इसी दुखमय चिन्ताग्रस्त अवस्थामे उन्होने चार वर्ष और विताये। १९२० ईसवीका जूनका महीना था, जब कि सुदूर दक्षिणमे बाल-मित्र यागेशका पत्र मिला—मामा-का देहान्त हो गया। पुत्रकी आँखोमें आँसू नही आये। चिट्ठीकी बात पूछनेपर उसने जिस प्रकार अपने मित्रोको यह खबर सुनाई, उससे वे बोल उठे—तुम्हारा दिल पत्थरका है, पिताकी मृत्युको सुनकर भी तुम्हे रज नही हुआ।

उन्हे पुत्रके हृदयके भीतरकी वास्तविक दशा यदि मालूम होती, तो ऐसा न कहते।

## ५. चौंतीस साल बाद

चौंतीस साल क्या होता है, इसका साक्षात्कार मुझे अबसे पहिले कभी नहीं हुआ था। गिननेको कई घटनायें थीं, जिन्हें चौंतीस क्या उससे भी अधिक सालोंमें मैं गिन लिया करता था; मगर चौंतीस सालका ठीक-ठीक रूप मुझे तभी मालूम हुआ, जब मैंने अपने जन्मग्राम पन्दहा—जो मेरे नानाका भी ग्राम है—में उन चेहरोंको देखा, जिन्हें मैंने यौवनके वसंतमें देखा था। और आज? मेरी तीन मामियोंमेंसे एक सूरजबली मामाकी बहूको ले लीजिये। १९०९ ई०में उन्हें मैंने २०-२२ सालकी तरुण सुन्दरीके रूपमें छोड़ा था और आज उनके चेहरेपर गंगा-यमुनाके असंख्य नाले खिचे हुये हैं। ऊपरसे एक आँख भी जाती रही है। आज उस सुन्दर चेहरेका कहीं पता नहीं। पंदहाके आजके निवासियोंमें मेरे परिचित चेहरोंकी संख्या एक दर्जनसे अधिक नहीं होगी, और उन सबकी हालत पके आम कीसी है।

सारे परिचित चेहरे यद्यपि अधिकतर सदाके लिए विलुप्त हो चुके हैं, तथापि उनकी जगह मैंने बहुतसे तरुण चेहरे देखे और उनमेंसे कितनोंसे परिचय प्राप्त किया। इन नव-परिचित चेहरोंका साक्षात् होनेसे जो आनंद हुआ, उसीने इस बातकी न्याय्यताको समझा दिया, कि नयोंके आनेके लिए पुरानोंका स्थान खाली करना जरूरी है।

सत्ताईस साल हो गये, जबसे मैं अपने आजमगढ़ जिलेमें नहीं गया था। पचास साल पूरे होनेके साथ ९ अप्रैल १९४३के बाद, मैं आजमगढ़ जिले में जानेके लिए स्व-तंत्र था। यद्यपि इस समयकी प्रतीक्षा मेरे बन्धुओंकी तरह मैं भी कर रहा था, किन्तु दूसरे कामोंको देखते हुये मैं समझ रहा था कि शायद इस वर्ष जानेका मौका न मिल सकेगा। लेकिन समय मिल गया।

१२ अप्रैलकी रातको एक बजे सीवान (छपरा)से नागार्जुन और मैं रेलद्वारा आजमगढ़को रवाना हुए। मऊमें एक बजे दिनकी तपती भूमिपर भी पैर रखते वक्त एक तरहका आनंद मालूम होता था। मालूम हो रहा था, किसी न्यामतसे मैं अब तक वंचित था और आज मुझे वह मिल रही है। दूसरी ट्रेनके जिस डिब्बेमें हम बैठे, उसमें कितने ही बलिष्ट ग्रामीण भद्रजन बैठे थे। उनके लंबे चौड़े स्वस्थ शरीरको देखकर मुझे अभिमान हो रहा था। वे उसी भाषाको बड़ी जिन्दादिलीके साथ बोल

रहे थे, जिसे मैंने भी माँके दूधके साथ सीखा था। मुझे इसका अफसोस हो रहा था कि मै उसे अब नही बोल सकता।

आजमगढ़ जिलेके सात दिनके निवासमे अपने बन्धु-मित्रोंसे उनकी भाषामे बोलनेका प्रयास मैंने करके देखा, लेकिन मेरे मुँहसे छपराकी बोली निकलती थी।

आजमगढ़के तरुण साहित्यिक श्री परमेश्वरीलाल गुप्त स्टेशनपर मौजूद थे, इस-लिए शहरमे धर्मशाला ढूँढ़नेकी जरूरत नही पडी। मै इस यात्रामे एक तीर्थयात्रीके तौरपर गया था और शैशवके स्मरणीय स्थानोंके साथ फिरसे परिचय तथा साक्षात्कार की लालसा रखता था; इसलिए मै सार्वजनिक रूपसे किसी समागम या अभिनन्दनमे शामिल नही होना चाहता था। गुप्तजीने मेरे भावोका ख्याल किया, यह प्रसन्नताकी बात है।

आजमगढ शहरसे यद्यपि मेरा जन्मग्राम पन्दहा, सात मीलसे ज्यादा नही है, मगर मै शहरमे बहुत कम गया हूँ। वहाँके तहसीली स्कूलको देखा था। अबकी गया तो देखा, वह दूसरी जगह चला गया है। मकान नया है, किन्तु पुराने मकानकी श्रीहीनता कायम रखनेकी पूरी कोशिश की गई है। शिवली-मजिल आजमगढ़की एक खास चीज है। इस्मालिक सस्कृतिके मर्मज्ञ, अरबी-फारसीके महा-विद्वान् अल्लामा शिबली एक महान प्रतिभा थे। उन्होने अपनी लेखनी अध्ययन-अध्यापन द्वारा देशकी भारी सास्कृतिक सेवा की है। यह देखकर बडी प्रसन्नता हुई, कि उनके कामको और भी विस्तृत रूपमे जारी रखकर मौलाना सुलेमान नदवीने अपने गुरुकी जीवित यादगार कायम रखी है। शिवली-मजिलमे कितने ही विद्वान बडे त्याग और तन्मयताके साथ इस्लामिक अनुसधान और ग्रथ-प्रणयनमे लगे रहते है। शिबली मजिलका दार्-उल-मुआरिफ उर्दू-साहित्यको बहुत समृद्ध कर रहा है।

१३ अप्रैलको सबेरे आठ बजे हम दोनों इक्केसे रानीकीसरायके लिए रवाना हुए। शहरसे बाहर निकलते-निकलते पुलिसवालोने हमारे एक्केवालेकी जो गत बनाई, वह एक नया अनुभव था—आज पुलिस सर्व शक्तिमान् है।

बचपनमे पॉच-छ सालकी उम्रमे जब मैंने पढ़नेके लिए रानीकीसरायमे कदम रखा था, उस समय मै बहुत डर-डरकर पैरोको रख पाता था। पन्दहा गाँवके लड़कोंके लिए रानीकीसराय एक सभ्रान्त नगरी थी। वहाँकी हर एक बातमे रोब

टपकता था। जब रानीकीसरायके लड़के पकड़ना कहते, तब मैं समझता कि धरना नही पकड़ना ही नागरिक शब्द है। जब रानीकीसरायके पुरुषोंको धोतीका एक भाग आधी जाँघ तक सीमित रख, दूसरेको घुट्ठी तक छोड़ते देखता, तब मुझे मालूम होता, यह है नागरिक वेश। आगे चलकर रानीकीसरायकी नागरिकताका वह रोब नही रहा तो भी रानीकीसरायके मदरसे के छ सालोंका मेरे निर्माणमें भारी भाग है।

सड़कसे एक बार मै बस्तीके आरपार हो गया, लेकिन किसी चेहरेको पहचान न सका। एक व्यक्ति कुछ देर खड़े होकर मेरी ओर देख रहे थे। किंतु रामनिरंजन पडित रानीकीसरायमे होंगे, इसका मुझे ख्याल नही था। हम दोनों स्टेशनकी ओर मुड़े। मेरे सुपरिचित रानी-सागरके दक्खिनी भीटेपर हिन्दी मिडिल और प्राइमरी स्कूल मिले। छुट्टी थी, इसलिए वहाँ सुनसान था।

फिर हम तालावके उत्तरी भीटेकी ओर गये। महावीरजीका वही मदिर अब भी वहाँ मौजूद था, और साथ ही महावीरजीकी सेना वानरोकी संख्या कम नही थी। वह कुआँ भी मौजूद था, और उसका जल आज भी उसी तरह बदबू कर रहा था, जैसा बालपनमें वह हर साल एक महीनेके लिये हो जाया करता था। वहाँ मौजूद दोनों साधुओसे कुछ पूछ-ताछ शुरू की। गेरुआधारी फक्कडबाबा (बलदेवदास) मेरी ओर खास तौरसे देखने लगे और दो-चार ही बाते कर पाया हूँगा, कि उन्होने झट पूछ दिया—आप राहुलजी तो नही है। फक्कड बाबा भी उस वक्त रानीकीसरायके स्कूलमे पढते थे, जब मै वहाँ दो दर्जा नीचे पढ रहा था। अब अपने परिचितोंका पता पाना आसान था, लेकिन मेरे अधिकाश परिचित जीवन-शेष कर चुके थे। महावीरजीके मदिरके पास बरगदकी जड़मे एक खडित मूर्ति रक्खी थी—गुप्तकालीन मूर्ति छिपी नही रह सकती।

फक्कडबाबाके साथ अब हम उस स्थानपर आये, जहाँ किसी वक्त हमारा पुराना मदरसा था। बीचमे शाला (दालान) तीन तरफ बराण्डा, एक तरफ दो कोठरियाँ—मदरसेका वह नक्शा अब भी मेरे स्मृति-पटपर अंकित है। हर जाड़ेमे होनेवाली सफेदीसे उज्वल उसकी भीते अभी भी मुझे दिखलाई पडती है। चारों ओरकी चहारदीवारीसे घिरे हातेमें लगे गेंदेके फूलोकी सुगन्ध मानो अब भी मेरी नाकमे आ रही थी। लेकिन अब मैने उस स्थानको देखा तो चित्त खिन्न हो गया। अब

वहाँ उस मदरसेका कोई चिह्न नही रह गया था। वहाँ थे अड़ूसे और कुछ दूसरे कटीले पौधे। लोग इस स्थानको खुले पाखानेके तौरपर इस्तेमाल करते हैं। हाँ, हमारी परिचित इमलियोमें एकाध अभी भी मौजूद थी।

बाजारमे द्वारिका प्रसाद, रामनिरजन पडित और कुछ और मित्र मिले। उनका स्नेह-भरा स्वागत प्राप्त हुआ।

रानीकीसरायसे पन्दहा मील भरसे ज्यादा दूर नही है। धूपमे हम जाना नही चाहते थे, किन्तु हमारे आनेकी खबर पन्दहा पहिले ही पहुँच चुकी थी। रामदीन मामाके पुत्र कैलाश प्रस्थान करनेसे पूर्व ही आ भी गये।

मदरसा आनेके हमारे दो रास्ते थे, जिन्हे मैं बचपनकी सुनी कहानीके छ महीने और बरस दिनके रास्तेसे तुलना किया करता था, यद्यपि दोनोमें कौन छ. महीने और कौन बरस दिनका था, इसका निर्णय मैं कभी नही कर पाया। मेरे लिए दोनो कठिन रास्ते थे। एकपर एक ठूँठा पीपल था और ठुँठवा बाबाका प्रताप इतना जगा था, कि फल और तरकारी बेचनेवाले स्त्री-पुरुष भी वहाँ बिना कुछ चढाये आगे नही बढ़ते थे। दूसरे रास्तेपर, बस्तीसे दूर नीमके पेडोसे ढँका बालदत्त रायका पोखरा था; जिससे दोपहरके वक्त भी सही-सलामत पार हो जाना मुश्किल था। वहाँ एक नही, हजारो भूत जेठकी दुपहरीमें नाचा करते थे। इन दोनो स्थानोके बाबो-के चरणोमे नानीको गिड़गिडाकर नातीके लिए दुआ माँगते देख मुझे विश्वास हो गया था, कि ये स्थान भारी खतरेसे भरे हुए है। मैं उर्दूका विद्यार्थी था, मगर बाबोका डर इतना भारी था कि "भूत पिशाच निकट नहि आवे। महावीर जब नाम सुनावे॥" की महिमा सुनकर सारा हनुमान-चालीसा याद कर डाला था।

हम बालदत्तके पोखरेके रास्तेसे गये। पासकी परती और जगल अब खेत बन गये है। वर्षोसे भूतोने पोखरेपर नृत्य-महोत्सव रचाना बन्द कर दिया है। लोगो के दिलसे उनका डर जाता रहा है। ठुँठवा बाबाकी हालत तो और भी खराब है। कच्ची सडकके किनारे एक पतली डाली और चद पत्तियो वाले उस लबे पीपलको दूर तक वृक्ष-वनस्पति-विहीन प्रान्तरमे खडे देखकर रातको किसी भी अकेले बटोहीके दिलमे भयका सचार होना लाजिमी था। लेकिन वर्षो हो गये, कच्ची सडक पक्की हो गई, उसके किनारे ऊँचे वृक्षोकी पाँत खडी हो गई। पीपल उस वृक्ष-पक्तिमे गुम हो गया, जिससे ठुँठवा बाबाके प्रभावमे भारी धक्का लगा। और अब तो वह वृक्ष भी कट चुका है। ठुँठवा बाबा नई पीढ़ीके लिए अपने अस्तित्वको खो चुके है।

पन्दहामें घुसनेपर पहिले बृद्ध परिचित मिले लौहर नाना। अश्रु-गदगद कण्ठसे 'कुलवन्तीके पुत्र—केदार' कहना और फिर गलेसे लिपट जाना मेरे धैर्य्यपर जबर-दस्त प्रहार करनेके लिए काफी था।

नेत्रोको सूखा रखने और स्वरको ठीक करनेके लिए भारी प्रयत्न करना पड़ा। मेरे सामने शैशवके प्रियजनोंकी मूर्तियाँ पार होने लगी। मेरे नाना तीन भाई थे। उनकी अपनी सतान एक मात्र मेरी माँ थी, किन्तु बाकी दो बड़े छोटे भाइयोंके पाँच और दो लड़के थे। सातो मामोंमे अब सिर्फ जवाहर मामा रह गये है। मेरे शैशवमे वे कलकत्तामे पुलिसके सिपाही थे और जब एकाध महीनेकी छुट्टीपर आते, तो ताजी गिरीवाले नारियल लाते। अब वे पेंशन पाते है और नेत्रोंसे वंचित है। उनका चेहरा अपने पिताके तीनो भाइयो-जैसा है। विश्वामित्र, वशिष्ठ जैसी सफेद डाढीका नही, बल्कि नानोंसे मिलने वाले उस चेहरे और उनके रुद्ध-कठस्वरने मेरे नेत्रोको आखिर गीला करके ही छोड़ा। रानीकीसरायमे थोडीसी खिन्नता आई थी और मै धैर्य्यकी परीक्षा पास कर गया था, किन्तु पन्दहाने मुझे पराजित कर दिया। कुलवन्तीके पुत्र, रामशरण पाठकके नाती केदारनाथको देखनेके लिए गाँवके लोग आने लगे। मेरी तीनों मामियाँ—जो सभी विधवाये और पुत्र-पौत्रवाली है—अपने भानजेको देखने आई। उस वक्त उनके अश्रु-प्रक्षलित मुखोको देखकर मुझे उस प्यारी मामी—रामदीन मामाकी पहिली स्त्री—की याद बारबार आती थी। उनका स्नेह मेरे लिए शैशवकी बहुमूल्य स्मृतियोमेंसे है।

पन्दहाके गली-कूचो, उसके ताल-तलैयोको तेरह बरस तक मै रातदिन देखता रहा, और उसके बाद भी तीन बरस तक मै उनके सपर्कमे रहा था। गाँवकी पुरानी चीजोको देखने निकला। सबसे अचरजकी बात मुझे यह मालूम हो रही थी, कि पुराने कुओं, गडहियो, तलैयोके बीचके अन्तर घटकर सिर्फ एक तिहाई रह गये है। क्या धरती सचमुच ही छोटी हो गई है, अथवा उस दूरीके बढ़ी होनेका कारण बाल्यका छोटा शरीर था? गाँवमे शायद ही कोई घर अपनी पुरानी दीवारपर है, दरवाजोंकी दिशा और आँगनोंके विस्तारमे भी परिवर्तन है। मै वह आँगन और उसके बगलवाले घरको देखने गया, जिसमें मेरी माँने अपने ज्येष्ठ पुत्रको आजसे पचास साल पहिले जन्म दिया था, मगर आज उस घरका कही पता नही। आँगन, कई घर, बाहरका द्वार, कुल्हाड तथा बैठकेके घरोंकी जगह चहारदीवारीसे घिरा एक खुला सहन है। हाँ, उस ओसारेका थोडा-सा भाग अब भी नई खपडैलसे ढँका है, जिसने मेरे प्रसूति-

गृहका काम किया था। नानाका कुँआ अब भी मौजूद है, और यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि अब भी उसका पानी वैसा ही मीठा है।

बडी रात तक गाँवके वृद्ध और तरुण वाले पूछते रहे, और चौंतीस वरसपर लौटे रामशरण पाठकके नाती अथवा हिन्दीके लेखक राहुल साकृत्यायनकी खबर पाकर आसपासके गाँवके लोग भी आते रहे।

१४ अप्रैलको मुझे पन्दहाके और स्मरणीय स्थानो और देवताओको देखनेका मौका मिला। मुँह-हाथ धोनेके लिए हम गाँवसे उत्तरकी ओर गये। देखा, वनवारी माईके पासकी झाडी साफ हो चुकी है और उसपर जवाहर मामा के लगाये महुए खड़े है। बनवारी माईके स्थानको देखनेसे मालूम होता था कि सालमे भूल-भटक-कर ही अब कोई पूजा-कड़ाही चढाता है। वहाँ एक खडित मूर्ति रहा करती थी। लोगोने वतलाया, कुछ समय पहिले माई अन्तर्धान हो गई। गाँवोके इन पुराने देव स्थानोमे कितनी ही बार खडित किन्तु कलापूर्ण प्राचीन मूर्तियाँ देखी जाती है, बनवारी माईकी मूर्ति भी कोई इसी तरहकी मूर्ति रही होगी और उसे किसी कला या पैसेके प्रेमीने अन्तर्धान करा दिया होगा, इसमे सन्देह नही।

रातको रामनवमी थीं, मगर बचपनमे 'रामनवमी'से ज्यादा उसका दूसरा नाम—बडका बसियौडा—मुझे सुननेमे आता था। आज शायद पन्दहा छोडनेके वाद पहिली ही बार मुझे 'बसियौड़ा' नाम सुननेको मिला। मेरी मामी (कैलाशकी माँ) खास तौरसे जलपान बनाने जा रही थी, लेकिन 'वसियौडा'का नाम सुनकर दूसरे भोजनको मै क्यो पसन्द करने लगा? साबित उडदकी दाल (विना हल्दीकी), तेलकी बेडहिन (दाल भरा परौठा), गुलगुला और लाल भात वालपनके परिचित खाद्य थे; आज भी उसे खानेमे बडा आनन्द आ रहा था। दिन भर गाँव और आसपासके गाँवोके लोग आते रहे, जिसमें रानीकीसरायके सहपाठी जगेसर (झिलमिट) और वाँकीपुरके बाबू सरयूसिह भी थे। मैने सोलह-सत्रह वर्षकी अवस्थामे देखा था। अब उनके केश सफेद हो चुके है, और कई पौत्रोके वावा बाबू सरयूसिह है।

शामके वक्त गाँव और उनके टोलोंकी फिर खाक छानी। देवताओका महत्व अवश्य इन चौतीस वर्षोमे कम हो गया है। जिस महामाईके स्थानपर नव-दम्पतीका पूजाके लिए जाना अनिवार्य था, आज उसके आसपास तक पाखानेका क्षेत्र बन चुका है और वृक्षकी जडमे पाँच-सात सिन्दूरके दाग, मालूम होता था, सतयुगके लगे हुए है। पहले व्याह, पुत्र-जन्मादि समयोपर गिन-गिनकर ग्राम-देवताओको छोने

(सुअरके बच्चे) चढाये जाते थे। हमारे ममेरे भाइयों—दीपचन्द और कैलाश—ने हिसाब लगाया, तो मालूम हुआ कि एक दर्जनसे ऊपर छौने उनके घरके नाम बाकी पड़े हुए है। हनुमतवीर और अनारवीरसे लोग वैसे ही ढीठ हो गये है, जैसे अपने आजके बड़े बूढ़ोसे। लेकिन जवाहर मामा कह रहे थे—मै अपनी जिन्दगीभर निबाहे जा रहा हूँ। उन्होने यह भी सुनाया कि कैसे अपने सेवकोकी उपेक्षासे क्रुद्ध हो अनारवीर बाबाने कुछ ही साल पहिले गाड़ीमे जुते बैलोको पीछेसे दबाकर टाँग दिया, बैलोंको फाँसीसी लगने लगी थी। खैर, किसी तरह रस्सी काटकर उनकी जान बचाई गई। आश्चर्य तो यह है कि यह सब देखकर भी नई पीढ़ी देवताओंका आदर-पूजन करनेके लिए तैयार नही।

पन्दहाकी सीमापर बसई एक छोटीसी बस्ती है। बादशाही जमानेमे यहाँके सैयद-लोगोका वैभव-सूर्य बहुत चढ़ा हुआ था। वे सीधे लखनऊ अपनी मालगुजारी भेजा करते थे। आज उनके घरोंका पता नही। कई सैयद लड़के मेरे साथ रानीकी-सराय पढ़ने जाया करते थे। कितनी ही बार उनके साथ मै उनके घरोंको गया था। ईंटोके घर गिरे-पडे हुए थे, मगर तब भी उनमेंसे कितने खड़े थे। उनके आँगनोमे चारपाईपर बैठी वैभवशाली वंशकी संताने—सैयदानियाँ मेरा भी उसी तरह स्नेहपूर्वक स्वागत करती थी, जिस तरह अपने लड़कोका। आज उनके वंशका कोई बसईमे बच नही रहा है। घरोंकी ईंटे तक दिखलाई नही पड़ रही है। पिछवाडेके उन अनारों और शरीफोका भी कोई पता नही, जो बचपनमे मेरे लिए खास आकर्षण रखते थे। पुराने सैयदोकी ईंट-चूनेकी कब्रोपर श्रद्धाकी दृष्टि डालते हुए, हम कोइरी लोगोके घरकी ओर गये। अब साग-भाजीके न उतने खेत है, न उतने घर। मेरे बाल-सहपाठी हीराके घरमे कोई नही रह गया। बसईमे कितने ही घर जुलाहोके है, लेकिन कपड़ा बुननेकी जगह वे सनकी सुतरी बट रहे थे—कितने ही कपड़ा बुनना भूल गये है।

लौटते वक्त मेरे बाल-सहपाठी राजदेव पाठक मिले। उनके सारे केश सन जैसे सफेद थे। उन्होंने बालकोके खेल—चिब्भी डाँड़ी—का निमन्त्रण दिया। एक बार मनमे आया—काश, हम फिर बारह-तेरह सालके हो जाते। लेकिन तब आगेकी दोनो पीढियाँ कहाँ होती? सतमीके घरका भी कोई चिह्न नही है। सतमीके चार बच्चे किस तरह मलेरियामे गल-गलकर दरिद्रताकी भेंट चढ़े, यह मै अपनी एक कहानीमे लिख चुका हूँ। सतमीका सबसे छोटा लड़का सन्तू अब भी कही जिन्दा है।

पन्दहा जानेसे पहले बहुत थोड़े ही नाम और सूरतें मुझे परिचितसी मालूम होती थी, लेकिन वहाँकी नई पुरानी मूर्तियो, भूमि और वातावरणमे घूमते, साँस लेते ही स्मृतियाँ फिर जागृत होने लगी, और सत्रह-अट्ठारह वर्षसे ऊपरकी उम्रके जिन्हे मै देख चुका था, उन्हे पहचाननेमे दिक्कत नही हुई।

१६ अप्रैलको हम निजामाबाद गये। यहीके स्कूलसे मैने १९०९मे उर्दू-मिडिल पास किया था। पुराने मिडिल-स्कूलकी जगह क्या, उसी नीवपर उसी शकलकी अपर प्राइमरी स्कूलकी इमारत है। मिडिल-स्कूल आजकल कस्बेसे पश्चिम चला गया है। दोनो ही स्कूलोके अध्यापकोमे मेरा कोई परिचित नही निकला। टौंसका घाट और उसके पासके छोटे शिवालय और नानकशाही सगतमे कोई परिवर्तन नही मालूम हुआ। हाँ, घाटपर भी एक दो पानकी दूकानें नई चीज थी। पता लग गया था कि मेरे पुराने अध्यापक पडित सीताराम श्रोत्रिय अपने घरपर ही है। उनका घर कस्बेके भीतरकी सगतके पास है। यह सगत भी पहली अवस्थामे है। हाँ, एक यह फर्क जरूर मालूम पड़ता है कि बाहरी छतके भीतर भी कदम रखते ही लोगोका सिर जबरदस्ती ढँकवाया जाता है। पडित सीताराम श्रोत्रिय 'हरिऔध'जीके शिष्य है, स्कूल और साहित्य दोनोमे। मुझे देखकर वे प्रसन्न हुए। नागार्जुनजीने अपनी कविता—जातिगौरव गंगदत्त—सुनाई, इसके बाद श्रोत्रियजीने भी अपनी कुछ कवितायें सुनाई।

निजामाबादमे हम उन कुम्हारोके घरोमे भी गये, जो खिलजी-शासनके जमानेमे देवगिरिसे आकर यहाँ बस गये थे। उनके बनाये मिट्टीके बर्तन दुनियाँमे प्रसिद्ध है। और कुम्हारोसे इनका नाता-रिश्ता है, मगर वे अपनी कलाको दूसरे कुम्हार-कुलमे जाने नही देना चाहते; इसीलिए अपनी लडकियो तकको अपनी कला नही सिखलाते। लडाईसे पहिले उनके बनाये लाखो रुपयेके बर्तन—चायका सेट, गुलदस्ता आदि—देश-विदेश जाया करते थे, किन्तु आज अवस्था अच्छी नहीं है। अब इन झिनकारी वाले कुम्हार घरोकी सख्या एक दर्जनसे ज्यादा नही रह गई है।

लौटते वक्त पन्दहाके सीवानेपरके उन खेतोको भी हमने देखा, जहाँ चन्द साल पहिले घोड़रोज (नीलगाय)के शिकारके लिए हिन्दू-मुसलमानोमे देवासुर-सग्राम छिड गया था। सग्रामके बाद अब शान्ति है। हिन्दू हाय-हाय कर रहे थे—दस पाँच साल पहले जहाँ दो ही चार घोडरोज देखे जाते थे, वहाँ आज उनकी सख्या पचासो तक पहुँच गई है और वह खेतीको भारी नुकसान पहुँचाते है। मैने कहा—घोड़रोज बकरी और हिरनकी जातिके होते है, इनके कान, आँख, पूँछ बैस ही

होती है, वैसे ही लेड़ी करते हैं। उन्होंने मुझे यह भी सूचित किया कि बकरियोंकी तरह वे एकसे ज्यादा बच्चे देते हैं। इतना होनेपर भी वे इन्हें गाय बनाकर इनके लिए धर्म-युद्ध करनेके लिए तैयार हैं!

× × ×

१३ अप्रैलको ही जब कि मैं रानीकीसराय पहुँचा था किसीने मेरे पितृग्राम कनैला-में खबर दे दी। आजमगढ़के लिए मेरे पास सिर्फ सात दिन थे और इतने कम समयमें कनैलाको मैं अपने प्रोग्राममें नही रखना चाहता था। मेरे ममेरे भाइयों—दीपचन्द और कैलाश—ने बारबार कनैला सूचना देनेका आग्रह किया, लेकिन मेरे अस्वीकार करनेपर वे चुप रह गये। दूसरे दिन—१४ अप्रैल—की दोपहरको देखा, मेरे छोटे भाई श्यामलाल साइकिलपर पन्द्हा पहुँच गये। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ—किसने खबर दी? जान पड़ता है चौंतीस सालके बाद लौटे आदमीकी खबर लोगोंके लिए भारी आकर्षण रखती है; इसीलिए मेरे आनेकी खबर रानीकीसरायके साधारण आदमियोंमें फैल गई। रानीकीसरायमे कनैलाके चुड़िहारेकी रिश्तेदारी है। वहींसे कोई आदमी कनैला गया और उसी दिन मेरे आनेकी सूचना दस मील दूर पहुँच गई। भाईने अपने घर और गाँवकी ओरसे चलनेके लिए बहुत जोर दिया, मगर मैंने उसे अगली यात्राके लिए रख छोड़नेकी बात कहकर इन्कार कर दिया। श्यामलाल उसी दिन लौट गये।

१६की शामको दिन रहते ही कनैलाके लोगोंकी टोलियाँ आने लगी। पाँच-छ करके वे दस बजे रात तक आते रहे। उनकी संख्या तीससे अधिक पहुँच गई, और उनमें कई जातियोंके प्रतिनिधि थे। गाँवके बूढ़े चचा रघुनाथ और दादा (आजा) सुखदेव पांडेको भी दस-ग्यारह मीलकी मंजिल मारकर आया देख मेरा निश्चय कुछ विचलित होने लगा। कनैलाके सबसे ज्यादा आनेमें असमर्थ रामदत्त चचा थे, मगर वे मुझे देखनेके लिए कितने उत्सुक थे, इसकी खबर एकाध बार पहिले भी मिल चुकी थी। अपने बहुतसे वृद्धोंके दर्शनसे मैं वंचित हो चुका था। मेरे संस्कृतके प्रथम गुरु तथा फूफा महादेव पंडित (बछवल)ने कई बार देखनेका सन्देश भेजा था, मगर मैं नहीं जा सका और दो तीन साल पहले उनका देहान्त हो चुका। मेरे जन्मके समयके सम्मिलित परिवारकी दादी सिर्फ ग्यारह दिन पहले मरी थी और उस दिन मेरे वंशज उनका श्राद्ध करके आए थे। मैं कुछ और वृद्धोंके दर्शनसे अपनेको वंचित नहीं करना चाहता था, इसलिए हमारे गाँवके नाती तथा मेरे समवयस्क औघड़ बाबा रघुनाथने जब कनैला चलनेको कहा तो मैंने स्वीकृत दे दी।

गर्मीके दोपहरकी यात्रामे पडना सौभाग्यकी वात नही, अतएव हमने भिनसारे ही चलना तय किया था। सवेरे हाथीके कसकर आनेमे कुछ देर होने लगी, हम पैदल ही चल पडे। हाथीने डेढ़ मील बढ जानेपर हमे पकड़ पाया। पहले रघुनाथ बाबाके साथमे और नागार्जुन भी हाथीपर बैठे, मगर हम दोनो ही ऐसे 'हलके' शरीरके थे कि नागार्जुनजीको यह समझते देर नही लगी कि हाथीपर चलनेकी अपेक्षा पैदल चलना उनके लिए कही आरामका रहेगा। उस दिन दोपहर तक आकाशमे मेघ छाये थे। रघुनाथ बाबा मेरे पुण्य-प्रतापकी दुहाई दे रहे थे। कनैलासे दो मील पहले डीहा पहुँचनेपर बूदे ज्यादा पडने लगी, लेकिन वहां हमे मुँह-हाथ धोना और जल-पान करना भी था।

डीहाके अपर प्राइमरी स्कूलमे आज (१७ अप्रैल) छुट्टी थी, इसीलिए वहांके प्रधानाध्यापक मेरे सहपाठी पडित श्यामनारायण पाण्डेय मौजूद न थे। पिछले सालोमे शिक्षाका अधिक प्रचार हुआ है, यह जगह-जगह नये कायम हुए मिडिल तथा दूसरी तरहके स्कूलोसे पता चलता था। रानीकीसरायमे जब मै पढने गया था तब वहां एक छोटासा लोअर प्राइमरी स्कूल था, लेकिन अब वहाँ मिडिल स्कूल है। डीहामे मदरसा पहिले भी था, मगर अब तीन अध्यापक पढाते है। मै तो बराबर नानाके साथ पन्दहामे रहता था, इसीलिए मेरी पढ़ाई-लिखाई रानीकीसराय और निजामाबादमे ही हुई। मगर कनैलाके लडकोको डीहाका स्कूल ही नजदीक पडता था। अब तो कनैलामे भी अपर प्राइमरी स्कूल हो गया है। कनैलासे दो ही ढाई मील दूरपर बर-वारामे मिडिल स्कूल है। तीस-बत्तीस साल पहले मिडिल पास लडके विरले ही मिलते थे, किन्तु अब वे एक एक गाँवमे और अधिक सख्यामे मिलते है। पन्दहामे कुबेर नानाके लडकेको मैट्रिक तक पढकर खेतीमे जुटा देख मुझे कुछ सतोष जरूर हुआ, मगर खेतीके काममे विद्याका उपयोग न हो तो सारी पढाई व्यर्थ हो जाती है। और शिक्षित व्यक्ति साइन्सके किसी तरीकेको खेतीमे बरतते नही देखे जाते। गाँवमे शिक्षाके प्रचारका अगर कोई ज्यादा असर हुआ है, तो यही कि मुकदमेबाजी बढ गई है, जमीन जायदादके लिए जाल-फरेब ज्यादा होने लगा है। इससे विद्याका यश उज्वल नही हुआ है।

कनैला गाँवके पश्चिमकी कुटीका—जहाँ प्राइमरी स्कूल है—पुराना मकान गिर चुका है और वहाँ कई घर तथा बडे वृक्ष दीख पडे। लबे वर्षोको वृक्षोके जरिये आसानीसे नापा जा सकता है।

अभी गाँवके हम बाहर ही थे कि लड़कोंकी पलटन अपने जन्मजात नेताओंके साथ हमारा स्वागत करनेके लिए पहुँच गई—इसे स्वागत करना और तमाशा देखना दोनों ही कह सकते हैं। उनमें पाँचसे बारह बरस तकके लड़के मौजूद थे।

गाँवसे नजदीक ऊसरके अकेले कुयेंके पास पहुँचकर हम हाथीसे उतर पड़े। मेरे बचपनमें भी यह कुआँ इस निर्जन ऊसरमें मौजूद था, और गाँवके लोग ज्यादातर यहींसे पीनेके लिए पानी ले जाते थे। इस दिक्कतको दूर करनेका प्रथम प्रयास मेरे पिताने अपने दरवाजेपर कुआँ बनाकर किया। आज तो गाँवके भीतर कई कुएँ बन चुके हैं। इस ऊसर वाले कुयेंके आसपास एक दर्जन घर आबाद हो गये हैं, जिनमें चुड़िहार और दर्जी लोगोंके घर ज्यादा हैं। मेरी ही उम्रके, किन्तु रिश्तेमें चचा रजबली (रजब्‌अली)की ठुड्डीपर लटकती दाढ़ी सफेद हो चुकी है। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई, कि एक समयके मुमूर्ष चुड़िहार और दर्जी परिवार अब हरे-भरे हैं। कनैलामें दो तीन घरोंको छोड़कर सभीको मैं दरिद्र-अवस्थामें छोड़कर गया था, मगर अब सभीकी हालत अच्छी है। उस समय गाँवका दो-तिहाईसे अधिक भाग ऊसर था, अब उस ऊसरसे लोगोंने काफी खेत बना लिया है। पहलेके खेतोंमें भी लोग अब अधिक परिश्रम करते हैं। सिंचाईके लिए कई नये पक्के कुयें बन गये हैं; अपेक्षाकृत कम मुकदमेबाजी होती है। यह है कारण कनैलाकी समृद्धिका। मेरी अनुपस्थितिमें आकर मौजूद हो गई दो पीढ़ियोंकी समस्याको ऊसरने हल कर दिया—जहाँ तक गाँवके ब्राह्मणों (जमींदारों)का संबंध है; और शायद एक पीढ़ी और भी ऊसरसे नये खेत बना सकें। गाँवके घरोंके स्थान और आकार दोनोंमें परिवर्तन हुआ है। पहलेकी अपेक्षा अबके घर अधिक सुन्दर, साफ और विस्तृत हैं; इसके लिए बहुतसे परिवारोंको गाँवके बिचले स्थानोंको छोड़ पूरबकी ओर बढ़ना पड़ा। सत्ताइस साल पहले आखिरी बार मैं तीन-चार दिनके लिए कनैला गया था। उस वक्तके मकानोंके नक्शे अब भी मेरे मस्तिष्कमें अंकित थे, लेकिन अब पूछकर ही मैं किसी घरको जान सकता था। गाँवमें पहुँचते-पहुँचते सभी बाल-वृद्ध-नर-नारी अपने हाड़-माँससे बने शरीरवाले केदारनाथके इर्द-गिर्द आ खड़े हुए। मैंने चचा बंशीके सजल नेत्रोंको देखा और मेरे हाथ उनके चरणोंपर पहुँच गये। गाँवकी वृद्धतम स्त्री यमुना आजी (आर्या, दादी)की जबान अब भी उसी तरह तेज चल रही थी, मगर अब उनका शरीर बहुत निर्बल हो चुका है, आँखोंकी ज्योति भी मन्द पड़ गई है। गाँवके बीचमें पत्थरका पुराना कोल्हू अपनी जगहपर अब भी खड़ा है, किन्तु हँसिया, खुरपे और गड़ासोंको रगड़-रगड़कर लोगोंने उसकी आरीपर बहुतसे गड्ढे कर दिये हैं। हमारे